Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

विषय संख्या R ८०
पुस्तक संख्या प्र ट ई स
आगत पंजिका संख्या भा० ट

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

112815

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

12 AUG 1974

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

स्टाक प्रमाणीकरण १९८४-१९८५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गु

विषय
पुस्तक
आगत
पुस्
वर्जित है
तक पुस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112815

३९२ D

सरस्वती

[illegible] 1970

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग ८

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं०
आगत सं०
तिथि
गुरुकुल ग्रन्थालय कांगड़ी

सम्पादक,

महावीरप्रसाद द्विवेदी ।

112815

प्रकाशक,

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

१९०७

पृष्ठ
९२
३५०
३९१
१७८
३०६
२४४
४९९
२२२
, ३२४
३९४
, ४८८
, ५०५
४०
४८
१५४
११
३२३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची ।

१—आख्यायिकायें ।

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	एक के दो दो	बाबू रामजीदास वैश्य	९२
२	"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" ...	पण्डित उदयनारायण वाजपेयी ...	३५०
१३	तीक्ष्ण छुरी	,, लक्ष्मीधर वाजपेयी ...	३९१
१४	दुलाईवाली	श्रीमती वङ्ग-महिला	१७८
१५	पक्का गठिबन्धन	बाबू प्रमथनाथ भट्टाचार्य्य ...	३०६
६	सचाई का शिखर	पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री ...	२४४
१			
१			

२—ऐतिहासिक विषय ।

१	कवि गङ्ग का समय	मुंशी देवीप्रसाद	४९९
२	कालिदास का समय	सम्पादक	२२२
३	कोलाक्षर-लिपि	"बार्हस्पत्य" ...	...२७०, ३२४
४	चीन-जापान में संस्कृत-ग्रन्थ	बाबू काशीप्रसाद जायसवाल ...	३९४
५	यवनानी लिपि	"बार्हस्पत्य" ...	...४३७, ४८८

३—कविता ।

१	अन्योक्ति-पुष्पावली	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	... ५९, ५०५
२	अन्योक्तियाँ	पण्डित श्यामनाथ शर्म्मा ...	४०
२	अविद्यानन्द का व्याख्यान	,, नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ...	४८
	इन्दिरा	सम्पादक	१५४
२	ईश्वर की महिमा	बाबू गोविन्ददास	११
२	कजली-कलाप	पण्डित नाथूरामशङ्कर शर्म्मा ...	३२३

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	नाम	लेखक	पृ
७	कर्म्म-वीर	... पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय ...	१३
८	कविवर माघ का प्रभात-वर्णन	... ,, रामजीलाल शर्म्मा ...	७
९	कादम्बरी	... राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०	१६
१०	कोकिल	... बाबू व्रजनन्दनसहाय	३३०
११	ग्रंथगुणगान	... ,, मैथिलीशरण गुप्त ...	२७
१२	ग्रीष्म	... पाण्डेय लोचनप्रसाद... ...	२३३
१३	चारु-माला	... पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी ...	४५७
१४	नवीन कोकिलाष्टक ...	... बाबू भगवानदास, बी० ए० ...	३६७
१५	निदाघ-वर्णन ...	... ,, मैथिलीशरण गुप्त ...	२७५
१६	प्रदर्शिनी-व्याख्यान-भूमिका ...	... राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०	२५
१७	प्रभु-प्रताप	... पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय ...	२०५
१८	प्रशस्त-पाठ	... ,, नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ...	५०१
१९	प्रार्थना	... राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०	३१६
२०	प्रार्थना-पञ्चदशी ...	... बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	३८१
२१	प्रार्थना-शतक ...	... पण्डित-जनार्दन झा ...१६२, १९६, २२०, ३०९,	३६०
२२	बेटी की बिदा ...	... पण्डित कामताप्रसाद गुरु ...	३७१
२३	भारत-माता पे... ...	... ,, गिरिधर शर्म्मा ...	४६५
२४	महाकवि कालिदास का वसन्त-वर्णन	... बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	१००
२५	महाराज दशरथ का आखेट...	... ,, ,, ...	२४३, २६८
२६	मालती- महिमा ...	... ,, ,, ...	३०४
२७	रामलीला	... पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ...	४३३
२८	रे मन !	... पाण्डेय लोचनप्रसाद ...	१५०
२९	वर्षा	... ,, ,, ...	३७६
३०	वर्षा-ऋतु	... बाबू श्यामलाल ...	३३२
३१	वर्षा-वर्णन	... ,, मैथिलीशरण गुप्त ...	३६४
३२	वसन्त-विकास ...	... पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ...	१२४
३३	वसन्तसेना-विलास ...	... ,, ,, ...	१८३
३४	विद्या	... पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय ...	३५७
३५	विनयः	... एक बाल-ब्रह्मचारी ...	३१६
३६	वीरवचनावली ...	... पण्डित रामचरित उपाध्याय ...	५१०
३७	वीराङ्गना-काव्य ...	... श्रीराजा कमलानन्दसिंह ...	९०
३८	शरद	... पण्डित शिवप्रसाद कवीश्वर ...	३९४
३९	शिवाजी	... ,, कामताप्रसाद गुरु ...	४०१
४०	श्रीरामतीर्थाष्टक ...	... ,, सत्यनारायण ...	४४६
४१	श्रीविष्णु का वामनावतार ...	... राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०	३५३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
४२	सरस्वती की महावीरता	पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ...	१८
४३	सोऽहम्	'बी० ए०'	४५२
४४	स्वदेश-भक्ति	बाबू मुन्नीलाल	११८
४५	हेमन्त	पण्डित गिरिधर शर्म्मा ...	३०

४—जीवन-चरित।

१	अमीर हबीबुल्लाख़ाँ	सम्पादक	३५
२	कर्नल आलकट	,, ...	१५२
३	कविवर नागरीदास	श्रीनरेन्द्रनारायणसिंह ...	४४३
४	गायनाचार्य्य पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुसकर	सम्पादक	३८६
५	जापान-नरेश मत्सूहीटू	श्रीयुक्त सत्यदेव	३६३
६	पण्डित कुन्दनलाल	सम्पादक	३०१
७	परलोकवासी मिस्टर जॉन बोम्स ...	बाबू काशीप्रसाद जायसवाल ...	१३४
८	फ़ारस के शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन ...	सम्पादक	४४
९	बाबू बालमुकुन्द गुप्त	"उद्धृत"	५०८
१०	,, राधाकृष्णदास	पण्डित रामनारायण मिश्र, बी० ए०	२०९
११	बाल-ब्रह्मचारी शङ्करानन्द शास्त्री ...	सम्पादक	४३०
१२	भिनगा-नरेश श्रीराजा उदयप्रतापसिंह, सी० एस० आई०	,, ...	५
१३	महाराजा ट्रावनकोर	,, ...	५०३
१४	माननीय बदरुद्दीन तैयबजी	पण्डित वेङ्कटेशनारायण त्रिपाठी...	१६२
१५	राय बहादुर कविवर राधानाथ राय ...	पाण्डेय पुरुषोत्तमप्रसाद और पाण्डेय लोचनप्रसाद ...	८६
१६	राय बहादुर पण्डित लक्ष्मीशङ्कर मिश्र ...	मुंशी रामनारायणसिंह ...	२१७
१७	राय बहादुर बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, बी० ए०, सी० आई० ई०	बाबू व्रजनन्दनसहाय ...	४८०
१८	वीर गैरीवाल्डी (न्यूयार्क में) ...	श्रीयुक्त सत्यदेव	३४५
१९	शेक्सपियर	बाबू काशीप्रसाद जायसवाल ...	७०
२०	श्याम-नरेश चूड़ालङ्करण	सम्पादक	४०९
२१	श्रीगुरु गोविन्दसिंह	बाबू वेणीप्रसाद ... ३३४, ३७२, ४१९, ४६१,	५१६
२२	श्रीयुक्त गोबर्धनराम माधवराम त्रिपाठी, बी० ए०, एल० एल० बी०	श्रीयुक्त शिवप्रसाद दलपतराम पण्डित	१७४
२३	श्रीयुक्त महेशचरणसिंह, बी० ए०, एम० एस०	बाबू काशीप्रसाद जायसवाल ...	११९
२४	सचिव-युग्म (बैनरमैन-मार्ले) ...	सम्पादक	२३६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—फुटकर विषय।

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	अँगरेज़ी प्रजा का पराक्रम	सम्पादक	१२२
२	आख्यायिका	पण्डित रामजीलाल शर्म्मा ...	१२५
३	कर्म्म	राजा पृथ्वीपालसिंह ...	४१३
४	चित्रदर्शन	सम्पादक	८१, २५७
५	जापानियों की ईमानदारी	पण्डित चन्द्रमाधव मिश्र, एम० ए०	४००
६	ढाके की मलमल	,, रामजीलाल शर्म्मा ...	४५५
७	दीपकदेव का आत्मचरित	,, शिवप्रसाद शर्म्मा ...	४४१
८	नई दुनिया के समाचार	श्रीयुक्त सत्यदेव	२४९, ३३२
९	निवेदन	सम्पादक	२१२
१०	पुस्तक-परीक्षा	सम्पादक	३७, ७९, १२६, २५५, ३३५, ३७९, ४२४, ४७१, ५१९
११	भिन्न भाषाओं में समानार्थवाची पद्य ...	पण्डित पद्मसिंह शर्म्मा ...	२९४
१२	मनोरञ्जक श्लोक	पण्डित पद्मसिंह शर्म्मा ...	३९
		,, ,, और पण्डित भीमसेन शर्म्मा	१२८, १६८
		,, ,, पण्डित रामजीलाल शर्म्मा और पण्डित गङ्गाप्रसाद आग्निहोत्री	२११
		,, गिरिजाप्रसाद द्विवेदी ...	२९६, ५२०
		,, गणपत जानकीराम दुबे, बी० ए०	३४०
		,, ज्वालादत्त शर्म्मा ...	३८०
		,, किशोरीदत्त ...	४७२
		सम्पादक	८०, ४२४,
१३	मृगनैनी बनने का सुयोग	बाबू भगवानदास, बी० ए० ...	२५३
१४	वार्षिक विज्ञप्ति	सम्पादक	४७३
१५	विज्ञप्ति	,, ...	२५६
१६	विनीत विज्ञप्ति	,, ...	२९६
१७	विविध विषय*	,, १, ४१, ८२, १२९, १६९, २१३, २५८, २९७, ३४१, ३८३, ४२५, ४७५	
१८	शान्ति-सभा के शान्ति-प्रेम का एक उदाहरण	सम्पादक	५०६
१९	शिकागो-विश्वविद्यालय	श्रीयुक्त सत्यदेव	१०३
२०	"सबै दिन नहीं बराबरि जात" ...	सम्पादक	२५०
२१	सभा की सभ्यता	,, ...	१३८
२२	सम्पादकीय योग्यता	,, ...	२३४

* विविध विषय में कुछ नोट और लेखकों के भी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
२३	सम्भूय-समुत्थान	पण्डित व्रजविहारीलाल शुक्ल ...	२२७
२४	स्वदेशी बनाम बायकाट	,, रामजीलाल शर्म्मा ...	२८९
२५	स्त्री-शिक्षा की आलोचना	सम्पादक	२१
२६	हड़ताल	पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०,...	२०६
२७	हिन्दुस्तान का व्यापार	सम्पादक	४११

६—विचित्र विषय।

१	आधुनिक अर्जुन— (अध्यापक लल्लूभाई कल्याणजी शाह) ...	पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०...	६४
२	उत्तरी ध्रुव की यात्रा	सम्पादक	७४
३	एक तरुणी का नीलाम	,, ...	२५२
४	गूँगों और बहरों के स्कूल	,, ...	४२१
५	जादू का खेल	पण्डित परमेश्वरदत्त ...	३६१
६	परचित्त-विज्ञान-विद्या	सम्पादक	६६
७	बिजली की रेलगाड़ी	श्रीयुक्त सत्यदेव	१५०
८	वानस्पत्तिक विद्या में अद्भुत आविष्कार ...	पण्डित गिरिजादत्त वाजपेयी, एम० ए०	१६

७—वैज्ञानिक विषय।

१	आत्मा का अमरत्व	पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०...	४४७
२	किरण-विकिरण	बाबू जगन्नाथप्रसाद वर्म्मा ...	५१२
३	गेहूँ से रबर	पण्डित लक्ष्मण गोविन्द आठले ...	३७८
४	पराग-मिश्रण...	,, गङ्गाशङ्कर पञ्चौली ...	३३१
५	प्रकाश	,, लक्ष्मीधर वाजपेयी ...	१२
६	प्राणिमात्र से मनुष्य की सगोत्रता ...	श्रीयुक्त सत्यदेव ...	१९७
७	बिजली का बाजा	पण्डित सूर्य्यनारायण दीक्षित, एम० ए०	३६५
८	मानव-जाति के उन्नायक सिद्धान्त ...	पण्डित रामजीलाल शर्म्मा ...	१६७
९	रेडियम	,, सरयूनारायण त्रिपाठी, एम० ए०	३१२
१०	सङ्गीत के स्वर	सम्पादक ...	४६६
११	सम-चिकित्सा-चमत्कार	राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०	९५
१२	सम्पत्ति-शास्त्र	सम्पादक ... ५१, १५५, ३१८	

८—स्थल, नगर, जात्यादि-वर्णन।

१	आसाम की नग्न-नागा-जाति ...	सूबेदार सीतारामसिंह ...	७१
२	इँगलिस्तान का बंक	बाबू काशीप्रसाद जायसवाल ...	२०२
३	इँगलैंड की जातीय चित्रशाला ...	,, ,, ,, ...	४९६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
४	खजुराहो	सम्पादक	१९१
५	जनवा झील की सैर	श्रीयुक्त सत्यदेव	४०२
६	नयादी अर्थात् श्वानभक्षी मनुष्य ...	बाबू मुरलीधर, बी० ए० ...	३५५
७	लन्दन का क्यू-नामक शाही बाग़ ...	बाबू काशीप्रसाद जायसवाल ...	२८७
८	शिकागो का रविवार	श्रीयुक्त सत्यदेव	२३८
९	शिकागो में मेरी प्रथम रात्रि	,, ,, ...	५६

६—साहित्य-विषय।

१	अकबर के राजत्व-काल में हिन्दी ...	सम्पादक	४५८
२	उर्दू की नई वर्णमाला	,, ...	११०
३	उर्दू शतक	,, ...	३१
४	एक नई किताब की भूमिका ...	,, ...	३७६
५	कवि और कविता	सम्पादक	२७६
६	ज्योतिष वेदाङ्ग	,, ...	२०,१८६
७	,, ,, ...	पर्य्यालोचक	६०
८	पंजाब में हिन्दी के प्रचार की ज़रूरत ...	बाबू हरदयाल, एम० ए० ...	३६८
९	बुद्ध-देव	पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी ...	३१०
१०	महाराष्ट्रों में हिन्दी की चर्चा ...	पण्डित माधवराम सप्रे, बी० ए०...	२८
११	लखनवी रामायण (प्रतिवाद) ...	पण्डित अर्जुननाथ रैना ...	३३
१२	विद्यारण्य	पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी ...	१६३

विवरण।

नंबर	लेख	संख्या
१	आख्यायिकायें	६
२	ऐतिहासिक विषय	५
३	कविता	४५
४	जीवनचरित	२४
५	फुटकर विषय	२७
६	विचित्र विषय	८
७	वैज्ञानिक विषय	१२
८	स्थल, नगर, जात्यादि-वर्णन ...	९
९	साहित्य-विषय	१२
	कुल लेख-संख्या	१४८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-सूची।

१—स्त्रियों के चित्र।

नम्बर	नाम	पृष्ठ
१	इन्दिरा	१२९
२	कादम्बरी	१
३	काली	३८१
४	ट्रावनकोर की राजपत्नी ...	५०४
५	डचेज़ आव कनाट	४१
६	ध्यानशीला	३४१
७	नागा-नारी, कूकी जाति की ...	७२
८	,, ,, बैठी हुई ...	७४
९	नागा-नारी, लड़के को पीठ पर लिये हुए	७३
१०	ब्रह्म देश की लड़कियाँ ...	७१
११	मनीपुरी लेशावी-स्त्री ...	७३
१२	,, स्त्री, कपास ओटने में लगी हुई ...	७४
१३	मनोरमा	३४१
१४	मालती	२९७
१५	वसन्तसेना	१७०
१६	हिन्दू-विधवा	३०२

२—पुरुषों के चित्र।

नम्बर	नाम	पृष्ठ
१	आधुनिक अर्जुन (अध्यापक लल्लूभाई कल्याण जी शाह)	६४
२	कर्नल आलकट	१५२
३	जनरल बोथा	२६३
४	जान बोम्स	१३४
५	जापान-नरेश मत्सूहीटू ...	२६४
६	जाम रणजीतसिंहजी	१७२
७	ट्रावनकोर-नरेश	५०३
८	डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार ...	१००
९	ड्यूक आव कनाट	४१
१०	धनुर्विद्या-विशारद राना सुल्तानसिंहजी और कुमार शूरसिंहजी ...	२१४
११	नागा, तंगकूल जाति के ...	७५
१२	,, माऊ थाने का	७५
१३	,, बालों की बनावटी पूँछयुक्त ...	७२
१४	,, सस्त्रीक, मकान के सामने खड़ा हुआ	७७
१५	पण्डित अनन्तराम पांड़े ...	३८६
१६	,, कुन्दनलाल	३०१
१७	,, लक्ष्मीशङ्कर मिश्र, एम० ए० ...	२१७
१८	,, विष्णु दिगम्बर पलुसकर ...	३८८
१९	बाबू कालीचरण बन्द्योपाध्याय ...	१७३
२०	बाबू काशीप्रसाद जायसवाल ...	४२
२१	,, परमेश्वरलाल, एम० ए०, बारिस्टर-एट-ला	४७५
२२	,, बालमुकुन्द गुप्त	५०८
२३	,, महेशनारायणसिंह ...	३८६
२४	,, राधाकृष्णदास	२०९
२५	बाल-ब्रह्मचारी शङ्करानन्द शास्त्री ...	४३०
२६	भिनगा-नरेश राजा उदयप्रतापसिंह, सी० एस० आई	५
२७	माननीय बदरुद्दीन तैयबजी ...	१६२
२८	मिस्टर के० जी० गुप्त	४३३
२९	,, केर हार्डी, एम० पी० ...	४७९
३०	,, टी० सी० लिविस, एम० ए० ...	२१
३१	,, सैयदहुसैन बिलग्रामी ...	४४०
३२	मौलाना अलताफ़हुसैन हाली ...	२७७
३३	राइट आनरेब्ल जॉन मार्ले ...	२१३
३४	राज-कुमार फूशिमी	३००
३५	रायबहादुर कविवर राधानाथ राय ...	८६
३६	,, बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, बी० ए०, सी० आई० ई०...	४८०
३७	लाला लाजपतराय	२३८
३८	विष्णु का वामनावतार ...	३५३
३९	वीर गैरीवाल्डी	३४५
४०	श्रीयुक्त गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी, बी० ए०, एल० एल० बी० ...	१७४
४१	श्रीयुक्त महेशचरणसिंह, बी. ए., एम. एस.	११९
४२	,, सत्यदेव	५६
४३	सर जेम्स लटूश	४४९
४४	सर हेनरी कैम्बेल बैनरमैन ...	२१३
४५	स्वामी रामतीर्थ	४२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—मन्दिरों के चित्र ।

खजुराहो के मन्दिर—

नम्बर	नाम	पृष्ठ
१	आदिनाथ का मन्दिर ...	... १९३
२	कंडारिया महादेव का मन्दिर	... १९४
३	चित्रगुप्त का मन्दिर	१९५
४	चौंसठ योगिनी का मन्दिर	... १९१
५	जैन-मन्दिर ...	... १९१
६	मृतङ्ग महादेव और चतुर्भुज के मन्दिर	१९३
७	विश्वनाथ का मन्दिर	१९७

४—इमारतों आदि के चित्र ।

१	नागों के घर का नमूना १	... ७३
२	„ नमूना २	... ७७

लन्दन के क्यू नामक शाहीबाग़ के चित्र—

३	अजायब घर, नम्बर ३	... २८९
४	अल्पोष्ण-वनस्पतिशाला	... २८९
५	ताल-वृक्षालय ...	... २८८
६	पैगोडा ...	... २८९
७	फाटक ...	... २८८
८	सूर्य्यमन्दिर ...	... २८९
९	लन्दन के रायल एक्सचेंज की इमारत	... २०३

शिकागो के चित्र—

१०	अजायब घर ...	... १०८
११	इजुकेशन स्कूल ...	... १०८
१२	कॉब-लैकचर-हाल ...	... १०५
१३	क्लब-घर ...	... १०५
१४	डगलस-उद्यान ...	... २४३
१५	डाकख़ाना ...	... ५७
१६	फ़ील्ड-म्यूज़ियम ...	... २३९
१७	भौतिक-परीक्षा-गृह ...	... १०५
१८	मार्शल फील्ड की दूकान	... ५९
१९	मेसानिक टेम्पल ...	... ५८
२०	रासायनिक प्रयोगशाला	... १०५
२१	रेन्डोल्फ गली ...	... ५८
२२	वनस्पति-शिक्षा-भवन ...	... १०५
२३	वानस्पतिक उद्यान ...	... २४१
२४	विश्वविद्यालय की क़ानून-शिक्षा का स्कूल	१०४
२५	वीर-वर ग्राँट का स्मारक	... २४१
२६	श्वेत-नगर ...	... २४२
२७	सर्व-साधारण-विहार-स्थल	... २४३
२८	सिटी हाल ...	... ५७
२९	स्त्रियों का निवास-भवन	... १०४
३०	हम्बोल्ड-पार्क ...	... २३९
३१	हिचकाक-हाल ...	... १०५

५—फुटकर चित्र ।

१	अद्भुत लैम्प ...	... २१५
२	उर्दू की नई वर्णमाला ...	... ११३
३	कीलाक्षर-वर्णमाला ...	... ३२६
४	डिपलोडोकस ...	... ४२८
५	देव-समाज का बालिका-विद्यालय ...	२५
६	देव-समाज के बालिका-विद्यालय की ब्रह्मचारिणी श्रेणी ...	... ३२
७	देव-समाज के बालिका-विद्यालय के शिक्षक आदि ...	... ४०
८	द्रौपदी-चीरहरण ...	... २५७
९	नौसारस ...	... २६१
१०	प्रार्थना ...	... ३०९
११	माता मरियम की गोद में क्राइस्ट का शव	४७३
१२	मुग्धानलाचार्य्य का पोस्टकार्ड	... ८३
१३	मनीपुरी, राधाकृष्ण का रास	... ७१
१४	यवनानी-लिपि-सम्बधी ५ चित्र	४९०, ४९१, ४९६
१५	राजा डेविड की संगमरमर की मूर्ति	... २१५
१६	रामचन्द्र जी का गङ्गावतरण	... ८२
१७	वज्रच्छेदिका, चीन की	... ३९७
१८	„ जापान की	
१९	„ तिब्बत की	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ
.. ५८
.. १०५
.. २४१
ल १०४
.. २४१
.. २४२
.. २४३
. ५७
. १०४
. २३९
. १०५

. २१५
. ११३
. ३२६
. ४२८
. २५

. ३२
क्षक
४०
२५७
२६१
३०९
व ४७३
८३
७१
१,४९६
२१५
८२

३९७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

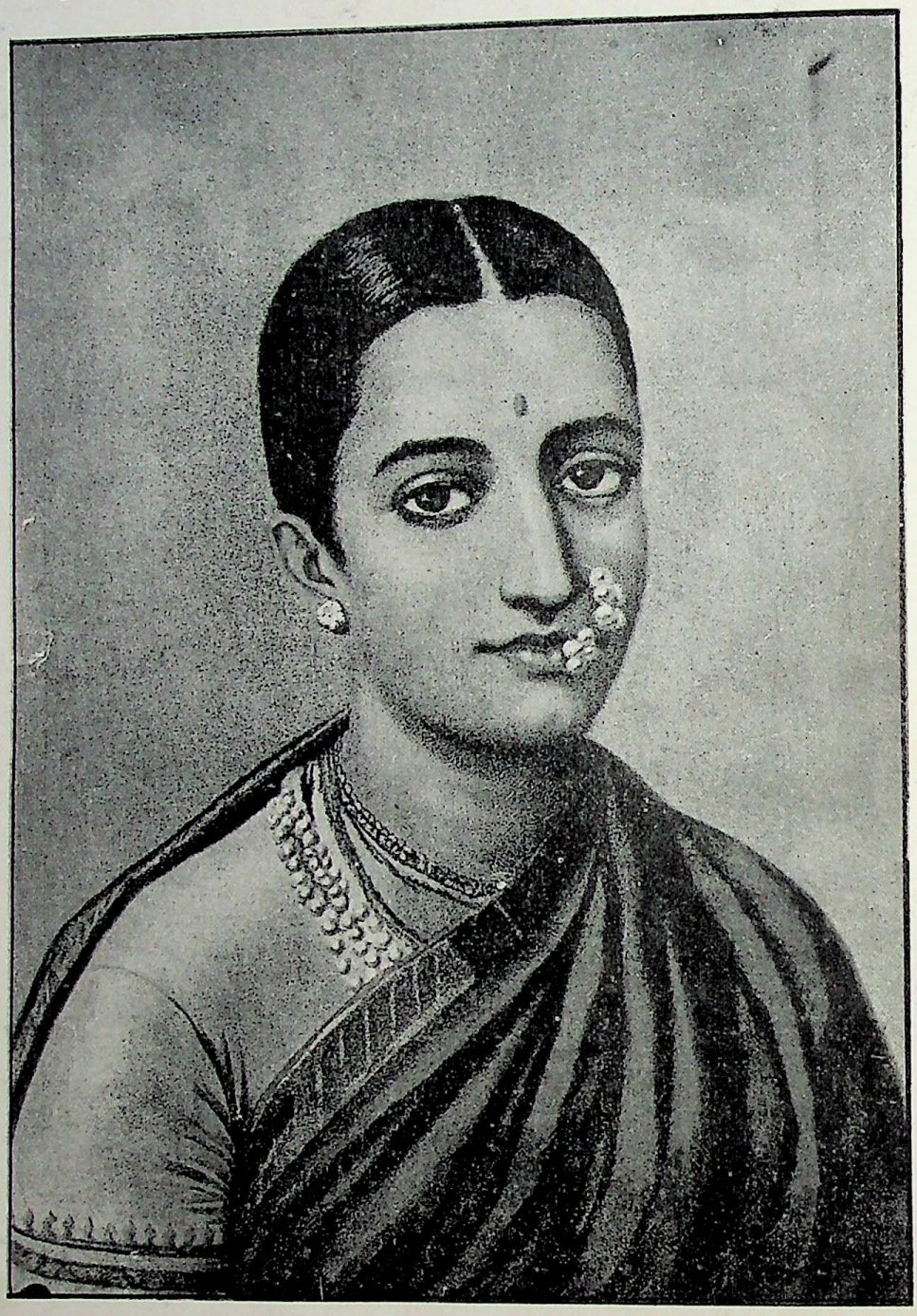

इन्दिरा ।

राजा रविवर्म्मा-अङ्कित ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कादम्बरी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यानशीला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरमा ।

[राजा-रविवर्म्मा-अङ्कित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसन्तसेना ।

[राजा रविवर्म्मा-अङ्कित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालती ।

[राजा-रविवर्म्मा-अङ्कित]

मन्त्री सु-भूरिवसु की यह है कुमारी, श्रीदेवरात-सुत-माधव-प्राणप्यारी ।
हारी विलोक इसकी छवि देवनारी, पूजार्थ आज हरि-मन्दिर में पधारी ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रौपदीचीरहरण ।

[श्रीधरधारित्रित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काली ।

[राजा-रविवर्म्मा-अङ्कित]

शवारूढां महाभीमां घोरदंष्ट्रां हसन्मुखीम् । चतुर्भुजां खड्गमुण्डवराऽभयकरां शिवाम् ॥
मुण्डमालाधरां देवीं ललज्जिह्वां दिगम्बराम् । एवं सञ्चिन्तयेत्कालीं श्मशानालयवासिनीम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

प्रार्थना ।

[मथुरानिवासी श्रीबाबू-गोवर्धनदास-चित्रित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवसमाज-बालिका-विद्यालय की ब्रह्मचारिणी श्रेणी।
(फ़रवरी १९०५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

देवसमाज-बालिका-विद्यालय के बोर्डिंग् हौस की लड़कियां, स्त्रियां, कई शिक्षक, लोकल कमिटी के प्रधान और मंत्री आदि। (१९०४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दवसमाज-बालिका-विद्यालय के बाडिंग् हास की लड़कियां, स्त्रियां, कई शिक्षक, लोकल कमिटी के प्रधान और मंत्री आदि। (१९०४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवसमाज-बालिका-विद्यालय

के

शिक्षक और प्रबन्धकर्तृ-सभा के सभासद ।

१ श्रीमती गन्सादेवी, शिल्प की अवैतनिक अध्यापिका

२ श्रीमती सदाकौर, सिलाई की अवैतनिक अध्यापिका

३ श्रीमती शंकरीदेवी, शिशु-श्रेणी की अध्यापिका

४ श्रीमती लक्ष्मीदेवी, भोजन बनाना सिखाने की अवैतनिक अध्यापिका

५ श्रीमती किशनीदेवी, लोअरप्राइमरी श्रेणी की अध्यापिका

६ श्रीमती कृष्णदेवी, प्रबन्धकारिणी माता और मुख्याध्यापिका

७ सरदार गुरमुखसिंह, बी० ए०, वकील, स्थानीय प्रबन्धकर्तृसभा के प्रधान और अँगरेज़ी के अवैतनिक शिक्षक

८ पण्डित हरनारायण अग्निहोत्री, प्रबन्धकर्त्ता

९ डाक्टर पं० परशुराम प्रबन्धकर्तृ-सभा के मंत्री

१० सरदार अतरसिंह, तहसीलदार (महकमा नहर) प्रबन्धकर्तृ-सभा के सभासद

११ श्रीमान् बग्गासिंह, भूगोल और गणित के अध्यापक

१२ श्रीमान् गोबर्धनदास, बी० ए०. वकील प्रबन्धकर्तृसभा के सभासद और कोशाध्यक्ष

१३ पण्डित रलाराम, हिन्दी, इतिहास, गाना और बाजा सिखाने के अध्यापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

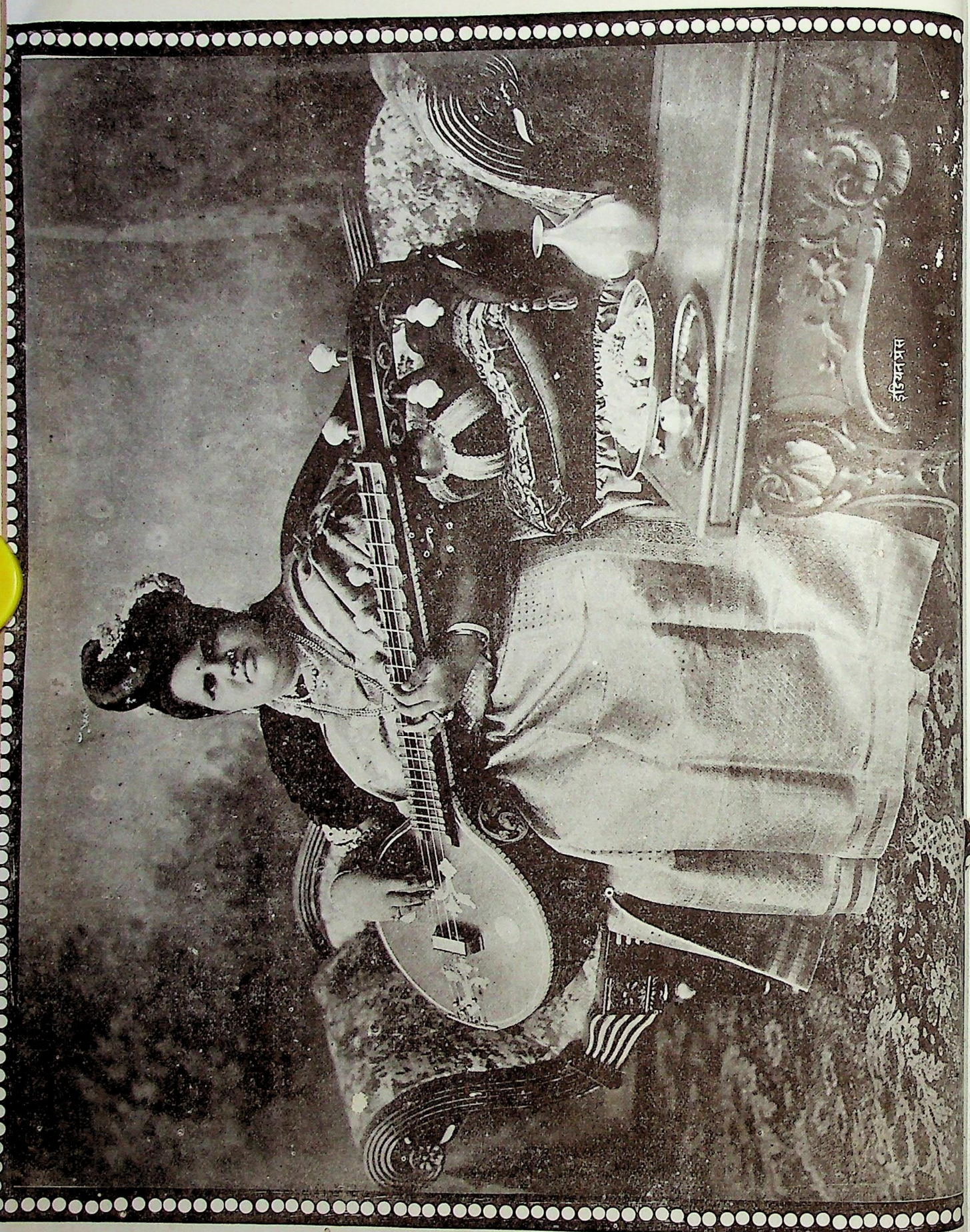

चित्रकार-नरेश की राजपत्नी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

केवट—जो प्रभु अवसि पार गा चहहू। तौ पद-पदुम पखारन कहहू॥
रामचन्द्र—बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलम्ब उतारहु पारू॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवट—जो प्रभु अवासि पार गा चहहू । तौ पद-पदुम पखारन कहहू ॥
रामचन्द्र—बेगि आनु जल पाय पखारू । होत बिलम्ब उतारहु पारू ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीविष्णु का वामनावतार।
[राजा-रविवर्म्मा-अङ्कित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

महात्मा ईसा के शव की रक्षा में ईसा की माता और देवदूत ।

चार रंगों में छापा गया ।]

[इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

INDIAN PRESS, ALLAHABAD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

INDIAN PRESS, ALLAHABAD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराजा ट्रावनकोर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

INDIAN PRESS, ALLAHABAD.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमान् रणजीतसिंहजी साहब जामनगराधिपति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती ।

भिनगानरेश श्रीराजा उदयप्रतापसिंह साहब, सी० एस० आई० ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान के वर्तमान महाराज मत्सूहोटू ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

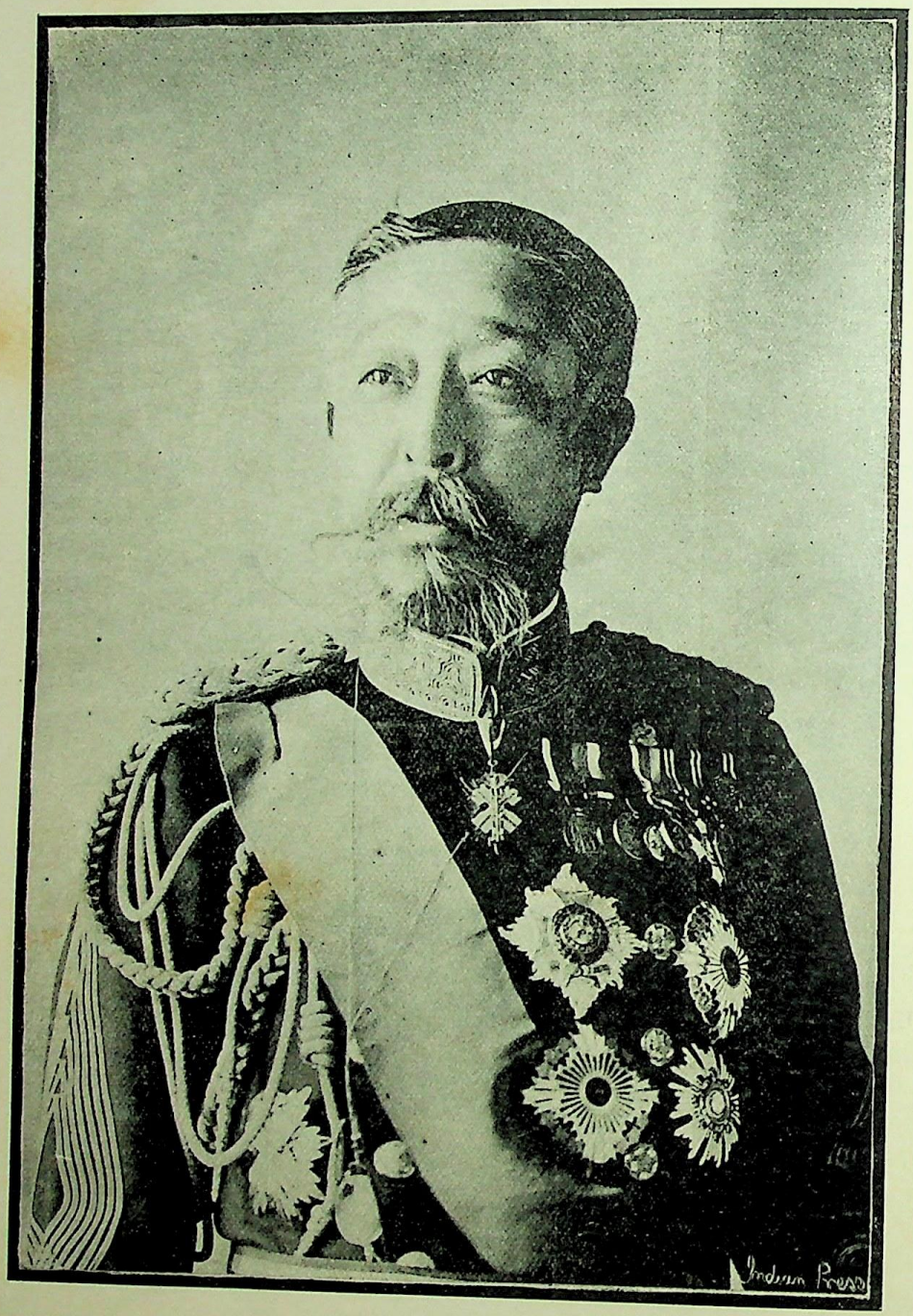

राजकुमार फूशिमी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

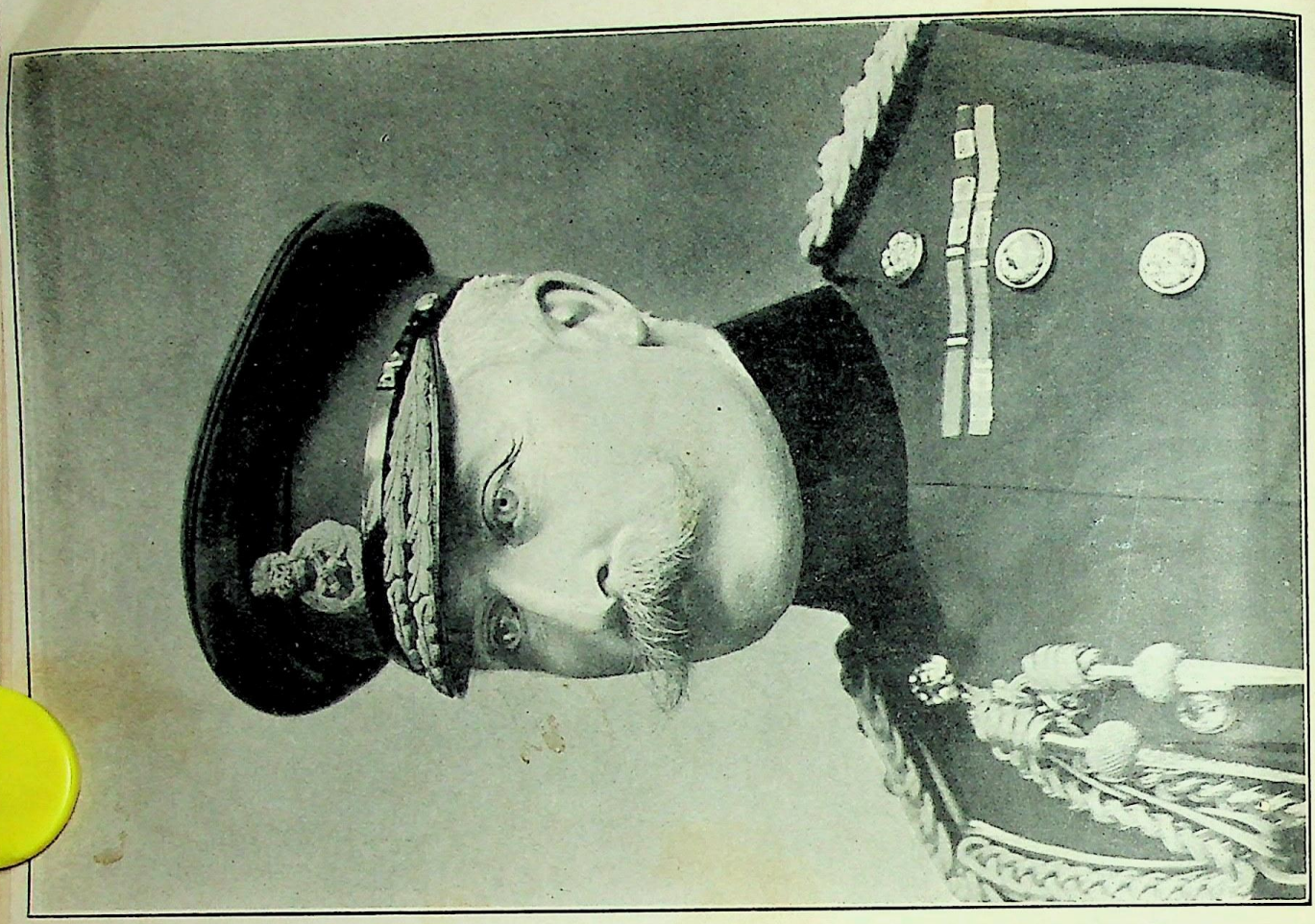

डूक आफ़ कनाट ।

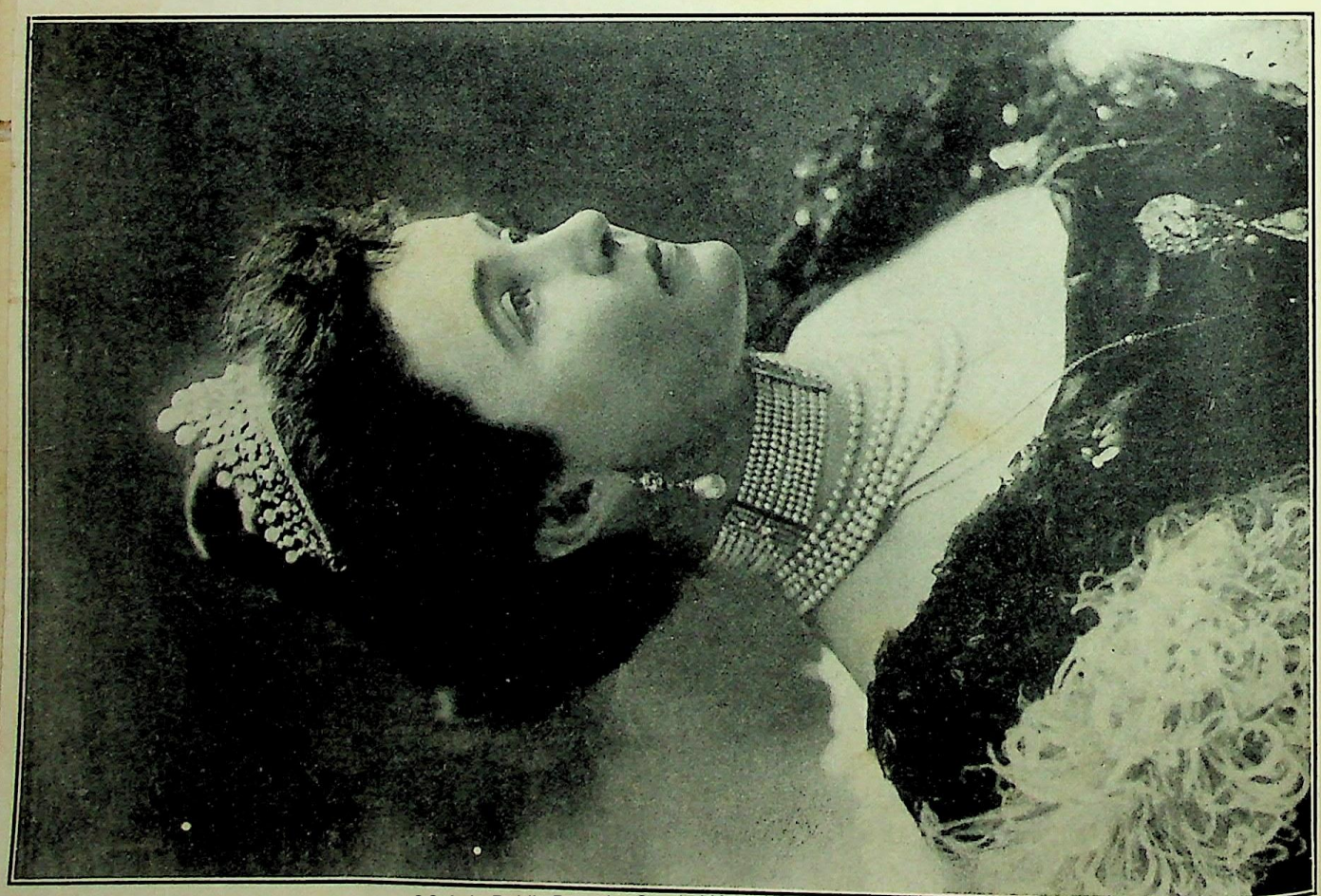

डचेज़ आफ़ कनाट ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

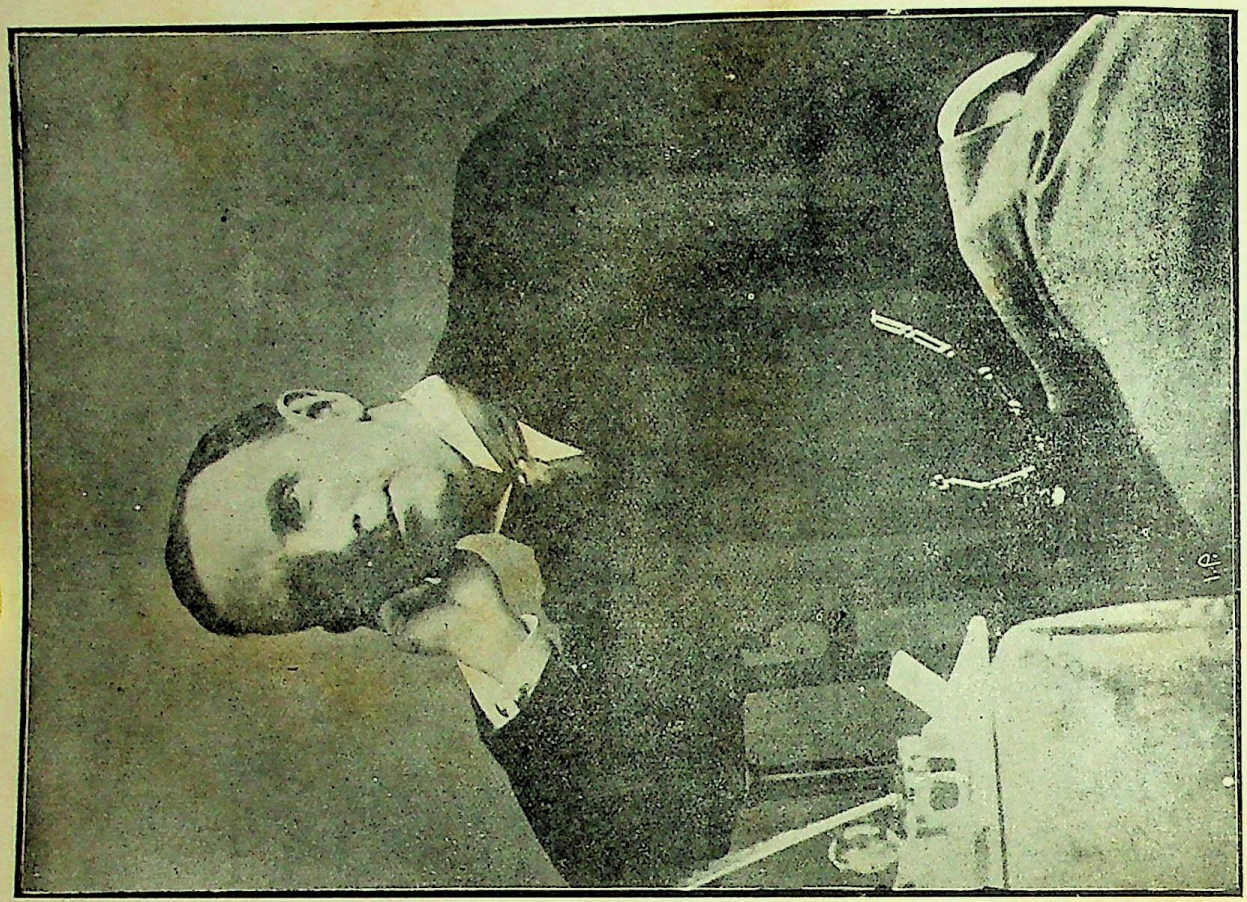

भारतवर्ष के सचिव
राइट आनरेब्ल जॉन मार्ले ।

इँगलैंड के प्रधान सचिव
सर हेनरी कैम्बेल बैनरमैन ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनरल बोथा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

वीर गैरीवाल्डी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत-हितैषी लाला लाजपतराय ।

INDIAN PRESS, ALLAHABAD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

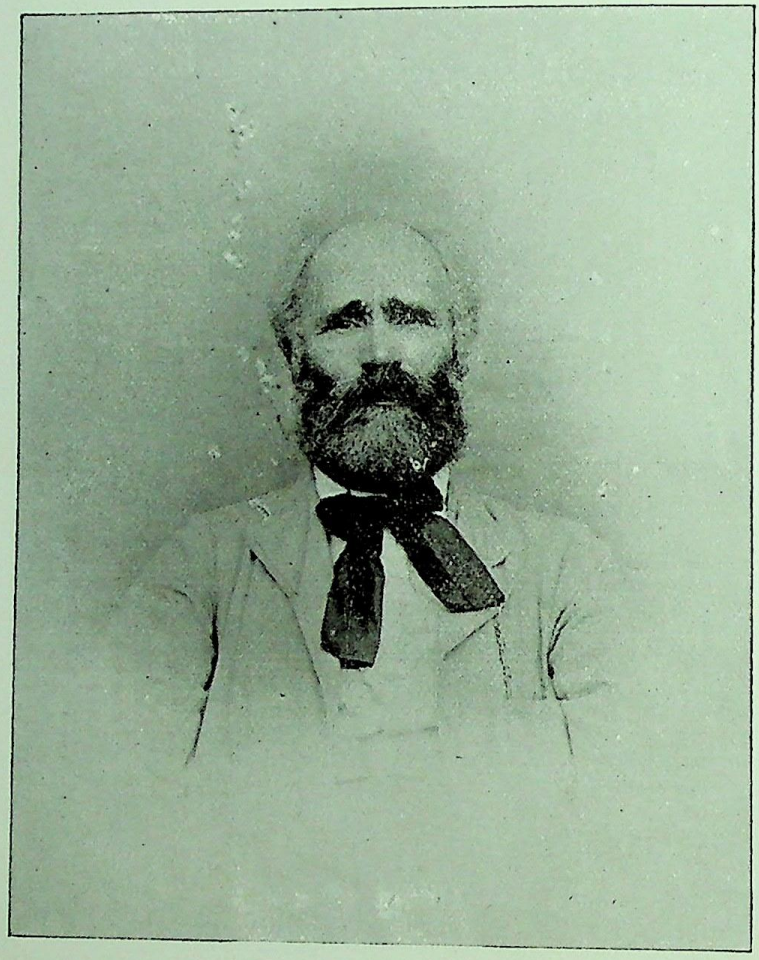

मिस्टर केर हार्डी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

INDIAN PRESS, ALLAHABAD.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

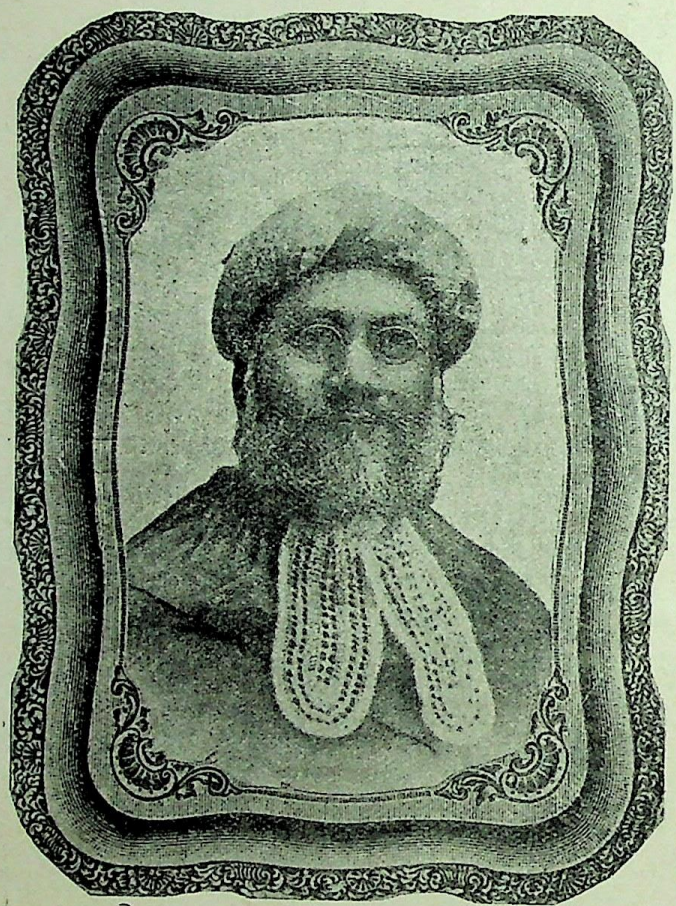

माननीय बदरुद्दीन तैयब जी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर जेम्स लटूश ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

मिस्टर सैयदहुसैन बिलग्रामी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

INDIAN PRESS, ALLAHABAD.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिस्टर कृष्णगोविन्द (के० जी०) गुप्त ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी रामतीर्थ ।

Photo by G. R. Works, Kasganj and Agra.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोकवासी मिस्टर जॉन बीम्स।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीयुक्त टी० सी० लिविस साहब, एम० ए०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

गायनाचार्य्य पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुसकर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

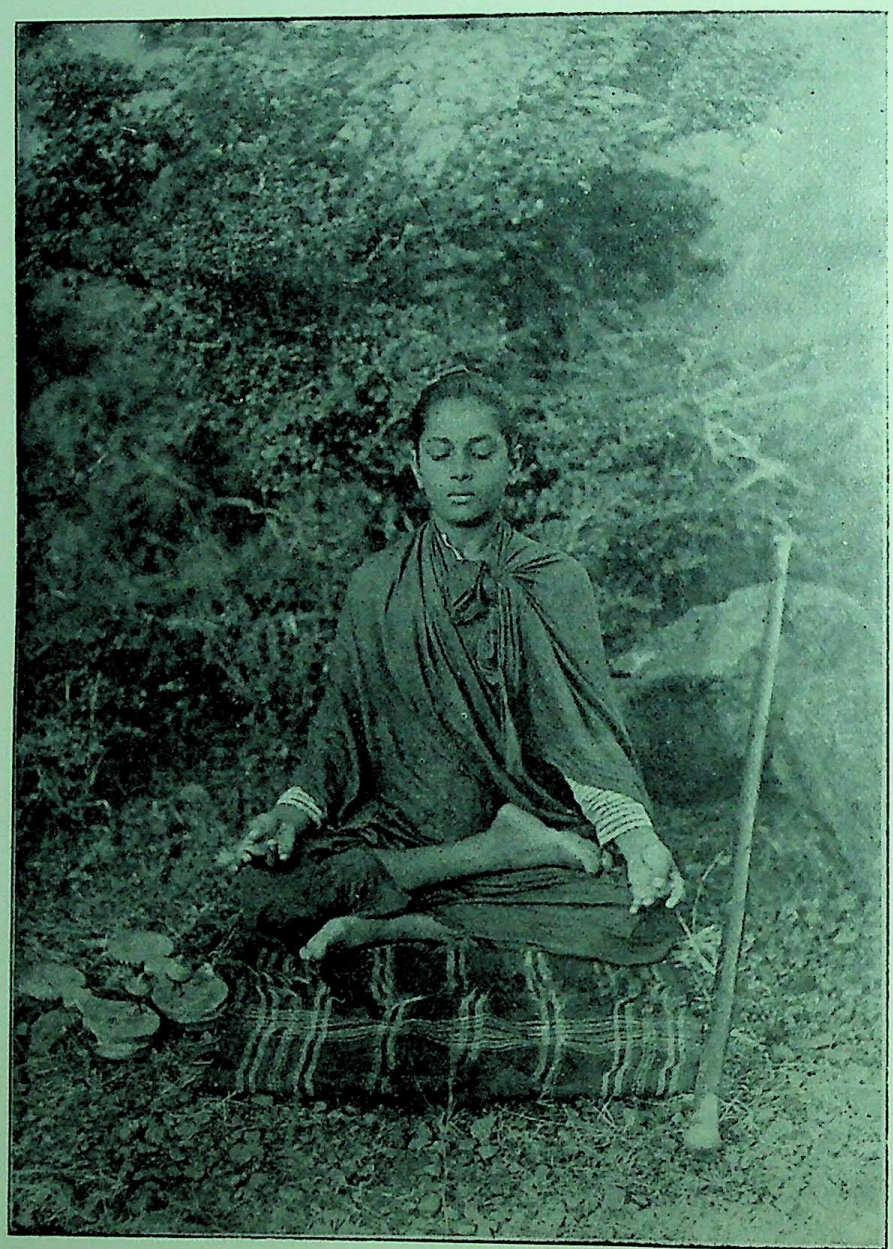

बाल-ब्रह्मचारी शङ्करानन्द शास्त्री ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

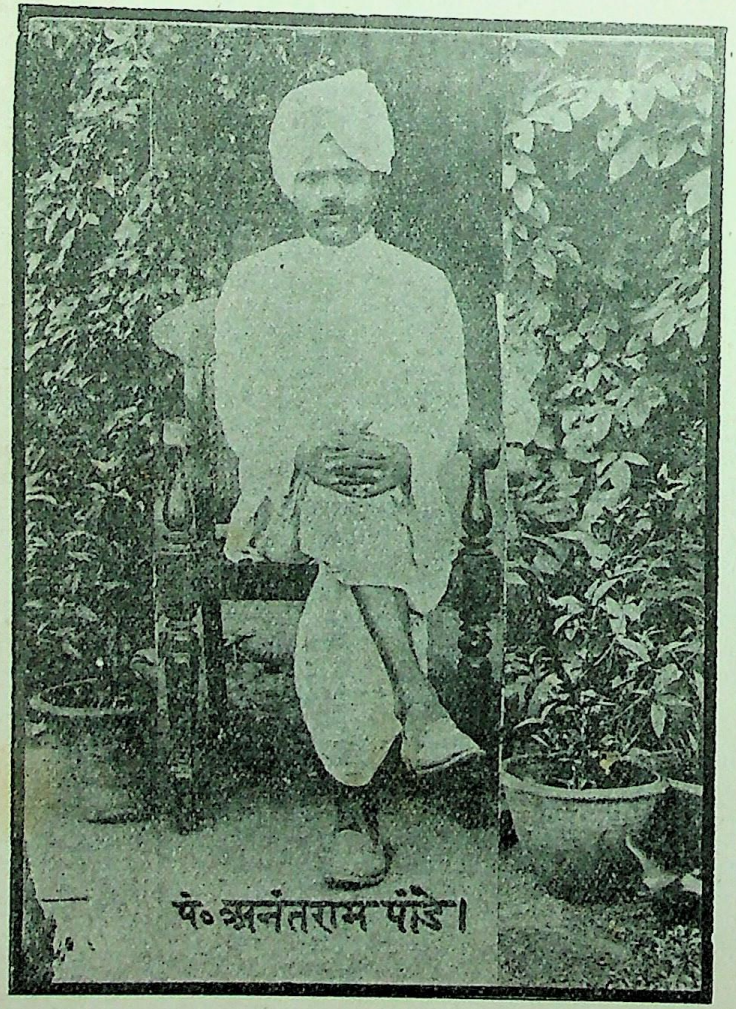

पं० अनंतराम पांडे।

बाबू महेशनारायण।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

कर्नल आलकट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

पण्डित कुन्दनलाल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

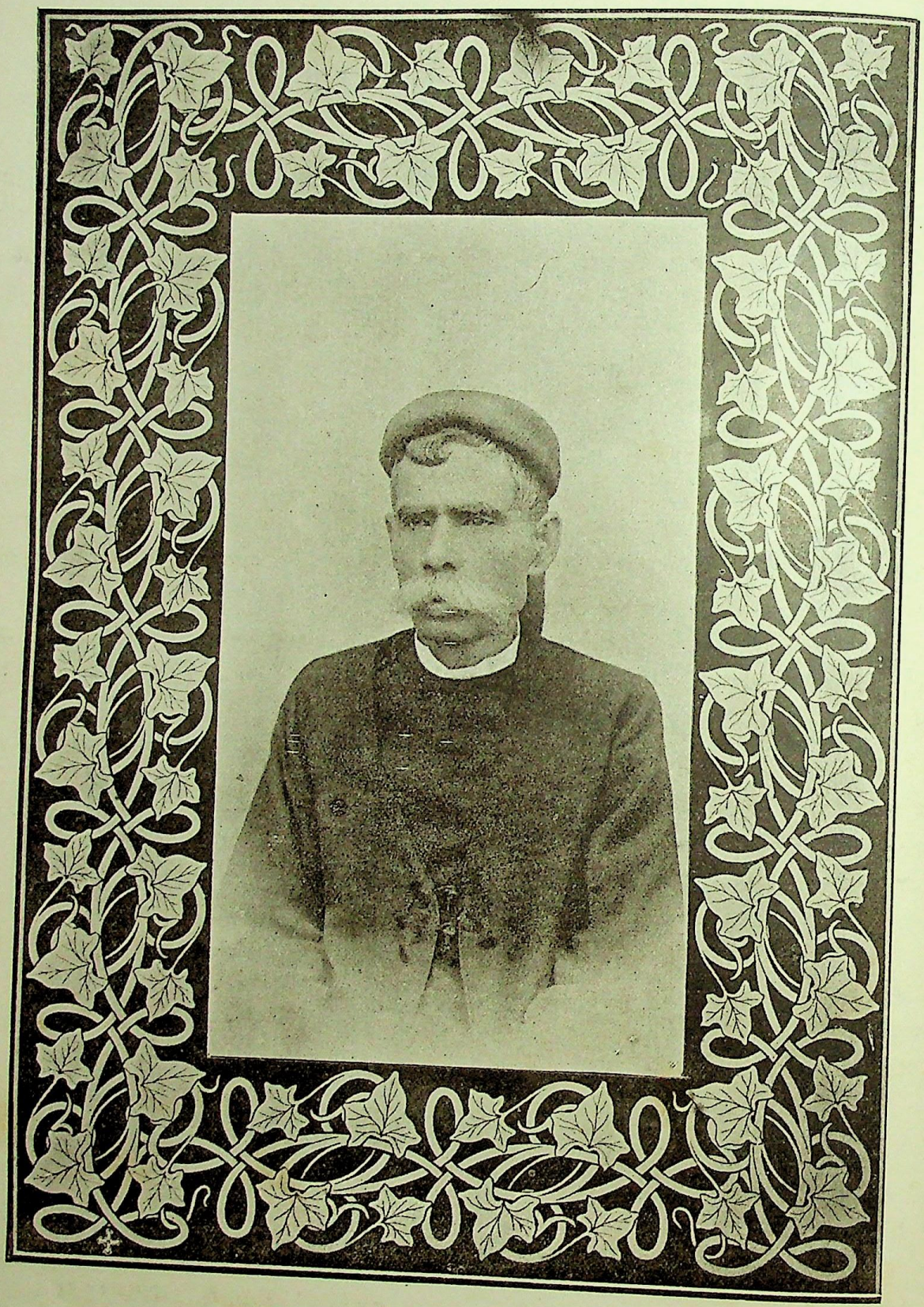

रायबहादुर कविवर, श्रीराधानाथ राय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

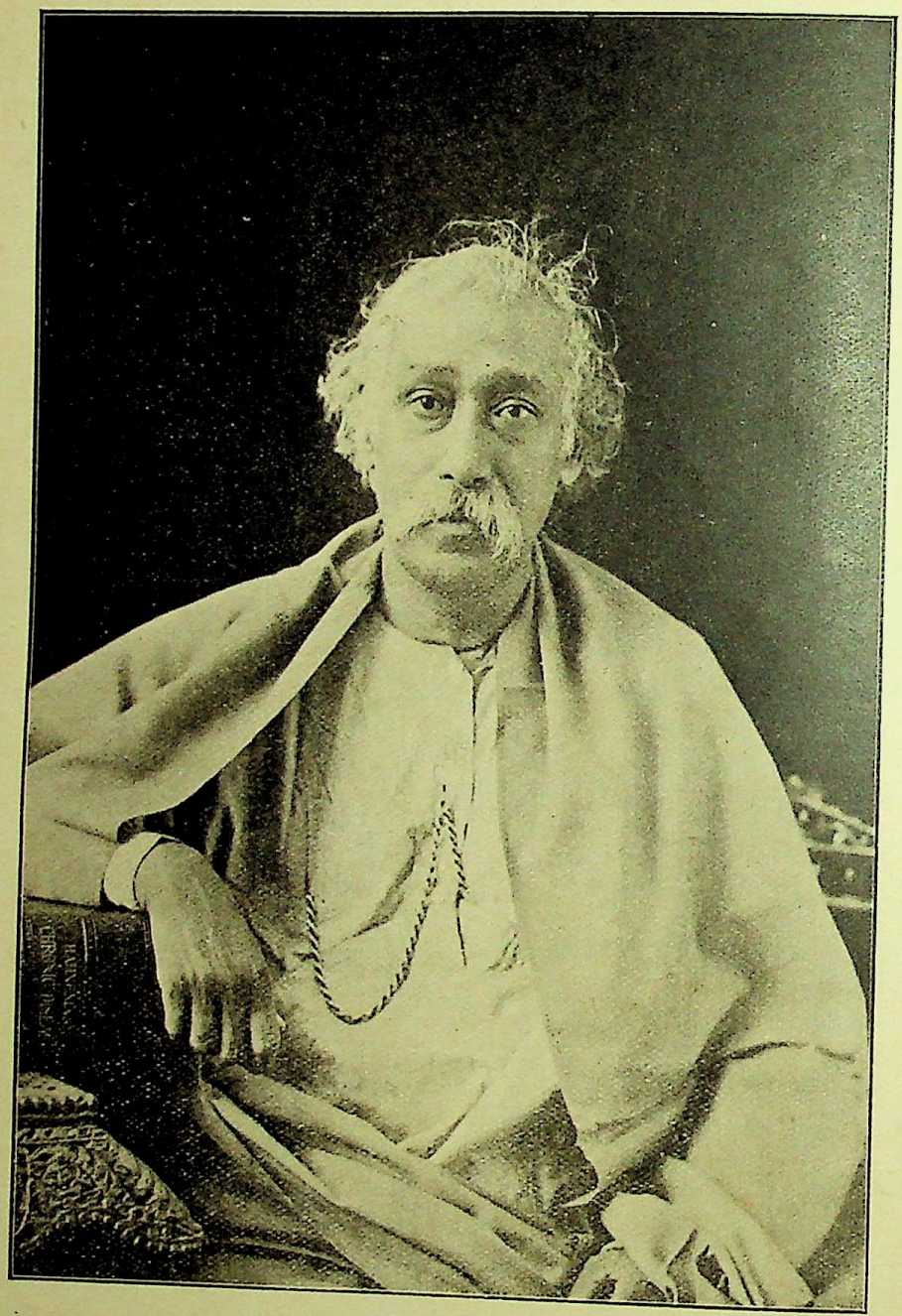

महेन्द्रोलाल सरकार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रायबहादुर बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय,
बी० ए०, सी० आई० ई०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

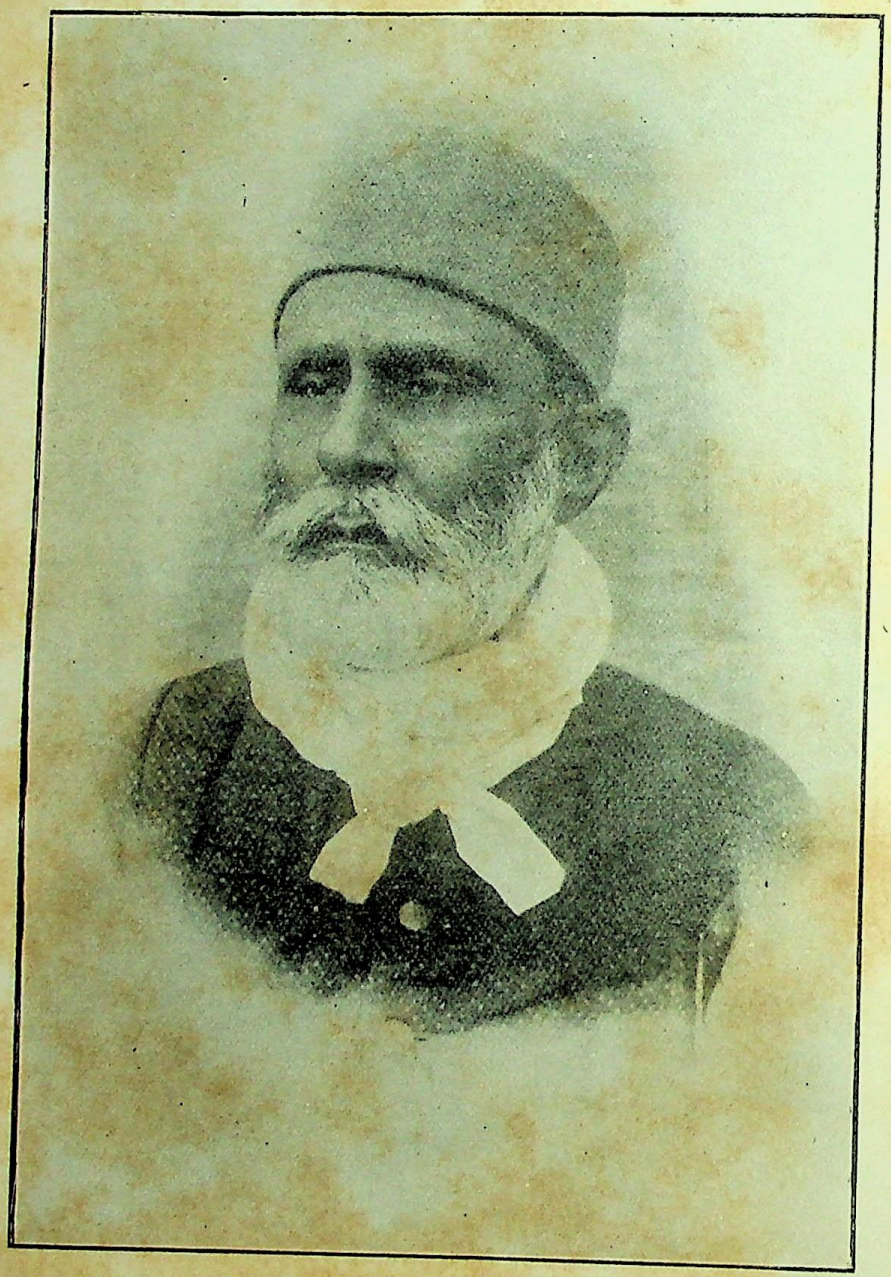

शम्स-उल्-उलमा मौलाना अल्ताफ़हुसैन (हाली)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

पण्डित लक्ष्मीशङ्कर मिश्र, एम० ए० ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

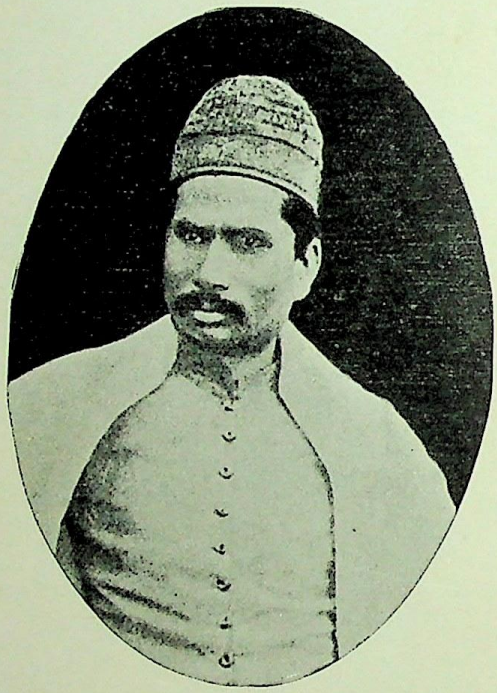

बाबू राधाकृष्णदास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

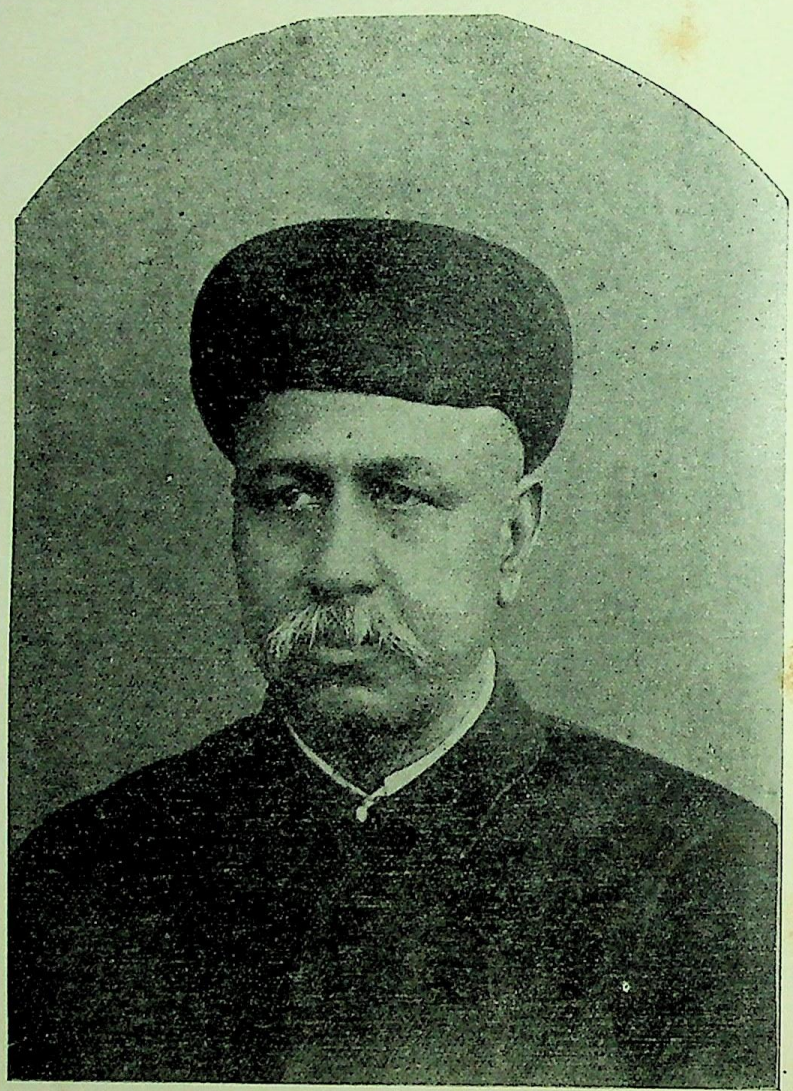

श्रीयुक्त गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी,
बी० ए०, एल० एल० बी०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबू कालीचरण वन्द्योपाध्याय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

श्रीयुक्त सत्यदेव ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

बाबू काशीप्रसाद जायसवाल ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

अमेरिका में लब्धप्रतिष्ठ,

श्रीयुक्त महेशचरणसिंह,

बी० ए०, एम० एस० (मास्टर आव सायन्स)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

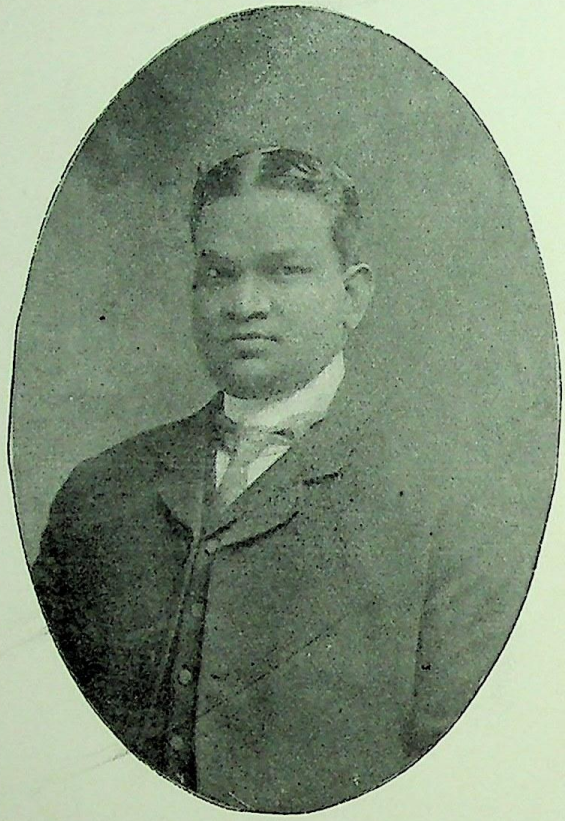

श्रीयुक्त बाबू परमेश्वरलाल ।

INDIAN PRESS, ALLAHABAD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

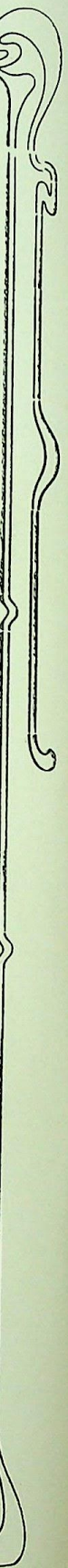

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

बाबू बालमुकुन्द गुप्त ।

INDIAN PRESS, ALLAHABAD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक अर्जुन ।

अध्यापक लल्लूभाई कल्याणजी शाह ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनुर्विद्या-विशारद राना सुलतानसिंहजी और उनके आत्मज कुमार शूरसिंहजी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

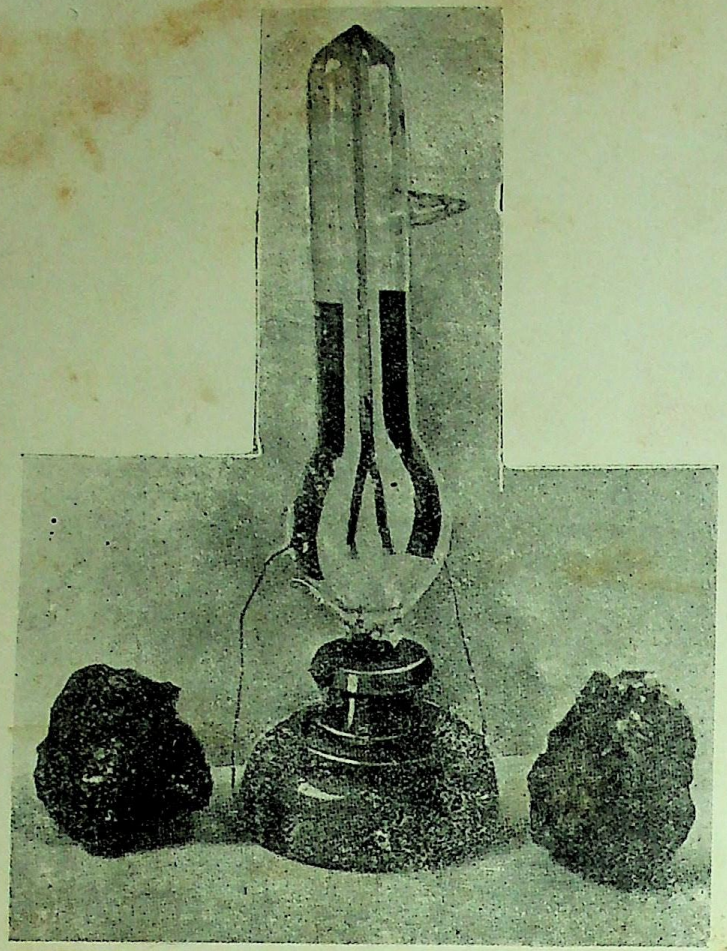

अद्भुत लैम्प ।

राजा डेविड को सँगमरमर को मूर्ति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं० सर
आगत सं० ८(१)
तिथि०
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगडी.

सरस्वती।

भाग ८] जनवरी, १९०७ [संख्या १

विविध विषय।

कुछ दिन हुए पञ्जाब के डाकघरों में काम करने वालों को गवर्नमेंट ने गुरुमुखी सीखने के लिए विवश किया था। इसकी ज़रूरत भी थी। बिना गुरुमुखी पढ़े गुरुमुखी पत्र इत्यादि वे लोग कैसे पढ़ सकते? इस पर मुसल्मानों ने बहुत अल्लाह तौबा किया था। पर व्यर्थ। अब पञ्जाब के जंगल-महकमे में जितने एक्स्ट्रा असिस्टंट कनसरवेटर हैं उनको नागरी लिखने और पढ़ने के लिए गवर्नमेंट ने विवश किया है। उर्दू की विलायत, पञ्जाब, में देवनागरी का आदर होते देख किस विचारशील पुरुष को हर्ष न होगा? पर मुसल्मानों ने गवर्नमेंट के इस हुक्म का भी विरोध आरम्भ किया है। जो लोग अपनी मातृभाषा उर्दू, और उसकी दादी फ़ारसी, का ज्ञान प्राप्त करने में भी पीछे पड़े हुए हैं वे और भाषाओं का नाम सुनकर क्यों न घबरायँ?

* * *

रूस के प्रसिद्ध ग्रन्थकार कौंट तुलस्तुयी (टाल्सटाय) के नाम से हमारे अनेक पाठक परिचित होंगे। उनका चरित सरस्वती में निकल चुका है। तुलस्तुयी का बड़ा नाम है। सारी दुनिया उनको सम्मान और प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखती है। उनकी बराबर निस्पृह मनुष्य इस ज़माने में शायद ही और कोई हों। उनके ग्रन्थों का सारे योरप की भाषाओं में अनुवाद हो गया है। उनसे लाखों रुपये की आमदनी होती है। पर तुलस्तुयी रुपये पैसे को हाथ से छूते तक नहीं। वे अपनी पुस्तकें प्रकाशकों को मुफ्त दिये डालते थे; पर उनकी पत्नी ने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया। तब उनका "कापी राइट" (स्वत्व) कौंट ने अपनी पत्नी ही को दे डाला। अब पुस्तकों की बिक्री से जो रुपया आता है वह अच्छे अच्छे कामों में लगाया जाता है। कौंट साहब मास्को के पास देहात में जहां उनकी ज़मींदारी है अपने कुटुम्ब सहित रहते हैं। अभी, कुछ दिन हुए, एक महाशय उनसे मिलने गये थे। वे कौंट के सादेपन को देखकर चकित हो गये। कौंट देहाती किसानों के ऐसे कपड़े

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहनते हैं और ऐसा सादा भोजन करते हैं कि उसे देख कर लोग आश्चर्य में डूब जाते हैं। मांस और मद्य को वे छूते तक नहीं। यहां तक कि वे अण्डे भी नहीं खाते। सुबह उठते हैं और खेतों में घूमा करते हैं। किसान उनको देख कर बहुत ख़ुश होते हैं। सबसे वे हँस कर बातचीत करते हैं। यद्यपि वे रहते अपनी ज़मींदारी ही में हैं, पर उन्होंने उसे अपने लड़कों के नाम लिख दिया है। दस्तावेज़ में आपने यह शर्त रक्खी है कि लड़के उन्हें अपने मकान में बिना किराये के रहने दें! आप कभी एक पैसा भी अपने पास नहीं रखते। वे कहते हैं कि रुपये पैसे का मेरे लिए कोई उपयोग नहीं। यदि राह में कोई ग़रीब आदमी मिल जाता है तो उसे घर लाकर अपनी पत्नी के सिपुर्द कर देते हैं और कह देते हैं कि यह हमारा भाई है, इसके साथ भाई का ऐसा बर्ताव करो। तुलस्तुयी को बादशाहों तक की कोई परवा नहीं। वे उनका ज़रा भी मुलाहज़ा नहीं करते। पर बादशाह लोग उनका आदर करते हैं। रूस-जापान-युद्ध के समय तुलस्तुयी ने ज़ार को ख़ूब फटकारा था। उनके उपन्यास आदर की चीज़ हैं। वे बड़े ही मनोरञ्जक और शिक्षाजनक हैं। उनका अँगरेज़ी में अनुवाद हो गया है। अतएव हम अपने अंगरेज़ीदाँ पाठकों से उनको पढ़ने की सिफ़ारिश करते हैं।

* * *

सितम्बर ०६ में, फ़्रांस की राजधानी पेरिस से, अनेक ग़ुब्बारे उड़ाये गये। पवन-नौकाओं और ग़ुब्बारों में बैठकर आकाश में उड्डान करने वालों को उत्तेजित करने के लिए योरप और अमेरिका में कितनी ही सभायें हैं। इन्हीं सभाओं ने ग़ुब्बारे-बाज़ों को पेरिस में आमन्त्रण दिया था। हज़ारों रुपये के कितने ही इनाम नियत किये गये थे। पहला इनाम कोई सात आठ हज़ार रुपये का था और सबसे ज़ियादह दूर तक उड़नेवाले ग़ुब्बारे के लिए था। सब मिलाकर १६ ग़ुब्बारे उड़े। ३ अँगरेज़ों के, ३ फ़्रांस वालों के, ३ जर्मन वालों के, ३ स्पेन वालों के, २ अमेरिका वालों के, १ इटली वालों का और १ बेलजियम वालों का। इनमें से अमेरिका के लफ्टिनेंट लहम ने पहली बाज़ी मारी। सितम्बर ३० को दिनके ४ बजे वे पेरिस से अपने ग़ुब्बारे में उड़े और "इँगलिश-चैनल" नाम की खाड़ी पार करके, ४८५ मील दूर, इँगलैंड के ह्विट बी नामक नगर के, पास १ आक्टोबर को, कोई ३ बजे दोपहर बाद ज़मीन पर उतरे। २३ घंटे वे बराबर आकाश में उड़तेही रहे। फ़ी घंटे २१ मील के हिसाब से उनका ग़ुब्बारा उड़ा। पहले वे ३००० फ़ीट ऊंचे गये। कुछ देर में हवा कम मिलने लगी, इससे वे १५०० फ़ीट नीचे उतर आये। इँगलिश-चैनल को उन्होंने पानी के बहुत पास उड़ कर पार किया। १ आक्टोबर को वे १०,००० फ़ीट तक ऊंचे उठे! अमेरिका वाले आपकी इस कामयाबी पर बहुत ख़ुश हुए हैं। १९०७ में वे लोग अब अपने देश में किसी जगह सब ग़ुब्बारे-बाज़ों को बुलाकर उड्डान करावेंगे। बड़े बड़े इनाम देने के लिए वे अभी से रुपया इकट्ठा करने लगे हैं।

* * *

मनुष्य का मस्तिष्क सारे ज्ञान-तन्तुओं का ख़ज़ाना है। मस्तक की बनावट और उसके भीतरी भागों की जांच से अनेक अद्भुत शक्तियों का पता लगता है। हर आदमी के मस्तक की बनावट में उसकी शक्तियों के अनुसार कुछ न कुछ विशेषता ज़रूर होती है। आजकल वैज्ञानिकों को मस्तिष्क-परीक्षा के लिए खोपड़ियों की बहुत ज़रूरत है। पागल और घर-द्वार-हीन भिखारियों की खोपड़ियां तोड़ कर उनकी परीक्षा करते करते वैज्ञानिक लोग उकता गये हैं। अब उनमें उन्हें कोई अज्ञात तत्त्व जानने को नहीं रहे। इस कारण अब वे ख़ूब पढ़े लिखे, प्रसिद्ध प्रसिद्ध पण्डित, वक्ता, तत्त्वज्ञानी, विज्ञान-विशारद और राजनीतिज्ञ लोगों की खोपड़ियों की जाँच करना चाहते हैं। उनकी अपील सुनकर कुछ उदार लोगों ने अपनी खोपड़ियां, मरने के पहिले ही, बेच कर, रुपये वसूल करना शुरू कर दिया है। अमेरिका के डाक्टर फाउलर ने एक दफ़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वक्तृता देते समय अपने श्रोताओं से खोपड़ियों की भिक्षा माँगी। उनकी याच्ञा सफल हुई है। कई विद्वानों ने अपनी खोपड़ियां देने का वादा किया है। अध्यापक स्मिथ ने तो अमेरिका के एक विश्व-विद्यालय को अपनी खोपड़ी दी जाने की बात अपने वसीयत-नामे में लिख तक दी है। डाटस नाम के एक अँग्रेज़-पण्डित ने अपनी खोपड़ी ३०,००० रुपये में पहले ही से बेंच दी है—दे नहीं डाली! इसकी स्मरण-शक्ति बहुत विलक्षण है। जिन बातों को हुए दस दस-पन्द्रह पन्द्रह वर्ष हो चुके; उनकी तारीख़ वह फ़ौरन ही बता देता है। जो लोग अनेक विषयों में विज्ञता रखते हैं उनका सिर बहुत बड़ा होता है। ग्लैडस्टन साहब का सिर ऐसाही था। पर न्यूटन और बाइरन आदि की तरह के विद्वानों का सिर छोटा होता है। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि ये लोग केवल एकही विषय के पण्डित थे।

* * *

इटली में सिम्प्लन नाम की १२ मील लम्बी एक पहाड़ी घाटी है। घाटी बड़ी विकट है। रेल के लिए उसे फोड़ कर भीतरही भीतर एक बोगदा बनाया गया है। बड़ी बड़ी कठिनाइयों को झेल कर वह तैयार हुआ है। पहाड़ के नीचेही नीचे पत्थर काट कर वह निकाला गया है। इससे बड़ा भूगर्भ-मार्ग संसार में दूसरा नहीं। इसे बनाते समय खौलते हुए पानी के चश्मे भीतर निकले। बड़ी मुशकिल से वे रुके। एक नदी भी भीतर मिली। उसमें से हो कर रेल चलने के लायक़ मार्ग बनाने में १५,००० रुपये फ़ी गज़ के हिसाब से ख़र्च पड़ा। ३० एप्रिल ०६ से अब इससे होकर धड़ाधड़ रेल आने जाने लगी है। फ़्रांस और इँगलैंड के बीच में जो "इँगलिश-चैनल" नाम की खाड़ी है, अब उसके भीतर से रेल की सड़क निकालने का विचार हो रहा है। परीक्षा के तौर पर एक मील तक समुद्र के भीतर काम हुआ भी है। इससे इस काम में कामयाबी होने की पूरी उम्मैद है। यह समुद्र-गर्भ-मार्ग ३० मील लम्बा होगा। ऊपर समुद्र भरा रहेगा, नीचे रेल दौड़ा करेगी! इसके लिए दो बोगदे बराबर बराबर बनेंगे। हर एक का भीतरी व्यास १८ फ़ीट होगा और समुद्र के नीचे अधिक से अधिक १५० फ़ीट की गहराई पर बोगदे बनेंगे। उधर अमेरिका वाले पनामा नाम के डमरु-मध्य को काट कर आटलांटिक और पैसिफ़िक समुद्र को एक किये डालते हैं। उद्योग और परिश्रम से क्या नहीं हो सकता?

* * *

पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्माजी ने सरस्वती पर एक कविता की है। उसे हम अन्यत्र प्रकाशित करते हैं। जैसा हम दिसम्बर की संख्या में लिख चुके हैं, हम सरस्वती की स्तुति या प्रशंसा को प्रकाशित करना उचित नहीं समझते। यद्यपि अन्य भाषाओं के बड़े बड़े प्रतिष्ठित-पत्रों और पत्रिकाओं के सम्पादक अपने काम की प्रशंसा, औरों की सम्मति के रूप में, प्रकाशित करना अनुचित नहीं समझते, तथापि इस तरहकी प्रशंसा को हम आत्मश्लाघाही समझते हैं। यही समझकर हमने पण्डित नाथूरामजी से इस कविता को वापस लेने के लिए प्रार्थना की। परन्तु आप लिखते हैं—"सरस्वती की महावीरता में आपकी कुछ भी प्रशंसा नहीं है। अतएव वह छपनीही चाहिए। यदि आप को अकारणही आत्मश्लाघा दिखाई देती है तो फिर रोकताही कौन है। अपनी इच्छानुसार काट छांट कर दीजिए"। पण्डित जी की सरस्वती पर विशेष कृपा है। अतएव आपके प्रणयानुरोध के वशवर्ती होकर हम इस कविता को प्रकाशित करते हैं। परन्तु हम सरस्वती के सारे उदाराशय प्रेमियों से विनीत-भाव से प्रार्थना है कि यदि उन्हें उसके विषय में कुछ कहने की इच्छा हुआ करे तो उसे वे अन्यत्र प्रकाशित कराने की कृपा किया करें। हम उनकी एतादृशी कृपा के लिए हृदय से कृतज्ञ होंगे। ऐसा करने से भी बात वही होगी। पर हम उनकी सम्मति-प्रकाशन के दोष से बच जायँगे।

* * *

हिसाब लगाने से जाना गया है कि इस समय इस देश में २७,००० मील रेलवे है। उसके बनाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में, १९०० ईसवी तक, कोई ३५६ करोड़ रुपया लगा था। पर रेलों के बनाने में घाटा है, नफ़ा नहीं। इतना रुपया ख़र्च करके भी रुपया लगाने वालों को, १९०० ई० तक, ४० करोड़ का घाटा था। इस तरफ़ चार पाँच वर्ष में कुछ फ़ायदा हुआ है। इससे, मार्च १९०५ में, यह घाटा घटकर ३२ करोड़ रह गया। इस समय आबपाशी के लिए जो नहर हैं उनकी लम्बाई ३५,०२६ मील है। पर उनके बनाने में आज तक ख़र्च सिर्फ़ ३६ करोड़ रुपये के क़रीब हुआ है। नहरों से गवर्नमेंट को बहुत फ़ायदा है। १९०३-०४ ईसवी में सब ख़र्च देकर कोई डेढ़ करोड़ के करीब गवर्नमेंट को फ़ायदा हुआ। इससे साबित है कि नहरों का बनाना गवर्नमेंट को अधिक लाभदायक है। उससे प्रजा को भी लाभ है; क्योंकि पानी न बरसने पर नहरों से सिँचाई हो सकती है।

* * *

पण्डित सहदेवप्रसादजी ने कानपुर से सुधा-सागर नामक एक मासिकपत्र, जुलाई १९०६ से, निकालना शुरू किया है। पण्डितजी बहुत अच्छे वेदान्ती और वैद्य हैं। अतएव और लेखों के मुक़ाबले में वेदान्त और शरीरारोग्य-सम्बन्धी लेख आपके पत्र में विशेष उत्तम निकलते हैं। हिन्दी के नामी कवि और लेखक राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल० के लेख इसमें अकसर रहते हैं। विविध विषयों पर नोट्स भी इस पत्र में रहते हैं। वार्षिक मूल्य "विशेष धनवानों" से ४ रुपये, "धनवानों" से २ रु० और "साधारण जनों" से १ रु० है। पण्डितजी ये तीन निर्ख न रख कर एक ही रक्खें तो अच्छा।

* * *

जौनपुर से पण्डित कालीशङ्कर व्यास पीयूष-प्रवाह नाम का एक सचित्र मासिकपत्र, गत विजयादशमी, से निकालने लगे हैं। मूल्य १॥) वार्षिक है। पहले अङ्क में पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का हाफ़टोन चित्र है। पत्र का रूप, रंग, ख़ूब अच्छा है। लेख छोटे, पर सुपाठ्य हैं। ईश्वर करे, चल जाय।

* * *

बाबू रामकृष्ण वर्म्मा ने भारतजीवन प्रेस, बनारस, से बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्त कृत "स्वदेशी-प्रचार के उपाय" नामक पुस्तक भेजी है। पुस्तक उत्तम है। स्वदेश-प्रेमियों के पढ़ने और मनन करने—नहीं कण्ठ करने—लायक़ है। यह भारत-जीवन से पुनर्मुद्रित हुई है। मूल्य १ आना। इस नोट के छप चुकने पर बाबू रामकृष्ण वर्म्मा का मृत्यु-समाचार सुनकर अफ़सोस हुआ!

* * *

सरस्वती के पाठक महाशय भेड़ियों की माँदों से निकले हुए कई बालकों के विचित्र चरित्रों को पढ़ चुके हैं। परन्तु हरदुआगंज (ज़िला अलीगढ़) में घूमनेवाला एक अज्ञातगोत्रीय अनाथ लड़का उन सबसे विलक्षण है। इस अवधूत दिगम्बर की अवस्था ११ या १२ वर्षों से अधिक नहीं जान पड़ती। पद्मासन अथवा सिद्धासन लगा कर जब यह घुटने और कन्धों को हिला हिला कर मुसकराता है तब इसे देखते ही बन आता है। यदि उठ कर भुज-दण्डों को मटकाता हुआ यह चक्कर लगाने लगता है तो दर्शकों को उसके चक्करों का गिनना कठिन हो जाता है। दाल या तरकारी के साथ यह रोटी नहीं खाता। कभी रोटी खाई; कभी दाल सपोट ली। भीख माँगने या परोसा बाँधने को यह पाप समझता है। किसी ने कुछ खिला दिया तो खा लिया, नहीं तो नहीं। क्षुधातुर होने पर हलवाई, भुरजी आदि की दूकानों के खाद्य पदार्थों को अचानक खाने लगता है। परन्तु कभी कभी। यह पोखर, कुंडियों का पानी पीना कभी नहीं छोड़ता। कई बार कुरते पहना दिये गये तो फाड़े और फेंक दिये। पेशाब, पाख़ाने की जहां हाजत हुई वहीं जायज़रूर समझ कर निकाल फेंका। कुत्ते इसके मित्र हैं। अपने साथ उनको भोजन कराता है। एक कुत्ता तो आपके मुँह पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुँह रख कर सोता है। यदि कोई इसको छेड़ता है तो उसे घुर घुरा कर काटना चाहता है। चौमासे भर भीगता फिरा; परन्तु किसी घर या छप्पर की छाया में नहीं रहा। एक बार सारी रात सड़क की नाली में पड़ा रहा। ऊपर मेंह का पानी बहता रहा। सुबह लोगों ने मरा जान कर निकाला, तो कोई आध घंटे अचेत रह कर उठ-खड़ा हुआ। एक बार आप जंगल में सो रहे थे। वहां गीदड़ों ने जांघ और कमर के नीचे का मांस नोच खाया। प्रातःकाल रुधिर बहाते हुए आप बाज़ार में आगये। लोगों ने घाव धोकर तेल लगा दिया। सब घाव कोई चार ही दिन में भर गये। आप हँसते हैं; परन्तु रोना नहीं जानते। आपके मनोहर मुख से वर्णात्मक शब्द नहीं निकलते। केवल आँ आँ ऊँ ऊँ आदि ही से मनोभाव प्रकट कर देते हैं। आज तक आप जाड़ा, बुख़ार आदि किसी भी रोग से पीड़ित नहीं हुए। आपके शरीर का रंग पक्का है। रूप बदशकल नहीं। आज तक आपके जन्मस्थान का पता नहीं लगा। शायद आप भी किसी भेड़िये ही के पालतू हैं। *

भिनगा-नरेश

श्रीराजा उदयप्रतापसिंह साहब, सी० एस० आई०।

स किलाश्रममन्त्यमाश्रितो निवसन्नावसथे पुराद् बहिः।
समुपास्यत पुत्रभोग्यया सुषयेवाविकृतेन्द्रियः श्रिया॥
रघुवंश।

विकुलगुरु कालिदास ने रघुवंशी राजाओं का जो कीर्तिगान किया है उसमें उसने वयोमान के चार विभाग किये हैं—(१) शैशव, (२) यौवन, (३) वार्द्धक्य और (४) अन्त्य। इन चारों अवस्थाओं के विषय में आपने लिखा है कि रघुवंशी नरेश शैशवावस्था में विद्याध्ययन करते हैं; यौवन में राजोचित विषयोपभोग करते हैं; वार्द्धक्य में मुनियों के समान तपस्या करते हैं; और अन्त समय आने पर योगियों की तरह पार्थिव शरीर से आत्मा का सम्बन्ध सुखपूर्वक छिन्न करके परलोकगामी हो जाते हैं। कालिदास की यह उक्ति भिनगा-नरेश श्रीराजा उदयप्रतापसिंह जी के विषय में सम्पूर्ण रीति से घटित होती है। राजा साहब का चरित मानों इस उक्ति का प्रज्वलित उदाहरण है, मानों इसका मूर्तिमान् भाष्य है, मानों इसकी प्रतिकृति देखने के लिए हलद्वी आईना है। राजा साहब के क्रियाकलापों और इस भुवनविश्रुत कवि की उक्तियों में विलक्षण साम्य भाव पाया जाता है—एक ही विषय में नहीं, अनेक विषयों में। इसका कारण क्या हो सकता है? राजा साहब और कालिदास में क्या कोई पुराना सम्बन्ध है? क्या राजा साहब के किसी पूर्वावतार को कालिदास ने प्रत्यक्ष देखा था? क्या राजा साहब और कालिदास की आत्मायें किसी समय एक ही थीं? कोई बात ज़रूर ऐसी है जिससे मनुष्यचरित—विशेष करके राज-चरित—के अन्तर्दर्शी इस कवि की उक्तियां भिनगा-नरेश की मुख्य मुख्य जीवन-घटनाओं का नमूना बन गईं। इस लेख के शीर्षस्थान में रघुवंश का जो श्लोक है उसके अर्थ का विचार कीजिए। उसमें कही गई उक्ति भी बहुशः राजा साहब के विषय में चरितार्थ होती है।

अपने पुत्र अज को राज्यभार वहन करने के योग्य देख कर रघु ने वानप्रस्थ होने का विचार किया। पिता को इस प्रकार अपने से वियुक्त होते देख अज को बहुत दुःख हुआ। उसने अश्रुपूर्ण आँखों से प्रणिपातपूर्वक पिता को ऐसा न करने की प्रार्थना की। सुतवत्सल पिता ने, प्रणयानुरोध के वश हो कर, पुत्र की बात मान ली और अज को राज्य देकर आप नगर के बाहर मुनिजनोचित आश्रम में शान्ति-पूर्वक तपश्चर्य्या करने लगे। शिरोभाग में दी हुई कालिदासीय उक्ति इसी सम्बन्ध में है। कविवर कहते हैं—"आख़िरी आश्रम में आश्रित राजा रघु ने

* यह नोट पं० नाथूराम शङ्कर शर्म्मा का भेजा हुआ है। स० सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगर के बाहर एक स्थान में निवास किया। परन्तु वहां उस शान्ति-निकेतन में भी राज्यलक्ष्मी ने उनका पीछा न छोड़ा। अन्तर इतना ही हुआ कि पहले वह लक्ष्मी ख़ुद राजा ही की वधू बन कर उसकी सेवा-शुश्रूषा करती थी, अब वह अज से भाग्य की जाने के कारण उस जितेन्द्रिय राजा की पुत्रवधू हो कर सेवा में तत्पर हुई"! अब भिनगा-नरेश के चरित का मिलान रघु के चरित से कीजिए। अपना राज्य-भार अपने सुयोग्य सुत को सौंप कर आज कई वर्षों से आप भी काशीवास कर रहे हैं। परन्तु "श्री" को आपका वियोग असह्य है। वह काशी में भी, अन्यभाव से प्रेरित होकर, आपकी सेवा में रत है। राजा साहब की अनिच्छा रहते भी वह आपका साथ नहीं छोड़ती। भगवान् करे वह कभी आपका साथ न छोड़े। अपनी प्रजा के उपकार के लिए, जन-समुदाय के उपकार के लिए, राजन्य-वर्ग के उपकार के लिए, निराश्रया हिन्दी के उपकार के लिए राजा साहब ने जो आज तक लाखों रुपये दे डाले हैं और बराबर देते जा रहे हैं उन्हें देने में "श्री" जी की सेवा दरकार भी तो है। और वह है ही किस लिए? उसका काम ही यही है—

आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव

और यदि कदाचित् कालिदास-वर्णित रघु की तरह "सर्वस्वदक्षिण" विश्वजित यज्ञ करने से श्रीसेवा की कुछ कमी हो जाय तो क्या आश्चर्य्य जो भिनगा-नरेश "कैलासनाथं तरसा जिगीषुः" होकर यहां भी कालिदासीय युक्ति का उदाहरण बनें। पाठक, हमारे इस कथन को आप अत्युक्ति अथवा चाटुकारिता न समझिए। समय को देखिए; आज कल के स्वदेशी-नरेशों की प्रवृत्तिनिवृत्तियों पर विचार कीजिए; राजा साहब के राज्य की आमदनी का ख़याल कीजिए; फिर आपके सर्वोपकारी दानों का टोटल लगाइए। तब आपको मालूम हो जायगा कि हमारे लिखने में कितनी अतिशयोक्ति है और कितना यथार्थवाद। परन्तु अर्थवाद और यथार्थवाद के पारस्परिक सम्बन्ध को समझ लीजिएगा।

हमारे प्रान्त के तअल्लुक़ेदारों और राजाओं में विद्या का बहुत कुछ अभाव है। अवध में कितने ही बड़े बड़े ज़मींदार और तअल्लुक़ेदार ऐसे हैं जिन की बहुत ही शोचनीय अवस्था है। बिना विद्या राज्य की दुर्दशा हो रही है। प्रजा का पीडन हो रहा है। अयोग्य आदमियों की सङ्गति का चसका बढ़ रहा है। क़र्ज़ हो रहा है। इलाक़ा बिक रहा है। इन सबका कारण एक मात्र शिक्षा का अभाव है। किसी किसी राज्य के कुप्रबन्ध और दुरवस्था को देख कर तो जी में यह आता है कि लोग यह सब सहन कैसे कर सकते हैं? किसी ने क्या ही अच्छा कहा है—

छेदश्चन्दनचूतचम्पकवने, रक्षा करीरद्रुमे,
हिंसा हंसमयूरकोकिलकुले, काकेषु नित्यादरः।
मातङ्गेन खरक्रयः, समतुला कर्पूरकार्पासयो—
रेषा यत्र विचारणा गुणिगणे देशाय तस्मै नमः॥

जहां के राजवर्ग की यह दशा है वहां के कतिपय शिक्षित, प्रजापालक, जन साधारण के उपकार कर्त्ता, और मातृभाषा-प्रेमी राजाओं की स्तुति करने, उनको उदारचरित प्रकाशित करने, उनके गुण गाने की इच्छा होना सर्वथा स्वाभाविक है—स्वाभाविक ही नहीं, बहुत ज़रूरी भी है। इसी से हम भिनगा-नरेश का संक्षिप्त-चरित सरस्वती के वाचकों को सुनाते हैं।

राजा का सबसे बड़ा धर्म्म प्रजापालन है। यदि उसने न्यायपूर्वक अपनी प्रजा का पालन किया तो उसका चरित गेय हो गया। उसकी अन्य बातों में, औरों की समझ के अनुसार, चाहे त्रुटियां ही क्यों न हों। आज कल तो अच्छी बातों में जिसकी थोड़ी भी आस्था हो वह भी स्तुतिपात्र समझा जाना चाहिए। राजा उदयप्रतापसिंह तो अपना राज-पाट छोड़ कर विरक्तों की तरह काशीवास कर रहे हैं और इस दशा में भी राजोचित कामों को नहीं भूले। वेङ्कटाध्वरि ने विश्वगुणादर्श में काशी के ब्राह्मणों और पण्डितों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतादृशे कलियुगेऽपि शतेषु कश्चि-
जातादरो जगति यः श्रुतिमार्ग एव।
यत्किञ्चिदाचरति पात्रमसौ स्तुतीनां
श्लाघ्यं मितापमपि किन्न मरौ सरश्चेत् ?

इस कलिकाल में, सौ में एक मनुष्य भी यदि श्रुति-मार्ग का सादर अवलम्बन करके तदनुकूल आचरण करे तो उसकी भी तारीफ़ ही होनी चाहिए। मारवाड़ के मैदान में यदि कहीं एक छोटा सा भी जलाशय मिल जाय तो क्या तारीफ़ की बात नहीं ? फिर चाहे उसमें दस ही पाँच घड़े जल क्यों न हो। यही बात औरों के विषय में भी कही जा सकती है। अतएव भिनगा-नरेश के समान अनेक-गुण-गण-मण्डित महीप सब तरह से प्रशंसा के पात्र हैं। और प्रशंसापात्रों की प्रशंसा न करके चुप रहना, महाकवि, महापण्डित, महादार्शनिक श्रीहर्ष के कथनानुसार, बोलने की शक्ति रख कर भी वाणी को व्यर्थ कर देना है।

मझोली में नृपमल्ल नामक एक राजा थे। इस बात को कोई ३०० वर्ष हुए। उनके पुत्र प्रतापमल्ल ने गोंडा-राज्य की स्थापना की। प्रतापमल्ल की तीसरी पीढ़ी में राजा मानसिंह हुए। उस समय देहली के सिंहासन पर अकबर आसीन था। उसने राजा मानसिंह को महाराज की पदवी देकर २२ राजाओं को अपने हाथ से तिलक देकर राजा बनाने का भी अधिकार दिया। तब तक राजा मानसिंह की राजधानी गोहानी में थी। जब १५१८ ईसवी में उन्होंने गोंडे को पसन्द करके वहाँ क़िला बनाया तब गोहानी को छोड़ दिया। गोंडे में आकर महाराज मानसिंह ने मुसल्मानों की अधीनता पसन्द न की। अतः वे स्वतन्त्र हो गये। "अवध-गेज़ेटियर", "कलकटा रिव्यू" और फ़ैज़ाबाद के भूत-पूर्व कमिश्नर पी० कारनेगी साहब की "रेसेज़, ट्राइब्स एंड कास्ट्स् आव अवध" नाम की किताबों में गोंडा और भिनगा राज्य के विषय में बहुत कुछ लिखा है। हम उन सब बातों को थोड़े ही में लिखते हैं।

मानसिंह की तीसरी पीढ़ी में महाराज रामसिंह हुए। उनके दो पुत्र थे—दत्तसिंह और भवानीसिंह। और दोनों वीर पुरुष थे। इन्हीं भवानीसिंह ने भिनगा के तत्कालीन राजा को जीत कर उसके राज्य पर अपना क़ब्ज़ा किया। तभी से भिनगा बिसेन क्षत्रियों के अधिकार में आया। दत्तसिंह ने अपने प्रतियोगी राजाओं से युद्ध करके २२ बार उन पर विजय प्राप्त किया और अपनी विजय-पताका अवध की सीमा के बाहर भी, दूर दूर तक, उड़ाई। इस वीर राजा के विजय-गीत बहरायच के ज़िले में अब तक गाँव गाँव में गाये जाते हैं। गोंडा-राज-वंश के अन्तिम राजा देवीबख़्शसिंह हुए। यद्यपि इनको अँगरेज़ी-राज्य से प्रीति न थी, तथापि, ग़दर के समय, गवर्नमेंट के ख़ज़ाने और अफ़सरों को एक सुरक्षित जगह में ख़ुद पहुँचा कर तब इन्होंने अँगरेज़ों के ख़िलाफ़ खड्ग उठाया और बड़ी वीरता से लड़े। गवर्नमेंट ने राजा साहब का उत्तम सम्मान करके उनकी सारी रियासत उन्हें देनी चाही; पर राजा साहब ने इस बात को मंज़ूर न किया। अन्त तक वे लखनऊ की बागी बेगम के साथ रहे और नेपाल के अरण्यवासी बन कर वहीं उन्होंने शरीर-त्याग किया। राजा देवीसिंह ने स्वामि-भक्ति की हद कर दी।

अवध के बहरायच नामक नगर से भिनगा २४ मील उत्तर-पूर्व को है। वह रावती नदी के तट पर बसा हुआ है। भिनगा के इलाके से नेपाल का राज्य मिला हुआ है। दोनों की "डांड़ा मेड़ी" है। भिनगा-परगने का क्षेत्रफल कोई २४७ वर्ग-मील है। भिनगा-राज्य की ठीक ठीक आबादी तो नहीं मालूम; पर ख़ास भिनगा-राजधानी कोई छ सात हज़ार आदमियों की बस्ती है। भिनगा पहले एक गाँवमात्र था। परन्तु राजा साहब ने अब उसे एक अच्छा क़सबा बना दिया है। आपने वहां सड़कें बनवा दीं, बाज़ार बनवा दिया, अँगरेज़ी-स्कूल खोल दिया और एक शफ़ाख़ाना भी स्थापन कर दिया। राजा साहब के सुप्रबन्ध और सुयोग्यता की बदौलत भिनगा में अनेक पेशे के आदमी आकर बस गये और बराबर उसकी उन्नति होती गई। तुलसीपुर और भिनगा में फूल के बरतन अच्छे बनते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इस व्यवसाय की भिनगा में पहले की अपेक्षा इस समय बहुत तरक़्क़ी हुई है। सब तरह की तिजारत थोड़ी बहुत होने लगी है और ज़रूरत की प्रायः सभी चीज़ें अब वहां मिल जाती हैं। राजा साहब ने भिनगा में जो महल बनवाया है वह एक विशाल इमारत है। आपने कई कोठियां भी बनवाई हैं।

२८ सेप्टम्बर १९०३ के पायनियर में भिनगा-नरेश के विषय में एक लेख प्रकाशित हुआ था। उससे, और "राजपूत"-सम्पादक कुँवर हनुमन्तसिंह जी के भेजे हुए काग़ज़-पत्रों से, हमें यह लेख लिखने में बड़ी मदद मिली है। पायनियर के लेख में लिखा है कि भिनगा के बिसेन राज-वंश और बघेल, चँदेल, गहरवार, मौलिहार, सिरनेत और मैनपुरी चौहानों में परस्पर शादी-ब्याह होता है। पर कौशिक, गौतम और बँधलगोत्री आदि कुछ क्षत्रिय ऐसे हैं जिनकी कन्यायें तो भिनगा-राजवंश में आसकती हैं; पर उनके यहां भिनगा की राजकुमारियां नहीं जासकतीं।

भिनगा के वर्तमान नरेश श्रीराजा उदयप्रताप-सिंह, सी० एस० आई० पूर्वोक्त राजा भवानीसिंह से सातवीं पीढ़ी में हैं। आपका जन्म १८५० ईसवी में हुआ था। आपने लखनऊ के "वार्ड्स इन्स्टीट्यूशन" में शिक्षा पाई थी। यह सुन कर किसी को यह शङ्का न होनी चाहिए कि शिक्षा में जैसे और तअल्लुक़ेदारों और राजाओं की गति होती है, राजा साहब भिनगा की भी वैसी ही होगी। नहीं। आपके लिए लखनऊ के विद्यालय की शिक्षा निमित्तमात्र समझनी चाहिए। वह सिर्फ़ संस्कारमात्र थी। आपने अपनी विद्याभिरुचि से अँगरेज़ी में इतनी योग्यता प्राप्त करली है, जितनी कि पदवीधर विद्वानों में भी बहुत कम पाई जाती है। अँगरेज़ी के सिवा, आप संस्कृत और हिन्दी में भी अच्छी विज्ञता रखते हैं। आपके विद्याप्रेम और विद्वत्त्व के प्रत्यक्ष प्रमाण, आपके विद्या-प्रचार-विषयक अनेक प्रशंसनीय कार्य्य हैं।

मिर्ज़ापुर के ज़िले में एक जगह बड़हर है। भिनगा-नरेश का विवाह वहां के परलोकवासी राजा रघुनाथशाह देव की कनिष्ठा राजकुमारी से हुआ। बड़हर-राजवंश महोबे के प्राचीन चँदेल-वंशी राजाओं के घराने से है। राजा उदयप्रतापसिंह के ज्येष्ठ राजकुमार के दो विवाह हुए और दोनों बहुत अच्छी जगह हुए। बड़े दुःख की बात है, राजकुमार का अकाल ही में शरीरपात हुआ। राजा साहब के कनिष्ठपुत्र, कुमार महेन्द्रविक्रमसिंह, का विवाह महाराजा जयपुर के एक बहुत निकटवर्ती कुटुम्बी राजा के यहां हुआ है। आपकी दो राजकुमारियों का विवाह भी बहुत ही सम्माननीय राज-घरानों में हुआ है। एक कुमारी तो ख़ास महाराजा जोधपुर के कुटुम्ब में ब्याही गई है। इससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि भिनगा-राजवंश के सम्बन्ध कैसे ऊंचे हैं।

अवध में कुछ ही तअल्लुक़ेदार ऐसे हैं जिनको गवर्नर जनरल, और इँगलैंड के युवराज आदि से, ख़ानगी तौर पर, लखनऊ में, भेंट करने का सम्मान प्राप्त है। ऐसे तअल्लुक़ेदारों में राजा साहब भिनगा भी हैं। इस सम्बन्ध में राजा साहब का सौभाग्य प्रशंसनीय है। अवध में आप ही पहले राजा हैं जिनके यहां, राजधानी में, इन प्रान्तों के छोटे लाट पधारे हैं। जिस समय सर आल्फ़्रड लॉयल यहां के छोटे लाट थे, आप राजा साहब की राजधानी, भिनगा, में पधारे थे और तीन दिन तक राजा साहब की दावत क़बूल की थी। गवर्नमेंट आपका इतना आदर करती है कि उसने राजा साहब को एक तोप रखने का भी अधिकार दिया है। यही नहीं, किन्तु एक तोप ख़ुद ही उसने राजा साहब को भेंट की है। राजा साहब को बिना लाइसेंस के सब तरह के शस्त्र रखने का भी अधिकार है।

राजा साहब का गवर्नमेंट ने अनेक प्रकार से सम्मान किया है। आप इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के "फेलो" रह चुके हैं। आप बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी के मेम्बर हैं। १८८२ में आप "आनरेरी मैजिस्ट्रेट" नियत किये गये थे। कोई २४ वर्ष हुए एक शिक्षा-कमीशन नियत हुआ था। उसकी कमिटी के सामने आपने बड़ी ही योग्यता से शिक्षा-सम्बन्धी विषयों पर अपनी राय ज़ाहिर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। अवध के तअल्लुकेदारों के लड़कों की शिक्षा के विषय मे आपने एक ऐसा अच्छा लेख लिखा, जिसे पढ़ कर गवर्नमेंट ने लखनऊ में "कालविन इन्स्टीट्यूट" नामक एक स्कूल खोल दिया। वहीं अब इस प्रान्त के तअल्लुक़ेदारों और राजाओं के लड़के शिक्षा पाते हैं। राजा साहब १८८६ के "पबलिक सरविस कमिशन" और १८९० के "पुलिस कमिशन" के मेम्बर थे। १८९० में आप गवर्नर जनरल के कौंसिल के मेम्बर हुए। इसके तीन वर्ष बाद राजा साहब के अनेक गुणों से प्रसन्न होकर गवर्नमेंट ने आपको सी० एस० आई० की पदवी से विभूषित किया।

राजा साहब बड़ी ही स्वतन्त्र प्रकृति के पुरुष हैं। आपने दो एक पुस्तकें और लेख ऐसे लिखे हैं जो प्रजा के अगुवा नायकों को कम पसन्द हैं। परन्तु, जान पड़ता है, राजा साहब ने जो कुछ किया या लिखा है वही आप इस देश के लिए लाभदायक समझते हैं। यदि यह अनुमान ठीक है, तो इसके लिए राजा साहब दोषी नहीं ठहराये जा सकते। क्योंकि जो जिस विषय में जैसी राय रखता है उसे निर्भयतापूर्वक प्रकाशित न करना कापुरुषता का चिन्ह है। जिसकी राय है कि इस देश के शासन के लिए प्रजातन्त्रप्रणाली उपयोगी नहीं, उसका कर्तव्य है कि वह अपनी राय प्रकट करने में सङ्कोच न करे। राय में भिन्नता होना कभी हानिकारी नहीं। इस बात को योरप के कितने ही नामी नामी विद्वानों ने बड़ी ही योग्यता से सिद्ध किया है। जिसकी राय दोषपूर्ण होती है वह वाद-विवाद होने से आपही परित्यक्त हो जाती है। यदि उसका कुछ भी अंश यथार्थता से पूर्ण होता है, तो वह स्वीकार कर लिया जाता है। उससे कुछ न कुछ लाभ ज़रूर ही होता है। प्रतिकूल राय दे कर सर्वसाधारण में विचार और विवेचना की शक्ति को बढ़ाना ही क्या कम लाभ है? अतएव राजा साहब की कोई बात यदि सर्व-साधारण की समझ में प्रतिकूल मालूम हो, तो भी राजा साहब की देश-हित-चिन्ता में शङ्का नहीं हो सकती। उनके अनेक देशोपकारी काम इस बात के सबूत हैं। जब राजा साहब को गवर्नमेंट की कोई कारवाई अनुचित मालूम हुई है तब उन्होंने इस बात को साफ़ साफ़ कह भी दिया है। जिस समय आप कौंसिल के मेंबर थे, आपने सरकारी अफ़सरों को "रसद" पहुँचाने के कारण प्रजा को जो तकलीफ़ें उठानी पड़ती हैं, उस पर एक प्रश्न किया था। "नाइन्टीन्थ सेंचुरी" नामक अँगरेज़ी के प्रसिद्ध सामयिक-पत्र में आपने इस विषय में एक लेख भी प्रकाशित किया था। इस पत्र में आपके कितने ही लेख निकले हैं। इस देश के भूमि-स्वामियों और तअल्लुक़ेदारों की अवनति पर इस पत्र में आपने एक बहुत ही अच्छा लेख लिखा था। उसे देख कर, १९०० में, गवर्नमेंट ने एक क़ानून पास करके अवध के तअल्लुक़ेदारों की स्थिति में बहुत कुछ सुधार कर दिया।

यद्यपि राजा साहब से प्रजा अत्यन्त प्रसन्न थी; यद्यपि आपने कितने ही प्रशंसनीय काम किये थे; यद्यपि गवर्नमेंट के यहां आपका बहुत आदर था; तथापि राज्य-भार अपने ज्येष्ठ राजकुमार को अर्पण करके, शान्ति-सुख प्राप्त करने की आपके मन में उत्कट इच्छा थी। इसके लिए आप तैयारी करही रहे थे कि १८९५ में आपके पुत्र की अकाल-मृत्यु से आपको दारुण दुःख पहुँचा। अतएव कनिष्ठ पुत्र, युवराज महेन्द्रविक्रमसिंह, पर राज्य का भार सौंप कर आप विरक्तों की तरह काशी-वास करने चले आये। तब से आप वहीं हैं।

राजा साहब के समान स्वजाति-हितैषी, विद्या-प्रेमी और दानशील नरेश इस समय इस देश में बहुत कम देख पड़ते हैं। यद्यपि आप विरक्त हैं; यद्यपि आप सांसारिक झगड़ों से पराङ्मुख हैं; यद्यपि आप राजपाट के काम नहीं देखते हैं; तथापि विद्या-व्यसन, समाजहित-साधन और परोपकार आदि सद्गुणों के आप पूर्ववत् शरण्य बने हुए हैं। आज तक आपने, न मालूम, सार्वजानिक कामों के लिए कितना रुपया दे डाला है। आपके कुछ दानों का निदर्शन सुनिए :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी प्रजा के सुखसाधन के लिए भिनगा में आपने एक शफ़ाख़ाना खोल दिया है। उसके लिए आपने ३७,००० रुपये ख़र्च किये हैं। १६,५०० रुपये ख़र्च करके आपने भिनगा में एक स्कूल और ५,००० रुपये ख़र्च करके एक बाज़ार बनवाया है। १०,००० रुपये आपने म्युनीसिपैलिटी तथा और और कामों में ख़र्च किये हैं। एक बार, अकाल के समय, आपने अपनी रिआया की सहायता और अकाल-पीड़ितों को अन्न देने के लिए ७,००० रुपये ख़र्च किये हैं। राजा साहब "वसुधैव कुटुम्बकम्" नीति के अनुयायी हैं। आप अपनीही प्रजा की सुख-साधना में दत्तचित्त नहीं। आपने और और उपकारी कामों के लिए भी बहुत कुछ दान किया है। बहरायच के लायल हाल के लिये आपने १२,०००, लखनऊ के कालविन इन्स्टिट्यूट के लिए २०,००० और १८९६ के अकाल-पीड़ितों के लिए १०,००० रुपये दिये हैं। क्षत्रियों में विद्या का बहुत कुछ अभाव देखकर सब से पहिले राजा-साहब भिनगाही का ध्यान उस तरफ़ गया। इसलिए राजा साहब ने क्षत्रिय-समाज से इस विषय में एक अपील की। इस अपील ने बड़ा काम किया। विद्या की तरफ़ क्षत्रियों का ध्यान आकृष्ट हो गया। अब प्रति वर्ष एक क्षत्रिय-महासभा होती है। आगरे में क्षत्रियों के लड़कों के लिए एक अच्छा स्कूल और बोर्डिंग-हाउस खुल गया है। "राजपूत" नाम का एक उत्तम पाक्षिक-पत्र भी कई वर्ष से निकलता है। इन उपयोगी कामों में कितनेही राजे, रईस और तअल्लुक़ेदारों आदि की मदद है। परन्तु इस जागृति का बहुत कुछ श्रेय भिनगा-नरेश ही को है; क्योंकि पहले पहल उन्हीं का ध्यान विद्या-वृद्धि की तरफ़ गया। आपने कोई ८०,००० रुपये देकर क्षत्रियों के लड़कों के लिए कितनेही वज़ीफ़ों का प्रबन्ध कर दिया है। ये वज़ीफ़े यंट्रंस, एफ़०ए०, बी० ए० और मेडिकल-कालेज, लाहौर, में पढ़ने वाले क्षत्रिय-विद्यार्थियों को मिलते हैं। इन प्रान्तों में एक क्षत्रिय-कालेज खोलने का जो प्रबन्ध हो रहा है उस के लिए राजा साहब ने ५०,००० रुपये देना निश्चय किया है। इसके सिवा आगरे की क्षत्रिय-मध्यस्थ-सभा को भी श्रीमान् ने स्वजाति-हितसाधन के निमित्त बहुत सा रुपया दिया है। एम० ए० और बी० ए० पास क्षत्रिय-युवकों के हृदय में उच्च विचार, सदाचार, देशहित और विद्याभिरुचि आदि के उत्तमोत्तम सिद्धान्तों को उद्दीप्त करने के लिए श्रीमान् ने एक विशेष प्रकार की परीक्षा नियत की है। इस परीक्षा में पास होनेवाले पहले तीन युवकों को सोने का एक एक पदक और चार चार सौ रुपये का पारितोषिक देना आपने निश्चित किया है। इस परीक्षा के लिए राजा साहब ने अँगरेज़ी की जो पुस्तकें नियत की हैं उनका नाम देख कर चित्त बहुत ही प्रसन्न हुआ। पुस्तकों के चुनने में राजा साहब ने बड़ी दूरदर्शिता का काम किया है। इन पुस्तकों की नामावली राजा साहब की विद्वत्ता, सुरुचि और बुद्धिमानी की मानो स्वयम्भू सनद है।

भिनगा-नरेश ने बनारस में भी एक बहुतही उपकारी और पुण्यप्रद काम किया है। आपने कोई सवा लाख रुपया ख़र्च करके एक अनाथालय खोला है। उसमें अशक्त, अपाहिज और रोगी अनाथों का पालन होता है। अनाथों की जाति और धर्म्म पर ज़रा भी विचार नहीं किया जाता। सब जाति और सब धर्म्म के अनाथों के साथ एकही सा बर्ताव किया जाता है। काशी ऐसी जगह में इस प्रकार का अनाथालय खोलकर राजा साहब ने एक बहुत बड़े अभाव की पूर्त्ति कर दी है। काशी के निराश्रयों को आश्रय देकर राजा साहब ने श्रेयस्कर काम किया है। उसके लिए समस्त जन-समुदाय आपका ऋणी है। आपने ऐसा प्रबन्ध किया है कि यह अनाथालय हमेशा जारी रहे; रुपये की कमी के कारण कभी बन्द न हो।

विद्वान्, परोकाररत और सदाशय महात्माओं का गुण-गान करना सरस्वती का कामही है। परन्तु भिनगा-नरेश का चरित लिखने में उसके प्रवृत्त होने का सब से बड़ा कारण श्रीमान् का हिन्दी-प्रेम है। परोपकार-व्रत के व्रती होकर आपने अपनी मातृ-भाषा बेचारी हिन्दी को नहीं भुलाया। उत्तमोत्तम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकें लिखाकर आप हिन्दी-साहित्य की श्री-वृद्धि करना चाहते हैं। और इसकी है भी बड़ी ज़रूरत। जब तक हिन्दी में अच्छी अच्छी पुस्तकें न होंगी तब तक सर्वसाधारण में ज्ञानोन्नति का होना असम्भव समझना चाहिए। अँगरेज़ी में जो अनन्त ज्ञान-भाण्डार भरा पड़ा है उसकी पहुँच हर क़स्बे, हर गाँव, हर घर तक, अँगरेज़ी पुस्तकों के द्वारा, सम्भव नहीं। इस काम के लिए जब तक हिन्दी की शरण न ली जायगी, तब तक कभी सफलता न होगी। इसी से राजा साहब ने हिन्दी में अच्छी अच्छी किताबें लिखाना शुरू किया है। काशी में नागरी-प्रचार के लिए जो सभा है उसे आपने इसी इरादे से "वनिता-विनोद" नामक पुस्तक के लिए ३०० रुपये और पाश्चात्य दर्शनशास्त्र के इतिहास के लिए ७०० रुपये दिये हैं। इसके सिवा ८०० रुपये और भी देकर श्रीमान् ने इस सभा की सहायता की है।

राजा साहब की धर्म्म-निष्ठा भी प्रशंसनीय है। आप सोमयज्ञ कर चुके हैं। आप एक न एक धर्म्मानुष्ठान कियाही करते हैं। आपको संस्कृत और अँगरेज़ी के दार्शनिक ग्रन्थ देखने और उन पर विचार करने का बड़ा शौक़ है। आपने अपनी राजधानी, भिनगा, में एक बहुत बड़ा पुस्तकालय खोल रखा है। उसमें अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थों का संग्रह है।

ऐसे प्रजावत्सल, ऐसे परोपकाररत, ऐसे विद्यासड़ी और ऐसे मातृभाषा-प्रेमी नरेश का संक्षिप्त चरित प्रकाशित करने में, अपने कर्त्तव्य को पूर्ण हुआ समझ, सरस्वती को परमानन्द हुआ है। यदि राजा साहब भिनगा की तरह हमारे सभी राजे महाराजे अपने राज-धर्म्म को निबाहें तो इस दीन देश, भारतवर्ष, की गिरी हुई दशा बहुत कुछ सुधर जाय—

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्य-
मापातमात्रमधुरो विषयोपभोगः।
प्राणास्तृणाग्रजलबिन्दुसमा नराणां
धर्म्मः सखा परमहो परलोकयाने॥

ईश्वर की महिमा।

१—ईश्वर, तू है पिता हमारा;
रचा तुही ने यह जग सारा।
दीनों का प्रतिपालक है तू;
दुष्टजनों का घालक है तू॥

२—खेल खेलता ख़ासे ख़ासे;
नित उठ करता अजब तमाशे।
जिसको आज रुलाता है तू;
कल ही उसे हँसाता है तू॥

३—पतझड़ में सब पत्ते डाले;
फिर वसंत में नये निकाले।
यहां खगों ने पंख गिराये;
वहां नये तू ने उपजाये॥

४—बच्चा नहीं जन्मने पाता,
दूध स्तन में तू प्रकटाता।
प्रातकाल नहिं होने पाता,
रोज़ी का तू ठीक लगाता॥

५—जैसा जिसे खाद्य भाता है,
वैसा ही तू पहुँचाता है।
जो मराल मोती खाता है;
तो वह मोती ही पाता है॥

६—पक्षिराज को सर्प खिलाता;
सर्पों को चूहे पहुँचाता।
चूहों को भी चारा देता;
चींटी तक की तू सुध लेता॥

७—ग़रज़, शाम तक सारे प्रानी,
पा लेते हैं दाना-पानी।
मिलता क्यों न खाद्य मनभाया,
जब तुझसा है मालिक पाया?

८—देखा तू ने भारतवासी
बने हुए हैं भोग-विलासी।
बस तुरन्त कर्ज़न को भेजा,
कटवाया बंगाल-कलेजा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९—चौंक उठे बंगाली भाई,
तब उनको घर की सुध आई।
रोये, पीटे, बिलखे भारी
सुखद "स्वदेशी" विधि विस्तारी॥

१०—मातृ-भूमि-सेवा सुखकारी
करें ख़ूब भारत-नर-नारी।
विनय यही, त्रिभुवन के त्राता!
हे विश्वम्भर, विश्व-विधाता!

गोविन्ददास।

प्रकाश।

यह बात आज तक विद्वानों की समझ में ठीक ठीक नहीं आई कि प्रकाश है क्या चीज़। इस विषय में मत-भेद है। बहुतों का मत यह है कि सूर्य्य, दीपक आदि जो प्रकाशवान् पदार्थ हैं, उनसे तेज के जो सूक्ष्म परमाणु चारों ओर फैलते हैं, वही प्रकाश है। यद्यपि प्रकाश का यथार्थ रूप समझ में नहीं आया, तथापि उसके साधारण धर्म मालूम हुए बहुत दिन हुए। वे धर्म ये हैं :—

प्रकाश का पहला धर्म यह है कि वह सदा सरल मार्ग से जाता है, वक्र से नहीं। जिस अँधेरी कोठरी में धुवाँ फैल रहा हो, या धूल उड़ रही हो, उसमें यदि छोटे छोटे झरोखों या छेदों से होकर प्रकाश आवे तो उसका यह धर्म्म अच्छी तरह देख पड़ता है। यदि हम किसी नली में आँख लगाकर देखें तो दूसरी ओर का पदार्थ नहीं देख पड़ता। इस से भी प्रकाश का यह धर्म्म सिद्ध होता है। पदार्थों की छाया के आकार से भी प्रकाश के इस धर्म का ज्ञान होता है। जो पदार्थ शीशे की तरह पारदर्शक होते हैं, उनकी पारदर्शकता का कारण यह है कि, उनके घटक परमाणुओं के छेद एक दूसरे के सम्मुख रहते हैं। इसी से उन छेदों की सरल, सूक्ष्म, नलिकाओं से प्रकाश दूसरी ओर निकल जाता है। जिन पदार्थों के घटकावयवों की रचना ऐसी नहीं होती—अर्थात् जिनके छेद परस्पर सम्मुख नहीं होते—किन्तु एक पर्त के परमाणु दूसरे पर्त के परमाणुओं के सम्मुख रहते हैं, वे पदार्थ अपार-दर्शक होते हैं।

प्रकाश का दूसरा धर्म यह है कि, प्रकाशमान पदार्थ से जैसे जैसे उसका अन्तर बढ़ता जाता है, वैसेही वैसे अन्तर के वर्ग-प्रमाण से प्रकाश की चमक कम होती जाती है। जैसे दीपक से एक हाथ के अन्तर पर जितना प्रकाश है, उसका एक चतुर्थांश दो हाथ पर, एक नवमांश तीन हाथ पर, और एक षोड़शांश चार हाथ पर रहता है। इसी हिसाब से वह कम होता जाता है।

प्रकाश का तीसरा धर्म यह है कि, वह अदृश्य पदार्थों पर परावर्त्तन पाकर उनको दृश्य बनाता है। अर्थात् पदार्थों का दृश्यमान होना प्रकाश के परावर्त्तन ही का धर्म है। अँधेरी रात में, किसी खेत में जलती हुई आग के आस पास बैठे हुए मनुष्यों को, दूर अँधेरे में खड़ा हुआ आदमी देख सकता है; परन्तु उस मनुष्य को, जब तक उस पर प्रकाश का परावर्त्तन न पड़े, आग के पास बैठे हुए मनुष्य नहीं देख सकते। इसी तरह यदि कोई मनुष्य दरवाज़े पर खड़े होकर किसी अँधेरी कोठरी में झाँके, तो उसे अन्दर के पदार्थ न देख पड़ेंगे; क्योंकि कोठरी के अन्दर के पदार्थों पर प्रकाश का परावर्त्तन नहीं होता। परन्तु यदि वही मनुष्य अन्दर जाकर दरवाज़े की ओर देखे तो बाहर के सब पदार्थ उसे स्पष्ट देख पड़ेंगे; क्योंकि, उन पदार्थों पर प्रकाश का परावर्त्तन पड़कर अन्दर खड़े हुए मनुष्य के नेत्रों की ओर जाता है। सूर्य्य का प्रकाश चन्द्र तथा दूसरे ग्रहों में परावर्त्तन पाकर अपनी ओर आता है। इसी से वे ग्रह हमको देख पड़ते हैं। इसी प्रकार जब चन्द्रमा, पृथ्वी और सूर्य्य के बीच में आ जाता है तब वह हमको नहीं देख पड़ता।

प्रकाश का चौथा धर्म यह है कि शुद्ध, स्वच्छ, श्वेत प्रकाश जिन रंगों के पदार्थों से परावर्त्तन पाकर आता है उन्हीं रंगों का होता है। वास्तव में प्रकाश सूर्य्य का है और श्वेत है। पर रंगीन पदार्थों से परावर्त्तन पाने के कारण वह भी रंगीन हो जाता है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म के अच्छी तरह समझ में आने के लिए एक बात कीजिए। एक छोटे से बक्स के भीतर एक ओर साफ़ सफ़ेद काग़ज़ लगाइए; और दो तीन फूल और पत्तियां जिसमें हों, ऐसी एक गुलाब की डाल, बक्स में, काग़ज़ के सामने रखकर बक्स को बन्द कर दीजिए। तब एक ऐसा बारीक छेद बक्स में कीजिए, जिससे होकर गुलाब की डाली पर प्रकाश पड़ कर तब काग़ज़ पर पड़े। फिर एक और बारीक छेद से बक्स के भीतर का हाल देखने से मालूम होगा कि फूलों के सामने गुलाबी और पत्तियों के सामने हरे रंग का प्रकाश काग़ज़ पर पड़ रहा है। पर ध्यान रहे कि छेद बड़े न होने पावें। बड़े होने से प्रकाश अधिक जाने के कारण गुलाबी और हरा रंग मिल कर काग़ज़ पर पड़ेगा। अतएव उनका प्रतिबिम्ब स्पष्ट अलग अलग न देख पड़ेगा।

प्रकाश का पाँचवां धर्म यह है कि, उसकी गति वेग की पराकाष्ठा से बाहर है। दो मनुष्य एक दूसरे से यदि ४० कोस के अन्तर पर हों, और उनमें से एक मनुष्य, एक निर्दिष्ट समय पर प्रकाश उत्पन्न करे, तो वह प्रकाश दूसरे मनुष्य के पास इतने वेग से जायगा कि, उसके जाने में जो समय लगेगा उस को अत्यन्त ठीक समय देने वाली घड़ी भी न बतला सकेगी। अर्थात् दोनों मनुष्यों को प्रायः एकही समय में प्रकाश देख पड़ेगा। ज्योतिष-शास्त्र-वेत्ताओं ने अनुमान किया है कि, प्रकाश को सूर्य्य से पृथ्वी पर आने में सात मिनट लगते हैं। इस हिसाब से प्रकाश को पृथ्वी के एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक जाने में इस का सिर्फ़ $\frac{१}{२४}$ समय लगता है! अर्थात् प्रकाश एक सेकंड में १,९५,००० मील जाता है !!! यह वेग अचिन्तनीय है। इस अद्भुत वेग से सिद्ध होता है कि, प्रकाश के परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म हैं—वे इतने सूक्ष्म हैं कि, मनुष्य उनकी सूक्ष्मता की कल्पना भी नहीं कर सकता! क्योंकि चक्षुरिन्द्रिय जो सब इन्द्रियों से अत्यन्त नाज़ुक और अत्यधिक वेदना-ज्ञापक शक्ति वाली है, उसमें भी प्रकाश के इतने वेग के साथ प्रवेश करने से मनुष्य को कुछ क्लेश नहीं होता। यहां तक कि प्रकाश के प्रवेश का ज्ञान भी नहीं होता। डाक्टर टामसन ने लिखा है कि, यदि प्रकाश के परमाणु एक ग्रेन* के हज़ारवें भाग के बराबर हों तो उनमें बन्दूक़ की गोली के बराबर ज़ोर आ जायगा। और यदि वे परमाणु ग्रेन के दस लाखवें हिस्से के बराबर हों तो उनके धक्के से कितनेही पदार्थ फूट जा सकते हैं, और उनका धक्का प्रत्यक्ष मालूम हो सकता है। परन्तु आँख के समान नाज़ुक इन्द्रिय में उन परमाणुओं के प्रवेश करने पर उनका कुछ भी ज्ञान मनुष्य को नहीं होता। फिर भला उनके सूक्ष्मत्व का अनुमान कैसे हो सकता है?

आईने अथवा क़लई किये हुए बरतनों पर प्रकाश पड़ कर परावर्त्तन पाता है। यदि किसी अँधेरी कोठरी के दरवाज़े पर स्वच्छ, श्वेत, वस्त्र फैले हों, तो कोठरी के भीतर अधिक उजेला जाता है। इन बातों का अनुभव सब को है। यह प्रकाश के परावर्त्तन से ही होता है। सब पदार्थ कुछ न कुछ परावर्त्तन करते हैं। पर जिन पदार्थों के पृष्ठ-भाग चिकने होते हैं उन पर पड़े हुए प्रकाश का परावर्त्तन अधिक साफ़ देख पड़ता है। प्रकाश के किरणों के परावर्त्तन का नियम यह है कि किरणों का पतन-कोण और उनका परावर्त्तन-कोण परस्पर बराबर रहते हैं। इस नियम का अनुभव नित्य के व्यवहार में भी बहुधा हुआ करता है। यदि किसी बड़े आईने के सामने खड़े हों, तो किरणें हमारे शरीर पर पड़कर आईने पर जाती हैं; और वहां से परावर्त्तन पाकर फिर हमारी ओर आती हैं। इसी से हमको अपना प्रतिबिम्ब आईने में देख पड़ता है। यदि हम आईने के एक ओर हट जायँ तो हमको अपना प्रतिबिम्ब न देख पड़ेगा। परन्तु आईने से जितने अन्तर पर हम एक तरफ़ खड़े होंगे उतनेही अन्तर पर, उसके दूसरी ओर खड़े हुए आदमी का प्रतिबिम्ब हमको देख पड़ेगा और हमारा प्रतिबिम्ब उसको देख पड़ेगा। इसी प्रकार आईने के किसी एक तरफ़ यदि दीपक रक्खा होगा और उतनेही अन्तर

* ग्रेन अँगरेज़ी में एक सूक्ष्म वज़न है। दो ग्रेन का वज़न लगभग एक रत्ती के बराबर होता है। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर हम दूसरी ओर खड़े होंगे, तो दीपक का प्रतिबिम्ब हमको देख पड़ेगा।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, सरल जाना, प्रकाश का स्वाभाविक धर्म है; परन्तु और और पदार्थों की तरह प्रकाश पर भी आकर्षण का प्रभाव पड़ता है। इस कारण वह सरल-मार्ग छोड़ कर वक्र जाने लगता है। इसे प्रकाश का वक्री-भवन होना कहते हैं। कम विरल (पतले) पदार्थों से अधिक विरल पदार्थों में, किंवा अधिक विरल पदार्थों से कम विरल पदार्थों में जाने में प्रकाश का वक्री-भवन होता है, अन्यथा नहीं। जिस पदार्थ से होकर प्रकाश जाता है उसे प्रकाश-वाहक कहते हैं। वायु, जल और काँच की विरलता भिन्न भिन्न प्रकार की है। इसलिए वायु से जल या काँच में, किंवा काँच या जल से वायु में, जाने में प्रकाश का वक्री-भवन होता है। वक्री-भवन सम्बन्धी नियमों का भली भाँति ज्ञान होने के लिए गणित-शास्त्र और भूमिति का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। तथापि वक्री-भवन-विषयक मोटी मोटी बातें समझने के लिए इन शास्त्रों की तादृश आवश्यकता नहीं। यदि हाथ में एक छड़ी लेकर हम उसका कुछ भाग पानी में डुबावें, तो पानी में डूबा हुआ भाग हमें झुका हुआ देख पड़ेगा। उसके ऐसे देख पड़ने का कारण प्रकाश का वक्री-भवन होना है। पानी, वायु की अपेक्षा कम विरल है; इसलिए वायु से पानी में प्रकाश के किरण जाने से उनका वक्री-भवन होता है। इसके प्रतिकूल यदि हम एक कटोरी में रुपया रखकर उसको इतने अन्तर पर रक्खें कि हमको रुपये का सिर्फ़ कुछ किनारा देख पड़े। इसके बाद यदि हम उस कटोरी में पानी भर दें तो हमें पूरा रुपया देख पड़ने लगेगा। इसका कारण यह है कि, कटोरी में पानी न होने की दशा में उससे रुपये के सिर्फ़ कुछ ही किनारे से होकर प्रकाश की किरण हमारी चक्षुरिन्द्रिय में आती हैं। पूरे रुपये पर पड़े हुए किरणों को, सरल-मार्ग से आने के कारण, कटोरी का किनारा रोकता है। इसीसे रुपये का पूरा आकार हमें नहीं देख पड़ता। पर कटोरी में पानी भर देने से, पानी की अपेक्षा वायु के अधिक विरल होने के कारण, पानी से वायु में आते समय प्रकाश की किरणें वक्र हो जाती हैं। इससे रुपये का पूरा आकार हमें देख पड़ने लगता है।

सूर्य्योदय के पहले और सूर्य्यास्त के बाद जो उजेला रहता है इसका कारण भी प्रकाश का वक्री-भवन होना है। भूमण्डल पर वायु का आवरण है। वायु, पृथ्वी के निकट कम पतला है; पर ऊपर क्रमशः अधिक पतला होता गया है। सुबह और शाम को वायु से होकर जाने में, सूर्य्य की किरणों का, वक्री-भवन होता है। वायु-मण्डल में भाप आदि पदार्थों की जैसी न्यूनाधिकता होती है उसीके अनुसार उसकी विरलता में भी न्यूनाधिकता आ जाती है। इसीसे वायु से होकर जाने में प्रकाश की किरणों का वक्री-भवन भी न्यूनाधिक हो जाता है। जहाज़ों पर काम करने वाले आदमियों को कभी तो दूर दूर के जहाज़ देख पड़ते हैं और कभी नहीं। स्थल में भी यह बात पाई जाती है। कभी तो दूर दूर के पहाड़ देख पड़ते हैं और कभी नहीं देख पड़ते। दूरबीन, ख़ुर्दबीन और ऐनक आदि में प्रकाश का वक्रीभवन होनेही से वे काम देते हैं। इनमें जो कांच लगाये जाते हैं वे लेन्स (Lense) कहलाते हैं। आकार-भेद से इन काँचों के कई भेद हैं। उनमें दो मुख्य हैं। उन्हीं का बहुत काम पड़ता है। एक को बहिर्गोल और दूसरे को अन्तर्गोल काँच कहते हैं। जिसका आकार तराज़ू के पलड़े के ऊपरी भाग के समान बाहर से कमानीदार होता है उसको बहिर्गोल कहते हैं। और जिसका आकार पलड़े के भीतरी भाग के समान भीतर कमानीदार होता है, उसको अन्तर्गोल कहते हैं। वृद्ध मनुष्य को स्पष्ट देख पड़ने के लिए जो ऐनक बनाये जाते हैं उनका काँच और आग्नेय काँच (आतशी शीशा) बहिर्गोल होते हैं। और दूर से देख पड़ने के लिए जो ऐनक बनाये जाते हैं उनके काँच अन्तर्गोल होते हैं। जो काँच बहिर्गोल होते हैं वे अपने ऊपर पड़ी हुई प्रकाश-किरणों को एक बिन्दु पर लाते हैं। इस बिन्दु को अँगरेज़ी में फ़ोकस और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत में केन्द्र अथवा नाभि कहते हैं। यदि किसी बहिर्गोल काँच का केन्द्र और उसकी गोलाई का मध्य एकही स्थान पर हों, तो ऐसे काँच का प्रतिबिम्ब काग़ज़ या तम्बाकू के पत्ते पर पड़ने से वे जल उठते हैं। अँगरेज़ी गवर्नमेंट ने एक बहुतही उत्तम आग्नेय शीशा लार्ड मकार्टने साहब के हाथ चीन के बादशाह को भेट में भेजा था। इतना अच्छा दूसरा शीशा कहीं सुनने में नहीं आया। एक साहब जहाज़ पर बैठ कर उत्तरी ध्रुव की तरफ़ गये थे। उन्हों ने बर्फ़ का एक आग्नेय शीशा बनाकर उसके योग से लकड़ी जलाई। यह देख कर लोगों को बड़ा आश्चर्य और कौतूहल हुआ।

बहुत समय से लोगों का यह ख़याल था कि प्रकाश शुद्ध पदार्थ है परन्तु सर आइज़क न्यूटन ने पहले पहल प्रकाश का पृथक्करण किया। उन्होंने एक ठोस तिकोने बिल्लौर से सूर्य्य के किरण देखे, तो बिल्लौर के दूसरी ओर वाले पदार्थ पर उनको सात रंग का प्रकाश पड़ा हुआ देख पड़ा। इससे न्यूटन ने निश्चय किया कि, सूर्य्य के एक किरण में भिन्न भिन्न रंग के सात किरण हैं। और उन भिन्न रंगों के किरणों के भिन्न भिन्न प्रकार के वक्री-भवन होते हैं। इसीसे बिल्लौर को पार करने में निराले निराले सात प्रकार के रंग एक किरण से देख पड़ते हैं।

यही सात रंग इन्द्र-धनुष में भी देख पड़ते हैं। वे रंग ये हैं—लाल, पीला, नारंगी, हरा, काला, नीला और बैंजनी। इनमें बैंजनी रंग के किरण का सबसे अधिक और लाल रंग के किरण का सबसे कम वक्रीभवन होता है इन्हीं सात रंगों से मिल कर सूर्य्य का श्वेत प्रकाश बना है। अर्थात् यदि ये विवक्षित परिमाण में मिलाये जांय तो श्वेत रंग बन जाय। उदाहरण के लिए एक लट्टू, जो ऊपर बिलकुल चिकना हो, लेकर उसकी परिधि के ३६० समान भाग कीजिए। उनमें से ४५ भागों को लाल, ३७ भागों को नारंगी, ४८ को पीला, ५० को हरा, ३० को काला, ४० को नीला और ८० को बैंजनी रंग दे कर उसे ख़ूब तेज़ी से घुमाइए। यदि वे सब रंग शुद्ध हैं तो घूमता हुआ लट्टू स्वच्छ श्वेत रंग का देख पड़ेगा।

न्यूटन का मत है कि, संसार के सारे पदार्थ जो निराले निराले रंगों के देख पड़ते हैं, उसका भी कारण यही है कि उनकी अवयव-रचना के अनुसार उनमें उन्हीं रंगों के किरणों का परावर्त्तन होता है। बाक़ी रंगों के किरण वे ग़ायब कर जाते हैं। इस मत के अनुसार अँधेरे में पदार्थों का कुछ भी रंग नहीं। जो पदार्थ सफ़ेद देख पड़ते हैं उनकी अवयव-रचना इस प्रकार होती है कि, उन पर सातों प्रकार के किरणों का परावर्त्तन होता है। इसके प्रतिकूल जो पदार्थ अपनी अवयव-रचना के अनुसार सभी किरणों का आवर्त्तन लेप कर जाते हैं, वे काले देख पड़ते हैं। अर्थात् कालेपन का कारण रंग नहीं है; किन्तु वह सब प्रकार के रंगों का अत्यन्ताभाव है। उष्णता और प्रकाश का सम्बन्ध अखंडित है। इस लिए सफ़ेद वस्त्र अधिक ठंढे लगते हैं और काले अधिक गरम; क्यों कि काले वस्त्र किरणों को खा जाते हैं और सफ़ेद वस्त्रों में उन की अपेक्षा बहुत ही कम किरणों का ग्रहण होता है। इसी प्रकार सफ़ेद कपड़े पहिने हुए मनुष्य अँधेरे में जितने अन्तर से देख पड़ता है, उतने अन्तर से काले वस्त्र पहने हुए नहीं देख पड़ता। सफ़ेदी की हुई दीवारों के होने से घर में अधिक ठंढ मालूम होती है। इसका भी यही कारण है। कल्पना कीजिए कि एक वृक्ष सफ़ेदी की हुई दीवार के पास है। और दूसरा काली मिट्टी की बनी हुई दीवार के पास। इन दोनों वृक्षों में से सफ़ेद दीवार के पास वाले वृक्ष के फल शीघ्र पकेंगे; क्योंकि उनको ख़ूब गर्मी मिलेगी। पर काली दीवार के पास वाले वृक्ष के फल उतना शीघ्र न पकेंगे; क्योंकि फलों को मिलनेवाली उष्णता दीवार का कालापन खा जायगी।

प्रकाश के पृथक्करण का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण इन्द्र-धनुष है। यह धनुष जब पानी बरसता है, अथवा बरसनेवाला होता है, और सूर्य्य का प्रकाश भी होता है, तब देख पड़ता है। अन्यथा नहीं देख पड़ता। सूर्य्य के किरण आकाश-स्थित पानी की बूंदों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के भीतर पैठ कर वक्रीभवन पाते हैं। वे बूंदों के पिछले भाग के भीतर पड़ कर, और परावर्त्तन पाकर, बूंदों के सामने वाले भाग के नीचे आते हैं। यहां उनका वक्रीभवन होकर उनकी आभा पृथ्वी की ओर आती है। इस प्रकार सूर्य्य के किरणों का एक बार परावर्त्तन और दो बार वक्रीभवन होकर आकाश में इन्द्र-धनुष बनता है; और वह सदैव सूर्य्य के सामने दूसरी ओर आकाश में देख पड़ता है। इस प्रकार जल के बूंदों से आनेवाले किरणों में से कुछ किरण बहुत वक्र होते हैं, कुछ बहुत कम; अतएव उनके समापात-कोण भी भिन्न होते हैं। अर्थात् भिन्न प्रकार के रंगों का ज्ञान करनेवाले किरण एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इससे सिद्ध है कि सातों प्रकार के रंगों के किरण, पानी की बूंदों पर, क्रमशः एक दूसरे के बाद पड़कर, विवक्षित रंग देख पड़ने के लिए विवक्षित अंश के कोण बनाते हैं। इसी से बादलों में रंग बिरंगे इन्द्रधनुष देख पड़ते हैं*।

लक्ष्मीधर वाजपेयी।

कादम्बरी।

[१]

करिके सुर तालन को बिसतार
सितार प्रबीन बजावती है।
परिपूरन रागहू के मन में
अनुराग अपार जगावती है।
गुन आगरी भाग सोहाग भरी
नव नागरी चाव सों गावती है।
छबिधाम है नाम है "कादम्बरी"
धुनि कादम्बरी† की लजावती है॥

[२]

मन खैंचति तार के खैंचत ही,
उमहै जब "जोड़" बजावन में।
उमगैं मधुरे सुर की लहरी,
गहरी "गमकैं"* दरसावन में।
चपलाई हरै थिरता चित की
अँगुरी "मिजराब" चलावन में।
मन-भावन गावन के मिस बाल
प्रबीन है चित्त चुरावन में॥

[३]

एमन सोरठ देस हमीर
बहार बिहाग मलार रसीली।
शंकरा सोहनी भैरव भैरवी
गूजरी रामकली सरसीली।
आसा बिलावल जोगिया सारँग
गौरी धना पुरिया चटकीली।
बोल समै के बजायो करै,
तिय गायो करै मिलि तान सुरीली॥

राय देवीप्रसाद।

---

* कृष्ण शास्त्री चिपलूणकर के एक मराठी लेख के आधार पर लिखित। † कोकिला।

वानस्पतिक विद्या में अद्भुत आविष्कार।

अमेरिका के लूथर बरबैंक नामी एक वनस्पति-शास्त्र-वेत्ता ने पेड़ों को बड़ा और पुष्ट करने, उनके फल, फूल और पत्ती का रूप, रंग, आकार, स्वाद इत्यादि बढ़ाने घटाने अथवा बिलकुल ही बदल देने, में बेहद कामयाबी हासिल की है। वैज्ञानिकों ने इस बात का तो बहुत पहले से ही पता लगा लिया था कि पेड़ों के रंग, सुगन्ध, फल, फूल, पत्ती आदि में तबदीली होती रहती है। कोशिश करने से फलों को बहुत बड़ा भी

* सितार में "जोड़" का बजाना श्रेष्ठ है; और उसमें "मींड" (तार खींच कर स्वर चढ़ाना) और "गमक" (गहराई से शब्द निकालना) प्रधान वस्तु हैं—"मिजराब" की चपलता इनमें शोभा देती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे कर सके थे। यहां तक कि अमेरिका की नुमाइशों में कई दफ़े इतने इतने बड़े कद्दू आये जिनके खोखले से बैल और घोड़े तक ढके जासकें, या उनके नीचे एक छोटा सा तम्बू खड़ा किया जासके! एक एक आलू, मूली और प्याज इतना बड़ा आया कि एक दर्जन आदमी एक को ही खाकर छक गये। परन्तु सिवा छोटे फलों को बड़ा करने के और सब बातें क़ुदरती समझी जाती थीं। स्वप्न में भी किसी को ख़याल नहीं था कि ये बातें मनुष्य की इच्छानुसार हो सकती हैं। पर बरबैंक ने दस वर्ष की सख़्त कोशिश और मिहनत से इस मसले को बहुत कुछ हल कर लिया है।

बरबैंक साहब के इस अद्भुत आविष्कार का संक्षिप्त हाल ऐसा है। एक क़िस्म के हज़ारों बीज कई तरह की खाद वाली ज़मीन में उन्होंने बो दिये। पौधों के उगने, अथवा उनमें फल फूल होने, पर उन्होंने ख़ूब ग़ौर से सबको जाँचा। जिनमें ज़रा भी तबदीली नज़र आई उन्हें छोड़ कर बाक़ी सबको उन्होंने उखाड़ फेंका। फिर बचे हुए पौधों की उन्होंने ख़ूब सेवा की। उनके बीजों को क़िस्म क़िस्म की खाद देकर मुख़तलिफ़ दर्जे की गरमी की हवा आदि में उन्होंने आज़माया; और जैसा ऊपर लिखा गया है तबदीली पर नज़र रक्खा। इसी तरकीब को सावधानी और बुद्धिमानी से काम में लाने से बरबैंक साहब ने अनेक अद्भुत अद्भुत करश्मे कर दिखाये। परन्तु इतने ही से उन्हें सन्तोष नहीं। उनको आशा है कि वे थोड़े ही दिनों में ऐसी सफलता प्राप्त करेंगे जिससे संसार के अनेक खाद्य पदार्थों की पैदावार और उनका स्वाद बहुत ही अधिक बढ़ जायँगे। करोड़ों मन ज़ियादह ग़ल्ला, आलू इत्यादि बिना अधिक कष्ट, या कोशिश, के आपही आप पैदा होंगे। फ़र्ज करो कि यदि गेहूं की एक एक बाल में सिर्फ़ चार चार दाने ज़ियादह पैदा हों, या दाने की पैदावार डयोढ़ी हो जाय, या आलू के एक पौधे में सिर्फ़ एक आलू ज़ियादह होने लगे तो इतने से भी दुनिया की पैदावार बहुत अधिक बढ़ जाय। यही हाल खाने पीने की हर एक चीज़ का समझिए। फिर, जैसा आगे के बयान से मालूम होगा, बरबैंक साहब उन चीज़ों को भी खाने के लायक़ कर देते हैं जो खाने के लायक़ नहीं। इसीसे इस बात का अन्दाज़ किया जा सकता है कि इनके आविष्कार कितने अमूल्य और कितने लाभदायक हैं।

इनकी परीक्षाओं के लिए बहुत ही अधिक होशियारी और निगरानी दरकार है। बरबैंक साहब का यह हाल है कि उन्हें चाहे जिस पेड़ या पौधे का बीज दिखाओ—फिर चाहे वह कितनाही छोटा क्यों न हो—उसे देखते ही उससे पैदा होनेवाले पेड़ या पौधे का ज़रा ज़रा सा हाल वे बयान कर देते हैं। पेड़ों में भिन्नता, जो किसीको बहुत ग़ौर करने पर भी नहीं मालूम होती, उन्हें देखते ही मालूम हो जाती है। उनकी वनस्पति-विद्या की विज्ञता और बुद्धिमत्ता इतनी बढ़ी चढ़ी है कि वे सैकड़ों खेतों में ख़ास ख़ास दर्ज की गरमी और हवा पहुँचाते रहते हैं और उसे समय समय पर क़ुदरती मौसम, अथवा पेड़ या पौधे की उम्र इत्यादि के अनुसार बदलते रहते हैं। ज़मीन तैयार करने में किसी किसी जगह की मिट्टी को उबाल और छान कर उसमें से नुक़सान पहुँचानेवाली चीज़ों को वे दूर कर देते हैं। मिट्टी की ताक़त; उसमें कौन कौन चीज़ें हानिकारक हैं; कैसी खाद की किस पेड़ या पौधे को ज़रूरत है; कौन पौधा कितना पानी और कितनी गरमी माँगता है—इन बातों पर वे हमेशा ध्यान रखते हैं। इस विषय की वे बहुत बारीकी से जाँच किया करते हैं।

अब बरबैंक साहब की कुछ करामातों का हाल सुनिए:—

कई क़िस्म के फूल सिर्फ़ अफ़्रीक़ा में होते हैं। उसी जाति के—पर उनसे कुछ भिन्न आकार-प्रकार वाले—फूल अमेरिका में भी होते हैं। उनके जोड़े को मिलाकर उन्होंने नये क़िस्म के बहुत ही सुन्दर सुन्दर फूल पैदा किये हैं। पाठकों ने सुना होगा कि पेड़ों में भी पुष्प-केसर के रूप में नर-मादा होते हैं। इस लिए, बरबैंक साहब, जोड़ा मिलाने में, एक पेड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नर-केसर को दूसरे पेड़ के मादा-केसर में रुई की फुरेहरी, ऊंट के बाल के ब्रुश, हवा, छोटे छोटे जीव-तितली, चींटी या मधुमक्खी आदि—के द्वारा पहुँचा देते हैं। ऐसा करने और मनमाने पेड़ या पौधे पैदा करने में वे सिद्धहस्त हो गये हैं।

नागफनी के क़िस्म का एक जंगली पौधा अमेरिका में होता है। काँटे साफ़ किये जाने पर इसकी पत्तियां जानवरों के चारे के लिए बड़े काम आती हैं। बरबैंक साहब ने ये पौधे बिना कांटे के पैदा कर दिये हैं।

अमेरिका में काँटेदार नाशपाती का एक जंगली पेड़ होता है। उसके भी फल और पत्तियों को जानवर खाते हैं। वे जानवरों के लिए बहुत ही मुफ़ीद हैं। पर उसके काँटे दूर करने में बड़ी दिक़्क़त होती है; और पेट में काँटे जाने से जानवर के फ़ौरन ही मरने का डर रहता है। बरबैंक साहब ने इसे भी बेकाँटे का कर दिया है। यही नहीं, किन्तु इस नये पेड़ का फल उन्होंने अनन्नास से भी बढ़ कर स्वादिष्ठ बना दिया है। इस तबदीली से कितना लाभ होगा, इसका अन्दाज़ करना मुश्किल है। इस पेड़ में यह गुण है कि यह ख़राब ज़मीन में भी होता है और इसे बहुत कम तरावट की ज़रूरत होती है। अनुमान किया जाता है कि बरबैंक साहब थोड़े ही दिनों में अमेरिका के जंगल इस नये और अत्यन्त उपयोगी पेड़ से भर देंगे।

अफीम के फूल के केसर को एक दूसरे फूल के केसर से कई बार मेल करके उन्होंने १८ इंच के व्यास का एक बहुत ही ख़ूबसूरत सुर्ख़ फूल पैदा किया है। उसकी ख़ूबसूरती देखते ही बन पड़ती है। उसे देख कर तबीयत ख़ुश हो जाती है। उसके एक ही फूल से बाग़ की शोभा बेहद बढ़ जाती है। इसी तरह उन्होंने बहुत से फूलों की लम्बाई-चौड़ाई चौगुनी पचगुनी तक कर दी है; और किसी किसी सुगन्धहीन फूल में उत्तम सुगन्ध भी पैदा कर दी है। जंगली बेरियों को भी उन्होंने स्वादिष्ठ कर दिया है। उन्होंने अख़रोटों की दो क़िस्में ऐसी निकाली हैं जिनकी लकड़ी बहुत ही नफ़ीस होती है।

डेज़ीशास्ता नाम का एक फूल अमेरिका में होता है। उसे बरबैंक साहब ने कई गुना बड़ा कर दिया है। एक प्रकार के सेब को इन्होंने आधा पीला और आधा लाल कर दिया है। देखने में वह बहुत ही सुहावना मालूम होता है। दो तरह की छोटी छोटी रसभरियों को मिला कर उन्होंने एक ऐसी रसभरी पैदा कर दी है जिसकी पत्तियाँ एक विलक्षण तरह की और फल बहुत बड़े बड़े होते हैं। अमेरिलस नाम के एक फूल को बड़ी मेहनत से उन्होंने चौगुना बड़ा कर दिया है। अब उसके बीच का हिस्सा एक सिरे से दूसरे सिरे तक आठ से दस इंच तक बड़ा होता है। उसका रंग भी अब बहुत भड़कीला और मनोमोहक हो गया है।

गिरिजादत्त वाजपेयी।

सरस्वती को महावीरता।

शङ्कर विहार करे ज्ञानागार कानन में
शुद्ध मन हंस पै निशङ्क चढ़ती रहै।
फेर फेर दिव्यगुणमालिका प्रवीणता की
पुस्तक पै चातुरी के पाठ पढ़ती रहै॥
बार बार बाजें बोध वीणा के विचार तार
अज्झल् बलित वाणी ध्वनि कढ़ती रहै।
इन्दुमुखी अबला सी सबला सरस्वती में
मेधा महावीरता की बेलि बढ़ती रहै॥१॥

सुन्दर विशाल भाल मन्दिर में बैठ कर
शङ्कर विशुद्ध ज्ञानदीपक जगाती है।
दोष के दुरानन पै चेतना प्रचण्ड शिखा
उगल उगल मसि मोह की लगाती है॥
संवित् प्रकाशराशि न्यायकर मार मार
अधम अबोध अन्धकार को भगाती है।
मङ्गल की मूल महावीरता सरस्वती की
जीव को सुधार सुख रस में पगाती है॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारी प्रतिभा की गति प्याली भर भर कर
लोकरचना का रस पान करती रहै।
भूलै न प्रमाण को न त्यागै तर्कसाधन को
खोज खोज ज्ञान गुणगान करती रहै॥
सामयिक युक्तिवाद-पटुता का मान करै
मन्दमूढ़ता का अपमान करती रहै।
शङ्कर उदार महावीरता सरस्वती की
आदर अनादर का दान करती रहै॥३॥

प्रामादिक पक्षपात पापी के न पास रहै
सत्य को असत्य से अशुद्ध करती नहीं।
औपाधिक धारणा से दम्भ को न दूर करै
स्वाभाविक भावना में भूल भरती नहीं॥
न्याय को कठोर काट छाँट को न पोच कहै
कोरी काँय काँय पर कान धरती नहीं।
शङ्कर अनूठी महावीरता सरस्वती की
इन्दिरा की इन्द्रजालियों से डरती नहीं॥४॥

शङ्कर कुमतपन्थ-तारों की दुराशा-दुति
धर्म्मतत्ववाद-तेजपुञ्ज में बिलाती है।
ध्यान धारणादि योग साधन सरोवर में
सामाधिक संयम सरोरुह खिलाती है॥
विद्याबल-वासर में आवै ना अविद्या-निशि
सिद्धि-चकई को सिद्ध-चक से मिलाती है।
ब्रह्मरविरूपा महावीरता सरस्वती की
ऊँचे अधिकारियों को अमृत पिलाती है॥५॥

गोतम, कणाद, मनु, कपिल, पतञ्जलि जी,
व्यासदेव, जैमिनि के ध्यान में धसी रही।
रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र, बुद्धदेवजी में रही
शङ्कर के शुद्ध ब्रह्मवाद में बसी रही॥
साधुभाषाभाषी हरिकिङ्कर कबीरजी की
ज्ञान-गरिमा के गास गास में गसी रही।
मुक्ति-महिमा सी महावीरता सरस्वती की
स्वामी दयानन्दजी के लक्ष्य में लसी रही॥६॥

मान-दान मम्मट को माघ को महत्व-दान
दान कालिदास को सुयश का दिला चुकी।
रामरस तुलसी को काव्यरस केशव को
श्यामाश्याम-नामरस सूर को पिला चुकी॥
नागरी उजागरी की उन्नति का मान-पान
भारत के इन्दु हरिचन्द को खिला चुकी।
ऐसे कवियों में महावीरता सरस्वती की
शङ्कर से दीन मतिहीन को मिला चुकी॥७॥

साहसी सुजान को सुपन्थ दरसाती रहै
कायर कुचालियों की गैल गहती नहीं।
भिक्षुक विचारशील साधु को सपूत कहै
पापी धनवान को प्रतापी कहती नहीं॥
उद्यमी उदार के सुकर्म का प्रकाश करै
आलसी बलिष्ठ की बड़ाई सहती नहीं।
शङ्कर निशङ्क महावीरता सरस्वती की
कोरे बकवादियों के पास रहती नहीं॥८॥

प्यारे पण्डितों की प्यारी पण्डा पै प्रसन्न रहै
मानी मूढ़ मण्डल पै रोष करती रहै।
लेखक महाशयों की लेखनी को चूम चूम
देवनागरी का पूरा कोश करती रहै॥
सत्य समालोचना के द्वारा पक्षपात छोड़
सबके प्रकट गुण दोष करती रहै।
ग्रन्थमालिका से महावीरता सरस्वती की
शङ्कर पढ़ों का परितोष करती रहै॥९॥

नूतन निबन्ध मनभावते विचित्र चित्र
नाना विषयों से वर वानिक बनाती है।
शङ्कर प्रतापशील सज्जन महोदयों के
जीवन-चरित्र जन जन को जनाती है॥
हिन्दी को सुधार गद्य पद्य का प्रचार करै
रूठी व्रज-भाषा को भी सादर मनाती है।
ज्ञानी ग्राहकों से महावीरता सरस्वती की
लेख अलबेले अङ्क अङ्क में गिनाती है॥१०॥

विद्याबलहीन सुख सूने सूम सम्पति को
छोड़ छोड़ भागे साथ कुछ भी न ले गये।
लालची लबार लंठ पातकी प्रमादी पोच
कालकी कुटिल चाल चक्की में दले गये॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्कर असंख्य हठबादी अभिमानी मूढ़
मोह-छलिया के छलबल से छले गये।
मिली जिनको न महावीरता सरस्वती की
जीवन बिताय वृथा वे नर चले गये॥ ११॥

जूझैं शब्द-संगर में वैयाकरणों के झुंड
हारे कविकोविद न सम्पादक जीते हैं।
प्रेमामृत बूँद भी रहा न शील-सागर में
हा न वैरवारि से घमंड घट रीते हैं॥
शङ्कर से तुकियों की भद्दी रचना का रस
नामी नामी नागरी के नागर न पीते हैं।
मेल में मिलेगी महावीरता सरस्वती की
हायन हमारे संग सातही तो बीते हैं॥१२॥

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा।

ज्योतिष-वेदाङ्ग।

कई महीने से "बार्हस्पत्य" उपनामधारी कोई विद्वान् "हिन्दुस्तान रिव्यू" में ज्योतिष-वेदाङ्ग पर बहुत ही विद्वत्तापूर्ण लेख लिख रहे थे। ये लेख अब समाप्त हो गये हैं। आपही ने लगधमुनि-प्रणीत ऋग्यजुःसम्बन्धी ज्योतिष वेदाङ्ग को इंडियन-प्रेस, प्रयाग, में छपाकर, प्रकाशित किया है। इसके पाठ में बड़ा गड़बड़ था। परम्परा से जिसे जैसा शुद्धाशुद्ध पाठ याद था वह वैसाही पढ़ता था। योरप के एक आध पण्डित की संग्रह की हुई पोथियों में और भी अधिक पाठ-भेद था। इसी दोष को दूर करने के लिए "बार्हस्पत्य" जी ने इस पुस्तक में एक तरफ़ प्रचलित पाठ और दूसरी तरफ़, उसी के सामने, सान्वय साधु पाठ प्रकाशित करके इस शास्त्र का पुनरुद्धार कर दिया। आपने यह बहुत बड़ा काम किया।

परन्तु "हिन्दुस्तान-रिव्यू" में आपने जो लेखमालिका प्रकाशित करके इस प्राचीन ज्योतिष शास्त्र की अँगरेज़ी में विस्तृत व्याख्या की है वह काम इससे भी बड़ा है।

इन लेखों के पढ़ने से मालूम होता है कि "बार्हस्पत्य" जी सचमुच ही बार्हस्पत्य—बृहस्पति के अपत्य या वंशज—हैं। आपने इस ऋग्यजुःसम्बन्धी ज्योतिष शास्त्र का अनुवाद और उसकी व्याख्या इस विद्वत्ता, इस योग्यता, इस खोज, इस कल्पना के साथ अँगरेज़ी में की है जिससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि आप नवीन और प्राचीन ज्योतिष, उच्च कोटि के गणित-शास्त्र, तथा अँगरेज़ी और संस्कृत विद्या में अद्भुत अधिकार रखते हैं। पहले तो इस शास्त्र का जैसा पाठ आज दो तीन हज़ार वर्ष से चला आता था वह बहुत स्थलों में अशुद्ध था, फिर डाक्टर थीबो, और दक्षिण के प्रसिद्ध पण्डित मोडक और दीक्षित आदि से भी उसके कितनेही पद्यों का अर्थ न लगता था। परन्तु इन कठिनाइयों को "बार्हस्पत्य" जी ने बहुत कुछ हल कर दिया। आपने पाठ का भी संशोधन कर दिया और व्याख्या भी कर दी। अपनी व्याख्या में आपने अनेक नई नई बातें कही हैं और अनेक स्थलों पर डाक्टर थीबो के कथन का खण्डन किया है।

डाक्टर साहब ने, कई बरस हुए, यजुर्वेदीय ज्योतिष की व्याख्या और आलोचना प्रकाशित की थी। सुनते हैं डाक्टर साहब ने "बार्हस्पत्य" जी की लेख-मालिका की समालोचना लिखी है, जो शीघ्रही प्रकाशित होगी। समालोचना के लिए डाक्टर साहब का क़लम उठाना मानों इस बात का जाज्वल्यमान प्रमाण है कि "बार्हस्पत्य" जी के लेख सविशेष विद्वत्तापूर्ण हैं। "बार्हस्पत्य" ऐसे विद्वान् इस देश के ज्योतिर्विदों के भूषण हैं।

खोज, कल्पना और आलोचना में योरपवालोंही का आसन अभी तक उच्च समझा जाता था; पर "बार्हस्पत्य" जी ने दिखला दिया, कि इन विषयों में भी यदि इस देश के विद्वान्, मनोनिवेशपूर्वक परिश्रम करें, तो वे पाश्चात्य विद्वानों से भी उच्चतर आसन के अधिकारी हो सकते हैं। "बार्हस्पत्य" जी की स्थिति आज कल काशी में है। आप कायस्थ हैं। अतः कायस्थों के लिए विशेष प्रसन्नता, नहीं गर्व, की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जो उनमें "बार्हस्पत्य" ऐसे संस्कृतज्ञ पण्डित और ज्योतिषी हैं। यदि "बार्हस्पत्य" जी योरप या अमेरिका के निवासी होते और वहां वे ऐसे विद्वत्ता-पूर्ण लेख लिखते तो उनका बहुत बड़ा नाम होता। परन्तु विद्वानों को नाम की तादृश परवा नहीं होती। विद्वत्तापूर्ण लेख लिखने, या कोई पाण्डित्यप्रदर्शक काम करने, से उन्हें जो आन्तरिक सन्तोष होता है वही उनके परिश्रम का पूरा पुरस्कार है।

दुर्ज्ञेयार्थे लागधे ज्यौतिषेऽस्मिन्
सुस्पष्टार्था येन टीका व्यधायि।
सोऽयं विद्वद्वृन्दलब्धप्रतिष्ठो
बार्हस्पत्यो दीर्घमायुष्यमीयात्॥

स्त्री-शिक्षा की आलोचना।

स्त्रियों को शिक्षा देना चाहिए या नहीं, इस प्रश्न का अब समय नहीं। अब तो इस देश में बहुत कम लोग ऐसे होंगे जो स्त्रियों को शिक्षा देना बुरा समझते हों। शिक्षा यदि पुरुषों को लाभदायक है तो स्त्रियों को भी लाभदायक होनी ही चाहिए। हां, किस तरह की और कितनी शिक्षा स्त्रियों को देनी चाहिए, यह दूसरी बात है। पर देनी चाहिए, यह निश्चित है।

और और प्रान्तों में तो स्त्री शिक्षा का कुछ प्रचार भी हुआ है, और उस प्रचार में दिनोंदिन उन्नति भी हो रही है, पर संयुक्त प्रान्त जैसे और और बातों में पीछे पड़ा हुआ है, वैसेही स्त्री-शिक्षा में भी है। हर साल अपने अपने प्रान्त की गवर्नमेंट शिक्षा-सम्बन्धी एक रिपोर्ट प्रकाशित करती है। इस रिपोर्ट में शिक्षा-सम्बन्धी प्रायः सभी मुख्य मुख्य बातों का उल्लेख रहता है। इन प्रान्तों की गत वर्ष सम्बन्धी इस रिपोर्ट में स्त्री-शिक्षा विषयक जो अंश है उसे पढ़ कर बड़ा अफ़सोस होता है। इसलिए कि इस तरफ़ स्त्री-शिक्षा की बड़ीही दुरवस्था है।

संयुक्त-प्रान्त के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर अब तक टी०सी० लिविस साहब, एम०-ए०, थे। आपको गत वर्ष पेन्शन हो गई। आप जब से इन प्रान्तों के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर हुए तब से आपने शिक्षा-सम्बन्धी अनेक उत्तमोत्तम काम किये; अनेक संशोधन किये; अनेक प्रकार से शिक्षा की उन्नति के प्रयत्न किये। और जो कुछ आपने किया सो तो किया ही, स्त्री-शिक्षा की तरफ़ आपने विशेष ध्यान दिया।

प्रजा पर प्रभुता करने वाले सभ्य राजा का पहला कर्त्तव्य यह है कि वह प्रजा की शिक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध करे। जिन कामों में राजा को प्रजा से कर के रूप में प्राप्त किया हुआ धन ख़र्च करना पड़ता है उनमें शिक्षा सबसे प्रधान है। प्रजा का धन राजा के पास धरोहर के तौर पर रहता है। राजा को उसका सदुपयोग करना चाहिए और कार्य के महत्त्व के अनुसार न्यूनाधिक अंश में ख़र्च करना चाहिए। शिक्षाप्रचार ऐसा विषय है जो सबसे अधिक महत्त्व रखता है। परन्तु गवर्नमेंट ने १९०५-०६ में इस काम के लिए सिर्फ़ ६६, २१, ३१८ रुपये ख़र्च किये। अब विचार करने की बात है कि जिन प्रान्तों की मनुष्य-गणना ४,७६,९१,७८२ है उनमें ६६ लाख रुपये ख़र्च करना दाल में नमक के बराबर भी तो नहीं! आदमी पीछे कोई छः आने पड़ा! फ़ीस से जो आमदनी होती है वह यदि इससे निकाल डाली जाय तो और भी कम औसत पड़े।

गत वर्ष इन प्रान्तों में ९६७ मदरसे ऐसे थे जिनमें लड़कियां शिक्षा पाती थीं। पहले की अपेक्षा मदरसों की संख्या कोई २० फ़ी सदी के हिसाब से बढ़ी है। ग़नीमत है। परन्तु जहां लड़कों के लिए १४,७४१ मदरसे हैं वहां लड़कियों के लिए सिर्फ़ ९६७ मदरसों का होना इस बात का प्रमाण है कि स्त्री-शिक्षा की अवस्था कितनी हीन है। लड़कों के प्रति १५ मदरसों के मुक़ाबले में लड़कियों का सिर्फ़ १ मदरसा है! गत वर्ष इन प्रान्तों में ५, ४३, १३० लड़के शिक्षा पाते थे। और लड़कियां? सिर्फ़ ३३, २०६! इस तरह भी प्रायः वही औसत पड़ा।

११२८१५
पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गत मनुष्य-गणना के अनुसार संयुक्त प्रान्त में २,४६,१६,९४२ पुरुष और २,३०,७४,८४० स्त्रियां हैं। परन्तु पुरुषों में फ़ी सदी केवल १४·७१ (क़रीब पौने पन्द्रह) लड़के शिक्षा पा रहे हैं। और लड़कियां? सौ में पूरी एक भी नहीं! प्रति सौ स्त्रियों में सिर्फ़ ·९६ (दशमलव नौ, छः)!!! इस साल स्त्री-शिक्षा में उन्नति हुई है तब यह हाल है। उन्नति भी थोड़ी नहीं, फ़ी सदी ३० के हिसाब से मदरसों में लड़कियों की संख्या बढ़ी है। इस समय ३३,२०६ लड़कियां मदरसों में पढ़ रही हैं। बारह वर्ष पहले इस की तिहाई भी न थीं।

यह जो प्रति सौ स्त्रियों में ·९६ लड़कियां मदरसे जाती हैं उनके लिए ख़र्च क्या बैठता है, सो देखिए। गत वर्ष इस मद में गवर्नमेंट ने १,७०,००० रुपया ख़र्च किया। इसमें लड़कियों के कालेज का ख़र्च शामिल नहीं। क्योंकि कालेज में सिर्फ़ ३९ लड़कियां थीं और वे प्रायः क्रिश्चियन थीं। यह रुपया सब गवर्नमेंट ही का नहीं, और लोगों का भी है। हिसाब नीचे देखिए—

गवर्नमेंट का	...	९४,०००
और लोगों का दिया हुआ	...	७२,०००
फ़ीस से वसूल हुआ	...	४,०००
कुल	...	१,७०,०००

जहां २, ३०, ७४, ८४० स्त्रियां हैं वहाँ उनकी शिक्षा के लिए गवर्नमेंट ने ख़र्च कितना किया? १,७०,००० रुपया। अर्थात् साल भर में फ़ी स्त्री १ पाई!!! यह भी सब उसने अपने ख़ज़ाने से नहीं दिया, औरों का दान भी इसमें शामिल है। और गवर्नमेंट का ख़ज़ाना भी तो प्रजाही का ख़ज़ाना है। वह भी तो उसी के लाभ के लिए है। गवर्नमेंट इस बात को क़बूल करती है कि और प्रान्तों के मुक़ाबले में वह स्त्री-शिक्षा के लिए बहुत कम ख़र्च करती है; पर कहती है कि अधिक ख़र्च करने का लाभदायक तरीक़ा तो कोई बतलावे। लिविस साहब ने कई लाभदायक तरीक़े अपनी रिपोर्ट में बतलाये हैं। पर गवर्नमेंट ने उनके बतलाये हुए तरीक़ों से अधिक रुपया ख़र्च करके स्त्री-शिक्षा की उन्नति करने का अब तक कोई नाम लेने लायक़ प्रबन्ध नहीं किया।

कुछ समय हुआ एक कमिटी स्त्री-शिक्षा के उत्तम उपाय ढूंढ़ निकालने के लिए मुक़र्रर हुई थी। उसकी रिपोर्ट गवर्नमेंट के पास पहुंचे बहुत दिन हुए। कमिटी ने जो उपाय बतलाये उनके अनुसार कारर्वाई करने में ६ लाख रुपये साल का ख़र्च था। डाइरेक्टर साहब ने समझा, भला इतना रुपया गवर्नमेंट क्यों ख़र्च करने लगी। इससे उन्होंने कमिटी की कथित बातों में काट कूट करके सिर्फ़ ३ लाख का ख़र्च रक्खा। पर गवर्नमेंट बेचारी इतनी ग़रीब निकली कि इतना भी ख़र्च वह बरदाश्त न कर सकी। कमिटी ने सिफ़ारिश की कि देहाती मदरसों के मुदर्रिसों को फ़ी लड़की कुछ आने अधिक दिये जाया करें। इससे वे लोग कोशिश करके लड़कियों की संख्या बढ़ावेंगे और महीने में अपनी तनख़्वाह से रुपये दो रुपये ऊपर कमा लेंगे। डाइरेक्टर साहब ने इसे स्त्री-शिक्षा-प्रचार का बहुत अच्छा उपाय समझा। पर गवर्नमेंट के पास रुपया नहीं। वह बेचारी करे क्या? हां जो मदरसे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की तरफ़ से हैं उनमें गवर्नमेंट ने इस सिफ़ारिश के अनुसार कारर्वाई की जाने की मंज़ूरी दे दी। उसने प्रति लड़की के लिए मुदर्रिसों को चार आने देने का नियम किया। पर पीछे से उसे कम करके प्रति ५ लड़कियों के लिए आठही आने रक्खे! इस हिसाब से प्रति लड़की चार आने नहीं किन्तु डेढ़ ही आना पड़ा!

ख़ैर, जब गवर्नमेंट यह समझती है कि प्रजा को, जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों शामिल हैं, शिक्षा देना उसका कर्त्तव्य है तब कभी न कभी तो वह उसकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध करेहीगी।

जो लड़कियां मदरसे जाती हैं वे बहुत दिन तक मदरसे में नहीं रहतीं। "लोअर प्राइमरी" अर्थात् नीचे के प्रारम्भिक, दरजों से आगे बहुत कम लड़कियां जाती हैं। इसलिए गवर्नमेंट ने इरादा किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि लड़कियां के मदरसों में पढ़ने वाली जो लड़कियां "लोअर प्राइमरी" परीक्षा पास करके "अपर प्राइमरी" दरजों में पढ़ेंगी उन्हें एक रुपया महीना वज़ीफ़ा मिलेगा। और जो "अपर प्राइमरी" पास करके हिन्दी मिडिल में पढ़ेंगी उन्हें दो रुपया महीना मिला करेगा। पर ग़रीबी के कारण गवर्नमेंट अभी इस इरादे को पूरा नहीं कर सकी। ईश्वर करे गवर्नमेंट की अर्थ-कृच्छ्रता शीघ्रही दूर हो जाय, जिसमें ये वजीफ़े लड़कियों को मिलने लगें। गवर्नमेंट मुफ़्त में भी प्रारम्भिक शिक्षा देने का विचार कर रही है।

इन प्रान्तों में सिर्फ़ कुछ क्रिश्चियन लोगों की ही लड़कियां ऊंची शिक्षा पा रही हैं। यदि वे निकाल डाली जांय तो ऊंचे दरजों में पढ़नेवाली लड़कियों की संख्या घट कर सिर्फ़ ४१ रह जाय। इसी कारण से गवर्नमेंट ने, लड़कियों के लिए, अँगरेज़ी की मिडिल परीक्षा जारी रक्खी है। इस दरजे में गत वर्ष क्रिश्चियन लोगों की लड़कियों को छोड़ कर, कुल २९२ लड़कियां थीं। ७७ लड़कियां अँगरेज़ी मिडिल की परीक्षा में शामिल हुई थीं। उनमें से ६४ पास हुईं।

देशी भाषाओं की अन्तिम परीक्षा में, गत वर्ष, सिर्फ़ ७ लड़कियां शामिल हुई थीं, जिनमें कुल ४ पास हुईं। अपर प्राइमरी की परीक्षा ३१२ ने दी और २२९ पास हुईं। इस परीक्षा का फल बहुत अच्छा रहा। यही परीक्षा हिन्दुस्तानी लड़कियों के लिए मानों अन्तिम परीक्षा है। इसके आगे बहुत कम लड़कियां पढ़ती हैं। यहीं तक पढ़ना उनके लिए बड़ी बात है।

इन प्रान्तों में स्त्रियों के लिए सिर्फ़ एकही कालेज इसाब्यला थोबर्न नाम का है। इसमें प्रायः यूरोपियन और यूरेशियन लोगों की ही लड़कियां शिक्षा पाती हैं। गत वर्ष इस कालेज से ६ स्त्रियां एफ० ए० की परीक्षा में गई थीं। उनमें से ५ पास हो गईं। एक ने विश्वविद्यालय भर में पहला नम्बर पाया! यह इस बात का सबूत है कि मानसिक कामों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां किसी प्रकार कम नहीं। बनारस के सेंट्रल हिन्दू-कालेज और प्रयाग के कान्वेंट स्कूल में भी स्त्री-शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध है। मुरादाबाद में लड़कियों के लिए एक नया स्कूल खुला है। आशा है इस स्कूल के द्वारा स्त्री-शिक्षा के प्रचार में विशेष उन्नति होगी। इसके लिए एक अच्छी इमारत बन रही है। अब तक इसमें कोई २० हज़ार रुपया ख़र्च हो चुका है। इसकी प्रधानाध्यापिका के पद पर ३०० रुपये मासिक तनख़्वाह पर, एक विदुषी हिन्दू-स्त्री नियत की गई है।

इन प्रान्तों में कुछ मदरसे ऐसे भी हैं जिनमें लड़के और लड़कियां एक साथ शिक्षा पाती हैं। ऐसे मदरसों में लड़कियों की संख्या, गतवर्ष ६,३०० थी। इनके लिए न तो गवर्नमेंट को कुछ अधिक ख़र्च करना पड़े और न कुछ विशेष प्रबन्धही करना पड़े।

लड़कियों के मदरसों के लिए अध्यापिकायें मुश्किल से मिलती थीं। इसलिए गवर्नमेंट ने लखनऊ में एक नार्मल स्कूल खोल दिया है। यहां लड़कियों और स्त्रियों को अध्यापन काम सिखलाया जाता है। गत वर्ष इसमें २८ स्त्रियां थीं। १९ मुसल्मान थीं और सिर्फ़ ९ हिन्दू! हिन्दू-मुसल्मानों की आबादी का ख़याल कीजिए और फिर ९ के अङ्क को लेकर औसत लगाइए। अध्यापन-कार्य्य की शिक्षा की तरफ़ हिन्दू-स्त्रियों के अभिभावकों का बिलकुल ही ध्यान नहीं जान पड़ता। इस नार्मल स्कूल से मिला हुआ लड़कियों का माडल स्कूल भी है। उसमें कोई १०० लड़कियां शिक्षा पा रही हैं। बनारस में सिगरा के नार्मल स्कूल में भी लड़कियों को अध्यापन-शिक्षा दी जाती है और लखनऊ के इसाब्यला थोबर्न नार्मल स्कूल में भी। इस पिछले स्कूल को गवर्नमेंट से २०० रुपये महीने मदद मिलती है। इस स्कूल में पढ़ी हुई लड़कियों और स्त्रियों को परीक्षा पास करते देर नहीं होती कि उन्हें नौकरी मिल जाती है। उनकी सब कहीं चाह है। पर वहां रहने से २० रुपये महीने स्कूल का ख़र्च पड़ता है। अगर गवर्नमेंट वहां पढ़ने वाली स्त्रियों को वज़ीफ़े का प्रबन्ध करदे तो स्त्री-शिक्षा के प्रचार में बड़ी उन्नति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो। इनके सिवा और भी दो एक नार्मल स्कूल इन प्रान्तों में हैं।

देहरादून में जो कन्या-पाठशाला है वह इस समय बहुत अच्छा काम कर रही है। उसकी प्रधानाध्यापिका श्रीमती महादेवी जी हैं। आपके काम से खुश होकर गवर्नमेंट ने जनवरी ०६ में आप को "क़ैसरे-हिन्द" नाम का एक चाँदी का पदक प्रदान किया है। इस पाठशाला में दूर दूर से लड़कियां पढ़ने आती हैं। कई एक राजे महाराजे और रानियां इसकी मददगार हैं। इसे स्थापित हुए कोई पाँच ही वर्ष हुए। पर इतने थोड़े समय में भी इसने बहुत तरक़्क़ी करली है। इसके साथ एक बोर्डिंग हाउस (छात्रालय) भी है। इसकी अध्यापिकायें सब माननीय घरों की स्त्रियां हैं। परदे का भी यहां ख़याल रक्खा जाता है।

संस्कृत, हिन्दी, अँगरेज़ी, बँगला, गणित, आरोग्य-रक्षा, सीना-पिरोना, खाना-बनाना, सङ्गीत, इतिहास, भूगोल आदि सभी आवश्यक विषयों की शिक्षा इस में दी जाती हैं। भजन-प्रार्थना इत्यादि आर्य्यसामाजिक पद्धति के अनुसार धार्मिक शिक्षा देने का भी प्रबन्ध है। गतवर्ष इसमें ८० लड़कियां थीं। उनमें से कोई २१ लड़कियां इसके छात्रालय में हीं रहती थीं।

५ मार्च १९०६ को श्रीमती प्रिंसेज़ आफ़ वेल्स इस पाठशाला में पधारीं और यहां के सुप्रबन्ध से बहुत प्रसन्न हुईं। पाठशाला की तरफ़ से उन्हें एक अभिनन्दन पत्र दिया गया। इस अभिनन्दन पत्र को श्रीमती महादेवी जी ने पढ़कर सुनाया। सुनते हैं श्रीमती महादेवी जी संस्कृत का भी अच्छा अभ्यास रखती हैं। आपने इस अभिनन्दन पत्र के अन्त में भारवि के किरातार्जुनीय का जो पद्य दिया है उससे आपकी संस्कृतज्ञता का परिचय भी मिलता है। इस पद्य का अभिनन्दन-पत्र में दिया जाना बहुतही समयानुकूल हुआ। पद्य यह है—

अद्य क्रियाः कामदुघाः क्रतूनां सत्याशिषः सम्प्रति भूमिदेवाः।
आसंसतेरस्मि जगत्सु जातस्त्वय्यागते यद्बहुमानपात्रम्॥

अर्थात् हम लोगों ने जितने यज्ञादि पुण्यकारी धार्म्मिक काम किये थे उन सबका फल आज मिल गया। भूमिदेवों ने जितने आशीर्वचन कहे थे सब आज सच हो गये। यहां पधार कर आज आपने हम लोगों को (अथवा इस पाठशाला को) सृष्टि के आरम्भ से सारे संसार की दृष्टि में सम्मान-पात्र बना दिया।

इस पाठशाला का काम विशेष करके चन्दे से चलता है। सर्व-साधारण को चाहिए कि इस उपयोगी पाठशाला की मदद करें।

कुछ समय हुआ हमने सरस्वती की किसी संख्या में जालन्धर के कन्या-महाविद्यालय का कुछ हाल लिखा था। यह विद्यालय इन प्रान्तों में नहीं, किन्तु पञ्जाब में हैं। गत वर्ष पञ्जाब के एक और विद्यालय की रिपोर्ट हमें मिली। इसका नाम है बालिका-विद्यालय। यह फीरोज़पुर में है। इसे लाहौर के देव समाज ने स्थापित किया है। इस विद्यालय में ४० लड़कियों के लगभग हैं; पर रिपोर्ट के अन्त में शिक्षा-विभाग के अफ़सरों की जो सम्मतियां छपी हैं उनसे जान पड़ता है कि इसमें भी शिक्षा-प्रदान का प्रबन्ध प्रशंसनीय है। इस विद्यालय की इमारत में १२,३०० रुपये लगे हैं जिसमें से आधे गवर्नमेंट ने दिये हैं। विद्यालय को जारी हुए तो कई वर्ष हुए; पर नई इमारत २९ एप्रिल १९०६ को खोली गई थी। अब उसी में विद्यालय है। इस पाठशाला में भी दूर दूर से लड़कियां पढ़ने आती हैं। इसके साथ भी एक छात्रालय है। रिपोर्ट के देखने से मालूम होता है कि इसमें परलोक-वासी डाक्टर चन्दूलाल की विधवा, अध्यापिका हैं। वही प्रबन्धकर्त्री भी हैं। उनके मातहत और भी दो एक अध्यापक-अध्यापिकायें हैं। हिन्दी, अँगरेज़ी, गणित, भूगोल, सीना-पिरोना, सङ्गीत, पाकक्रिया, शरीर-रक्षा और गृह-कार्य्य आदि की शिक्षा इसमें दी जाती है। विषय सब उपयोगी हैं। इसकी सबसे ऊंची क्लास का नाम है "सुगृहिणी" क्लास। उत्तम नाम है। यदि इस विद्यालय की पढ़ी हुई लड़कियां सुगृहिणी हों, तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर इससे बढ़कर और क्या शिक्षा हो सकती है? देव-समाज के स्थापक श्रीमान् सत्यानन्द जी अग्निहोत्री का यह कार्य्य प्रशंसा के योग्य है। उनके कामों में से जितना उपकार इससे होगा और किसी से न होगा।

प्रदर्शिनी-व्याख्यान-भूमिका* ।

(छप्पै)

परमेश्वर को धन्य सिन्धु जो करुणा का है;
दया-कृपा का धाम क्षमाधर जगत् पिता है।
"खेती" लोक-स्वरूप उसी से हरी भरी है;
"कारीगरी" अपार उसी की झलक रही है।
है धन्य वही परमात्मा जो यहाँ तक लाया हमें;
यह उन्नति अरु उद्योग का शुभ दिन दिखलाया हमें १

अफ़सरानॅ ज़ी-शान! ज़मींदारानॅ गिरामी!
पण्डित विद्यावान! चतुर कारीगर नामी!
काश्तकार! तुज्जार! मुबारक सबका आना!
है इज़्ज़त का सबब, क़दमरञ्जा फ़र्माना।
हमदर्दी के इज़हार का, बदिल मुबारकबाद है!
यक जहती के आसार का, बदिल मुबारकबाद है! २

भरत-खण्ड का हाल ज़रा देखो है कैसा;
आलस का जंजाल ज़रा देखो है कैसा।
ज़रा फूट की दशा खोल कर आँखें देखो;
ख़ुदग़रज़ी का नशा, खोलकर आँखें देखो।
है शेख़ी दौलत की कहीं, बल का कहीं गुमान है,
है ख़ानदान का मद कहीं, कहीं नाम का ध्यान है ३

अवगुण ये ही हुए सबब इस बरबादी के,
हुए बाहिमी रञ्ज सबब इस नाशादी के।
दिल में जब कर लिया ग़रज़मन्दी ने डेरा,
नज़र न आया मुल्क, निगह में बसा अँधेरा।
जो आप भले तो जग भला, नहीं ग़ैर की आह है;
बस इसी लिये, ऐ भाइयो, भारतवर्ष तबाह है ४

फिरते हैं अशराफ़ गली में मारे मारे;
कई अहलॅ-ऐसाफ़ हुए कँगले बेचारे।
थे अमीर, पर आज बदन पर नहीं लँगोटी;
मिडिल कर लिया पास, पर नहीं मिलती रोटी।
जब सनअ़त हिर्फ़त खो गई,
रोज़गार उनका हुआ।
ख़ुद कहो तुम्हीं इन्साफ़ से,
यह न होय तो होय क्या? ५

जो देखो वह हुआ नौकरी का मुत्लाशी;
जो है दौलतमन्द उसे सूझी ऐयाशी।
चीज़ हुई दर्कार वही झट मोल मँगाली;
कहाँ, किस तरह, बनी, न की कुछ देखा भाली।
यों दस्तकारियां उठगईं; रोज़गार ग़ायब हुआ;
ख़ुद कहो तुम्हीं इन्साफ़ से, यह न होय तो होय क्या? ६

फैला ख़ूब निफ़ाक़, दोष किसको दें कहिये?
बिगड़ गया अख़लाक़, दोष किसको दें कहिये?
बढ़ी अगर मुफ़लिसी दोष किसको दें कहिये?
है अजीब बेकसी, दोष किसको दें कहिये?
क्या समझोगे तुम दोष सब अपने ही किर्दार का?
या है सब दोष नसीब का, या अपनी सर्कार का? ७

नहीं नहीं, मत कहो नसीबा बुरा बिरादर;
खोते हो ख़ुद दूध गाय चलनी में दुहकर।
अगर न होती गाय बुरी क़िसमत बतलाते;
छिन जाता गर दूध, राज को दोष लगाते।
कुछ नहीं दोष सरकार का, बुरी नहीं तक़दीर है;
ऐ यार! फ़क़त् तदबीर की यह सारी तक़सीर है ८

जिसने भारत भूमि तुम्हारे लिये बनाई;
काम-धेनु की तरह प्रजागण को सुखदाई।

---

* कानपुर के पास चौबेपूर में तारीख़ ७-१०-०६ को U. P. Industrial and Agricultural Exhibition Committee के चेयरमैन राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०, हाईकोर्ट-वकील, ने प्रदर्शिनी खोले जाने के अधिवेशन में आगत महाशयों का स्वागत करते हुए यह कविता सुनाई थी। अवसर के अनुकूल इसमें राजनैतिक पक्ष बचाया गया है और उर्दू-हिन्दी की खिचड़ी से काम लिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस ईश्वर को मित्र, न तुम इस तरह भुलाओ;
होकर शुक्रगुज़ार प्रेम से सीस झुकाओ।
है उसने तो सब कुछ दिया, जो हम में कुछ सार है,
तो प्यारे भारत वर्ष का समझो बेड़ा पार है ९

सड़कें, नहरें, तार, शफ़ाख़ाने, अरु थाने;
रेल, अदालत, मिले मदरसे भी मन माने।
उस पर भी है धर्म, तिजारत, की आज़ादी;
है दिल से मंज़ूर रिआया को दिलशादी।
वह कई तरह तैयार है
भारत के उद्धार को;
फिर करते हैं बदनाम हम
किस मुँह से सरकार को? १०

तुहमत देना बुरा किसी को बिला ज़रूरत;
ख़ुद कोशिश कुछ करो मिटा बाहमी कुदूरत।
परमेश्वर का काम, जाँच देखा, दुरुस्त है;
सरकारी भी काम नियम से ख़ूब चुस्त है।
हम भी जो काम अपना
करें भारत का उद्धार हो;
यह ग़ायब "हा हा" कार हो
जग में "जय जय कार" हो ११

नहीं हमें कुछ द्वेष बाहरी सौदागर से,
सरोकार है हमें ज़रूरी अपने घर से।
घर का है जो माल उसे कुछ देखें भालें;
दूरन्देशी करें, देश की दशा सँभालें।
जो दस्तकारियां मुल्क की
उन्हें न मरने दीजिये;
यह जाँबख़शी का जस बड़ा
उन्हें जिला कर लीजिये १२

जो हाँ अच्छी कलें, काम की करने वाली;
अख़तियार कर उन्हें देश की करो बहाली।
अच्छी कारीगरी जौन आला क़िसमों की;
वह सब हासिल करो, हौसिले से मुलकों की।
अपनों को भेजो सीखने
जर्मनि इँगलिस्तान से;
ढँग सनअत अरु व्यापार के
अमेरिका जापान से १३

कौन कौन सी चीज़, कहां होती है, कैसी,
हो सकती है यहां तिजारत उससे जैसी।
सो सब सोच विचार लाभ का ढंग निकालो;
जो देशी व्यापार, बिना तुम उसको डालो।
इस ढँग से ही हिन्दोस्ताँ
होगा मालामाल यह;
और दौलत से व्यापार की
होगा मुल्क निहाल यह १४

है ऐसी मज़बूत दिलों में हवस समाई;
जिस को देखा बना नौकरी का सौदाई।
अगर किसी ने अक्ल तिजारत में कुछ छाँटी;
वही पकड़ ली राह, पुरानी, पीटी पाटी।
अब कल की पद्धत छोड़कर
देखो दुनिया आजकी;
सब जगह काम देती नहीं
बातें बाबा राज की १५

रेशम, रेहू, लाख, गोंद, सन, गूदड़, गिट्टी,
बहुत तरह की घास, लकड़ियां, कंकर, मिट्टी,
अजब अजब फल, फूल, छाल, जड़,बूटी, गल्ले,
धातें, नील, कपास, आदि हैं जिसके पल्ले।
वह देश कहो व्यापार कर
क्या क्या कर सकता नहीं?
वह कभी दूसरे मुल्क की
पर्वा कर सकता नहीं १६

जो आवें याँ चीज़, कहीं से, खपने क़ाबिल;
ऐसी कोशिश करो उसी को बनें मुक़ाबिल।
जो न एक से बने करो कम्पनियाँ क़ायम;
जिससे होता रहे फ़ायदा उनसे दायम।
जो बात कठिन है एक से
वह सौ से आसान हो;
ऐ भाई! समझो तो सही
इत्तिफ़ाक़ की शान को १७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेती का भी ढंग हिन्द में जो है जारी,
उससे खुलती नहीं ज़िमीं की ताक़त सारी।
हल बक्खल की साख़्त, जोतना, बीजा बोना,
खाद कहां के लिए चाहिये कैसो होना।
इन बातों में जब आप की
मश्क़ खूब चढ़ जायगी,
तब कई गुनी हर जिन्स की
पैदायश बढ़ जायगी १८

इसे नुमायश कहो, कहो या इसे प्रदर्शन,
मगर न समझो इसे फ़क़त् चीज़ों का दर्शन।
मेला है यह नहीं, नहीं यह बुढ़वा-मंगल,
नहीं बहर तफ़रीह कोई कुश्ती का दंगल।
मुल्क की तरक्क़ी के लिए
रचा गया है साज सब,
तुम मुल्की ख़िदमत के लिये
करो प्रतिज्ञा आज सब १९

है धीरों का काम देश की सेवा करना;
है वीरों का काम क़दम को आगे धरना।
देशोन्नति का काम नहीं दस बारा दिनका;
यह है उनका काम मक़ूला है यह जिनका।
करके प्रण अच्छे काम का
मुँह को मोड़ेंगे नहीं,
हम कामयाब जब तक न हों,
कोशिश छोड़ेंगे नहीं २०

राय देवीप्रसाद।

ग्रन्थ-गुण-गान।

[१]

विद्या तथा बुद्धि-निधि प्रधान,
न ग्रन्थ होते यदि विद्यमान।
तो जानते क्योंकर आज, मित्र,
स्व-पूर्वजों के हम सच्चरित्र?

[२]

हे ग्रन्थ, द्रव्यादि न एक लेते,
तो भी सु-शिक्षा तुम नित्य देते।
उदारता, निस्पृहता उदार,
होगी भला क्या इससे अपार?

[३]

हे ग्रन्थ, मोद-प्रद सर्व काल,
हुए हज़ारों तुमसे निहाल।
सेवा तुम्हारी करके सहर्ष,
होता हमारे गुण का प्रकर्ष॥

[४]

सद्धर्म का मार्ग तुम्हीं बताते;
तुम्हीं अघों से जग में बचाते।
हे ग्रन्थ, विद्वान तुम्हीं बनाते;
तुम्हीं दुखों से हमको छुड़ाते॥

[५]

दयादि जो सद्गुण विश्व में हैं,
वे भी तुम्हीं से मिलते हमें हैं।
हे ग्रन्थ, कर्म्मण्य, उदार, धीर,
होते तुम्हीं से हम शूर, वीर॥

[६]

होता न जो जन्म कहीं तुम्हारा,
अकार्य्य होता अति ही हमारा।
सन्ताप, हे ग्रन्थ, बिना तुम्हारे
पाते अनेकों हम लोग सारे॥

[७]

जो जीर्ण होने पर भी अपार
त्यागे न, हे ग्रन्थ परोपकार।
बिना तुम्हारे, अति धन्य धन्य,
है कौन ऐसा जग बीच अन्य?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[८]

सर्वस्व जान निज जीवित के समान,
हैं मानते जब तुम्हें बुध भी प्रमाण।
हे ग्रन्थ-रत्न, जग में नर-नाम-धारी
देगा न आदर तुम्हें फिर कौन भारी?

[९]

पुत्रादि कीर्तिकर चिन्ह सभी मही में
होते विलुप्त नर के कुछ काल ही में।
तच्चिन्ह किन्तु जग में अति ही प्रधान—
हे ग्रन्थ, नित्य रहते तुम विद्यमान॥

[१०]

विद्यायें हैं विदित जितनी विश्व में विद्यमान,
हे सद्ग्रन्थ, प्रकट उनके हो तुम्हीं सन्निधान।
देते जो यों तुम न उनको स्वाश्रयानन्दकारी,
होतीं तो वे सब न इतनी विश्व-विख्यात भारी॥

[११]

तुम्हारी, हे ग्रन्थो, निपट जड़ भी, सङ्गति कर,
अहो, हो जाते हैं कुछ समय में पण्डित-वर।
सभी दानों से जो सब समय है श्रेष्ठ विदित—
वही विद्या-दान प्रकट करते हो तुम नित॥

[१२]

किये जाने से भी फिर फिर सदा प्रश्न तुमसे,
नहीं होते जी में कुपित तुम, हे ग्रन्थ, हमसे।
तथा, शिक्षा देते तुम नित बिना ताड़न हमें;
अतः हो क्यों प्यारे फिर तुम हमारे न जग में?

[१३]

छिपाते हो कोई तुम न हमसे बात अपनी;
सुशिक्षा देते हो सरण तुमको, ग्रन्थ, जितनी।
तुम्हारा तो भी जो सतत न करें आदर हम;
हमारा सा होगा अहह! फिर तो कौन अधम?

[१४]

सभी विद्याओं के शरण तुम हो सन्तत जब;
कहो कैसे गावें गुणगण तुम्हारे हम तब?
दिखाता है कोई प्रकट तुम सा अन्य न हमें;
तुम्हीं हो, हे ग्रन्थ-प्रवर, तुमसे सेव्य जग में॥

[१५]

हे ग्रन्थ, सद्गुरु सदा तुम हो हमारे;
हैं सर्वदा हम ऋणी जग में तुम्हारे।
दे ज्ञान, क्योंकि, नित मङ्गलमूलकारी,
हो नित्य नाश करते विपदा हमारी॥

मैथिलीशरण गुप्त।

महाराष्ट्रों में हिन्दी की चर्चा।

समाचार-पत्र पढ़ने वालों में से बहुतों को कोल्हापुर के सुप्रसिद्ध अध्यापक बिजापुरकर का नाम मालूम होगा। आपने "विश्ववृत्त" नाम के अपने मराठी मासिकपत्र में "समर्थविद्यालय" शीर्षक ४२ पृष्ठ का एक उत्तम लेख लिखा है। उसमें आपने राष्ट्रीय शिक्षा की प्रणाली पर विद्यालय स्थापित करने की आवश्यकता दिखलाई है। कुछ दिन पहले, जिस आन्दोलन का—जिस राष्ट्रीय जागृति का—आरम्भ बंगाल में हुआ और जो इस समय हिन्दुस्तान भर में शीघ्रता से फैलता हुआ देख पड़ता है, उसके अनेक हितदायक फलों में से, कोल्हापुर का "समर्थ-विद्यालय" भी एक उत्तम फल है। अध्यापक बिजापुरकर ने, अपने लेख में, यह दिखलाया है कि, "समर्थविद्यालय" किस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए स्थापित किया जायगा; वह किस नीति और किस प्रणाली पर चलाया जायगा; उसमें किन बातों की विशेषता रहेगी; इत्यादि। यद्यपि इन सब बातों की चर्चा और आलोचना करने का, हिन्दुस्तान के सब लोगों को अधिकार है, तथापि हम यहां पर अध्यापक बिजापुरकर के लेख के एकही अंश के सम्बन्ध में कुछ लिखना चाहते हैं। उस अंश का सम्बन्ध हमारी सर्वाङ्गसुन्दर देवनागरी लिपि, और राष्ट्र भाषा होने का दावा रखनेवाली हिन्दी, से है। अध्यापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महोदय के लेख की पूर्ण आलोचना, मराठी भाषा के सुप्रसिद्ध लेखक, मार्मिक समालोचक, और बरार प्रान्त के शिक्षा-विभाग के भूतपूर्व डाइरेक्टर, श्रीयुत विष्णु मोरेश्वर महाजनि, एम० ए०, ने, बम्बई के प्रसिद्ध मराठी-मासिक पत्र "विविधज्ञान-विस्तार" की गत नवम्बर की संख्या में की है। उन्होंने पूर्वोक्त अध्यापक महाशय के उस अंश पर भी अपनी सम्मति दी है, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। वह हिन्दी जानने वालों के लिए बहुत उपयोगी है। मिस्टर महाजनि लिखते हैं—

"समर्थविद्यालय" के प्रबन्ध-कर्त्ता गणों ने इस विषय का विवेचन करके कि, हिन्दुस्तान में एक भाषा कौन सी हो सकती है, संस्कृत को पहला स्थान दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि, प्राचीन समय में हिन्दुस्तान के भिन्न भिन्न प्रान्तों में, संस्कृत ही पण्डितों की व्यवहार-भाषा थी। परन्तु अब उसको फिर उसी पद पर आरूढ़ करना, बिलकुलही असम्भव है। हमारी राय में हिन्दी एक ऐसी भाषा है जिसे साधारण लोग बहुत शीघ्रता से सीख और पढ़ सकते हैं, और जिसका व्यवहार देश भर में सुगमता के साथ किया जा सकता है। उत्तर हिन्दुस्तान में, पञ्जाब से लेकर ब्रह्म देश तक, यह भाषा बोली जाती है, और इसे सब लोग समझते भी हैं। पञ्जाबी और बंगाली भाषायें हिन्दी से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं। मारवाड़, मध्यभारत, मध्यप्रदेश, बरार और गुजरात में भी, हिन्दी-भाषा-भाषी लोग बहुत हैं। ख़ास महाराष्ट्र प्रान्त में भी इस भाषा से लोग अपरिचित नहीं। यहां वाले भी इसे समझ सकते हैं। एकनाथ, तुकाराम, रंगनाथ, शिवदिन केसरी आदि महाराष्ट्र देश के साधु महात्माओं ने हिन्दी में काव्य-रचना की है। कबीर की हिन्दी-कविता तो अनेक महाराष्ट्र सज्जनों को कण्ठ है। महाराष्ट्र देश में जो नाटक खेले जाते हैं, उनमें भी हिन्दी-उर्दू-मिश्रित भाषा सुनने को मिलती है। हिन्दी और उर्दू में व्याकरण की दृष्टि से बहुत थोड़ा भेद है। यद्यपि "समर्थविद्यालय" के प्रबन्ध-कर्त्ताओं को हिन्दी की व्यवहारोपयोग्यता और स्वल्पायाससिद्धि विदित है; तथापि उसको अपने विद्यालय में जारी करने में, उनको दो असुविधायें जान पड़ी हैं। पहली असुविधा हिन्दी-शिक्षकों की दुर्लभता; और दूसरी उसकी लिपि-भिन्नता है। हमारी समझ में उनकी पहली असुविधा निर्मूल है। दक्षिण के द्राविड़ों को हिन्दी भाषा छः महीने में ही अच्छी तरह आ सकती है। महाराष्ट्रीय मुंसिफ़ों को छः महीने अभ्यास करके गुजराती भाषा की परीक्षा पास करते हमने ख़ुद देखा है। गुजराती की अपेक्षा हिन्दी कठिन नहीं है। इससे यह सिद्ध है कि हम लोग हिन्दी सुगमता से सीख सकते हैं। "समर्थ-विद्यालय" के संचालकों ने दूसरी असुविधा जो लिपि की दिखलाई है वह हिन्दी के सम्बन्ध में नहीं है; वह उर्दू के ही सम्बन्ध में है। हिन्दी-ग्रंथ देवनागरी लिपि में लिखे जाते हैं और इसी लिपि में संस्कृत-ग्रन्थ भी लिखे और छापे जाते हैं। संस्कृत से निकली हुई बहुत सी प्राकृत भाषाओं के ग्रंथ इसी लिपि में; अथवा ऐसी लिपि में जो इससे बहुत मिलती जुलती है, लिखे जाते हैं। इसलिए यह कहना सर्वथा सच है कि देवनागरी लिपि का सब प्रान्तों में प्रचार है। अतएव यह सिद्ध है कि, लिपि की कठिनाई हिन्दी के विषय में नहीं है। सिर्फ़ उर्दू-ग्रंथ फ़ारसी लिपि में लिखे जाते हैं। वह लिपि अवश्य कष्टसाध्य है। हिन्दी भाषा के शब्दों का संग्रह प्रायः संस्कृत से लिया गया है। उर्दू के शब्द, फ़ारसी और अरबी आदि से लिये गये हैं। अतएव जिन लोगों की मातृ-भाषा (मराठी, गुजराती, बंगाली, पंजाबी, सिंधी इत्यादि) संस्कृत से निकली है, उनको हिन्दी भाषा सीखना कुछ भी कठिन नहीं है। यद्यपि द्राविड़ भाषा (कनाड़ी, तामिल, तेलगू, तुलू इत्यादि) संस्कृत से नहीं निकली है; तथापि उसमें भी संस्कृत शब्दों का संग्रह फ़ी सदी २० से ४० तक है; और ये संस्कृत शब्द, तत्सम अथवा तद्भव रूप में, प्रायः सब प्रचलित भाषाओं में पाये जाते हैं। अतएव हिन्दी का परिशीलन द्राविड़ों को भी सहज है। हां, यह हम जानते हैं कि उनको औरों की अपेक्षा कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक कठिनाई अवश्य उठानी पड़ेगी। परन्तु जहां इस भाषा से हिन्दुस्तान के बाईस करोड़ लोगों को सुख और सुभीता है, वहां द्राविड़ आदि आठ करोड़ लोगों को यदि थोड़ा सा असुभीता भी हो तो भी इसे अपरिहार्य्य ही समझना चाहिए"।

पूर्वोक्त वाक्यों से सरस्वती के पाठकों को यह बात मालूम हो गई होगी कि, इस समय महाराष्ट्रों में हिन्दी के विषय में कैसी चर्चा हो रही है। इससे यह भी मालूम हो गया होगा कि कोल्हापुर के "समर्थविद्यालय" में हिन्दी जारी करने के लिए मिस्टर महाजनि की राय में, वस्तुतः कोई असुभीता नहीं है। परन्तु हमें एक विश्वसनीय सूत्र द्वारा जो बातें मालूम हुई हैं उनसे हम कह सकते हैं कि "समर्थविद्यालय" के प्रबन्ध-कर्त्ताओं को अभी तक कोई हिन्दी-शिक्षक नहीं मिला। क्या इस समय हमारे हिन्दी-हितैषी सज्जनों में से कोई, हिन्दी के राष्ट्रीय-अधिकार की ओर ध्यान देकर, कोल्हापुर के "समर्थविद्यालय" में हिन्दी शिक्षक का काम करके, अपने स्वार्थत्याग का परिचय न देंगे? जब महाराष्ट्र-देशवासी, हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा बनाना चाहते हैं तब क्या नागरी-प्रचारिणी सभाओं और हिन्दी के अभिमानियों का यह धर्म नहीं है कि, वे अपने महाराष्ट्र भाइयों की सहायता करें? सच पूछिये तो जो लोग यह दावा करते हैं कि हिन्दी देशव्यापी भाषा बनने योग्य है, उन्हीं का यह कर्त्तव्य है कि, वे हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने का यत्न करें। जिन लोगों पर इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी है, क्या वे अपने उन भाइयों की सहायता न करेंगे जो, भिन्न भाषा-भाषी होकर भी, अपने नूतन स्थापित राष्ट्रीय-विद्यालय में हिन्दी जारी करना चाहते हैं? यदि इस लेख को पढ़ कर हिन्दी की कोई सभा, या हिन्दी का कोई प्रेमी, कोल्हापुर के "समर्थविद्यालय" के प्रबन्ध-कर्त्ताओं से हिन्दी-शिक्षक के विषय में, कुछ पूछपाछ करे, और उन लोगों की असुविधाओं को दूर करने का यत्न करे, तो हम समझेंगे कि, हमारा परिश्रम व्यर्थ नहीं गया।

माधवराव सप्रे।

हेमन्त।

[१]

यह हेमन्त काल है आया;
इसने अपना दृश्य दिखाया।
अब दिनमान घटा जाता है;
रात्रिमान बढ़ता आता है।

[२]

स्वच्छ, मनोहर, अतिशय प्यारी,
हिममहिधर की छबि है न्यारी।
हिमकर-किरण वहां जब पड़ती;
तब अद्भुत सुन्दरता बढ़ती।

[३]

पर उसकी इस सुन्दरता को,
प्यारेपन को, निर्म्मलता को।
देख भलीविधि वे ही सकते,
वहां योग जो साधन करते।

[४]

जाड़ा पड़ने लगा खूब अब;
काँप रहे हैं नर-नारी सब।
दबक रहे कपड़ों में कोई;
चा, काफ़ी, पीते हैं कोई।

[५]

जब नभ में बादल घिर आते;
मनुज शीत से कम दुख पाते।
पर जब बादल हट जाते हैं;
प्रायः लोग ठिठुर जाते हैं।

[६]

श्वास, कास, का रोग जिन्हें है,
कष्ट आज कल बहुत उन्हें हैं।
खों खों करते रात बिताते;
नहीं ज़रा भी सोने पाते।

[७]

भाँति भाँति के पाक बनाते;
लोगों को दे टके कमाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनमें से कुछ ख़ुद भी खाते ;
वैद्यराज यों मज़े उड़ाते।

[८]

कभी कुहर जब छा जाता है ;
कुछ भी नहीं दृष्टि आता है।
यद्यपि सूर्योदय हो जाता ;
तदपि न शीघ्र दिनेश दिखाता।

[९]

सूर्योदय पहले जो न्हाते ;
ऊष्ण सलिल कूपों में पाते।
करते नहीं मनुज जो सुस्ती ;
उनकी टहल प्रकृति भी करती।

गिरिधर शर्मा।

उर्दू-शतक।

हिन्दी-भाषाके एक बड़े भारी छन्दः-शास्त्री का मत है कि उनके बनाये हुए छन्दोग्रन्थ में यदि सब लोग पारङ्गत हो जायँ तो भारतवर्ष में गाँव गाँव, गली गली कवियों की वैसी ही बहुलता हो जाय जैसे नदियों में कंकड़ों की और काशी में शङ्करों की बहुलता है। कहने की ज़रूरत नहीं यह मत बिलकुल ही निस्सार है। छन्दों के रूप जान लेने, "यमनसभलागः शिखरिणी" घोखने, अथवा—

"वरासा श्रीश्रीस्त्री नहस वसुधा किम्बद लगा"

करने, से कोई कवि नहीं हो सकता। प्रस्तार-पारिजात पढ़ने और छन्दोर्णव पिङ्गल रटने से कवित्त्व शक्ति नहीं उत्पन्न हो सकती। छन्दः-शास्त्र कवि को छन्दों का लक्षण मात्र बतलाता है। वह छन्दोरचना की रीतिमात्र का प्रदर्शक है। बस। कवि होने के लिए अनेक बातें दरकार होती हैं। सौभाग्य से जिसे वे प्राप्त हो जाती हैं, वह, लाखों में कहीं एक, कवि की पदवी को पहुँच सकता है। हमने हिन्दी और संस्कृत के, न मालूम, कितने छन्दोग्रन्थों की सैर कर डाली। यहां तक कि छन्दों किंवा वृत्तों के समालोचनरूपी, क्षेमेन्द्र आदिकृत, अनेक ग्रन्थ भी पढ़ डाले। पर कवि न हुए। कविता के नाम से पद्य-रचना करना एक बात है, कवि होना दूसरी बात है।

इसी तरह किसी किसी का ख़याल है कि हिन्दी में वैज्ञानिक डिक्शनरी हो जाने से वैज्ञानिक ग्रन्थ गली गली मारे मारे फिरेंगे। हम कहते हैं, यह कल्पना भी ग़लत है। इस तरह की डिक्शनरियों से अँगरेज़ी भाषा के वैज्ञानिक ग्रन्थों का अनुवाद करने में सिर्फ़ कुछ सहायता मिल सकती है। और कुछ नहीं। जब किसी भाषा की उन्नति होने लगती है, और विद्वान् लेखक ग्रन्थ लिख लिख कर उसके साहित्य की पूर्त्ति करने लगते हैं, तब वैज्ञानिक ग्रन्थ भी बन जाते हैं। बँगला, मराठी और गुजराती में कितने वैज्ञानिक कोश हैं? पर आप मेडिकल लाइब्रेरी, कलकता, और गर्वनमेंट सेंट्रल बुकडिपो, बंबई, की पुस्तकों का सूचीपत्र उठाकर देखिए। आप को वैज्ञानिक विषयों पर यदि अधिक नहीं तो दस बीस पुस्तकें तो ज़रूरही, इन्हीं दो दुकानों में, मिल जायँगी। हमारी हिन्दी इस विषय में विशेष सौभाग्यशालिनी है; क्योंकि उसमें एक वैज्ञानिक कोश भी बन गया है। परन्तु आप देखते रहिए, इसकी सहायता से कितनी वैज्ञानिक पुस्तकें तैयार होती हैं। किसी वैज्ञानिक पुस्तक को लिखने या किसी का अनुवाद करने के लिए कई प्रकार की योग्यता दरकार होती है। जिसमें वैसी योग्यता है उसका काम बिना वैज्ञानिक डिक्शनरी के भी चल सकता है; परन्तु यदि वह नहीं है तो हज़ार डिक्शनरियों के होने पर भी न तो कोई वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखही सकता है और न उनका अनुवादही कर सकता है।

कुछ लोगों का ख़याल है कि अच्छी हिन्दी-कविता यदि किसी भाषा या बोली में हो सकती है तो व्रज-भाषा में हो सकती है। यह भी उसी तरह की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात है जिस तरह की दो बातों का उल्लेख हमने ऊपर किया। हमारी तुच्छ राय तो यह है कि कविता के लिए भाषा बहुत ही गौण साधन है। जिन गुणों के कारण पद्यरचना "कविता" में परिगणित हो सकती है, वे गुण जिस व्यक्ति में नहीं हैं, वह चाहे व्रज-भाषा का कितना ही प्रचण्ड पण्डित क्यों न हो, और वह चाहे कितनेही परिश्रम से व्रज-भाषा में कविता क्यों न करे, उसकी कविता का कदापि आदर न होगा। उसकी रचना कविता के स्वाभाविक और सर्वशेष्ठ गुणों से कभी विभूषित न होगी। कविता पढ़ते समय तद्गत रस में यदि पढ़ने वाला डूब न गया तो वह कविता, कविता नहीं। और यह बात क्या अकेली व्रज-भाषाही ने अपने हिस्से में लेली है? भाषा कोई क्यों न हो, यदि कवि अच्छा है, तो उसकी कविता अवश्यमेव सरस होगी। इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण आज हमें मिला है। यह प्रमाण उर्दू-शतक नाम की एक छोटी सी पद्य-पुस्तक है।

उर्दू-शतक में १०० पद्य हैं। छन्द हैं—घनाक्षरी और सवैया। भाषा बिलकुल उर्दू है। उर्दू नहीं, कठिन उर्दू; बल्कि यों कहना चाहिए, फ़ारसी-मिश्रित उर्दू। इसे रीवां-निवासी किसी रामानन्द नामक कवि ने बनाया है और बनारस के लहरी-प्रेस ने छाप कर प्रकाशित किया है। मूल्य इसका दो आने है। इस काव्य की एक कापी भेजने के लिए हम लहरी प्रेस के मैनेजर के बहुत कृतज्ञ हैं। इसकी कविता शृङ्गाररस की है। परन्तु हमें इसके अनेक पद्यों ने मोहित कर दिया। कवि ने किसी किसी पद्य को इतना सरस बना दिया है कि आप चाहे जितनी दफ़ा उसे पढ़िए कभी आपका जी न ऊबेगा। फिर भी उसे पढ़ने की इच्छा होगी। रमणीक और सरस कविता की यही कसोटी है—

क्षणं क्षणं यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।

जो लोग बोल चाल की भाषा में कविता के विरोधी हैं उन्हें इस काव्य को कृपा करके ज़रूर पढ़ना चाहिए और विचार करना चाहिए कि हिन्दी के बहु-प्रयुक्त घनाक्षरी और सवैया छन्द में यदि क्लिष्ट उर्दू भाषा में भी पद्य-रचना करने से कविता सरस हो सकती है, तो मामूली बोलचाल की भाषा में यदि कोई पद्य-रचना करे तो उसका विरोध करना कहां तक न्याय है? बात यह है कि कवि अच्छा होना चाहिए। यदि कवि अच्छा है तो हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, अँगरेज़ी आदि जिस भाषा में परिश्रम करेगा उसीमें वह उत्तम कविता लिख सकेगा। उर्दू-शतक की उत्कृष्ट कविता के कुछ नमूने हम नीचे देते हैं। पर एक बात हम कहना चाहते हैं। वह यह है कि इस कविता में फ़ारसी के कोई कोई क्लिष्ट शब्द आ गये हैं। अतएव जो लोग उनका अर्थ न जानते होंगे, उनको, सम्भव है, यह कविता रोचक न लगे। परन्तु इससे कविता की उत्तमता कम नहीं हो सकती।

घनाक्षरी।

एक परचे से परचाया न हुज़ूर हमें,
हम ग़म खाया किये ऐसी बेबसाई में।
शाहिद हमारे चश्म तर ये रहेंगे ख़ूब,
दरिया बहाते थे जो दुनिया हँसाई में॥
रामानन्द तेरा था भरोसा बहुतेरा तूने,
ऐसा मुँह फेरा है हिनोज़ बेवफ़ाई में।
सीना में पसीना कहीं ज़हर न पीना पड़े,
जीना दुशवार है जनाब की जुदाई में॥१९

क़हर ख़ोदा है ज़रा आँख से मिलाना आँख,
क़दमबोस होना तो ज़रूरही ज़रर है।
कूचे से निकल जाना पैर कटवाये जायँ,
फन्दा गेसुओं का तो अजीब ही ख़तर है।
नाज़ अन्दाज़ में क़यामत है रामानन्द,
शोहरा शहीदों का ज़रूर तर बतर है।
बुते बेपीर से लगाना दिल यार गोया,
पत्थर से शीशे को लड़ाना सरासर है॥२९

सवैया।

आफ़त के परकाले हैं काले ये
गेसू निराले अजीबो ग़रीब हैं।
गोश तक आये, बढ़े फिर दोश तक,
ताकमर आकर पाये नसीब हैं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं रामानन्द दोचन्द ये मार से
हाय किसी के न होते हबीब हैं।
आशिक़ हाय सँभलकर बैठो
क़यामत शामत दोनों क़रीब हैं ॥९१॥

आवो गले मिल फाग मचावें
मोहर्रम टाल दो ये शबरात है।
शाम्सतबरेज़ ने खाल खिँचाई
न मैं मनसूर जो सूली की घात है ॥
आज अज़ाब करे सो सवाब है
यह रामानन्द बड़ी करामात है।
चोली कसे लसे गोली से नैन ये
भोली सी सूरत होली की रात है ॥९५॥

है दिल बीच ग़ुबार भरा क्यों
निगाह भी नीची गड़ी रहती है।
हाय हँसी तो फँसी किसी रोज़
ख़याल में ग़र्क़ पड़ी रहती है ॥
जो रामानन्द घटा उल्फत की
नज़र बदली सी अड़ी रहती है।
रात दिन ऐसी कड़ी चश्मों से
बड़ी अश्कों की झड़ी रहती है ॥

दाग़ मुदाम गुलों के जो खाये
तो सीना बनारस का कमख़ाब है।
वस्ल की लज़्ज़त ऐसी उठाई
हुआ मजनू का हमें भी ख़िताब है ॥
बेकली सौंप गया गुलरू मुझे
हाय ख़याल ख़ुरिश है न ख़्वाब है।
कल नहीं पड़ती किसी करवट,
न किसी पहलू, मुझे ऐसा अज़ाब है ॥९९॥

हुस्न के बुर्ज पै है ख़ुरशीद
घटा से घिरा हटा क्यों नहीं देते ?
संबुल में शबनम् उलझी है
तपाक से भी तपा क्यों नहीं देते ?
आशिक़ ज़ार अलील खड़े हैं
मसीह बने दवा क्यों नहीं देते ?
चेहरे से ज़ुल्फ़ हटा कर रात को
दिन करके दिखा क्यों नहीं देते ? १००

यह कविता अच्छी है या बुरी, इसके निर्णयकर्त्ता केवल सहृदय जनही हो सकते हैं। अन्य नहीं। इस के अनुप्रास, इसके भाव, इसकी अक्षर-मैत्री सभी प्रशंसनीय हैं।

लखनवी रामायण ।

(प्रतिवाद)

गत नवम्बर मास की सरस्वती में एक लेख पण्डित यमुनाप्रसाद पांडे जी का पूर्वोक्त शीर्षक से छपा था। उक्त लेख में पण्डित व्रजनारायण चकबस्त, बी० ए०, और उनकी कविता के साथ बड़ा अन्याय किया गया है। "सरस्वती" के पाठकों और पांडे जी का भ्रम दूर करने के लिए मैं उनके लेख के विषय में कुछ निवेदन करना चाहता हूं। मेरा पहला प्रश्न पांडे जी से यह है कि वे उर्दू में पूरी योग्यता न रखने पर भी क्या समझ कर उर्दू की एक बामुहाविरा कविता पर ऐसे आक्षेप कर बैठे ? परन्तु पण्डित व्रजनारायण जी की कविता को पांडे जी का कृतज्ञ होना चाहिए, कि उन्होंने उस पर दृष्टि तो डाली।

अब मैं यह दिखाता हूं कि पांडे जी के आक्षेप कहां तक सत्य हैं। व्रजनारायण जी की कविता (मुसद्दस) का पहिला शेर यह है—

रुख़सत हुआ वह बाप से लेकर ख़ुदा का नाम।
राहे वफ़ा कि मंज़िले औवल हुई तमाम ॥

इस पर पांडेजी के दो आक्षेप हैं, जिनको पढ़कर अफ़सोस होता है। पहला आक्षेप यह है कि "जब उर्दू ही के मुहाविरे में किसी प्रतिष्ठित पुरुष के लिए बहु-वचनात्मक क्रियाओं का प्रयोग अशुद्ध नहीं माना जाता, तब परमपूज्य रामचन्द्र जी के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हुआ' 'गया' आदि एकवचनात्मक क्रियाओं का प्रयोग करके क्या उनके भक्तों का दिल दुखाया जाय"। मैं पांडे जी से पूछता हूं कि उन्होंने ऐसे आक्षेप करके उर्दू-भाषा और व्रजनारायण जी का दिल क्यों दुखाया? रहा 'हुआ' 'गया' का आक्षेप, सो उसके उत्तर में केवल इतनाही कहना बहुत होगा कि ऐसा प्रयोग उर्दू में जायज़ है। पांडे जी किसी उर्दूदां से पूंछ कर अपना भ्रम दूर कर सकते हैं। देखिए उर्दू के प्रसिद्ध कवि मीर बबरअली, अनीस, ऐसे स्थान पर क्या कह गये हैं—

जिस दम दरे दौलत पे अमीरे उमम आया।
पीटे यह हरम घर में कि होठों पे दम आया॥

यहां पर पंडित जी के विचार से 'अमीरे उमम आया' में आया की जगह 'आये' होना चाहिए था। मगर ऐसा नहीं है। यदि यह प्रयोग उनको श्रवण-सुखद न मालूम हो तो उसका उपाय ही क्या हो सकता है? दूसरा आक्षेप ख़ुदा के नाम पर है। अर्थात् रामचन्द्र जी ख़ुदा का नाम लेकर नहीं चले थे बल्कि अपने पूज्यपिता को प्रणाम करके। और इस बात के साबित करने में पांडेजी ने बहुत ख़ामा फ़रसाई की है। शायद पांडेजी शायरी के इस उसूल से अनभिज्ञ हैं कि कवि लोग बहुत कुछ अपनी कल्पना से पैदा कर लेते हैं। वह ऐसी ज़रा ज़रा सी बातों पर (जैसे रामचन्द्र जी का पिता को प्रणाम करके चलना) ज़्यादा ज़ोर नहीं देते; और कभी कभी उनको छोड़ भी जाते हैं। यहां पर व्रजनारायणजी ने "प्रणाम करने को" छोड़ दिया है; और उसकी जगह मुसलमान-समाज के रस्मों का चित्र बामुहाविरा उर्दू में खींचा है। उर्दू ज़बान मुसलमानों की है। इसलिए बामुहाविरा उर्दू लिखने के लिए यह ज़रूरी है कि उसी समाज का चित्र खींचा जाय। मेरा मतलब यह है कि अगर व्रजनारायण जी ने प्रणाम को छोड़कर उसकी जगह यह लिख दिया कि "रुख़सत हुआ वह बाप से ले कर ख़ुदा का नाम" तो क्या बुरा किया? वाल्मीकि जी और तुलसीदास जी की रामायणों में भी अलग है। पांडेजी के लिए एक अंग्रेज़ी तत्त्ववेत्ता पहले ही से कह गया है—"Truth of fact and poetical truth are two different things."

और सुनिए—

मंज़ूर था जो मां कि ज़ियारत का इन्तज़ाम।
दामन से अश्क पोंछ के दिल से किया कलाम॥

इसपर जो एतराज़ हुआ है वह सरस्वती के पाठकों को अवश्य ही विदित होगा। उसका जवाब वही है जो इसके पहले लिख आया हूं। न मालूम इन्तज़ाम में पांडेजी ने क्या ग़लती पाई कि यह फ़िक़रा लिख बैठे—"ख़ैर इन्तज़ाम तक तो ग़नीमत है।" बस पांडेजी के आक्षेप केवल इतने ही हैं। बाक़ी शेरों के विषय में पांडेजी ने यह लिख दिया है कि "उनके विषय में हमारे सदृश अल्पज्ञों की चुप रहने ही में कुशल है"। इसके लिए पांडेजी को धन्यवाद है। अन्त में पांडेजी ने व्रजनारायणजी को यह सलाह दी है कि जब उर्दू में दो रामायण मौजूद हैं तब तीसरी रामायण लिखने की क्या आवश्यकता है? इसके जवाब में मैं फिर उसी तत्त्ववेत्ता के वाक्य पेश करता हूं—

"He who aspires to be the poet of a nation is bound to adopt a hero who is dear to that people, to choose a subject and characters which are familiar to them."

पस सात बार रामायण पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस मज़मून में सिर्फ़ एतराज़ों का जवाब दिया गया है। नहीं तो पांडे जी के मज़मून में बहुत से दोष निकाले जा सकते हैं। पांडे जी लिखते हैं:—

"जनाबे राम आईने अदब से।
हुए यों दुरफ़िशां नेसाने लब से"।

इसमें और उन सब शेरों में, जो पांडे जी ने सनद में पेश किये हैं, रामचन्द्रजी के लिए 'उठे', 'हुए' इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए कहा गया है, क्योंकि 'जनाब', 'श्री' आदि शब्द आये हैं। लेख के बढ़ जाने के भय से और ज़्यादा कुछ न कहूंगा। अर्जुननाथ रैना।

अमीर हबीबुल्लाख़ाँ।

अफ़ग़ानिस्तान में ५ सूबे हैं :—हिरात, क़न्धार, काबुल, अफ़ग़ानी तुरकिस्तान और बदख़्शाँ। क्षेत्रफल ३,००,००० वर्गमील है। आबादी कोई ६०,००,००० है। उसकी हद रूस से मिली हुई है। इसीलिए अँगरेज़ी गवर्नमेंट अमीर अफ़ग़ानिस्तान की इतनी ख़ातिर तवाज़ो करती है। यदि अमीर साहब रूस से मिल जायँ तो रूस का हिन्दुस्तान की सीमा पर पहुँचना आसान बात है।

१८०९ में अँगरेज़ों को सन्देह हुआ कि रूस इस देश पर चढ़ाई करना चाहता है। इसलिए अफ़ग़ानिस्तान के तत्कालीन अमीर शाहशुजा से सन्धि की गई। पर १८२६ में जब दोस्तमहम्मद काबुल का अमीर बन बैठा तब उसने रूस से मित्रभाव बढ़ाया। सन्धि उसने तोड़ दी। इसलिए अँगरेज़ों ने १८३८ में अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई की, और काबुल और क़न्धार को अपने क़ब्ज़े में कर लिया। शाहशुजा को फिर काबुल का सिंहासन मिला। परन्तु १८४१ में दोस्तमहम्मद ने शाहशुजा से काबुल फिर छीन लिया, और १८४०-४२ में अँगरेज़ों पर बड़ी भारी विपत्ति आई। बहुत से अँगरेज़ अफ़ग़ानों के हाथ से मारे गये।

इसके बाद दोस्तमहम्मद ने फिर अँगरेज़ों से सुलह कर ली और अँगरेज़ उसे १२ लाख रुपये साल देने लगे। अँगरेज़ों का एक एलची भी काबुल में रहने लगा। दोस्तमहम्मद ने अपने बेटे शेरअली को अपना उत्तराधिकारी बनाया। इसका प्रतिवाद उसके दूसरे बेटे महम्मद अफ़ज़लख़ाँ ने किया। इस कारण १८६३-६८ के बीच इन दोनों में लड़ाइयां होती रहीं। शेरअली की जीत हुई। काबुल की गद्दी पर बैठने के बाद अँगरेज़ों ने उसकी भी मदद रुपये और हथियारों से की। उसने अपने बेटे अबदुल्लाजान को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा। पर इस बात को अँगरेज़ों ने नामंज़ूर किया और याक़ूबख़ाँ का पक्ष लिया। इस पर शेरअली ने याक़ूब को क़ैद कर लिया, और अँगरेज़ों से मुख़ालिफ़त शुरू की। शेरअली ने रूस को अपना दोस्त बनाया। इस कारण १८७८-७९ में अँगरेज़ों ने काबुल पर चढ़ाई की। शेरअली भगा। अँगरेज़ों ने क़न्धार पर दख़ल कर लिया। याक़बख़ाँ काबुल का अमीर बनाया गया। उसके अमीर होने पर अँगरेज़ों ने अपने कई अफ़सर काबुल भेजे और याक़ूबख़ाँ से एक सन्धि-पत्र लिखाना चाहा। पर अफ़ग़ानों ने अँगरेज़-अफ़सरों और उनके साथियों को काट डाला। इसलिए १८८० ईसवी में तीसरी दफ़ा अफ़ग़ानिस्तान से लड़ाई हुई। याक़ूबख़ाँ की हार हुई। वह भग गया।

इस दरमियान में अफ़ज़लख़ाँ के बेटे अब्दुररहमान ने रूस की मदद से अफ़ग़ानिस्तान की तरफ़ प्रस्थान किया। अँगरेज़ों ने इस बात को पसन्द किया। अब्दुररहमान काबुल पहुँचा। अँगरेज़ों ने उसके अमीर बनने में कोई बाधा न डाली। अतएव वह अमीर होगया। इसके कुछ दिन बाद, १८८० में, लार्ड रिपन ने अमीर से कहा कि यदि वह किसी बाहरी बादशाह से सम्बन्ध न रक्खें, और अँगरेज़ी गवर्नमेंट की सलाह से काम करें, तो अँगरेज़-महाराज बाहरी शत्रुओं से उनकी हमेशा रक्षा करेंगे। अमीर अब्दुररहमान ने यह बात मंज़ूर करली। इससे गवर्नमेंट ख़ुश हुई और १८८३ ईसवी में, लार्ड रिपन ने अमीर को १० लाख रुपये साल देना क़बूल किया। किसलिए? फ़ौज के ख़र्च और अफ़ग़ानिस्तान की उत्तर-पश्चिमी सीमा को ख़ूब मज़बूत रखने के लिए। १८८५ में लार्ड डफ़रिन ने एक दरबार किया। उसमें उन्होंने अमीर साहब को १० लाख रुपये नक़द, २०,००० ब्रीच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेडिंग् बन्दूक़, ३ तोपख़ाने और बहुत सी गोली बारूद दी जाने की आज्ञा दी। इस उपलक्ष्य में अमीर ने अँगरेज़ों से मित्रभाव रखने, मौक़ा पड़ने पर उनकी मदद करने और उत्तर-पश्चिमी सीमा को ख़ूब मज़बूत करने का वचन दृढ़ कर दिया। कुछ दिन बाद अमीर को १० के बदले १२ लाख रुपये साल मिलने लगे। पीछे से १२ के १८ लाख होगये। लड़ाई का सामान भी बाहर से मँगाने की आज्ञा उन्हें मिल गई।

अमीर अब्दुररहमान ने अनेक सुधार किये। काबुल में कितनेही कारख़ाने खोले। एक सिलहख़ाना भी खोला। तोपें बनने लगीं। नई तरह की रफ़लें तैयार होने लगीं। फ़ौज को क़वायद सिखलाई जाने लगी। क़िले बनने लगे। पुराने क़िलों की मरम्मत होने लगी। बाहर से हथियारों के ढेर के ढेर आने लगे। सारांश यह कि अमीर ने अफ़ग़ानिस्तान की दशा यथाशक्य ख़ूब सुधार दी। फ़ौज बढ़ा दी। पहाड़ी सरदारों और मुल्लाओं के पारस्परिक झगड़ों को बहुत कुछ दूर कर दिया। व्यापार की भी तरक़्क़ी की। देश में जो सर्वत्र लूट खसोट हुआ करती थी वह बन्द हुई। क़ानून की नई नई किताबें बनीं। उन्होंने अफ़ग़ानिस्तान को बिलकुल ही नया कर डाला। यद्यपि अमीर के और अँगरेज़ी राज्य-प्रबन्ध में आकाश पाताल का अन्तर है, तथापि डाक्टर हैमिल्टन का मत है कि आजकल का अफ़ग़ानिस्तान दोस्तमहम्मद और शेरअली का अफ़ग़ानिस्तान नहीं। अब वहां ख़ूब शान्ति है। अब वहां अनेक ऐसे सुधार हो गये हैं जिनसे प्रजाके सुख की पहले की अपेक्षा बहुत कुछ वृद्धि हो गई है। अमीर अब्दुर-रहमान कठोर शासक थे। कठोरता की ज़रूरत भी थी। महाबर्बर अफ़ग़ान-जाति का सुधार कोमलता से होना असम्भव था। अतएव कठोर शासन-नीति के लिए अमीर दोषी नहीं ठहराये जा सकते। हैमि-ल्टन साहब बहुत वर्ष तक काबुल में अमीर के डाक्टर रह चुके हैं। अतएव उनकी राय को सब लोग मान्य समझते हैं।

धीरे धीरे अब्दुररहमान ने अपने राज्य को ख़ूब दृढ़ कर दिया। जैसे जैसे आपकी शक्ति बढ़ती गई। आपका दिमाग़ भी बढ़ता गया। इन्हीं कारणों से, गवर्नर जनरल ने जब कुछ फ़ौजी सामान का अफ़ग़ानिस्तान में भेजा जाना रोक दिया, तब अमीर ने क्रोध में आकर गवर्नमेंट से १८ लाख रुपया लेने से इनकार कर दिया। यहां तक कि आपने सरहद में थोड़ी सी फ़ौज भी भेज दी। आपने गवर्नर जनरल की शिकायत तक की। शिकायत लिखकर आपने ठेठ विलायत में प्रधान मंत्री, लार्ड सैलिस्बरी, के पास भेजी। १८९० और १८९८ के बीच आप अँगरेज़ी गवर्नमेंट से बहुत नाख़ुश रहे। तीरा-युद्ध के समय आपने गवर्नमेंट की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ काम किये। पीछे से, मरने के पहले, आप कुछ शान्त हो गये थे।

अब्दुररहमान के बाद हबीबुल्लाख़ाँ अमीर हुए। आपका जन्म समरक़न्द में, १८७२ ईसवी में, हुआ था। आप फ़ारसी के सिवा अँगरेज़ी भी थोड़ी जानते हैं। अँगरेज़ी समझ अच्छी तरह सकते हैं; पर बोल कम। जब अँगरेज़ों से बातचीत करते हैं तब कभी फ़ारसी और कभी अँगरेज़ी बोलते हैं।

अमीर हबीबुल्ला स्वाधीन प्रकृति के शासक हैं। आपने अफ़ग़ानिस्तान का राज्य-सूत्र अपने हाथ में लेकर अँगरेज़-राज की अधीनता का ख़याल अपने दिल से थोड़ा बहुत दूर कर दिया। गवर्नमेंट ने आपको कई दफ़े हिन्दुस्तान आने के लिए आम-न्त्रण दिया। पर आप आने से इनकार ही करते रहे। आपने एक बार भरे दरबार में कह दिया कि आप अपने पिता के विचारों का अनुसरण करेंगे; पर अब्दुररहमान पर अँगरेज़ी गवर्नमेंट ने जो उपकार किये हैं वे उन्हींके साथ गये। आपने अपने को सब तरह स्वाधीन समझा और बाहर से लड़ाई का सामान मँगाने की स्वतन्त्रता का भी दावा किया। आख़िरकार, १९०४ में, गवर्नमेंट को डेन साहब की अध्यक्षता में एक प्रतिनिधि-दल अफ़ग़ानिस्तान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजना पड़ा। इसका फल अमीर के लिए अच्छा ही हुआ। गवर्नमेंट से जो १८ लाख रुपया साल अमीर को मिलता था वह कई साल से अमीर ने नहीं लिया था। सब मिलाकर ६० लाख रुपया गवर्नमेंट का देना निकला। वह सब अमीर ने लिया। १८ लाख रुपया साल पूर्ववत् अमीर को देना गवर्नमेंट ने मंज़ूर किया। तोप, बन्दूक़, गोला, गोली आदि लड़ाई का सामान भी मनमाना मँगाने के लिए अमीर के दावे को गवर्नमेंट ने क़बूल किया। गवर्नमेंट ने अमीर हबीबुल्ला को स्वाधीन शासक भी माना। यह पिछली बात अमीर के लिए बड़े महत्त्व की हुई। इन बातों के बदले गवर्नमेंट को भी अमीर से कुछ मिलना था; पर अमीर ने कुछ न दिया। आपने अपने पुत्र इनायतुल्लाख़ाँ को लार्ड कर्ज़न से मिलने ज़रूर भेज दिया। बस, अमीर साहब ने गवर्नमेंट के पूर्वोक्त सत्कृत्यों का यही बदला दिया। गवर्नमेंट को लाचार होकर इतने ही से सन्तोष करना पड़ा।

गवर्नमेंट अमीर से कहती है कि बाहरी शत्रुओं से अफ़ग़ानिस्तान की रक्षा का भार हमने अपने ऊपर लिया है। इसलिए हमें काबुल और क़न्धार तक रेल बनाने दो। तार भी हमें बड़े बड़े शहरों तक ले जाने दो। अपनी फ़ौज में अँगरेज़-अफ़सर रक्खो। यदि ये बातें न करोगे तो हम आपकी उत्तरी सरहद की रक्षा कैसे कर सकेंगे? यदि रूस अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई करे तो बिना रेल, तार और अच्छी फ़ौज के, ५०० मील दूर, हिन्दुस्तान से उसके मुक़ाबिले का कैसे प्रबन्ध हो सकता है? इस लिए अमीर साहब के निज के फ़ायदे ही के लिए, हिन्दुस्तान की गवर्नमेंट रेल, तार, आदि बनाने की आज्ञा माँगती है। अपने फ़ायदे के लिए नहीं!

जिन अमीर हबीबुल्ला का अँगरेज़ी गवर्नमेंट इतना आदर करती है, जिनके देश की उत्तर-पश्चिमी सीमा की रक्षा का उसे इतना ख़याल है, वही, इस महीने, इस देश में, अँगरेज़-महाराज के मेहमान हो कर आये हैं। बहुत कहने सुनने पर आपने भारत में पदार्पण किया है। आपकी मेहमानदारी का जी-जान होमकर गवर्नमेंट प्रबन्ध कर रही है। "ज़ियाफ़त" आदि के लिए रुपयों के तोड़े के तोड़े गवर्नमेंट के ख़र्च हो रहे हैं। आगरे में दरबार हो रहा है। फ़ौजें दिखाई जा रही हैं। खेल-तमाशे हो रहे हैं। कल, कारख़ानों की सैर कराई जा रही है। आशा है इन सब बातों से अमीर साहब के हृदय पर गवर्नमेंट की शक्ति, प्रभुता और उदारता का ख़ूब अच्छा चित्र खिंच जायगा और आगे से वे गवर्नमेंट के दृढ़ मित्र बनकर उसकी सलाह से सब काम करेंगे।

पुस्तकादि-परीक्षा।

योगदर्शन। भोजराज-कृत वृत्ति-सहित। "हरद्वार-निकटवर्त्ति-गुरुकुलविद्यालयसेवि-पण्डित भीमसेन शर्म्मा" द्वारा हिन्दी में अनुवादित। मूल्य १॥) इस पुस्तक में मूल सूत्रों का भी अनुवाद है और वृत्ति का भी। इसके सिवा "विशेष वक्तव्य" में सूत्र और वृत्ति का आशय और भी विशेषतापूर्वक व्यक्त किया गया है। भूमिका में योग के संक्षिप्त विषय और भोज के समय आदि का निरूपण है। अन्त में सूत्रों की सूची दी गई है। अनुवाद की हिन्दी सरल और शुद्ध है। पुस्तक परमोत्तम है।

❋

आर्य्यभटीयम्। ज्योतिषशास्त्र का यह कोई डेढ़ दो हज़ार वर्ष का पुराना ग्रन्थ है। इसके साथ परमेश्वराचार्य्य कृत संस्कृत टीका और श्रीयुक्त उदयनारायणवर्मा कृत हिन्दी-अनुवाद भी है। शास्त्रप्रकाश-कार्य्यालय, मधुरापुर, डाकघर विद्दूपुर, ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर, से १ रुपये में मिलता है। ग्रन्थ है छोटा, पर ज्योतिषशास्त्र की सभी महत्त्वमयी बातें इसमें हैं। पृथ्वी का घूमना और ग्रहण का यथार्थ कारण भी इसमें दिया हुआ है। जिन बातों को और देश वालों ने अब जाना है उसे आर्य्यभट्ट ने हज़ारों वर्ष पहले ही जान लिया था। इस पुस्तक की भूमिका में श्रीकृष्णलीला सम्बन्धी कई एक बातें ज्योतिष-विषयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर बड़ी ही कौतूहलजनक रीति से घटाई गई हैं। अनुवाद की भाषा में कहीं कहीं पर त्रुटियां रह गई हैं।

❋

कई साल से कानपुर में साबुन बनाने का एक कारख़ाना जारी है। इस कारख़ाने के मालिक एक प्रतिष्ठित कान्यकुब्ज सज्जन हैं। आप वाजपेयी हैं। इसीसे आपने अपने कारख़ाने के साबुन का नाम 'वाजपेयी-पवित्र-साबुन' रक्खा है। आपका साबुन सचमुच पवित्र है। आपके यहां अनेक प्रकार के खुशबूदार साबुन बनते हैं। हमने ख़ुद इस कारख़ाने के साबुन का व्यवहार किया और उसे उत्तम पाया। मेरठ, मथुरा और कलकत्ते के स्वदेशी साबुन से यह किसी बात में कम नहीं। बढ़ कर चाहे हो। साबुन की बट्टी को हाथ में लेते ही सुगन्ध से चित्त प्रसन्न हो जाता है। एक बट्टी ४ आने में मिलती है और एक बाक्स, जिसमें ३ बट्टियां रहती हैं, १२ आने में। थोक लेने वाले को कमीशन दिया जाता है। स्वदेश और स्वजाति के प्रेमियों को उचित है कि वे इस साबुन का व्यवहार करके वाजपेयी जी का उत्साह बढ़ावें।

❋

वैश्य-वर्ण-धर्म-मीमांसा। पण्डित मन्नालाल संगृहीत। जयपुर के बाल-यंत्रालय में मुद्रित। दाम २ आने। इसका विषय इसके नाम ही से स्पष्ट है। प्रश्नोत्तर के रूप में वैश्यों के लिए सन्ध्या, गायत्री और यज्ञोपवीत आदि का अधिकार इसमें वर्णित है। जगह जगह पर श्रुति-स्मृति आदि के प्रमाण उद्धृत करके ये बातें सिद्ध की गई हैं।

❋

रत्नोदय। बाबू लक्ष्मीनारायण गुप्त, सिकन्दराराऊ (अलीगढ़) कृत। पृष्ठ-संख्या ३०। दाम २ आने। इसमें पुराने संस्कृत ग्रन्थों से लेकर अच्छे अच्छे नैतिक, सामाजिक और शारीरिक उपदेश हिन्दी में दिये गये हैं।

❋

ईश्वर-प्राप्ति और सनातनधर्म्म की सचावट। दो पुस्तकें हैं। सेठ मेलाराय ने बनाई हैं। लाला सौदागरमल, रामनिरंजन लाल वीरभानु जी की कोठी, देहली, बेचते हैं। ईश्वर की प्राप्ति सिर्फ़ दो आने में हो जाती है और छोटे छोटे ३२ पृष्ठों में, एक अजीब तरह की भाषा में, सेठ साहब की पद्यावली पढ़ने को मिल जाती है। इसमें कहीं "काम-गुण" है, कहीं "क्रोध-स्वरूप", कहीं "मद-लक्षण", कहीं "लोभ-लक्षण" कहीं कुछ, कहीं कुछ। "सचावट" का दाम सिर्फ़ एक आना है। पृष्ठ-संख्या १६। यह भी पद्य में है और इसकी भी भाषा विलक्षण है। विषय-विवेचना और शुद्धता की बात न पूछिये। कुछ लोगों ने पुस्तकें लिखना खेल समझ रक्खा है। तिस पर तुर्रा यह कि "सभा की मुहर बिना किताब चोरी की"। जैसे किताब लूटने के लिए ग़दर मच रहा हो।

❋

पुस्तक-त्रितय। शिवहर स्कूल के हेडमास्टर बाबू रामदासराय कृत, ८ पृष्ठ का बाल-गीत। इसमें बच्चों के पढ़ने लायक़ ११ कवितायें हैं। १४ पृष्ठ की बालबोधिनि (?) इसमें लोअर, अपर और मिडिल क्लास के विद्यार्थियों के लिए माता-पितृ-भक्ति, गुरु-भक्ति, भ्रातृ-स्नेह, मित्र-स्नेह और सत्य आदि पर कवितायें हैं। इन पुस्तकों की कविता कहीं कहीं पर नीरस और श्रुतिकटु हो गई है। ३२ पृष्ठ का शब्दार्थ-प्रकाश। इसमें षड्दर्शन, षट्-चक्र, सप्त स्वर, अष्ट योनि, अष्ट सिद्धि आदि की तरह के शब्दों का विवरण है। यह पुस्तक विशेष उपयोगी है। इसमें शब्दों की स्थापना वर्णमाला के क्रमानुसार होती तो अच्छा था।

❋

वैष्णव-धर्म्म। मथुरा-निवासी "कविवर श्रीनवनीतलाल माथुर लिखित"। पृष्ठ संख्या २३। गोस्वामी श्रीमधुसूदनाचार्य्य के नाम से "स्मार्तधर्म्म" नाम की एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। उसमें शिखा और गायत्री आदि के प्रतिकूल बातें हैं। उन्हीं बातों का इसमें खण्डन है। ❋

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

मिर्ज़ापुरी छवि। पृष्ठ २२। दाम डेढ़ आने। बाबू कन्हैयालाल, गोपाल-मन्दिर, बनारस से प्राप्य। इसमें मिर्ज़ापुर की "बरसाती कजलियाँ" हैं।

❋

विज्ञान-नाटक। स्वामी शङ्करानन्द कृत। लक्ष्मी-नारायण प्रेस, मुरादाबाद, से प्राप्य। यह छोटे साँचे की २२१ पृष्ठ की पुस्तक है। सुर्ख़ कपड़े की जिल्द बँधी हुई है। इसमें वेदान्त-विषयक बातें योग्यता से लिखी गई हैं। नाटक लिखने की प्राचीन परिपाटी का इसमें सब कहीं अनुसरण नहीं किया गया। भाषा कहीं कहीं गड़बड़ है। दाम मालूम नहीं।

मनोरञ्जक श्लोक।

एक कृपण राजा को किसी कवि ने कैसा शर्म्मिन्दा किया है। देखिए—

मा गाः प्रत्युपकारकातरधिया वैमुख्यमाकर्णय
हे कर्णाटवसुन्धराधिप सुधासिक्तानि सूक्तानि मे।
वर्ण्यन्ते कति नाम नार्णव-नदी-भूगोल-विन्ध्याटवी-
झञ्झामारुत-चन्द्रमाः प्रभृतयस्तेभ्यः किमाप्तं मया?

हे कर्णाट-नरेश, प्रत्युपकार करने के ख़याल से कातर होकर आप विमुख न हूजिए। आप मुझे कुछ न दीजिएगा—मेरा कुछ भी प्रत्युपकार न कीजियेगा। मेरी पीयूषसिञ्चित सूक्तियों को आप सुन भर लीजिए। मैं समुद्र, नदी, पृथ्वी, पहाड़, आँधी, चन्द्रमा आदि, न मालूम, किन किन चीज़ों का वर्णन किया करता हूं। बतलाइए तो सही उनसे आज तक मुझे क्या मिला है? (मैं मिट्टी, पत्थर तक का जो वर्णन करता हूं सो क्या उनसे कुछ पाने ही की इच्छा से? फिर आपको मेरी वर्णना सुनने से विमुख क्यों होना चाहिए?)

❋

लज्जाः प्रौढमृगीदृशामिव नवस्त्रीणां रतेच्छा इव
स्वैरिण्या नियमा इव स्मितरुचः कौलाङ्गनानामिव।
दम्पत्योः कलहा इव प्रणयितां वीरान्ननामिव
प्रादुर्भूय तिरोभवन्ति सहसा हैमन्तिका वासराः॥

हेमन्त ऋतु के छोटे दिनों का वर्णन, अनोखी अनोखी उपमाओं के द्वारा, एक कवि बड़ी ही ख़ूबी से करता है। वह कहता है—हेमन्त के ये छोटे छोटे दिन, प्रौढा स्त्रियों की लज्जा के समान, नवीना स्त्रियों की सुरत-इच्छा के समान, कुलटा स्त्रियों के क्षण-भङ्गुर नियमों के समान, कुलकामिनियों की मन्द-मुसकान की छटा के समान, पति-पत्नी के पारस्परिक कलह के समान और वारवनिताओं के प्रेमी पुरुषों के समान, पैदा होकर सहसा लोप हो जाते हैं।

❋

कन्याखण्डमिदं प्रयच्छ यदि वा स्वाङ्के गृहाणार्भकं
रिक्तं भूतलमत्र नाथ! भवतः पृष्ठे पलालोच्चयः।
दम्पत्योरिति जल्पतोर्निशि यदा चौरः प्रविष्टस्तदा
लब्धं कर्पटमन्यतस्तदुपरि क्षिप्त्वा रुदन्निर्गतः॥

जाड़ों की रात में, कोई चोर, किसी गृहस्थ के यहां, चोरी करने पहुँचा। वह गृहस्थ था अतिदरिद्र। वहां पहुँचते ही वह क्या सुनता है—यह गुदड़ी का टुकड़ा मुझे दो; या बच्चे को अपनी गोद में लो। हे नाथ! यहां मेरे नीचे ज़मीन ख़ाली है; और आपके नीचे पयाल का बिस्तर है।

चोर ने जब दम्पती को इस प्रकार कहते सुना तब, उनकी उस दुरवस्था पर, उसका हृदय पसीज उठा, और वह किसी दूसरी जगह से चुराये हुए कपड़े को उन—स्त्रीपुरुष-के ऊपर फेंक कर रोता हुआ वहां से चल दिया।

करुणा की हद हो गई। पाषाणहृदय पापात्मा चोर का कठोरचित्त भी पिघल उठा। इस अभागे भारत में इस समय करोड़ों स्त्रीपुरुष इस श्लोक का उदाहरण बने हुए हैं। पर समर्थ पुरुषों को भी उनकी दशा पर बहुत कम दया आती है।

पद्मसिंह शर्म्मा।

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्योक्तियाँ।

[१]

यहां साधु असाधु सुजाति कुजाति को भेद न कोऊ विचार करैं;
द्विजश्याम जू ये अविवेकी अमी औ हलाहल एक मैं घोरि भरैं।
तजैं पारस औ गहैं पाथर धाय लखे इनके मुख पाप परैं;
तजियो यहि देश को यासों मराल भले न इतै पग भूलि धरैं॥

[२]

द्विजश्याम हिये मैं विचारि विचारि मधुव्रत देखियो बार हज़ार;
तुम फूली सरोजिनी को जबसों मधु पीकै भये हो महामतवार।
न जानै कहा तजि साथ गयो तबसौं सिगरो तव चारु विचार;
वहि मालती सी अनुरागिनी की दिशि हेर्‌यो न जो फिर दूसरी बार॥

[३]

याही के समीप रम्यो मत्त करि मधुपान याही को पराग पाय निज तन पोषे तैं;
द्विजश्याम एक दिन याही के हिये की भूरि पूरि अभिलाष लाख लाख भाँति तोषे तैं।
पाय ऋतुराज भूलि नात तोरिबे के काज बात ना भली है जो अकाज आज रोषे तैं;
पीरी परी मालती तिहारेई वियोग पीर त्याग मति भौंर याहि चंपक के धोषे तैं॥

[४]

थल सूनो जहां द्विजश्याम मिलै बहु योजन लौं जल को न पता;
अति तीखी प्रभाकर की किरणैं करैं छार जहां लगि लोनी लता।
तहां कर्म-जँजीरन सों जकरो गज आय पर्‌यो वश लोलुपता;
विनु नीरद के अब ऐसे समय पर कौनसों याँचै सहायकता?

[५]

करै छोर लौं कानन के चहूँ ओर प्रचंड दवानल दाह जहां;
मृग भागि गये निज प्राण लै संग विहंग उड़ाने जहां के तहां।
द्विजश्याम अहो अतिशै भयभीत दरी दुरे केसरी धाय तहां;
परो हाय अनाथसों ऐसे समय गजराज कहो अब जाय कहां?

[६]

विधि भाग हमारे लिखे दुख जो तेहिमें अब काह विचारिबो है;
द्विजश्याम जू रावरे सों करि नेह सदा अँसुवान को गारिबो है।
तुम केती करो निठुराई तऊ हिय औरु कछू नहिं धारिबो है;
हमको नित नीरद पीकहां पीकहां जीवन औधि पुकारिबो है॥

श्यामनाथ शर्म्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

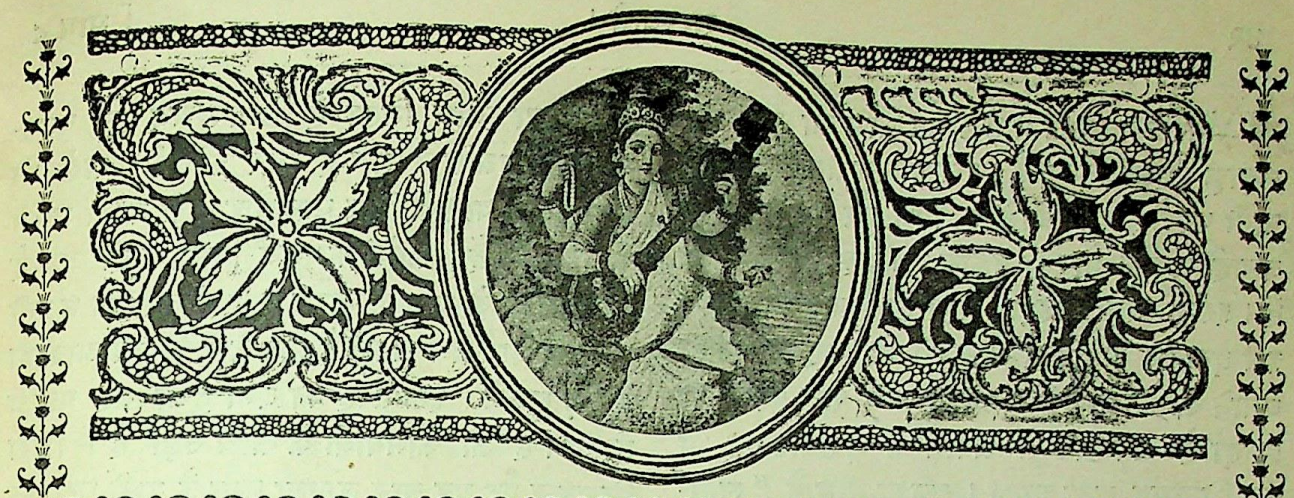

सरस्वती ।

भाग ८] फ़ेब्रुअरी, १९०७ [संख्या २

विविध विषय ।

हमारे राजराजेश्वर, सप्तम एडवर्ड, के सहोदर बन्धु, ड्यूक आफ़ कनाट, ब्रह्मदेश की सैर करने आ रहे हैं। आपके साथ आपकी डचेज़ साहबा भी रहेंगी। पाठक जानते ही होंगे कि कुछ वर्ष पहले ड्यूक साहब बम्बई प्रान्त के कमाण्डर इन चीफ़ (जंगी लाट) रह चुके हैं। आपका इस देश पर विशेष प्रेम है। अतएव ब्रह्मा से लौट कर आप यहाँ भी आवेंगे। आपका कई जगह प्रेमपूर्वक आमन्त्रण हुआ है। पर शायद आप बहुत दिन इस देश में न घूम सकें। यदि आप अन्यत्र न जा सके, तो कलकत्ते तो ज़रूरही पधारेंगे। मार्च के आरम्भ में आप कलकत्ते पहुँच जायँगे। इस संख्या में हम आपका और आपकी डचेज़ साहबा का चित्र पाठकों को भेंट करते हैं।

* * *

मिरज़ापुर-निवासी बाबू काशीप्रसाद से सरस्वती के पाठक अवश्य ही परिचित हैं। आज तक आपके कितने ही लेख सरस्वती में प्रकाशित हो चुके हैं। इस संख्या में भी आपका एक छोटा सा लेख शेक्सपियर पर है। इस समय आप विलायत में विद्योपार्जन कर रहे हैं। उधर आक्सफ़र्ड-विश्वविद्यालय से "डिगरी" प्राप्त करने के लिए वहां भी आप अध्ययन करते हैं; इधर लंदन में बैरिस्टरी की परीक्षा पास करने का भी उद्योग करते हैं। आजतक सब मिला कर आपकी तीन परीक्षायें हुई हैं। सब में आप योग्यता से उत्तीर्ण हुए हैं। पहली परीक्षा के काग़ज़-पत्रों को देखने से मालूम हुआ कि कोई सौ छात्रों में आपका तेरहवाँ नम्बर रहा। यह सिर्फ़ डेढ़ दो महीने का फल है। मालूम होता है, और भारतवर्षीय युवक वहाँ जाकर अपने समय का सदुपयोग नहीं करते। दो कालेजों में भिन्न भिन्न प्रकार की शिक्षा प्राप्त करके परीक्षा में इस नामवरी के साथ उत्तीर्ण होना सहज बात नहीं है। हिन्दी के प्रेमी और उसकी अभिवृद्धि के इच्छुक बाबू काशीप्रसाद की इस कामयाबी का हृदय से अभिनन्दन करती हुई "सरस्वती" उनका चित्र प्रकाशित करती है।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अँगरेज़-महाराज ने ड्रेडनाट नाम का एक नया लड़ाकू जहाज़ बनाया है। इसे बनकर तैयार हुए और पानी पर तैरे अभी थोड़े ही दिन हुए। यह जहाज़ बड़ाही भयङ्कर और भीमकाय है। बेहद वेगगामी भी है। इससे बड़ा जहाज़ आज तक नहीं बना था। इसे देखकर अमेरिका वाले भी दो जहाज़ ऐसेही बनाने की फ़िक्र में हैं। उनका अभी तक इरादा ही इरादा है। पर छोटे से जपान ने ड्रेडनाट का भी एक पितामह बना डाला। इसका नाम है "सातसूमा"। यह तैरने भी लगा है। इसे जपानियों ने ख़ुद ही बनाया है; किसी की मदद नहीं ली! और बनाया भी बहुत जल्द है। जपान की इस चुस्ती पर योरप और अमेरिका वाले दंग हैं। अमेरिका के अख़बार तो कुछ घबराये से हैं। वे कहते हैं कि जपान अब प्रशान्त-सागर का सर्वाधिकारी हो चुका। अब वहाँ और किसी की दाल गलने की नहीं। जपान एक और भी बहुत बड़ा जहाज़ बना रहा है। आशा है वह भी शीघ्रही तैयार हो जायगा। "सातसूमा" ड्रेडनाट से हर बात में बढ़ कर है। जहाज़ी दुनिया में वह अपना सानी नहीं रखता।

* *
*

हवा में उड़ने का प्रश्न अन्त को हल हो गया। फ़्रांस के रहनेवाले सन्तोज़ डूमोंट नामक वैज्ञानिक ने, पेरिस में, २३ आक्टोबर ०६ को अपने पवन-यान में बैठकर हज़ारों आदमियों के सामने आकाश में उड्डान किया। पवन-यान पहले ज़मीन पर कुछ दूर तक चला; फिर एक दम उठकर आकाश की ओर गया। वह १० फ़ीट ऊंचा उठा और इसी उँचाई पर उसने २०० फ़ीट की दौड़ लगाई। नीचे खड़े हुए दर्शकों के सिर पर पवन-यान की दौड़ हुई। फ़ी घंटे २५ मील के हिसाब से वह दौड़ा। उस पर सन्तोज़ डूमोंट भी सवार थे। उतरते समय कुछ जल्दी की गई। इससे धक्के के साथ वह ज़मीन पर आया और उसके पहिए ख़राब हो गये। पर बहुत नुक़सान नहीं हुआ। वे फिर ठीक कर दिये गये। इस उड्डान की कामयाबी पर सन्तोज़ साहब को एक बहुत बड़ा इनाम मिला है। आप अब इस पवन-यान की उन्नति में लगे हैं और शीघ्रही इससे भी बड़ा इनाम पाने के लिए एक और बड़ी बाज़ी मारने की फ़िक्र में हैं। लोगों को अब विश्वास हो गया है कि सन्तोज़ के यान की तरह हवा से अधिक वज़नी आकाश-यान बन सकते हैं और ऐसेही यान आकाश में उड़ सकेंगे। इस तरह का बना हुआ यह पहला ही यान है जो कामयाबी के साथ उड़ा है। जिस सिद्धान्त पर यह यान बनाया गया है उसी पर अब और लोग भी बनाने का यत्न कर रहे हैं। आशा है कि बहुत जल्द आकाश-मार्ग से दूर दूर तक के सफ़र होने लगेंगे। जो दोष सन्तोज़ के यान में हैं वे अब धीरे धीरे निकल जायँगे और वह धड़ाके से आकाश में उड़ने लगेगा।

* *
*

सरस्वती की किसी पिछली संख्या में हमने एक नोट दिया था कि समुद्र के जल में सोना पाया गया है। बहुत विद्वान् इस सोने के निकालने की तदबीरें सोच रहे हैं और कई आदमियों को कामयाबी भी हुई है। ब्रुसल्स-विश्वविद्यालय के अध्यापक डी वाइल्डी को इस विषय में सबसे अधिक कामयाबी हुई है। उन्होंने अपनी तरकीब से बहुत आसानी के साथ समुद्र के जल से सोना निकाल कर दिखला भी दिया है। समुद्र के २७ मन पानी में आधे से लेकर एक ग्रेन तक सोना रहता है। परन्तु बहुत सा सोना, पानी से अधिक वज़नी होने के कारण, समुद्र के तल में चला जाता है। तिसपर भी जितना रह जाता है उतना ही क्या कम है। सामुद्रिक सोना जिस समय निकल कर बिकने लगेगा उस समय सोने का बाज़ार भाव बहुत गिर जायगा।

* *
*

१९०३ तक दुनिया भर में ५,३४,२३२ मील रेल थी। इसका हिसाब सुनिए—

योरप	...	...	१,८६,७१८ मील
एशिया	...	...	४६,५३१ "
आफ़रिक़ा	...	...	१५,५६३ "
पुरानी दुनिया		...	२,४८,८१२ "

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरी अमेरिका ...	...	२,३९,०१५ मील
दक्षिणी अमेरिका	...	२९,८५८ ,,
आस्ट्रेलिया ...	...	१६,६०८ ,,
नई दुनिया	...	२,८५,४८१ ,,

अकेले उत्तरी अमेरिका में १२,२९७ मील रेल योरप से अधिक थी। और कुल नई दुनिया में पुरानी दुनिया से ३६,६७० मील अधिक थी। १९०३ ईसवी में नीचे लिखे अनुसार नई रेल खुली थी—

योरप ...	...	२,७२१ मील
एशिया ...	...	१,९७३ ,,
आफ़रिक़ा	...	१,००८ ,,
अमेरिका	...	६,८६६ ,,
आस्ट्रेलिया	...	५७० ,,

१९०३ के बाद रूस ने मध्य एशिया में बहुत दूर तक रेल खोली है। चीन में इस समय सिर्फ़ १,१७६ मील रेल है; पर जापान में ४,३६६ मील।

* * *

गुरुदासपुर (पञ्जाब) में एक जगह एक लंबी दीवार है। दीवार पक्की ईंट की है और उसमें मेहराबदार बहुत से दरवाज़े हैं। मेहराबों के नीचे के खंभे सब मज़बूत और अच्छी हालत में हैं। इस दीवार में एक विलक्षणता है। अगर कोई आदमी ऊपर, चढ़कर दीवार के दोनों किनारे पकड़ कर, झोंके के साथ उसे इधर उधर हिलाता है तो दीवार हिलने लगती है। दीवार इतने ज़ोर से हिलती है कि उसका हिलना मेहराबों को देखने से साफ़ मालूम होता है। ऐसी मज़बूत और पुख़्ता दीवार का इस तरह ज़रा से धक्के से हिलना लोगों की समझ में नहीं आता। मेजर कारिगन ने इस दीवार का एक चित्र, उसकी विलक्षणता-वर्णन के साथ, एक अँगरेज़ी मासिक पुस्तक में प्रकाशित किया है। गुरुदासपुर वालों ने इसका नाम "हिलने वाली दीवार" रखदिया है।

* * *

हिन्दी-भाषा में एक अच्छे शब्द-कोश का बड़ा अभाव है। खेद का स्थान है कि किसी उत्साही पुस्तक-प्रकाशक ने इस ओर अभी तक पूरा ध्यान नहीं दिया है। अँगरेज़ी भाषा में जौनसन ने पहले पहल एक सुन्दर शब्द-कोश लिखा था। वही आधुनिक कोशों की भूमिका समझी जाती है। अँगरेज़ी भाषा के मशहूर कोशों में प्रथम "सेंचुरी" है जो आठ बड़ी बड़ी जिल्दों में है और जिसको "टाइम्स" पत्र ने हाल ही में दो सौ रुपये में बेंचा है। दूसरा "इम्पीरियल" है, जिसका मूल्य अस्सी रुपये है। तीसरा "स्टैंडर्ड" है जो पैंतीस रुपये में मिलता है; और चौथा, "वेब्स्टर" जो एक्कीस रुपये में मिलता है। एक बृहत् कोश कोई दस बरस से आक्सफर्ड-विश्वविद्यालय की ओर से छप रहा है। वह अभी तक पूरा नहीं हुआ है। लोग कहते हैं कि वह इन चारों से बढ़कर होगा। सन् १९०५ के आक्टोबर में एक नवीन शब्द-कोश का प्रकाश होना पूर्ण हुआ था। नाम उसका है "डायलेक्ट डिक्शनरी" अर्थात् उन शब्दों का कोश जिनका अर्थ बोलचाल में बदल गया है। इस कोश के सम्पादक जासेफ़ राइट साहब हैं जो आक्सफ़र्ड-विश्वविद्यालय में शब्दशास्त्र के वर्त्तमान अध्यापक और स्वर्गीय अध्यापक मैक्समूलर के उत्तराधिकारी हैं। इसमें एक लाख शब्द हैं और उनके प्रयोगों के पाँच लाख उदाहरण हैं। इस कोश का प्रकाश होना सन् १८९६ के जूलाई में प्रारम्भ हुआ था। इसके बनवाने में तीन लाख रुपये ख़र्च पड़े हैं। इसके निर्म्माण के सम्बन्ध की एक विचित्र बात अवश्य याद रखने लायक़ है। वह यह है कि मिस्टर राइट के सिवा जितने लेखक, सम्पादक और सहकारी सम्पादक इसके निर्माण में नियुक्त थे, वे सब केवल स्त्रियां थीं। पुरुष केवल मिस्टर राइट हा थे। उनकी धर्म्मपत्नी प्रधान उपसम्पादिका थी और उन्होंने सब योग्य स्त्रियों को चुन चुन कर इस काम पर नियुक्त किया था। समालोचक लोग कहते हैं कि ऐसा कोश न अब तक प्रकाश हुआ है और न अब बहुत दिनों तक फिर प्रकाश होगा।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अँगरेज़ी भाषा में इस साल एक बहुत मशहूर ग्रन्थ का छपना पूरा हुआ है। उसका नाम है "ज्युइश इन्साइक्लोपीडिया" अर्थात् यहूदियों का विश्व-कोश। यह ग्रन्थ बारह बड़ी बड़ी जिल्दों में समाप्त हुआ है। इसके छपने में पूरे पांच बरस लगे हैं। इस के निर्म्माण के लिए छः सौ पांच (६०५) सम्पादक और लेखक नियुक्त किये गये थे जो समस्त संसार के विद्वानों के गगन-मंडल में चमकते हुए तारा-स्वरूप हैं। इस महा ग्रंथ के बनवाने में १८,९५,००० रुपये ख़र्च हुए हैं। म्यसर्स फंक ऐण्ड वैगनल्स इस बृहद्-ग्रंथ के प्रकाशक हैं। इसमें कुल सोलह हज़ार विषय हैं जो स्वतन्त्र लेखों के सिवा तीस हज़ार ग्रंथों के संक्षेप-संग्रह हैं। यहूदियों के सम्बन्ध की कोई ऐसी बात नहीं है जिसका पूरा पूरा पता इस बड़े ग्रंथ में न मिलता हो। सचमुच ऐसे ही ग्रंथ साहित्य और भाषा के गौरव को बढ़ाते हैं।*

* *
*

"संस्कृत-चन्द्रिका" के सुयोग्य सम्पादक श्रीमान् अप्पा शास्त्री राशिवड़ेकर ने दक्षिण प्रान्त के वाई नगर से "सूनृत-वादिनी" नामकी एक साप्ताहिकी पत्रिका संस्कृत में निकालनी शुरू की है। इसका वार्षिक मूल्य तीन रुपये है। इसके दो पृष्ठों में विज्ञापन आदि रहते हैं और दो में मज़मून। आकार छोटा नहीं, ख़ासा है। शास्त्री जी संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान् हैं। आपकी गति प्रायः सब शास्त्रों में है। गति नहीं, यह कहना चाहिए कि आप सब शास्त्रों में पारङ्गत हैं। संस्कृत तो आप ऐसी अच्छी लिखते हैं जिसे पढ़कर संस्कृतज्ञ पण्डित लहालोट हो जाते हैं। साप्ताहिक समाचारपत्रों में जो गुण होने चाहिएं वे सब आपकी इस नई पत्रिका में हैं। इसकी तीन संख्यायें हमने देखी हैं। तीनों अच्छी हैं। आपने "अपि विद्यते कश्चिज्जीवो नाम" लेख-मालिका जो शुरू की है वह बहुत ही उत्तम है। उसमें भाषा-सौन्दर्य तो इतना है कि बार बार पढ़ने को जी चाहता है। गीर्वाण-वाणी के प्रेमियों को ज़रूर इस पत्रिका का आदर करना चाहिए।

* *
*

बनारस के सिद्धेश्वर प्रेस से बाल-प्रभाकर नाम का एक मासिक पत्र, जनवरी १९०६ से, निकलता है। इसकी जनवरी ०७ की संख्या का रूप, रंग और ढंग देखकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। छपाई साफ़, सुथरी है। काग़ज़ भी अच्छा है। चित्र भी इसमें हैं। लेख लड़कों के लिए उपयोगी हैं। इस २४ पृष्ठ के पत्र का वार्षिक मूल्य सिर्फ़ १ रुपया है। इसलिए समर्थ लड़के अपने जेब-ख़र्च से ही इसका मूल्य देकर इसे साल भर पढ़ सकते हैं।

* *
*

"वैश्योपकारक" नामक मासिक पत्र कोई तीन वर्ष से, कलकत्ते के राम प्रेस (५० नं०, काटन स्ट्रीट) से निकलता है। बीच में उसके प्रकाशन में कुछ अव्यवस्था हो गई थी। पर अब वह फिर निकलने लगा है। इस पत्र में चित्र भी रहते हैं और लेख प्रायः वैश्योपकारक होते हैं। इसके सम्पादक पण्डित जीवानन्द काव्यतीर्थ हैं। इसका रंग, ढंग, काग़ज़ और छपाई आदि उत्तम है। हिन्दी के प्रेमियों को चाहिए कि इसका नमूना मँगाकर ज़रूर देखें।

फ़ारस के शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन।

फ़ारस में रूस की प्रभुता बढ़ने के चिह्न देख कर अँगरेज़ों का चित्त उस ओर आकर्षित हुआ है। रूस ने फ़ारस को एक बार भारी शिकस्त देकर उसका बहुत सा देश छीन लिया है। इस पर भी यदि फ़ारस रूस की ओर झुके तो आश्चर्य्य की बात है। पर अब झुक नहीं सकता। क्योंकि फ़ारस-विषयक राजनैतिक रहस्यों में, इँगलैंड और रूस दोनों ने, मिलकर योग देने का आपस में फ़ैसला कर लिया है। फ़ारस की खाड़ी के किनारे जास्क, बन्दर अब्बास और बू शहर आदि स्थानों में

* यह और इसके पहले का नोट बाबू गोकुलानन्दप्रसाद वर्म्मा की कृपा का फल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अँगरेज़ी प्रजा जाकर बस गई है और वहां व्यापार करती है। और और कारणों के सिवा यह भी एक कारण है जिससे ब्रिटिश राज्य का प्रभुत्व इस खाड़ी में बना रहनाही चाहिए। ऐसा न होने से और कोई शक्ति अपना दबदबा वहाँ जमा लेगी; और जलमार्ग से भारत के बहुत निकट आ जायगी। यह कदापि इष्ट नहीं। इसीलिए अँगरेज़ी-प्रभुत्व की घोषणा देने को दिसम्बर १९०३ में लार्ड कर्ज़न इस खाड़ी के कई स्थानों में पधारे थे।

फ़ारस बहुत पुराना राज्य है। वहाँ ईसा के कई सौ वर्ष पहले होने वाले बादशाहों तक का हाल इतिहास में पतेवार मिलता है। जिस समय ग्रीस ने योरप को अपनी विद्या और बल से चकित किया था उस समय भी फ़ारस उन्नत था। उससे कई बार ग्रीस की टक्कर हुई है। परन्तु थर्म्मापिली की घाटी में जबसे ग्रीसवालों ने फ़ारस की अनन्त सेना काट डाली तबसे फ़ारस का ज़ोर कम हो गया। फ़ारस ने इस देश पर भी कई बार कृपा की है। सब से पहले दारा ने इस ओर प्रस्थान किया; परन्तु दूर तक वह इस देश में प्रवेश नहीं कर सका। नादिर ने जो हत्याकाण्ड देहली में किया और जो सम्पदा यहाँ से लूट ले गया वह तो अभी कल की बात है। तेहरान में देहली का तख़्त-ताऊस इसकी गवाही दे रहा है।

नये और पुराने फ़ारस में आकाश-पाताल का अन्तर है। पुराने फ़ारस का विस्तार बहुत अधिक था। वह अब कट छँट कर छोटा हो गया है। तिस पर भी उसका क्षेत्रफल प्रायः ६,१०,००० वर्गमील और आबादी प्रायः ९०,००,००० है। फ़ारस में सब फौज़ कुल १,००,००० है; परन्तु शान्ति के समय केवल २४,००० रहती है। फ़ारस के पास जल-सेना बहुत ही कम है। सामरिक सामान से सजे हुए कुल दो या तीन जहाज़ और एक धुवाँकश है।

फ़ारस में और फल तो होतेहो हैं; परन्तु अंगूर बेहद होता है। उसकी शराब बनती है। इसके लिए शीराज़ सबसे अधिक मशहूर है। इस्फहान में भी इस का बड़ा व्यापार होता है। फ़ारस में क़ालीन बहुत अच्छे बनते हैं। किसी किसी का तो मत है कि वहां के क़ालीनों की बराबरी और कोई देश नहीं कर सकता। वे अद्वितीय और अनुपमेय होते हैं। खुरासान, फ़रग़ान और किरमान के क़ालीन सब से बढ़िया होते हैं। शाल भी फ़ारस में बनते हैं। यद्यपि कश्मीर के बने हुए शालों की वे बराबरी नहीं कर सकते, तथापि वे भी असाधारण ही होते हैं।

फ़ारस में छोटे बड़े सब दस सूबे हैं। उनमें से अज़रबैज़ान, ख़ुरासान, सीस्तान, मज़न्दरान, ज़ंजान, और अस्तराबाद मुख्य हैं। फ़ारस में तुर्क और फ़ारसी ही अधिक बसते हैं; परन्तु अरब और यहूदी भी कहीं कहीं हैं। किरमान में थोड़े से हिन्दू भी हैं। यहाँ एक जगह यज़्द है। उसमें फ़ारस के प्राचीन अग्निपूजक भी कुछ हैं।

गत जनवरी में फ़ारस के शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन की मृत्यु हो गई। आपका ख़िताब था शाहन्शाह। फ़ारस के सभी शाह शाहन्शाह कहलाते हैं। आपका जन्म २५ मार्च १८५३ को हुआ था। पिता शाह नसीरुद्दीन के मारे जाने पर आपको १ मई १८९६ को राजासन मिला था। आपका वंश-वृक्ष बहुत बड़ा है। फ़ारस के शाह अपनी उत्पत्ति नूह के बेटे जाफ़ेट से बतलाते हैं। इस राज्य की नीव साइरस नाम के प्रतापी पुरुष ने डाली। उसे दारा और ज़रकश ने अपनी तलवार के ज़ोर से दृढ़ किया। फ़ारस की प्रजा अपने शाह को ईश्वर की छाया, स्वर्ग की सीढ़ी, और विज्ञान का उत्ताल-तरङ्गमय समुद्र समझती है। शाह अपनी प्रजा के धन और प्राण दोनों के प्रभु होते हैं। रत्नादि में तो शाह की बराबरी योरप और एशिया का कोई बादशाह, शाहन्शाह या राजा नहीं कर सकता। शाह की निज की सम्पत्ति बहुत करके रत्नमय ही है। उनके 'दरियाय-नूर' नामक हीरे का वज़न १८६ कैरट (४ तोला १ माशा) है; और 'ताजे-माह' का १४६ कैरट (३ तोला २ माशा ४ रत्ती) है। शाह के १२ लड़कियां और ६ लड़के हैं। यह संख्या १९०२ तक की है। आपके युवराज महम्मद अली मिरज़ा, अब आपकी गद्दी पर विराजे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका जन्म १८७२ ईसवी का है। सुनते हैं, शाह के बहनें भी उतनीही हैं जितनी उनके लड़कियां हैं। और भाई भी उतने ही जितने उनके लड़के हैं। यदि यह सच है तो बात बड़ी अजीब मालूम होती है।

मृत शाह के पिता शाह नसीरुद्दीन का शरीर ख़ूब लम्बा चौड़ा था। उनके चेहरे पर रोब, वीरता और पुरुषार्थ झलकता था। आपको शिकार का बड़ा शौक़ था। राजधानी छोड़कर आप बहुधा पहाड़ों पर कुत्ते और शिकारी चिड़ियाँ लिये हुए घूमा करते थे। जब आपको राज्य मिला तब आप केवल तुर्की भाषा जानते थे। परन्तु थोड़े ही दिनों में आपने फ़ारसी लिखना पढ़ना बख़ूबी सीख लिया, और फ़रासीसी और अरबी में भी थोड़ा बहुत अभ्यास कर लिया। आपने दो बार इँगलैंड की सैर की। एक बार १८७३ में; दूसरी बार १८८९ में। शाह प्रजा-प्रिय थे; वीर थे; राज्यप्रबन्ध में पूरी योग्यता रखते थे; परन्तु आपका मिज़ाज कुछ लड़कों का सा था। विलायत में आपने एक दफ़ा बहुत सी पैर गाड़ियाँ ख़रीदीं। उनमें से एक एक गाड़ी आप ने अपने साथ आये हुए एक एक अमीर को दी और कहा, इस पर चढ़िए। उन लोगों को चढ़ने का बिलकुल अभ्यास न था। परन्तु शाह की आज्ञा कैसे उल्लंघन की जा सकती थी? वे चढ़े कि धड़ाम धड़ाम नीचे आ रहे! विलायत से रबर की एक नाव आप तेहरान लाये। वहाँ उसके नीचे की डाट निकाल कर आपने कई अमीरों को उसपर सवार कराया और शाही बाग़ के तालाब में उसे चलाने का हुक्म दिया। ज़रा देर में वह पानी के भीतर हो रही और अमीराना पोशाक पहने हुए उसके सवार ग़ोते खाने लगे! शाह के कई बेगमें थीं। उनमें से एक की बहन से आपने नई शादी करनी चाही। इस पर सब बेगमें बिगड़ उठीं। उन्होंने गड़बड़ मचाया और कहा कि यदि यह शादी होगी तो हम अँगरेज़ी ध्वजा के नीचे चली जायँगी और तेहरान के अँगरेज़ एलची के यहाँ जा रहेंगी। यदि ऐसा होता तो अँगरेज़ एलची बड़े ही असमञ्जस में पड़ता। परन्तु ख़ैर हुई, ऐसा नहीं हुआ। तथापि बुड्ढे शाह ने शादी करके छोड़ा।

क़न्धार के एक अमीर के भड़काने से शाह नसीरुद्दीन ने १८५६ ईसवी में अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई करदी और हिरात दख़ल कर लिया। इस कारण अँगरेज़ों को फ़ारस पर सेना भेजनी पड़ी। इस सेना ने पहुँचते पहुँचते कर्क का टापू और बूशहर ले लिया; रिशिर के क़िले पर भी क़ब्ज़ा कर लिया। फिर अँगरेज़ी सेना शीराज़ की ओर बढ़ी और ख़ुशाब में फ़ारसवालों को उसने एक शिकस्त दी। इतने ही में सन्धि हो गई। तबसे अँगरेज़-प्रभुओं की प्रभुता फ़ारस की खाड़ी में बराबर बनी हुई है। इसको लार्ड कर्ज़न ने नई कर दिया है। लड़ाई के बाद ही कराची से तेहरान होकर, थल-मार्ग से, विलायत को तार लगाया गया। यह बराबर काम दे रहा है। इसके द्वारा एक घंटे से भी कम समय में, लंदन और कलकत्ते के बीच, ख़बरें आती जाती हैं!

शाह नसीरुद्दीन अपनी मौत से नहीं मरे; उनको एक हत्यारे ने मार डाला था। और शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन पर भी एक दुष्ट ने गोली छोड़ी थी; परन्तु आप बच गये और वह हत्यारा पकड़ा गया। यह उस समय की बात है जब शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन इँगलैंड गये थे। लंदन की एक गली में यह हादसा हुआ। अपने पूर्वजों के समान यह शाह भी बड़े शिकारी थे। साहस और वीरता भी आप में ख़ूब थी। किसी किसी का मत है कि शाह में अपना राज्य सँभालने की यथोचित योग्यता नहीं थी; शारीरिक शक्ति भी उनमें कुछ कम थी; बुद्धि भी उनकी तीव्र न थी। परन्तु लार्ड कर्ज़न इस राय के ख़िलाफ़ हैं। उन्होंने फ़ारस में बहुत दिन तक सैर की है और एक किताब भी लिखी है। इस किताब का बड़ा मान है। लाट साहब ने इस किताब में लिखा है:—"शाह समझदार नरेश हैं; उनकी बुद्धि भी मन्द नहीं; वे इतिहास में पूरे दक्ष हैं; वनस्पति-शास्त्र का भी उन्हें ज्ञान है।; स्वभाव भी उनका बुरा नहीं। राज्य के कामों में जो उनको ज़रा कम अनुभव है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका कारण है। शाह नसीरुद्दीन ने उनको राजधानी से दूर एक ऐसे सूबे का गवर्नर जनरल बनाया था जहाँ उनको राज्य के गुरुतर कार्य्यों में हाथ डालने, या अपनी राय देने, या और कुछ करने का अवसर ही नहीं मिला। फिर उनको इन बातों की विज्ञता कैसे प्राप्त होती? उनको निज के ख़र्च के लिए जो कुछ मिलता था वह भी काफ़ी न था; उनको बहुधा क़र्ज़ लेना पड़ता था। ४० वर्ष की उम्र तक वे इसी दशा में, अज़रबैज़ान में पड़े रहे। इसलिए यदि उनके स्वभाव और समझ में कोई दोष पाये जायँ तो उन्हें स्वाभाविक नहीं समझना चाहिए"।

शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन योरप के नरेशों की राजनीति का ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा किया करते थे। कोई भी योरप का विद्वान् अथवा अधिकारी जो वहाँ जाता था उसकी वे ख़ातिर करते थे, और उससे अनेक विषयों पर वार्तालाप भी करते थे। दस ग्यारह बजे, खाना खाने के बाद, आप कुछ देर आराम करते थे। अनन्तर आप थोड़ी सी चाय पीकर तार का यन्त्र चलाते थे। आपने तार का काम सीखा था और उससे ख़बर भेजने का आपको बड़ा शौक़ था। शाह को फ़ोटोग्राफ़ी में भी ख़ूब अभ्यास था। आपके लिए हुए अनेक अच्छे अच्छे फ़ोटो हैं। हर पोशाक़ और हर सूरत में आपने अपने भी फ़ोटो उतारे थे। यहां तक कि लेटे लेटे भी आपकी तसवीर उतारी गई थी। शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन भी दिल्लगी पसन्द नरेश थे। आपके ज़ेरसाये कितने ही दिल्लगीबाज़ मज़े उड़ाते रहे हैं। अनेक प्रकार के क़िस्से कहानियां कह कर और अजीब अजीब तरह की बातें सुनाकर वे शाह को हँसाते थे।

शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन ने गद्दी पर बैठते ही रोटी और मांस पर का कर उठा दिया। इससे उनका बड़ा नाम हुआ। प्रजा प्रसन्न हो गई। शाह को रुपये की बड़ी ज़रूरत थी। उन्होंने इँगलैंड से क़र्ज़ माँगा। इँगलैंड वालों ने क़र्ज़ देना तो मंज़ूर किया; पर शर्तें बेढब करनी चाहीं। इससे लाचार होकर शाह ने रूस से ३½ करोड़ रुपया क़र्ज़ लिया। यह बात अँगरेज़ों को अच्छी नहीं लगी। इस ऋण के कारण रूस की प्रभुता फ़ारस में बढ़ गई। रूस और फ़ारस के दरमियान व्यापार-विषयक एक सन्धिपत्र भी लिखा गया। इसका असर जो फ़ारस पर हुआ वह यदि जाता नहीं रहा, तो बढ़ने का भी नहीं; क्योंकि इँगलैंड और फ़ारस के दरमियान भी अब व्यापार-विषयक एक दस्तावेज़ लिख गई है।

शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन ने १९०० में रूस और फ़्रांस की सैर की और १९०२ में इँगलैंड की। वहां उन्होंने जो राजनैतिक अनुभव प्राप्त किया उसका फल फ़ारस की नवजात पारलियामेंट है।

फ़ारस के शाह अपार सम्पत्ति के स्वामी हैं। उनके शाही महलों में ज़ेवर और जवाहिरों का अन्त नहीं है। देहली का तख़्त ताऊस आपही की सम्पदा है। तेहरान में एक ख़ास महल है। उसे सम्पत्ति-सागर कहना चाहिए। श्रीमती बिशप ने फ़ारस पर एक किताब लिखी है। उसमें वे कहती हैं कि इस महल का वह दीवान-ख़ाना, जिसमें शाह के रत्नादि रक्खे हैं, दुनिया भर के सब से सुन्दर स्थानों में से एक स्थान है। इसके बीच में एक सुवर्ण-खचित मेज़ है। सोनेही के काम की कुरसियाँ भी कमरे में चारों ओर रक्खी हैं। बहुमूल्य मेज़ों के ऊपर, और काँच की अलमारियों के भीतर, शाह के अनेक मुकुट और असंख्य रत्न जमा हैं। हीरे, मोती, लाल, नीलम, पुखराज, सैकड़ों प्रकार के सोने के पात्र, रत्नों से खचित कटार और तलवार, लाल और ज़मुर्रद जड़े हुए मुकुट, हीरा लगी हुई ढालें, भाँति भाँति के रत्नों से लबालब भरी हुई रकाबियां, देखकर देखनेवाला हैरत में आ जाता है। उनकी शोभा, उनकी बहुमूल्यता, उनकी अनन्तता अवर्णनीय है। उस सम्पत्ति को देखना एक सपना सा है। परन्तु इसे जो देखता है वह भूलता नहीं। १२ इञ्च चौड़ी और तीन फ़ुट ऊंची कितनी ही अलमारियां ऐसी हैं जिन में सिवा हीरे, लाल, पुखराज और नीलम के कोई चीज़ नहीं। उनसे जो रंग बरंगी किरणें निकलती हैं उनकी शोभा देखते ही बन आती है; वह वर्णन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय नहीं। किसी किसी जगह पर ये रत्न योंहीं ढेर हैं; क़ायदे से रक्खे भी नहीं गये। यहां पर पृथ्वी का एक गोला (Globe) है। वह बहुत ही अद्भुत वस्तु है। उसका व्यास २० इंच है। उसकी बैठक और याम्योत्तर वृत्त ठोस सोने के हैं; उन पर लाल जड़े हुए हैं। उसकी भूमध्य रेखा हीरों की है। देशों की सीमायें दिखलाने में लाल लगाये गये हैं; परन्तु फ़ारस के लिए हीरों से काम लिया गया है। जहाँ समुद्र है वहाँ नीलम जड़ा हुआ है। इतने रत्न मानों काफ़ी नहीं समझे गये; इसलिए गोले की जड़ में, तीस तीस अशरफ़ी के बराबर वज़नी, बड़े बड़े सोने के सिक्के, इकट्ठे कर दिये गये हैं। इस समय फ़ारस के नरेश की सम्पत्ति का जब यह हाल है तब दारा, ज़रकश, ख़ुसरो, शाहरुख़, शाह अब्बास और नादिरशाह के समय में, न मालूम, क्या हाल रहा होगा। तख़्ते-ताऊस एक अलग कमरे में है। इसे नादिरशाह देहली से लूट ले गया था। औरंगज़ेब के समय में टेबरनियर नामक एक फ़रासीसी इस देश में आया था। उसने इस तख़्त को देख कर इसका वर्णन लिखा था। उसी वर्णन का सारांश देकर हम इस लेख को समाप्त करेंगे। सुनिए—

"तख़्ते-ताऊस ६ फुट लंबा और ४ फुट चौड़ा है। इसमें ४ पाये हैं; वे कोई २५ इंच ऊंचे हैं। इस पर १२ खंभे हैं जो तीन तरफ़ से, उसके ऊपर, शामियाने को थाँभे हैं। तख़्त के पाये और पटियों पर सोने का पत्र है; उस पर अद्भुत काम है और बेशुमार हीरे, लाल और पुखराज जड़े हुए हैं। हर एक पाये पर बीच में एक लाल है। उसकी तराश तिकोनी है। उसके चारों ओर चार पुखराज जड़े हैं। इसी तरह सब पटियों पर, थोड़ी थोड़ी दूर पर, लाल और पुखराज पच्ची किये गये हैं। अगर एक जगह पुखराजों के बीच में लाल है तो दूसरी जगह लालों के बीच में पुखराज। पुखराज और लालों के बीच में जो जगह ख़ाली है उस पर हीरे जड़े हैं। कहीं कहीं सुवर्ण-खचित मोती भी हैं। तख़्त पर चढ़ने के लिए एक तरफ़ ज़ीना है; उसपर कई सीढ़ियां हैं। एक तलवार, एक ढाल, एक कमान, तीरों से भरा हुआ एक तरकस, ये सब तख़्त से लटकते हैं। ये शस्त्र और ज़ीने की सीढ़ियाँ सब जवाहिरात से ढकी हैं। छत के नीचे का हिस्सा हीरे और मोतियों से जड़ा है; उसके चारों ओर मोतियों की झालर है। तख़्त के पीछे जो तकिया है उस पर इतने जवाहिरात जड़े हैं कि उनको गिनने के लिए बहुत वक्त दरकार है। इस पर जो मोर बना हुआ है वह अत्यन्त अद्भुत है। उसकी दुम फैली हुई है और कई रंग के रत्नों से बनाई गई है। मोर का बदन सोने का है। उसकी छाती पर एक बहुत बड़ा लाल लगा है। छाती से एक तोले से भी अधिक वज़नी एक पीले रंग का विलक्षण मोती लटकता है। इस मोर के दोनों तरफ़ रत्नमय दो गुलदस्ते हैं। मैं उनकी कान्ति और सुन्दरता नहीं बयान कर सकता। इसे तैमूर ने शुरू किया था और शाहजहाँ ने ख़तम किया। इसके बनवाने में एक करोड़ सत्तर लाख रुपया ख़र्च हुआ है"।

फ़ारस में जाकर तख़्ते-ताऊस की सूरत कुछ बदल गई है; परन्तु उसकी विलक्षणता वैसी ही बनी है। इस समय, योरप के जौहरी उसकी क़ीमत चार करोड़ के क़रीब कूतते हैं!!!

इस अपार सम्पति को छोड़ कर शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन परलोक को प्रस्थान कर गये। अब उसके मालिक उनके बेटे, मुहम्मद अलीमिरज़ा, हुए हैं।

अविद्यानन्द का व्याख्यान।

१—तुही शङ्कराकार संसार है।
निराकार है और साकार है॥
तुही सर्वस्रष्टा विधाता तुही।
गुणी निर्गुणी ज्ञानदाता तुही॥

२—अरे ओ अजन्मा कहाँ तू नहीं।
न कोई ठिकाना जहाँ तू नहीं॥
किसी ने तुझे ठीक जाना नहीं।
इसीसे महासत्य माना नहीं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—तुझे तर्क ने तोल पाया नहीं।
किसी युक्ति के हाथ आया नहीं॥
कहीं कल्पना बाँझ का पूत है।
कहीं भावना का महाभूत है॥

४—मुझे क्या किसी भाँति का तू सही।
कथा मङ्गलाभास की सी कही॥
जहाँ भक्ति तेरी रहेगी नहीं।
वहाँ धर्मधारा बहेगी नहीं॥

५—अनूठी कृपा है महाराज की।
अनोखी अथाई जुड़ी आज की॥
भली भिन्नता के महाभक्त हैं।
जली एकता के न आसक्त हैं॥

६—अरे आज मेरी कहानी सुनो।
नई बात, लीला पुरानी, सुनो॥
किसी अंश पै दंश देना नहीं।
यहाँ तर्क से काम लेना नहीं॥

७—अरे जो न माने बड़ों का कहा।
उसे ध्यान क्या सभ्यता का रहा॥
पुकारे खड़ी धर्मग्रन्थावली।
विरोधी भले काम का है कली॥

८—लिखा है कि विद्या रहेगी नहीं।
अविद्या सचाई गहेगी नहीं॥
सदाचार का नाश हो जायगा।
जगा वैर को प्रेम सो जायगा॥

९—युगाचार से भागना भूल है।
अविश्वास ही दुःख का मूल है॥
डरेगा नहीं जो किसी पाप से।
बचेगा वही शोक-सन्ताप से॥

१०—सुने स्वर्ग से लौ लगाते रहो।
पुनर्जन्म के गीत गाते रहो॥
डरो कर्म प्रारब्ध के योग से।
करो मुक्ति की कामना भोग से॥

११—महीनों पड़े देव सोते रहें।
महीदेव डूबे डुबोते रहें॥
मरी चेतनाहीन गङ्गा बही।
न पूरी कला तीरथों में रही॥

१२—इसीसे सुरों की न सेवा करो।
चढ़े भूतनी भूतड़ों से डरो॥
मसानी मियाँ को मना लीजिये।
जखैया रखैया बना लीजिये॥

१३—हँसो हंस को शारदा को तजो।
उलूकासनी इन्दिरा को भजो॥
धनी का धरो ध्यान छोटे बड़े।
रहो द्रव्य की लालसा में खड़े॥

१४—अनारी गुणी मानते हैं जिसे।
गुणी जालिया जानते हैं जिसे॥
उसे दान से मान से पूजिये।
हठी हेकड़ों के हितू हूजिये॥

१५—सुधी साधु को मान खाना न दो।
किसी दीन को एक दाना न दो।
बड़े हो बड़ा दान देना वहाँ।
बड़ाई करे वर्णमाला जहाँ॥

१६—कभी गाय बूढ़ी नहीं पालना।
किसी कौल को दान दे डालना॥
बड़ाई मिलेगी बड़ी आपको।
इसी भाँति काटा करो पाप को॥

१७—तने तर्क ताने पुराने रहें।
नई चाल के बोल बाने रहें॥
घने जाल जाली बुना कीजिये।
न कोरी कहानी सुना कीजिये॥

१८—रचो ढोंग पाखंड छूटे नहीं।
छुआ छूत का तार टूटे नहीं॥
मिले झुंड में गोल बोला करो।
न अंधेर की पोल खोला करो॥

१९—जहाँ झंझटों का झड़ाका न हो।
ध्वजाधारियों का धड़ाका न हो॥
वहां खोखले खेल खेला करो।
पड़े पार पै दण्ड पेला करो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२०—महामूढ़ता के सँगाती रहो।
दुराचार के पक्षपाती रहो॥
जुड़ें चौधरी पञ्च पाँगा जहाँ।
न बोला करो बोल सीधे वहाँ॥

२१—नई सीख सीखो सिखाते रहो।
महामोह माया दिखाते रहो॥
विरोधी मिलें जो कहीं एक द ।
उन्हें जाति से पाँति से छेक दो॥

२२—बसै भैरवी-चक्र में वीरता।
बिराजी रहै ज्ञान गम्भीरता॥
वहाँ वीर बानेत जाया करो।
कड़े कंटकों को जलाया करो॥

२३—कभी प्रेम का पान खाना नहीं।
बिना फन्द खाना कमाना नहीं॥
न ऊँचे चढ़ो नीच होते रहो।
प्रतापी बड़ों को बिगोते रहो॥

२४—ठगो देशियों को ठगाया करो।
मिला मेल मेले लगाया करो॥
ढके ढोंग का ढाँच ढीला न हो।
धबीली कहीं लोभलीला न हो॥

२५—नई ज्योति की ओर जाना नहीं।
पुराने दिये को बुझाना नहीं॥
धनी सम्पदा को न हाँगा करो।
भिखारी बने भीख माँगा करो॥

२६—अविद्वान विद्वान छोटे बड़े।
बड़े थे, बड़े हो, रहोगे बड़े॥
सदा आपका बोल बाला रहे।
कुदेवावली का उजाला रहे॥

२७—महा तंत्र के मंत्र देते रहो।
खरी दक्षिणा दान लेते रहो॥
लगातार चेले बढ़ाते रहो।
नई चेलियों को पढ़ाते रहो॥

२८—घटी चाल को चञ्चला कीजिये।
भलाई न भूलो भला कीजिये॥
खरे खेल खेलो खिलाते रहो।
सुधा सेवकों को पिलाते रहो॥

२९—महा मूढ़ मानी मिलापी रहें।
सँगाती सखा पोच पापी रहें॥
घनी धींग बूटी पिलाते रहें।
खरे माल खोटे खिलाते रहें॥

३०—नहीं सींचना खेत संग्राम के।
खड़े खेत जोता करो ग्राम के॥
कड़े फूट के बीज बोया करो।
सड़े मेल का खोज खोया करो॥

३१—छड़ी धार छैला छबीले बनो।
रँगीले रसीले फबीले बनो॥
न चूको भले भोग भोगी बनो।
किसी बेड़नी के वियोगी बनो॥

३२—अमीरो धुआँ धार छोड़ा करो।
पड़े खाट के बान तोड़ा करो॥
गलीमार मूछें मरोड़ा करो।
न ठाली रहो काम थोड़ा करो॥

३३—रचो फाग होली मचाया करो।
नई रंडियों को नचाया करो॥
बने भंगड़ी रंग डाला करो।
भले भाव जी के निकाला करो॥

३४—न प्यारा लगे नाच गाना जिसे।
कलंकी करे माँस खाना जिसे॥
कसूमा सुरा भंग पीता नहीं।
उसे जान लेना कि जीता नहीं॥

३५—हँसे होलिका में न पाऊ बने।
न दीपावली का कमाऊ बने॥
न होली दिवाली सुहाती जिसे।
उसे छोड़ लू लू कहोगे किसे॥

३६—बड़ी चाह से ब्याह बूढ़े करो।
नकीले कुलों की कुमारी बरो॥
न बेटा सगी सास बाला कहें।
न माजी लला साठसाला कहें॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३७—जहाँ बेटियाँ बेचना धर्म्म है ।
जहाँ भ्रूणहत्या भला कर्म्म है ॥
बने रंडियाँ बाल रंडा जहाँ ।
वहाँ पाप जीता रहेगा कहाँ ॥

३८—लगा लाग दूकान खोला करो ।
कभी ठीक सौदा न तोला करो ॥
कहो ग्राहकों से कि धोखा नहीं ।
भला कौन सा माल चोखा नहीं ॥

३९—लगातार पूँजी बढ़ाते रहो ।
कमाते रहो ब्याज खाते रहो ॥
न कंगाल का पिंड छोड़ा करो ।
लुहू लीचड़ों का निचोड़ा करो ॥

४०—रुई नाज देशी दिया कीजिये ।
विदेशी खिलौने लिया कीजिये ॥
हवेली घरों को सजाया करो ।
पड़े मस्त बाजे बजाया करो ॥

४१—खरी खाँड़ देशी न लाया करो ।
बुरी "बीट*" चीनी गलाया करो ॥
लुके लाट शीरा मिलाते रहो ।
दुरंगी मिठाई खिलाते रहो ॥

४२—पराई जमा मारनी हो जहाँ ।
अजी काढ़ देना दिवाला वहाँ ॥
किसी का टका भी चुकाना नहीं ।
न थोथे उड़ाना थुकाना नहीं ॥

४३—सगे बाप की भी न सेवा करो ।
पराधीनता का कलेवा करो ॥
कमीना किसी से कहाना नहीं ।
घटा मान आँसू बहाना नहीं ॥

४४—चितेरे, कलाकार, कारीगरो ।
उठो काम का नाम ऊँचा करो ॥
पड़े गुप्त क्यों विश्वकर्मा बनो ।
सुशर्मा बनो, वीरवर्मा, बनो ॥

४५—न भाषा पढ़ो, राजभाषा पढ़ो ।
बढ़ो वीर ऊँचे पदों पै चढ़ो ॥
करो चाकरी घूँस खाया करो ।
मिले वेतनों को बचाया करो ॥

४६—गवाही कभी ठीक देना नहीं ।
कहीं सत्य का नाम लेना नहीं ॥
भले मानसों को सताया करो ।
खरे खाउओं को बचाया करो ॥

४७—धता इंडिया की धजों को कहो ।
सजे लंदनी फ़ेशनों से रहो ॥
टके होटलों में ठगाया करो ।
बराँडी पिओ मीट* खाया करो ॥

४८—बहू-बेटियों को पढ़ाना नहीं ।
घरेलू घटी को बढ़ाना नहीं ॥
पढ़ी नारि नैया डुबो जायगी ।
किसी मित्र की मेम हो जायगी ॥

४९—सुनो तुक्कड़ो बात भद्दी नहीं ।
तुकों की करामात रद्दी नहीं ॥
यहाँ भूल का क़ाफिया तंग है ।
अरे नागरो नागरी दंग है ॥

५०—कहे पद्य पंचास थोड़े नहीं ।
गिनो गाँठ बाँधो गपोड़े नहीं ॥
सुना दो छिली ईंट को गालियाँ ।
कथा हो चुकी पीट दो तालियाँ ॥

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ।

---

* चुक़ंदर ।

सम्पत्ति-शास्त्र ।

उपोद्घात ।

इस देश के लिए यह शास्त्र बिलकुल नया है । जो बातें इसके अन्तर्गत हैं उनमें से एक दो बातों का यहीं प्रसङ्गानुसार विचार कहीं कहीं किसी किसी संस्कृत ग्रन्थ में किया गया है ; परन्तु शास्त्रीय रीति से नहीं । पाश्चात्य देशों में सम्पत्ति-शास्त्र-सम्बन्धी विषयों की चर्चा बहुत पुराने ज़माने से होती आई है । तथापि

* मांस ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रत्व पदवी प्राप्त हुए इसे वहाँ भी अभी कोई सौही वर्ष हुए। इसके सिद्धान्तों को शास्त्र का रूप एडम स्मिथ नाम के अँगरेज़ी विद्वान् ने अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में दिया। अपने "वेल्थ आफ़ नेशन्स" नाम के ग्रन्थ में उसने सम्पत्ति-सम्बन्धी बातों का गहन विचार करके उसके सिद्धान्त ढूंढ़ निकाले। उसके बाद मिल, रिकार्डो, फ़ासेट, मार्शल आदि और भी अनेक विद्वानों ने सम्पत्ति-शास्त्र पर ग्रन्थ लिखे। तथापि अब तक यह शास्त्र पूर्णता को नहीं पहुँचा। नये नये ग्रन्थ बराबर बनते, और नित नये सिद्धान्त स्थिर होते, चले जा रहे हैं।

कुछ समय से इस देश में भी सम्पत्ति-शास्त्र-विषयक बातों का विचार होने लगा है। अँगरेज़ी अख़बारों और सामयिक पुस्तकों में इस विषय की बहुधा चर्चा हुआ करती है। स्वदेशी वस्तुओं का अर्जन, विदेशी वस्तुओं का वर्जन, हड़ताल, व्यापार, महाजनी, कल-कारख़ानों के खोलने और चलाने के सिद्धान्त आदि सब इसी शास्त्र के अन्तर्गत हैं। परलोकवासी महादेव गोविन्द रानडे ने इस देश से सम्बन्ध रखनेवाली सम्पत्ति-शास्त्र-विषयक बातों पर बहुत कुछ चर्चा की थी। उनके अँगरेज़ी लेख पुस्तकाकार छप गये हैं। उन्हें इस देश के विद्वान् आदर की दृष्टि से देखते हैं। ख़ुशी की बात है कलकत्ते की "नेशनल कौन्सिल आव एजुकेशन" इस विषय का, इस देश के अनुरूप, एक ग्रन्थ बनवाने की फ़िक्र में है।

सम्पत्ति-शास्त्र को अँगरेज़ी में "पोलिटिकल यकानमी" कहते हैं। हिन्दी में किसी किसी ने इसका नाम "अर्थशास्त्र" रक्खा है। परन्तु यह नाम व्यापक नहीं जान पड़ता। क्योंकि "अर्थ" शब्द का एक ही अर्थ नहीं है। फिर "अर्थ" शब्द सब तरह की सम्पत्ति का वाचक नहीं। अर्थ की जगह यदि "धन" शब्द का प्रयोग होता तहाँ तक ग़नीमत थी। "पोलिटिकल यकानमी" का हिन्दी में "धन-विज्ञान", "सम्पत्ति-विज्ञान", या "सम्पत्ति-शास्त्र" ही उपयुक्त नाम है। "सम्पत्ति" शब्द से रुपये पैसे ही का अर्थ नहीं निकलता, किन्तु जितने प्रयोजनीय सांसारिक पदार्थ हैं सबका अर्थ निकलता है। इससे यही शब्द इस शास्त्र का पूरा पूरा वाचक है।

सम्पत्ति का स्वरूप।

सम्पत्ति कहते किसे हैं? जिस पदार्थ के बदले दूसरा पदार्थ मिल सके वह "सम्पत्ति" है। इस तरह के जितने पदार्थ हैं सब सम्पत्ति हैं। जिस शास्त्र में सम्पत्ति के स्वरूप, उसकी उत्पत्ति, उसके विनिमय अर्थात् अदला बदल, और उसके वितरण आदि का विचार किया जाता है उसे सम्पत्ति-शास्त्र कहते हैं। कपड़े के बदले अन्न मिल सकता है, पीतल या ताँबे के बरतनों के बदले शक्कर मिल सकती है, गाय-भैंस के बदले बैल मिल सकता है—इसलिए ये सब पदार्थ सम्पत्ति हैं। हवा और सूर्य्य का प्रकाश या उष्णता सम्पत्ति नहीं। क्योंकि ये चीज़ें मुफ़्त मिलती हैं। इनके बदले कोई चीज़ नहीं मिल सकती। इनकी कुछ भी क़ीमत नहीं। इससे ये सम्पत्ति नहीं। नदी तालाब और कुँवे का पानी भी सम्पत्ति नहीं। वह भी मुफ़्त मिलता है। पर मारवाड़ या ऐसी जगह जहाँ पानी दुष्प्राप्य है, अतएव मुफ़्त नहीं मिलता वहाँ वह भी सम्पत्ति है। इस लक्षण के अनुसार घास, पात, कूड़ा, कचरा, हड्डी और बाल आदि पदार्थ भी सम्पत्ति हो सकते हैं। क्योंकि इनकी खाद आदि बन सकती है और उसकी क़ीमत आती है।

जो लोग रुपये पैसे को सम्पत्ति समझते हैं वे भूलते हैं। यह उनका भ्रम है। रुपया पैसा सम्पत्ति नहीं। जिसके पास ५० गायें या १०० मन गेहूं है वह भी सम्पत्तिमान् है। वह निर्धन नहीं; वह भिखारी नहीं। अतएव रुपये को ही सम्पत्ति समझना भूल है। रुपया पैसा सम्पत्ति का दर्शक चिन्ह मात्र है। वह सम्पत्ति के अदला-बदल के सुभीते का एक साधन मात्र है। बिना उसके अदला-बदल करने में अनेक बाधायें आती हैं; इसीलिए उसकी योजना की गई है। जिसके पास एक थान कपड़ा है, उसे यदि एक मन गेहूं दरकार है, तो उसे किसी ऐसे आदमी को ढूंढना पड़ेगा जिसे एक मन गेहूं देकर एक थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपड़ा लेने की ज़रूरत है। इस ढूंढ खोज में बहुत मेहनत पड़ती है। और, फिर भी, यथासमय चीज़ न मिलने की सम्भावना रहती है। इसीलिए सिक्के के रूप में रुपये पैसे की उत्पत्ति हुई है। वह सम्पत्ति का चिन्ह है। इसीलिए उसके बदले सब चीज़ें मिल सकती हैं। और इसीलिए यह कहने की चाल पड़ गई है कि अमुक व्यक्ति दस हज़ार का मालिक है, या अमुक एक लाख का आदमी है।

बहुत पुराने ज़माने में रुपये पैसे का कोई नाम भी न जानता था। सब चीज़ों का प्रत्यक्ष बदला होता था। अब भी देहात में यह बात देखी जाती है। किसान लोग प्रायः अनाजही देकर नमक, तेल, हल, फाल, फावड़ा और कुल्हाड़ी लेते हैं। आफ़रीक़ा के असभ्य जंगली रुपये को मिट्टी पत्थर के बराबर समझते हैं। गोंद, हाथी-दाँत और चिड़ियों के पर आदि देकर वे अब भी खाने, पीने और पहनने की चीज़ों का बदला करते हैं।

रुपया पैसा सम्पत्ति नहीं। सोना चाँदी सम्पत्ति नहीं। इस दशा में यदि विदेशी माल अपने देश में आवे और उसके बदले यहाँ का रुपया विदेश चला जाय तो यह देश कँगाल कैसे हो सकता है? इसी तरह विदेशी माल पर कड़ा कर लगा कर उसका आना इस देश में बन्द या कम करने से इस देश का हित कैसे हो सकता है? ये बातें सम्पत्ति-शास्त्र के स्थूल नियमों के अनुसार निराधारसी मालूम होती हैं। पर इस शास्त्र के पारदर्शी विद्वानों को इस विषय में बहुत कुछ वक्तव्य है। उसकी चर्चा इस छोटे से लेख में नहीं की जा सकती। यहाँ पर इतना ही कहना बस होगा कि अवस्था-विशेष में, कुछ काल के लिए, विदेशी वर्जन, अथवा कड़ा कर लगाकर विदेशी माल की आमदनी की रोक, से लाभ भी बहुत होता है। इन बातों का विचार हम अलग एक पुस्तक में करने जाते हैं।

सम्पत्ति की उत्पत्ति ।

सम्पत्ति की उत्पत्ति के लिए तीन चीज़ें दरकार होती हैं—ज़मीन, मेहनत और पूँजी। यही उसकी उत्पत्ति का हेतु हैं। बिना इनके सम्पत्ति का उत्पन्न होना असम्भव है।

ज़मीन ।

जिस अनाज से हमारी प्राण-रक्षा होती है वह ज़मीन से ही पैदा होता है। जिन कपड़ों से हम शरीर-रक्षा करते हैं, अथवा जिन्हें हम पहनते हैं, वे सूत से बनते हैं। सूत की उत्पत्ति कपास से है, और कपास ज़मीन में पैदा होती है। जिन बरतनों को हम काम में लाते हैं वे धातु के हैं और धातु ज़मीन से निकलती है। इस तरह आप चाहे जिस चीज़ को लीजिए, कुछ न कुछ उसका सम्बन्ध ज़मीन से ज़रूर होगा। बिना ज़मीन के आश्रय कोई चीज़ नहीं पैदा हो सकती। और व्यवहार की जितनी चीज़ें हैं सब सम्पत्ति के अन्तर्गत हैं। अतएव सम्पत्ति की उत्पत्ति का पहला कारण ज़मीन है।

मेहनत ।

सम्पत्ति की उत्पत्ति के लिए ज़मीन की तरह मेहनत की भी ज़रूरत है। जो चीज़ बिना मेहनत के मिलती है उसकी कोई क़ीमत नहीं। अतएव वह सम्पत्ति नहीं। नदी का पानी मुफ्त मिलता है। उसे पाने के लिए मेहनत नहीं करनी पड़ती। नदी के तीर जाकर जितना पानी आदमी चाहे ले सकता है। परन्तु वही पानी यदि किसी ऐसी जगह ले जाया जाय, जहाँ उस की ज़रूरत हो तो उसे सम्पत्ति का रूप प्राप्त हो जाता है। हवा पाने के लिए मेहनत नहीं करनी पड़ती। इसलिए साधारण तौर पर वह सम्पत्ति नहीं। परन्तु समुद्र में ग़ोता मार कर मोती की सीपियाँ ढूंढनेवालों के लिए जो एक प्रकार का यंत्र दरकार होता है उसमें जो हवा भरी जाती है वह सम्पत्ति है। क्योंकि उसे वहाँ भरने में मेहनत पड़ती है। तात्पर्य्य यह कि जिन चीज़ों के बदले और चीज़ें मिल सकती हैं उन्हें पैदा करने के लिए अनेक प्रकार की मेहनत दरकार होती है। मेहनत ही से चीज़ों का महत्त्व और मूल्य बढ़ता है। अतएव सम्पत्ति की उत्पत्ति का दूसरा कारण मेहनत है। जेब-घड़ियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जो "हेयर-स्प्रिंग" रहती है तो वह ईस्पात की बनती है। यदि आध सेर सर्वोत्तम ईस्पात के दाम ३ रुपये कल्पना कर लिए जायँ तो इतने वज़न की "हेयर-स्प्रिंग" के दाम कोई १२ हज़ार रुपये होंगे! क्यों? उसे बनाने में जो मेहनत पड़ी उसने उसके मूल्य को इतना बढ़ा दिया।

मेहनत दो प्रकार की होती है—उत्पादक और अनुत्पादक। जिस मेहनत से सम्पत्ति उत्पन्न होती है उसे उत्पादक कहते हैं, जिससे सम्पत्ति नहीं उत्पन्न होती उसे अनुत्पादक। कपड़े बुननेवाले जुलाहे की मेहनत, अनाज पैदा करनेवाले किसान की मेहनत, और बरतन बनानेवाले ठठेर की मेहनत उत्पादक है; क्योंकि उनकी मेहनत का फल, कपड़ा, अनाज और बर्तन, सम्पत्ति है। पर गाने, बजाने और खेल तमाशा करनेवालों की मेहनत अनुत्पादक है। क्योंकि उससे सम्पत्ति की उत्पत्ति नहीं होती।

मेहनत ही का दूसरा नाम श्रम है। श्रम का विभाग होने अर्थात् बहुत आदमियों में उसके बँट जाने से सम्पत्ति की उत्पत्ति बढ़ जाती है। अफ़सोस है कि हम लोग श्रम-विभाग की महिमा नहीं जानते। योरप और अमेरिकावालों ने श्रम-विभाग की तरफ़ बहुत ध्यान दिया है। इससे उनकी सम्पत्ति इस देश की अपेक्षा सैकड़ों गुना अधिक हो गई है। छापेख़ाने वाले यदि श्रम का विभाग न कर देते तो कभी उनके काम में उन्नति न होती। यदि एकही आदमी कम्पोज़ करता (अक्षर जोड़ता), स्याही लगाता, मैशीन चलाता, काग़ज़ उठाता और उनकी सिलाई करके जिल्दबन्दी करता तो छापेख़ाने के काम की बड़ीही दुरवस्था होती। परन्तु इन सब कामों को भिन्न भिन्न आदमियों में बाँट कर, श्रम-विभाग कर देने से, काम भी अच्छा होता है, जल्दी भी होता है, और ख़र्च भी कम पड़ता है। मिलकर बहुत आदमियों के काम करने, और यंत्रों के उपयोग, से भी बहुत लाभ होता है। सागौन का जो लट्ठा एक आदमी नहीं उठा सकता उसे कई आदमी मिलकर सहज ही में एक जगह से उठाकर दूसरी जगह रख देते हैं। रेल का यंजिन लाखों मन माल खींच ले जाता है। एक पुतली-घर में यंत्रों की सहायता से एक ही दिन में कपड़े की अनेक गांठें तैयार होती हैं। यह मिलकर काम करने और यंत्रों के व्यवहार का ही फल है।

ख़र्च।

मेहनत की तरह ख़र्च के भी दो प्रकार हैं—उत्पादक और अनुत्पादक। उत्पादक श्रम करनेवाले अपने जीवन-निर्वाह के लिए जो ख़र्च करते हैं वह उत्पादक है, और सिर्फ़ विलासिता के लिए जो ख़र्च होता है वह अनुत्पादक है। जिन चीज़ों के व्यवहार से सम्पत्ति की उत्पत्ति या बढ़ती नहीं होती उन्हें मोल लेने में जो ख़र्च पड़ता है वह सर्वथा अनुत्पादक है। अतएव जो लोग विलास-द्रव्यों के प्रेमी हैं वे देश के शत्रु हैं। क्योंकि ऐसे द्रव्यों में जितनी सम्पत्ति ख़र्च हो जाती है उतनी पूँजी कम हो जाती है और पूँजी न होने से सम्पत्ति की बढ़ती नहीं होती। इससे देशोन्नति में बाधा आती है। तोले भर इत्र लेना अनुत्पादक ख़र्च है। मन भर गेहूं लेना उत्पादक। गेहूं की रोटी खाकर उत्पादक-श्रम द्वारा सम्पत्ति उत्पन्न की जा सकती है। परन्तु इत्र लपेटने से यह बात नहीं हो सकती।

पूँजी।

सम्पत्ति का वह हिस्सा, जो आगे और सम्पत्ति पैदा करने के लिए अलग रख लिया जाता है, पूँजी या मूलधन कहलाता है। इसी मूलधन या पूँजीकी बदौलत सम्पत्ति की उत्पत्ति में सहायता मिलती है। पर याद रखिए, रुपये पैसे का नाम पूँजी नहीं। रुपया तो सम्पत्ति-सूचक एक प्रकार का चिन्ह मात्र है। वह सम्पत्ति तौलने का बाँट है—वज़न है। बस और कुछ नहीं। यदि रुपये पैसे की सृष्टि न होती तो किसी की सम्पत्ति का अन्दाज़ लगाने के लिए उसके घरकी सारी चीज़ों की फ़ेहरिस्त देनी पड़ती। परन्तु रुपया होने से उन सब का अन्दाज़ सौ, दो सौ, हज़ार या दस हज़ार कह कर सहज ही में हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पत्ति की उत्पत्ति के लिए जैसे ज़मीन और मेहनत की ज़रूरत है वैसे ही पूँजी की भी। बिना पूँजी के सम्पत्ति नहीं उत्पन्न हो सकती। कल्पना कीजिए कि किसी किसान को ५ बीघे ज़मीन में गेहूं बोना है। अब खेत जोते जाने से लेकर, गेहूँ कट मँड़कर घर आने तक, जोतने, बोने, सींचने, और बीज आदि में जो ख़र्च पड़ेगा वह उस ५ बीघे ज़मीन की पैदावार से तो निकला नहीं। उसे किसान ने पहलेही से रख छोड़ा था—फ़िर चाहे उसने उसे अपनीही सम्पत्ति से अलग कर रक्खा हो, चाहे किसी महाजन से क़र्ज़ लिया हो। जिस सम्पत्ति की बदौलत किसान ने, गेहूं काट कर घर आने तक, अपनी जीविका चलाई और खेत के ख़र्च निपटाये, वह उसकी पुरानी पूँजी थी। यदि वह न होती तो किसान गेहूं के रूप में नई सम्पत्ति न उत्पन्न कर सकता।

किसी एक प्रकार की सम्पत्ति उत्पन्न करने के लिए अनेक साधनों की ज़रूरत पड़ती है। मज़दूरों को जो मज़दूरी मिलती है उससे उनका शरीर-पोषण तो होता ही है; इसके सिवा पहनने के लिए कपड़े, रहने के लिए घर, काम करने के लिए औज़ार और यंत्र तथा खाने पीने के बर्तन आदि भी दरकार होते हैं। अतएव इन सब चीज़ों की भी गिनती पूँजी में है। रुपये पैसे का नाम पूँजी नहीं। क्योंकि रुपया खाकर कोई काम नहीं कर सकता। न वह पहनने के काम आता है, न रहने के, न खेत जोतने के, न मकान या कारख़ाने बनाने के और न प्रतिदिन की व्यावहारिक वस्तुओं के पैदा करने के। जैसा कहा जा चुका है वह सम्पत्ति का चिन्ह मात्र है।

पूँजी उत्पन्न होने के लिए ख़र्च कम करना बहुत ज़रूरी बात है। जितनाही कम ख़र्च होगा उतनीही पूँजी बढ़ेगी। अथवा यह कहना चाहिए कि पूँजी की उत्पत्ति सञ्चय से होती है। जितना ही अधिक सञ्चय होगा उतनी ही अधिक पूँजी देश में बढ़ेगी। अतएव जो लोग फ़िज़ूलख़र्च हैं, जो सञ्चय करना नहीं जानते अथवा जो सञ्चय नहीं करते, वे अपने देश के दुश्मन हैं। नाच-तमाशों में रुपया फूँकना, अचिरस्थायी चीज़ें ख़रीदना, खाने पीने में बेहिसाब सम्पत्ति फूँकना, देश के मूलधन का नाश करना है।

कोई कोई यह समझते हैं कि विलास-द्रव्य ख़रीदने से हानि नहीं, क्योंकि उन द्रव्यों के बनाने में जो लोग लगे रहते हैं उनका पालन होता है। इत्र मोल लेने से इत्र के कारख़ाने के मज़दूरों की रोज़ी चलती है। पर यह भ्रम है। कल्पना कीजिए कि किसी ने ५ तोले इत्र क़न्नौज से ख़रीद किया। अब देखिए कि इस इत्र के बनाने में जो ख़र्च पड़ा है वह मोल लेनेवाले की जेब से नहीं आया। वह कारख़ाने के मालिक की पूर्वसञ्चित पूँजी का फल था। मोल लेने वाले से जो कुछ मिला वह कारख़ाने के मालिक की पहली पूँजी का रूपान्तर मात्र हो गया। ख़रीदारों की सम्पत्ति से कभी मज़दूरों का पालन-पोषण नहीं होता। ऐश-आराम की चीज़ें लोग लेते हैं; इसी से वे बनाई जाती हैं। यदि उनका खप न हो तो लोग बनाना छोड़ दें। इस दशा में बनाने या बेचने वालों की कोई हानि नहीं हो सकती। जब वे देखेंगे कि वैसी चीज़ों का खप नहीं है तब उनसे वे अपनी पूँजी निकाल लेंगे और किसी और व्यापार या कारोबार में लगावेंगे। अतएव न व्यापारही को हानि पहुँचेगी न मज़दूरोंही को। मज़दूर इत्र के कारख़ाने को छोड़ कर किसी और कारख़ाने में काम करने लगेंगे, जिस की बनी हुई चीज़ों का खप होगा।

विलास-द्रव्यों के पैदा करने और उनके उत्पादन में, मेहनत-मज़दूरी करनेवालों को लगा रखने से, देश की बड़ी भारी हानि है। मान लीजिए कि आपके पास ५०० रुपये हैं। आप इन रुपयों से हर साल २० बीघे ज़मीन में गन्ना बोते हैं और उससे गुड़, राब या शक्कर बनाकर बेच देते हैं। इस काम के लिए आप १५ मज़दूर रखते हैं और उनका पेट पालते हैं। अब यदि आप अपने मकान को चित्रों और बेल बूटों से सजाने के लिए १५ रँगसाज़ और चित्रकार रक्खें और ५०० रुपये उनकी मज़दूरी में ख़र्च करदें तो उनका पोषण तो ज़रूर होगा। परन्तु उनका यह श्रम अनुत्पादक होगा। उससे नई सम्पत्ति न पैदा होगी। पर यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही रुपये खेती में, या शक्कर बनाने में, लगे रहते तो उनका पेट भी पलता और अधिक सम्पत्ति भी पैदा होती। अतएव जो लोग यह समझते हैं कि ऐश-आराम की चीज़ों में धन ख़र्च करने से भी कारीगरों या मज़दूरों का पालन होता है सो भ्रम है। उससे देश की भारी हानि है। उससे पूँजी कम हो जाती है और सम्पत्ति नहीं बढ़ती। सम्पत्ति ही सबसे बड़ा बल है। जिस देश में सम्पत्ति नहीं वह कंगाल, निर्बल अतएव परपदावनत होने से नहीं बच सकता।

पूँजी यद्यपि सञ्चय का फल है तथापि उसका ख़र्च होने ही से सम्पत्ति की वृद्धि होती है। सञ्चय का ख़र्च होने ही से उसका नाम पूँजी हो सकता है। तभी उसे मूल-धनत्व प्राप्त हो सकता है। यदि आप अपने सञ्चय को सन्दूक़ में बन्द रक्खेंगे, या ज़मीन में गाड़ देंगे, तो वह पूँजी नहीं कहलावेगी। क्योंकि उससे सम्पत्ति की उत्पत्ति न होगी, उसे किसी उत्पादक काम में ख़र्च करना चाहिए।

पूँजी दो तरह की होती है। एक चल अथवा भ्राम्यमान, दूसरी अचल अथवा स्थायी। चल पूँजी उसे कहते हैं जो किसी उत्पादक काम में एक ही दफ़े में ख़र्च हो जाती है—अर्थात् एक ही दफ़े के उपयोग में जिसका नाश हो जाता है। लोहार की भट्टी में जो कोयला जलता है वह एक दफ़े जलकर फिर काम नहीं आता। इसलिए कोयला चल किंवा भ्राम्यमान पूँजी है। परन्तु जिस धौंकनी या निहाई से वह काम लेता है वह बहुत दिन तक चलती है। इसलिए वह अचल किंवा स्थायी पूँजी है। इसी तरह किसान जो बीज बोता है वह चल-सम्पत्ति है; क्योंकि एक दफ़े बोने ही से उसका फल मिल जाता है। पर उसके हल, बैल और चरसे आदि स्थायी पूँजी के अन्तर्गत हैं। क्योंकि वे बहुत दिन तक रहते हैं, और अनेक बार उपयोग में आने बाद उनके उपयोग का पूरा पूरा बदला मिलता है।

मज़दूरों को जो मज़दूरी मिलती है वह चल पूँजी से ही मिलती है। अतएव देश में जितनीही चल पूँजी अधिक होगी मज़दूरों और कारीगरों का उतना ही अधिक पोषण होगा। मान लीजिए कि आप शक्कर बनाने में हर साल ५००० रुपये ख़र्च करते हैं और वे मज़दूरी में जाते हैं। यदि आप इस रुपये का एक यंत्र ले लें और उसकी मदद से शक्कर बनावें तो गोया आप इतने रुपये का नुक़सान मज़दूरों को पहुँचावेंगे। बड़े बड़े कल-कारख़ानों से मज़दूरों की मज़दूरी मारी जाती है। क्योंकि पूँजी का एक बहुत बड़ा भाग अचल होजाता है। परन्तु कल कारख़ानों से देश की सम्पत्ति बढ़ती है। अतएव मज़दूरों को थोड़े ही समय तक हानि पहुँचती है। सम्पत्ति की वृद्धि के साथ काम की भी वृद्धि होती है। अतएव मज़दूरों को अधिक मज़दूरी मिलने लगती है।

सम्पत्ति-शास्त्र एक क्लिष्ट और नीरस विषय है। पर है बड़े महत्त्व का। इसका सारांश कई दफ़े में थोड़ा थोड़ा देने का विचार है। यहां तक हमने संक्षेप में सम्पत्ति की उत्पत्ति का वर्णन किया। आज यहीं तक रहने देते हैं। फिर कभी इस शास्त्र के अन्यान्य अंशों पर भी लिखेंगे। वे इस अंश की अपेक्षा अधिक महत्त्व के हैं।

शिकागो में मेरी प्रथम रात्रि।

दूसरी जून १९०६ का दिन मेरे जीवन में एक बहुत बड़ा परिवर्तन डालनेवाला था। भारतवर्ष की प्राचीन नगरी काशी में साधारण वृत्ति पर विद्याभ्यास करते हुए, संसार के व्यवहारों से अनभिज्ञ, मेरे जैसे पुरुष का अमरीका के प्रसिद्ध शिकागो नगर में, बिना किसी प्रकार की जान पहचान के, प्रवेश करना, वास्तव में एक आश्चर्य्यजनक बात थी। मेरे पास कोई परिचयदायक (Introductory) पत्र तक किसी मित्र के नाम न था। कोई भी मनुष्य अपनी जान पहचान का नहीं था। यहाँ तक कि मैं कभी अपने जीवन में होटल में नहीं गया था। काँटे और छुरी से किस प्रकार लोग खाना खाते हैं? कैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

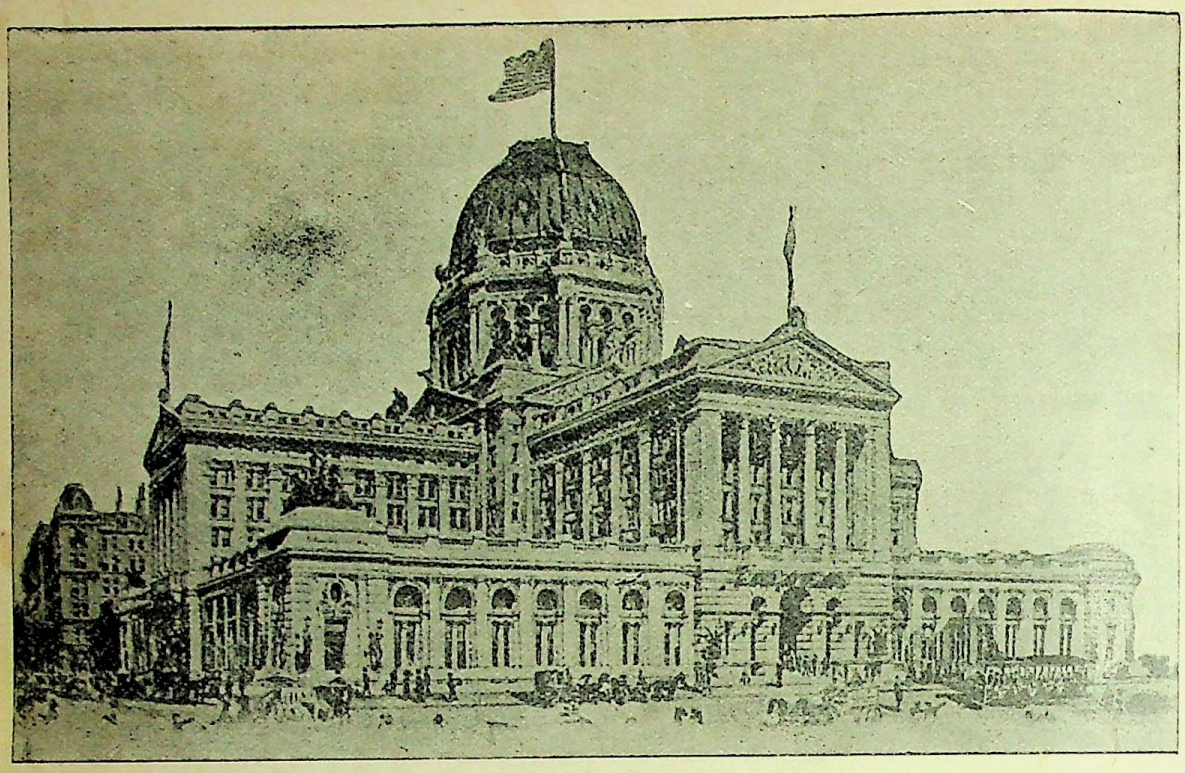

शिकागो का डाकख़ाना ।

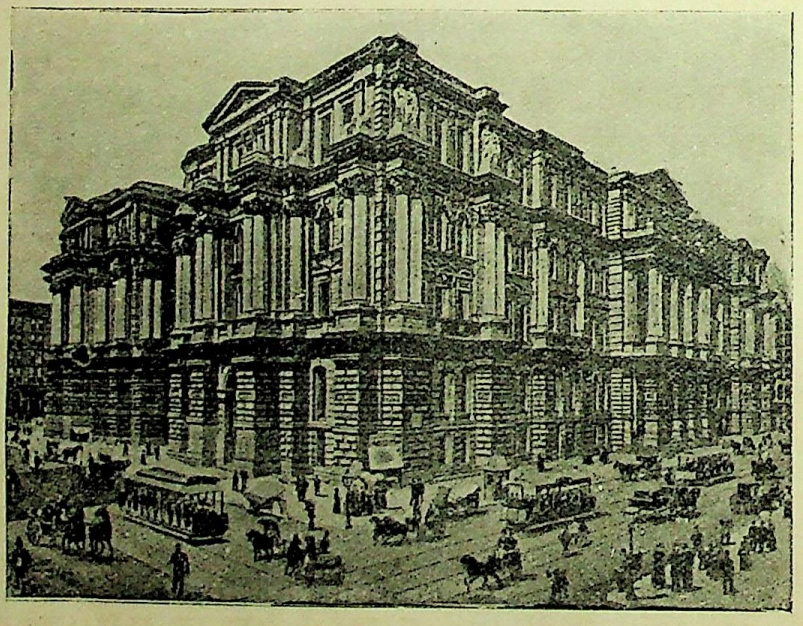

शिकागो का सिटीहाल ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी के साथ यहाँ बातचीत करते हैं? इत्यादि बातों से मैं बिलकुल ही अनजान था।

प्रातःकाल १० बजे मैं वेंकोबर से चिकागो पहुँचा। वेंकोबर से चिकागो २८०० मील के क़रीब है। जब गाड़ी स्टेशन पर पहुँची और "शिकागो" यह ध्वनि मेरे कान में आई, तब मैंने जाना कि स्टेशन आगया। सब लोग जो गाड़ियों में थे, बाहर निकले और चल दिये। मैंने कहा—"मैं कहाँ जाऊँ?"। सबसे पीछे मैं अपना ट्रंक सँभाल गाड़ी से नीचे उतरा। जब टिकट देकर बाहर आखड़ा हुआ तब एक गाड़ीवाले ने मुझसे पूछा कि कहाँ जाना होगा? कहाँ बतलाता? किसी जगह का नाम भी नहीं जानता था, जहाँ जाकर ठहर सकता। सोचते सोचते Y. M. C. A. (यंग म्यन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन) का नाम स्मरण आया। अहा! ईसाइयों की क़दर बाहर आकर मालूम होती है! ये सभायें क्या ही अच्छी हैं। यहां पर नवयुवक देश की—जाति की—सेवा करना सीखते हैं; कोई परदेशी आवे तो उसकी सहायता करते हैं। और, एक हमारे देश की धार्म्मिक सभायें हैं जिनका समय आपस के शास्त्रार्थ और एक दूसरे की मानहानि में व्यतीत होता है। तभी तो यह दुर्दशा है।

गाड़ी में बैठे बैठे मैं लोगों को इधर उधर देखता था। सब साफ़ सुथरे थे। नये बूट, नये सूट, बाल सँवारे हुए; क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभी इधर उधर जारहे थे। चार दिन के लगातार सफ़र से मेरे कपड़े काले हो गये थे। ख़ास कर पतलून तो बहुत ही मैली हो गई थी। मेरे सारे वस्त्र बड़े संदूक़ में, जो मालगाड़ी में रक्खा गया था, थे। और नया सूट न होने से मैं कपड़े बदल नहीं सकता था। मैं बार बार अपने कपड़ों की ओर देखता और अपना मुक़ाबला सड़क पर जाते हुए लोगों से करता था। इतने में गाड़ी Y. M. C. A. के पास आगई। गाड़ीवान ने दरवाज़ा खोला। एक लड़का फ़ौरन असबाब उठाने के लिए आगे बढ़ा। परन्तु जब उसने मेरे मैले कपड़े और चार दिन की डाढ़ी देखी तब ठहर गया। मैंने उसके चेहरे पर मुसकराहट पाई। मैंने अपना ट्रंक उठाया और उस बड़ी अट्टालिका में गया। दूसरी मंज़िल पर एसोसिएशन का दफ़्तर था। जब मैं अन्दर गया, एक नवयुवक मुझे मंत्री महाशय के पास ले गया, जो बड़ी नम्रता से मेरे साथ पेश आये। उन्होंने मुझे किसी होटल में जाने की सम्मति दी। मैं चाहता था कि किसी जापानी विद्यार्थी का पता लग जाय तो अति उत्तम हो। एसोसिएशन के मन्त्री ने कई जगह टेलीफ़ोन किया। परन्तु कुछ पता न मिला। मुझे महाबोधी सोसाइटी का पता मालूम था। सो मैंने वहां जाकर किसी जापानी विद्यार्थी का स्थान जानने का निश्चय किया। अपना ट्रंक Y. M. C. A. में रख, मैं सोसाइटी की तलाश में निकला।

सड़क पर अजीब दृश्य था। स्त्रियाँ, पुरुष इधर उधर भागे से जा रहे थे। साफ़ सुथरे, प्रसन्नवदन, अपने अपने कार्य्यों में ऐसे लगे हुए थे जैसे मधुमक्षिकायें। किसी को आलसियों की भाँति जाते हुए न देखा। सभी फुरतीले थे। क्या बुड्ढे, क्या युवा, क्या बालक, क्या बालिकायें, कालचक्र की भाँति घूमते थे। एक ओर छोटे छोटे बालक "डेलीन्यूज़", "रेकार्ड हेरल्ड" नामक दैनिक पत्र बेचते फिरते थे। बिजली की गाड़ियाँ खचाखच भरी हुईं इधर से उधर, उधर से इधर, चल रहीं थीं। घोड़े गाड़ियां, छकड़े, माल असबाब से लदे हुए दिखाई देते थे। दूसरी ओर बड़े बड़े लोहे के खम्भों पर, सड़क से ४० गज़ ऊँचे आकाश में, एक और सड़क थी, जिस पर दूसरी बिजली की गाड़ियां (Elevetor Cars) गड़ गड़ शब्द करती हुई इधर उधर भाग रही थीं।

मार्ग में मुझे सबसे पहले मेसानिक टेम्पल (Masonic Temple) की ऊँची इमारत मिली। यह २२ मंज़िला मकान है! आकाश से बातें करता है। ख़याल हुआ, विज्ञान क्या नहीं कर सकता?

सोसाइटी के मकान का पता मैंने पुलिस के एक सिपाही से दरियाफ्त किया और शीघ्रता से उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर रवाना हुआ। परन्तु शिकागो संसार के बड़े शहरों में तीसरे दरजे का है। इसकी गलियाँ २० मील लम्बा हैं। एक तो २७ मील है। इसलिए मुझे उस मकान पर पहुँचने में २ घंटे के क़रीब लग गये। रास्ते का दृश्य, मेरे लिए बहुत ही मनोमोहक था। जब मैं मारशल फ़ील्ड (Marshal Field) की आलीशान दूकान के पास पहुँचा तब उसे देख कर मैं विस्मयान्वित होगया। कितनी भारी दूकान! करोड़ों रुपये का माल! प्रत्येक प्रकार की वस्तु विक्री के लिए मौजूद! चित्त चाहता था कि इसके अन्दर जाकर अच्छी तरह देखूं, परन्तु समय नहीं था और मुझे चिन्ता रात को रहने की थी।

डीपर वारन गली में महाबोधी सोसाइटी का आफ़िस था। उस अट्टालिका के पास पहुँचा तो मालूम हुआ कि आफ़िस १०वीं मंज़िल पर है। मकानों के ऊपर जाने के लिए क्या ही अच्छा प्रबन्ध किया हुआ है। एक जंगलेदार कोठरी रहती है। उसमें कोई १० आदमी खड़े हो सकते हैं। वह बड़े बड़े रस्सों से बंधी होती है। कोठरी क्या उसे एक प्रकार का खटोला कहना चाहिए। उसका सम्बन्ध प्रत्येक मंज़िल के साथ होता है। इसके भीतर खड़े होकर जिस मंज़िल पर जाना हो नौकर से कह दो। वह उसी मंज़िल पर पहुँचा कर दरवाज़ा खोल देता है। बस आप अपने कमरे में चले जाइए। प्रत्येक इमारत में इस प्रकार के तीन चार स्थान ऊपर नीचे जाने आने के लिए होते हैं। थोड़ा समय और अधिक लाभ, यह नियम प्रत्येक स्थान में देखा जाता है।

मकान के ऊपर पहुँच कर दरियाफ़्त करने पर मालूम हुआ कि महाबोधी सोसाइटी ने अपना दफ़्तर बदल दिया है। एक मेम साहबा ने बड़े प्रेम से मुझे नये आफ़िस का पता लिखकर दिया। मैंने उसे तलाश करने का विचार किया। परन्तु ११ बजे से ३ बजे तक लगातार घूमने से मैं थक गया था। यही नहीं, बल्कि वैंकोबर से चिकागो तक चार दिन मैंने केवल मुट्ठी भर चनों सेही निर्वाह किया था। यद्यपि प्रत्येक रेलगाड़ा के साथ भोजन की गाड़ी (Dining Car) रहती है जहाँ मुसाफिर समयानुकूल भोजन पाते हैं; परन्तु मेरे लिए यह प्रबन्ध न होने के तुल्य था। जन्म से मांस, मदिरा से घृणा होने के कारण मुझे ४ दिन निराहार रहना पड़ा और शिकागो में पहुँच कर भी कहीं कुछ प्रबन्ध न कर सका। तिस पर भी चार घंटे लगातार शहर में घूमना। इससे शरीर रूपी गाड़ी धीमी चलने लगी; तो भी महाबोधी सोसाइटी की तलाश ज़रूर करना था। तदर्थ मैं रवाना हुआ।

रास्ते में जाते हुए कई एक स्थानों पर मैंने छोटे छोटे होटलों के नोटिस और नाम के बोर्ड देखे। दिल में आया कि क्यों न इनमें से किसी में एक रात ठहर जाऊं और दूसरे दिन चिकागो-विश्वविद्यालय में जाकर किसी जापानी विद्यार्थी का पता मालूम करूं। एक पथिकाश्रम के ऊपर गया। जाकर प्रबन्ध-कर्त्ता से सब हाल पूछा। उसने मेरा नाम लिख लिया और मुझे एक कमरे में जाने का इशारा किया। न जाने उस समय मेरे मन में क्या आ गया। मैंने समझा कि शायद कुछ दाल में काला है। मैं सीढ़ियों से नीचे उतर कर गली में आ गया। पीछे से मालूम हुआ कि वह चोरों का अड्डा था, जो मुसाफिरों को रात को टिकाते हैं और सोते हुए की जेब से सब कुछ निकाल सफ़ाई कर देते हैं। सवेरे प्रबन्धकर्त्ता अपना किराया लेता है। शामत का मारा बेचारा मुसाफ़िर चुपचाप सब सहता है और लाचार वहाँ से चल देता है।

ख़ैर, मैं १ घंटे के बाद महाबोधी सोसाइटी में पहुँचा। वहाँ जो महाशय कार्यालय में काम करते थे उन्होंने बड़े प्रेम से मेरी राम-कहानी सुनी। मेरे साथ चलकर किसी अच्छे होटल में मेरे लिए प्रबन्ध करने को वे उद्यत हो गये। उनके साथ बिजली की गाड़ी पर बैठ थामसन होटल में मैं गया। रास्ते में डाकख़ाने की जंगी इमारत देखने में आई।

थामसन होटल के प्रबन्धकर्त्ता ने मेरे मैले कपड़े देख और मुझे परदेशी जान कमरा देने से इनकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

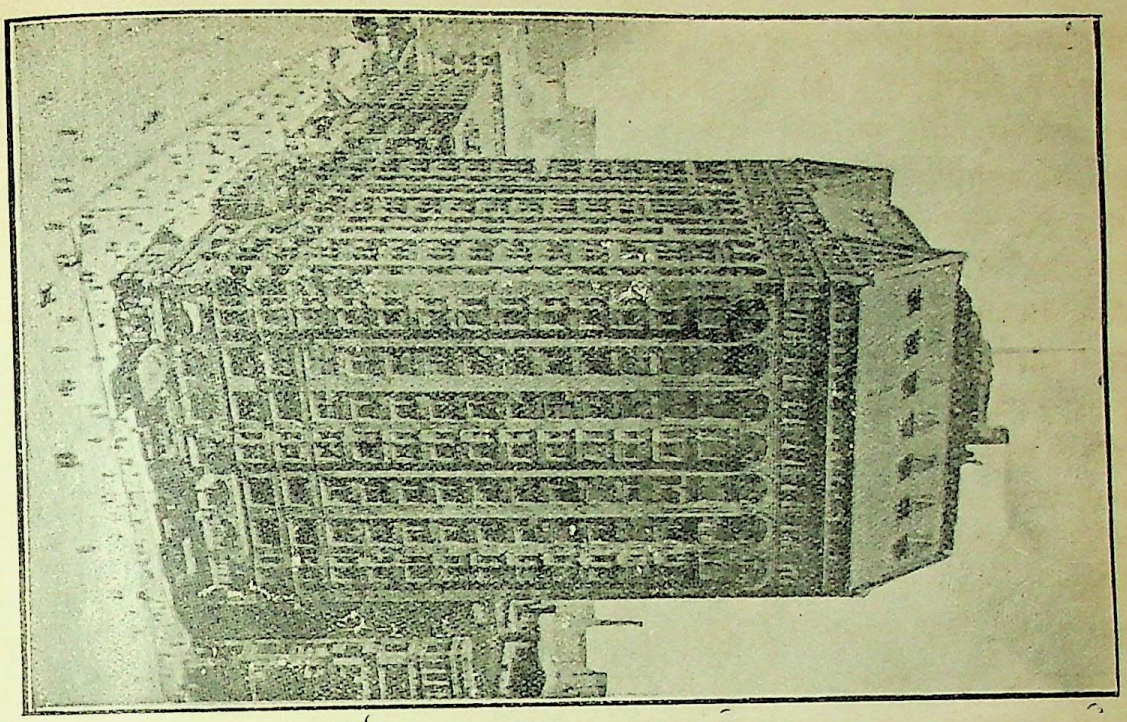

मेसानिक टेम्पल ।

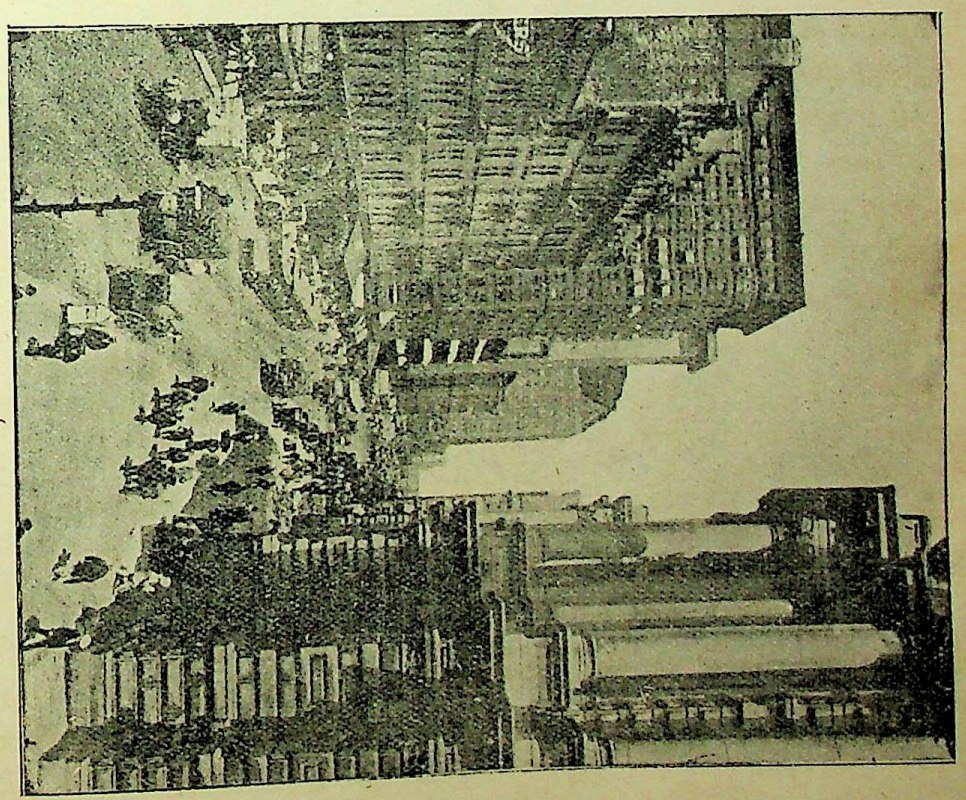

रेन्डोल्फ गली ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

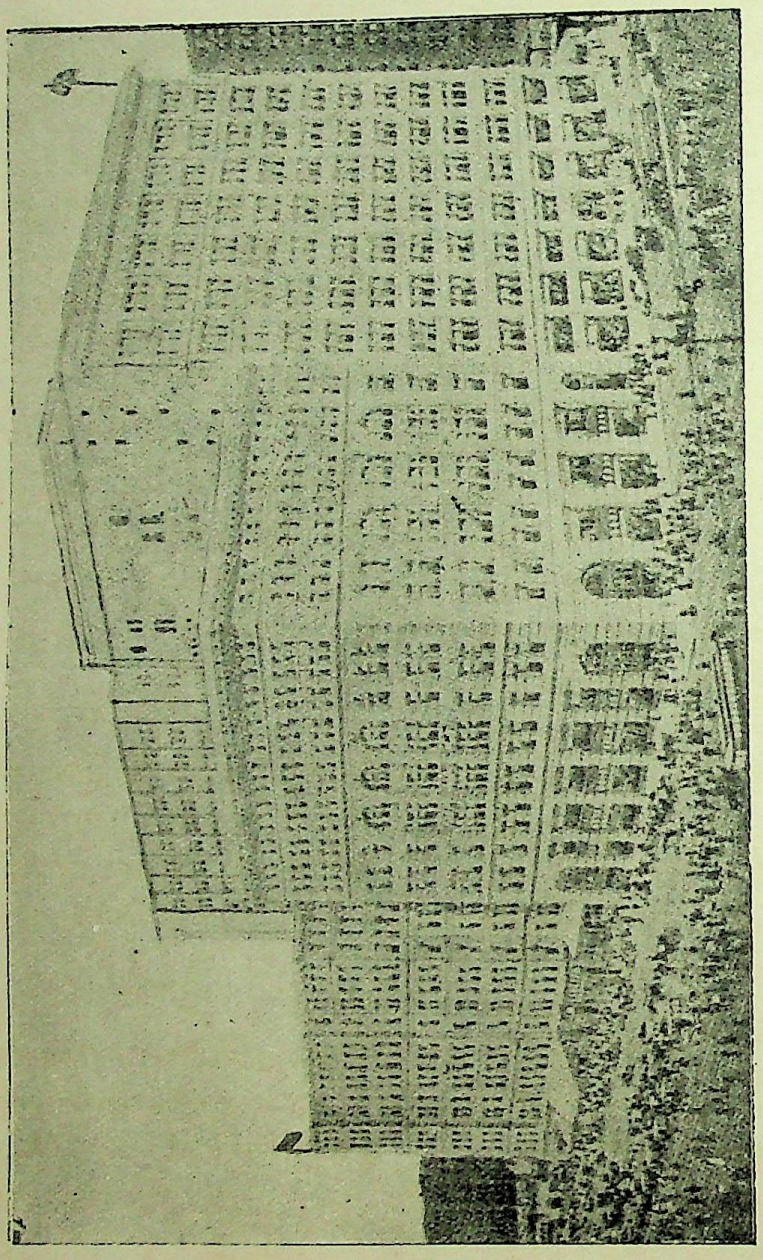

मारशल फ़ील्ड की दुकान ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। इस लिए वहां से मैं और मेरा साथी निराश होकर दूसरे होटल में गये। वहाँ रहने के लिये किसी प्रकार प्रबन्ध होगया। केवल दो रात ठहरने के लिए ६ रुपये देने पड़े। वह महाशय जो महाबोधी सोसाइटी से मेरे साथ आये थे, मेरा प्रबन्ध करके चले गये। मैं एक नौकर के साथ खटोले (एलिवेटर) में बैठ चौथी छत पर पहुँचा। नौकर ने मुझे एक अच्छे सजे हुए कमरे में ले जाकर कहा—"लीजिए महाशय, यह कमरा आपके लिए है"। यह कह कर वह चला गया।

नौकर के चले जाने पर मैंने दरवाज़े को अन्दर से लगा दिया। मैंने परमात्मा का धन्यवाद किया कि रात को रहने के लिए स्थान तो मिला। परन्तु चिन्ता यह लग रही थी कि कपड़ों का प्रबन्ध कैसे होगा? कपड़े सब काले हो रहे थे। साबुन पास था। विचार किया कि शायद कल असबाब न मिल सके। इससे कपड़े अवश्य धोने चाहिएँ। कमरे के अन्दर गरम और ठंढे पानी के दो नल थे। वहाँ मैंने सब कपड़े धोये। इस काम में रात के १० बज गये। फिर हजामत बनाई। तब इस बात की चिन्ता दूर हुई कि बाज़ार में मैले कपड़ों से कैसे जाना होगा? अन्त को थका हारा भूखा ही लेट रहा। सुन्दर सुथरे बिछौने पर लेटतेही निद्रा देवी ने मुझे अपना लिया।

पाठक, लेख द्वारा मुझे आपसे निरन्तर मिलने का इरादा है; पर आज इतनाहीं बस होगा।

सत्यदेव (शिकागो-विश्वविद्यालय)

अन्योक्ति-पुष्पावली।

चातक।

सदैव हे चातक-सूनु! जी से
आशा लगाना घन श्याम ही से।
न भूल जाना यह वंश-सन्था,
[1]"महाजनो येन गतः स पन्थाः" ॥१॥

१ जिस मार्ग से बड़े आदमी गये उसी से जाना चाहिए।

काक।

जो घूमना है पिक-वृन्द बीच,
तो त्याग रे काक! कटूक्ति नीच।
किंवा यही है तुझको बताना;
[2]"विभूषणं मौनमपण्डितानाम्" ॥२॥

२ मूर्खों का भूषण मौन ही है।

पतङ्ग।

तू जान के भी अनल-प्रदीप
पतङ्ग! जाता उसके समीप।
अहो! नहीं है इसमें अशुद्धि;
[3]"विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" ॥३॥

३ विनाश-काल उपस्थित होने पर बुद्धि भी विपरीत हो जाती है।

कदली।

नहीं कटेगी वह ख़ूब जौलों।
देगी न रम्भा फल मिष्ट तौलों।
भूलो न माली! यह किंवदन्ती;
[4]"त्रासं विना नैव गुणाः श्रयन्ति" ॥४॥

४ बिना कष्ट उठाये गुणों की प्राप्ति नहीं होती।

वसन्त।

सता रहा है सब को तुषार हा!
न आप तो भी करते कृपा अहा!
विचारिए तो यह बात माधव *
[5]"निपातनीया हि सतामसाधवः" ॥५॥

* माधव = वसन्त ऋतु और विष्णु।

५ दुर्जनों का संहार करना ही सज्जनों का कर्तव्य है।

तृण।

विशाल-वृक्षावलि का विनाशक
न वायु होगा तव गात्र-त्रासक।
वृथा न चिन्ता कर शस्य! सभ्रम,
[6]"महान्महत्येव करोति विक्रमम् ॥६॥

६ बड़े बड़ों ही पर विक्रम करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्र।

चाहे सदैव सहना *हरिवज्र-ताप,
मैनाक दूर करना न कदापि आप।
जाना न भूल जलधे! यह वर्णपङ्क्ति;
७"अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति" ॥७॥

चन्दन।

हैं दुष्ट यद्यपि, द्विजिह्व†, प्रसिद्ध पापी,
श्रीखण्ड! आप तजते न उन्हें तथापि।
है आपकी यह महोत्तम धारणा स्यात्
८"नैवाश्रितेषु गुणदोषविचारणा स्यात्" ॥८॥

मृग।

होना धैर्य्य-च्युत न तप‡ से, क्लेश पाके कराल,
वर्षा आये फिर तुम सखे! शीघ्र होगे निहाल।
रक्खो नित्य स्मरण इसका हे निदाघार्त एण§!,
९"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" ॥९॥

वायस।

घूमा कोकिल-यूथ साथ सुखसे आजन्म तू काक रे!
छोड़ा किन्तु कटूक्ति को न फिर भी हा हन्त तूने अरे!
किंवा है अपराध-लेश इसमें तेरा नहीं दुर्मते!
१०"या यस्य प्रकृतिः स्वभावजनिता केनापि न त्यज्यते" १०

मैथिलीशरण गुप्त।

---

* हरि = इन्द्र।

७ सत्पुरुष जिसे अपनाते हैं उसकी सदैव ही रक्षा करते हैं।

† द्विजिह्व = सर्प।

८ अपने आश्रित के गुण दोषों का विचार नहीं किया जाता।

‡ तप = धूप। § एण = मृग।

९ रथ के पहिए की तरह मनुष्य की (दुःखसुखात्मक) दशा नीचे-ऊपर हुआ करती है।

१० जो जिसका स्वभाव हो गया है वह नहीं छूट सकता।

ज्यौतिष वेदाङ्ग।

ज्यौतिष वेदाङ्ग का "बार्हस्पत्य" ने जो अनुवाद अँगरेज़ी में करके "हिन्दुस्तान-रिव्यू" में प्रकाशित किया है उसे सरस्वती के अँगरेज़ी जाननेवाले पाठकों ने पढ़ा होगा। "बार्हस्पत्य" ने अनुवाद ही नहीं किया, किन्तु उसके साथ विस्तृत भाष्य भी रचा है और अपने भाष्य में ऐसी विद्वत्ता प्रदर्शित की है जैसी आजकल के एतद्देशीय विद्वानों में बहुत कम पाई जाती है। "बार्हस्पत्य" का लेख ९ महीने तक लगातार "हिन्दुस्तान-रिव्यू" में निकला। समग्र लेख कोई सौ डेढ़सौ पृष्ठ के लगभग होगा। उसे लिखने में "बार्हस्पत्य" जी को महीनों लगे होंगे। बड़े परिश्रम और खोज से उन्होंने उसे लिख पाया होगा। परन्तु इस इतने बड़े और इतने कठिन काम को महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी जी ने दस ही पन्द्रह दिन में कर डाला! इसलिए पण्डितजी की जितनी तारीफ़ की जाय कम है। जान पड़ता है, ज्योतिष वेदाङ्ग पर भी आपका अत्यधिक अधिकार है। "हिन्दुस्तान-रिव्यू" के आक्टोबर-नवम्बर ०६ के सम्मिलित अङ्क में "बार्हस्पत्य" का लेख समाप्त हुआ। यह अङ्क नवम्बर के शुरू में, कुछ दिन बीतने पर, निकला। उस भाष्य के समाप्त होते ही द्विवेदी जी का भी भाष्य समाप्त हो गया। दोनों की समाप्ति में बहुत ही थोड़ा अन्तर पड़ा। द्विवेदीजी की भूमिका से स्पष्ट है कि १ दिसम्बर ०६ को आपने अपना भाष्य समाप्त किया।

ज्योतिष वेदाङ्ग की सृष्टि हुए ढाई तीन हज़ार वर्ष से कम न हुए होंगे। आज तक किसी ने उस पर सप्रपञ्च भाष्य नहीं रचा था। और रचा भी हो तो वह अप्राप्य था। काशी, काञ्ची और नवद्वीप आदि में कितने ही विद्वान् हो गये; पर किसी ने इस तरफ़ ध्यान नहीं दिया। पं० सुधाकरजी भी बीस पचीस वर्ष से पुस्तक-प्रणयन कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप ज्योतिष में अद्वितीय गति रखते हैं। ज्योतिष वेदाङ्ग पर डाक्टर टीबो और शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने जो कुछ लिखा है उसे भी पढ़े आपको बहुत दिन हो गये। पर आपने भी अब तक इस विषय में हस्तक्षेप नहीं किया था। फिर "बार्हस्पत्य" का भाष्य निकलते ही आपने अपने भाष्य की ज़रूरत क्यों समझी? "हिन्दुस्तान-रिव्यू" से मालूम हुआ कि "बार्हस्पत्य" कायस्थ हैं। पण्डितों का आसन एक कायस्थ ने छीन लिया, इसलिए तो यह प्रयत्न नहीं? यह बात तो न होनी चाहिए; क्योंकि "बार्हस्पत्य" की विद्वत्ता का प्रधान कारण ब्राह्मण-विद्वानों ही की कृपा है। यदि उनकी कृपा से संस्कृत-भाषा में विज्ञता उन्हें न प्राप्त होती तो वे ज्योतिष वेदाङ्ग पर ऐसा अच्छा भाष्य कदापि न रच सकते। अतएव उनके भाष्य से काशी आदि के पण्डितवर्य्यों की हतक नहीं। "बार्हस्पत्य" का भाष्य तो उलटा पण्डितजनों के महत्त्व और विद्वत्ता का सूचक है।

"बार्हस्पत्य" का भाष्य और अनुवाद अँगरेज़ी में है और बहुत बड़ा है। सुधाकरजी का संस्कृत में है और बहुत छोटा है; उसमें सिर्फ़ ४० पृष्ठ हैं। पर क़ीमत उसकी है १ रुपया! इस भाष्य को बनारस की सद्योजात "प्राभाकरी कम्पनी" ने छाप कर प्रकाशित किया है और पुस्तक का स्वत्व भी उसने अपने अधिकार में रक्खा है। न मालूम इस पुस्तक का स्वत्व सुधाकरजी ने इस कम्पनी को क्यों दे डाला? आप अपना ही स्वत्व रखते तो शायद पुस्तक की क़ीमत भी आप कम रखते। इस दशा में उसकी बिक्री अधिक होने की सम्भावना थी।

"सौधाकर" और "बार्हस्पत्य" भाष्यों का मिलान करने से मालूम हुआ कि दोनों में बहुत कम भेद है। सुधाकर जी की कृति "समालोचना" में परिगणित हो सकती है; भाष्य में नहीं। क्योंकि आपने प्रायः "बार्हस्पत्य" के ही भाष्य का अनुधावन किया है। हाँ, यत्र तत्र आपने अपनी तरफ़ से कुछ ज़रूर कह दिया है; पर आपका कथन विशेष महत्त्व का नहीं। उससे भाष्य को नूतनता नहीं प्राप्त हो सकती। किसी किसी पद्य के भाष्य में आपने विभिन्न पथ का अवलम्बन भी किया है। इस बात को हम मानते हैं। परन्तु इससे आपके भाष्य को भाष्यत्व प्राप्त होना असम्भव है। "बार्हस्पत्य" के भाष्य के निकलते ही अपने नाम से भाष्य प्रकाशित करने में सुधाकरजी ने दूरदर्शिता का काम नहीं किया। "बार्हस्पत्य" के अधिकांश कथन से सहमत होकर सिर्फ़ कहीं कहीं पर विभिन्नता दिखलाने से सुधाकरजी की कृति को भाष्यत्व-पद कैसे मिल सकता है? इसका विचार हम उन्हीं पर छोड़ते हैं। "बार्हस्पत्य" के लेख की आलोचना करने का सबको समान अधिकार है। पर समालोचना करना भाष्य बनाना नहीं। यदि दस आदमी उनके भाष्य की आलोचना करें तो क्या सभी अपनी अपनी आलोचना को भाष्य कह सकेंगे? हमारी समझ में सुधाकरजी को चाहिए था कि वे "बार्हस्पत्य" के भाष्य के जितने अंशों से सहमत थे उनका स्पष्ट उल्लेख करके, अवशिष्ट अंशों की आलोचना भर कर देते। परन्तु आपने न जाने क्यों ऐसा नहीं किया? अब यदि कहीं "बार्हस्पत्य" जी ने आपके भाष्य का जवाब दिया तो बात बिगड़ने का डर है। सम्भव है, ऐसे गुल खिलें जो सुधाकरजी के लिए परिताप का कारण हों।

सुधाकरजी का भाष्य कैसा है, अथवा आपने उसमें जो नई नई बातें कही हैं वे कहाँ तक ठीक हैं, इसका विचार करना हमारा काम नहीं। "बार्हस्पत्य" ही के सदृश विद्वान् उनका विचार कर सकते हैं। पर इतना हम ज़रूर कहना चाहते हैं कि सुधाकरजी ने "बार्हस्पत्य" के मत के विषय में कई जगह पर जो लिखा है कि वह "शोभन" नहीं, "सम्यक्" नहीं, "साधु" नहीं, इत्यादि—उसका आपको प्रमाण देना था। किसीकी बात को असार, भ्रष्ट, अस्फुट, अशुद्ध कह देने ही से वह वैसी नहीं हो जाती। सुधाकरजी ने इस विषय में अपने कथन को सप्रमाण सिद्ध करने की चेष्टा नहीं की। यह आपने और भी बुरा किया। किसी के कथन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्डन यदि प्रमाणपूर्वक न किया जायगा तो उस पर पढ़नेवालों का विश्वास कैसे होगा? आपने अपने भाष्य के उपोद्घात में लिखा है कि "बार्हस्पत्य" के व्याख्यान में अशुद्धियों का "प्राचुर्य्य" है। इस प्राचुर्य्य के विषय में आपने सिर्फ़ "असार" और "अस्फुट" आदि शब्द लिख कर ही नजात पाई है। जिन अशुद्धियों के कारण आपको नया भाष्य बनाना पड़ा उनकी सप्रमाण आलोचना न करना आश्चर्य्य की बात है। "बार्हस्पत्य" की अशुद्धियों का उल्लेख करने में, आपने बार बार अपने भाष्य को देखने के लिए पाठकों से प्रार्थना की है। पर भाष्य को देखे कोई क्या, वहाँ उन अशुद्धियों का सप्रमाण खण्डन भी हो! किसीकी उक्ति को अशुद्ध कह देना भी कोई खण्डन है? आपने जब "बार्हस्पत्य" की अशुद्धियों को दूर करने ही के लिए भाष्य बनाया था तब अपनी अशुद्धियों पर भी तो विचार कर लेना था। आपके भाष्य में ख़ुद ही व्याकरण की भद्दी भूलें हैं। आप लिखते हैं:—

द्वादश्यां विषुवान् प्रोक्तो द्वादश्यां दशमं भवेत्।

भला जब 'विषुवान्' को पुँलिङ्ग मान चुके तब 'दशमं' क्यों? 'दशमो' लिख देते तो क्या हर्ज था?

और लीजिए। सुधाकरजी अपने उपोद्घात के अन्त में कहते हैं कि आतुरता के कारण छपने या शोधने में कहीं अशुद्धि रह गई हो तो उसे पाठकगण शोध लें। यह तो ठीक; परन्तु यह क्यों कर निश्चय हो कि जहाँ कहीं पण्डितजी ने कोई विलक्षण शब्द लिखा है वह जान कर वैसा लिखा है या मुद्रणाऽशुद्धि है। उदाहरण के लिए कई जगह आपकी पुस्तक में "बृहस्पतिः" की जगह "बृहस्पती" है। अब बतलाइए, यह त्रुटि किसके मत्थे मढ़ी जाय?

उपोद्घात में सुधाकर जी लिखते हैं कि वेबर और टीबो साहब के ज्योतिष वेदाङ्ग-विषयक व्याख्यानों की विवेचना करके पण्डित बाल गङ्गाधर तिलक ने भी कुछ श्लोकों का अर्थ प्रकाशित किया है। नहीं मालूम आपको यह बात कहाँ से मालूम हुई। जहाँ तक हम जानते हैं तिलक महाशय ने इस वेदाङ्ग के पद्यों का अर्थ कभी प्रकाशित ही नहीं किया। हां, शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने ज़रूर किया है। उनके नाम के साथ तिलक के नाम को भी स्थापित करना सुधाकरजी का भ्रम है। आपका एक और भ्रम हम दूर करना चाहते हैं। आप उपोद्घात में लिखते हैं कि वेबर साहब ने ज्योतिष वेदाङ्ग की अनेक पुस्तकों का मुक़ाबला करके उनकी मदद से एक संशोधित-पाठ-पूर्ण पुस्तक प्रकाशित की है और उस पुस्तक में कुछ श्लोकों की व्याख्या भी की है। परन्तु यदि आप वेबर की पुस्तक को सामने रख कर प्रचलित पुस्तकों के पाठ पढ़ कर देखेंगे तो आपको मालूम हो जायगा कि वेबर ने अपनी पुस्तक में ज़रा भी पाठ-संशोधन नहीं किया। वेबर ने परम्परागत प्रचलित पाठ, जैसे पाये हैं वैसे ही, प्रकाशित कर दिये हैं। हाँ व्याख्यान में उन्होंने ज़रूर कहीं कहीं पर अपनी राय के अनुसार संशोधन की सिफ़ारिश की है।

सुधाकर जी को चाहिए था कि वे अपनी पुस्तक में परम्पराप्राप्त पाठ भी देते। पर आपने ऐसा करने की ज़रूरत नहीं समझी। आपने अपनी समझ के अनुसार संशोधित पाठ ही सिर्फ़ दिया है। अतएव पढ़ने वाले आप के पाठ का मुक़ाबला पुराने पाठ से करके यह निश्चय नहीं कर सकते कि कौन पाठ अधिक "शोभन" है। पुरानी पुस्तकों का उद्धार करने में पाठान्तर देने की प्रथा बहुत अच्छी है। सभी आधुनिक विद्वान् इस प्रथा का आदर करते हैं। परन्तु सुधाकर जी नहीं मालूम क्या समझ कर, इस प्रथा का उल्लंघन कर गये हैं। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, सुधाकर जी का भाष्य "बार्हस्पत्य" के भाष्य के कुछ अंश की केवल आलोचना है। अतएव पाठान्तर दे कर अपने संशोधित पाठ की शोभनता दिखाने की उनके लिए बहुत बड़ी ज़रूरत थी। पर शायद "बार्हस्पत्य" की त्रुटियों को बतलाने की धुन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आपका ध्यान इस सर्व-सम्मत प्रथा के अवलम्बन की तरफ़ नहीं गया।

"बार्हस्पत्य" और सुधाकर जी के भाष्यों का मुक़ाबला करने पर एक बड़े ही महत्त्व का भेद देख पड़ता है। वह यह है कि "बार्हस्पत्य" ने अपने व्याख्यान में अपनी सम्मतियों को ब्राह्मण और सूत्र ग्रन्थों के आधार पर स्थिर किया है; पर सुधाकरजी ने भास्कर और वराहमिहिर की शरण ली है। ज्योतिष वेदाङ्ग की सृष्टि के सैकड़ों वर्ष बाद ये दोनों ज्योतिर्विद उत्पन्न हुए हैं। अतएव प्राचीन ज्योतिष-सिद्धान्त की परिपोषकता के लिए इन ज्योतिर्विदों के मत को प्रमाण के तौर पर लिखना किसी तरह युक्तिसङ्गत नहीं। जिस समय का ज्योतिष वेदाङ्ग है उसी समय के ग्रन्थों से अपना मत पुष्ट करना चाहिए था। "बार्हस्पत्य" ने यही किया है। उन्होंने भास्कर और वराह मिहिर का आशय न लेकर अपने कथन को ब्राह्मण और सूत्रग्रन्थों से सिद्ध किया है। ज्योतिष वेदाङ्ग वैदिक ग्रन्थ है। इसलिए वैदिक ग्रन्थों के आधार पर ही उसका व्याख्यान होना चाहिए, लौकिक ग्रन्थों के आधार पर नहीं। पर सुधाकरजी ने इस बात का विचार नहीं किया। वराह मिहिर और भास्कर आदि अर्वाचीन विद्वानों के ज्योतिष-सिद्धान्तों के आधार पर सुधाकर जी ने जो मत स्थिर कर लिये हैं, ज्योतिष वेदाङ्ग के अर्थों को तोड़ मरोड़ कर, आपने उन्हीं मतों के परिपुष्ट करने की कोशिश की है। यह आपने बड़े साहस का काम किया है। नवीन ग्रन्थों के सिद्धान्तानुसार प्राचीन ग्रन्थों का अर्थ न करके, तत्कालीन अन्य प्राचीन ग्रन्थों से ही उनका मेल मिलाना उचित था।

सुधाकरजी ने एक बात और भी अच्छी नहीं की। आपने अपनी पुस्तक की भूमिका में पुराने लोगों को बेतरह फटकारा है। "सदाचार और सदर्थ नष्ट हो गये। गुणियों के मुँह में सिर्फ़ भोजन की कथा रह गई। हाथ पर मद्य का प्याला रह गया। श्रुति के अङ्ग छिन्न भिन्न होगये"। ये आरोप शिष्टता-विघातक और मर्म्मभेदी हैं। यही बातें कोमल शब्दों में कहीं जा सकती थीं, जैसे कि "बार्हस्पत्य" के "ज्योतिष" की भूमिका में कही गई हैं। सुधाकर जी की उक्तियों से एक प्रकार का गर्व टपक रहा है। एक प्रतिष्ठित विद्वान् के मुँह से ऐसी ऐसी बातों का निकलना आश्चर्य्य की बात है। पुराने पण्डित चाहे कितने ही भ्रष्टाचार वाले और मूर्ख क्यों न रहे हों, सुधाकरजी उनके ऋणी ज़रूर हैं। यदि वेदों और वेदाङ्गों को जी जान से प्यारा समझ कर उनकी वे रक्षा न करते तो ज्योतिष वेदाङ्ग लुप्त हो जाता, और सुधाकरजी को आज अपना भाष्य लिख कर नामवरी हासिल करने का मौक़ा न मिलता।

ज्योतिःशास्त्र को विद्वानों ने वेदों की आँख माना है। इस पर सुधाकरजी ने अपने भाष्य की पद्यात्मक भूमिका में एक रूपक रचा है। आप कहते हैं कि वेदों की आँख में मोतियाबिन्द होगया था। वे अन्धे होगये थे। उनकी आँख खोलने की योरपीय पण्डितों ने बहुत कोशिश की, पर कामयाबी न हुई। यह देख "बार्हस्पत्य" महाशय ने सर्जन का काम किया। उनके सूक्ष्म शस्त्र से मोतियाबिन्द दूर हो गया। आँख साफ़ निकल आई; वह "प्रकाशित" होगई। पर उसमें तेज नहीं आया। क्यों? इसलिए कि "बार्हस्पत्य" के पास "सुधा" नहीं थी! और सुधाकरजी के नाम ही में सुधा भरी हुई है। बस उसीका योग करके आपने वेदचक्षु में प्रकाश पैदा कर दिया! यह तो आपने सब किया; पर आपकी एक बात समझ में नहीं आई। "बार्हस्पत्य" ने यदि "चक्षुः प्रकाशित" कर दी थी तो कनीनिका में "रोगवलय" कैसे रह गया, जिसका आपको सम्मार्जन करना पड़ा? आँख प्रकाशित होने पर भी बिना सुधा के देख नहीं पड़ता, यह बात आज आपके मुँह से नई सुनने को मिली! सुधा का प्रयोग आज तक मुर्दों को जिलाने और ज़िन्दों को अमर करने ही के लिए सुना गया था। पर अब मालूम हुआ कि मोतियाबिन्द का जाला निकालने के बाद वह आँख में भी डाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है। बिना उसे डाले आँख से देख ही नहीं पड़ता अस्तु। अच्छा आविष्कार हुआ। "बार्हस्पत्य" जी सुन कर ख़ुशी मनावें।

सुधाकरजी "बार्हस्पत्य" के भाष्य की चाहे जितनी कड़ी समालोचना करते; चाहे उसके एक एक शब्द को अशुद्ध कह देते; जो कुछ आपने अपनी भूमिका आदि में कहा है चाहे उससे भी कुछ और अधिक कह देते; पर आपको अपनो पुस्तक का नाम "भाष्य" न रखना था। वह भाष्य कदापि नहीं। वह "बार्हस्पत्य" के भाष्य के कुछ अंश की आलोचना मात्र है। भूमिका में यह बात क़बूल करके भी कि आपने "बार्हस्पत्य" ही की रीति का अवलम्बन ("तेषाञ्च रीतिमवलम्ब्य") किया है, फिर भी आपने अपने को भाष्यकार बनाया। यह आपने अपने अनुरूप काम नहीं किया। इस स्पष्ट-वाद को आप क्षमा करें।

पर्य्यालोचक।

आधुनिक अर्जुन।

अध्यापक लल्लूभाई कल्याणजी शाह।

गत जून महीने की सरस्वती में राना सुल्तानसिंह की अद्भुत निशानेबाज़ी का वर्णन पाठकों ने पढ़ा होगा। उस लेख में अनेक उदाहरण देकर यह दिखलाया गया है कि, प्राचीन समय में भारतवर्ष ने धनुर्विद्या में कहाँ तक तरक़्क़ी की थी। परन्तु आज कल इस विद्या का तिरोभाव सा हो गया है। हम लोगों के लिए यह गौरव की बात है कि, इस समय, एक और धनुर्विद्याविशारद, भारतवासी, के अलौकिक कौशल का परिचय नागपुर के लोगों को मिला है। आपका नाम लल्लूभाई कल्याणजी शाह है। आप भावनगर (काठियावाड़) के रहनेवाले हैं। इनका जन्म संवत् १९३२ की आश्विन शुक्ल ८ को हुआ था। आप श्वेताम्बरी जैन वैश्य हैं। आपका घराना, काठियावाड़ में, व्यापार के लिए बहुत प्रसिद्ध है। भावनगर के गुजराती और ऐंगलो वर्नाक्युलर स्कूल में आप ने शिक्षा पाई है। बालकपन ही से आप का ध्यान कलाकौशल और धनुर्विद्या की ओर बहुत था। घर के व्यापार और शिक्षा में आपका मन नहीं लगा। महाभारत और रामायण की कथा तथा भाट, चारण और कवियों द्वारा वर्णित प्राचीन क्षत्रियों के पराक्रम को सुनकर, इनका मन निशानेबाज़ी की ओर अधिक आकर्षित हुआ। कोई ८ वर्ष हुए, इन्होंने राना सुल्तानसिंह के सब अद्भुत प्रयोग देखे। तब से इनका उत्साह और भी बढ़ गया। इनके मन में आया कि हम भी इसी प्रकार की निशानेबाज़ी का अभ्यास करें। अभ्यास से सब कुछ हो सकता है। मिस्टर शाह ने इस विद्या का बहुत अच्छा अभ्यास किया। सफलता भी इसमें इन्हें पूरेतौर पर हुई।

आजकल यदि कोई गुणी अपने गुण प्रकट न करे, तो उसका हाल ही कोई नहीं जान सकता। यही बात सोचकर अध्यापक शाह ने पहले पहल अपनी अद्भुत निशानेबाज़ी के प्रयोग अहमदाबाद में दिखाये। उन्हें देखकर वहाँ के लोगों को बहुत आश्चर्य्य और कौतूहल हुआ। इन्होंने अध्यापक शाह का बहुत सम्मान किया। इनके प्रयोगों का दूसरा कौतुक, अक्टूबर ०५ में, जब प्रिन्स आफ़ वेल्स बंबई में थे, तब हुआ। इसके बाद पूना की छावनी और शहर में भी इनकी निशानेबाज़ी के कई एक अद्भुत प्रयोग हुए। फिर तो इनका मान और नाम बहुत बढ़ गया और कई एक दूसरे शहरों में भी इन्होंने अपने प्रयोग कर दिखाये। राना सुल्तान-सिंह के समान, इनके भी मत्स्यवेध, भयानकवेध, अदृश्यवेध, और शब्दवेध आदि प्रयोग बड़े ही अद्भुत होते हैं। बम्बई की प्रेसिडेन्सी रायफल एसोसिएशन, पटियाला के पोलिटिकल एजंट मिस्टर ट्यूडन आवेन, सूरत के कलेक्टर मिस्टर वेस्ट्राप, जूनागढ़ के मेजर कारनेगी और पूना के सुप्रसिद्ध देश भक्त पं० बाल गंगाधर तिलक आदि सज्जनों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर से आप को मेडल और अनेक प्रशंसा-पत्र मिले हैं।

नागपुर में भी, गत दिसम्बर में, इनकी निशानेबाज़ी के अनोखे अनोखे प्रयोग हुए। एक दिन हम भी इनके प्रयोग-कौशल देखने गये थे। देखकर चित्त आश्चर्य्य-सागर में निमग्न हो गया। इनके प्रयोग देख कर भारत की प्राचीन धनुर्विद्या का चित्र नेत्रों के सन्मुख आ जाता है, और यह भावना होती है कि यह देश अब भी किसी विद्या में अन्य देशों से कम नहीं है। केवल उत्तेजना और उत्साह की आवश्यकता है। अध्यापक शाह के प्रयोगों का, प्रत्यक्ष देखा हुआ थोड़ा सा वर्णन, हम पाठकों के मनोविनोद के लिए देते हैं।

खड़े हुए आदमी के दोनों पैरों के बीच लटके और हिलते हुए मिट्टी के छोटे से घड़े को, और हाथ पर रक्खे हुए नारियल को, मिस्टर शाह दूर से गोली चलाकर फोड़ देते हैं! यह निशाना बहुत भयानक है। वे आँखें मूँदकर, और बिना हाथों की मदद के पैर के अँगूठे से बन्दूक़ पकड़कर, सामने और पीछे रक्खी हुई वस्तु पर भी ठीक निशाना लगाकर उसे तोड़ देते हैं। एक बड़े मटके में भिन्न भिन्न चार रंगों के छोटे छोटे घड़े रखकर, घूमते हुए बड़े मटके पर निशाना लगाकर, जिस घड़े को दर्शक कहें उसी को तोड़ देते हैं। बड़े मटके से निकालने पर निर्दिष्ट घड़ा ही फूटा हुआ निकलता है; बाक़ी सब सजे हुए समूचे निकलते हैं। इसी का नाम अदृश्यवेध है। सामने रक्खे हुए भिन्न भिन्न रंगों के चार घड़ों में से, जिस रंग के घड़े को कहा जाय, उसे आँखें बाँधकर, थोड़ी दूर से आप गोली से फोड़ देते हैं। इस प्रयोग में चारों घड़ों का शब्द उन्हें सुनाकर फिर घड़ों का स्थान इच्छानुसार बदल दीजिए। शाह साहब का निशाना ठीक उसी रंग के मटके पर लगेगा जिसके लिए उनसे कहा जायगा! ज़रा इस अद्भुत अभ्यास को तो देखिए!

उनका एक प्रयोग बहुत ही आश्चर्य्य-जनक है। इसे मिस्टर शाह ने बड़ी ही ख़ूबी के साथ किया। एक लटकते हुए तराज़ू के दोनों पलरों पर पैर रख आप खड़े हुए। दृष्टि आपने नीचे की ओर रक्खी। ऊपर बहुत ऊंचे पर एक मछली लटक रही थी। उसका आकार नीचे, आध इंच के चौड़े शीशे में, देखकर आपने अपने निशाने से उस मछली को बींध दिया! यह प्रयोग बहुत ही अद्भुत है। इसी प्रयोग के कारण उनको लोग "आधुनिक अर्जुन" कहते हैं। इनके सिवा भिन्न भिन्न रंगों के घूमते हुए चार छोटे घड़ों में से जिसे कहा जाय, उसी को आप अपने निशाने का लक्ष्य बना देते हैं। जलती हुई मोमबत्ती की लौ को धड़ाके के साथ बन्दूक़ का निशाना लगाकर आप गुल कर देते हैं। पर मोमबत्ती अपने स्थान से हिलती भी नहीं।

अध्यापक साहब ये सब प्रयोग बन्दूक़ द्वारा, खड़े, बैठे और आराम कुर्सी पर लेटे, तीनों तरह से, करते हैं। सामने भी और पीछे भी रक्खी हुई चीज़ों को आप अपने निशाने का लक्ष्य बनाते हैं। उनकी राय है कि ये प्रयोग धनुर्बाण से भी हो सकते हैं। भावनगर के जंगल में गोंड़ और भील बहुत रहते हैं। वे लोग धनुर्बाण से बहुत अच्छा निशाना लगाते हैं। मिस्टर शाह अब कुछ समय तक इन्हीं गोंड़ भीलों की सहायता से धनुर्विद्या का अभ्यास करके धनुर्बाण से अपनी अद्भुत निशानेबाज़ी के दृश्य दिखाने की इच्छा रखते हैं।

इन प्रयोगों के सिवा मिस्टर शाह और भी कितने ही कौतुक लोगों के मनोरंजनार्थ करते हैं। जैसे हवा से रंग बिरंगे रूमाल आप निकालते चले जाते हैं और उन्हें फिर एक दम ही हवा में ग़ायब कर देते हैं। आप रुपयों की टकसाल बनाते हैं! जादू के कृत्रिम तारे और रुपयों की स्वेच्छानुसार वृष्टि करते हैं। आप कितने ही नये नये पदार्थ उत्पन्न करते हैं और ताश-कौतुक आदि अनेक जादू के खेल भी करते हैं। इन खेलों से दर्शकों को बहुत आनन्द मिलता है।

माधवराव सप्रे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परचित्त-विज्ञान विद्या।

बेतार की तारबर्क़ी का प्रचार हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ। इसमें तार लगाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। सिर्फ़ दो यंत्रों से ही काम निकल जाता है। इस तारबर्क़ी के सिद्धान्तों को ढूंढ निकालने का दावा तो कई आदमी करते हैं; पर सब में इटली के मारकोनी साहब ही प्रधान हैं। क्योंकि उन्हींके सिद्धान्तों के अनुसार इस तारबर्क़ी का अधिक प्रचार है। जान पड़ता है, किसी दिन मारकोनी की मेहनत ख़ाक में मिल जायगी। इस तारबर्क़ी की ज़रूरत ही न रह जायगी। लोग एक दूसरे के मन की बात घर बैठे आपही आप जान लेंगे! जो ख़बर जिसके पास चाहेंगे इच्छा करते ही भेज सकेंगे! जो बात पूछनी होगी मनही मन पूछ लेंगे! जिस विद्या से ये बातें सम्भव समझी गई हैं उसका नाम है परचित्त-विज्ञान विद्या। इसका ज़िक्र एक आध दफ़े, "अन्तःसाक्षित्व-विद्या" के नाम से सरस्वती में आचुका है।

अँगरेज़ी में एक मासिक-पुस्तक है। उसका नाम है "रिव्यू आव रिव्यूज़"। यह पुस्तक बहुत प्रतिष्ठित है। इसके सम्पादक हैं डब्लू० टी० स्टीड साहब। साहित्य-संसार में आपका बड़ा नाम है। गत कांग्रेस के वक्त, आप, कई एक और विलायती सम्पादकों को लेकर, इस देश में पधारनेवाले थे। भारत के आप बड़े ही हितैषी हैं। आपकी मेहमानदारी का अच्छा प्रबन्ध किया जानेवाला था। पर एक कारण ऐसा आपड़ा कि आप नहीं आसके। आते तो इस देश की दशा अपनी आँखों देख जाते। स्टीड साहब ने परचित्त-विज्ञान का प्रत्यक्ष देखा हुआ एक वृत्तान्त अपने मासिक-पत्र में प्रकाशित किया है। उसका सारांश हम यहां पर थोड़े में देते हैं। आपकी कथा आप ही के मुँह से सुनिए—

मुझे इस बात का पूरा विश्वास था कि यदि दो आदमियों के चित्त एक हों तो वे परस्पर एक दूसरे के मन की बात, हज़ारों कोस दूर रहने पर भी, जान सकते हैं। पर मैं अब तक यही समझता था कि मन की अर्द्ध-सज्ञान दशा में ही यह बात हो सकती है। अन्यथा नहीं। मैं अब तक न जानता था कि साधारण तौर पर चित्त की सम्पूर्ण सज्ञान अवस्था में भी, यह बात सम्भव है। पर डेनमार्क के रहनेवाले ज़ानसिग साहब और उनकी स्त्री ने मेरा यह सन्देह दूर कर दिया। मुझे अब विश्वास हो गया है कि दो चित्तों का ऐक्य होने से कोई भी आदमी, सज्ञान अवस्था में भी, परस्पर एक दूसरे के अन्तःकरण की बात जान सकता है।

ज़ानसिग और उनकी स्त्री की उम्र कोई ४० वर्ष की होगी। वे अच्छी तरह अँगरेज़ी बोल सकते हैं। वे एक ही गाँव के रहनेवाले हैं। लड़कपन में एक ही साथ उन्होंने खेला कूदा और पढ़ा लिखा है। नौकरी भी दोनों ने, कुछ समय तक, अमेरिका में एक ही आदमी के यहाँ की है। दोनों का मन मिल जाने से उन्होंने शादी कर ली। इस बात को हुए १९ वर्ष हुए। शादी होने के बाद, पतिपत्नी का मन यहाँ तक एक हो गया, कि पत्नी अपने पति के मन की बातें, बिना बतलाये ही, जानने लगी। जब ज़ानसिग को दृढ़ विश्वास हो गया कि उनकी स्त्री उसके मन की बातें जान लेती है तब उन्होंने नौकरी छोड़ दी और अपनी स्त्री के परचित्त-ज्ञान की बदौलत रुपया कमाने की ठानी। चार वर्ष तक वे अमेरिका में घूमते और तमाशा दिखाते रहे। परन्तु किसी ने इस बात की जाँच न की कि क्या कारण है जो ज़ानसिग की स्त्री अपने पति के मन की बात जान लेती है। और न ज़ानसिग या उनकी स्त्री ने ही इस बात का दावा किया कि वे किसी विलक्षण-विद्या के बल से यह काम कर सकते हैं। उन्होंने अपने को मदारी, या एक प्रकार का जादूगर, ज़ाहिर किया और तमाशा देखनेवालों ने उन्हें वही समझा।

आख़िरकार देशदेशान्तरों में घूमते घामते वे लंडन पहुँचे। यहाँ उन्होंने हज़ारों आदमियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने, एक नाटकघर में अपने करिश्मे दिखाये। हम भी, अपने एक मित्र को साथ लेकर, तमाशा देखने गये। पहले और और खेल होते रहे। कुछ देर में ज़ानसिग की बारी आई। वे दोनों रंगमंच पर सबके सामने आकर उपस्थित हुए। ज़ानसिग की स्त्री के पास तिपाई पर एक स्लेट रक्खी गई और उसके हाथ में खड़िया मिट्टी का एक टुकड़ा दिया गया। इसके बाद भूमिका के तौर पर दो चार बातें कह कर ज़ानसिग साहब चबूतरे से उतर कर नीचे दर्शकों के पास आये। उन्होंने कहा—आप लोग मुझे कोई चीज़ दीजिए, कोई नाम बतलाइए, कोई संख्या उच्चारण कीजिए; मैं अपनी स्त्री की तरफ़ पीठ किये हुए दूर खड़ा हूं। आप चुपचाप जो चीज़ मुझे देंगे, या जो नाम या संख्या बतलावेंगे, उसे मेरी स्त्री स्लेट पर लिख देगी। चाक़ू, घड़ी, दियासलाई, रूमाल, रुपया-पैसा आदि अनेक चीज़ें लोग ज़ानसिग को देने लगे। चीज़ों की बरखा सी उसके हाथ पर होने लगी। जहाँ उसके हाथ पर कोई चीज़ रक्खी गई, या जहाँ कोई चीज़ उसे दिखाई गई, तहाँ उसकी स्त्री ने उसका नाम स्लेट पर लिखा। इसके बाद कार्डों या काग़ज़ के टुकड़ों पर पेन्सिल से संख्यायें लिखकर दर्शकों ने ज़ानसिग को दिखाना शुरू किया। उधर उसकी स्त्री ने तत्काल ही उन संख्याओं को यथाक्रम स्लेट पर लिखना आरम्भ किया। एक आध दफ़े उसने ग़लती की। अँगरेज़ी ३ को उसने ८ लिखा, और ६ को ९। इसका कारण इन अङ्कों के आकार की समानता थी। पर प्रायः उसने और सब संख्यायें सही लिखीं। लंबी लंबी संख्यायें लोगों ने काग़ज़ पर लिखीं। उन्हें मन ही मन पढ़ने में ज़ानसिग को थोड़ी बहुत कठिनता भी हुई; पर उसकी स्त्री को उन्हें स्लेट पर लिखने में ज़रा भी कठिनता नहीं हुई। ज़ानसिग इधर उधर दर्शकों के बीच दौड़ता रहा। कभी इस चीज़ को देखा, कभी उस चीज़ को। उधर उसकी स्त्री सबके नाम साफ़ साफ़ स्लेट पर लिखकर दर्शकों को आश्चर्य्य के महासमुद्र में डुबोती रही।

कुछ देर में ज़ानसिग मेरे पास बैठे हुए मेरे एक मित्र के पास आया। बोला—"कुछ दीजिए। बैंक का नोट, या जो आपके मन में आवे"। मेरे मित्र ने एक कोरी चेक निकाली। ज़ानसिग ने पूछा—"यह क्या है"? "यह एक चेक है"। "कितने की है?"। "कितने की भी नहीं; कोरी है"। "इसका नम्बर क्या है"? नम्बर बतलाने पर उसकी स्त्री ने स्लेट पर एक के बाद एक अङ्क सही सही लिख दिये! इसे हाथ की चालाकी या और कोई बात न समझिए। यह पर-चित्त-विज्ञान का फल था। ज़ानसिग और उसकी स्त्री का चित्त दूध-बूरे की तरह एक हो रहा था। इसीसे ज़ानसिग के मन की बात उसकी स्त्री को तत्काल मालूम हो जाती थी। पर विशेषता यह थी कि स्त्री के मन की बात ज़ानसिग नहीं जान सकता था।

इन लोगों की अच्छी तरह परीक्षा करने के इरादे से मैं ज़ानसिग और उसकी स्त्री के साथ एक अलग कमरे में गया। वहाँ जाकर मैंने ज़ानसिग की स्त्री को पड़ोस के कमरे में अपने एक मित्र के साथ बिठलाया। उसे स्लेट पेन्सिल दी। दूसरे कमरे में मैं ज़ानसिग के पास बैठा। इस कमरे में एक और शख़्स भी थे। उन्होंने स्लेट पर एक ही लाइन में ८ अङ्क लिखे। स्लेट मैंने ज़ानसिग के हाथ में दी। उसने एक एक अङ्क को क्रम क्रम से ध्यानपूर्वक देखना शुरू किया। जैसे जैसे वह देखता गया वैसे वैसे दूसरे कमरे से उसकी स्त्री एक एक अङ्क उच्चारण करती गई। याद रखिए दोनों कमरों के बीच दो दरवाज़े थे। और भी कितनी ही परीक्षायें हम लोगों ने कीं। सब में ज़ानसिग की स्त्री पास हो गई। ज़ानसिग ने एक बार अपनी स्लेट पर एक वृत्त बनाया। उसके ऊपर उसने एक त्रिकोण खींचा। उधर दूसरे कमरे में ज़ानसिग की स्त्री ने यही शकलें स्लेट पर खींच दीं। मैंने अपनी स्लेट पर पक्षी का एक चित्र बनाया। इस पर ज़ानसिग की स्त्री दूसरे कमरे से बोल उठी—"मैं चित्र खींचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं जानती। फिर किस तरह मैं स्लेट पर चिड़िया बना सकती हूं?"।

मैंने इन लोगों की और भी परीक्षा करने का निश्चय किया। इसलिए मैंने उन्हें अपने मकान पर खानाखाने के लिए निमन्त्रण दिया। निमन्त्रण उन्होंने क़बूल कर लिया। यथासमय वे मेरे यहाँ आये। मकान पर मैंने और कई आदमियों को बुला रक्खा था। खाना खा चुकने पर हम लोग बैठक में आये। वे दोनों पति-पत्नी अलग अलग कमरों में कर दिये गये। मैंने ज़ानसिग को अनेक चीज़ें दिखलाईं; अनेक नाम बतलाये; अनेक संख्यायें लिख लिख कर दीं। मेरा दिखलाना या देना था कि उधर उसकी स्त्री ने उनके नाम अपनी स्लेट पर लिख दिये। मेरे मित्र ने तीन नाम, एक दूसरे के नीचे लिख कर, ज़ानसिग को दिये। उसकी स्त्री ने वही नाम, उसी क्रम से, स्लेट पर लिख दिये। मेरे मित्र ने ज़ानसिग को जेबघड़ी की एक छोटी सी चाभी दी। उस पर बनानेवाले का नाम "हंट" (Hunt), बहुत छोटे छोटे अक्षरों में, था। वह मुशकिल से पढ़ा जा सकता था। उसकी स्त्री ने दूसरे कमरे से आवाज़ दी। "यह घड़ी की चाभी है। इसका नाम है "हंट"! आठ आठ संख्यायों की कई सतरें स्लेट पर लिख कर ज़ानसिग को दिखलाई गईं। उन्हें भी उसकी स्त्री ने सही सही लिख दिया। इसके बाद मैंने अपनी जेब से एक बहुत पुराना नोट निकाला। जब मैं "हालोवे" जेल से छूटा था तब यह नोट मुझे एक लेडी ने दिया था। तब से मैं इसे हमेशा अपनी पाकेट में ही रखता आया हूं। पुराना होने के कारण यह बहुत मैला हो गया है। इसके नम्बर वग़ैरह मुशकिल से पढ़े जाते हैं। इसे मैंने ज़ानसिग के हाथ में दिया। उसने अपनी स्त्री से पुकार कर पूछा—"यह क्या चीज़ है? (इस बात को न भूलिएगा कि स्त्री दूसरे कमरे में थी। कमरे के बीच में पर्दा पड़ा था) स्त्री ने जवाब दिया—"नोट है"। "इसकी तारीख़"? जवाब मिला—"३ जुलाई, १८८५"। "और नम्बर"? स्त्री ने कहा—"पहले ५ है, फिर ९, फिर ८, फिर ४, फिर ४"। पर्दा उठाकर जो उसकी स्लेट देखी गई तो उस पर लिखा था—"४४, ८९५"! ये सब बातें बिलकुल सही थीं। इसके पहले ही ज़ानसिग की स्त्री ने कहा था कि यह नोट आग में झुलस सा गया है। यह बात भी एक तरह ठीक थी। नोट झुलस तो नहीं गया था; पर २० वर्ष से लगातार पाकेट में, नोटबुक के भीतर, रहने से उसका रंग बिलकुलही उड़ गया था और मालूम होता था कि ज़रूर धुँएँ से ख़राब हो गया है। और भी कई परीक्षायें मैंने कीं और सब में ज़ानसिग की स्त्री उत्तीर्ण हो गई।

इन सब परीक्षाओं से मेरा सन्देह दूर हो गया। मैंने समझ लिया कि पर-चित्त-विज्ञान के सिवा और कोई भेद इसमें नहीं। ये लोग पास ही पास इस विषय की परीक्षाओं की जाँच करने देते हैं। बहुत दूर जाकर नहीं। अर्थात् एक दूसरे से दो चार मील दूर जाकर ये अपनी करामात नहीं दिखलाना चाहते। ये कहते हैं कि पास पास रह कर ही हम इस तरह के करिश्मे दिखलाकर रुपया पैदा करते हैं। दूर नहीं जाना चाहते। सम्भव है, दूर जाने से हम लोग अपनी इस अलौकिक शक्ति को खो दें। ऐसा होने से हमारा बड़ा नुक़सान होगा। यदि हमारी जीविका का कोई और ज़रिया होता तो हम ऐसा भी करते। पर इस समय हमारी अवस्था जैसी है उसके ख़याल से हमें डर लगता है कि कहीं ऐसा न हो जो हम परीक्षा के झगड़े में पड़कर इस पर चित्त-विज्ञान की शक्ति को खो बैठें।

परन्तु पर-चित्त-विज्ञान विद्या झूठी नहीं; सच है। उसके बलसे मनुष्य हज़ारों कोस दूर बैठकर भी औरों के मनका हाल जान सकता है। सौभाग्य से मुझे इसका भी प्रमाण मिला है। अमेरिका के जार्जिया प्रान्त में अटलाँटा नामक एक शहर है। उसमें ऐंड्रू मेकडानल नाम के एक साहब रहते हैं। उन्होंने अभी, कुछही दिन हुए, मेरे पास प्रकाशित होने के लिए एक लेख भेजा है। उसमें उन्होंने लिखा है कि वे मिस मेबल रे नामकी एक स्त्री से, १२०० मील की दूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से, बात चीत कर सकते हैं। पहिले उनको इतनी दूर से बात चीत करने का अभ्यास न था। यह अभ्यास धीरे धीरे बढ़ा है। मुझे विश्वास है कि लेखक का कहना ठीक है। वह समय नज़दीक जान पड़ता है जब इस विद्या के तत्त्व अच्छी तरह लोगों के ध्यान में आजायँगे और अभ्यास करते करते लोग सैकड़ों कोस दूर रहनेवाले अपने इष्ट मित्रों से, बिना किसी कठिनाई के, बात चीत कर सकेंगे।

मनुष्य के मस्तिष्क में जो ज्ञानागार है वह और कुछ नहीं, सिर्फ़ एक प्रकार की बिजली की शक्ति का ख़ज़ाना है। उसी शक्ति की प्रेरणा से, इच्छा करते ही, आदमी हाथ-पैर हिला सकता है; और अपने अङ्गों का आकुञ्चन और प्रसारण कर सकता है। किसी बात की चिन्तना करने, या किसी बात को सोचने से भी, बिजली का प्रवाह ज्ञानागार से बह निकलता है। विश्वव्यापी ईथर नामक पदार्थ में भी बिजली की शक्ति है। उस शक्ति से, मस्तिष्क की वैद्युतिक शक्ति का सम्मेलन होने पर, उस प्रवाह का लगाव हज़ारों क्या लाखों कोस दूर तक, हो सकता है। इस दशा में, किसी और जगह पर दूर रहनेवाले आदमी के मस्तिष्क से प्रवाहित होने वाली वैद्युतिक शक्ति का प्रवाह भी यदि उसी परिमाण में प्रवाहित हो, तो दोनों एक होकर एक दूसरे के मन की बात तत्काल जान सकते हैं। मारकोनी की बेतार की तारबर्क़ी भी इसी सिद्धान्त का अनुसरण करती है। मनुष्य के मस्तिष्क में जो छोटे छोटे दाने हैं उनमें बिजली की शक्ति है। उनमें वही गुण हैं जो मारकोनी की बेतारकी तारबर्क़ी के यंत्रों में हैं। ये यंत्र दो होते हैं। एक ख़बर भेजने के लिए, दूसरा ख़बर लेने के लिए। दोनों का वैद्युतिक बल तुल्य होता है। तुल्य-बलत्त्व ही इस तारबर्क़ी का मूल यंत्र है। यदि किसी की मानसिक बिजली का प्रवाह विशेष शक्तिशाली हो जाय, और वैसी ही शक्ति किसी और आदमी के भी मस्तिष्क में पैदा हो कर दोनों में तुल्यबलत्त्व उत्पन्न हो जाय, तो वे दोनों सहज ही में परस्पर एक दूसरे से, दूर रह कर भी बातचीत कर सकें। इसमें समानभाव की बड़ी ज़रूरत है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बिजली की शक्ति हर आदमी में है। यदि दो आदमी उसे अधिक बलवती करके अपनी मानसिक बिजली की शक्ति को एकही दरजे का करदें, तो उनके मन एक हो जायँ। मन की एकता होते ही उनका मानसिक भेद दूर हो जाय। यह अवस्था प्राप्त होते ही एक दूसरे के मन की बात जानने में ज़रा भी कठिनाई न पड़े। विद्युन्मय मानसिक शक्ति को बढ़ाकर भिन्न भिन्न चित्तों की विद्युन्मात्रा को एक कर देनाही परचित्त-विज्ञान विद्या का मूल है।

ज़ानसिग साहब ने लंदन के "डेली मेल" पत्र में अपनी ज़िन्दगी का हाल प्रकाशित किया है। उस से मालूम होता है कि आप अपनी स्त्री के साथ किसी समय भारतवर्ष भी आये थे और कलकत्ता, बंबई आदि नगरों में अपने पर-चित्त-विज्ञान का तमाशा दिखाया था। आपने इस देश के योगियों और ऐन्द्रजालिकों की बड़ी तारीफ़ की है। आप कहते हैं :—

एक दिन हम लोगों ने एक राजा को और उस की सभा के सभासदों को तमाशा दिखाया। देखनेवाले बहुत ख़ुश हुए। मुझे बड़ी शाबाशी मिली। जब हम अपने होटल को लौट आये तब, कुछ देर बाद, एक सज्जन हमसे मिलने आये। वे मुझसे अच्छी अँगरेज़ी बोलते थे। उन्हों ने कहा—"तुम देर तक ध्यानस्थ नहीं रहते। तुम्हें चित्त की एकाग्रता बढ़ानी चाहिए। तुम्हारे लिए इसकी बड़ी ज़रूरत है। तुम मांस बहुत खाते हो। मांस खाना मानसिक शक्तियों की वृद्धि के लिए हानिकारी है। तुम उपवास भी यथेष्ट नहीं करते और न प्राणायाम द्वारा अपने मन और शरीर को शुद्धही करते हो। इसमें सन्देह नहीं कि तुम में एक अद्भुत शक्ति है; पर अफ़सोस है कि तुम उसका सदुपयोग करना नहीं जानते"। इसके बाद मैंने देखा कि वह आगन्तुक व्यक्ति अधर में ऊपर उठ गया और बिना किसी आधार के, ज़मीन से तीन चार फ़ीट ऊपर, हवा में ठहरा हुआ हमारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरफ़ देख कर चुपचाप मुसकराता रहा। मैंने हिन्दुस्तान में अनेक अद्भुत अद्भुत बातें देखीं। उनमेंसे यह भी एक थी। एक बार हमने अपने एक नौकर को, भारतवर्ष में, उसकी इच्छा के प्रतिकूल बरख़ास्त कर दिया। बंबई में जब हम लोग गाड़ी पर सवार हुए, वह हमें पहुँचाने आया। उसे मैंने स्टेशन पर ही छोड़ दिया; पर जब हम लोग ठिकाने पर पहुँचे और वहां स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हुई, तब उसी आदमी ने आकर हमारी गाड़ी का दरवाज़ा खोला! यह देख कर हम लोगों को बड़ी हैरत हुई। हिन्दुस्तान में हम लोगों को योगियों और ऐन्द्रजालिकों के करतब देखने के अनेक मौक़े मिले। आध्यात्मिक बातों में हिन्दू बहुत बढ़े चढ़े हैं। हम लोगों ने अनेक देश घूम डाले; पर सब से पहले हमें हिन्दुस्तानही में ऐसे आदमी देखने में आये, जिन्होंने हमारे परचित्त-विज्ञान-विषयक कर्त्तव्यों को देखकर कुछ भी आश्चर्य नहीं प्रकट किया। उन्होंने समझ लिया कि जिन आध्यात्मिक और मानसिक सिद्धियों की खोज और साधना में उनके देशवाले अनन्तकाल से लगे आये हैं, उन्हीं में से हमारी परचित्त-विज्ञान विद्या भी एक सिद्धि है। यदि ब्राह्मण और बौद्ध विज्ञानी इस विद्या को मानते हों तो कुछ कहनाही नहीं; अन्यथा हम इसकी कुछ भी क़ीमत नहीं समझते?

जिस देश के योगी योगद्वारा "साक्षात् परब्रह्म-प्रमोदार्णव" में निमग्न हो जाते हैं उनके लिए दूसरे के मन की बात जान लेना कौन बड़ा कठिन काम है? पर इस समय ऐसे योगी दुर्लभ हो रहे हैं।

शेक्सपियर।

नवम्बर ०६ की सरस्वती में मित्रवर पण्डित सूर्य्यनारायण दीक्षित ने शेक्सपियर पर एक लेख प्रकाशित किया है। उसे पढ़कर मैं दीक्षितजी को उलाहना देता हूँ कि शेक्सपियर पर इतना छोटा लेख लिखकर आप ने उसके, अपनी लेखनी के, और सरस्वती के भी प्रति न्याय नहीं किया। शेक्सपियर की कविता और प्रतिभा का महत्त्व हिन्दी पढ़ने वालों को उदाहरण और आलोचन-पूर्वक अच्छी तरह बतलाने के लिए मैं दीक्षित जी से प्रार्थना करता हूँ।

इस कवि के नाम में एक ऐसी मोहिनी शक्ति है कि बिना कुछ उसके विषय में लिखे रहा ही नहीं जाता।* इसकी कविता में सर्वोत्तम गुण मानव-स्वभाव का चित्र खींचना है। इसकी कविता में प्रसादगुण भी अद्भुत है; और साथही विलक्षण ओज भी है। सुकर शब्द-स्थापना से अलौकिक अर्थ-प्रदान का इस कवि में प्रबल सामर्थ्य था।

इसकी कविता के गुणों को बताने और उदाहरण देकर दिखाने का काम मैं दीक्षित जी के ऊपर छोड़ता हूँ। पर शेक्सपियर के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ। इस कवि को अपनी भाषा और अपने देश का अनुकरणीय घमण्ड था। "रिचर्ड दि सेकेंड" में इस की इस विषय में हिमायत प्रकट होती है, जो प्रत्येक निज भाषा और निज देश के भक्त के हृदय को आर्द्र किये बिना नहीं रहती। रिचर्ड दूसरे ने अपने चचेरे भाई, गान्ट-पुत्र, वालिंगब्रूक, और एक सरदार नारफ़ोक को देशनिर्वासन दिया। उस पर नारफ़ोक कहता है:—

A heavy sentence, my most Sovereign liege!
And all unlook'd for from your highness' mouth;
* * * *
The language I have learn'd these forty years,
My native English, now I must forego!
And now my tongue's use is to me no more,
Than an unstringed viol, or a harp;
Or like a cunning instrument cas'd up,
Or, being open, put into his hands,
That knows no touch to tune the harmony.

---

*पर रूस के प्रसिद्ध ग्रन्थकार टाल्स्टाय ने, कुछ दिन हुए, एक लेख में यह साबित करने की चेष्टा की है कि शेक्सपियर में बिलकुल ही कवित्व-शक्ति न थी! कैसी अजीब राय है।

सं० स०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मनीपुरी राधा-कृष्ण का रास।

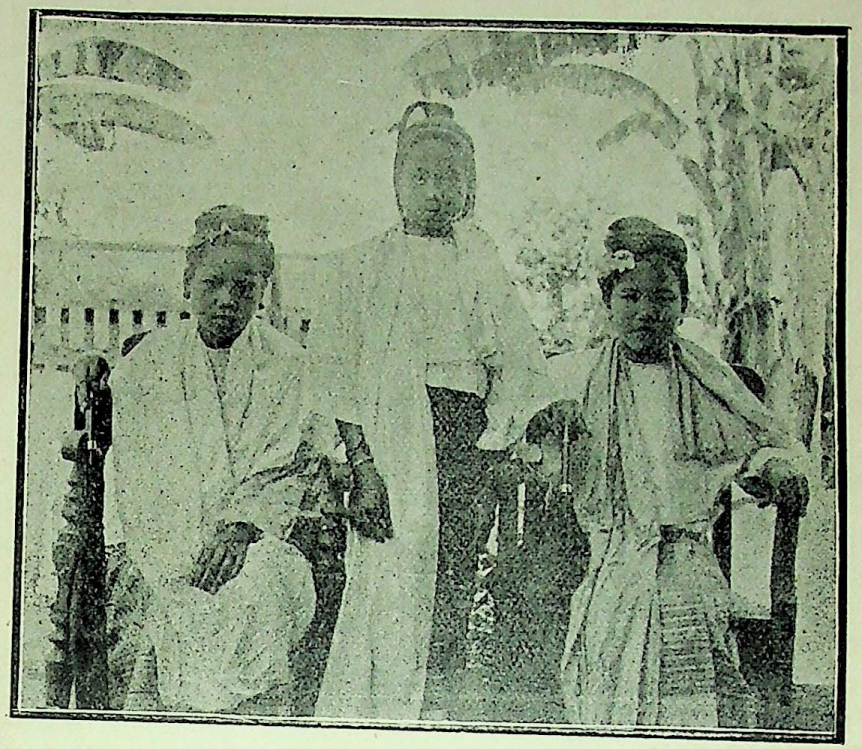

ब्रह्मदेश की लड़कियाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Within my mouth you have engaol'd my tongue,
Doubly portcullis'd, with my teeth, and lips ;
* * * *
I am too old to fawn upon a nurse,
Too far in years to be a pupil now ;
What is thy sentence then, but speechless death,
Which robs my tongue form breathing native breath ?

इसका भावार्थ यह है कि देश-निर्वासन से मतलब है कि मेरी भाषा—मेरी मातृ-भाषा—अंग्रेज़ों का व्यवहार मुझ से छीन लिया जाता है। मेरी रसना दुहरे दरवाज़ों—दाँत और होठों—के भीतर क़ैद कर दी जाती है। मुझे अपनी मातृभाषा छोड़नी पड़ेगी। निर्वासन का यही सब से अधिक असह्य और दारुणतम दुःख है।

वालिंगब्रुक कहता है :—

Then England's ground, farewell : sweet soil ; adieu :
My mother, and my nurse, that bears me yet !
Where'er I wander, boast of this I can,—
Though banished, yet a true-born Englishman.

इन शब्दों में अलौकिक देशानुराग और देशाभिमान है। वालिंगब्रुक इंगलैंड छोड़ते वक्त कहता है :—

"तो अब, इंगलैंड-भूमि, मेरी विदाई है। प्रियतमे मातृभूमि, तुझे प्रणाम ! मेरी माता ! अब तक मेरा पोषण करनेवाली मेरी धात्रि ! हे इंगलैंड-भूमि ! तुझे नमस्कार ! मैं चाहे जहाँ रहूं, घमंड के साथ मैं यही कहूँगा कि यद्यपि मैं निकाला हुआ हूँ ; पर दर असल में मैं सच्चा इंगलैंड का जन्मा हूँ।

गॉन्ट मरण-शय्या पर इंगलैंड के प्रति कहता है :—

This royal throne of kings, this sceptred isle,
This earth of Majesty, this seat of Mars,
This other Eden, demi-paradise ;
This fortress, built by nature for herself,
Against infection, and the hand of war :
This happy breed of men, this little world ;
This precious stone set in the silver sea,
Which serves it in the office of a wall,
Or as a moat defensive to a house,
Against the envy of less happier lands ;
This blessed plot, this earth, this realm, this England,
This nurse, this teeming womb of royal kings,
Fear'd by their breed, and famous by their birth,
Renowned for their deeds as far from home,
* * * *
This land of such dear souls, this dear dear land,
Dear for her reputation through the world."

आशा है दीक्षित जी इस कवि के कवित्त्व के अच्छे अच्छे आदर्श हिन्दी-वाचकों को भेट देंगे।

काशीप्रसाद जायसवाल—(लंदन)।

आसाम की नग्न नागा-जाति ।

सरस्वती की किसी पिछली संख्या में ब्रह्मपुत्र-घाटी की जंगली जातियों पर एक छोटा सा लेख प्रकाशित हो चुका है। इन जातियों के अनेक भेद हैं। ये कोई दस बारह वर्गों में विभक्त हैं। ताँखुल, कूकी, अँगमी, अनाल, मिश्मी, सूमा, नागा और जेमी आदि इनके नाम हैं। सबमें कुछ न कुछ अन्तर ज़रूर पाया जाता है। एक जाति दूसरी के साथ न तो खाती ही पीती है और न शादी ब्याह ही करती है। प्रत्येक जाति अपनीही जातिवालों के साथ खाने पीने आदि के व्यवहार करती है। मनीपुर के आस पास भी कई जंगली-जातियां रहती हैं। लोग अकसर इन सब जातिवालों को "नागा" ही कहते हैं। सरस्वती में इस विषय पर जो लेख निकल चुका है वह एक साहब की लिखी हुई किताब के आधार पर लिखा गया है। पर इस संक्षिप्त लेख में हम नागाओं के विषय में जो मुख्य मुख्य बातें लिखेंगे वे सब अपनी निज की जानकारी से लिखेंगे। हमारी पल्टन, १६वीं राजपूत, बहुत दिन से मनीपुर में है। अतएव हमें नागाओं के रूप-रंग, आचार-विचार, और व्यवहार आदि को प्रत्यक्ष देखने का मौक़ा मिला है।

मनीपुरी ।

मनीपुरी, अर्थात् मनीपुर के निवासी, कहते हैं कि उनकी उत्पत्ति तृतीय पाण्डव अर्जुन, से है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु इसमें सन्देह है। डील डौल, चाल ढाल और पहनाव आदि से तो यह बात साबित नहीं होती। अनेक बातें मनीपुरियों में नागाओं से मिलती हैं। इससे मालूम होता है कि ये लोग भी किसी समय नागाओं की ही तरह जंगली थे। धीरे धीरे इनकी अवस्था में भेद हो गया है और हिन्दुओं के संसर्ग से इनका जंगलीपन जाता रहा है। पुराने ज़माने में मनीपुरी भी नागाओं की तरह अपने मुर्दों को ज़मीन में गाड़ते थे, ख़ूब मद्य और मांस का सेवन करते थे और लड़ाई में मारे गये शत्रुओं के सिर काट कर घर लाते थे। मनीपुरी लोग अब तक उसी तरह धोती पहनते हैं जिस तरह कूकी जाति के नागे पहनते हैं। सिर के बाल भी वे कूकियों ही की तरह बाँधते हैं। मनीपुर के राजा जब राज-सिंहासन पर बैठते हैं तब नागों की ही पोशाक पहन कर बैठते हैं। राजा के महलों में एक घर उसी फ़ैशन का बना होता है जिस फ़ैशन के घर नागों के होते हैं। जब राजा बाहर निकलता है तब मनीपुरी सिपाही नागों के ही से अस्त्र शस्त्र बाँध कर उसके साथ रहते हैं। मनीपुरी लोगों के धार्म्मिक विचार भी नागों के विचारों से मिलते हैं। मनीपुर वालों का शरीर कुछ अधिक मज़बूत होता है। देखने से मालूम होता है मानों इन लोगों ने ख़ूब क़सरत करके अपने बदन को बनाया है।

मनीपुरी लोग बहुत समय से बड़ी बड़ी बस्तियों में रहने लगे हैं। सभ्य लोगों से उनका सम्पर्क हुए बहुत दिन हुए। इसीसे उनके कपड़े-लत्ते खान-पान, रहने के ढँग और पेशे वग़ैरह में फ़र्क़ पड़ गया है। इनका जंगलीपन बहुत कुछ जाता रहा है। अब ये लोग खेती करते हैं, कपास ओटते हैं, रस्सियां बनाते हैं, तथा और भी कितने ही पेशे करते हैं। इनकी बोली में भी भिन्नता हो गई है। परन्तु ये भेद स्वाभाविक नहीं, किन्तु सम्पर्क-जन्य हैं। सम्पर्क के कारण मनीपुरियों ने अब हिन्दुओं की कितनी ही रीतियां अपने समाज में प्रचलित कर दी हैं। धार्म्मिक विचार भी इनके प्रायः हिन्दुओं के सदृश हो गये हैं। ये लोग कृष्ण की कितनी ही लीलायें करते हैं। उनमें रास-लीला मुख्य है। रास के ये प्रेमी हैं। इनकी रास-लीला की पोशाक बड़ी ही सुन्दर होती है। सलमे सतारे के लाल और हरे रंग के साटन के कपड़े पहन कर जब ये लोग रास करते हैं तब बड़ा आनन्द आता है। राधा के घाँघरे पर शीशे के बेशुमार छोटे छोटे टुकड़े या सितारे जड़े रहते हैं। कृष्ण के कपड़ों में भी सामने परदे पर झूठा काम रहता है। सिर पर मोर-पंख का जो मुकुट रहता है वह ख़ूब सजा हुआ होता है।

मनीपुर ब्रह्मदेश के बहुत पास है। अतएव साहचर्य्य के कारण मनीपुरियों और ब्रह्मदेशवासियों में परस्पर बहुत कुछ समानता पाई जाती है। यदि मनीपुरी स्त्री-पुरुषों को ब्रह्मदेश वालों की पोशाक पहना दी जाय तो इनमें और ब्रह्मदेश के स्त्री-पुरुषों में, ऊपर से देखने में, बहुत कम भेद मालूम हो।

नागा लोग।

नागा लोग आसाम के पहाड़ी हिस्से में बहुत रहते हैं। इनका रंग गोरा और बदन दोहरा और मज़बूत होता है। हम ऊपर कह आये हैं कि इनकी कई जातियाँ हैं। सब एक दूसरी के साथ नहीं खाती पीतीं। सभी नागे नंगे नहीं रहते। बहुत से लँगोट पहनते हैं। पर सिवा चादर के और कोई दूसरा कपड़ा नहीं व्यवहार करते। ब्रह्मा की तरफ़ एक अनाल जाति है। इस जातिवाले एक छोटा सा कपड़ा सामने लटका रखते हैं। पीछे से प्रायः सभी नागे नंगे रहते हैं। स्त्रियाँ घुटनों तक कपड़ा पहनती हैं। पर अनाल जाति की स्त्रियां एक हाथ से भी कम चौड़ा कपड़ा धोती की तरह कमर से बाँधती हैं, और बाक़ी सब बदन नंगा रखती हैं। ताँखुल जाति के नागे अपने सिर के बाल इस ढंग से काटते हैं कि उनकी एक ख़ासी टोपी बन जाती है। ये लोग अपने * * में गाय की हड्डी का एक छल्ला रखते हैं। पेशाब वग़ैरह की ज़रूरत पड़ने पर उसे निकाल कर उंगली में डाल लेते हैं। इसका कारण,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

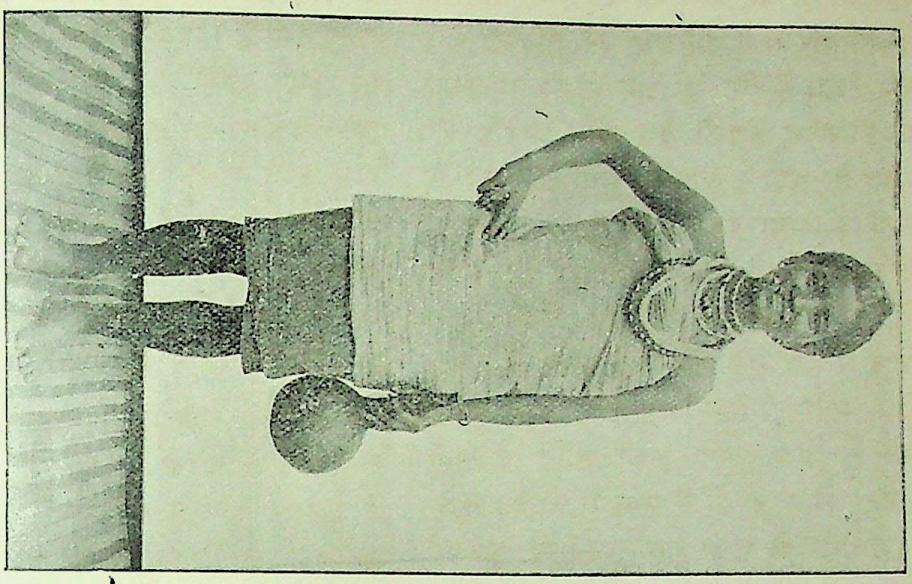

कूकी-जाति की नागा-नारी (खड़ी)

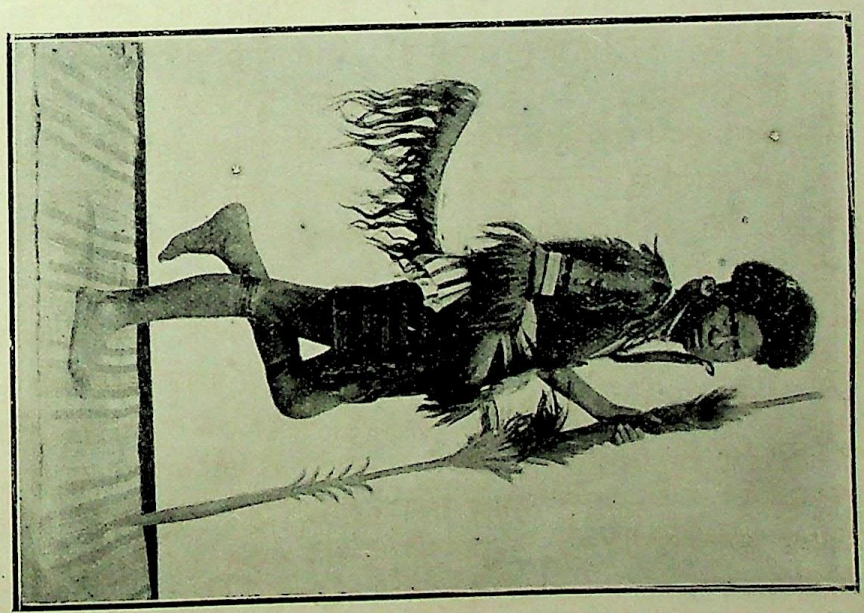

बालों की बनावटी पूँछयुक्त नागा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनीपुरी लेशाबी ।

लड़के को पीठ पर लिये हुए नागा-नारी ।

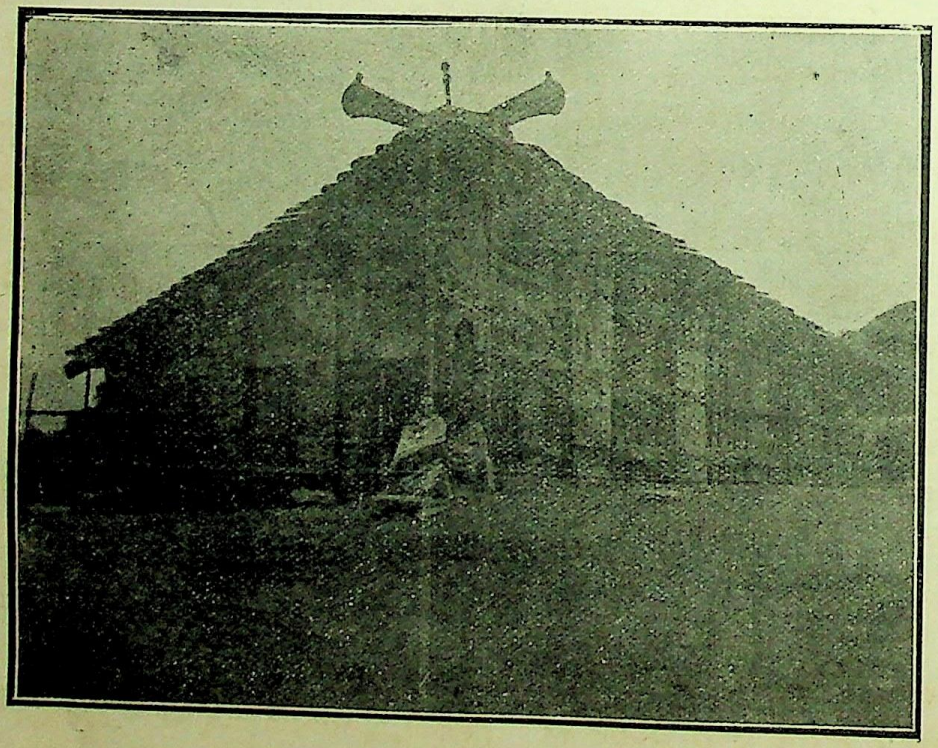

नागों का घर, नमूना १ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछने पर, वे यह बतलाते हैं कि ऐसा न करने से व्यभिचार की इच्छा होने का डर रहता है।

शादी—ब्याह।

लड़के की तरफ़ के दो वृद्ध आदमी लड़कीवाले के पास जाकर शादी की इच्छा ज़ाहिर करते हैं। इस पर लड़की का बाप कहता है कि यदि लड़की राज़ी हुई तो वह वैसा उत्तर देगा। यदि लड़की राज़ी हो गई तो लड़केवाले को, क़ीमत के तौर पर, दो भैंस, दो बल्लम, दो दाँव, दो थालियां, दो कपड़े, दो काँच की मालायें, दो पीतल के कड़े, दो पीतल के बाज़ूबंद और दो फावड़े देने पड़ते हैं।

लड़की के माँ-बाप लड़की को लड़केवाले के घर ले जाते हैं। उसके जाने पर दरवाज़े के अंदर एक थाली रक्खी जाती है। लड़की थाली में एक पाँव रख कर लड़के की बाईं तरफ़ बैठती है। एक नागा-पण्डित एक मुरग़ी लेकर उससे शकुन देखता है। गला दबा कर वह मुरग़ी को मारता है। मरने के बाद यदि मुरग़ी के पैर अलग अलग हों तो यह समझा जाता है कि शादी से सुख न होगा। यदि दाहना पैर बायें के ऊपर हो तो पहले पहल लड़का पैदा होगा। यदि बायाँ दाहने के ऊपर हो तो लड़की। रात भर खाने पीने और गाने बजाने की धूम रहती है। दूसरे दिन सब आदमी, जिनमें लड़कियां और स्त्रियां भी होती हैं, अपने अपने घर जाते हैं।

लड़का-लड़की होना।

सन्तान होने के पाँचवें दिन लड़की या लड़के के माथे पर अदरक, मुरग़ी के कलेजे, शराब और चावल को इकट्ठा कूट कर उसका टीका लगाते हैं; और बीस दिन या एक महीना पूरा होने पर बच्चे का मुंडन करते हैं। मुंडन होने पर बच्चे को मुरग़ी खिलाई जाती है। टीका लगाने के दिन औरतों को खाना दिया जाता है।

मृत्यु।

नागा लोग मुर्दे को घर के सामने पास ही गाड़ते हैं। क़ब्र के भीतर चावल, शराब, सुअर इत्यादि का मांस, कपड़ा और थाली आदि चीज़ें रख देते हैं। पाँचवें दिन बस्तीवालों को खाना देते हैं। क़ब्र को ऊपर से लीपते और उस पर बैठ कर खाना भी खाते हैं।

घर।

इनके घर एक जगह इकट्ठे बने होते हैं और फूस के होते हैं। वे सामने की तरफ़ से ऊंचे रहते हैं। बड़े आदमी घर के सामने लकड़ी की दो कैंचियां लगाते हैं। इससे देखते ही पहचान सकते हैं कि इस बस्ती में बड़े आदमी का घर कौन सा है। मकान में बैल, भैंस, हिरन इत्यादि के सिर ख़ूब सजा कर रक्खे जाते हैं।

खाना-पीना।

नागों की खराक चावल, मांस और शराब है। सिवा घोड़े के ये लोग सब कुछ खा जाते हैं। कौवा, सुअर, कुत्ता, बिल्ली, चूहा, शेर, बैल, भैंस, हाथी आदि इनसे कोई जानवर नहीं बचते। कुत्ते को ये लोग बड़ी ही रुचि से खाते हैं।

शराब ये लोग चावल या एक दूसरे क़िस्म के अनाज की बनाते हैं। उसे ये "मुम" कहते हैं। प्यास लगने पर ये लोग पानी नहीं पीते; हमेशा शराब ही पीते हैं। इसे ये मधु कहते हैं। इस शराब को ये लोग भैंस के सींग या बाँस के चोंगे से पीते हैं और तूंबे में भर कर जहां जाते हैं साथ ले जाते हैं। गाय, भैंस का दूध ये नहीं निकालते। कहते हैं कि दूध उसके बच्चे के लिए है। औरतें दूध पीना हराम समझती हैं। भात के साथ लाल मिरच की तरकारी ये लोग बहुत खाते हैं। पाव भर तक लाल मिरच एक नागा खा सकता है।

धर्म्म।

नागे कई देवताओं की पूजा करते हैं। इनका सबसे बड़ा देवता लागेग है। इस देवता को ये लोग परमेश्वर समझते हैं। दाँव, बंदूक़, साँप, शेर, बिजली, दीमक, वग़ैरह को ये जुदे जुदे देवता मानते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। देवताओं की मूर्तियां ये लोग पत्थर इत्यादि की नहीं रखते, केवल उनके नाम से उनकी पूजा करते हैं। महादेव पर ये लोग सफ़ेद मुरग़ी काट कर चढ़ाते हैं।

पतिव्रत धर्म्म।

नागों की स्त्रियों में व्यभिचार बहुत ही कम है। यदि व्यभिचार साबित हो जाय तो व्यभिचारी आदमी का सिर ये काट देते हैं, पर स्त्री का नहीं। व्यभिचारिणी स्त्री हज़ार में भी एक न मिलेगी। यदि कोई दूसरे की स्त्री को भगा ले जाय तो आज कल के क़ानून के मुताबिक़ लेजानेवाले को स्त्री की दुगुनी क़ीमत, अर्थात् दो भैंस की जगह चार भैंस इत्यादि, देनी पड़ती हैं। पर ऐसा बहुत ही कम होता है।

खेती।

खेती करने में ये लोग हल नहीं चलाते। बैल सिर्फ़ खाने ही के लिए पालते हैं। धान, कपास, पान, लाल मिरच इत्यादि ये अधिक बोते हैं। तीन चार मील तक खेती करने के लिए रोज़ जाते हैं।

बीमारी।

बीमार होने पर नागा लोग झाड़ फूंक बहुत करते हैं। पूजा भी करते हैं। दवाई नहीं खाते। पूजा में पूज्य देवता की रुचि के मुताबिक़ मुरग़ी, कुत्ता, सुअर इत्यादि उस पर चढ़ाते हैं। यदि कोई बीमार लड़का सूखता जाय और झाड़ फूंक या पूजा से अच्छा न हो तो उसे चूहा खिलाते हैं। उससे, ये लोग समझते हैं, कि ज़रूर ही फ़ायदा होता है।

सफ़र में खाना-पीना।

यदि नागे दो एक दिन के लिए बाहर जाते हैं तो उबाले हुए चावल, पत्तों की पुड़िया में बाँध लेते हैं। लाल मिरच और लहसुन के पत्तों की तरकारी की पुड़िया बना कर टोकरी में रख लेते हैं। शराब को तूंबे में भर लेते हैं। सबके पास दाँव रहता है। जहां भूख लगी वहीं शराब पीने के लिए बाँस का ग्लास या पत्तों का दोना बना लिया। जो चीज़ लौटने पर लेने की ज़रूरत होती है उसे रास्ते में किनारे पर किसी झाड़ी के भीतर छिपा देते हैं और उस जगह पहचान के लिए कोई निशान कर देते हैं। मर्द और औरत एक ही साथ बैठकर खाना खाते हैं।

सीतारामसिंह।

उत्तरी ध्रुव की यात्रा।

पाठक जानतेही हैं कि पृथ्वी गोल है। पृथ्वी के गोले की एक तरफ़ योरप, एशिया और आफ़्रिका की पुरानी दुनिया और दूसरी तरफ़ अमेरिका की नई दुनिया है। दोनों गोलार्द्धों का ठीक ऊपरी सिरा उत्तरी ध्रुव कहलाता है। अर्थात् उसकी स्थिति ठीक ९० अंश पर है। वहां हमेशा बर्फ़ जमा रहता है। बर्फ़ के भयङ्कर तूफ़ान आया करते हैं; समुद्र जमकर बर्फ़ की चट्टान की शकल का हो जाता है। अतएव मनुष्य के लिए ध्रुवप्रदेश प्रायः अगम्य है। परन्तु महा अध्यवसायशील योरप और अमेरिका वाले अगम्य को गम्य, अज्ञेय को ज्ञेय और अदृश्य को दृश्य करने के लिए भी यत्न करते हैं। १८२७ ईसवी से लेकर आजतक कितनेही उद्योगी आदमियों ने उत्तरी ध्रुव तक पहुँचने, वहाँ की सैर करने, वहाँ की स्थिति प्रत्यक्ष देखने का यत्न किया है। उन्हें इस काम में बहुत कुछ कामयाबी भी हुई है। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव की स्थिति प्रायः एक सी अनुमान की जाती है। अब तक लोगों का ध्यान विशेष करके उत्तरी ध्रुव तक पहुँचने ही की तरफ़ था; पर कुछ समय से दक्षिणी ध्रुव पर भी चढ़ाइयाँ शुरू हुई हैं। उनमें से एक का संक्षिप्त वृत्तान्त सरस्वती की किसी संख्या में प्रकाशित हो चुका है। आज दक्षिणी ध्रुव के विषय में नहीं, किन्तु उत्तरी ध्रुव पर की गई एक नवीन चढ़ाई का कुछ हाल पाठकों को सुनाना है।

१८९६ ईसवी में डाक्टर नानसेन ने उत्तरी ध्रुव पर चढ़ाई करके बहुत नाम पाया। वे ८६ अक्षांश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

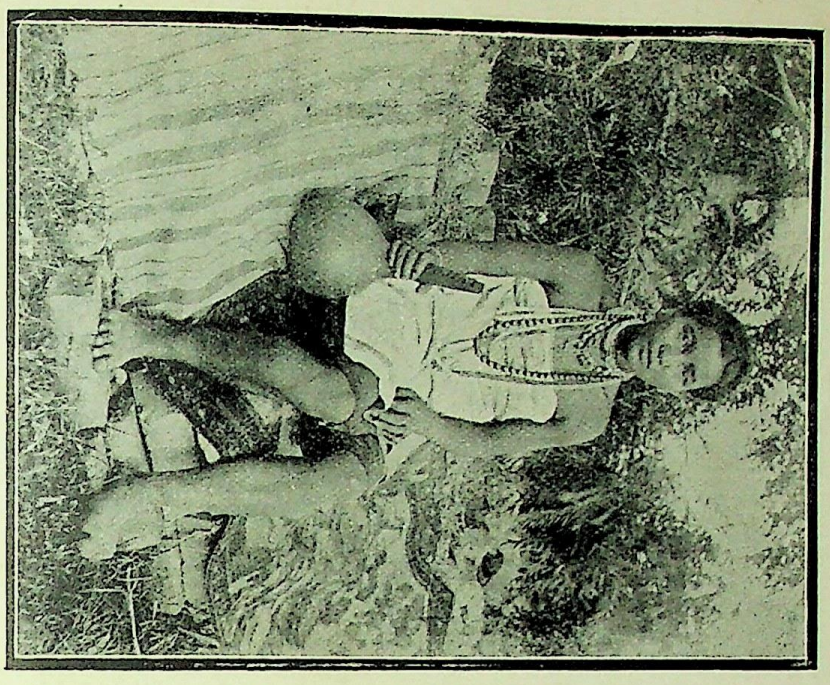

कूकी-जाति की नागा-नारी (बैठी हुई)

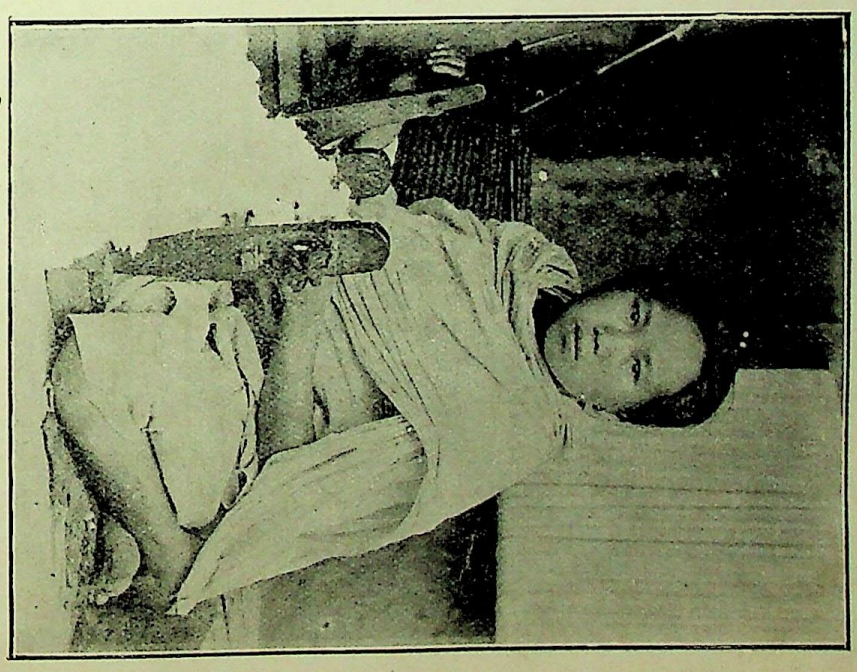

कपास ओटने में निरत मनीपुरी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

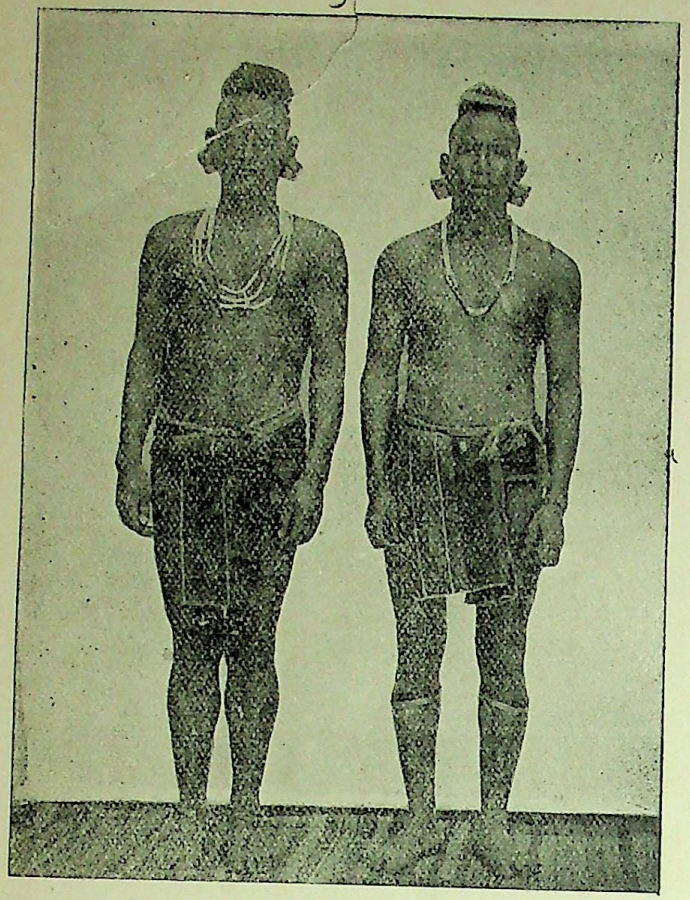

तंगकूल-जाति के नागा।

माऊ-थाने का प्रधान नागा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक पहुँच गये थे। उनकी चढ़ाई का सचित्र हाल सरस्वती में पाठक पढ़ चुके हैं। उत्तरी ध्रुव पर चढ़ाइयाँ तो कई हुई हैं; पर उनमें से ९ मुख्य हैं। इन चढ़ाइयों के नायकों के नाम, चढ़ाई का साल और उसकी अन्तिम सीमा के अक्षांश हम नीचे देते हैं:—

नाम	सन्	अक्षांश
डब्लू० ई० पारी	१८२७	८२. ४५
सी० एफ़० हाल	१८७०	८२. ११
जूलियस पेयर	१८७४	८२. ५
सी० एस० नेयर्स	१८७६	८३. २०
ए० डब्लू० ग्रीली	१८८२	८३. २४
वाल्टर वेलमैन	१८८९	८२. ००
एफ़ नानसेन	१८९६	८६. १४
डयूक आफ़ अबरूज़ी	१९००	८६. ३४
राबर्ट ई० पीरी	१९०२	८४. १७

इससे पाठकों को मालूम होगा कि नानसेन ८६ अंश १४ मिनिट तक ही जा सके थे; पर डयूक आफ़ अबरूज़ी उनके बाद, उनसे भी दूर, अर्थात् ८६ अंश ३४ मिनिट तक पहुँचे थे। अब एक अमेरिकन साहब ने इन डयूक महाशय को भी मात दिया है। आपका नाम है कमांडर पीरी। उत्तरी ध्रुव पर चढ़ाई करने के लिए आप १६ जुलाई १९०५ को उत्तरी अमेरिका के न्यूयार्क शहर से रवाना हुए थे। कोई डेढ़ वर्ष बाद आपकी चढ़ाई का फल प्रकाशित हुआ है। उससे मालूम हुआ है कि आप ८७ अंश ६ मिनिट तक गये। वहां से आगे नहीं जा सके। अर्थात् उत्तरी ध्रुव से कुछ कम ३ अंश इधर ही रह गये। यही बहुत समझा गया है। लोग धीरे धीरे आगे ही बढ़ रहे हैं। बहुत सम्भव है, किसी दिन कोई ९० अंश तक पहुँच कर ध्रुव के दर्शनों से कृतकृत्य हो आवे।

कमांडर पीरी ने उत्तरी ध्रुव के पास बर्फ़ से भरे हुए समुद्र में चलने लायक़ एक ख़ास तरह का जहाज़—ध्रुवांकश—बनवाया। १६ जुलाई १९०५ को वह जहाज़ न्यूयार्क से चला। उस पर सब मिलकर २० आदमी थे। वे सब कप्तान बार्टलेट की निगरानी में थे। पीरी साहब जहाज़ के साथ नहीं रवाना हुए। उत्तरी अमेरिका के ठेठ पूर्व, समुद्र से सटे हुए, नोवा स्कोटिया के ब्रेटन नामक अन्तरीप में सिडनी एक बन्दरगाह है। वहीं जाकर कमांडर पीरी जहाज़ पर सवार हुए। यहां जहाज़ ने ख़ूब कोयला लिया। खाने पीने का भी सामान यथेष्ट लादा। २६ जुलाई को जहाज़ ने सिडनी से लंगर उठाया। जहाज़ का नाम है "रूज़वेल्ट"। अमेरिका की संयुक्त रियासतों के महाराज, सभापति रूज़वेल्ट, के नामानुसार इस का नाम रक्खा गया है। २९ जुलाई को यह जहाज़ "डोमिनोरन" नामक बन्दरगाह में पहुँचा। यह जगह लबराडोर नाम के सूबे में है। यह सूबा उत्तरी अमेरिका के पूर्व है और अँगरेज़ों के न्यू फौंडलैंड टापू के अधीन है। यहां से वह ग्रीनलैंड की तरफ, उत्तर को, रवाना हुआ। ७ अगस्त को वह ग्रीनलैंड के यार्क नामक अन्तरीप में पहुँचा और १६ को एटा नामक बन्दरगाह में। इस जहाज़ के साथ इसका एक मददगार भी था। उसका नाम है "यरिक"। यह जहाज़ ग्रीनलैंड के कितने ही स्थानों में वहां के निवासियों तथा कुत्तों को लेने के लिए घूमता फिरा। जब यह काम हो चुका तब १३ अगस्त को उसने लाये हुए कुत्तों और आदमियों को "रूज़वेल्ट" के हवाले किया। एटे में रूज़वेल्ट कई दिन तक ठहरा। अपने प्रत्येक पुर्ज़े की परीक्षा करके उन्हें ख़ूब साफ़ किया। जहां तक कोयला लाद सका "यरिक" से लिया। क्योंकि अब आगे और कोयला मिलने की आशा न थी। २०० कुत्ते और यस्किमो नामक जाति के २३ आदमी भी "यरिक" से उसने लिए। यस्किमो जाति के लोग बर्फ़िस्तानी देशों और टापुओं में रहते हैं। बर्फ़ में रहने का उन्हें जन्म से ही अभ्यास रहता है। वे उत्तरीध्रुव के आस पास के प्रदेश से ख़ूब परिचित होते हैं। इसीलिए कमांडर पीरी ने उनको अपने साथ ले जाने की ज़रूरत समझी।

बर्फ़ में डूबे हुए उत्तरी ध्रुव के पास वाले प्रदेश में, गतवर्ष, पीरी साहब ने जो अनुभव प्राप्त किया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जो कुछ उन पर बीती, उसका संक्षिप्त वृत्तान्त उन्होंने २ नवम्बर १९०६ को लिख कर रवाना किया है। लबराडोर के होपडेल नामक स्थान से उन्होंने यह वृत्तान्त न्यूयार्क को भेजा है। उसका मतलब हम थोड़े में नीचे देते हैं :—

उत्तरी समुद्र के किनारे, ग्रांटरोड नामक भू-प्रदेश के पास "रूज़वेल्ट" ठहरा। वहीं उसने जाड़ा बिताया। फ़ेब्रुअरी में हम लोग, बर्फ़ पर चलनेवाली स्लेज नामक छोटी छोटी गाड़ियां लेकर उत्तर की ओर रवाना हुए। हेकला और कोलम्बिया के रास्ते हम आगे बढ़े। ८४ और ८५ अक्षांशों के बीच हमें खुला हुआ समुद्र मिला। उस पर बर्फ़ जमा हुआ न था। तूफ़ान ने जमे हुए बर्फ़ को तोड़ फोड़ डाला; हमारे खाने पीने की चीज़ों को बरबाद कर दिया; हमारी टोली के जो लोग पीछे थे उनका लगाव काट दिया। इस कारण आगे बढ़ने में बहुत देरी हुई। किसी तरह हम लोग ८७ अक्षांश ६ मिनिट तक पहुँचे। आगे बढ़ना असम्भव हो गया। लाचार लौटे। लौटती बार ८ कुत्ते मारकर खाने पड़े। कुछ दिनों में फिर खुला हुआ समुद्र मिला। उसमें पानी भरा था। राम राम करके ग्रीनलैंड के उत्तरी किनारे पर पहुँचे। राह में अनेक आफ़तों का सामना करना पड़ा। बड़ी बड़ी मुसीबतें झेलने पर ग्रीनलैंड के सामुद्रिक किनारे के दर्शन हुए। यहां के कई बर्फ़िस्तानी बैल मार कर खाये। किसी तरह किनारे किनारे चल कर जहाज़ के पास पहुँचे। हमारी टोली के जिन लोगों का साथ छूट गया था उनमें से कुछ को तूफ़ान, ग्रीनलैंड के उत्तरी किनारे पर ले गया। कुछ आदमी एक तरफ़ गये, कुछ दूसरी तरफ़। एक टोली को मैंने भूखों मरते पाया और उसके प्राण बचाये। एक हफ़्ता "रूज़वेल्ट" पर रहकर हम लोग कुछ तरो ताज़ा हुए। फिर "स्लेज" गाड़ियों पर सवार हुए और पश्चिम की तरफ़ चले। ग्रांटलैंड नामक भूभाग के सारे उत्तरी किनारे को देख डाला। इतनी दूर चले गये कि उस किनारे की दूसरी तरफ़ जा पहुँचे। घर लौटती बार बर्फ़ और तूफ़ान का लगातार सामना करना पड़ा। "रूज़वेल्ट" तूफ़ानों से बड़ी बहादुरी से लड़ता आया। बर्फ़ से लड़ने में "रूज़वेल्ट" बड़ा बहादुर है। इस चढ़ाई में न कोई आदमी मरा और न कोई बीमार ही हुआ।

यह पीरी साहब की संक्षिप्त चिट्ठी है। आप को आशा थी कि आप उत्तरी ध्रुव तक ज़रूर पहुँच जायँगे। पर नहीं पहुँच सके। बर्फ़ के तूफ़ानों ने उन्हें ८७ अक्षांश से आगे नहीं बढ़ने दिया। तिसपर भी वे इतनी दूर तक गये जितनी दूर आज तक कोई नहीं गया था। पीरी साहब अमेरिका के रहनेवाले हैं। अतएव उत्तरी ध्रुव की सैर करनेवालों में, दूरी के हिसाब से, इस समय अमेरिका का नम्बर सबसे ऊंचा है। पीरी साहब का इरादा था कि सबाइन अन्तरीप से ३५० मील उत्तर वे अपना डेरा रक्खेंगे। वहां से उत्तरी ध्रुव ५०० मील है। राह में बर्फ़ के मैदान का विकट बियाबान है। इसे कोई डेढ़ महीने में पार कर जाने की उन्हें उम्मीद थी। परन्तु तूफ़ानों की प्रचण्डता ने उनकी आशा नहीं पूरी होने दी।

१८७६ ईसवी में नेयर नाम के जो साहब उत्तरी ध्रुव देखने के इरादे से ८३ अक्षांश तक गयेथे, उन्हों ने लौट कर बतलाया था, कि ग्रांडलैंड नामक भूभाग के उत्तर, ३० मील की लम्बाई चौड़ाई में, समुद्र बिलकुल बर्फ़ से जमा हुआ है। आपने राय दी थी कि यह बर्फ़ ५० फ़ीट तक गहरा था। तब से लोगों ने यह अनुमान किया था कि इस तरह का समुद्र बहुत करके ध्रुव के पास तक गया होगा और वह बहुत गहरा न होगा। उस पर बर्फ़ की बहुत मोटी तह ठेठ नीचे तक गई होगी। लोगों ने समझा था कि यह बर्फ़ हजारों वर्ष का पुराना होगा और पत्थर की तरह अपनी जगह पर जम गया होगा। अतएव इन चट्टानों पर "स्लेज" गाड़ियां आसानी से चल सकेंगी। परन्तु कमांडर पीरी ने इस अनुमान को ग़लत साबित कर दिया। पीरी ने यथासम्भव "स्लेज" गाड़ियों से भी काम लिया और जहाज़ से भी। यदि बर्फ़ समुद्र के तल तक पत्थर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

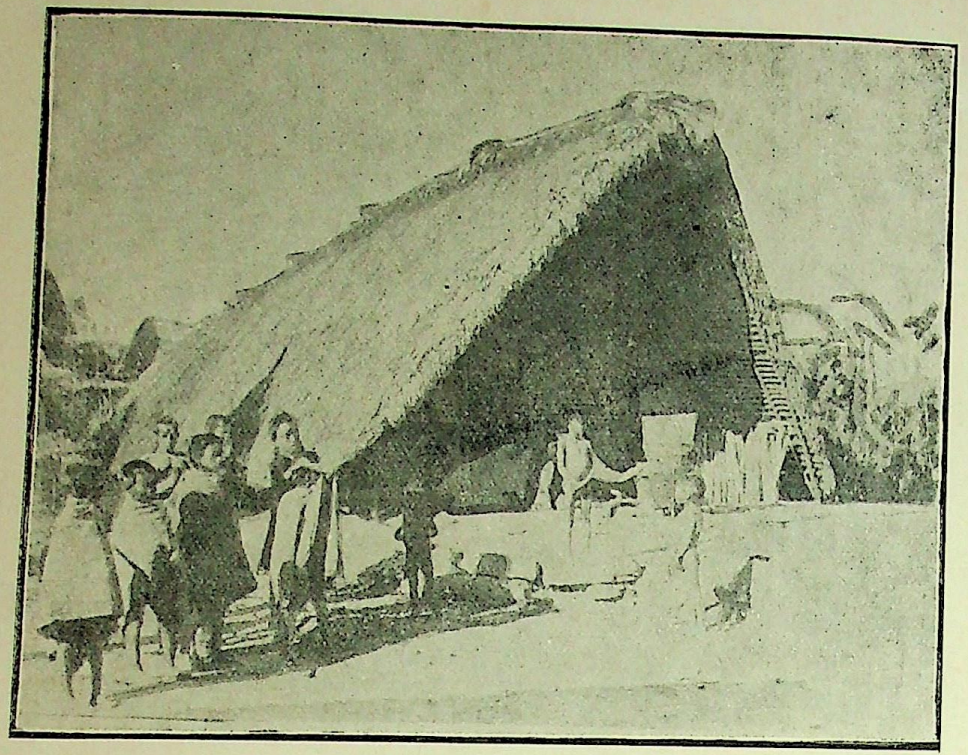

नागों का घर, नमूना २।

अपने घर के सामने खड़ा हुआ
माऊ-थाने का प्रधान नागा,
स्त्री-सहित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तरह जमा होता तो वह तूफ़ानों से न टूटता और पीरी की इच्छा के विरुद्ध उनके जहाज़ को ग्रीनलैंड की तरफ़, दक्षिण-पूर्व की ओर, न बहा ले जाता। पीरी ने समुद्र में बर्फ़ जमा ज़रूर पाया; पर वह पुराना न था। इसीसे तूफ़ान के वेग से वह टूट गया; पानी के ऊपर बहने लगा; और अपने साथ "रूज़वेल्ट को भी ग्रीनलैंड की तरफ़ बहा ले गया। अतएव "स्लेज" गाड़ियों पर सवार होकर ध्रुव तक पहुँचने की आशा व्यर्थ है।

अनेक विघ्न बाधाओं को टालकर, और "स्लेज" गाड़ियों पर दूर तक जाने में असमर्थ होकर भी, पीरी साहब ८७ अक्षांश से भी कुछ दूर आगे बढ़ सके, यही ग़नीमत समझनी चाहिए। आपकी यात्रा का सविस्तर वृत्तान्त प्रकाशित होने पर कितनी ही अद्भुत अद्भुत बातों के मालूम होने की आशा है।

कविवर माघ का प्रभात-वर्णन।

कृतधवलिमभेदैः कुङ्कुमेनेव किञ्चि-
न्मलयरुहरजोभिर्भूषयन् पश्चिमाशाम्।
हिमरुचिररुणिम्ना राजते रज्यमानै-
र्जरठकमलकन्दच्छेदगौरैर्मयूखैः ॥ १ ॥

अपनी प्रियतमा पश्चिम-दिशा को, सफ़ेद चन्दन की धूलि के द्वारा मानो कुङ्कुम से विभूषित करता हुआ, यह चन्द्रमा, पके कमलनाल के टुकड़ों के समान अपनी गौर-वर्ण किरणों से, प्रातःकाल, क्याही शोभायमान हो रहा है।

मदरुचिमरुणेनोद्गच्छता लम्भितस्य
त्यजत इव चिराय स्थायिनीमाशु लज्जाम्।
वसनमिव मुखस्य संस्यते सम्प्रतीदं,
सितकरकरजालं वासवाशायुवत्याः ॥ २ ॥

प्रातःकाल, आकाश में, जो यह सुर्ख़ी छाई हुई है वह सूर्योदय की सुर्ख़ी नहीं है; किन्तु पूर्वदिशा-रूपिणी स्त्री ने, चन्द्रमा के श्वेत-किरण-रूपी वस्त्र को, निर्लज्जता-पूर्वक मानों अपने मुँह से गिरा दिया है। अतएव पूर्व की ओर जो यह सुर्ख़ी है वह घूँघट से बाहर हुआ पूर्वदिशा का अरुणाभ मुख है।

नवकुमुदवनश्रीहासकेलिप्रसङ्गा-
दधिकरुचिरशेषामप्युषाङ्कागारित्वा।
अयमपरादिशोऽङ्के मुञ्चति स्रस्तहस्तः
शिशयिषुरिव पाण्डुं म्लानमात्मानमिन्दुः ॥ ३ ॥

खिली हुई नवीन कुमुदिनियों के साथ क्रीड़ा करते रहने के कारण, रात भर का जगा और थका हुआ, यह चन्द्रमा, शयन करने की इच्छा से, पश्चिम-दिशारूपिणी स्त्री के गोद में, अपने पाण्डुवर्ण मलीन बिम्ब को रख रहा है।

सपदि कुमुदनीभिर्मीलितं हा! चपाऽपि,
क्षयमगमदपेतास्तारकास्ताः समस्ताः।
इति दयितकलत्रश्चिन्तयन्नङ्कमिन्दु-
र्वहति कृतमशेषं भ्रष्टशोभं शुचेव ॥ ४ ॥

हा! बड़े खेद की बात है कि कुमुदिनियाँ (जो पहले खिल रही थीं) अब मुँद गईं! रात्रि का नाश हो गया!! तारागण भी सब छिप गये!!! मालूम होता है इसी सोच से यह कुटुम्बवत्सल चन्द्रमा अत्यन्त दुबला और बे-रौनक़ हो गया है।

व्रजति विषयमक्ष्णामंशुमाली न यावत्,
तिमिरमखिलमस्तन्तावदेवाऽरुणेन।
परपरिभवितेजस्तन्वतामाशु कर्त्तुं
प्रभवति हि विपक्षोच्छेदमग्रेसरोऽपि ॥ ५ ॥

सूर्य के उदय होने से पहले ही सूर्य के सारथी अरुण ने सारा अन्धकार दूर कर दिया। करना हीं चाहिए। वैरियों के नष्ट करनेवाले स्वामियों के आगे चलने वाला सेवक भी, शत्रुओं को मारभगाने में समर्थ होता है। भला जिसके ऊपर महातेजस्वियों का वरद हस्त हो, वह क्यों न शत्रुओं को मार भगावे?

अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा;
बहुलमधुपमालाकज्जलेन्दीवराक्षी।
अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती;
रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव ॥ ६ ॥

अरुणकमलरूपी कोमल हाथ-पैरवाली, मधुप-मालारूपी कज्जलयुक्त सरोज-नेत्रवाली, पक्षियों के कलरवरूपी रोदनवाली, यह प्रभात-वेला, सद्योजात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालिका की तरह, रजनीरूपिणी अपनी माता की तरफ़ लपकी आरही है।

नवकनकपिशङ्गं वासराणां विधातुः
ककुभि कुलिशपाणेर्भाति भासां वितानम्।
जनितभुवनदाहारम्भमम्भांसि दग्ध्वा
ज्वलितमिव महाब्धेरूर्ध्वमौर्वानलार्चिः ॥७॥

दिनकर—सूर्य—की प्रभाओं का, नवीन सुवर्ण के समान चमकीला किरणजाल, पूर्व-दिशा में, ख़ूब शोभा दे रहा है। ऐसा मालूम होता है मानों महा-सागर के पानी को जला कर, सारे संसार को भस्म करने की इच्छा से, बलता हुआ वाडवाग्नि समुद्र से ऊपर को उठ रहा है।

विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः
कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः।
कृतचपलविहङ्गालापकोलाहलाभि-
र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः ॥ ८ ॥

जिस तरह बहुत गहरे कुँए से, बड़ी लम्बी रस्सी में बँधे हुए भारी घड़े को, पानी भरनेवाली स्त्रियाँ ऊपर खींचती हैं और खींचते समय "आगया है", "खींच लिया है", "थोड़ा ही रह गया है" इत्यादि शब्द करती हैं, उसी तरह, चारों ओर पक्षियों के कोलाहल से पूर्ण दिशारूपी स्त्रियाँ, दूर तक फैली हुई किरण-रूपी रस्सियों से सूर्यरूपी घड़े को बाँध कर, बड़े भारी कलश की तरह, समुद्र के भीतर से खींच कर ऊपर निकाल रही हैं।

पयसि सलिलराशेर्नक्तमन्तर्निमग्नः
स्फुटमनिशमतापि ज्वालया वाडवाग्नेः।
यदयमिदमिदानीमङ्गमुद्यन्दधाति
ज्वलितखदिरकाष्ठाङ्गारगौरं विवस्वान् ॥ ९ ॥

यह सूर्य रात भर समुद्र के भीतर डूबा हुआ था। वहाँ यह वाडवानल की ज्वालाओं से ज़रूर ख़ूब तपाया गया है। इसीसे तो यह, इस समय, खैर की लकड़ी के जलते हुए अँगारे के समान लाल लाल दिखाई देता है।

अतुहिनरुचिनाऽसौ केवलन्नोदयाद्रिः
क्षणमुपरि गतेन क्ष्माभृतः सर्व एव।
नवकरनिकरेण स्पष्टबन्धूकसून-
स्तबकरचितमेते शेखरं बिभ्रतीव ॥ १० ॥

ऊपर को उठते हुए सूर्य की नवीन-किरणों के पड़ने से केवल उदयाचल ही नहीं, किन्तु समस्त पर्वतगण, खिले हुए बन्धूक-पुष्पों के गूच्छों की तरह रंगीन शिखरवाले हो गये हैं।

उदयशिखरिशृङ्गप्राङ्गणेष्वेव रिङ्गन्
सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः।
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः
परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः ॥ ११ ॥

उदयाचल के शिखररूपी आँगन में फिरता हुआ, और कमलरूपी मुख के विकास के बहाने हँसती हुई पद्मिनिओं से देखा गया, यह बाल-सूर्य, पक्षियों के रवरूपी आह्वान को सुन, मानों आकाश के गोद में गिर रहा है।

अवतमसभिदायै भास्वताभ्युद्गतेन
प्रसभमुडुगणोऽसौ दर्शनीयोऽप्यपास्तः।
निरसितुमरिमिच्छोर्यें तदीयाश्रयेण
श्रियमधिगतवन्तस्तेऽपि हन्तव्यपक्षे ॥ १२ ॥

अन्धकार को दूर करने के लिए उदय होने वाले सूर्य ने, यह दर्शनीय तारागण भी ज़बरदस्ती नष्ट कर डाला। ठीक है। शत्रु का मूलोच्छेद करनेवाले की दृष्टि में, शत्रु के सहारे रहनेवाले और लोग भी वध्य मालूम होते हैं। फिर भला अन्धकार में प्रकाशित होनेवाले तारागण, अन्धकार के शत्रु सूर्य के उदय होने पर, कैसे बच सकते थे?

युगपदयुगसाहस्तुल्यसंख्यैर्मयूखै-
र्दशशतदलभेदङ्क्रीतुकेनाशु कृत्वा।
श्रियमलिकुलगीतैर्लालिताम्पङ्कजान्त-
र्भवनमधिशयानामादरात्पश्यतीव ॥ १३ ॥

यह सूर्य अपनी हज़ार किरणों से एक दम हज़ार दलों (कमलों) को खिलाकर, भ्रमरावलियों के गुंजार-गीतों से बढ़ी हुई उनकी भीतरी शोभा को बड़े आदर से देख रहा है।

अदयमिव कराग्रैरेष निष्पीड्य सद्यः
शशधरमहरादौ रागवानुष्णरश्मिः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवक्रिरति नितान्तक्लान्तिनिर्यासमच्द-
स्रुतनवजलपारुडम्पुण्डरीकोदरेषु ॥ १४ ॥

यह सूर्य, प्रभातकाल में, अपनी किरणों से चन्द्रमा को बड़ी निर्दयता से निष्पीडित करके, आकाशपतित नवीन जल-बिन्दु की तरह श्वेत रंगवाली उसकी कान्ति को निचोड़, उसे श्वेत कमलों के भीतर भर रहा है। अर्थात् शत्रु की शोभा-सम्पत्ति को छीन कर मित्र को दे रहा है।

प्रविकसति चिराय द्योतिताशेषलोके
दशशतकरमूर्त्तावक्षिणीव द्वितीये ।
सितकरवपुषाऽसौ लक्ष्यते सम्प्रति द्यौ-
र्विगलितकिरणेन व्यङ्गितैकेक्षणेव ॥ १५ ॥

सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों आकाश की मानों आँखें हैं। परन्तु, प्रभात होने पर चन्द्रमा इतना कृश और फीका पड़ गया है कि आकाश मानों इस समय काना सा हो रहा है। इस समय उसकी दोनों आँखें एक सी नहीं रहीं।

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्ड-
न्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमाँश्चक्रवाकः ।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं ;
हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः ॥ १६ ॥

कुमुदवन शोभाहीन हो गया और कमलवन शोभावान्। उल्लू पक्षी का आनन्द जाता रहा (वह अब शोकाकुल हो रहा है) और चकवा प्रसन्न होगया। सूर्य का उदय हुआ और चन्द्रमा का अस्त। अहो! दुष्ट-दैव-चेष्टित कर्मों की बड़ी विचित्र गति है! जो समय एक को दुःखदायी होता है वही दूसरे को सुखदायी।

क्षणमतुहिनधाम्नि प्रोष्य भूयःपुरस्ता-
दुपगतवति पाणिग्राहवद्दिग्वधूनाम् ।
द्रुततरमुपयाति स्रंसमानांशुकोऽसा-
वुपपतिरिव नीचैः पश्चिमान्तेन चन्द्रः ॥ १७ ॥

दिग्वधुओं के पति-समान सूर्य को आता हुआ देख, अपनी किरणों को नीचे झुकाये हुए, उपपति की तरह, यह चन्द्रमा पश्चिम दिशा को भागा जारहा है!

प्रलयमखिलतारालोकमह्राय नीत्वा
श्रियमनतिशयश्रीः सानुरागान्धकारः ।
गगनसलिलराशिं रात्रिकल्पावसाने
मधुरिपुरिव भास्वानेष एकोऽधिशेते ॥ १८ ॥

रात्रिरूप कल्पान्त में, यह महामहिम सूर्य, अपनी इच्छा से समस्त तारालोक का प्रलय करके, गगनरूपी समुद्र में, नारायण की तरह, अकेला सो रहा है।

रामजीलाल शर्म्मा ।

पुस्तक-परीक्षा ।

श्रीजैनयशोविजयमाला । एक समय था जब जैन लोगों में विद्या का बड़ा प्रचार था। इस धर्म्म के अनुयायियों में अनेक प्रतिभाशाली उद्भट विद्वान् हो गये हैं। कितने ग्रन्थरत्न उत्पन्न करके उन्होंने संस्कृत-साहित्य के कोष को परिपूरित किया, इसका इस समय पता लगाना कठिन है। सहस्रशः ग्रन्थ-रत्न लोप हो गये। तिस पर भी अभी सहस्रशः ग्रन्थ जहाँ तहाँ पड़े हुए हैं। जैन-पण्डितों के बनाये हुए दोचार काव्य जो काव्यमाला में प्रकाशित हुए हैं उन्हें देखकर उनके कर्त्ता कवियों की अद्भुत कविता-शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। काव्यही के नहीं, और भी अनेक विषयों के ऐसे कितनेहीं ग्रन्थ हैं जिनके नाम तो कभी कभी सुनने में आते हैं, पर वे देखने को नहीं मिलते। बड़े हर्ष की बात है कि जैन-धर्म्मावलम्बी कतिपय सज्जन इन ग्रन्थों के पुनरुद्धार पर बद्धपरिकर हुए हैं। जैन-पण्डितों के बनाये हुए कई ग्रन्थ बंबई से प्रकाशित हो चुके हैं और शायद अब तक उनका प्रकाशन जारी है। दो तीन वर्ष से बनारस में भी अब जैन-ग्रन्थ-प्रकाशन का काम शुरू हो गया है। श्रीयशोविजय-जैनपाठशाला के अधिकारी और प्रबन्धकर्त्ता इन प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थों को प्रकाशित कर रहे हैं। सात आठ ग्रन्थ आजतक निकल चुके हैं और कितनेहीं अभी निकलने को हैं। ये ग्रन्थ इस पाठशाला के मैनेजर को लिखने से मिलते हैं। ग्रन्थों की छपाई बंबई के निर्णयसागर प्रेस की छपाई से किसी बात में कम नहीं। काग़ज़ उत्तम, टाइप उत्तम, छापने का क्रम उत्तम। तिसपर भी मूल्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ा। पूर्वोक्त पाठशाला के मैनेजर ने ८ ग्रन्थ हमारे पास भेजे हैं। उनका संक्षिप्त नाम-निर्देश आदि हम नीचे देते हैं। जी तो चाहता है कि हम सब की विस्तृत समालोचना करें, पर खेद है, सरस्वती में इतना स्थान नहीं।

नम्बर १—प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कार। यह ग्रन्थ श्रीवादिदेवसूरि-विरचित है। ग्रन्थकार विक्रम की बारहवीं शताब्दी के हैं। ग्रन्थ न्यायशास्त्र-सम्बन्धी है। सब ८ परिच्छेद हैं। आरम्भ में एक छोटी सी, पर उत्तम, भूमिका है। मूल्य आठ आने। यशोविजय-माला के पाँचवें नम्बर में इसी ग्रन्थ के पहले दो परिच्छेदों की तीन व्याख्यायें हैं। यह ग्रन्थ बड़ा है और एक रुपये में बिकता है। तीसरा ग्रन्थ है सिद्ध हेमशब्दानुशासन। यह व्याकरण का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह प्रायः अप्राप्य था। केवल नाम ही इसका सुनने को मिलता था। पर जैनयशोविजय-पाठशाला की बदौलत, अब यह सुलभ हो गया। इसकी जिल्द बड़ी मनोहर है। छपाई और काग़ज़ भी उत्तम है। ऊपर बड़े टाइप में मूल सूत्र, नीचे छोटे टाइप में उसकी वृत्ति है। वृत्ति की भाषा काशिका की तरह की सरल है। इसे पढ़ने से व्याकरण का ज्ञान सहज में हो सकता है। इस व्याकरण के कर्त्ता हेमचन्द्राचार्य्य, जैन-विद्वानों में शिरोमणि समझे जाते हैं। इनके बनाये कोई २० ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। यह पुस्तक कोई ६०० पृष्ठों में समाप्त हुई है और २॥) में मिलती है। इस व्याकरण का केवल सूत्रपाठ अलग भी मिलता है। वह इस ग्रन्थ-माला का छठा ग्रन्थ है दूसरा ग्रन्थ इस माला का है हैमलिङ्गानुशासन। यह भी इन्हीं हेमचन्द्राचार्य्य कृत है। संस्कृत का लिङ्ग-ज्ञान बहुत कठिन विषय है। पर इस पुस्तक के पढ़ने से वह स्वल्पसाध्य हो सकता है। ऊपर श्लोक हैं, नीचे विस्तृत टीका। टीका में श्लोकों का अर्थ सोदाहरण समझाया गया है। मूल्य ५ आने। चौथा ग्रन्थ है गुर्वावली। इसमें जैन-गुरुओं का पद्यात्मक संक्षिप्त चरित है। इसे इतिहास कहना चाहिए। हर एक गुरु का वर्णन उनके स्थिति-समय के सहित दिया हुआ है। मूल्य ८ आने। सातवाँ ग्रन्थ है जैनस्तोत्र-संग्रह का प्रथम भाग। बड़ेही उत्तम स्तोत्रों का इस में संग्रह है। मूल्य ६ आने। नवाँ ग्रन्थ, इस स्तोत्र संग्रह का दूसरा भाग है। इसमें पं० वृद्धिचन्द्र जी का एक चित्र भी है। पुस्तक में २५६ पृष्ठ हैं। जिल्द बँधी हुई है। मूल्य १) रुपया। इन ग्रन्थों में नम्बर २, ३ और ५ बंबई के सेठ चुन्नीलाल पन्नालाल की सहायता से प्रकाशित किये गये हैं और नम्बर १ उनकी विधवा स्त्री की सहायता से। संस्कृत जानने वालों को चाहिए कि वे इन ग्रन्थों को अवश्य देखें।

मनोरञ्जक श्लोक।

मातर्भारतभूमि! सर्वसुकृतस्याभूः प्रसूतिः पुरा
त्वन्नामाऽखिलविश्वविश्रुतमभूद्विद्यायशोभिस्तदा।
यातास्ते दिवसास्तथा सुखमयाः स्मृत्वाऽम्ब! तान्साम्प्रतं
हा! हा! कस्य न मानसं वद महाशोकाम्बुधौ मज्जति?

[पद्यमाला।

हे माँ भारतभूमि! एक समय था जब तू सारे सुकृतों की—सारी प्रशंसनीय बातों की—जननी थी। तेरे विद्या आदि दिव्य गुणों के कारण फैले हुए तेरे यश ने तेरा नाम समग्र संसार में प्रसिद्ध कर दिया था। परन्तु, हाय हाय! अब वे तेरे सुखमय दिन नहीं रहे। इस समय उनका स्मरण होते ही कौन ऐसा मनुष्य है जिसका चित्त महाशोकसागर में न डूब जाता हो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती।

भाग ८] मार्च, १९०७ [संख्या ३

चित्र-दर्शन।

राम, लक्ष्मण, जानकी वन को जा रहे हैं। गङ्गा के किनारे पहुँच गये हैं। पार उतरना है। पास ही घाट है। नाव लगी हुई है। रामचन्द्र ने नाव के मालिक मल्लाह से पार उतारने को कहा। जानकी रामचन्द्र के पास संकुचित खड़ी हैं। सिर उनका रामचन्द्र के कन्धे से लगा हुआ है। लक्ष्मण अलग खड़े हैं। मल्लाह रामचन्द्र को नाव पर क़दम नहीं रखने देता। उसने सुन रक्खा है कि रामचन्द्र के पद-पद्म की धूल के स्पर्श से पत्थर, स्त्री हो जाता है। नाव काठ की है। वह पत्थर से बहुत नरम है। क्या आश्चर्य्य जो नाव की भी स्त्री हो जाय और उस बेचारे के बाल बच्चे भूखों मरें। क्योंकि एक मात्र अपनी नाव ही की आमदनी से वह बाल बच्चों को पालता है। इसलिए वह रामचन्द्र के पैर धोकर धूल को साफ़ कर देना चाहता है। इस धूल ही में काठ-पत्थर को आदमी बना डालने की अद्भुत शक्ति है। इसी से वह बड़े भक्तिभाव से कह रहा है कि ये अपने पैर धो लेने दीजिए। तब आप नाव पर सवार हूजिए। अजीब दृश्य है! अद्भुत भाव है! अश्रुतपूर्व रसोद्रेक है! विश्वास कीजिए, यह नोट लिखने में हमारी दोनों आँखों से आँसू बह रहे हैं। काग़ज़ भीग रहा है। इस दृश्य पर तुलसी-दास ने रामायण में इस प्रकार कविता की है—

माँगी नाव न केवट आना।
कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन-कमल रज कहँ सब कहई।
मानुष-करनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई।
पाहन तेँ न काठ कठिनाई॥
तरनिउ मुनि-घरनी होइ जाई।
बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥
यहि प्रतिपालउँ सब परिवारू।
नहिँ जानउँ कछु अउर कबारू॥
जो प्रभु अवसि पार गा चहहू।
मोहिँ पद-पदुम पखारन कहहू॥
पद-पदुम धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहउँ।
मोहिँ राम राउरि आन दसरथ-सपथ सब साँची कहउँ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरु तीर मारइँ लषन पै जब लगि न पाय पखारिहउँ।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहउँ॥

सुनि केवट के बैन, प्रेम-लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुणा-ऐन, चितइ जानकी-लषन तन॥

कृपासिन्धु बोले मुसुकाई।
सोइ करु जेहि तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाय पखारू।
होत बिलम्ब उतारहु पारू॥

"चितइ जानकी-लषन तन"—कैसी अनूठी उक्ति है! इस "चितइ" में ग़ज़ब का भाव भरा हुआ है। इससे वह ध्वनि निकलती है जिसका अनुभव एकमात्र सहृदयों ही का हृदय कर सकता है। इस दृश्य का जैसा मर्म्मस्पर्शी वर्णन तुलसीदास ने किया है वैसा ही मर्म्मस्पर्शी चित्र प्रसिद्ध चित्रकार श्रीमान् धुरन्धर ने, सरस्वती के लिए, बनाया है। वह इस संख्या में आज पाठकों को भेंट किया जाता है। कवि और चित्रकार का काम प्रायः एक सा है। एक शब्द द्वारा मनोभाव व्यक्त करता है। दूसरा चित्र द्वारा। कवि और चित्रकार दोनों की कृति एकत्र है। पाठक दोनों का मिलान कर देखें।

विविध विषय।

सूर्य का जितना प्रकाश रोज़ पड़ता है उतनाही यदि पड़ता गया तो उसका आकार प्रतिदिन छोटा होता जायगा। ज्योतिषियों का यही सिद्धान्त है। उन्होंने हिसाब लगाया है कि हर चौबीस घंटे में सूर्य का आकार १६ इंच कम हो जाता है। एक करोड़ वर्ष पहले सूर्य का आकार आज कल की अपेक्षा दस लाख गुना बड़ा था! संसार में जितना कोयला है वह यदि सब एकदम जला दिया जाय तो भी उसकी गरमी सूर्य की गरमी से एक लाख अंश से भी कम ही रहे। सूर्य के बराबर गरमी पैदा करने के लिए पृथ्वी के ऐसे कोई आठ हज़ार कोयले के ढेरों को जलाना चाहिए! सूर्य की इस गरमी का कहीं ठिकाना है। पर विद्वानों को डर है कि किसी दिन इस अनन्त उष्णता का भी अत्यन्ताभाव हो जायगा और सूर्य के ठंढे हो जाने से कोई जीव-जन्तु जीते न रहेंगे।

* * *

उन्नीसवीं सदी में मोज़ाफाँटे नाम का एक मनुष्य योरप में हो गया है। उसे साठ सत्तर भाषायें आती थीं! २२ वर्ष की उम्र में वह अरबी का अध्यापक नियत किया गया। उसे योरप की अनेक वर्तमान भाषाओं के सिवा ग्रीक, लैटिन, हिब्रू, चाल्डी, इथिओपिक, साबायिक आदि प्राचीन भाषायें भी आती थीं। संस्कृत और चीनी भाषाओं का भी उसे अच्छा ज्ञान था। इतनी भाषाओं का ज्ञाता आज तक और कोई नहीं हुआ। इसकी मृत्यु, १८४९ ईसवी में हुई। कोई कहते हैं यह अँगरेज़ था, कोई पोर्चुगीज़।

* * *

गत आक्टोबर में भारतभानु नामक मासिक पत्र का उदय हरदा से हुआ है। मूल्य सवा रुपया है। इसके सम्पादक एक महाराष्ट्र सज्जन हैं। आपका हिन्दीविषयक उत्साह अभिनन्दनीय है। इसके पहले दो अङ्क एक साथ हमें मिले हैं। लेख बुरे नहीं। पण्डित शिवप्रसाद, बी० ए०, का "पदार्थ विज्ञान और रसायन-शास्त्र" पर लेख उत्तम है। हम चाहते हैं, इसकी उन्नति हो।

* * *

आक्सफ़र्ड-विश्वविद्यालय में संस्कृत भी पढ़ाई जाती है। अध्यापक हैं श्रीमान् मेकडानल साहब। आप संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान् माने जाते हैं। आपने संस्कृत-साहित्य का इतिहास अँगरेज़ी में लिखा है। और भी कई पुस्तकें आपने लिखी हैं। अँगरेज़ी वाले उनका बड़ा आदर करते हैं। आज हम संस्कृत के इस पाश्चात्य पण्डित की संस्कृत-भाषा और देवनागरी लिपि का एक नमूना पाठकों को दिखलाते हैं। यह एक पोस्टकार्ड है जिसे आपने बाबू काशीप्रसाद को लिखा है। बाबू काशीप्रसाद से पाठक परिचित हैंहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोस्टकार्ड का प्रतिरूप यह है—

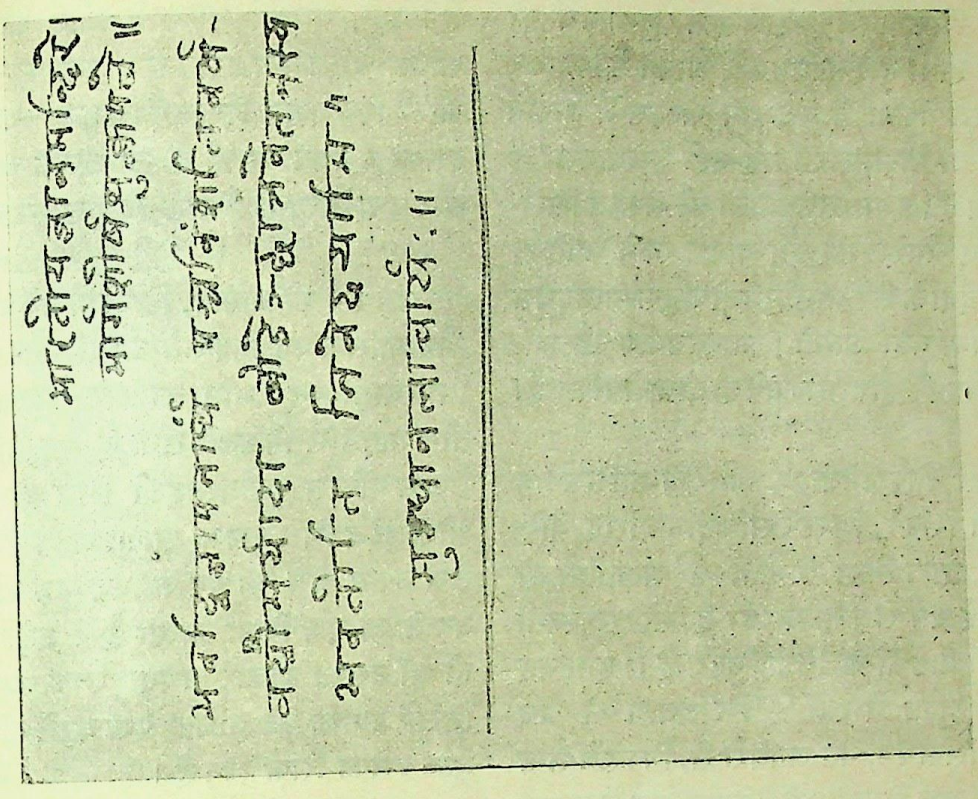

पोस्टकार्ड की पीठ पर आपने पता संस्कृत और अँगरेज़ी दोनों में लिखा है। उसका भी प्रतिबिम्ब हम नीचे देते हैं—

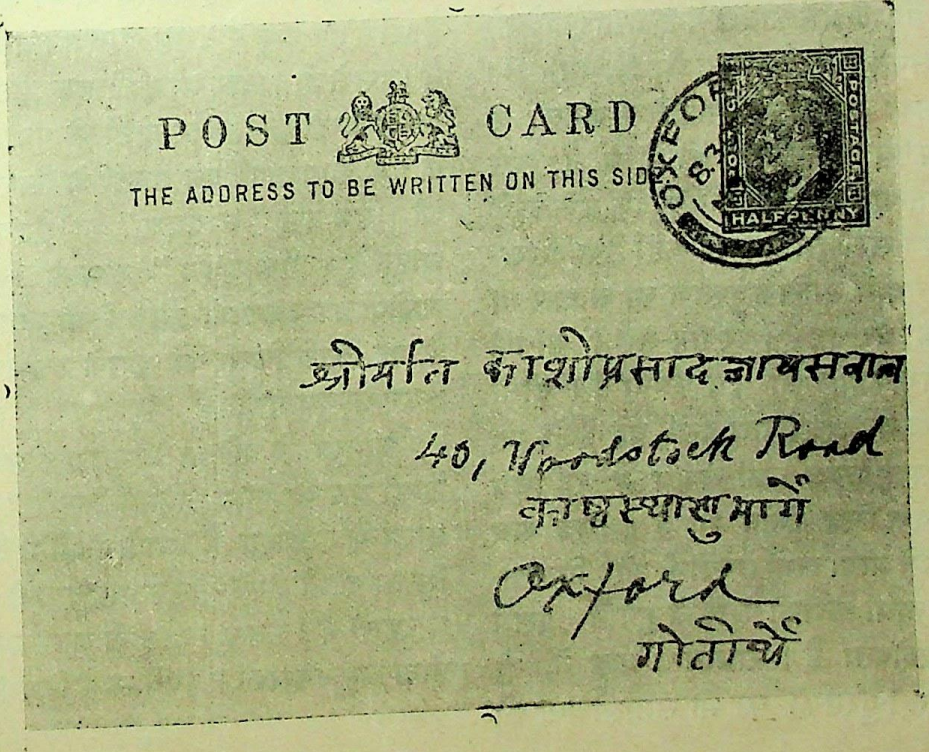

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने "मेकडानल" की संस्कृत "मुग्धानल' की है। मालूम होता है इस विषय में आपने मैक्समूलर का अनुकरण किया है। उन्होंने संस्कृत में अपना नाम रक्खा था मोक्षमूलर। यह वही 'मुग्धानल' हैं जिनकी राय है कि भारतवर्षवालों को संस्कृत सिखलाने के लिए अँगरेज़-संस्कृताध्यापक रखने चाहिएँ; क्योंकि इस देश के संस्कृतज्ञ गुणदोषानुसन्धानपूर्वक संस्कृत पढ़ाना नहीं जानते! भारतवर्षीय संस्कृत-विद्वानों पर आपने और भी कितने ही दोषारोप किये हैं।

* * *

प्रयाग से निकलनेवाला, अँगरेज़ी मासिक पत्र "हिन्दुस्तान रिव्यू", मिस्टर सच्चिदानन्दसिंह, बैरिस्टर-एट-ला, द्वारा किस योग्यता से सम्पादित हो कर आज कई वर्ष से निकल रहा है सो सरस्वती के अँगरेज़ीदाँ पाठकों से छिपा नहीं है। हमें यह लिखते बड़ी ख़ुशी हो रही है कि प्रयाग से अब एक और मासिक पत्र, गत जनवरी से, निकलने लगा है। "हिन्दुस्तान रिव्यू" भी इंडियन प्रेस में छपता है और यह भी। इस नये मासिक पत्र का नाम है "माडर्न रिव्यू"। यह भी अँगरेज़ी में है। इसके सम्पादक और प्रकाशक हैं कायस्थ-पाठशाला (कालेज) के भूतपूर्व प्रिंसिपल, बाबू रामानन्द चैटर्जी, एम० ए०। जिसने रामानन्द बाबू-द्वारा सम्पादित बँगला के सचित्र मासिकपत्र "प्रवासी" को देखा है, उसे इस बात के बतलाने की ज़रूरत नहीं, कि ऊँचे दरजे के सामयिक पत्र-सम्पादन में आप कहाँ तक सिद्ध-हस्त हैं। इस नवीन मासिक पुस्तक का आकार तो सरस्वती ही के बराबर है; पर पृष्ठ-संख्या अधिक है। छपाई और काग़ज़ का क्या कहना है। दोनों दिव्य हैं। सबसे बड़ी विशेषता इसमें यह है कि यह सचित्र है। इसको जनवरी की संख्या में २३ चित्र हैं। उनमें से एक चित्र रंगीन भी है। चित्र सब उत्तम हैं। लेख भी प्रायः सभी उपयोगी और विद्वत्ता-पूर्ण हैं। नामी नामी लेखकों के लिखे हुए हैं। इसमें एक और भी विशेषता है। रामानन्द बाबू ने, दो कालमों में, हिन्दी-पुस्तकों की भी समालोचना की है। उर्दू, बँगला, गुजराती और अँगरेज़ी-पुस्तकों की भी आलोचना इसमें है। इस पत्र को भारतवर्ष का "रिव्यू आव रिव्यूज़" कहना चाहिए। मूल्य इसका ६ रुपये साल है, जो इसके आकार, प्रकार और उपादेयत्व के ख़याल से कुछ भी नहीं है।

* * *

बड़े हर्ष की बात है, हिन्दी में नये नये साप्ताहिक और मासिक पत्र निकलते जा रहे हैं। कलकत्ते से "मारवाड़ीबन्धु" नाम का एक साप्ताहिकपत्र दो तीन महीने से निकलने लगा है। सुप्रसिद्ध हिन्दी-लेखक पण्डित दुर्गाप्रसादजी मिश्र के भाई पण्डित श्रीवासुदेव मिश्र इसका सम्पादन करते हैं। इसके लेख उत्तम होते हैं। पर कलेवर कुछ छोटा है। उसे बढ़ाने का यत्न किया जारहा है। बड़ी अच्छी बात हो जो इसका आकार अथवा पत्रसंख्या बढ़ जाय जिसमें पाठकों को अधिक लेख पढ़ने को मिला करें। मूल्य इसका सिर्फ़ १॥) है।

* * *

मालवीयजी का "अभ्युदय" भी प्रयाग से निकलने लगा। यह काग़ज़ के दो तख़्तों पर छपता है इसके हर अङ्क में ८ पृष्ठ रहते हैं। वार्षिक मूल्य २॥) है। इसके तीन चार अङ्क, जो हमने आज तक देखे हैं, अच्छे अच्छे लेखों और नोटों से पूर्ण हैं। इस तरह के एक काग़ज़ की इन प्रान्तों के लिए बड़ी ज़रूरत थी। हम इस "अभ्युदय" का हृदय से अभ्युदय चाहते हैं। "अभ्युदय" नाम के क्रिश्चियनिटी-सम्बन्धी आक्षेपों का उत्तर जो इसमें दिया गया है सो ठीकही है, पर किसी किसी को इसके उच्चारण में मुश्किल ज़रूर मालूम होगी।

* * *

नागपुर से पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०, के हिन्दी प्रेम का फल "हिन्दी-केसरी" भी निकलनेवाला है। आशा है इसके लेखों में वैसी ही ओजस्विता रहेगी जैसी तिलक महाशय के मराठी-केसरी में रहती है। संवत् १९६४ के आरम्भ से इसका जन्म होगा। मूल्य इसका २ रुपये साल नियत किया गया है।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अँगरेज़ी मासिक पुस्तक में लुबेक के रहने-वाले हेनकर नामक एक लड़के के विलक्षण बुद्धि-चातुर्य्य का भी हाल प्रकाशित हुआ है। दस महीने का होते ही वह बोलने लगा था और बारह महीने में जिस पुस्तक का जो भाग उसे सुना दिया जाता था वह उसे कण्ठस्थ हो जाता था। तीन वर्ष का होने पर वह फ़्रेंच और लैटिन भाषायें बोलने लग गया और चौथे वर्ष बायबिल में खूब दक्ष हो गया। इतिहास और भूगोल आदि की भी बहुत सी बातें वह जान गया। परन्तु उसे अबतक अक्षर-ज्ञान न था। उसकी विलक्षण बुद्धि का वृत्तान्त सुनकर डेनमार्क के राजा ने उसे बुलवा भेजा। वहाँ उसकी परीक्षा हुई। परीक्षा में वह आश्चर्य्यजनक रीति से उत्तीर्ण हुआ। सब लोग उसकी अलौकिक बुद्धि को देख कर चकित हो गये। यह लड़का बहुत कमज़ोर था और अकसर बीमार रहा करता था। इससे ५ वर्ष का भी न होने पाया था कि १७२५ ईसवी में वह मृत्यु को प्राप्त होगया। मरने के पहले उसने लिखना पढ़ना सीख लिया था।

* *
*

लखनऊ से नागरीप्रचारक नामक नया मासिक पत्र, जनवरी १९०७ से, निकलने लगा है। वार्षिक मूल्य १ रुपया है। उद्देश्य बहुत अच्छा है। लेख भी इसमें अच्छे ही अच्छे निकलने चाहिएँ।

* *
*

प्रयाग का "प्रयागसमाचार" कुछ दिन से बन्द था। वह अब फिर निकलने लगा है। आयुष्मान् भवतु!

* *
*

अँगरेज़ों ने ड्रेडनाट नाम का जो महाभीमकाय और महाभीषण लड़ाकू जहाज़ अभी नया बनाया है वह ४८० फ़ीट लंबा है। यह हुआ ३२० हाथ! इस पर और और अनेक छोटी छोटी तोपों के सिवा १० बहुत बड़ी तोपें हैं। इनके गोले १० मन वज़नी हैं! इनमें से प्रत्येक तोप ऐसे ऐसे दस दस मन के २० गोले एक मिनट में फेंक सकती है! इन तोपों के मुँह का भीतरी व्यास १२ इंच है और हर एक तोप १५१२ मन वज़न में है। १ गोला छोड़ने के लिए कारडाइट नाम की तीन मन बारूद ख़र्च होती है। तोप के मुँह से गोला निकलने पर वह फ़ी सेकंड २९०० फ़ीट के हिसाब से हवा में जाता है और २० मील तक मार करता है। ६ मील तक तो इसकी मार ऐसी भयङ्कर होती है कि इसके सामने कुछ भी नहीं ठहर सकता। मज़बूत से भी मज़बूत जहाज़ बात की बात में चूर हो सकते हैं। जिस वेग से इन तोपों का गोला उड़ता है उसे अच्छी तरह ध्यान में आने के लिए यह कहना चाहिए, कि यदि इसी वेग से कोई गोला पृथ्वी की प्रदक्षिणा करे, तो सिर्फ़ १२ घंटे में वह उसके चारों ओर घूम आवे! या यदि वह चन्द्रमा की तरफ़ चले तो सिर्फ़ ५ दिन में उसके पास पहुँच जाय!!! कल्पना कीजिए कि इसकी दसों तोपें आसमान में ऐसी जगह पहुँचाई गईं जहाँ वायु का वास्तव्य नहीं। यहाँ यदि एक ही साथ, एक ही तरफ़ को, दसों तोपों से एक एक गोला फ़ायर किया जाय, और यदि वे सब मिलकर एक हो जायँ, तो वे कभी ज़मीन पर न गिरेंगे; किन्तु एक छोटे से ग्रह, उपग्रह या तारे की तरह पृथ्वी के चारों ओर प्रलय काल तक बराबर घूमा करेंगे!!! यदि एक इतनी बड़ी तराज़ू बने जो अपने एक पल्ले में रेल की दो मुसाफ़िर-गाड़ियाँ (Passenger Trains) रख सके, तो उनका वज़न दूसरे पल्ले में रक्खी हुई इस जहाज़ की इन दस तोपों के बराबर हो! इस जहाज़ के यंजिन में २३,००० घोड़ों का बल है और इसके बनाने में कुछ कम ३ करोड़ रुपया ख़र्च हुआ है!!! अब इस बात को याद कीजिए कि जापानियों ने जो नया जहाज़ बनाया है वह इससे भी बड़ा, इससे भी मज़बूत और इससे भी तेज़ जानेवाला है!!!

* *
*

गत दिसम्बर में हमें गोरखपुर जाने का मौक़ा हुआ। वहाँ पर हम बाबू वृन्दावन उपाध्याय से मिल कर बहुत प्रसन्न हुए। आप रेलवे में मुलाज़िम हैं और फ़्रेंड्स ट्रेडिंग् कम्पनी नाम की एक कम्पनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मन्त्री हैं। कम्पनी कपड़े का रोज़गार करती है और विशेष करके देशी ही कपड़ा बेचती है। मऊ, टाँडा, काशी और कानपुर आदि के बने हुए सूती, रेशमी और ऊनी सब तरह के कपड़े इस कम्पनी की दुकान में रहते हैं। जो कपड़ा हमने इस दूकान से ख़रीदा उसे बहुत अच्छा पाया। बाबू साहब ने हमें राय दुर्गाप्रसाद के जीवनचरित की एक कापी दी है और उसकी आलोचना चाही है। हिन्दी के पुराने लेखक श्रीव्यास रामशङ्कर इस पुस्तक के कर्ता हैं। पुस्तक का आकार, काग़ज़ और टाइप "सरस्वती" के सदृश है। छपाई इंडियन प्रेस की है। भीतर, शुरू में, चरितनायक का एक हाफ़टोन चित्र है। बाबू दुर्गाप्रसाद गोरखपुर के प्रधान रईस थे। आपका गवर्नमेंट में बड़ा मान था। आप रायबहादुर की पदवी से विभूषित थे और पहले दरजे के आनरेरी मैजिस्ट्रेट थे। बड़े उदार थे। आपका अनाथालय आपकी कीर्ति का उच्चस्तम्भ है। उसके लिए आप ऐसा प्रबन्ध कर गये हैं कि वह हमेशा जारी रहेगा। चरित बहुत अच्छी भाषा में लिखा गया है और मनोरञ्जक होने के साथ साथ शिक्षाप्रद भी है। बाबू दुर्गाप्रसाद की मृत्यु हुए दस ग्यारह वर्ष हुए। पर उनकी कीर्ति अभी तक पूर्ववत् सजीव है। बाबू साहिब की पत्नी, श्रीमती धनदेवी, सुनते हैं, इस चरित को मुफ्त बाँटती हैं। चरित प्रकाशित हुए अभी थोड़े ही दिन हुए।

* * *

पियर्सन साहब लंदन से एक मासिक पुस्तक अँगरेज़ी में निकालते हैं। इसमें विशेष करके क़िस्से कहानियाँ ही रहती हैं। आप कहते हैं कि हमारी पुस्तक के पढ़नेवाले ५ लाख हैं! क्या कभी हिन्दी की मासिक पुस्तकों को भी यह सौभाग्य प्राप्त होगा? यहाँ तो पाँच ही हज़ार पढ़नेवाले मिल जायँ तो ग़नीमत समझिए।

रायबहादुर कविवर, श्रीराधानाथराय।

मनुष्य दृढ़ अध्यवसाय, कर्त्तव्य-पालन और सुचरित्र ही के बल से जनसमाज के उच्च सोपान पर आरूढ़ होकर सदैव देश-सेवा ही का ध्यान रखते हैं, और सुकवि, तथा सुविद्वान् होकर इस असार संसार में परोपकार ही को अपना सर्वस्व समझते हैं, वे समाज के शीर्ष स्थान में स्थान पाते हैं। आज हम सरस्वती के पाठकों को एक ऐसे ही पुरुष-रत्न का जीवन-चरित भेंट करते हैं।

कटक प्रान्त में बालेश्वर एक ज़िला है। इस ज़िले में केदारपुर नाम का एक ग्राम है। राधानाथ का जन्म इसी ग्राम में शकाब्द १७७१ को आश्विन-अमावास्या को हुआ। इनके पिता का नाम श्रीसुन्दर-नारायण राय और माता का तारणीदासी था।

राधानाथ को मातृ-सेवा बदी न थी। उन की मातृ-प्रेम-पिपासा पूर्ण नहीं होने पाई। मातृ-चरण-तरु की छाया में वे अपने दुःखातपसन्तप्त मानस को आजन्म शान्ति प्रदान न दे सके। कराल काल ने पाँच वर्ष के बालक राधानाथ को मातृहीन कर, तारिणीदासी को अपने पाश-जाल में डाल, इस जगत्-जंजाल से दूर कर, अनन्तशान्ति-सुख-दायिनी महानिद्रा देवी की गोद में शयन करा दिया।

राधानाथ के पूर्व-पुरुष मेदिनीपुर के अन्तर्गत राधानगर में निवास करते थे। कोई ३-४ सौ वर्ष पूर्व, बंगाल छोड़ कर वे उड़ीसा में आ बसे थे। उन की जातीय उपाधि 'दे' है; किन्तु 'राय' उनकी प्राचीन राजदत्त पदवी है।

६ वर्ष के होने पर राधानाथ केदारपुर की ग्राम्य पाठशाला में प्रविष्ट हुए। क्षीण और रुग्णशरीर होने के कारण उनके अध्ययन में अनेक बाधायें उपस्थित हुईं। एक बार उनका कासरोग अति प्रबल हो उठा। तब उनके पिता, जो बालेश्वर में सरकारी नौकर थे, चिकित्सा के लिए उन्हें वहीं ले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये। धीरे धीरे कई साल में राधानाथ को इस रोग से मुक्ति मिली और १० वर्ष की अवस्था में वे बालेश्वर के ज़िला-स्कूल में भरती हुए।

गणित में राधानाथ का अनुराग स्वाभाविक था। इस विषय में अपनी क्लास के विद्यार्थियों से वे हमेशा ऊंचे रहते थे। १६ वर्ष की अवस्था में वे कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रवेशिका-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर एफ़० ए० के लिए प्रेसिडेन्सी-कालेज (कलकत्ता) में भर्त्ती हुए। किन्तु वहाँ का जल-वायु उनके स्वास्थ्य के अनुकूल न था। इससे वे बीमार होकर एक महीने के अन्दर ही बालेश्वर लौट आये। कुछ दिनों बाद वहाँ के ज़िला स्कूल में ३०) रुपये मासिक वेतन पर वे तृतीय-शिक्षक नियुक्त होकर काम करने लगे।

दो तीन वर्ष बाद कटक में कालेज स्थापित हुआ। इस पर राधानाथ के आत्मीय, उडीसा के सुप्रसिद्ध डेपुटी कलेक्टर परलोकवासी जगन्मोहन राय, ने राधानाथ को शिक्षक का पद त्याग कर कालेज में भरती होने की राय दी। और उनके कुल व्यय का भार अपने ऊपर लिया। किन्तु स्वावलम्बनशील राधानाथ को ऐसा करना अनुचित जान पड़ा। इससे उन्होंने इस बात को नामंज़ूर किया।

राधानाथ के पिता फ़ारसी के सुपण्डित थे। इसके सिवा उड़िया, बँगला, हिन्दी, और संस्कृत में भी उन्हें यथेष्ट अनुराग था। अँगरेज़ी और संस्कृत के विद्वानों के सहवास में उनका अधिकांश समय व्यतीत होता था। राधानाथ को अपने निरीक्षण में रख कर हितोपदेश द्वारा उन्होंने ख़ूब सच्चरित्र बनाया।

राधानाथ शिक्षा-विभाग को छोड़ कर किसी और महकमे में प्रवेश करना चाहते थे और विकालत-परीक्षा के लिए भी प्रस्तुत हो रहे थे। परन्तु उनके पिता ने उन्हें शिक्षा-विभाग में ही रहकर शनैः शनैः आत्मोन्नति करने की आज्ञा दी।

राधानाथ नौकरी भी करते थे और एक संस्कृत चतुष्पाठी में संस्कृत भी पढ़ा करते थे। एफ० ए० की परीक्षा देकर बी० ए० परीक्षा की पुस्तकें भी वे पढ़ते थे। इसी समय बालेश्वर में राधानाथ के भूतपूर्व सहपाठी श्रीदामोदरप्रसाद दास ने उड़िया और बँगला की पुस्तकों का एक पुस्तकालय स्थापित किया। राधानाथ वहाँ नित्य जाया करते थे वह स्थान बालेश्वर के उन्नति-शील युवकों का केन्द्र-स्थल था। वहाँ सुप्रसिद्ध लेखक और कवि श्रीफ़क़ीरमोहन सेनापति भी आया करते थे। उनके तथा दामोदरप्रसाद के उत्साह से राधानाथ उत्कल तथा वंग-भाषा के अध्ययन में लगे और बँगला में "कवितावली" नामक एक क्षुद्र कविता रचकर प्रकाशित की।

१८ वर्ष के नवयुवक राधानाथ-रचित कविता की प्रशंसा उस समय के कई एक बँगला-पत्रों ने की। अमृतबाज़ार-पत्रिका ने पुस्तक की आशातीत अच्छी समालोचना करके राधानाथ को उत्साहित किया। उत्साहित होकर उन्होंने उड़िया-भाषा में "इटालीय युवा" नामक एक नवन्यास लिखकर "उत्कलदर्पण" मासिक पत्र में प्रकाशित किया। और भी छोटे छोटे कितने ही लेख लिख कर उन्होंने प्रकाशित किये।

बालेश्वर में प्रायः ५ वर्ष काम करके राधानाथ पुरी के ज़िला-स्कूल में द्वितीय-शिक्षक नियुक्त होकर वहाँ गये। उनके छात्रों में स्वनामविख्यात श्रीमधुसूदन राय भी थे। धीरे धीरे मधुसूदन राय राधानाथ के प्रियतम छात्र और सुहृद् हो गये। साहित्य-चर्चा में दोनों का बड़ा प्रेम था। दोनों एक साथ रहकर अवकाशानुसार नानाविध ग्रन्थालोचना तथा रचना करने लगे। उसी समय राधानाथ ने बँगला में अपनी कविता का द्वितीय भाग और मेघदूत का उत्कल-अनुवाद रचा। आपका मेघदूत-अनुवाद बहुत ही सरस और सुमिष्ट हुआ। हमारी इच्छा थी कि आप के अनुवाद के दो चार उदाहरण देते। पर हिन्दी जानने वालों में बहुत कम सज्जन उत्कल-भाषा से परिचित होंगे। अतएव हम अपनी इच्छा-पूर्त्ति से विरत होना ही अच्छा समझते हैं।

पुरी में सुख्याति-पूर्वक दो वर्ष काम करके तीसरे वर्ष राधानाथ डेपुटी कलक्टरी की परीक्षा के लिए क़ानून पढ़ने लगे। मानसिक परिश्रम अधिक करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उनको पुनर्वार रोगग्रस्त होना पड़ा। इस बार रोग यहाँ तक बढ़ गया कि उन्होंने जीवन की आशा ही छोड़ दी। कास-श्वास ने उनके शरीर को बिलकुल ही जर्जरित कर दिया। यह कास-रोग अद्यावधि उनके शरीर में बना हुआ है। इसी कारण वे सभा-समिति आदि में जाने और योग देने से वञ्चित रहते हैं।

दुःख की बात है कि राधानाथ के ज्येष्ठ पुत्र श्रीशशिभूषण राय भी मूर्छा-रोग से बहुधा पीड़ित रहते हैं। इस तरह की पारिवारिक और मानसिक पीड़ा के कारण राधानाथ का मन यहाँ तक सन्तप्त रहता है कि वे अच्छी तरह साहित्यानुशीलन नहीं कर सकते। अपनी "चिलिका" नामक कविता में उन्होंने अपने पीड़ित हृदय के उच्छ्वासों को बड़े ही कारुणिक शब्दों में प्रदर्शित किया है।

दारुण कास-श्वास रोग से मुक्ति पाने के कई महीने बाद वे बाँकुड़ा ज़िला-स्कूल के द्वितीय-शिक्षक नियत हुए। उसके ६ महीने बाद वे बालेश्वर ज़िले के स्कूलों के डेपुटी इन्सपेक्टर हुए। बालेश्वर आकर वहाँ के राजा वैकुण्ठनाथ की सहायता से उन्होंने अपनी "कवितावली" का दूसराभाग प्रकाशित किया। बंकीम-बाबू-सम्पादित "बंगदर्शन," भूदेव-बाबू-सम्पादित "एडुकेशन-गज़ट", और पण्डित ईश्वरचन्द्र-विद्यासागर-सम्पादित "पक्षपातसम्प्रदाय" ने अपनी अपनी आलोचना में इस पुस्तक की बड़ी प्रशंसा की।

उस समय बंकीम-बाबू के भूतपूर्व सहाध्यायी कलकत्ता-निवासी श्रीजगदीशनाथ राय बालेश्वर के पुलिस सुपरिंटेंडेंट थे। उनके पुत्र बाबू राधानाथ राय, एम० ए०, कलकत्ते से आकर अपने पिता के साथ बालेश्वर में रहते थे। बंकीम बाबू ने इन्हीं राधानाथ को "कवितावली" का प्रणेता जान उनके पिता जगदीशनाथ को एक अभिनन्दन और आशीर्वाद-पूर्ण पत्र लिखा। जगदीशनाथ पत्र पाकर विस्मित हुए। अनुसन्धान करके "कवितावली" के प्रकृत लेखक राधानाथ के घर स्वयं जा कर उनको उन्होंने वह प्रशंसापत्र दिखाया और अपना परिचय देकर चिरबन्धुता-सूत्र से उन्हें आबद्ध किया।

राधानाथ के बालेश्वर आने के थोड़े दिन बाद मधुसूदन राय नामक एक महाशय तत्रस्थ ज़िला-स्कूल के द्वितीय शिक्षक नियुक्त हो कर बालेश्वर आये। उसी समय राधानाथ के पिता की मृत्यु हुई। इससे उन्हें असह्य वेदना सहनी पड़ी। किन्तु प्रतिभाशाली मधुसूदन राय की समागम रूपी अमूल्य ओषधि के प्रयोग से उनका पितृ-वियोग-दुःखरूपी रोग शीघ्र जाता रहा। तदनन्तर दोनों ने मिलकर "उत्कल-कवितावली" की रचना की। यह पुस्तक इतनी उत्तम है कि आजकल कलकत्ता-विश्वविद्यालय की प्रवेशिका-परीक्षा की पाठ्य पुस्तक है।

५ वर्ष डेपुटी इन्सपेक्टर रहकर राधानाथ उड़ीसा के जाइण्ट इन्सपेक्टर नियत हुए। इसी समय उन्होंने बँगला में "लेखावली" नामक पुस्तक लिखकर स्कूलों के इन्सपेक्टर श्रीभूदेवमुखोपाध्याय को समर्पित किया। उसकी रचना पर मुग्ध होकर भूदेव बाबू ने उसका अधिकांश स्वसम्पादित "एडुकेशन-गज़ट" में प्रकाशित किया और उसके पुस्तकाकार प्रकाशित करने की अनुमति दी। तब से राधानाथ बँगला-रचना में प्रयास करना छोड़ उड़िया-भाषा में कविता करने के लिए कृतसंकल्प हुए।

राधानाथ उत्तम कवि तो हैं हीं, पर आप संगीत-शास्त्र में भी ख़ूब प्रवीण हैं। एक बार उपेन्द्रभञ्ज की कविता गाकर उन्होंने भूदेव बाबू का चित्त चुरा लिया था। इस पर तथा उनकी मनोहर कविता पर मुग्ध होकर, भूदेव बाबू ने अपने "एडुकेशन-गज़ट" में एक प्रशंसात्मक और उत्साह-वर्द्धक कविता प्रकाशित कर, अपनी सहृदयता का पूर्ण परिचय दिया। उस कविता का पहिला पद्य यह है।

"राधानाथ उड़िश्यार गौरव-केतन,
उदार, विनीत, धीर, सुबोध, सुजन,
नानाभाषा-विभूषित,
नाना-शास्त्र-सुपण्डित,
कविता-कानने पिकवर, प्रियवर,
स्वर्गीरस्वभावे पूत तोमार अन्तर"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूदेव बाबू के साथ राधानाथ ने बंग तथा विहार के नाना स्थानों में परिभ्रमण किया। देश-भ्रमण में राधानाथ का विशेष अनुराग है। यह उनका पैत्रिक गुण है। बाल्यकाल में वे अपने पिता के साथ पर्य्यटन करने जाया करते थे। उनके पिता उन्हें समुद्र, पर्वत, देश, नदी, झील आदि दिखाते थे और उनसे जो जो लाभ हैं वे उन्हें बताया करते थे।

भूदेव बाबू के साथ काशी तक जाकर भी राधानाथ को तृप्ति नहीं हुई। इससे तीन महीने की छुट्टी लेकर बंगाल, विहार, अयोध्या, संयुक्तप्रान्त, राजपूताना, पंजाब, हिमालय, दार्जिलिंग, गुजरात, महाराष्ट्र तथा मध्यप्रदेश के अनेक स्थानों में उन्होंने पुनः परिभ्रमण किया। अपनी इस यात्रा का वर्णन उन्होंने अपनी "चिलिका" नामक कविता में बड़ी ही उत्तमता से किया है।

भ्रमण के समय सम्बलपुर के अन्तर्गत "उत्कलीयालङ्कार" के प्रणेता बामण्डाधीश्वर श्रीसुढ़लदेव, के० सी० आई० ई० से उनकी भेंट हुई। श्रीसुढ़लदेव के समान विद्यारसिक, सुपण्डित और विद्योत्साही राजा से मिलना राधानाथ के साहित्य-जीवन की एक प्रधान घटना है। राधानाथ ने अपनी कई कवितायें उन्हें समर्पित की हैं।

१८९२ ई० में राधानाथ ने जाइण्ट इन्सपेक्टर के पद से स्कूलों के इन्सपेक्टर के पद पर उन्नति पाई और १९०१ में इस पद के सबसे ऊंचे स्थान पर वे विराजमान हुए।

राधानाथ की कार्य्यदक्षता, ईमानदारी और राजभक्ति पर सन्तुष्ट होकर गवर्नमेंट ने उन्हें १८९६ में रायबहादुर की पदवी दी है। अब शायद पेन्शन लेकर आप ईश्वराराधन में अपने जीवन का अन्तिम भाग व्यतीत कर रहे हैं।

राधानाथ की उत्कल-कविता का सामयिक क्रम इस प्रकार है—

१ मेघदूत, २ कितावली, ३ केदार-गौरी, ४ चन्द्रभागा, ५ नन्दिकेश्वरी, ६ ऊषा, ७ पार्वती, ८ चिलिका, ९ महायात्रा, १० ययाति-केसरी, ११ तुलसी-स्तबक, १२ उर्वशी, १३ दरबार और १४ दशरथ-विलाप।

इनके सिवा और भी कितनी ही क्षुद्र क्षुद्र कवितायें आपने बनाई हैं।

राधानाथ हिन्दी जानते हैं। "तुलसी-स्तबक" में उन्होंने तुलसीकृतरामायण के वर्षा और शरद्-वर्णन का उत्कलानुवाद किया है। उसके दो तीन नमूने देखिए—

मूल—बरसहिँ जलद भूमि नियराये।
यथा नवहिँ बुध विद्या पाये॥

अनुवाद—वर्षन्ति महीमुखे नइँ अम्बुदे।
विद्या-सम्पदे यथा नमन्ति बुधे॥

मू०—बूँद अघात सहैं गिरि कैसे।
खल के वचन सन्त सह जैसे॥

अ०—सहन्ति धारापात शइल-गण।
खल-वचन यथा सहे सुजन॥

मू०—रस रस सूख सरित सर पानी।
ममता त्याग करहिँ जिमि ज्ञानी॥

अ०—सर-सरित-नीर क्रमे हटइ।
ममता यथा साधू मनु टुटइ॥

आपकी कविता सरस, भावपूर्ण और मनोहारिणी होती है। वे नवो रसों में भावमयी कविता कर सकते हैं। उन्हें यदि "नवरससिद्ध" कहें तो अत्युक्ति न होगी। उनकी कविता उत्कल-साहित्य की स्थायी सम्पत्ति है। वे प्रकृति-चित्रण में सिद्धहस्त हैं। उनकी कविता पढ़ते पढ़ते पाठकों के नेत्रों के सामने वर्णित वस्तु के चित्र नाचने से लगते हैं।

इस समय राधानाथ की उम्र ४७ वर्ष की है। उनकी सरस कविता से मुग्ध होकर वंगीय-वनिता-कवि-ललामभूता श्रीनगेन्द्रबाला सरस्वती और कविवर श्रीनवीनचन्द्र आदि ने उनकी प्रशंसाविषयक कविता लिखकर अपनी गुणग्राहकता का पूर्ण परिचय दिया है।

श्रीराधानाथ के जीवन की अनेक घटनायें शिक्षापूर्ण अतएव अनुकरणीय हैं। उनके अन्यान्य गुणों में विनय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और परदुःखकातरता प्रधान हैं। इन्हीं गुणों के बलसे आज राधानाथ उडीसा के तिलक-स्वरूप हो रहे हैं*।

पाण्डेय पुरुषोत्तमप्रसाद
और
पाण्डेय लोचनप्रसाद।

वीराङ्गना काव्य।

दशरथ के प्रति कैकेयी का पत्र†।

हे हे रघुकुलराज, सत्यप्रिय, वीर, स्वामि मम।
सुनौं मन्थरा सों यह कैसी कथा वज्र सम॥
पै यह दासी नीच जाति की अति अज्ञानी।
साँच झूठ को ज्ञान याहि नहिँ परै पिछानी॥ १॥

यातें मोंसो कहो आज काहे पुरवासी।
तैरत आनँद-वारि माँहि सब त्यागि उदासी॥
राज मार्ग पै कुसुमराशि छींटत कोऊ है।
फल पल्लव अरु कली माल गूँथत कोऊ है॥ २॥

करन सुसज्जित चारु रूप सों भवनद्वार को।
जनु कोउ उच्छव माँहि बनत इत थल विहार को।
उड़त धुजा केहि हेतु सकल प्रासाद शिखर पै।
समरवेश मैं आज सैन चतुरङ्गिनि निकसै॥ ३॥

हय, गज, औ रथ, रथी, पदातिक कहु केहि कारन।
विचरत सज्जित अस्त्र शस्त्र सब कीन्हे धारन॥
समरवाद्य केहि हेतु बजत है आज दिवस निसि।
पुरनारी-गन गान करत क्यों छन छन चहुँ दिसि॥४॥

गावत नर्तक नटी गायिका लेति तान कोँ।
करत बीन झङ्कार मधुर सुर बे-प्रमान कोँ॥
केहि व्रत में हैं व्रती आज रघुकुल के भूषन।
कहो देव मैं सुनूँ कृपा करि कथा अदूषन॥ ५॥

काके मङ्गल हेतु आज कौशल्या रानी।
करती वितरन रतनराशि धन बहु गुनखानी॥
देव मन्दिरन माँहि नाथ! बाजै केहि कारन।
शंख-झाँझ-घण्टा-समूह घन-रव-मद-झारन॥ ६॥

शान्तिकरन केहि हेतु व्यग्र रघुवंश-पुरोहित।
जन-समूह अभिराम बढ़त पुर ओर कहो कित॥
कौन कुतूहल हेतु सुहागिन रघुकुल-कामिनि।
सजि भूषन शृङ्गार करति हैं सुन्दरि भामिनि॥ ७॥

कौन महोत्सव भूप! नगर में अहै तिहारो।
कहो कृपा करि हरो कुतूहल परम हमारो॥
कै धौं यज्ञारम्भ कियो है प्रभु अकाल में।
कि धौं शत्रु तव नाश भयो परि समरजाल में॥ ८॥

काको दैहो व्याह, भयो कै और पुत्र तोंहि।
कि धौं कुमारी सुता अहै गृह माँहि, कहो मोंहि॥
बढ़त कुतूहल बड़ो सुनन को मन में चौगुन।
कौन भाग्यबल हेतु लह्यौ (चिरभाग्यवान तुम)॥९॥

लह्यौ फेरि यहि वयस माँहि कै नारि-रतन धन।
रूपवती रसमयी सु-रति सी सुन्दरि नूतन॥
कहा कहेगी दासी हा धिक तुम पति गुरु मम।
नहिँ तो कहती मुक्तकण्ठ ह्वै कैकयि, निर्मम॥ १०॥

हैं निलज्ज मिथ्यावादी अति रघुकुल-भूषन।
करैं प्रतिज्ञाभङ्ग सहज में सदा पाप मन॥
धर्म शब्द मुख माँहि रहत नित रटत रहत है।
पै अधर्म की ओर सदा गति धाय गहत है॥ ११॥

कथा असंगत यदि निकसे काउ केकयि मुख सोँ।
सिर काटो तुम आप ताहि को नृप मन सुख सोँ॥
किंवा मसि औ चून गाल में मम लगाय कै।
करि सिर केश विहीन देहु वन में पठाय कै॥ १२॥

पै अपवाद यथार्थ होँहि यदि तोँ में भूपति।
तो कलङ्क केहि भाँति भोगिहो कहो धीरमति॥
लोक बीच अपनो मुख तुम कैसे दिखाइहौ।
नेकु विचारो नाथ! बात केहि विधि छिपाइहौ॥१३॥

मम जोबन-भण्डार माँहि जो रतन रह्यो है।
कुटिलकाल अब हाय! लूटि सो सबै लयो है॥
जनु कानन के बीच हरत है सरस कुसुम छवि।
रस सब ताको खेंचि सुखावत प्रबल तेज रवि॥१४॥

---

* इस लेख के लिखने में हम लोगों को हँसनाबाद (कटक) निवासी श्रीआर्तत्राण सत्पथी लिखित "रायबहादुर की संक्षिप्त जीवनी" से बहुत कुछ सहायता मिली है, जिसके लिए हम आप के बहुत कृतज्ञ हैं। लेखक।

† वीराङ्गना काव्य का अनुवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहिँ नितम्ब के भारन सोँ अलसाय गिरौँ अब।
नहिँ मेरो दोउ जंघ गोल रम्भा लौँ है नव॥
वह कटि जेहि तुम कर कमलन सोँ धरि कै अपने।
प्रेमादर करि मोहि सिंह पै लगते थपने॥ १५॥

अगनित निन्दाराशि निदरि तेहि लघु बनाय कै।
सो अब नहिँ प्रभु खोन, पीन अति लखहु आय कै॥
उन्नत सिर नहिँ रह्यौ अबै भौ नम्र पयोधर।
सुधाहीन यह अधर चारु मम हाय भूपवर॥ १६॥

पै अब सुमिरो पूर्व कथा तुम हे नरभूषन।
जब मैं सेयो चरन तेरो धारे नवयौवन॥
कहा कियो तुम सत्य धर्म साक्षी दै माँ सोँ।
भूलि गये कै नाथ? पूछतो हौँ मैं तौँ सोँ॥ १७॥

वृथा आस दै मोँहि छल्यौ यदि मदन-मत बनि।
कहो ताहि, दुख सहिहौँ तो मैं पाहन हिय हनि॥
कामीजन को यह कुरीति सब जग जानत है।
हरत नारि मन युक्ति धारि नहिँ भय मानत है॥१८॥

बिन संकोचहि देत तिलाञ्जलि धर्म कर्म को।
सानि वाक्य मधु में प्रवञ्चना भस्म मर्म को॥
कुपथ कथिक कै भये आप हा! सूर्यवंशपति।
शशिसम तुमहु कलङ्क धरहु कै रघुकुलदिनपति॥१९॥

वरनत हैं तोहिँ देवदेव नर परम धीरमति।
वीर सत्यप्रिय धर्मपरायन इन्द्रियजित अति॥
कहो तबै केहि हेतु करौ अभिषेक काम को।
कौशल्या-नन्दनहिँ रचौ युवराज राम को॥ २०॥

कहाँ गये हैं भरतपुत्र तुअ वीर शिरोमनि।
भारत के प्रियरत्न सूर्य्य सम जाको चमकनि॥
सुमिरन कै तोँहि होय नाहिँ सब कथा पुरानी।
कौन दोष अपराधिनि भई है केकयिरानी॥ २१॥

कियो कौन अपराध मेरो सुत कहु तुअपद में।
जासोँ वञ्चित करौ ताहि तुम निज सम्पद में॥
है रानी तोँहि तीन, तीन में कहौ नृपति अब।
पद-सेवा में चूक कैकयी कहा कियो कब?॥ २२॥

चारि सुअन में तेरो भूप कहु कौन गुनन सोँ।
गिनो राम गुनशील श्रेष्ठ तुम अपने मन सोँ॥
कौशल्या तोहि कहा मोहिनी डारि भुलायो।
कह, विशेष गुण कौन नाथ रामहिँ में पायो॥ २३॥

जासोँ पुरिवे चहौ मनोरथ उन दोउन को।
धर्मत्यागि निज नाथ बोझ सिर लै अवगुन को॥
पैहै नहिँ कछु लाभ वृथा बकवाद किये सोँ।
जो अभिरुचि है देव तोँहि सो करो हिये सोँ॥ २४॥

तुम नरेन्द्र हो कौन सकैगो रोकि तेरो गति।
सकै कौन उलटाय सरित को स्रोत प्रखर अति॥
कौन फँसावन चहत सिंह को विहग-जाल में।
उन्नत गिरि को नम्र करन को लहत ख्याल में॥२५॥

आज चली तुअ पाप-पुरी तजि अबहीं दासी।
देश देश में वेष भिखारिन धरिकै खासी॥
भ्रमण करेगी और तिहारी कीर्ति रहेगो।
मुक्तकण्ठ सोँ जहाँ जायगी तहाँ कहेगी॥ २६॥

सुनो लोग यह कथा मेरी सब सत्य प्रमानो।
परम अधर्मी हैं रघुकुलपति निश्चय जानो॥
गगन उठेगो गूँजि जहाँ धावति घनमाला।
तहाँ मेरी दुख-कथा कहेंगे सुर, सुरबाला॥ २७॥

भूप पथिक गिरहस्थ रङ्क तापस औरो नर।
जाको पैहौँ जहाँ ताहि यह कहिहौँ नृपवर॥
सुनो लोग यह कथा मेरी सब सत्य प्रमानो।
परम अधर्मी रघुकुलपति हैं निश्चय जानो॥ २८॥

पोसि सारिकहिँ शुकहिँ दोउन को परम जतन सोँ।
रैनि दिवस करि श्रम सिखाइहौँ अपने मन सोँ।
जब मेरी दुख-कथा सीखि जैहैं वे दोऊ।
वन में तिन्हें उड़ाय छोड़ि दैहौँ तब सोऊ॥ २९॥

बैठि गाइहैं यही कथा तरु की साखन पै।
और प्रतिध्वनि सीखि गायहैं प्रतिभाषन पै॥
सुनो लोग यह कथा मेरी सब सत्य प्रमानो।
परम अधर्मी रघुकुलपति हैं निश्चय जानो॥ ३०॥

जाय खोदि यह तुङ्ग शृङ्ग भूधर-मालन पै।
लिखिहौँ कानन सघन बीच सब तरु छालन पै॥
सुनो लोग यह कथा मेरी सब सत्य प्रमानो।
परम अधर्मी रघुकुलपति हैं निश्चय जानो॥ ३१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचि कविता सब ग्राम बालकन को सिखाइहौं।
ताली दै वे सबै गाइहैं इमि प्रचारिहौं॥
सुनो लोग यह कथा मेरी सब सत्य प्रमानो।
परम अधर्मी रघुकुलपति हैं निश्चय जानो॥ ३२॥

कीन्हों मोहिँ निराश आज सब दै के आशा।
लखिहौं फलिहैं कौन सुफल तुम्हरे तरु आशा॥
ता संग गृह में बसो जाहि को मान बढ़ायो।
इतनी बूढ़ो वयस माँहि हा लाज गमायो॥ ३३॥

वाम भाग में रखि कौशल्या पटरानी को।
औ बनाय युवराज रामसुत गुनखानी को॥
पुत्रवधू प्रियतमा जनक-दुहिता सीता लै।
भोगहु सुख परिवार सुखी ह्वै चिन्ता तजि कै॥ ३४॥

चलो अभागिनि आज त्यागि तोंहि तात सदन में।
तहाँ रहेगो पिताहीन सुत मेरो मगन में॥
निज मातामह गेह माँहि आश्रय पावेगो।
पिता हमारो पालि चित्त में हरखावेगो॥ ३५॥

दैहौं ताकौं शपथ अन्न तुअ गहिबे कारन।
औ प्रवेश तव पापपुरी हिय करिहौं वारन॥
निज मन दुख सों लिख्यो लेख यह है विचारि कै।
निज रक्तन सों हाय आपनो हियो फारि कै॥ ३६॥

नैक नहीं यदि पाप अहै तन माँहि हमारे।
पतिपद प्रान अधार वचन यदि साँच उचारे॥
पतिव्रता यदि अहहुँ कहहुँ मैं बज्र लीक सों।
करिहैं धर्म विचार हमारो धर्म ठीक सों॥ ३७॥

श्रीकमलानन्दसिंह।

---

*एक के दो दो।

(२)

महाराज ने राजकुमार के साथ अपनी कन्या के विवाह का दिन नियत कर दिया। देश भर में इसकी चर्चा फैल गई। जहाँ देखो वहीं राजकुमार की प्रशंसा होने लगी। इधर दिवाल-

* जुलाई ०६ की सरस्वती में इस नाम का जो लेख छपा है उस का यह उत्तरार्द्ध है।

ख़ोरियों को भी अच्छा मौक़ा हाथ लगा। व्यवसायी अपने अपने रोज़गार से हाथ धो पूँजी स्वाहा करने लगे। क़र्ज़दार, जिन्होंने साहूकारों से सौ रुपये लिए थे और केवल पचास ही चुका पाये थे, यह कह कर कि हमने "एक के दो" के हिसाब से रक़म चुका दी, मूछों पर ताव देते हुए दूकान के सामने से निकलने लगे। दूकानदार यदि किसी चीज़ के दो पैसे मांगता है तो केवल एक पाता है। झगड़ा करने पर कहा जाता है "अरे मूर्ख तुझे मालूम नहीं एक बराबर दो के होता है"; लाचार बेचारे को चुप होना पड़ता है, नहीं तो चाँ चपड़ करने पर दो एक और सुननी पड़ती हैं।

इस प्रकार सारे नगर में ग़दर मच गया। लुच्चे लफंगों की ख़ूब बन पड़ी। अराजकता फैली देख लोग नगर के प्रधान न्यायकर्त्ता के पास फ़रियाद लेकर पहुँचे। जिस समय उस राजकुमार ने "एक बराबर दो के" साबित किया था उस समय न्यायाधीश भी दरबार में उपस्थित थे। आपने भी मुंडी हिलाकर राजकुमार की बात को स्वीकार किया था। नगरवासियों की फ़रियाद सुनकर अब आप बड़े चक्कर में आये। दरबार में उस बात को स्वीकार करते समय इन्हें इसका स्वप्न में भी ख़याल नहीं हुआ था कि इस ज़रा सी बात से ऐसा उपद्रव फैलेगा। आप समझते थे कि केवल घंटे भर का तमाशा है सो हो गया। राजा की माणिक के विषय में जो हठ थी वह पूरी हुई। कन्या का विवाह तो होने ही को था; इसके साथ नहीं दूसरे के साथ होता। ख़ैर, इन्होंने जैसे तैसे साहूकारों को समझा बुझाकर विदा किया और आप कपड़े बदल राजा से मिलने चले। मार्ग में गाड़ी पर जाते हुए आप ने देखा कि एक जगह बहुत आदमी जमा हैं और मार-पीट के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इन्होंने गाड़ी ठहरा कर कारण पूछा तो वही "एक के दो" की बात निकली। इस हलचल को देख इनका दिल और भी घबराया। थोड़ी देर में राजा के महलों में आप जा उपस्थित हुए। राजा इनको घबराया हुआ देख, बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चकराया। इन्होंने सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक राजा से कह सुनाया। उसे सुन राजा के भी होश बाख़्ता हो गये। राजा ने पूछा कि अब क्या करना चाहिए? न्यायाधीश ने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि "महाराज! इसका तो शीघ्र ही किसी न किसी प्रकार प्रबन्ध करना ही उचित है। न जाने इस थोड़ी सी देर में ही क्या हो जाय! सारे नगर में असंतोष के चिन्ह दिखाई दे रहे हैं"। राजा साहब सिर पर हाथ रख, आँख बन्द कर, बहुत देर तक सोचते रहे। फिर आपने कहा—"समझ में नहीं आता कि क्या करें? इधर गिरें तो कुआँ और उधर गिरें तो खाई! यदि साहूकारों की तरफ़दारी करते हैं तो वे लोग बिगड़ने को तैयार हैं, क्योंकि कल की बात किसी से छिपी नहीं है। दूसरे मैं बदल ही किस प्रकार सकता हूँ? मैंने स्वयं उस बात पर अपनी कन्या देना स्वीकार कर लिया है। जो हो साहूकारों को समझाकर इसका निपटारा कर दो"। न्यायाधीश चुपचाप नीची गर्दन किये घर लौटे। नगरवासी पहलेही से दरवाज़े पर आ जमे थे। न्यायाधीश की सूरत ही देख कर वे लोग समझ गये कि ज़रूर कुछ दाल में काला है। न्यायाधीश ने बहुत कुछ धीरज दे राजा का संदेशा सुनाया। इस अंधेर को देख बेचारे साहूकार बेहद घबरा उठे। सब ने निश्चय किया कि "भई, जो हुआ हो सो हुआ, अब इस अंधेर-नगरी में रहना ठीक नहीं"। लाचार बेचारे अपने घर द्वार छोड़ भागने लगे। थोड़े ही दिनों में नगर प्रायः उजाड़ हो गया।

सन्ध्या का समय है। एक सुन्दर युवा उमदा घोड़े पर सवार धीरे धीरे सड़क पर चला जा रहा है। चेहरा मन के भाव को छिपने नहीं देता। मालूम होता है उसे किसी प्रकार की चिन्ता है। युवा की अवस्था अभी २१ साल के लगभग होगी। हो न हो यह तो कोई राजपुत्र सा मालूम पड़ता है। कुछ दूर चलने पर उसे एक हलवाई की दूकान दिखाई दी। बाहर ही खुरेरी खटिया पर बैठा हुआ मालिक कुछ गुनगुना रहा था। राजपुत्र अपना घोड़ा बढ़ा उसके पास पहुँचा। वह उठ खड़ा हुआ और झुककर एक लंबी सलाम बजाई। युवा ने पूछा-"क्यों, इस नगर की ऐसी हालत क्यों?" हलवाई ने राजकुमार के आने की बात, उसकी "एक के दो दो" वाली कल्पना का हाल राजा का अपनी कन्या से उसके साथ विवाह कर देने का संकल्प, नगर-वासियों की हलचल, इत्यादि सारी कथा विस्तार-पूर्वक कह सुनाई। युवा का चेहरा इन सब बातों को सुन ग़ुस्से से लाल हो गया। उसने फिर पूछा—"क्या राजा ने कन्या के विवाह का दिन निश्चय कर दिया?" उत्तर मिला "हाँ"। युवा ने और पूछपाछ न कर घोड़े को एड़ दे एक ओर का रास्ता लिय। थोड़ी दूर चलने पर ही उसकी हालत बिगड़ने लगी। सिर घूमने लगा और चक्कर आने लगे। घोड़े की लगाम हाथ से खिसकने लगी। तब वह घोड़े पर से उतर पड़ा और उसकी लगाम एक पेड़ से बाँध आप उसके नीचे लेट गया। ठंढी हवा लगने से उसे नींद आ गई और कुछ देर वह वहीं सोता रहा।

यह युवा कौन है? आपको याद होगा कि राजा साहब ने ढंढोरा पिटवा दिया था कि जो मनुष्य मेरे माणिक की जोड़ का दूसरा माणिक ला देगा उसे मैं अपनी कन्या व्याह दूँगा। संयोग-वश एक राजपुत्र की आँख इस कन्या पर पड़ी और देखते ही वह लट्टू हो गया। उसी समय से राजपुत्र ऐसे माणिक की खोज में था। ऐसे बहुमूल्य रत्न का प्राप्त करना कोई साधारण बात न थी। यह भी वह राजपुत्र भली भाँति जानता था कि बिना वैसे रत्न के पाये राजकुमारी का मिलना असंभव है। सैकड़ों आपदायें झेलने के बाद उसे एक नगर में बिलकुल वैसा ही रत्न मिल गया। उसे लेकर वह ख़ुशी ख़ुशी राजा साहब से मिलने चला। वह युवा यही राजपुत्र था। हलवाई के मुँह से यह सुनकर कि जिसके लिए उसने इतना परिश्रम किया था उसे दूसरा ही हथियाने को तैयार बैठा है इसे बड़ा सदमा पहुँचा।

कोई आध घंटे बाद इसकी आँख खुली। अब क्या करना चाहिए? कुछ देर सोचने के बाद उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही स्थिर किया कि चलें राजा साहब से तो मिलें। देखें वे क्या कहते हैं। अतएव ड्योढ़ी पर जाकर इसने चोबदार से ख़बर कराई। राजा साहब ने शीघ्र उपस्थित होने की आज्ञा दी। वहाँ जाकर राजपुत्र ने देखा कि राजा साहब पलंग पर पड़े है। सूख कर निरे पिञ्जर हो रहे हैं। उठने की शक्ति नहीं है। राजपुत्र को देख वे कुछ प्रसन्न हुए और कुरसी पर बैठने का इशारा कर आने का प्रयोजन पूछा। राजपुत्र ने सारी कथा कह सुनाई। साथ ही माणिक भी दिखा दिया। अब तो राजा को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। अपने किये पर आप पछताने लगे। सोचा कि हाय बड़ी मूर्खता की। यदि पहले से मुझे मालूम होता तो क्यों सारे नगर को उजाड़ कर स्वयं इस दशा को प्राप्त होता। जिस समय मुझे कुमारी के व्याह की याद आती है उस समय तो और भी मुझे व्याकुलता होती है। कुछ देर बाद राजपुत्र ने पूछा कि वह कौन सी विद्या है जिससे एक बराबर दो के सिद्ध होता है। राजा ने कहा "कुछ भी हो यह बात असत्य नहीं है"। राजपुत्र ने जब उस बात के बताने की बहुत प्रार्थना की तब राजा ने पड़े पड़े स्लेट पर यह लिखा—

अ = क्ष
अ क्ष = क्ष^{२}
अ क्ष − अ^{२} = क्ष^{२} − अ^{२}
अ (क्ष−अ) = (क्ष + अ) (क्ष−अ)
अ = क्ष + अ
अ = अ + अ
अ = २ अ
१ = २

इसको देख राजपुत्र हँस पड़ा। उसने कहा "महाराज, इसमें तो भूल है! यह सिद्धान्त ठीक नहीं। इसके सिद्ध करनेवाले को बीजगणित का पूरा ज्ञान नहीं है। यह सिद्धान्त बिलकुल ही बेजड़ है!" राजा साहब चौंक कर उठ बैठ। उनके सारे बदन में बिजली सी दौड़ गई। जान में जान आगई। आप बोले—"इसमें ग़लती है? क्या तुम इस बात को सिद्ध कर सकते हो?" राजपुत्र ने उत्तर दिया—"महाराज, ग़लती तो साफ़ धरी है—देखिए न लिखा है—

अ (क्ष—अ) = (क्ष + अ) (क्ष—अ) उन्होंने दोनों तरफ़ से (क्ष—अ) निकाल डाले और "अ = क्ष + अ" के कर दिया। साथ ही यह भी मान लिया कि क्ष − अ तब फिर क्ष—अ = ०। हम बीजगणित के सिद्धान्त से 'शून्य' को दोनों तरफ़ से नहीं निकाल सकते। कारण यह कि यदि किसी संख्या को शून्य से गुणा किया जाय तो गुणनफल शून्यही होता है (If a number be multiplied by zero, the product will be equal to zero.) इसलिए—

अ (क्ष—अ) = (क्ष + अ) (क्ष—अ)
अ (०) = (क्ष + अ) (०)

इसलिए "अ" बराबर "क्ष + अ" के कभी नहीं हो सकता"। यह बात राजा साहब की समझ में आ गई। विस्मित हो आँखें फाड़ वे राजपुत्र को निहारने लगे। तब राजपुत्र ने कहा—"महाराज, अब आप उस राजकुमार को बुलावें और कहें कि एक बराबर दो के सिद्ध करें"।

राजकुमार बड़े मज़े में अपने दिन काटता था और समझता था कि अब तो राजकुमारी से विवाह होवेहोगा। इधर राजा साहब ने सारे दरबारियों को फिर एकत्र किया और उस राजकुमार और राजपुत्र को भी बुलाया। सब के आने पर राजा साहब ने कहा—"राजकुमार, तुम्हारा सिद्धान्त ग़लत है"। राजकुमार ने भौंहें तान कर कहा—"सो कैसे?" इस पर राजपुत्र ने उठ, झट से खरिया ले, तख़्ते पर जो बात राजा साहब से कही थी लिख दी। देखते ही राजकुमार को जान सो निकल गई। चेहरा फीका पड़ गया, और गरदन नीची हो गई। राजपुत्र विजयी वीर की तरह अपने स्थान पर आ बैठा। सब लोगों ने राजपुत्र की प्रशंसा के पुल बाँध दिये। राजकुमार के इस ग़लत सिद्धान्त से जो अनर्थ हुआ था उसके दण्ड में राजा ने उसे देश से निकलवा दिया, और राजपुत्र को छाती से लगा बग़ल में बिठा लिया। राजकुमारी भी परदे में से यह देख रही थी। राजपुत्र का विवाह राजकुमारी से हो गया। राजा साहब भी अपना राजपाट उसके हवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर वन में तपस्या को चल दिये। संसार भर में यह बात फैल गई और फिर से नगरवासी आ आ कर बसने लगे। आजकल उस नगर की बस्ती पहले से कई गुना बढ़ गई है। रामजीदास वैश्य।

सम-चिकित्सा-चमत्कार।

समस्य सममौषधम्!

पाठकगण! आपने "विषस्य विषमौषधम्" तो सुना होगा परन्तु "समस्य सममौषधम्" कदाचित् न सुना होगा, अहिफेन का विष निवारण करने के लिए संखिया का दिया जाना, फास्फोरस का विष दूर करने के लिए कुचले का दिया जाना अथवा तमाखू का विष मारने के लिए लौंग का दिया जाना "विषस्य विषमौषधम्" को उदाहृत करता है, परन्तु "समस्य सममौषधम्" का उदाहरण केवल वही लोग दे सकते हैं जिन्होंने "होम्योपेथी" नाम की चिकित्सा को समझा है। यद्यपि हमारे आयुर्वेद में "होम्योपेथी" के कुछ सिद्धान्त सूक्ष्मरूप में पाये जाते हैं तथापि स्वीकार करना चाहिए कि एक स्वतन्त्र और स्पष्ट चिकित्सासंस्थान के स्वरूप में उसका आविष्कार जर्मनी देश से हुआ है। उसी का नाम हमने अपनी भाषा में "सम-चिकित्सा" (समेन चिकित्सा) रक्खा है। सम-चिकित्सा का प्रचार सभ्य जगत् में "एलोपेथी" (प्राचीन डाकूरी चिकित्सा) के विरोध और विद्रोह पर भी इतना बढ़ गया है और उसका प्रभाव इतना सिद्ध हो चुका है कि उस पर एक लेख "सरस्वती" में देना लाभ से शून्य न होगा। यह दिखलाने के लिए कि ईश्वर की माया के कैसे कैसे अद्भुत नियम अज्ञात ही पड़े रह सकते हैं और सर्वसाधारण का ध्यान एक उपयोगी प्रकरण की ओर आकर्षित करने के लिए ही हम आज लेखनी-सञ्चालन कर रहे हैं।

तो आइए, पहले "सम-चिकित्सा" का सिद्धान्त समझें। उससे विदित होगा कि दयालु परमेश्वर ने जीवों के उपकार के लिए उसमें कैसा चमत्कार रक्खा है। यदि हम सिंगिया की चिकित्सा सिंगिया ही से करें तो वह "समचिकित्सा" न होगी क्योंकि सिंगिया सिंगिया एक ही वस्तु हैं, उनको आपस में सम नहीं कह सकते। हाँ, यदि किसी रोग में, जो बिना सिंगिया खाये शरीर में उत्पन्न हो गया है, सिंगिया की समता पाई जाय तो उस रोग के निवारणार्थ सिंगिया का देना "सम-चिकित्सा" कहा जायगा।

अब, "सिंगिया की समता पाई जाय" इस अद्भुत वाक्य की व्याख्या सुनिए। यदि मनुष्य सिंगिया खाजाय तो उसके शरीर में विकार होगा और उस विकार के एक विशेष प्रकार के लक्षण होंगे। यदि वही लक्षण किसी रोगी में, बिना सिंगिया खाये ही हो गये हों, तो कहा जायगा कि उस रोगी के रोग में "सिंगिया की समता है"। चाहे यों कह लीजिए कि "उस रोगी में सिंगिया के लक्षण पाये जाते हैं"। यदि ऐसी समता है तो निश्चय जानिए कि सिंगिया उस रोगी को चङ्गा कर देगा, चाहे उसका रोग ज्वर हो वा विशूचिका, वा पार्श्वशूल वा और कुछ! कैसा अद्भुत नियम है!

अब इसी समता वा सहलक्षणता को कुछ विस्तार से समझिए—

जो मनुष्य सिंगिया खाता है उसके शरीर में भाँति भाँति के विकार हो जाते हैं उनमें से कुछ ये हैं—

मानसिक और मस्तिष्कसम्बन्धी चिन्ह—'भय और शोच,' अन्तःक्लेश, 'मृत्यु का भय'। बतलाता है कि 'अमुक दिन मर जाऊँगा'। मन की अवस्था बदलती है, गाता है, सीटी बजाता है, रोता है। अचेतनता (बेहोशी), 'विशेष कर रात को'। प्रतीत करता है कि मेरा सिर बहुत बड़ा हो गया है। दृष्टि की मन्दता। पुतलियों का फैलना। शब्द और 'घ्राण' का अधिक प्रतीत करना। जिह्वा का लड़खड़ाना। बिछौने से उठभागने की चेष्टा करता है।

सिर—उठ खड़े होने पर, झाँकने पर, ऊपर देखने पर, घुमनी का आना। सिर का उष्ण होना और चेहरे का तमतमाना और लाल होना। 'सिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भारी होना'; माथे में तपकती हुई पीड़ा, जो चलने फिरने से अधिक होती है। मानों भेजे को उबलता हुआ पानी हिला रहा है। मानो बाल खड़े हुए जाते हैं।*

नेत्र—लाली। प्रकाश का न सहा जाना। पलक में कठोर और लाल सूजन।

कान—'घर्घर शब्द सुन पड़ना।' बाह्यशब्द का न सह सकना।

नाक—'रुधिर का गिरना।' विशेष कर जब रोगी अधिक रुधिरवाला है।

चेहरा—उभरा हुआ, लाल, गर्म; परन्तु उठने पर फीका।

मुँह और गला—होंठ सूखे और काले। मुँह और जीभ सूखी। जीभ पर सफ़ेदी जमी हुई। गले में सूजन और लालिमा और जलता हुआ, डङ्क मारने का सा, दर्द। निगलने में डङ्क का सा दर्द।

पेट—पानी के सिवा 'सब चीज़ कड़वी' लगना। 'प्यास बुझती ही नहीं।' 'कड़वा' पित्त का वमन ठंढे पसीने के साथ। 'मेदे की गर्मी'। 'यकृत्' (कलेजे) की गर्मी, 'यकृत् के पास दबाव। 'आँतों की गर्मी,' शूलसमेत। छूने में दर्द।

दस्त—'बार बार, थोड़ा, और दर्द के साथ।' हरा, बिलकुल पतला, बाँटे हुए बथुए की तरह। सफ़ेद।

पेशाब—रुकावट, गुर्दे के दर्द के साथ। लाल चमकदार पेशाब का तकलीफ़ से और थोड़ा उतरना।

जननेन्द्रिय—पेशाब करने में जलन। स्त्रियों में मासिक विकार (इत्यादि)।

श्वासेन्द्रिय (फेफड़े इत्यादि)—कंठनाल में गर्मी और सूजन। सूखी खाँसी। प्लूरिसी और निउमोनिया (वक्षोग्रह और पार्श्वशूल)। हृदय का धड़कना, व्यग्रता के साथ।

निद्रा—नींद का न आना। 'बेचैनी और उलझन'।

ज्वर—नाड़ी-कठोर, भरी हुई और वेगवती। जाड़ा। 'शरीर रूखा और गर्म'। 'तीक्ष्ण पिपासा'। 'उलझन, घबराहट'। नाड़ियों में ठंढक।

त्वचा—गर्म, लाल, चमकदार सूजन। 'शीतला'। बच्चों की रिस पित्ती। 'विष्फोटक'।

विशेष लक्षण—अधिक रुधिरवाले मनुष्यों के योग्य। सिर, दिल या सीने में ख़ून का जमाव। सर्द रूखी पछाहीं हवा के असर से बीमारी। शाम को गर्म कमरे में बीमारी का बढ़ना।

ये तो हुए सिंगिया के लक्षण। अब समझिए कि हमारे सामने कोई रोगी है, वह ज्वर की औषध माँगता है, उसमें हम इतने लक्षण पाते हैं—

ज्वर बराबर चढ़ा रहता है; पसीना आता ही नहीं है, बदन बिलकुल रूखा और गर्म है; प्यास ऐसी है कि कितना ही पानी पिये, बुझती ही नहीं; चुपचाप नहीं लेटता, कभी इस करवट, कभी उस करवट, कभी हाथ पटक; कभी पैर पटक; नाड़ी भरी और वेग से उछलती हुई; माथे में दर्द; मुँह तमतमाया हुआ।

हमारे अनुमान में आता है कि रोगी के लक्षण सिंगिया के लक्षणों के समान हैं, हम ईश्वर का नाम लेकर उसे सिंगिया देते हैं और वह आराम हो जाता है। यही होम्योपेथी अर्थात् समचिकित्सा का (संक्षेप से) सिद्धान्त है।

अब आप समझ गये होंगे कि—

आयुर्वेदे यथा प्रोक्तं विषस्य विषमौषधम्।
तथा समचिकित्सायां समस्य सममौषधम्॥

(२) लक्षणों की अतिव्याप्ति।

अब निदान का चमत्कार भी संक्षेप से सुन लीजिए। इतना तो आप ऊपर जान ही चुके हैं कि सिंगिया के लक्षण देखकर जान लिया जाता है कि रोग सिंगिया का है अर्थात् सिंगिया से साध्य है। यदि सिंगिया के बहुत से मुख्य लक्षण रोगी में पाये गये तब तो आप कह देंगे कि यह रोग सिंगिया का चित्र ही है, परन्तु बहुधा यह होता है कि रोग में कुछ लक्षण एक दवा के और कुछ लक्षण दूसरी दवा के प्रतीत होते हैं, उस अवस्था में दवा का निदान कठिन होता है और दवा के मुख्य लक्षणों से काम

* ' ' ऐसा चिन्ह आवश्यक लक्षणों की सूचना के लिए है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेना पड़ता है जिससे सामान्य वा गौण लक्षणों से भ्रान्ति न हो। जिस तरह हमने सिंगिया के लक्षणों का कुछ उल्लेख किया है उसी तरह अब संखिया के लिखते हैं। पाठक यदि दोनों को परस्पर मिलावेंगे तो हमारा निदानसम्बन्धी कथन (जो हुआ है और जो होने को है) उनको समझ में सुगमता से आजावेगा। (यह ' ' चिन्ह मुख्य लक्षण सूचित करने के लिए हैं)

संखिया* ।

मानसिक और मस्तिष्कसम्बन्धी लक्षण—'घोर मानसिक क्लेश और मृत्यु का भय'। 'बहुत बड़ी बेचैनी और उलझन।' अकेले छोड़े जाने का भय। बेहोशी। बिस्तर पर से अचानक उठकर छिपना। उदासीनता। 'शिथिलता'।

सिर—'नियत काल में पीड़ा,' जो ठंढे पानी से कम होती है। 'तपकना,' वमन करने की इच्छा समेत। 'बोझा,' विशेष कर माथे में।

नेत्र—पीड़ा बहुत बड़ी 'जलन के साथ'। 'गटा पर दाग़ वा व्रण'।

नाक—व्रण, जलन के साथ। नाक का 'बहुत बहना'। 'जलन पैदा करने वाले' पानी के साथ।

चेहरा—भभराया हुआ, विशेषकर आँखों के आस पास। 'फीका, मृत्यु अवस्था का सा,' बिगड़ी हुई चेष्टा के साथ। 'होंठ काले और सूखे' जिनको वह चाटा करता है।

मुँह और गला—मुँह में जलन, सियाही लिये सुर्ख़ी। राल में दुर्गन्ध और गाढ़ापना। 'ज़बान कुछ नीली,' वा सफ़ेद, वा 'काली' वा 'खैरी' रंग की। गले में जलन।

पेट—खाने में स्वाद नहीं। 'बहुत तीक्ष्ण प्यास'। 'पानी बार बार पीता है परन्तु थोड़ा थोड़ा'। वमन, विशेषकर 'खाने वा पीने के उपरान्त'। 'काले पित्त और ख़ून का वमन'। 'दस्त और क़ै बहुत बड़ी कमज़ोरी के साथ'। मेदे में जलन। 'खाने के पश्चात् पत्थर का सा अड़ना'। छूने से दर्द। 'बरफ़ पीने से वा फल खाने से' 'हाज़िमे में फ़क़' शूल आँतों को ऐंठन के साथ। 'आँतों में जलन'।

दस्त—'हरा काला कफीला'। 'काला पानी सा'। 'बहुत दुर्गन्ध वाला'। आँतों में 'काटने की सी' पीड़ा। बिना पीड़ा के अतीसार। 'एकबारगी शिथिल हो जाना'।

जननेन्द्रिय—मासिक विकार। मूत्र विकार (इत्यादि)।

श्वासेन्द्रिय—खाँसी, ऊब के साथ, मानों 'गंधक का धुआँ' मुँह में चला गया हो। 'सूखी खाँसी, 'खाँसने में घाव लगने की सी पीड़ा'। कफ कठिनता से और थोड़ा निकलना। उसमें कभी कभी 'रक्त का होना'। छोटी साँस क्लेश के साथ, विशेष कर 'उंचाई चढ़ते हुए' और 'रात को' और 'लेटने की अवस्था में'। 'ऊब की शङ्का से लेटता नहीं है'। तकिया के सहारे औंधे लेटना।

निद्रा—'नींद का न आना' और हाथ पैर का फेंकना और उलझन। नींद आने के समय चौंक पड़ना।

ज्वर—नाड़ी बारीक, वेगवती, और बीच में रुकनेवाली। शरीर ठंढा और रूखा, अथवा ठंढे चपकीले पसीनेवाला। 'पानी पीने पर जाड़ा लगना'। बाहरी (अर्थात् धूप वा आग की) गर्मी से जाड़े का कम होना। जलानेवाली गर्मी, मानों नसों में 'उबलता हुआ पानी दौड़ता है'। 'आन्तरिक ज्वर,' तीसरे पहर तीन बजे आनेवाला, हड्फूटन।

त्वचा—रूखा, खुरखुरा चमड़ा। 'काले छाले जलन और दर्दवाले'। 'लाल दाने जो फैल कर' पपड़िया जाते हैं। 'मुर्दार' व्रण। 'व्रण जिससे पतला ख़ूनी मवाद बहता' है। अदीठ जिसमें 'आग की सी जलन होती है'।

विशेष लक्षण—बल का शीघ्रता से घट जाना। अत्यन्त तीक्ष्ण प्यास, थोड़ा पीना और बार बार पीना। जलन के साथ दर्द। अर्धरात्रि के ऊपर रोग का बढ़ना। गर्मी से आराम मिलना।

* यदि सिंगिया वा संखिया के पूरे लक्षण दिये जाते तो बहुत विस्तार हो जाता। यह लेख "समचिकित्सा" का केवल परिचय देने के लिए है, पाठकों को चिकित्सक बनाने के लिए नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठक! अब आप देखते हैं कि सामान्य दृष्टि में बहुत से लक्षण सिंगिया और संखिया के मिलते हैं, दोनों में ज्वर, दोनों में उलझन, दोनों में घबराहट, इत्यादि हैं, तथापि अभ्यासी चिकित्सक को सिंगिया और संखिया में बड़ा अन्तर देख पड़ता है जिससे वह कभी भ्रान्ति में नहीं पड़ सकता। हम लोग बकरियों का दल चाहे नित्य देखें परन्तु बकरी बकरी का परस्पर अन्तर नहीं बतला सकते, तौभी उनको चरानेवाला एक एक को भली भाँति पहचानता है। यद्यपि सब बकरियाँ अकसर काली होती हैं, सबके सींग होते हैं, सबके थन होते हैं और सबका मिमियाना एक तरह का प्रतीत होता है; तथापि इन व्याप्त लक्षणों को परवा न करके चरवाहा बकरी बकरी को पहचान लेता है। यही व्यवस्था सम-चिकित्सा-निपुण लोगों की औषधों के विषय में है।

उदाहरण के लिए लीजिए ज्वर।

चिकित्सक—तुम्हारी प्यास कैसी है?

रोगी—अरे, महाराज, पानी पीते पीते प्राण जाते हैं, बड़ी प्यास लगती है*।

चिकित्सक—(उलझन देखकर, मन में) इतनी उलझन तो संखिया ही में हो सकती है, (प्रकट) भला तुम पानी पीते हो तो घूँट दो घूँट पीते हो कि गिलास डेढ़ गिलास, एक बार में?

रो०—गिलास दो गिलास।

चि०—(मन में) तो संखिया तो है नहीं, क्योंकि उसमें एक बार में थोड़ा पानी पिया जाता है। यदि इतना पानी पीने से दो चार घड़ी को प्यास मिट जाती है तो "ब्रायोनिया†" की प्यास ठहरेगी। (प्रकट) अच्छा उतना पानी पीने पर घड़ी दो घड़ी को प्यास बुझ जाती है?

रो०—(भौहैं सिकोड़ कर) न कहीं!

चि०—(मन में) तब तो ब्रायोनिया की प्यास है न संखिया की प्यास है, यह तो सिंगिया अथवा "नेट्रम*" की प्यास है, परन्तु नेट्रम में इतनी उलझन नहीं होती, यह सिंगिया का ज्वर है, अच्छा कुछ और पूछें, (प्रकट) पसीना आता है?

रो०—बिलकुल नहीं!

चि०—(नाड़ी देखकर और बदन को छूकर) ज्वर कब से आया है?

रो०—परसों रात को नाच देखकर लौटे आते थे। सर्दी खा गये, तभी से समझिए।

चिकित्सक का निदान "सिंगिया" पर स्थिर हो जाता है।

निदान का आधार एक वा दो वा तीन लक्षणों पर नहीं है किन्तु समग्र लक्षणों पर। और जिस दवा के अधिकांश लक्षण रोगी में पाये जाते हैं वही उसको दी जाती है और लाभ पहुँचाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि लक्षणों की अतिव्याप्ति आभास मात्र है, वास्तव में प्रत्येक औषध के लक्षण पृथक् पृथक् ही हैं।

(३) लक्षणों का अनुसन्धान।

यह तो स्पष्ट ही है कि सम-चिकित्सा में वही वस्तु उपयोगी हो सकती है जो स्वस्थ अवस्था में खाने से रोग उत्पन्न कर सकती है। इसी कारण बहुधा समचिकित्सा की दवाइयों की विषसंज्ञा हुआ करती है जैसे सिंगिया, संखिया, गन्धक, हरताल, अहिफेन, घुमचिल, कुचला, धतूरा, भङ्ग, सर्पविष इत्यादि। इससे यह न समझना चाहिए कि जिस वस्तु के खाने से मनुष्य मर जाता है अथवा बहुत कष्ट पाता है वही विष है, किन्तु जो वस्तु स्वस्थ मनुष्य के शरीर में विकार पैदा कर सकती है वही विष है और रोग को दूर करने का सामर्थ्य रखती है यदि उस रोग में उसके लक्षण पाये जायँ। जैसे सोना, चाँदी, निमक, मिर्च, केसर, कस्तूरी, कपूर, कोयला, तमाखू, जायफल, रेत, इत्यादि। अब यह सवाल पैदा होता है कि संखिया-सदृश विख्यात विषों के लक्षण तो इसलिए विदित हैं कि संखिया खा लेने

* सिंगिया और संखिया के सिवाय और कई दवाओं में प्यास होती है।

† दवा का नाम, इसमें प्यास बहुत होती है परन्तु एक बार जी भर पानी पी लेने से बहुत देर तक तृप्ति रहती है।

* निमक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले बहुधा देखे गये हैं। परन्तु सैकड़ों दूसरे विष जो "सम-चिकित्सा" में प्रयुक्त होते हैं किस तरह जाने समझे गये? उत्तर यह है कि संसार के उपकार के लिए कष्ट सहन करनेवाले और प्राणों को हथेली पर रख लेनेवाले वीर पुरुषों की खोज ही से हमको इतने विषों के लक्षण ज्ञात हुए हैं। वह लोग विष खाते हैं और जब तक होश में रहते हैं तब तक तो स्वयं अपने तन मन के लक्षण लिखते हैं और जब वह बेहोश हो जाते हैं तब निपुण डाक्टर उनके लक्षणों को लिखते जाते हैं। ऐसे ही अनुसन्धान का परिणाम होम्योपेथी की "मेटीरिया मेडिका" (निघण्ट) के स्वरूप में रोगियों का उपकार कर रहा है। इस समय ऐसा कोई रोग नहीं हैं जो दूसरी चिकित्साओं से साध्य हो और समचिकित्सा से साध्य न हो।

(४) सूक्ष्ममात्रा प्रमाण।

यह तो आप जान चुके कि समचिकित्सा में विष ही से अमृत का काम लिया जाता है। अब आप यह पूछ सकते हैं कि "विष की मात्रा कितनी होती है"? हम क्या उत्तर दें? यदि कोई काँटा संसार में ऐसा हो जिससे हम वह सूक्ष्ममात्रा तौल सकें तो हम आपको मात्रा का परिमाण बतला सकें, बिना ऐसे काँटे के हम यही कह सकते हैं कि "अत्यन्त सूक्ष्म, सूक्ष्मात् सूक्ष्म"! तथापि यदि आप अपनी गणितशक्ति से काम लेना चाहें तो हम वह सूक्ष्मता दरसाने को उद्यत हैं। अच्छा तो लंबा काग़ज़, (अथवा स्लेट) और पेन्सिल लेकर ध्यान से हिसाब लगाइए। सुनिए औषध का मूल निष्कर्ष (जिसे मदर टिङ्क्चर" कहते हैं और हम मूलसार वा अर्क कह सकते हैं) समचिकित्सा में, प्रायः, प्रयोग ही नहीं किया जाता तथापि यह मान कर कि उस के एक बिन्दु में एक राई भर दवा है*, यदि वह एक बिन्दु किसी रोगी को दिया जावे तो उसको मानों राई भर वह दवा दी गई, परन्तु वह बिन्दु न पिला कर उसमें ९९ बिन्दु पानी मिला कर शीशी को ख़ूब हिला दीजिये जिससे वह एक बिन्दुवाली दवा सब (१०० बूँद) में व्याप्त होजाय। इस मेल से जो दवा तैयार हुई उसे "फ़र्स्ट पोटेन्सी," वा "फ़र्स्ट डाइल्यूशन"* कहते हैं। हम उसे "प्रथम शक्ति" वा "प्रथम मिश्रण" कह सकते हैं। ये मिश्रण बहुधा अल्कोहल में तैयार किये जाते हैं, पानी में नहीं।

अब स्पष्ट ही है कि मूल अर्क की अपेक्षा प्रथम मिश्रण में दवा अधिक सूक्ष्म है क्योंकि जितनी दवा एक बूँद में थी वह अब १०० बूँदों में फैल गई है इसलिए प्रथम मिश्रण के एक बूँद में $\frac{१}{१००}$ राई दवा ठहरी।

अब प्रथम मिश्रण का एक बूँद और ९९ बूँद पानी उसी तरह ख़ूब हिला कर मिलाइए। यह दो नंबर का अथवा दूसरा मिश्रण तैयार हुआ। स्पष्ट है कि इसके एक बूँद में $\frac{१}{१००\times१००}$ राई भर दवा है। इसी तरह तीसरे मिश्रण में एक बूँद में $\frac{१}{१००\times१००\times१००}$ राई भर दवा होगी और तीसवें मिश्रण में एक बूँद में $\frac{१}{१००^{३०}}$ राई भर दवा होगी† और सवें मिश्रण में १ बूँद में $\frac{१}{१००^{१००}}$ राई भर दवा होगी और हज़ारवें मिश्रण में १ बूँद में $\frac{१}{१००^{१०००}}$ राई भर दवा होगी। यह विधि Centesimal scale की है। यदि ९९ को जगह ९ बूँद लें तो Decimal scale हो। इनको हम शतक्रम और दशक्रम कह सकते हैं।

अब आपको अवकाश हो तो हिसाब लगा लीजिए कि समचिकित्सा में मात्रा कितनी सूक्ष्म होती है!

जानना चाहिए कि जितना ही पुराना रोग होता है उतना ही ऊँचा मिश्रण प्रयोग किया जाता है और नवीन रोग में भी बहुधा तीसरे मिश्रण से नीचे को दवा नहीं दी जाती।

जो डाक्टर तोलों दवाइयों के मिक्स्चर रोगियों को पिलाया करते हैं वह समचिकित्सा की अत्यन्त

* ऐसा हम सूक्ष्मता दिखलाने के लिए मान लेते हैं, वास्तव में इससे भी कम दवा होती है।

* Frist potency or dilution.

† $१००^{३०}$ का यह अर्थ है कि १०० को १०० से तीस बार गुणो, इसी तरह $१००^{१०००}$ का अर्थ है कि १०० को १०० से १००० बार गुणो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्ष्म-मात्रा की हँसी करते हैं। वह कहते हैं कि "हरद्वार में एक शीशी मूल अर्क को गङ्गाजी में डाल दो और गङ्गासागर में जाकर कई बोतलें भर लो; बस दवा सूक्ष्म हो गई"। हम इतना ही कह सकते हैं कि जो लोग ऐसा कहते हैं उनकी बुद्धि बहुत ही स्थूल है। यह लेख दीर्घ हो गया है। किसी दूसरे लेख में हम डाक्टर हैनेमन, होम्योपेथी के आविष्कर्त्ता, का शुभ जीवनचरित देते हुए, दिखलावेंगे कि इस प्रशस्त चिकित्सा ने अनेक परीक्षाओं में विजय ही नहीं पाई है किन्तु बड़े बड़े एलोपेथिक डाक्टरों को सच्चा होम्योपेथ अर्थात् समचिकित्सक बना दिया है और आज दिन सभी सभ्य देश उसके चमत्कार को स्वीकार करते हैं, यहाँ तक कि उनमें समचिकित्सा की पाठशालाएँ और चिकित्सालय तक जारी हो चुके हैं।

कथित प्रकार से मिश्रण बनाने से दवा की शक्ति बढ़ जाती है और रोगी के शरीर में सूक्ष्म से सूक्ष्म उन स्थानों में पहुँचने को उसमें समर्थता आ जाती है जहाँ स्थूलमात्रा की कदापि गति नहीं है। हम स्वयं ऊँचे मिश्रणों से पुराने ज्वर, अतीसार, श्लेष्मा, नासूर सदृश रोग आराम कर चुके हैं, और नवीन रोगों का तो कुछ कहना ही नहीं है। नवीन रोगों में भी जो काम होम्योपेथी कर सकती है वह एलोपेथी नहीं कर सकती और हैजे में तो समचिकित्सा को छोड़ दूसरा इलाज करना बहुत बड़ी भूल है। हम उन अलभ्य वा दुर्लभ जड़ी बूटियों की अवज्ञा नहीं करते जो महात्माओं के आशीर्वाद का सा प्रभाव दिखलाती हैं, किन्तु व्यवहृत और प्राप्य दवाइयों ही की क्षमता का विचार कर रहे हैं।

सूक्ष्ममात्रा के विषय में स्थूलमात्रा के पक्षपातियों को कम से कम एक बहुत मोटी बात तो विचार ही लेना चाहिए। वह सोचें कि जब वह किसी सुगन्धित वस्तु की सुगन्ध प्रतीत करते हैं तब उनकी नासिका में उस वस्तु की कितनी मात्रा प्रवेश करती है? क्या वह मात्रा राइयों वा रत्तियों से तोलने योग्य होती है? कदापि नहीं। तथापि वह अपनी सत्ता की आप ही साक्षी है। एक चम्पे का फूल कितने दिन तक कितने बड़े कमरे की हवा को सुगन्ध देकर, तौल में कितना घट सकता है, इसका भी स्थूलमात्राभिमानी कुछ विचार करें, रही हरद्वार और गङ्गासागरवाली बात, सो उसका उत्तर यह है कि जो बोतल गङ्गासागर में भरी जाती है यदि उसमें हरद्वार में फेंकी हुई दवा का कोई अंश आ सके तो अवश्य वह दवा का काम दे—यही कारण है कि ऊँचे मिश्रण बनाते हुए दवा का बूँद एक बन्द शीशी में पानी के साथ हिलाया जाता है।

कलकत्ते में डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार होमियोपैथी के प्रसिद्ध चिकित्सक थे। उनको मरे अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। वे पहले बहुत बड़े एलोपैथ डाक्टर थे। पर जब से उन्होंने समचिकित्सा की महिमा को जाना तब से एलोपैथी चिकित्सा छोड़ दी।

राय देवीप्रसाद (पूर्ण)।

महाकवि कालिदास का वसन्त-वर्णन।

छायानुवाद-सहित।

जिगमिषुर्धनदाध्युषितां दिशं, रथयुजा परिवर्त्तितवाहनः।
दिनमुखानि रविर्हिमनिग्रहैर्विमलयन्मलयं नगमत्यजत्॥

धनपति के वसने की दिशा को
जाने के इच्छुक होकर,
हिम-विनाश करने से दिनमुख
करते हुए समुज्वल-तर।
लौटाया है वाहन जिनका
अरुण सारथी ने पावन,
त्याग दिया ऐसे दिनकर ने
मलय-महीधर मनभावन॥ १॥

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम्।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम्॥

प्रथम विविध कुसुमों का सुन्दर
जन्म, सौख्यकारी अत्यन्त,
तदनन्तर अधरोपमान नव,
मृदुल, लोल पल्लव छविवन्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके पीछे मधुप और पिक-
शब्द मधुर मद-पूर्ण अनन्त,
यों क्रम से तरु-वनस्थली में
प्रकट हुआ ऋतुराज वसन्त ॥ २ ॥

नयगुणोपचितामिव भूपतेः सदुपकारफलां श्रियमर्थिनः ।
अभियुयुः सरसो मधुसम्भृतां क्रमालिनीमालिनीरपतत्त्रिणः ॥

सत्पुरुषों का सदुपकार ही
है जिसका फल अति अभिराम,
सुयश, शौर्य्य, नीत्यादि गुणों से
गई बढ़ाई जो अविराम ।

ऐसी नृप-लक्ष्मी के सम्मुख
याचक-पंक्ति सदृश सानन्द,
मधुमय सर-नलिनी-समीप चलि
आई अलि-हंसावलि मन्द ॥ ३ ॥

कुसुममेव न केवलमार्तवं नवमशोकतरोः स्मरदीपनम् ।
किसलयप्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिताश्रवणार्पितः ॥

ऋतु-सम्बन्धी नव अशोक का
खिला प्रसून मनोहारी ।
हुआ न मदनोद्दीपक केवल,
परमोत्तम-परिमलधारी ॥

किन्तु कामियों का मद-कारक,
कान्ता-कर्णस्थित, कोमल,
कामोद्दीपक हुआ कोंपलों का
गुच्छा भी अति निर्मल ॥ ४ ॥

विरचिता मधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषकाः ।
मधुलिहां मधुदानविशारदाः कुरबका रवकारणतां ययुः ॥

वर-वसन्त-निर्मित उपवन की
शोभा के शरीर-ऊपर,
विमल पत्र-रचना सम शोभित
नव-पल्लव-पूरित होकर ।

देने में मधु-दान मनोहर
अति उदार अत्यन्त चतुर,
भौंरों के गुञ्जार-हेतु सब
कुरबक वृक्ष हुए आतुर ॥ ५ ॥

सुवदनावदनासवसंभृतस्तदनुवादिगुणः कुसुमोद्गमः ।
मधुकरैरकरोन्मधुलोलुपैर्बकुलमाकुलमायतपङ्क्तिभिः ॥

विधु-वदनी के वदनासव के
कुल्ले से सत्वर उत्पन्न,
अति सुखकर, अतएव उसी के
तुल्य मनोहर-गुण-सम्पन्न ।

पुष्पित सुमनों के समूह ने
फैलाकर मकरन्द अनन्त,
मधु-लोलुप अलि-अवली लाकर
व्याकुल बकुल किये अत्यन्त ॥ ६ ॥

उपहितं शिशिरापगमाश्रया मुकुलजालमशोभत किंशुके ।
प्रणयिनीव नखक्षतमण्डनं प्रमदया मदयापितलज्जया ॥

ऋतुपति-सम्मति से पलाश को
प्राप्त हुआ मुकुलों का जाल,
बाल-चन्द्र की छटा छीन कर
वह यों शोभित हुआ विशाल ।

मद से लज्जा त्यागी जिसने
उस प्रमदा से, क्रीड़ा-काल,
दिया हुआ नखर-क्षत-भूषण
प्रिय-जन-तन पर जैसे लाल ॥ ७ ॥

व्रणगुरुप्रमदाधरदुःसहं जघनमिर्विषयीकृतमेखलम् ।
न खलु तावदशेषमपोहितुं रविरलं विरलं कृतवान्हिमम् ॥

व्रणाभरण-भूषित वधुओं के
अधरों को दुःसह भारी,
कटि-किङ्किणी हटाने वाला
जघनों से कलरवकारी ।

किया गया था नष्ट न तब तक
रवि से सारा हिम दुर्द्धर,
किन्तु विरल कर दिया गया था,
हो जावे जिसमें सुखकर ॥ ८ ॥

अभिनयान्परिचेतुमनोद्यता मलयमारुतकम्पितपल्लवा ।
अमदयत्सहकारलता मनः सकलिका कलिकामजितामपि ॥

बारवधू के तुल्य अति चतुर
भाव दिखाने में सुन्दर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलयानिल-सञ्चालित जिसके
पल्लवरूपी कोमल कर।
नव कलियों से भूषित ऐसी
आम्र-लता ने जहाँ तहाँ,
रागादिक रहितों के मन भी
अहो! मत्त कर दिये महा॥ ९॥

प्रथममन्यभृताभिरुदीरिताः प्रविरला इव मुग्धवधूकथाः।
सुरभिगन्धिषु शुश्रुविरे गिरः कुसुमितासु मिता वनराजिषु॥

सुरभि-गन्ध वाले पुष्पों से
शोभित जो हो रहीं प्रधान,
ऐसी विपिन-राजियों में अति-
श्रवण सुखद माधुर्य्य निधान।
नव-यौवन-आगम में परिमित
मुग्धा के आलाप-समान,
मृदु, मञ्जुल, पञ्चम के स्वर में
सुना गया कुछ कुछ पिक-गान॥ १०॥

श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः॥

श्रवण-सुखद मधुपों के रव-मय
मधुर गीत गाने वाली,
कुसुम-रूप कोमल दसनों से
हँसती हुई कान्तिशाली।
पवनाहत-पल्लव-हाथों से
भाव प्रकट करने वाली,
उपवन-पास-वासिनी सुन्दर
शोभित हुई लता-जाली॥ ११॥

ललितविभ्रमबन्धविचक्षणं सुरभिगन्धपराजितकेसरम्।
पतिषु निर्विविशुर्मधुमङ्गनाः स्मरसखं रसखण्डनवर्जितम्॥

ललित-विलास-कलाओं में अति
मदोन्मत्त करने वाला,
निज सुगन्ध से बकुल-पुष्प के
मद को भी हरने वाला।
मदनोद्दीपक मीठे मधु को
वधुओं ने अपने मुख से,
पान किया, रस-भङ्ग-रहित,
पति-सङ्ग, उमङ्ग-सहित, सुख से॥१२॥

शुशुभिरे स्मितचारुतराननाः स्त्रिय इव श्लथशिञ्जितमेखलाः।
विकचतामरसा गृहदीर्घिका मदकलोदकलोलविहङ्गमाः॥

विकसित पद्म और सलिलप्रिय
हंसादिक-रव-पूर्ण, अहा,
निर्मल-जल-पूरित गृह-वापी
यों अति शोभित हुई महा।
हँसने से सुन्दर मुखवाली
वनिता-वर्य्य विमल-वसना,
शोभित होती है पहने ज्यों
बजती हुई शिथिल रसना*॥ १३॥

उपययौ तनुतां मधुखण्डिता हिमकरोदयपाण्डुमुखच्छविः।
सदृशमिष्टसमागमनिर्वृतिं वनितयाऽनितया रजनीवधूः॥

मदन-मित्र ऋतुपति वसन्त से
खण्डित जो की गई विशेष,
चन्द्रोदय से जिसके मुख की
हुई पाण्डु शोभा निःशेष।
प्राप्त हुई कृशता को ऐसी
रजनीरूपीवधू प्रधान,
प्रिय-सङ्गम के सुख से वञ्चित
खिन्न खण्डिता प्रिया समान॥ १४॥

अपतुषारतया विशदप्रभैः सुरतसङ्गपरिश्रमनोदिभिः।
कुसुमचापमतेजयदंशुभिर्हिमकरो मकरोर्जितकेतनम्॥

हिम विनष्ट होने से अतिशय
शोभित मन हरने वाली,
सुरत-सङ्ग-सम्भव-श्रम को त्यों
शीघ्र शान्त करने वाली।
शीतल-रश्मि-राशि से शशि ने
सुमन-शरासन के धारी,
रति के पति, नत, मकरध्वज को
दी प्रचण्डता अति भारी॥ १५॥

* रसना = तागड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुतहुताशनदीप्ति वनश्रियः प्रतिनिधिः कनकाभरणस्य यत्।
युवतयः कुसुमं दधुरार्द्रितं तदलके दलकेसरपेशलम्॥

हवन-हुताशन-शिखा-तुल्य, अति
कान्तिमान, सुखकर जी को,
स्वर्ण-भूषणों का प्रतिनिधि सा
छवि-दायक विपिन-श्री को।
निर्मल दल-केशर-युत कोमल
कर्णिकार का कुसुम रुचिर
पाकर प्यारों से वधुओं ने
अलकों में रक्खा फिर फिर॥ १६॥

अलिभिरञ्जनबिन्दुमनोहरैः कुसुमपर्ङ्क्तिनिपातिभरङ्कितः।
न खलु शोभयति स्म वनस्थलीं न तिलकस्तिलकः प्रमदामिव॥

पुष्प-पंक्तियों पर पराग के
लिए पतित होने वाले,
कज्जल-बिन्दु-समान रूप में
अति सुन्दर काले काले।
मदोन्मत्त मधुपों से मण्डित
तिलक-वृक्ष से वनस्थली,
रुचिर तिलक से नव-तरुणी सम
शोभित, लगती बहुत भली॥ १७॥

अमदयन्मधुगन्धसनाथया किसलयाधरसङ्गतया मनः।
कुसुमसम्भृतया नवमल्लिका स्मितरुचा तरुचारुविलासिनी॥

कोमल-किसलय रूपी जिसके
अधर मनोहरता की खान,
अति शोभित कर रही जिसे है
स्वच्छ-कुसुमरूपी मुसकान।
मधु-सुरभित, तरु की विलासिनी,
ऐसी नव-मल्लिका निहार,
उसकी अद्भुत सुन्दरता से
मन मतवाला हुआ अपार॥ १८॥

अरुणरागनिषेधिभिरंशुकैः श्रवणलम्बपदैश्च यथाङ्कुरैः।
परिभृताविरुतैश्च विलासिनः स्मरबलैरबलैकरसाः कृताः॥

अरुण-वर्ण-छवि-हरने वाले
रुचिर कुसुम्भी वस्त्रों ने,
रक्खे हुए तथा श्रवणों में
नवल यवाङ्कुर शस्त्रों ने।
वैसेही कोकिल-कलरव ने
बनकर मदन-चमू के मंत्र,
विना विलम्ब विलासी जन सब
किये अहो! अबला-परतंत्र॥ १९॥

उपचितावयवा शुचिभिः कणैः कलिकदम्बकयोगमुपेयुषी।
सदृशकान्तिरलक्ष्यत मञ्जरी तिलककजालकजालकमौक्तिकैः॥

शुभ्र सुगन्धित रजःकणों से
पुष्ट हुए अवयव वाली,
मधुपों से समूह से संयुत,
मनोमोहिनी-छवि-शाली।
कामिनयों के कच-कलाप-युत
मानों मुक्ता-मयी लड़ी
तिलक वृक्ष की मृदुल मञ्जरी
दृशक-दल को दीख पड़ी॥ २०॥

ध्वजपटं मनदस्य धनुर्भृतश्छविकरं मुखचूर्णमृतुश्रियः।
कुसुमकेसररेणुमलिव्रजा सपवनोपवनोत्थितमन्वयुः॥

पुष्पायुध-धारी मनसिज की
ध्वजारूप, अति परिमल-पूर्ण,
ऋतुपति की सुखमा के मुख का
शोभावर्धक सुन्दर चूर्ण।
उपवन-पवन-प्रेरणा से उड़
जो ऊर्ध्व छाई स्वच्छन्द,
ऐसी सुमन-धूलि के पीछे
गये मिलिन्द-वृन्द सानन्द॥ २१॥

[रघुवंश से—
मैथिलीशरण गुप्त।

शिकागो-विश्वविद्यालय।

"Education must be by the poople, for the people, and of the people."

इस लेख में मेरा आशय केवल शिकागो-विश्वविद्यालय की बड़ी बड़ी इमारतों का वर्णन करना नहीं, किन्तु भारतवर्ष के विद्याप्रचार-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करने का भी है। मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरीका के शिकागो-विश्वविद्यालय के उदाहरण द्वारा यह दिखलाना है कि किस प्रकार भारतवर्ष के कालेज और पाठशालायें विश्वविद्यालय के रूप में होकर देश के लिए लाभकारी हो सकती हैं? किस प्रकार अमरीका में नवयुवकों को आत्मसाहाय्य की शिक्षा दी जाती है? किस प्रकार अमरीका के धनाढ्य पुरुष अपनी सम्पत्ति को देश के उपकारार्थ अनेक प्रकार के विज्ञान-सम्बन्धी कालेज और स्कूल खोल कर ख़र्च करते हैं? इस लेख के पढ़ने से यह भी ज्ञात होगा कि अमरीका में बच्चों की शिक्षा का सारा प्रबन्ध उन्हीं के मा-बाप के हाथ में है। क्या ईसाई, क्या मुसलमान, क्या यहूदी, क्या मारमन, क्या थियासोफ़िस्ट सभी विद्यार्थियों के पठन-पाठन का एक सा प्रबन्ध है। यह नहीं कि लोग अपनी ढाई चावल की खिचड़ी अलग ही पकाते हों। सब कहीं प्रेम और ऐक्य का अखण्ड राज्य है। एक दूसरे के अधिकारों के लिए एक सा ध्यान है। यही कारण है कि प्रशान्तमहासागर से लेकर ऐटलांटिक महासागर तक सब अमरीका-निवासी अपनी जाति की उन्नति में दत्तचित्त हैं और संसार की समृद्धि उनके सामने हाथ बाँधे खड़ी है।

सबसे पहले मैं उस धर्मात्मा, सदाचारी, विद्वान्-शिरोमणि पुरुष का परिचय आपसे कराता हूं जिसके पुरुषार्थ से शिकागो-विश्वविद्यालय इस प्रसिद्धि को पहुँचा है। उस महापुरुष का नाम विलियम रेने हारपर है। आपने अपने शहर निउ कनकार्ड (New Concord, Ohio) के हाईस्कूल में विद्याध्ययन प्रारम्भ किया और मस्किन्गम कालेज (Muskingum College) से, १४ वर्ष की उम्र में, बी० ए० की पदवी प्राप्त की। इसके बाद आप तीन वर्ष तक भाषाओं का अध्ययन करते रहे। १८७३ में, उन्होंने अमरीका की प्रसिद्ध यूनीवर्सिटी येल (Yale) में दो वर्ष पढ़कर Ph. D. (दर्शनशास्त्र के आचार्य) की महापदवी पाई। इसके उपरान्त कई विश्वविद्यालयों में आप अध्यापक और अधिष्ठाता रहे। १८९१ में शिकागो के पुराने विश्वविद्यालय के प्रेज़िडंट नियत हुए, और १८९१ से लेकर १९०६ के जनवरी मास तक तन मन से उसकी सेवा करते हुए परलोकगामी हुए।

यह इन्हीं महाशय के परिश्रम, निःस्वार्थभाव और विशालबुद्धि का प्रभाव था जिससे शिकागो-विश्वविद्यालय एक साधारण कालेज से, १४ वर्ष के अन्दर, संसार के बड़े बड़े विश्वविद्यालयों की गणना में आने लगा। इन्हीं के प्रभाव से अमरीका के सब से अधिक धनाढ्य जान डी. राकफेलर ने इनके विद्यालय के लिए ३ करोड़ ३० लाख रुपया दिया। इनके वाक्य को कोई नहीं टालता था। जिससे जाकर, यह कहते कि विश्वविद्यालय के लिए अमुक वस्तु की आवश्यकता है, वह इनका वचन ज़रूर पूरा करता।

एक बार इनको अपने विद्यालय के लिए एक दूरबीन दरकार हुई। आपने चिकागो के धनाढ्य पुरुष यरकस साहब से कहा। उन्होंने तत्काल इनकी बात मान ली और एक बड़ी दूरबीन मँगा दी जो दुनिया भर में सबसे बड़ी थी।

यद्यपि हमारे देश में ऐसे ऐसे महापुरुष हैं जिनकी इच्छामात्र से विश्वविद्यालय खुल सकते हैं; परन्तु उन्होंने अभी तक दान का उचित प्रयोग करना नहीं सीखा। जिस दिन हमारे देश के सत्पुरुष जाति की उन्नति के मर्म को समझ जायंगे उसदिन कला-कौशल और विज्ञान-शिक्षा का प्रबन्ध होने में देरी न लगेगी।

१८८६ ईसवी में शिकागो नगरी के बैपटिस्ट सम्प्रदाय के धनाढ्य पुरुषों ने एक साधारण कालेज की स्थापना की। १८९१ में जब प्रेज़िडेंट हारपर कालेज के प्रधान नियत हुए तब उन्होंने उसे ऐसे विद्यालय का रूप देना चाहा जिसका संबंध किसी ख़ास सम्प्रदाय या जन-समुदाय के साथ न हो; जिसमें सब तरह के स्वतन्त्र विचार वाले प्रोफ़ेसर शिक्षा दे सकें। मतलब यह कि किसी की विचार-स्वतन्त्रता में बाधा न आवे। प्रेज़िडट हारपर ख़ुद ही बड़े स्वतन्त्रप्रकृति थे। वे जानते थे कि जिस स्कूल या कालेज में विचारस्वतन्त्रता नहीं, जहाँ के प्रबन्धकर्त्ताओं के विचार संकीर्ण हैं, वहाँ के विद्यार्थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

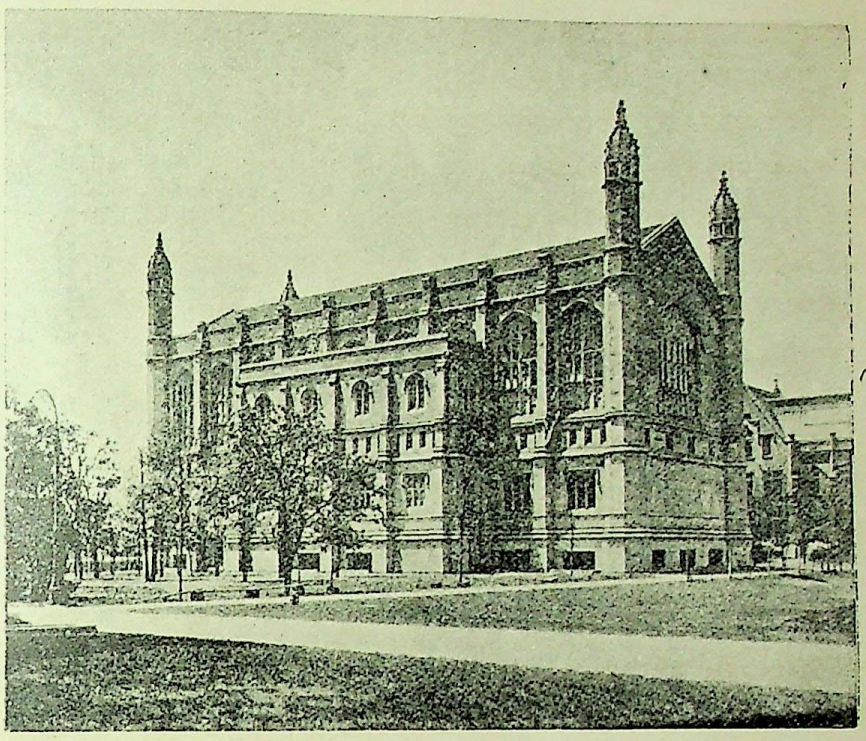

क़ानून-शिक्षा का स्कूल।

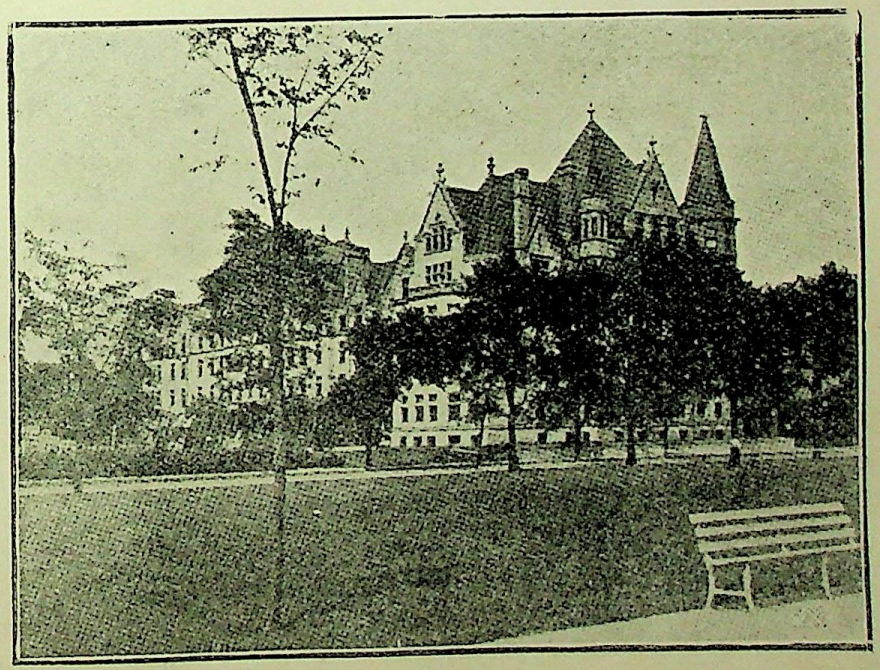

स्त्रियों का निवास-भवन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

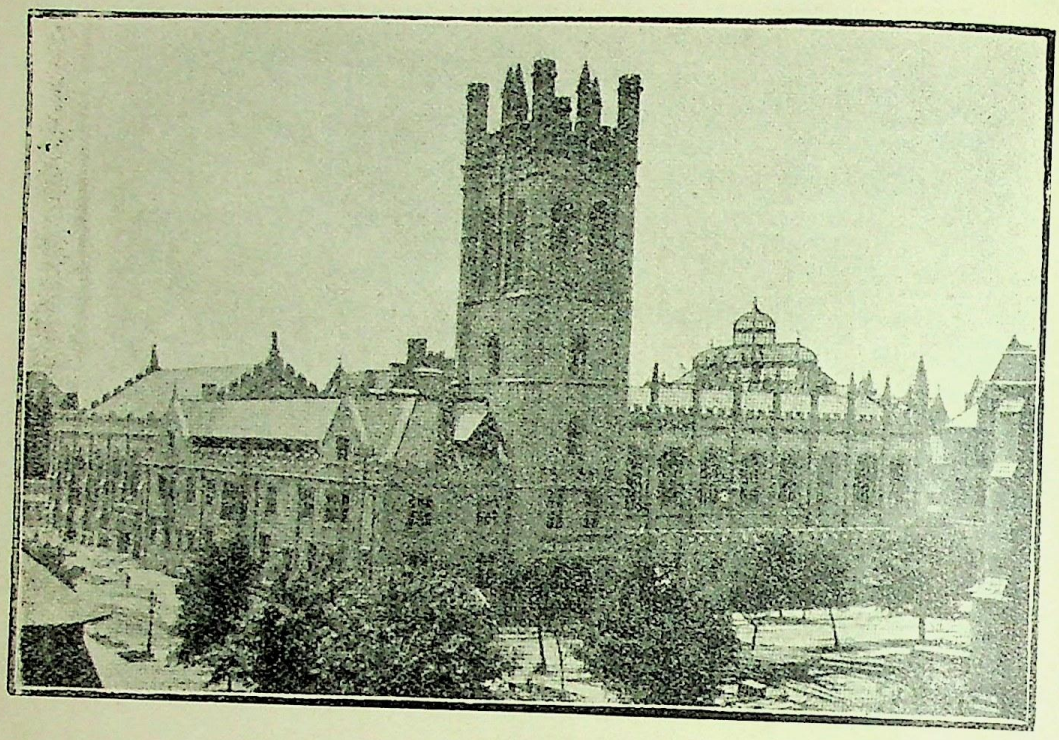

क्लब-घर।

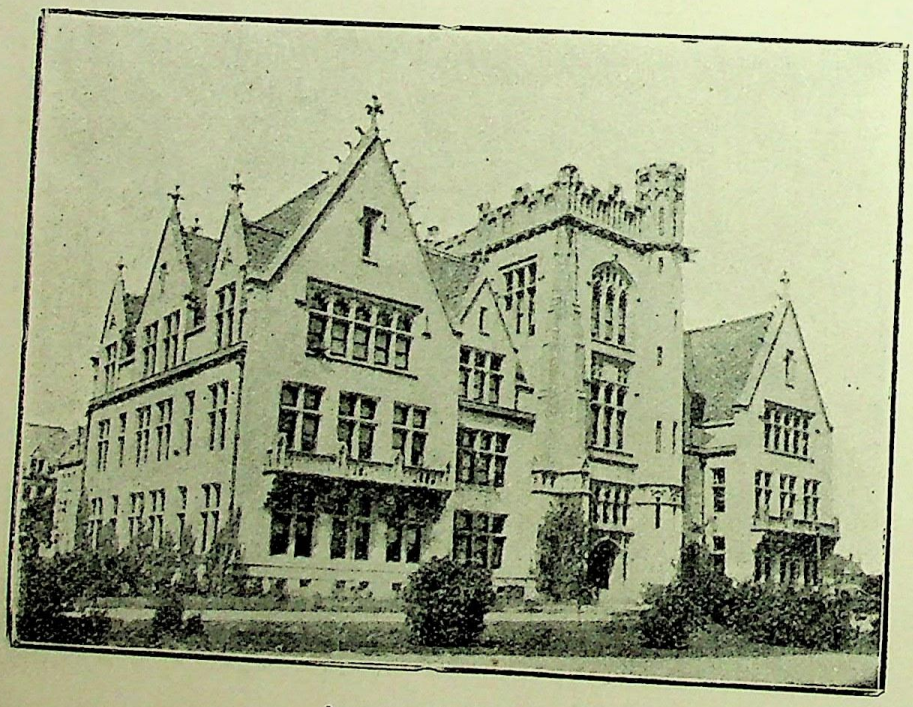

भौतिक-परीक्षा-गृह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

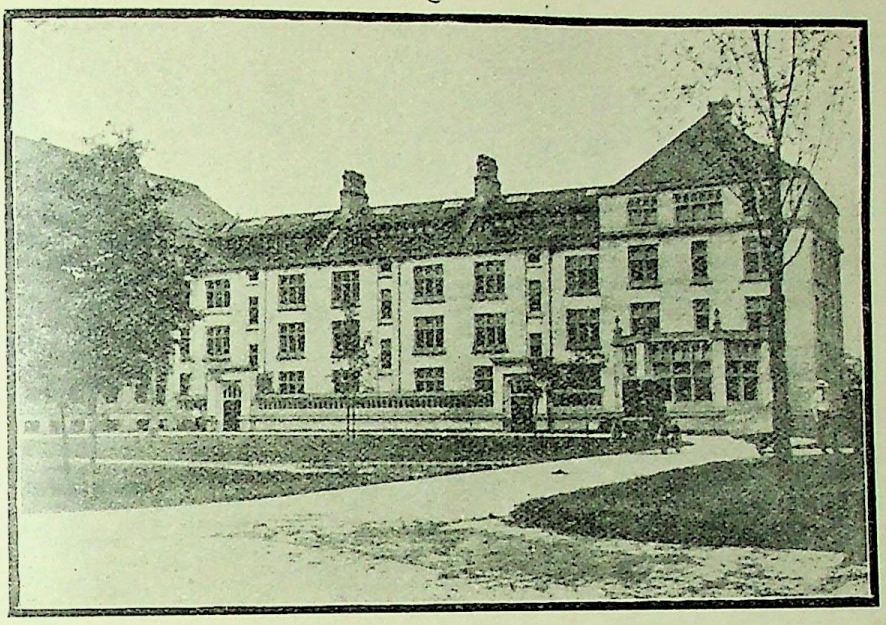

हिचकाक हाल ।

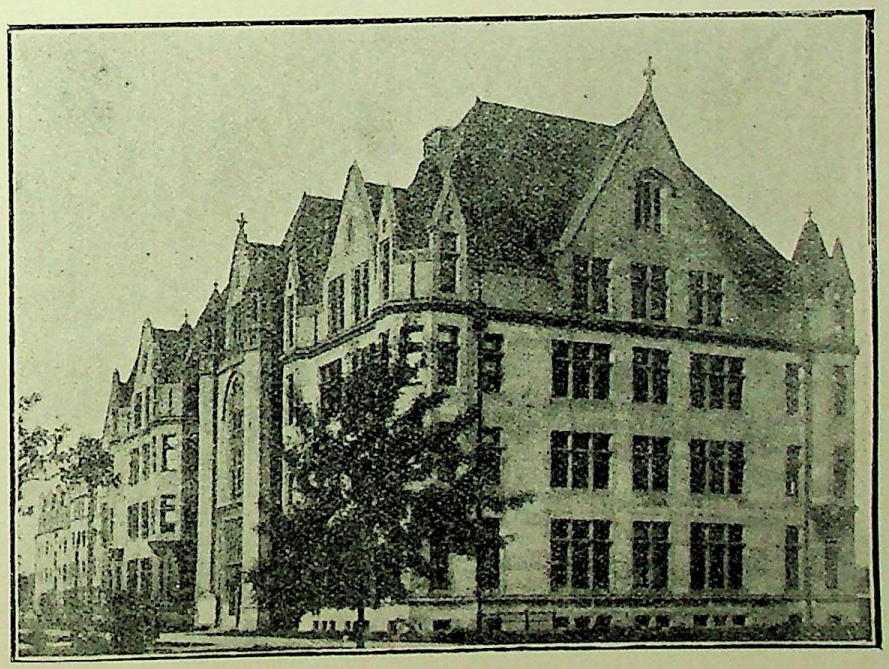

काब लैकचर हाल ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

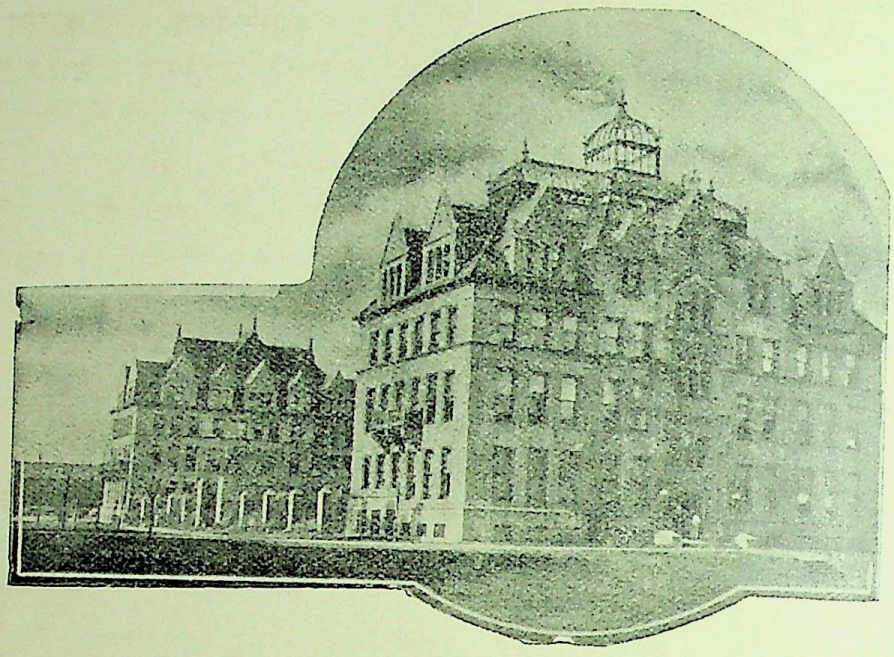

वनस्पतिशास्त्र-शिक्षा-भवन ।

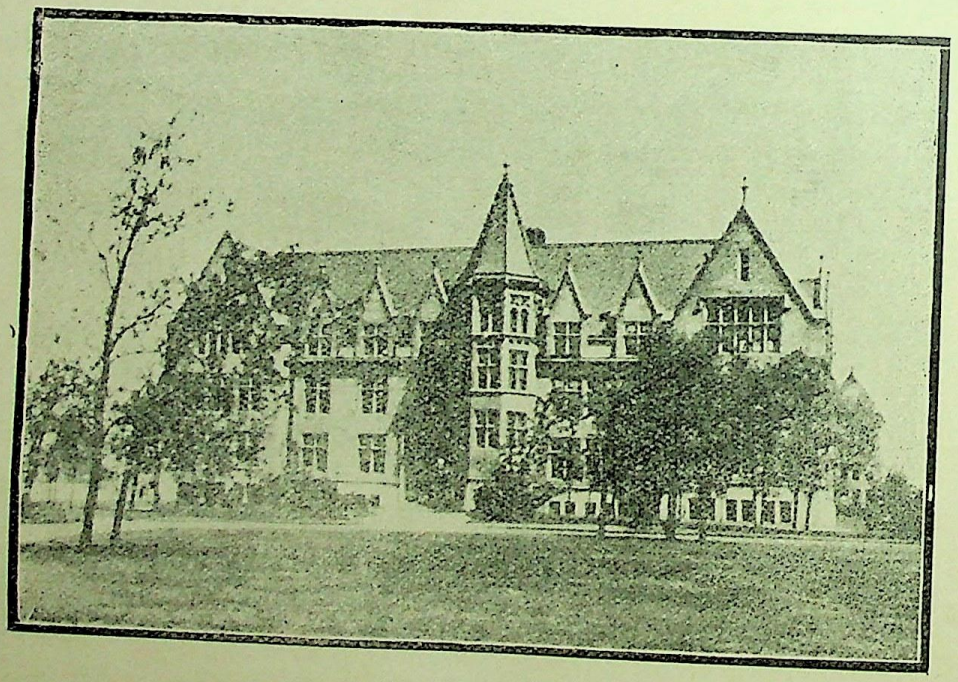

रासायनिक प्रयोग-शाला ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी उदाराशय नहीं हो सकते। वे जानते थे कि साम्प्रदायिक कालेजों के विद्यार्थियों के विचार अवश्य ही संकीर्ण होते हैं। इससे वे अपने भविष्य जीवन में जनसमाज को पूर्ण लाभ नहीं पहुँचा सकते। उनके इस विचार की यथार्थता हम अपने देश में देखते हैं। भारतवर्ष में पृथक् पृथक् मतों और सम्प्रदायों के कई कालेज और पाठशालाएँ हैं। भारतनिवासियों की चेष्टा सदा अपनी अपनी झोपड़ी अलग बनाने की रहती है। यही कारण है कि एक कालेज वाले दूसरे से द्वेष रखते हैं। एक मत दूसरे को देख नहीं सकता। यदि ऐसी पाठशालाएँ और कालेज बनाने की चेष्टा की जाय जहाँ क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या सिख, क्या बौद्ध, क्या जैनी, क्या ईसाई सभी विद्यार्थियों के लिए एक सा प्रबन्ध हो, और हरएक विद्यार्थी को दूसरे के साथ उठने, बैठने, मिलने, और बातचीत करने का अवसर मिलता रहे, तो उनमें सहनशीलता ज़रूर आ जाय। वे दूसरे के विचार प्रेम से सुनने के आदी हो जायँ। और विचारों में भिन्नता होने पर भी द्वेष करना छोड़ दें। क्योंकि उन्नति बिना भिन्न विचारों के नहीं हो सकती। इस बात का विस्तृत विचार मिल साहब ने अपनी 'स्वाधीनता" नामक पुस्तक में किया है।

प्रेज़िडेंट हारपर अपने विचार और उद्योग में सफलमनोरथ हुए। १० एकड़ भूमि मारशल फ़ील्ड ने दी। विश्वविद्यालय की इमारतें बननी प्रारम्भ हुईं। १८९२ में मतलब भर के लिए इमारतें तैयार हो गईं। उस समय केवल ६०० विद्यार्थी थे, जिनके लिए ४ इमारतें काफ़ी हुईं। आजतक २८ इमारतें और बन गई हैं; और १० एकड़ भूमि से १४० एकड़ भूमि यूनिवर्सिटी के अधिकार में हो गई है। इस समय शिकागो-विश्वविद्यालय की जायदाद ५ करोड़ ४० लाख रुपए की है!

विश्वविद्यालय के नियमानुसार कालेज के विद्यार्थी दो विभागों में विभक्त हैं Junior College Students (ऊँचे दरजे के विद्यार्थी) और Senior College Students (नीचे दरजे के विद्यार्थी) नीचे दरजे के विद्यार्थियों के भी दो विभाग हैं :— Freshmen (नवीन) और Associates (सहचर या पुराने)। नवीन विद्यार्थी वे कहलाते हैं जो हाई-स्कूल में परीक्षोत्तीर्ण होकर कालेज में भरती होते हैं। उनको कालेज में भरती होने के लिए १५ "यूनिट" (एक "यूनिट" १५० घंटे का होता है) का काम दिखलाना पड़ता है। उसमें से ३ "यूनिट" अंगरेज़ी, २½ "यूनिट" गणित (जिसमें रेखागणित और बीज-गणित भी शामिल हैं), ३ "यूनिट" यूनानी, लातिनी या जरमन भाषायें, २ "यूनिट" अमरीका और योरप का इतिहास। बाक़ी ४½ "यूनिट" भिन्न भिन्न विषय। यथाः—Botany (वनस्पति-विद्या), Zoology (प्राणि-धर्म-विद्या), Physiology (दैहिकधर्म्म-विद्या), Chemistery (रसायन-विद्या), Physics (भौतिक-विद्या), Astronomy (ज्योतिःशास्त्र), Mechanics (यंत्रविद्या), Political Economy (सम्पत्ति-शास्त्र), Drawing (नक़शानवीसी) आदि।

जिस विद्यार्थी ने किसी अच्छे हाई स्कूल में १५ "यूनिट" का काम न किया हो वह कालेज में भरती नहीं हो सकता। कालेज में दाख़िल होने के उपरान्त ९ "यूनिट" का काम पूरा करने पर उसे एसोसिएट की पदवी मिलती है। फिर वह Senior College (ऊँचे दरजे के कालेज) में प्रवेश पाने का अधिकारी होता है।

विश्वविद्यालय में A. B. (ए० बी०) Ph. B. (पीएच० बी०), B. Lt. (बी० एलटी०), B. S. (बी०एस०), Ed. B. (ईडी० बी०), तथा A.M. (ए० एम०), Ph. D. (पीएच० डी०), D. D. (डी० डी०), और LL. D. (एलएल० डी०) आदि की पदवियाँ दी जाती हैं।

विश्वविद्यालय का वर्ष जाड़ा, गरमी, वसन्त और पतझड़ के नाम से तीन तीन महीने के चार भागों या क्वारटरों में बँटा हुआ है। प्रत्येक भाग या क्वारटर १२ हफ़्ते का होता है। प्रत्येक हफ़्ते में ४ या ५ दिन पढ़ाई होती है। प्रत्येक विद्यार्थी तीन या चार विषयों से अधिक नहीं ले सकता। उदाहरण के तौर पर मैंने इस जाड़े के क्वारटर में अंगरेज़ी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोशियालोजी (समाजशास्त्र) और पोलिटिकल सायँस (राजनीति-विज्ञान) लिये हैं। तीन घंटे रोज़ की पढ़ाई है, जिसके लिये ८० रुपये महीना फ़ीस है। यदि एक विषय और अधिक लिया जाय तो २० रुपये और देना पड़ता है। अर्थात् ४ विषय लेने वाला विद्यार्थी ६० रुपये महीना फ़ीस देता है।

एक क्वारटर को पढ़ाई का नाम एक मेजर है। जिस विद्यार्थी को बी० ए० की पदवी लेनी है उस को ऐसे ऐसे ३६ मेजर पूरे करने पड़ते हैं। दूसरी पदवियों के लिए अन्तर केवल विषयों में हैं। सायन्स (विज्ञान) की पदवी के लिए कुछ विषय जुदा हैं; और साहित्य के लिए भी। बाक़ी ३६ मेजर सब के लिए एक से हैं। विद्यार्थियों को व्यायाम और वक्तृता का भी अभ्यास करना पड़ता है, जिसके लिए जुदा प्रोफ़ेसर हैं।

यह आवश्यक नहीं, कि विद्यार्थी लगातार ही पढ़ने पर पदवी पा सकता है। कई वर्षों का अन्तर देकर विद्यार्थी अपनी पढ़ाई को पूरा करते हैं, और पदवियाँ पाते हैं। क्योंकि धन का अभाव होने से कोई कोई विद्यार्थी एक साल रुपया कमाते हैं, दूसरे साल पढ़ते हैं। यहाँ की परीक्षायें हमारे देश की भाँति नहीं है। आवश्यकता केवल नियमानुकूल विद्यार्थी होने की है। जो विद्यार्थी कालेज में प्रोफ़ेसर के बतलाये कार्य्य को लगातार करता रहता है उसको अवश्य ही पदवी मिल जाती है। यहाँ विद्या का अभिप्राय किताबी कीड़े बनना नहीं; किन्तु उसका उद्देश्य व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना है।

यहाँ विद्यार्थियों के रहने के लिए बड़े बड़े तीन हाल हैं। उनमें से हिचकाक हाल सब से अच्छा है। दूसरा स्नेल हाल। तीसरा डिविनिटी हाल। हिचकाक हाल में ४०, ५० रुपये मासिक तक के कमरे हैं, जहाँ प्रायः धनाढ्य विद्यार्थी रहते हैं। स्नेल हाल में २२ रुपये महीने के कमरे हैं। डिविनिटी हाल उन विद्यार्थियों के लिए है जो इञ्जील और अन्य धर्म-सम्बन्धी ग्रन्थ पढ़ते हैं। अर्थात् जिनका उद्देश्य अपने जीवन में धर्मसम्बन्धी कार्य्य करना है। वहाँ १५ रुपये मासिक तक के कमरे हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि कमरों की बनावट या सफ़ाई आदि में न्यूनता होने से किराये में भेद है। नहीं। भेद है सामान और लम्बाई, चौड़ाई के कारण।

काब-लेकचर हाल में Information Bureau है। वहाँ सब बातों का पता मिलता है। विद्यार्थी, अध्यापक या विश्वविद्यालय सम्बन्धी जो पूछना चाहो वहाँ से पूछ सकते हो। यहीं पर डाक ख़ाना और अन्यान्य दफ़्तर हैं। यहाँ पर Correspondence Bureau (पत्रव्यवहार महकमे) का दफ़्तर है, जहाँ से अन्य देशों में बैठ हुए विद्यार्थी चिकागो विश्वविद्यालय से, पत्र व्यवहार द्वारा, पदवियाँ प्राप्त करते हैं। जिनको इस विषय में अधिक जानना हो वे इस दफ़्तर से सब बातें पूछ सकते हैं।

काब-हाल में भाषाशास्त्र-सम्बन्धी अँगरेज़ी-पुस्तकालय भी है। शिकागो-विश्वविद्यालय के सभी विभागों के साथ अपना अपना पुस्तकालय है। इतिहास-विभाग का पुस्तकालय पृथक् है। विज्ञानसम्बन्धी पुस्तकालय भी जुदा जुदा हैं। यहाँ विद्यार्थियों के लिए एक बंक भी है। यदि कहीं से कोई चेक, रसीद या हुंडी किसी विद्यार्थी के नाम आवे तो उसको उसका रुपया विश्वविद्यालय में ही मिल जाता है। किसी और बंक में जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

एजुकेशन स्कूल में वे विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं जिनको अपने भविष्यजीवन में अध्यापक बनना है। सब प्रकार की सामग्री उनके लिए यहाँ एकत्र है। किन्डरगारटन से लेकर पीएच० डी० (Ph. D.) तक की शिक्षा यहाँ पर दी जाती है। इसके साथ एक हाईस्कूल है। वहाँ वे विद्यार्थी पढ़ते हैं जिनको किसी ख़ास विषय की पूर्त्ति करके पदवी प्राप्त करनी है। जैसे कोई विद्यार्थी भारतवर्ष से यहाँ पढ़ने आया। उसको ए० बी० (A. B.) की पदवी प्राप्त करनी है। परन्तु हाईस्कूल में उसने, यूनानी, लातिनी या जरमनी, किसी भाषा की शिक्षा १५ "यूनिट" तक नहीं पाई। तो वह एक मुत्तसना विद्यार्थी (Unclassified Student) के तौर पर विश्वविद्यालय में दाख़िल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर ए० बी० (A. B.) को पाठ्य पुस्तकादि पढ़ता रहेगा; और अपनी कमी को इस हाईस्कूल में पूरा करेगा। जब उसके तीन "यूनिट" किसी भाषा में पूरे हो जायंगे तब ए० बी० (A. B.) का कोर्स पूरा करने पर उसे वह पदवी मिल जायगी।

हेस्कल ओरियंटल म्यूज़ियम (अजायब-घर) में प्रेज़िडेंट हेनरी प्रेटजड़सन का दफ़्तर है। यही आज कल विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता हैं। दफ़्तर पहिली मंज़िल पर है। दूसरी मंजिल पर बाईं तरफ़ पुस्तकालय है, जहाँ धर्मसम्बन्धी पुस्तकें रहती हैं। दाहनी तरफ़ देश देशान्तरों के विचित्र पदार्थ हैं। तीसरी मंज़िल पर बाईं तरफ़ भारत के देवी देवता विराजमान हैं। जैनियों और बौद्धों की तसवीरें, तथा पीतल की मूरतें भी हैं। इनके सिवा अन्य मतावलम्बियों के देवता भी यहाँ हैं। दाहिनी तरफ़ एशिया के अन्यान्य देशों के भिन्न भिन्न स्थानों, देवमन्दिरों और देवताओं के चित्र आदि हैं यहाँ धर्माध्यक्ष-पादरी-(Missionaries) तैयार किये जाते हैं जो संसार में खीष्ट-धर्म का प्रचार करते हैं।

यहाँ पर ऊँचे दरजे की वनस्पति-विद्या की शिक्षा दी जाती है। इसके लिए एक आलीशान इमारत अलग है। इसकी सब से ऊँची छत पर एक २१०० वर्ग फ़ीट का एक सब्ज़ाघर (Green-house) है। उसके साथ एक "एलिवेटर" (खटोला) है जो ऊपर नीचे जाने आने का साधन है। प्रत्येक श्रेणी के विद्यार्थियों को इस सब्ज़े घर में, भाँति भाँति के पौधों और वनस्पतियों की प्रत्यक्ष पहिचान कराई जाती है और उनकी बनावट तथा वृद्धि आदि के नियम समझाये जाते हैं। इस इमारत में एक सबसे बड़ी प्रयोगशाला नये विद्यार्थियों के लिए है। दूसरे विद्यार्थियों के लिए कई एक छोटी छोटी प्रयोगशालायें हैं। उनमें भिन्न भिन्न प्रकार के खोज और परीक्षा के काम होते हैं।

यहाँ की रसायनिक प्रयोगशाला व्याख्यानदाताओं और रसायन-विद्या के छात्रों के लिए है। यह इमारत १८९२ में सिड़नी ए० कैंट महाशय ने यूनिवर्सिटी को दान दी थी। उन्हीं के नाम से यह मशहूर है। १८९४ की १ जनवरी को, ७ लाख ११ हज़ार रुपया इसको इस अवस्था में लाने के लिए ख़र्च हो जाने पर, यह भवन छात्रों के उपयोग के लिए खोला गया था। इसमें तीन छतें हैं जिनमें रसायनसम्बन्धी सब काम करने के लिए जुदा जुदा कमरे हैं। जो विद्यार्थी अपनी सारी उम्र रसायन विद्याह में लगाना चाहते हैं उनके लिए सब तरह की सामग्री इसमें है। इस कैंट-भवन में एक नाट्यशाला (थियेटर) भी है जहाँ पर व्याख्यान, नाटक तथा रंगभूमि पर आने वालों को पूरी तरह से शिक्षा दी जाती है। व्याख्यान-दाता प्रायः इसी भवन की नाट्यशाला में व्याख्यान देते हैं। समर क्वारटर (Summer Quarter) में जो व्याख्यान बिना टिकट के कालेज को छात्रों के लाभ के लिए दिलवाये जाते हैं वे यहीं पर होते हैं। अमरीका के प्रधान प्रधान विश्वविद्यालयों के योग्य अध्यापक, शिकागो में आकर, यहाँ के विश्वविद्यालय की ओर से व्याख्यान देते हैं।

यहाँ पर जो "क्लब" है उसका नाम रेनल्ड क्लब है। यह "क्लब" विश्वविद्यालय के छात्रों के उठने बैठने, मिलने और वार्त्तालाप आदि के लिए है। यहाँ दो तीन बड़े बड़े कमरों में "पियानो" बाजे रखे हैं जहाँ छात्र लोग, फ़ुरसत के वक्त हँसते खेलते और गाते बजाते हैं। यहाँ सब प्रकार की सामयिक पुस्तकें और दैनिक, साप्ताहिक आदि पत्र आते हैं। खेलने के लिए जुदा जुदा कमरे हैं। यह "क्लब" विद्यार्थियों में प्रेमभाव और मित्रता उत्पन्न करने का अच्छा साधन है। इस "क्लब" की दाहिनी तरफ़ विश्वविद्यालय का सब से बड़ा "हाल" है। इसको मेंडल हाल कहते हैं। यहाँ रविवार को, तथा और और अवसरों पर भी, व्याख्यान और धार्मिक शिक्षा होती है। यह "हाल" अति विशाल और दर्शनीय है।

बाईं ओर भोजनशाला और रसोईघर हैं। सवेरे, दोपहर, और रात को विद्यार्थी यहां भोजन करते हैं। विद्यार्थी ही परोसने और पकाने वाले हैं। भोजन के समय यहाँ बड़ा आनन्द आता है। सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग प्रेम से एक दूसरे से वार्त्तालाप करते हुए भोजन करते हैं; किसी से घृणा नहीं। जो विद्यार्थी परोसते या पानी देते हैं उनके विषय में किसी के मन में ऊँच नीच का भाव नहीं। जो छात्र, निर्धन होने के कारण, अपने श्रम से धन कमाकर विद्याभ्यास करते हैं उनको यहाँ कोई दुर्दृष्टि से नहीं देखता। जन-समाज में उलटा उनकी अधिक प्रतिष्ठा होती है। यही कारण है कि अमरीका में निर्धन माता पिता का पुत्र संयुक्त राज्यों का प्रेज़िडेंट हो सकता है। विपरीत इसके भारतवर्ष के धन-सम्पन्न लोग अपने निर्धन देशभाइयों से घृणा करते हैं। उनके उपकार के लिए वे बहुत कम दत्तचित्त होते हैं। भला जब अपने ही देशवासियों से लोग प्रेम नहीं रखते; जब उन्हीं के विषय में ऊँच-नीच भाव रखते हैं; तब कैसे उन्नति हो सकती है?

रीयरसन साहब का बनवाया हुआ भौतिक परीक्षागृह (Physical Laboratory) भी यहाँ देखने योग्य है। इसे देखकर मालूम होता है कि विद्या के प्रेमी किस प्रकार वैज्ञानिक उन्नति के लिए धन व्यय करते हैं। इसकी बनावट ऐसी है जिससे सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रयोग करने में कोई विघ्न न हो। दीवारों और छतों में आवश्यकतानुसार नलियों के ले जाने के लिए सूराख़ हैं। दूसरी छत पर परीक्षा और प्रयोग करने वालों के लिए सब तरह का सामान है। यहाँ पर विद्यार्थियों का एक कारख़ाना भी है। जिस यन्त्र की आवश्यकता होती है वह यहाँ तत्काल बना लिया जाता है। सब से नीचे के तहख़ाने में तीन Dynamos (डाइनामोज़ = यंत्रविशेष) और एक यंजिन गरमी पहुँचाने के लिए है।

क़ानून-शिक्षा के स्कूल की बनावट केम्ब्रिज (इँगलैंड) के प्रसिद्ध किंग्ज़ कालेज (King's College) की ऐसी है। जिसने उस कालेज को देखा है वही समझ सकता है कि यह स्कूल कितना रमणीक और विशाल होगा। इसके साथ एक बहुत बड़ा पुस्तकालय है। एक बड़ा "हाल" विद्यार्थियों के अभ्यास के लिए भी है। जुदा जुदा मेज़ों पर प्रायः चुपचाप बैठे हुए छात्र अपने अपने पाठ में मग्न देख पड़ते हैं। पुस्तकें सामने की भीतों से सटी हुई आलमारियों में रखी रहती हैं। जिस पुस्तक की आवश्यकता हो, फ़ौरन वहाँ से मिल सकती है। यहाँ ऐसा सुप्रबन्ध है कि पठन-पाठन में ज़रा भी विघ्न नहीं आता।

अमरीका और योरप में स्त्रियों का बड़ा आदर है। उनके विद्याभ्यास और शारीरिक तथा मानसिक उन्नति का वैसा ही अच्छा प्रबन्ध है जैसा कि पुरुषों के लिए। स्त्री, पुरुष का आधा अंग है—यह बात विशेष करके इन्हीं देशों में देख पड़ती है। शिकागो-विश्वविद्यालय में क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभी विद्याभ्यास करते हैं। कालेज में स्त्री अध्यापिकायें भी हैं। पुरुषों के रहने के लिए कई बड़े बड़े घर तो हैंहीं, स्त्रियों के लिए भी एक विशाल भवन है। स्त्रियों के क्लब भी जुदा हैं; भोजन-शालायें जुदा हैं; व्यायामशालायें जुदा हैं। व्यायाम-शालाओं में उन्हें सब प्रकार के खेल सिखलाये जाते हैं। उनके तैरने के लिए सुन्दर, स्वच्छ, जल का एक तालाब है। समाज की शारीरिक, मानसिक, और आत्मीय उन्नति तभी हो सकती है जब हमारी मातायें, हमारी बहनें, हमारी कन्यायें भी सब कामों में उन्नति करें। भारतवर्ष में स्त्री-शिक्षा के अभाव को देख कर दुःख होता है! क्या वह जाति कभी उन्नति के शिखर पर पहुँच सकती है जहाँ स्त्रियों की अधोगति हो? अकेले पुरुषों के किये देशोद्धार नहीं हो सकता। इसे सच मानिए।

इनके सिवा यहाँ के विश्वविद्यालय की बहुतसी और भी इमारतें हैं। खेल-कूद, कसरत के लिए एक बहुत बड़ा "जिमनैज़ियम" (Gymnasium) है। फुटबाल खेलने के लिए एक चौड़ा मैदान है, जहाँ प्रत्येक शनिवार को सैकड़ों स्त्री-पुरुषों की भीड़ खेल देखने के लिए एकत्र होती है। एक सर्वसाधारण पुस्तकालय है जो सवेरे ८½ बजे से शाम के ५½ बजे तक खुला रहता है। तीन लाख रुपया ख़र्च करके विश्वविद्यालय के अधिकारियों का विचार एक बहुत बड़ा पुस्तकालय बनवाने का है, जो शायद दो तीन वर्ष के भीतर तैयार हो जायगा। पुस्तकालय के पास एक भौतिक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

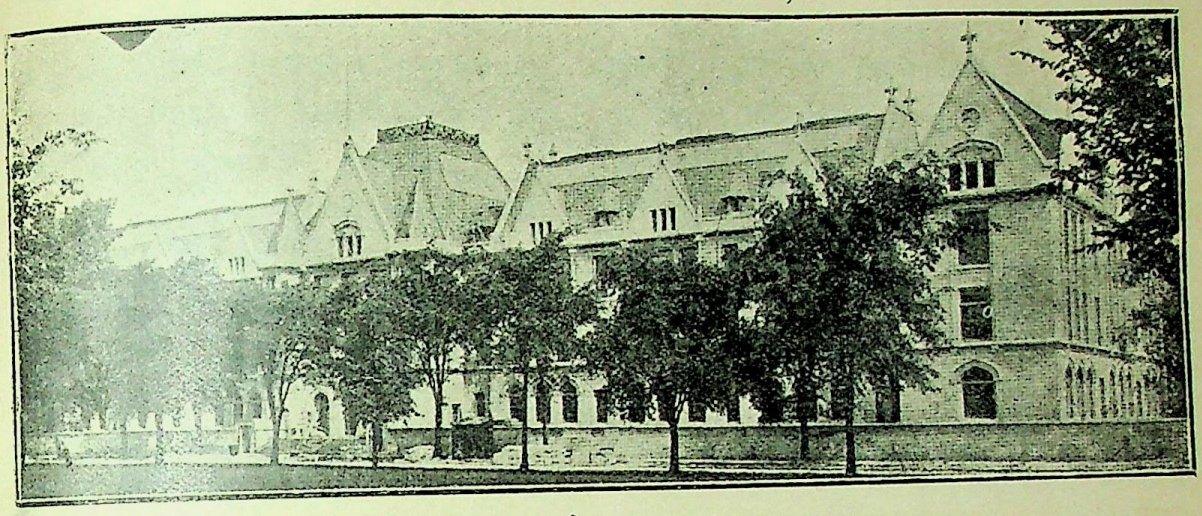

एजुकेशन स्कूल।

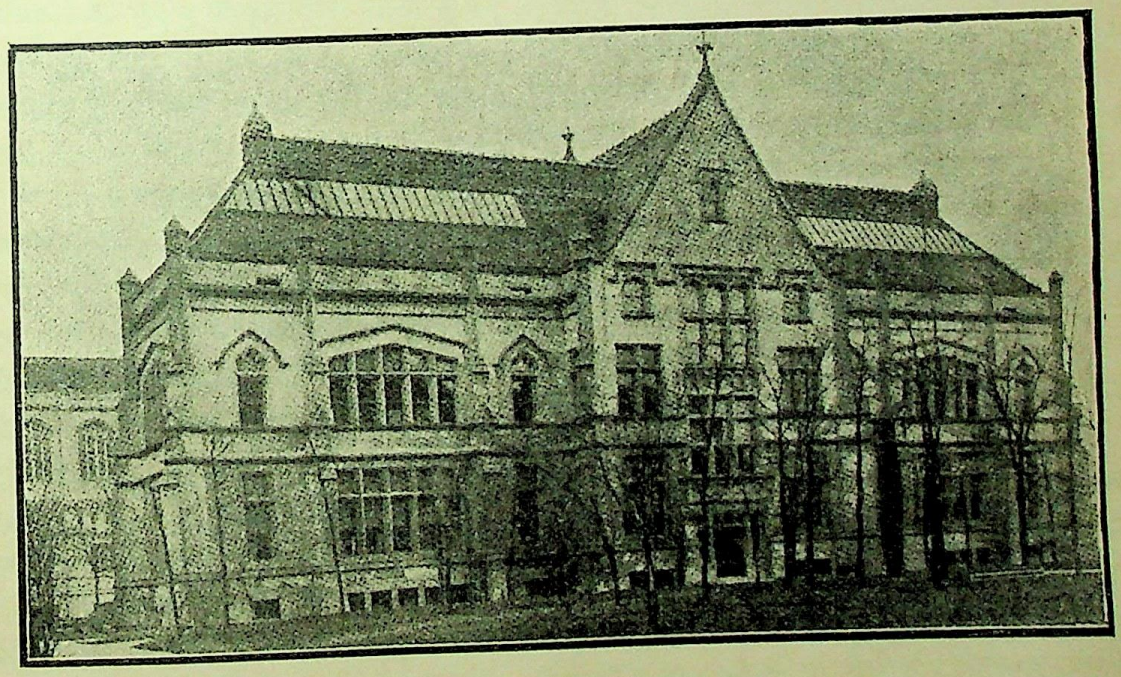

अजायब घर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति-संग्रह (Power House) है जहाँ से भाफ बड़े बड़े नलों में होती हुई विश्वविद्यालय की सब इमारतों के कमरों में पहुँचती है। बिजली का एक यन्त्रालय (Electric Plant) भी है, जिससे सब कमरों में बिजली का प्रकाश पहुँचता है। आजकल, अर्थात् पौष में, गलियों और मकानों पर कई फ़ुट बर्फ़ जमी है। परन्तु कमरे में बैठे हुए लोगों को जाड़ा नहीं लगता। उष्ण भाफ के यंत्र कमरे को गरम रखते हैं। बाहर १० या १५ दरजे शून्य से नीचे तापमान (Temperature है, परन्तु कमरे में ७० दरजे की गरमी है। विश्वविद्यालय की सड़कों के नीचे भाफ के बड़े बड़े नल लगे हैं जो सड़कों की बर्फ़ को पिघला देते हैं। इससे विद्यार्थियों को आने जाने में आराम रहता है।

अब, अन्त में, मुझे इस बात का विचार करना है कि शिकागो-विश्वविद्यालय विद्यार्थियों के लिए क्यों अधिक लाभकारी है? शिकागो व्यापार की बहुत बड़ी मंडी है। हज़ारों कारख़ाने, गोदाम, और बड़े बड़े व्यापारियों के कारोबार यहाँ हैं। यहाँ ऐसे ऐसे कारख़ाने हैं जहाँ आदमियों की सदैव आवश्यकता रहती है। इस लिए बहुत से विद्यार्थी, जो धन के अभाव से और कहीं कालेज में नहीं पढ़ सकते, यहाँ चले आते हैं। विश्वविद्यालय में नौकरी दिलाने का भी एक महकमा है। उसका सम्बन्ध सभी बड़े बड़े कारख़ानों से है। विद्यार्थी जैसा काम कर सकता हो वही काम तीन चार घंटे करके वह अपने ख़र्च के लिए रुपया पैदा कर सकता है। सैकड़ों विद्यार्थी इसी तरह यहाँ पढ़ते हैं। विश्वविद्यालय ने एक कम्पनी भी ऐसी बना रक्खी है जो होनहार निर्धन विद्यार्थियों को १००० रुपये वार्षिक तक क़र्ज़ देती है; पर उन्हीं को जो तीन चार वर्ष के अन्दर बिना सूद के रुपया अदा करने का प्रण करते हैं। यहाँ एक और भी महकमा है, जहाँ कोई १७५ विद्यार्थी विश्वविद्यालय के प्रबन्ध-सम्बन्धी काम करके, अपनी फ़ीस का रुपया कमा लेते हैं। ४० या ५० छात्र भोजन-शाला में दो घंटे रोज़ काम करके अपने भोजन का ख़र्च निकाल लेते हैं। इस विश्वविद्यालय के अध्यापक बहुत योग्य, उदार और सुशील हैं। इस लिए अमरीका के प्रत्येक प्रान्त के विद्यार्थी यहाँ पढ़ने आते हैं।

यहाँ के विश्वविद्यालय की इमारतें शहर से बाहर, मिशेगन नाम की झील के दूसरी तरफ़ हैं। उनके इर्द गिर्द सुन्दर सुन्दर बाग़ और पुष्पवाटिकायें हैं। इससे इमारतों की शोभा दूनी हो गई है। यही कारण है जो शिकागो-विश्वविद्यालय दूर दूर के विद्यार्थियों को आकर्षित कर लेता है। यहाँ विद्यार्थियों को सब तरह की स्वतन्त्रता है। जहाँ चाहें जायँ; जहाँ चाहें घूमें। किसी प्रकार की रोक टोक नहीं।

प्यारे पाठक! मैंने आपको, संक्षेप से, अमरीका के एक बड़े भारी विश्वविद्यालय का वृत्तान्त सुनाया और उसकी शिक्षा-प्रणाली का भी कुछ वर्णन किया। अब आप सोचिए कि क्या भारतवर्ष के जुदा जुदा कालेज एक यूनिवर्सिटी—एक विश्वविद्यालय—के रूप में नहीं लाये जा सकते? मैं तो कोई रुकावट इसमें नहीं देखता। यदि हिन्दू कालेज, अलीगढ़-कालेज, खालसा कालेज, डी० ए० वी० कालेज अमरीका की यूनीवर्सिटियों की भाँति हो जायँ और अपने विद्यार्थियों को सरकारी परीक्षाओं के पचड़े से निकाल, नियमानुकूल विद्याभ्यास करने पर, उन्हें पदवियाँ दें तो विद्यार्थियों को इस बात का अनुभव हो जायगा कि हम भी स्वतन्त्रता से प्रबन्ध करने योग्य हैं। यह आवश्यक नहीं है कि दूसरों पर अवलम्बन करके ही हम उन पदवियों को प्राप्त करें। इसके सिवा विद्यार्थियों को किताबी कीड़े न बनाकर उपयोगी और उपकारी विद्या और कला-कौशल की शिक्षा देनी चाहिए। यह भी स्मरण रहे कि जिस प्रकार अमरीका के धनाढ्य पुरुष अपनी सम्पत्ति को जाति के उपकार के लिए अर्पण करते हैं, उसी प्रकार, हमें भी अपने धन का सदुपयोग करना चाहिए। बिना उसके भारत का कल्याण नहीं हो सकता।

एक बड़ी भारी शिक्षा जो हम को अमरीका से मिलती है वह आपस का प्रेम है। जैसे अमरीका में भिन्न भिन्न मतों के विद्यार्थी एक ही कालेज में लिखते-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ते, उठते-बैठते और मिलते-जुलते हैं वैसे ही हमारे देश में भी होना चाहिए। प्रत्येक के हृदय में दूसरे के विचारों के लिए सम्मान होना उचित है। यदि कोई किसी बात में हम से भिन्नमत रखता है तो उससे घृणा न करके, जिसमें हम और वह सहमत हैं, उसमें उसके साथ मिलकर काम करना चाहिए। आज केवल इतनाही लिखकर आप से क्षमा माँगता हूँ। यदि समय मिलता रहा तो कुछ न कुछ आप को भेंट करता ही रहूँगा। अन्त में आप से प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग इस कथन को कभी न भूलें:—"Education must be by the people, for the people, and of the people."

सत्यदेव (शिकागो, अमरीका)।

उर्दू की नई वर्णमाला।

संस्कृत-भाषा और देवनागरी अक्षरों के सम्बन्ध में दो एक बार हम कानपुर के उर्दू-मासिक पत्र "ज़माना" के ख़िलाफ़ लिख चुके हैं। खेद है कि आज फिर हमें कर्त्तव्यानुरोध से कुछ लिखने की ज़रूरत पड़ी। "ज़माना" को अपने पूज्य पूर्वजों की निर्म्माण की हुई, सर्वथा निर्दोष, देवनागरी लिपि के ख़िलाफ़ लेख प्रकाशित करते देख अफ़सोस होता है। प्रथम तो नागरी के ख़िलाफ़ कोई विषय इस पत्र में प्रकाशित हो न होना चाहिए था और यदि उसे छापा ही था तो सम्पादक को उसका प्रतिवाद ज़रूर करना चाहिए था। अधिक नहीं तो सिर्फ़ इतना ही लिख देना था कि "लेखक की राय से सम्पादक की राय नहीं मिलती"।

जिन देवनागरी अक्षरों का प्रचार करने के लिए बंगालियों, मदरासियों और गुजरातियों तक ने कमर बाँधी है, जिनकी उपयोगिता की प्रशंसा विदेशी अँगरेज़ तक कर रहे हैं, उन्हीं के ख़िलाफ़ देवनागरी के केन्द्र संयुक्तप्रान्त से निकलने वाले हिन्दू-मासिक पत्र "ज़माना" में लेख प्रकाशित होना सचमुच ही आश्चर्य्यजनक है।

"ज़माना" की गत जुलाई की संख्या में सैय्यद मुहम्मद ज़ामिन साहब का "उर्दू-रस्मुल्-ख़त" पर एक लेख निकला है। आप लिखते हैं कि जिस जाति में विद्या का प्रचार नहीं उसकी उन्नति नहीं होती। विद्या का प्रचार किताबों से होता है। पर जिन अक्षरों में उर्दू लिखी जाती है वे इतने दोषपूर्ण हैं कि उनका टाइप अच्छा नहीं बन सकता। अतएव हाथ से किताबें लिखी जाकर "लीथो" में छापी जाती हैं। फल यह होता है कि वे बहुत महँगी पड़ती हैं। सब लोग उन्हें ख़रीद नहीं सकते। इससे शिक्षा के प्रचार में बाधा आती है। इस बाधा को दूर करने के लिए आप एक नई लिपि जारी करना चाहते हैं। आप के पहले भी दो एक सज्जनों को उर्दू की लिपि की बुराइयाँ खटकी थीं। उन्होंने इस विषय में लेख भी लिखे थे। पर उनकी सूचनाओं की किसी ने समाप्त नहीं की। इसलिए सय्यद साहब ने इस विषय को अब फिर से नया किया है। उर्दू की वर्त्तमान लिपि के आपने जो दोष दिखलाये हैं उन्हें हम आप ही की भाषा में, नीचे, ज्यों का त्यों, नक़ल करते हैं। सुनिए—

(१)—"दुनिया की तमाम मुरव्विजा ज़बानों में यह बात है कि हुरूफ़-तहज्जी के सीख लेने के बाद लड़का हर्फ़शनास हो जाता है और इबारत पढ़ सकता है। मतलब समझे या न समझे। क्योंकि इन हुरूफ़ के सीखने और याद करने में बहुत थोड़ी मुद्दत सर्फ़ होती है। एक हफ़्ते से ज़ायद शाज़ो-नादिर ही सर्फ़ होता होगा। उर्दू में बरख़िलाफ़ इसके मुख़्तलिफ़ शक्ल के जोड़ों की वजह से मुख़्तलिफ़ तख़्तियाँ पढ़नी और याद करनी पड़ती हैं जिनमें बहुत बड़ा हिस्सा बच्चे का उम्र का ज़ाया होता है। नासमझ बच्चे इस अम्र से कि उनको एक ही नाम की मुतअद्दद सूरतें याद रखने की जो मालायताक़ ज़हमत दी जाती हैं जिस क़दर घबराते हैं उसका अंदाज़ा करना बहुत दुशवार है। बच्चों का हाफ़िज़ा जवान आदमी के बनिसबत फ़ित्रतन क़वी होता है और उनमें यह बात बअहसन वजूह होती है कि एक दफ़ा जो चीज़ दिखाके उसका नाम ज़ेहननशीन कर दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय उसको फिर कभी नहीं भूलते। मगर जब उन को एक हर्फ़ मस्लन् "बे" को आज एक सूरत बताई गई और कल फिर दूसरी अशकाल, बा, बत, बज, बर, बस, बम, बन" और तीसरे रोज़ दरमियानी शक्ल इस तरह "बतोद" (?) जिसमें "बे" की अलामत सिर्फ़ एक शोशा है, बताये जाते हैं तो उन की परीशानी और हैरानी इस दर्जे (तक) बढ़ती है कि अलावा याद न करने के इससे उनकी क़ूवते-हाफ़िज़ा को भी नुक़्सान पहुँचता है"।

"एक यही ख़राबी इसके लिए क्या कम है कि हर अक़्लमंद आदमी ऐसे रस्मुल ख़त की जड़ काटने पर आमादा हो जाय जो उसके होनहार नौबाविगाने उम्मीद को तालीम की जड़ अगर काटता नहीं है तो उसमें घुन ज़रूर लगा देता है। अगर यह कहा जाय कि आख़िर हमारे बुज़ुर्ग जो इसी ख़त में तालीम पाते थे वह क्योंकर पाते थे और फिर यह ख़त भी दरमियान ही में पैदा हुआ है, फिर मुक़त्तआत को मुरक्कब करने की ज़रूरत ही क्या थी? तो उसका जवाब यह है कि तालीम की ज़रूरत ने मुरक्कबात रायज किये और तालीम ही की ज़रूरत इसको तर्क करने की "मुतक़ाज़ी" है। इब्तदाअन जिस क़दर इल्म था उससे बदर्जहा तहसीले-इल्म के वसायल कम थे। इसलिए मुरक्कबात के ईजाद करने की वजह सिवा इसके और कुछ नहीं हो सकती कि प्रेस के न होने से तुलबा को पढ़ने के साथ साथ किताबें भी ख़ुद ही नक़ल करनी पड़ती थीं। वक़्त को इक़्तसादी का मुक़्तज़ा यह था कि जहाँ तक मुमकिन हो अमले-तहरीर में सहूलत पैदा की जाय। (चुनाँचे उसमें उनको यहाँ तक कामयाबी हुई कि मौजूदा क़रीब क़रीब शार्टहैंड के है और मौजूदा ख़त के हामी उसकी इस ख़ूबी को भी अपने दलायल में पेश करते हैं। मगर इससे हमारा एतराज़ रफ़ा नहीं होता) अब प्रेस ने हमसे इस मोहताजी को दूर कर दिया है और हमको अमले-तहरीर के मुख़्तसिर करने की कोई ज़रूरत नहीं जब कि उससे दूसरे अहमतरीन नुक़सानात पैदा होते हैं।"

यह सैयद साहब का पहला पाराग्राफ़ है। अब दूसरे पाराग्राफ़ में जिन बुराइयों का वर्णन है उन्हें सुनिए—

(२)—"इस झंझेले (? झमेले) के बाद फिर जो ख़राबी पेश आती है वह यह है कि जब ख़ुदा ख़ुदा करके कुछ सूझने लगा तो अब लिखना नहीं आता। इब्तिदाई तालीम के देरपा और मुफ़ीद बनाने के लिए निहायत ज़रूरी है कि लड़का जिस क़दर पढ़े उसको साथ ही साथ लिखता भी जाय। चुनाँचे जिन ज़बानों में मुक़त्तआत रायज हैं उनमें अगर अत्फ़ाल को पढ़ना मसलन् पंद्रह दिन में आ सकता है तो लिखना एक महीने में ज़रूर आ जाता है। और पाँच छै बरस का लड़का एक साल के अंदर इस क़ाबिल हो सकता है कि अपना मतलब 'बशर्ते कि ज़बान आती हो' अच्छी तरह लिख ले। समझदार आदमी तो महीने डेढ़ महीने में इतना सीख सकता है कि अपनी ज़बान की इबारत जिस गैरज़बान में चाहे लिख ले"।

"यही वजह है कि अकसर देहाती, जो तालीम में ज़्यादह वक़्त नहीं सर्फ़ कर सकते, मगर उनकी ज़रूरियात इसकी मुक़्तज़ी होती हैं कि हस्बे-ज़रूरत कुछ लिखना पढ़ना सीख लें, वह अकसर नागरी (शिमाली हिन्द में) मरहटी, तेलंगी, कनाड़ी वग़ैरह (दकन में) सीख कर अपनी ज़रूरतों को पूरा करते हैं। ऐसे लोग सिर्फ़ हिन्दू ही नहीं होते बल्कि वह मुसलमान भी होते हैं जिनकी मादरी ज़बान किसी न किसी क़िस्म की उर्दू होती है और जिनके लिए उसूलन् उर्दू का सीखना बमुक़ाबले ग़ैरज़बान हासिल करने के ज़्यादह आसान होना चाहिए था"।

"मेरा यह दावा महज़ इद्दवाई नहीं है बल्कि ज़ाती तजरिबे पर मुबनी है कि मने ख़ुद बालबुध (?) (मरहटी) लिखना और पढ़ना एक महीने के अन्दर बाहर सीख लिया (लुग़त पर उबूर होना एक दूसरी चीज़ है) और उसको क़ूवत से नागरी और संस्कृत की इबारत भी पढ़ लेने लगा। रही इस्तेदाद की तकमील वह मौक़ा और शौक़ पर मुनहसिर है"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बरख़िलाफ़ इसके उर्दू का तालिबेइल्म कैसा ही समझदार क्यों न हो इस क़लील मुद्दत में नाम भी बमुश्किल लिख सकेगा। लड़कों का क्या हिसाब जिनके सालहा साल सिर्फ़ 'अलिफ़' 'बे' की तख़्ती साफ़ करने में गुज़र जाते हैं। मगर जहाँ हुरूफ़ मुक़त्तआत का रिवाज है वहाँ नविश्त वख़्वाँद दोनों साथ साथ जारी रहती हैं जिसका नतीजा यह होता है कि तीन चार किताबों के बाद ख़ासे मुन्शी जी हो जाते हैं। इसी बिना पर हमारे हिन्दू दोस्त कोशिश कर रहे हैं कि नागरी को नहीं बल्कि नागरी हुरूफ़ को उर्दू के मुक़ाबिले में रिवाज दिया जाय"।

इसके आगे सैयद साहब ने नागरी अक्षरों की निन्दा की है। उस भाग को हम अभी छोड़े देते हैं। उसी के लिए तो यह सारा श्रम है। उस पर आगे बहस करनी है। तब तक सैयद साहब का तीसरा पाराग्राफ़ सुन लीजिए—

(३)—"तीसरी अहमतरीन ख़राबी जो हमारे मौजूदा रस्मुल ख़त में है वह यह है कि इसकी वजह से "प्रेस वर्क" की रफ़्तार में तरक़्क़ी नहीं हो सकती। इस वक़्त दुनिया में जो आलमगीर रोशनी तरक़्क़ी की नज़र आ रही है वह सब प्रेस का तुफ़ैल है और प्रेस को जो उरूज इस वक़्त हासिल है वह टाइप की बदौलत। चुनाँचे हमने अपने मज़मून के पहिले हिस्से में भी इस अम्र की तरफ़ इशारा किया है। संगी छापे को टाइप के छापे से बिलकुल वही मुनासिबत है जो किताबत को संगी छापे से है। सबसे बड़ा ऐब तो संगी छापे का यही है कि उसमें किताब का सही तबअ होना अगर नामुमकिन नहीं तो क़रीब नामुमकिन के ज़रूर है। फिर किताबत को गरानी और किताब का एक मुऐय्यन मिक़दार से ज़्यादह न छप सकना मतबूआत को गरानी के लाइलाज अस्बाब हैं। क्या उर्दू में भी कोई रिसाला ऐसा है जो दो रुपये सालाना में मिले और "अमेरिकन सायन्टिफ़िक ('सायन्टिफ़िक अमेरिकन" कहिए) का मुक़ाबला कर सके? क्या उर्दू में भी कोई अख़बार ऐसा है जो बारा रुपये साल में (हफ़्तेवार) टाइम्स आफ़ इन्डिया के बराबर ज़ख़ीरा मज़ामीन फ़राहम कर सके? गो कि यह सवाल ख़ूबी मज़ामीन के लिहाज़ से नहीं, बल्कि सिर्फ़ कसरत मज़ामीन के लिहाज़ से हैं, जब भी इनका जवाब बज़ुज़ नफ़ी के कुछ नहीं"।

हम सैयद साहब की सचाई की तारीफ़ किये बिना नहीं रह सकते। यहाँ तक आपने जो कुछ कहा सब सच कहा। एक मुसलमान सज्जन के मुँह से उर्दू-लिपि के इतने दोषों का स्वीकार किया जाना आश्चर्य्य की बात है! आज तक शायद ही और किसी मुसलमान ने इस लिपि की बुराइयों को सर्व-साधारण के सामने प्रकाशित करने में इतनी निर्भयता दिखाई हो। आपके दिखलाये हुए दोष बहुत दुरुस्त हैं। उर्दू का लिपि सचमुच ही ऐसी दोषपूर्ण है कि उसके कारण मुसलमानों में शिक्षा की यथेष्ट उन्नति नहीं हो सकती। और जब तक उसका त्याग न होगा तब तक न शिक्षा ही का यथेष्ट प्रचार होगा और न अख़बार और किताबें ही सस्ते दामों पर बिकेंगी। सैयद साहब ने उर्दू की अनेक बुराइयाँ तो बतलाईं, पर एक बुराई बतलाना आप भूल गये। वह उसके शुद्ध उच्चारण की असमर्थता है। घसीट लिपि में तो कुछ का कुछ पढ़ा जाना कोई बात ही नहीं। नस्तालीक़ में भी जिसे शब्दोच्चारण का ज्ञान पहले ही से न हो वह किसी अपरिचित शब्द को, सिर्फ़ उसे देख कर, बहुधा ठीक ठीक उच्चारण नहीं कर सकता।

सैयद साहब ने उर्दू-लिपि की इन्हीं अनेक बुराइयों से बचने और शिक्षा-प्रचार में उन्नति करने के इरादे से एक नये ही ढंग के अक्षर निकाले हैं। आप के पहले भी एक सज्जन ने उर्दू लिखने की एक नई रीति निकाली थी। परन्तु उनकी निर्म्मित लिपि आप को पसन्द नहीं। क्योंकि उसमें उच्चारण-सम्बन्धी दोष बना हुआ है। इस दोष को निकालने के लिए आप अक्षरों के ऊपर नीचे कुछ चिन्ह लगाने की सलाह देते हैं और हिन्दी शब्द लिखने के लिए कई एक नये अक्षरों की कल्पना भी करना चाहते हैं। आपकी राय है कि आप के बतलाये हुए मार्ग का अवलम्बन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने से उर्दू का टाइप भी अच्छा बन जायगा, किताबें भी ख़ूब सस्ती हो जायँगी, और बच्चे बहुत जल्द पढ़ लिखकर विद्वान् भी हो जायँगे। इन अक्षरों का नमूना, और साथ ही सैयद साहब के निर्दिष्ट चिह्नों से युक्त अक्षरों में उनकी दी हुई थोड़ी सी इबारत का भी नमूना देखिए।

नई उर्दू-लिपि का नमूना।

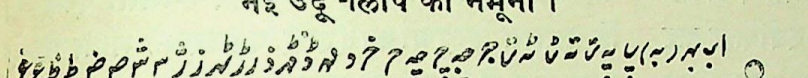

सैयद साहब के निर्मित चिह्नों सहित नई उर्दू-लिपि में लिखी गई इबारत का नमूना।

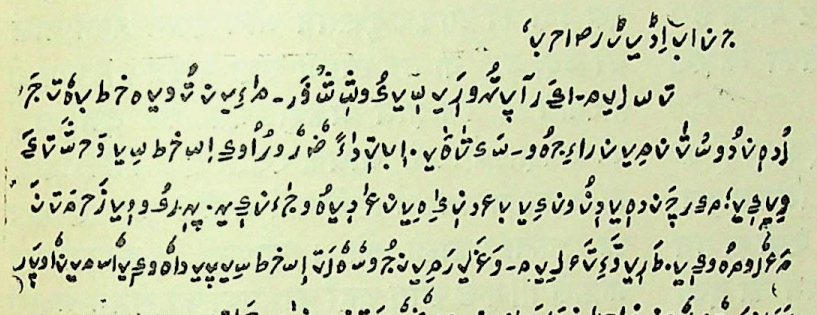

जान पड़ता है, सैयद साहब छापेख़ाने के काम से बिलकुल ही नावाक़िफ़ हैं। यदि आप को इस काम का कुछ भी ज्ञान होता तो कभी आप यह राय न देते कि आप के ईजाद किये हुए अक्षरों के प्रचार से शिक्षा की बहुत अधिक उन्नति हो जायगी। आप की नई वर्णावली अनेक दोषों से पूर्ण है। देखिए—

१—पहले तो इन नये अक्षरों की बनावट ऐसी ख़राब है कि उन्हें देखकर मनमें घृणा पैदा होती है। इस घृणा की मात्रा यह ख़याल करके और भी बढ़ जाती है कि जिस मतलब से सैयद साहब ने इनकी सृष्टि की है वह इनसे कदापि नहीं निकल सकता। इस लिपि को उर्दू की लिपि नहीं, किन्तु हिब्रू की सहेली कहना चाहिए।

२—इस लिपि के यदि टाइप बनें तो उनके जोड़ने में जगह की बचत न होगी, आजकल की अपेक्षा अधिक जगह चाहे ख़र्च हो जाय। क्यों कि संयुक्ताक्षरों को आपने बिलकुल ही निकाल डाला है। जनाब (جناب) लिखने के लिए जीम, नू, अलिफ़, बे-ये चारों अक्षर अलग अलग रखने पड़ेंगे। अक्षरों के लम्बान चौड़ान को छाँटने से जगह की जो किफ़ायत होगी उससे अधिक जगह उनको अलग अलग रखने में ख़र्च हो जायगी। यदि अधिक न होगी तो उतनी तो ज़रूर हो होगी। यह बात हर आदमी आपकी नई लिपि के नीचे वर्त्तमान लिपि को रख कर प्रत्यक्ष देख सकता है।

३—नये अक्षरों को "कम्पोज़" करने (जोड़ने) में कम्पाज़िटरों को अब की अपेक्षा अधिक मेहनत पड़ेगी। इस समय उर्दू का जो टाइप प्रचलित है उसमें कुछ टाइप ऐसा भी है जिसमें संयुक्त अक्षरभी हैं। अर्थात् एक टाइप उठाने से दो तीन अक्षरों का काम निकल जाता है जैसे— ﻣﺮ अर्थात् मीम, रे; मीम, जीम, हे; और सीन, नून, हे, ऐन। ये अक्षर जुड़े होने से एक ही दफ़ा "केस" में हाथ डालने से काम चल जाता है। पर सैयद साहब की आज्ञा से यही अक्षर जोड़ने के लिए, यथाक्रम, दो, तीन और चार दफ़े "केस" में हाथ डालना पड़ेगा। यही नहीं, इससे "केस" भी ख़ूब बढ़ जायगा। "एराब" के झगड़े से हुरूफ़ों की संख्या बहुत ही बढ़ जायगी। अतएव कम्पोज़ करने में भी देर लगेगी। बात यह है कि उर्दू के हुरूफ़ इतने दोषपूर्ण हैं कि उनका जल्द काम देने वाला अच्छा टाइप बनही नहीं सकता।

४—इस नई रीति के प्रचार से उच्चारण की गरदन पर तो आजकल की अपेक्षा भी अधिक तेज़ छुरी फिरेगी। क्योंकि सब अक्षर अलग अलग रहेंगे। इससे उच्चारण का और भी विघात होगा।

सैयद साहब के "एराब" से बहुत कम मदद मिलेगी। उदाहरणार्थ, तसलीम (تسليم) लिखने के लिए ते, सीन, लाम, ए, मीम सब अलग अलग लिखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ेंगे। आपने इबारत का जो नमूना दिया है उसमें इस शब्द के किसी अक्षर पर कोई चिह्न नहीं लगाया। फिर उसका शुद्ध उच्चारण किस तरह हो सकेगा?

वर्त्तमान उर्दू-लिपि में जो दोष हैं उनको तो आपने क़बूल कियाही है। शिक्षा-प्रचार के वे सर्वथा बाधक हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं। आपके नौईजाद अक्षरों को भी यह दशा है। वे भी निर्दोष नहीं। अच्छा तो नागरी लिपि को सैयद साहब क्यों न स्वीकार कर लें। नहीं, आपकी राय में वह उर्दू लिखने के योग्य नहीं। वह अँगरेज़ी बँगला, मराठी, गुजराती, तामील, तैलंगी, गुरमुखी, नैपाली, आसामी सब भाषाओं के लिखने की शक्ति रखती है। पर उर्दू लिखने की शक्ति नहीं रखती। उर्दू ऐसी ही विकट भाषा है। क्यों उर्दू लिखने के लायक़ नहीं, इसका कारण सैयद साहब से सुनिए—

"मुमालिक मग़रबी व शिमाली के (जो उर्दू की टकसाल हैं) हिन्दुओं की ज़बान भी मिस्ल मुसल्मानों के उर्दू है। अलावा बरीं उर्दूही ऐसी ज़बान है जो बाद अँगरेज़ी के आम मक़बूलियत का दर्जा रखती है। तक़रीबन दुनिया के हर हिस्से में कमोबेश इसके बोलने वाले मौजूद हैं। और इन सब पर तुर्रा यह है कि हर पैकर के क़बूल करने की सलाहियत जैसी उर्दू में है किसी दूसरी ज़बान में नहीं पाई जाती। ऐसी हालत में नागरी को उर्दू का क़ायममुक़ाम बनाने की कोशिश करना निरी हठधर्मी नहीं तो और क्या है? जहाँ नागरी कैरेक्टर में उर्दू लिखी जाती है वहाँ क्या होता है? ख़ुद ग़लत, इम्ला ग़लत, इन्शा ग़लत। बहर कैफ़ चूंकि यह एक जुम्ला मोतरिज़ा ख़ारिज अज़ बहस है इस लिए हम सिर्फ़ इतना कहने पर इकतिफ़ा करेंगे कि अगरचे हमारा और उन हज़रात का जो नागरी को रिवाज देना चाहते हैं दिली मंशा एक ही है, ताहम नागरी हुरूफ़ उर्दू लिखने के लिए किसी तरह मौज़ूँ नहीं क्योंकि उर्दू के बहुत से हुरूफ़ नागरी में नहीं हैं और ज़बान हिन्दुस्तान की नागरी नहीं बल्कि उर्दू है"।

क्या कहना है! सुबहानल्लाह! हिन्दुस्तान की ज़बान नागरी नहीं। कौन कहता है कि है? हज़रत, ज़बान का नाम नागरी नहीं। नागरी नाम है लिपि का। नागरी नाम है आप के "रस्मुलख़त" का। नागरी नाम है लिखावट का। जो पुरुष नागरी का मतलब तक नहीं जानता वही नागरी पर कल्पित दोषों का आरोप कर रहा है। "किमाश्चर्य्यमतः परम्"। हिन्दुस्तान हिन्दुओं का देश है, पर उसकी भाषा हिन्दी नहीं, उर्दू है! फिर हिन्दुस्तान के बदले सैयद साहब आप उसे उर्दुस्तान क्यों नहीं कहते? अगर आपको सचमुच ही यह विश्वास है कि उर्दू ही यहाँ की भाषा है तो आज से आप हिन्दुस्तान कहना छोड़िए। इस देश को आप उर्दुस्तान और इसमें रहने वालों को उर्द, उर्दू या उर्दुस्तानी कहा कीजिए! आपही फ़रमाते हैं कि आम मक़बूलियत का दर्जा उर्दू की अपेक्षा अँगरेज़ी अधिक रखती है। फिर हिन्दुस्तान की ज़बान अँगरेज़ी क्यों नहीं? धन्य है आप की तर्कना-प्रणाली को। आफ़रीं! आफ़रीं!! आफ़रीं!!! कुछ लोग यहाँ की भाषा को रोमन अक्षरों में लिखने की कोशिश कर रहे हैं। इन कोशिशकुनिन्दों में किसी दिन सैयद साहब का कोई साथी यदि पैदा हो गया तो वह कह बैठगा कि यहाँ की भाषा रोमन है। और यह देश रोम है! अनन्त समय से इस देश में हिन्दुओं का वास है; उनके नामानुसार इस देश की भाषा हिन्दी नहीं! मुसल्मानों को इस देश में आये सिर्फ़ आठ नौ सौ वर्ष हुए। तिस पर भी जिसे वे उर्दू कहते हैं उसे पैदा हुए अभी उसके आधे सौ वर्ष भी नहीं हुए। पर कुछ भी क्यों न हो, सैयद साहब की आज्ञा से हिन्दुस्तान की भाषा उर्दू हो गई। वह उर्दू, जिसमें ख़ूब अरबी, फ़ारसी और तुर्की के शब्द भरे हों। मिस्टर अब्दुल क़ादिर विलायत में जाकर इस बात का डंका बजावें कि हिन्दुस्तान की भाषा हिन्दुस्तानी है। परन्तु उनका कहना ग़लत, सैयद साहब का कहना ठीक!

आप फ़रमाते हैं कि मैंने एक महीने के अन्दर बाहर बालबोध मरहटी लिखना पढ़ना सीख लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम कहते हैं, आपने कुछ भी नहीं सीखा। यदि ७ वर्ष का बच्चा भी एक महीने अच्छी तरह बालबोध लिखना सीखे तो वह ज़रूर शब्दों को सही सही पढ़ सके। आपकी तरह "बालबोध" को "बालबुध" "केसरी" को "क़ैसरी" कभी न पढ़े। ज़रा आपका बालबोध ज्ञान तो देखिए। "केसरी" (शेर) को आपने "क़ैसरी" (बादशाही) कर डाला! इस गम्भीर बालबोध-ज्ञान को लेकर आप यह कहने आये हैं कि नागरी लिपि में सही सही उर्दू लिखने की शक्ति नहीं! आपके मराठी बालबोध-ज्ञान की तो यह दशा है, संस्कृत क्या आप पढ़ने होंगे वाक।

"उर्दू के बहुत से हुरूफ़ नागरी में नहीं हैं"। सच! और नागरी के सब हुरूफ़ उर्दू में हैं! ज़रा कृपा करके ण, ङ, ञ ष, क्ष और ज्ञ, के स्थानापन्न हुरूफ़ उर्दू में बतलाइये तो सही। और कण, कङ्कण, कञ्च, कोष, कक्ष, अज्ञ को सही सही व्याकरणानुमोदित रीति से उर्दू में लिखकर उच्चारण तो कीजिए। हम छोटे छोटे अत्यन्त सरल शब्दों हीं को सही सही लिखने और उच्चारण करने को आप से प्रार्थना करते हैं। क्लिष्ट शब्दों के विषय में हम आपसे कुछ नहीं कहते। उर्दू के यदि बहुत से हुरूफ़ नागरी में नहीं हैं तो न सही। उनके न होने से हानि? आपके 'स्वाद', 'सीन' और 'से' का (जैसे वे आमतौर पर बोले जाते हैं) काम क्या नागरी का 'स' नहीं दे सकता? आपके 'ज्वाद', 'ज़े', 'ज़ो', 'ज़ाल' का काम क्या नीचे बिन्दु लगाकर नागरी के 'ज़' से नहीं निकल सकता? यदि फ़ारसी, अरबी के शब्दों का उच्चारण ठीक ठीक नागरी लिपि में हो सकता है तो इस बात के जानने की क्या ज़रूरत कि इन भाषाओं में मूल शब्दों का इम्ला क्या है? लैटिन, ग्रीक और अँगरेज़ी भाषाओं में सैकड़ों शब्द ऐसे हैं जो संस्कृत से निकले हैं। कुछ तो अब तक प्रायः अपने ही पूर्वरूप में विद्यमान हैं। ऐसे शब्दों के विषय में क्या कोई इस बात के जानने की परवा करता है कि वे संस्कृत में किस तरह लिखे जाते हैं? और देवनागरी का इम्ला न जानने से क्या इन भाषाओं के ज्ञाताओं की कोई हानि होती है? सैयद साहब देवनागरी के पक्षपातियों पर हठधर्म्मी का इलज़ाम लगाते हैं। हम कहते हैं कि नागरी का प्रायः कुछ भी ज्ञान न रख कर आपने उसके ख़िलाफ़ राय देकर हठधर्म्मी की पराकाष्ठा कर दी। आपके लेख के कई पाराग्राफ़ों को ऊपर हमने देवनागरी में नक़ल किया है। कहिए आप उन्हें पढ़ सकते हैं या नहीं? यदि पढ़ सकते हैं तो कहिए आप के वाक्यों का मतलब समझने में क्या कोई बाधा आती है? यदि यह न मालूम हो कि अमुक शब्द में 'स्वाद' है या 'सीन' तो इससे हानि? सम्भव है, हमने उच्चारण में भूल की हो। पर वह दोष हमारा है, देवनागरी लिपि का नहीं। आपके सदृश फ़ारसी, अरबी के ज्ञाता यदि देवनागरी लिपि को सीखकर उसमें उर्दू लिखेंगे तो उच्चारण-सम्बन्धी ग़लतियाँ न होंगी। हलक़ फाड़ने वाली अरबी आप अपने नये या पुराने जिन हुरूफ़ों में इच्छा हो, लिखते रहिए। उर्दू को आप नागरी में लिख कर क्यों नहीं शिक्षा-प्रचार के द्वारा मुसल्मानों की उन्नति करते? जब एक निर्दोष लिपि पहले ही से विद्यमान है, जिसको हज़ारों मुसलमान सीखते भी हैं, तब एक नई, ग़ैर अमली, ईजाद की ज़रूरत? हिन्दुओं के मुल्क में रह कर उनकी लिपि से नफ़रत करना आपको शोभा नहीं देता। लाखों हिन्दू, उर्दू-फ़ारसी पढ़ते हैं। उनको आपकी भाषा और लिपि से नफ़रत नहीं। फिर आपको उनकी लिपि से क्यों नफ़रत होनी चाहिए? विशेषकर जब उसके स्वीकार से आपको बेहद लाभ की सम्भावना है।

सैयद साहब ने एक ही महीने में सही सही लिखने पढ़ने भर को नागरी लिपि सीख ली। परन्तु आप ही अपने मुँह से कहते हैं कि आपकी नई लिपि को सीख कर सही सही उर्दू पढ़ने के लिए लड़कों को "ज़ियादह से ज़ियादह दो तीन माह" दरकार होंगे। तिस पर भी एक महीने भर की राह आपको पसन्द नहीं। पसन्द है दो तीन महीने की! धन्य सत्यप्रीति! धन्य सदुपदेश! धन्य न्यायशीलता! नागरी के प्रेमी सब हठधर्म्मी, आप अकेले हठधर्म्मी के दुश्मन!!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तक़रीबन दुनिया के हर हिस्से में कमोबेश इसके (उर्दू के) बोलने वाले मौजूद हैं"। जी हाँ। इसमें क्या शक! साइबेरिया, कामस्कटका, आइसलैंड, ग्रीनलैंड, हालैंड, स्विज़रलैंड, नारवे, कनाडा, क्यूबा आदि में कितने उर्दूदाँ हैं? ये सब मुल्क, सूबे और टापू आपकी "दुनिया" के भीतर हैं या बाहर? उर्दू की आप तारीफ़ कीजिए। पर बे सिर पैर की बातें न उड़ाइए। "तक़रीबन" के भीतर आप आधी दुनिया को नहीं भर सकते।

"जहाँ नागरी कैरेक्टर में उर्दू लिखी जाती है वहाँ × × × × ख़ुद ग़लत, इम्ला ग़लत, इन्शा ग़लत"। यहाँ सैयद साहब "तक़रीबन" भी लिखना भूल गये। अतएव आपकी इस राय से यह अर्थ निकला कि नागरी में उर्दू का एक भी शब्द न सही लिखा ही जा सकता है और न पढ़ा ही जा सकता है! जिन लोगों की ऐसी राय है वही फ़रमाते हैं कि हमने बालबोध पढ़ना सीख लिया है। हम कहते हैं जो एक महीना भी बालबोध अच्छी तरह सीखने की कोशिश करेगा वह कभी अपने मुँह से ऐसी बात न निकालेगा। ऐसे सज्जनों की बात का उत्तर देने की भी ज़रूरत न थी। यदि उर्दू के भक्त-शिरोमणियों को भ्रम में पड़ने का डर न होता तो हम कदापि सैयद साहब के कथन का खण्डन करने की मेहनत न उठाते। अब आप से प्रार्थना है कि यदि आप नागरी जानने का कुछ भी दावा रखते हों तो अपने कथन को सप्रमाण सही साबित करें और यह दिखलावें कि आपके लेख के कई पाराग्राफ़्स जो हमने ऊपर तद्वत् नागरी में नक़ल कर दिये हैं, हर तरह से ग़लत हैं। अच्छा ग़लत सही। नागरी में किश्ती का कसबो, हिल्म का चिलम और तिवारी का पटवारी तो नहीं पढ़ा जाता? जिन नुक़्तों की छूट की बदौलत आप की प्यारी उर्दू लिपि की यह दुर्दशा होती है उनके लिए तो आपने कोई दवा निकालो नहीं। वे तो पूर्ववत् बने रहेंगे। फिर आप की नई लिपि सीखकर लोग उसे शिकस्ता न बना डालेंगे, इसकी कोई "गारंटी" आप रखते हैं? शिकस्ता लिखने में आपकी लिपि में भी उर्दू का सब से बड़ा दोष बना रहेगा या नहीं? पर इसका विचार करने की आपने कोई ज़रूरत नहीं समझी। हठधर्म्मी जो आप में नहीं!

सैयद साहब इन प्रान्तों के हिन्दुओं की ज़बान भी उर्दू बतलाते हैं। मालूम नहीं, आप उर्दू किसे कहते हैं, क्योंकि आपने उसका कोई लक्षण नहीं बताया। पर उर्दू से यदि आपकी मुराद उस भाषा से है जिसमें आपने अपना "रस्मुल् ख़त" लिखा है और जिसमें अनेक फ़ारसी, अरबी के शब्द आपने घुसेड़े हैं, तो आपका कहना बिलकुलही ग़लत है। आपको चाहिए कि आप ज़रा इन प्रान्तों की सेन्सस (मनुष्य-गणना) रिपोर्ट उठाकर देखें। तब आप को मालूम हो जायगा कि कितने आदमी इस तरफ़ हिन्दी बोलते हैं और कितने आपकी ऐसी उर्दू। बिना समझे बूझे निराधार बातें लिखने से किसी की कार्य्यसिद्धि नहीं होती। पहले तो मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं की संख्या इन प्रान्तों में बहुत अधिक है। फिर देहात में जो मुसलमान रहते हैं वे भी अपने पड़ोसी हिन्दुओं ही की भाषा बोलते हैं। उर्दू बोलने वाले, शहर और क़सबों के मुसलमान और कुछ हो हिन्दू हैं। उन में भी अधिकाँश उन्हीं का है जिनका अदालतों इत्यादि में काम रहता है। अतएव यह कहना कि इन प्रान्तों के हिन्दुओं की भी ज़बान उर्दू है मानों यह कहना है कि गधे के भी सींग होते हैं!

यदि इन प्रान्तों की ज़बान उर्दू है तो सैयद साहब बतलावें कि जो इस तरफ़ हज़ारों किताबें नागरी अक्षरों में छपती हैं उनकी ज़बान क्या है? आप कहेंगे उर्दू। तो क्या इन किताबों का वही हाल है जैसा आप फ़रमाते हैं—"ख़ुद ग़लत, इम्ला ग़लत, इन्शा ग़लत"। धन्य आपकी तर्कना-प्रणाली। गत सेन्सस के सुपरिंटेंडेंट पुकार कर कह रहे हैं कि संयुक्त प्रान्तों में १०, १६, ०६७ आदमी हिन्दी और सिर्फ़ २, ५९, ०५३ आदमी उर्दू बोलते हैं और यह हिसाब बड़ी सावधानी से लगाया गया है पर यह ग़लत, सैयद साहब का कहना ठीक! तीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौथाई लोग जिसे बोलते हैं वह ज़बान इन प्रान्तों की नहीं; ज़बान इन प्रान्तों की वह है जिसे सिर्फ़ एक चौथाई लोग बोलते हैं! माशा अल्लाह!

जो लोग उर्दू-रस्मुल्ख़त की बुराइयाँ दिखाकर यह राय देते हैं कि उर्दू यदि नागरी ख़त में लिखी जाने लगे तो उसके पढ़ने में दिक़्क़त न हो, और मुसलमानों में शिक्षा का प्रचार भी अधिक हो जाय, उन को सैयद साहब भावी सन्तान की शिक्षा की जड़ काटने वाला कहते हैं। पर ख़ुद आप उर्दू लिपि में, उनकी भी अपेक्षा कई गुना अधिक दोष दिखाकर, उसे बिलकुल ही खोद बहाने पर आमादा होकर, एक नई, पर अनेक दोषों से पूर्ण, लिपि के प्रचार की चेष्टा करके क़ौम के ख़ैरख़्वाह और उर्दू अक्षरों के मददगार बनते हैं!

सैयद साहब नागरी के कुछ हुरूफ़ उधार लेकर अपने नौईजाद हुरूफ़ों में मिलाना चाहते हैं। क्यों? जिसमें आपके हुरूफ़ों में किसी बात की कमी न रह जाय। हमारी प्रार्थना आप से यह है कि आप के हज़ार प्रयत्न करने पर भी उर्दू-लिपि निर्दोष नहीं हो सकती। उसकी रचना-प्रणाली ही ठीक नहीं। जिस लिपि का आधार ही ठीक नहीं, जिसकी नींव ही कमज़ोर है, वह कदापि दोषहीन नहीं हो सकती। यदि सैयद साहब को हमारे कथन पर विश्वास न हो तो आप सीधे सादे "प्राण" शब्द को तो उर्दू में सही सही लिख दें। कण्ठ-निर्गत वाणी को तद्वत् लिखने की शक्ति केवल नागरी-अक्षरों में है, क्योंकि उनकी रचना वैज्ञानिक नियमानुसार, प्रत्येक प्रकार के नाद का ख़याल रखकर, की गई है। पर सैयद साहब के ध्यान में यह इतनी मोटी बात नहीं आती। ऐन, ग़ैन, फ़ और क़ाफ़ के बिना आप को सभी अलोना मालूम होता है।

सैयद साहब से प्रार्थना है कि जिसे आप उर्दू कह रहे हैं वह कोई भिन्न भाषा नहीं। उसमें और हिन्दी में सिर्फ़ इतना ही भेद है कि उर्दू में अरबी, फ़ारसी और तुर्की शब्दों की भरमार रहती है, हिन्दी में नहीं। आपको चाहिए कि यदि न पढ़ी हो तो शम्सुल्-उल्मा मौलवी महम्मद हुसैन आज़ाद की किताब आबेहयात पढ़ें। उससे आपको मालूम हो जायगा कि उर्दू की उत्पत्ति कैसे हुई। किसी भाषा की असलियत उसके व्याकरण से पहचानी जाती है। हिन्दी का जो व्याकरण है उर्दू का भी प्रायः वही है। संस्कृत और प्राकृत के जैसे असंख्यात रूप, रूपान्तर और अपभ्रंश हिन्दी में हैं वैसेही उर्दू में भी हैं। फिर उर्दू में भिन्न-भाषात्व का आरोप कैसे किया जा सकता है? उर्दू से वैदेशिक भाषाओं के शब्द निकाल डालिए, बस उसमें और हिन्दी में कोई भेद न रह जायगा। प्रत्येक भाषा के प्राण उसके क्रियापद होते हैं। अतएव यदि सैयद साहब और कुछ करने की कृपा न करें तो सिर्फ़ इसी बात का विचार कर लें कि आपकी प्यारी उर्दू के क्रियापद फ़ारसी, अरबी और तुर्की से आये हैं या संस्कृत और प्राकृत से? और यदि पिछली बातही सच हो तो उर्दू को भिन्न भाषा मानने का हठ छोड़ दें और उसे सर्व-गुण-सम्पन्न नागरी लिपि में लिखी जाने की सिफ़ारिश करें।

सैयद महाशय ने उर्दू के साथ मराठी और बँगला इन्हीं दो भाषाओं को प्रधानता दी है। आप को शायद गुजराती भाषा के साहित्य से बिलकुल ही परिचय नहीं। ख़ैर। आपको मालूम होना चाहिए कि गुजराती का भी साहित्य ख़ूब उन्नति पर है। उर्दू से वह किसी तरह कम नहीं। बँगला, मराठी और गुजराती भाषायें भी एक प्रकार की हिन्दी हैं। उनके क्रियापद निकाल कर यदि हिन्दी के क्रियापद रख दिये जायँ तो उनमें और हिन्दी में बहुत ही कम अन्तर रह जाय। सैयद महाशय को चाहिए कि आप बंगाल, गुजरात और महाराष्ट्र प्रान्तों का क्षेत्रफल जानकर फिर उनकी मनुष्य-संख्या का पता लगावें। तब आप यह सोचें कि मराठी भाषा पहले ही से देवनागरी अक्षरों में लिखी जाती है; गुजरातीवालों ने भी देवनागरी के लाभों को स्वीकार कर लिया है और उनका प्रचार भी करने लगे हैं। बँगला भाषा की तो किताबें तक देव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरी लिपि में छपकर प्रकाशित होने लगीं। यदि बंगाली और गुजराती इस लिपि को न भी स्वीकार करते तो भी उसकी उपयोगिता में शङ्का नहीं हो सकती थी। क्योंकि बँगला और गुजराती अक्षर देवनागरी का बिगड़ा हुआ रूपान्तरमात्र हैं। सैयद साहब यह उम्मेद तो कर ही नहीं सकते कि महाराष्ट्र, बंगाली, गुजराती और हिन्दी बोलने और लिखने वाले बिहार, मध्यप्रदेश, मध्यभारत और संयुक्तप्रान्तों के लोग अपनी लिपि को छोड़कर उर्दू ऐसी दूषित लिपि को स्वीकार कर लेंगे। तब फिर आप अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाने की क्यों कोशिश करते हैं? जिन देवनागरी अक्षरों को इन पाँच छः प्रान्तों के, उर्दू के पक्षपातियों की अपेक्षा कई गुना अधिक, आदमियों ने स्वीकार कर लिया है उन्हीं को मुसलमान भी क्यों न स्वीकार करें? मुसलमान सज्जन यदि हिन्दुस्तान को अपना मुल्क समझते हों, यदि एक भाषा और एक लिपि के गुणों को भी वे कोई चीज़ समझते हों, यदि बहुसम्मति के भी वे क़ायल हों, तो हठ छोड़कर उन्हें देवनागरी लिखना शुरू कर देना चाहिए। क्योंकि सारे मुल्क में उर्दू-लिपि का प्रचलित होना असम्भव है। देवनागरी का सम्भव है। उसका प्रचार अन्य प्रान्तवालों ने शुरू भी कर दिया है। ऐक्य से अनेक लाभ और अनैक्य से अनेक हानियाँ हैं। अतएव उर्दू-लिखने के लिए महादूषित वैदेशिक लिपि को छोड़कर निर्दोष और स्वदेशी नागरीलिपि को ग्रहण करना और उसके द्वारा देश में ऐक्य की वृद्धि करना ही बुद्धिमत्ता का काम है। अरबी फ़ारसी के क्लिष्ट शब्द भरने ही से उर्दू की शोभा नहीं। उससे उलटी हानि है। सरल भाषा लिखने से कम पढ़े लिखे लोग भी लेखक का मतलब समझ सकते हैं। और अपना मतलब यथासम्भव अधिक आदमियों पर प्रकट करने ही के लिए अख़बार और किताबें लिखी जाती हैं। सरल भाषा लिखने से भाषा का सौन्दर्य भी नहीं मारा जा सकता। इस विषय में सैयद इन्शा का वह उपन्यास प्रमाण है जिसमें एक भी अरबी, फ़ारसी का शब्द नहीं आने पाया। यदि मुसलमान विद्वानों को अरबी, फ़ारसी के मेल बिना चैन हो न पड़े तो वे सुख से क्लिष्ट भाषा लिखें। नागरी लिपि उसे शुद्ध शुद्ध लिखने में सर्वथा समर्थ है। विदेशी अंगरेज़ विद्वान् भी यदि किसी लिपि को इस देश भर के लिए योग्य समझते हैं तो वह देवनागरी ही है। बड़े अफ़सोस, बड़े दुर्भाग्य, बड़े पश्चात्ताप की बात है, जो स्वदेशी मुसलमान उस पर व्यर्थ दोषारोपण करके एक नई ही लिपि प्रचलित करने की चेष्टा करें!

स्वदेश-भक्ति।

१—तन, मन, धन से सभी प्रकार;
करिए देश-भक्ति स्वीकार।
सब बातों का सार यही है;
मङ्गल-मूल विचार यही है॥

२—धर्म और उपकार यही है;
वेद-विदित आचार यही है।
जीवन का आधार यही है;
अति उत्तम व्यवहार यही है॥

३—देश-भक्ति का आदर सबने,
किया निरन्त सादर सबने।
हिन्दू, मुसलमान, ईसाई,
सब ने ही यह नीति पढ़ाई॥

४—देशभक्ति-गौरव पहिचाना;
अँगरेज़ों ने जब से माना।
धन, दौलत, सम्पति, प्रभुताई,
बढ़ी, लोक में कीर्ति पाई॥

५—अमरीका, इटली ने मानी;
चीन और जापान प्रमानी।
नई नहीं है बहुत पुरानी;
देश देश ने यही बखानी॥

६—अपना देश न किसको भाया?
किसने मोद न उससे पाया?
देशभक्ति की नीति निराली;
सब सुजनों ने सादर पाली॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७—बड़े बड़े विद्या-अनुरागी,
हुए महीपति, वीर विरागी ।
देशी जन, परदेशी ज्ञानी,
सबने देशभक्ति सन्मानी ॥
८—जन्म-भूमि जो देश हमारा;
बीता जहाँ बालपन सारा ।
खेले कूदे सब सुख पाये;
बड़े बड़े आनन्द उड़ाये ॥
९—खाये भाँति भाँति के खाने;
रुचि अनुसार छओं रस साने ।
कपड़े भाँति भाँति के धारे;
बढ़े जहाँ सब अङ्ग हमारे ॥
१०—माता, पिता, पितामह, सारे,
चचा, भतीजे आदि हमारे ।
भगिनी और सहोदर भाई,
सबने जहाँ परवरिश पाई ॥
११—जहाँ रहे, सज्ञान हुए हम,
विद्या पढ़ विद्वान हुए हम ।
भूमि नहीं वह जिसको प्यारी,
उसकी सुध बुधि की बलिहारी !
१२—पहले था यह देश हमारा,
विद्या-बल-वैभव-आगारा ।
देशों में सिरताज यही था;
राजों में महराज यही था ॥
१३—धन, दौलत, गुण-गण अभिमानी,
वर-विद्वान् और विज्ञानी ।
जितने हुए विशद व्यवसायी
सब सम्पदा यहीं से पाई ॥
१४—जब से यहाँ विदेशी, भाई !
आये, लूट खसोट मचाई ।
तब से भारत हुआ भिखारी ।
लुप्त हो गई सम्पति सारी ॥
१५—तब से ही आलस्य पधारा;
बही विदेश द्रव्य की धारा ।
जिसका फल दुखकारक पाया;
खोया, जो था प्रथम कमाया ॥
१६—कारीगरी, कला, सब खोई;
रही न हाथ कुशलता कोई ।
बनिज और व्यापार बिसारा;
धर्म, कर्म, आचार बिगारा ॥
१७—कपड़े तुम्हें विदेशी भाये;
नोन, तेल बाहर से लाये ।
कोई देशी वस्तु न प्यारी;
टोपी तक परदेशी धारी ॥
१८—देशी, गुड़, शक्कर, बिसराई;
निन्दित खाँड़ विदेशी खाई ।
भक्ष्य अभक्ष्य सभी कुछ खाया;
काग़ज़, क़लम पराया भाया ॥
१९—यद्यपि भारतवर्ष हमारा,
है इस समय सभी विधि हारा ।
तो क्या इसे छोड़ दोगे तुम ?
सब सम्बन्ध तोड़ दोगे तुम ?
२०—यह सर्वथा असम्भव, भाई,
अपना देश सदा सुखदायी ।
काम इसीसे नित्य रहेगा;
यहीं रहे आराम रहेगा ॥
२१—उठो, उठो, अब जागो भाई !
आलस, नींद, प्रमाद विहाई ।
देशी बनो, स्वदेश सँभारो,
वृथा न अपना जन्म बिगारो ॥

मुन्नीलाल ।

अमेरिका में लब्धप्रतिष्ठ

श्रीयुक्त महेशचरणसिंह,

बी०ए०, एम०एस० (मास्टर आव सायन्स)

श्री युक्त महेशचरणसिंह लखनऊ के एक कुलीन कायस्थ हैं। इन्होंने अमरीका में बड़ा नाम पैदा किया है। इनकी प्रशंसा हमारे देशवासियों ने अख़बारों में ज़रूर ही पढ़ी होगी। इस समय इनकी उम्र २६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष को है। नवाबी में, इनके पितामह श्रीयुक्त रामरत्न चकलेदार थे। सन् १८९७ में महेशचरणसिंह जो प्रयाग की कायस्थ-पाठशाला से पढ़कर इन्ट्रेंस की परीक्षा में, पहले विभाग में, पास हुए। विश्वविद्यालय में इनका दूसरा नम्बर आया। सन् १९०२ में, लखनऊ के रीड क्रिश्चियन कालेज से, आपने बी० ए० पास किया। बी० ए० में आपके अध्ययन-विषय अँगरेज़ी और अर्थशास्त्र थे।

सन् १९०३ में ये जापान गये। देश के उत्साही पुरुषों से आप को बहुत सहायता मिली। जापान में वर्ष दिन के ऊपर रहकर ये वहाँ से साबुन, दियासलाई, मोज़े बनाना आदि और छोटी छोटी कारीगरी के कार क्योंकर चलाने चाहिएँ, इत्यादि बातें सीख कर अमरीका गये।

अमरीका में पहले आप लेक्चर देते रहे। वक्तृता देनेमें आप बड़े कुशल हैं। इसमें कुशलता आपने स्वदेश ही में प्राप्त करली थी। बाद, "स्वामीराम सोसाइटी" की सहायता और सलाह से आप आरेगान (Oregon) नगर के नामी कृषि-कालेज में भर्त्ती हुए। वहाँ दो वर्ष तक रसायन-विद्या का परिशीलन किया। इस कालेज के अध्यक्ष ने लिखा है कि ये दो वर्ष मिस्टर सिंह ने नये आविष्कारों को खोज में बिताये, जिसका फल बहुत ही अच्छा हुआ*।

अमरीका में जापान के रईसों तथा साधारण लोगों के लड़के अपनी मिहनत से जीवन-निर्वाह के लिए धन कमाकर कला-कौशल सीखते हैं। लिखने पढ़ने के काम से शारीरिक श्रम का कम आदर नहीं है। हमारे भाइयों को सुनकर अचरज होगा (पर अचरज की बात नहीं है) कि वहाँ जज की तनख़्वाह कम और जज के मुंशी की अधिक है; क्योंकि मुन्शी को अधिक श्रम करना पड़ता है। अभिप्राय यह है कि मेहनत और ईमानदारी से पैसा कमाकर खाना और उससे पढ़ना पश्चिम की दुनिया में इज़्ज़त की बात समझी जाती है*। सुतराम् मिस्टर सिंह ने भी सब तरह के मोटे महीन काम करके यहाँ विद्याध्ययन किया और विद्याध्ययन के साथ ही साथ हम लोगों का नाम जैसा गौरवान्वित किया, उसका वर्णन आगे किया जाता है।

पश्चिम में क़हवे का बहुत ख़र्च है। वह दैनिक व्यवहार की चीज़ है। चिकोरी नामक एक पौधे की जड़ का इसमें मेल किया जाता है। यह मिलावट की बात बहुत दिनों से मालूम थी। पर इसकी ठीक ठीक परख और जाँच—विच्छेदनक्रिया—(Analysis) गोरी-दुनिया बहुत कोशिश करने पर भी नहीं निकाल सकी थी। अमरीका के बड़े चढ़े रासायनिक पण्डित इसमें हलाकान थे। पर मिस्टर महेशचरणसिंह ने इसकी सर्वोत्तम प्रक्रिया अपनी बुद्धि से निकाल कर वैज्ञानिक संसार को आश्चर्यान्वित कर दिया। गत जून में इन्होंने यह आविष्कार किया। अमरीका के वैज्ञानिकों ने मिस्टर सिंह को बिना बतलाये, तौल कर, नमूनों में चिकारी मिलाई और वह मिला हुआ क़हवा जाँच के लिए दिया। मिस्टर सिंह ने मिलावट की ठीक ठीक तायदाद जाँच कर बता दी और अपनी प्रक्रिया भी वैज्ञानिकों को समझा दी।

जून, जुलाई और अगस्त ०६ के अमेरिकन-समाचार-पत्रों में महेशचरणसिंह की बड़ी प्रशंसा छपी। उन्होंने अपने प्रतिनिधि इनसे मिलने के लिए भेजे। इनकी तसवीर छपी। इनकी अँगरेज़ी बोलने की प्रशंसा, इनके ऊँचे विचारों की स्तुति, इनके स्वदेश-प्रेम की सराहना, इनकी सुजनता और सुशीलता की वर्णना की और इनके देशवासियों को बधाई दी।

"दि संडे आरीगोनियन" (The Sunday Oregonian) नामक पत्र की १९ अगस्त, ०६ की असल कापी हमारे देखने में आई है। इसमें सबकी नज़र पड़ने लायक़ स्थान में बड़े बड़े अक्षरों में यह हेडिंग छपा है।

* Since his arrival he has been engaged in original research work in our laboratories which have proved highly satisfactory in results. Mr. Sinha by his industry, affability and attention to business has gained the esteem at our faculty and students." T. M. Gatch, Pres., Agr. College.

* मिस्टर जान बर्न जो इस समय इंगलिस्तान के मंत्रियों में हैं, और देश के नायकों में गिने जाते हैं, ख़ुद मज़दूरी कर के अपना निर्वाह करते थे। अमरीका में इँगलैंड से सौगुनी अधिक लोकाधीन शासन (Democracy) की महिमा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COFFEE'S INNER SECRETS BARED.

Discovery by Hindu student shows percentage of chicory.

Exact analytic method.

Mahesh Charan Sinha, O. A. C., Graduate, solves Chemical Problem that has long been bane of pure Coffee exponents.

अर्थात्—

कॉफ़ी (क़हवे) का अन्दरूनी भेद खुल गया !

हिन्दू-विद्यार्थी ने चिकोरी की मात्रा का पता लगा दिया।

यथार्थ-विश्लेषण-क्रिया।

बहुत दिनों का रासायनिक प्रश्न, महेशचरणसिंह, आरेगान कृषि-कालेज के ग्रेजुएट, ने हल कर दिया।

इस पत्र में आगे लिखा है कि समूचे आरेगान-कालेज को इस बात का घमंड है कि उसके एक छात्रने यह अचूक और अमूल्य आविष्कार निकाला।

"With Mr. Sinha's method it is now possible to determine the adulteration with unvarying exactness and the entire Oregon Agricultural College takes pride in having one of its students make the valuable discovery." फिर यह लिखा है कि "नवयुवक और नम्र मिस्टर सिंह, इस यश का कारण अपने को न समझ कर, सारा यश अपने देश की कृपा का फल मानते हैं और इसका श्रेय उसी को देते हैं। वे इस बात का गौरव करते हैं कि अपने देश के नाम पर कुछ कर सके। ("Young and modest Mr. Sinha does not claim any credit for himself. He maintains that the credit is due to his countrymen, and that he is proud of being able to do something on behalf of his people").

एक दूसरा पत्र (August 23, 1906 का Mt. Scott news) लिखता है। इस हिन्दू-छात्र ने यह आविष्कार करके बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। वह लेख-चातुरी और अध्ययन में उन १० अख़बार-नवीसों में से ९ को, जो इस समय उस के बारे में लिख रहे हैं, हमारे अमरीका के ही इतिहास और साहित्य में, लज्जित कर सकता है। और देशों के विषय की बहु-ज्ञता तो कोई बात ही नहीं।"

"कारवेलिस गज़ट (Cornwallis Gazette of June 15, 1906) लिखता है—"कृषि-शिक्षा के साथ रसायन-विद्या का मिस्टर सिंह ने अच्छा अभ्यास किया। उनकी लिखी पुस्तक (डिग्री पाने के लिए) बहुत अच्छी पाई गई। उन्हों ने क़हवे के विषय में नया आविष्कार किया। इस आविष्कार से विज्ञान में एक नई बात पैदा हुई। उसकी उन्नति हो गई। इससे सारे संसार का हित है। मिस्टर सिंह ने इस देश में अच्छा नाम पैदा किया। इस पर उनके देश-भाई घमंड कर सकते हैं। आशा है, अपने देश में, उन्हें हमारे देश की शिक्षा का महत्त्व दिखाने के लिए अवसर मिलेगा"।

महेशचरणसिंह को उनके कालेज के अध्यक्ष ने बधाई दी और सार्टिफिकेट में लिखा कि अपनी सुजनता और कार्यदक्षता से ये हम सब लोगों के श्रद्धाभाजन हुए। इनके गुणों पर प्रसन्न होकर वहाँ वालों ने इनको "मास्टर आव सायन्स" अर्थात् विज्ञान-वाचस्पति की पदवी दी। इनकी विद्वत्ता, श्रमशीलता, स्वभाव की सरलता आदि अनेक गुणों की प्रशंसा वहाँ के विद्वानों ने की है। पदवी पाने के बाद वहाँ के सरकारी रासायनिक के साथ ये काम करते रहे। आजकल आप लंदन में हैं।

महेशचरणसिंह जी ने अमरीका में कृषि का विज्ञान अच्छी तरह सीखा है। खेती और कारीगरी का इनको अनुभवजन्य ज्ञान है। विज्ञानविषयक अनेक प्रयोग इन्होंने हाथ से किये हैं। जापान और अमरीका में शिक्षा का कैसा प्रबन्ध है; और कैसी शिक्षा से इन देशों की उन्नति हो रही है; तथा भारतवर्ष को कैसी शिक्षा की आवश्यकता है—इन सब बातों का इन्होंने विशेष मनन और अध्ययन किया है। राजनैतिक विचार इनके बहुत स्वतन्त्र हैं। अमरीका में एक वर्ष तक सैनिक-कला की ऊँचे दर्जे की भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा इन्होंने प्राप्त की है। इसमें भी इनकी प्रशंसा हुई है। सरकारी नौकरी शायद ही ये करेंगे। यदि कोई देशी रियासत इनको अपने यहाँ लेले तो हम उसे भाग्यशाली समझेंगे। मिस्टर सिंह हिन्दी और नागरी के बड़े पक्षपाती हैं। रसायन-शास्त्र पर इन्होंने एक किताब लिखी है। उसे नागरी में छपवाने का इनका विचार है। ये शीघ्र ही स्वदेश को लौटनेवाले हैं।

काशीप्रसाद जायसवाल (लन्दन)।

अँगरेज़ी प्रजा का पराक्रम।

राजा बड़ा प्रजा अल्प, राजा श्रेष्ठ प्रजा कनिष्ठ, राजा बाप प्रजा बालक—इस तरह कल्पनायें प्राचीन समय से लेकर आज तक कितने ही देशों में प्रचलित हैं। जो कुछ राजा करे उसे प्रजा को चुपचाप मानना चाहिए। ज़रा भी चीं चपड़ करना मुनासिब नहीं। पुराने समय से प्रजा का यही धर्म्म माना गया है। परन्तु ज्ञान-मार्ग में मनुष्यों का तजरिबा जैसे जैसे बढ़ता गया वैसे वैसे उनकी समझ में यह बात आती गई कि राजा हुआ तो क्या हुआ, वह भी और आदमियों की तरह एक आदमी है। यह स्वाभाविक बात है कि वह औरों के सुख की अपेक्षा अपने सुख का अधिक ख़याल रक्खे। अपने को अधिक आराम पहुँचाने—अपने को अधिक सुखी करने—की झोंक में राजा के हाथ से अन्याय हो सकता है, अनुचित और असम्बद्ध काम हो सकता है और प्रजा को कष्ट पहुँच सकता हैं। यह ठीक नहीं। इसका निवारण होना चाहिए। यह कल्पना पहले पहल योरप के देशों में उत्पन्न हुई; फिर वह एशिया में पहुँची। जब वह धीरे धीरे इँगलैंड पहुँची तब वहाँ के निवासी राजा की सत्ता को नियमित करने की फ़िक्र में लगे। बुद्धिमान् मनुष्यों ने प्रयत्न आरम्भ किये। वे प्रयत्न अनन्त हैं। उनके फल भी अनन्त हैं। उनका साद्यन्त वर्णन बहुत ही मनोरञ्जक और उपदेशपूर्ण है। इस तरह के प्रयत्न करके प्रजा ने राजा से जो कुछ पाया है उसे हम पराक्रम कहते हैं। उसकी योग्यता लड़ाई के मैदान में दिखलाये गये पराक्रम से कम नहीं है। उसमें से दो एक बातें हम यहाँ पर लिखते हैं।

अँगरेज़ी प्रजा के पहले पराक्रम का नाम है मैग्नाचार्टा। यह एक सनद है। उसे १२१५ ईसवी में इँगलैंडवालों ने जॉन नामक अपने राजा से प्राप्त किया। जॉन बड़ा दुराचारी और अन्यायी था। इससे प्रजा को बहुत तंग करने लगा। अमीर, उमरा, सेठ साहूकार—सबसे वह ज़बरदस्ती रुपया वसूल करने लगा। एक यहूदी महाजन बड़ा धनाढ्य था। उसने राजा की इच्छा के अनुसार रुपया नहीं दिया। इस कारण राजा ने उसे क़ैद किया और प्रतिदिन उसका एक एक दाँत वह उखड़वाने लगा! ९ दिन तक उसका एक एक दाँत उखाड़ा गया। जब वह इस तरह दी गई वेदना से बहुत ही व्याकुल हुआ तब, राजा जितना रुपया माँगता था उतना देकर, किसी तरह उसने अपनी जान बचाई। इस तरह के जो अनेक ज़ुल्म—अनेक भयङ्कर अन्याय—हो रहे थे वे प्रजा को असह्य हो गये। अन्त में प्रजा बिगड़ खड़ी हुई। उसने टेम्स नदी के किनारे, रनीमीड के मैदान में, राजा को पकड़ा और १५ जून को उससे मैग्नाचार्टा नाम की एक दस्तावेज़ लिखवा ली। यह एक प्रकार का इक़रारनामा है। उस समय जो विशेष समझदार और चतुर लोग वहाँ थे उन्हीं का यह लिखा हुआ है। दस्तख़त उस पर राजा ने किये हैं। इस इक़रारनामे में राजा और प्रजा दोनों के हक़ों का यथोचित प्रतिबन्ध किया गया है। इसमें कुल ६३ दफ़ायें हैं। उनमें से ३ सबसे अधिक महत्त्व की हैं। उनका मतलब यह है—

(१) आदमी चाहे अमीर हो चाहे ग़रीब, सबके हक़ एकसे समझे जायँ।

(२) क़ानून के अनुसार अपराध साबित हुए बिना किसी आदमी को क़ैद करने का अधिकार राजा को नहीं है और न उसे निज के लिए किसीसे रुपया पैसा वसूल करने ही का अधिकार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) न्याय के कामों में घूस न ली जाया करे; सब का न्याय हुआ करे, कोई उससे वञ्चित न रक्खा जाय; और न्याय होने में देर न की जाया करे।

इन बातों में न तो कुछ अपूर्वता ही है और न नवीनता ही। तथापि इँगलैंड की प्रजा ने इस विषय का इक़रारनामा जॉन से लिखवा लिया और उसके अनुसार काम करने के लिए उसे लाचार किया। जितने अँगरेज़ हैं सब इस सनद को पूज्य समझते हैं। उन्हें उसका बड़ा अभिमान है। वे उसे बहुत बड़ी चीज़ समझते हैं। वे समझते हैं, मानों उन्होंने लोक-स्वतन्त्रता के एक बहुत ही मज़बूत क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया है। उसे वे बहुत होशियारी से रखते हैं। यह इक़रारनामा मिलने के दो सौ वर्ष बाद तक उन्होंने इसे ३७ दफ़े फिर से नया किया है!

दूसरे पराक्रम का नाम है हीबियस कार्पस। इस क़ायदे को अँगरेज़ लोग मैग्नाचार्टा से कुछ ही कम महत्त्व का समझते हैं। १६७९ ईसवी में, दूसरे चार्ल्स राजा के समय, अविश्रान्त परिश्रम और घोर वाद-विवाद करके, अँगरेज़ लोगों ने इसे पारलियामेंट से मंज़ूर करा पाया। पहले यह रीति थी कि यदि कोई आदमी राजा का अपमान या अपराध करता था तो उसके अपराध का न्यायानुसार विचार न करके जब तक राजा चाहता था उसे क़ैद रखता था। इस रीति के प्रचलित रहने से अनेक निरपराधी आदमियों को बहुत मुसीबतें झेलनी पड़ती थीं। प्रजा ने इसे बन्द करने ही में अपना कल्याण समझा। सतत प्रयत्न करके अख़ीर में उसे कामयाबी हुई। पारलियामेंट ने यह क़ानून बना दिया कि अपराध करने के सन्देह में यदि पुलिस किसी आदमी को पकड़े तो इतने घंटे के भीतर पुलिस को उसे विचार के लिए न्यायाधीश के सामने हाज़िर करना ही चाहिए। और जो आदमी एक दफ़ा किसी मुक़दमे में निरपराधी साबित हो जाय उस पर फिर उसी आरोप के सम्बन्ध में कोई अभियोग न चलाया जाय।

तीसरा पराक्रम अँगरेज़ी प्रजा का बिल आफ़ राइट्स है। तीसरे विलियम राजा के समय में, १६८९ ईसवी में, तत्कालीन अनेक झगड़े फ़साद और गड़बड़ों के मिटाने के लिए प्रजा ने यह क़ायदा पारलियामेंट से पास कराया। उसकी मुख्य मुख्य बातें नीचे दी जाती हैं—

(१) राजा या पारलियामेंट में से किसी एक को अकेले यह शक्ति नहीं कि वह किसी क़ानून को रद कर सके, या उसे कुछ समय तक मुलतवी रख सके।

(२) पारलियामेंट से सलाह किये बिना राजा को किसी तरह का कर लगाने का अधिकार नहीं। अगर कोई कर इस तरह लगाया जाय तो वह बेक़ायदा समझा जाय।

(३) शान्ति के समय, बिना पारलियामेंट की मंज़ूरी, अधिक फ़ौज रखना बेक़ायदा समझा जाय।

(४) प्रजा को अधिकार है कि वह राजा से न्याय की प्रार्थना कर सके।

(५) पारलियामेंट के सभासदों के चुनाव के काम में प्रतिबन्ध न हो; सब तरह की स्वतन्त्रता दी जाय।

(६) पारलियामेंट में बोलने और वाद-विवाद करने के सम्बन्ध में जो स्वतन्त्रता है उसके औचित्य या अनौचित्य का निर्णय पारलियामेंट ही में हो, बाहर नहीं।

(७) प्रजा के दुःखनिवारण का विचार करने और क़ायदे-क़ानून को अधिक मज़बूत बनाने के लिए पारलियामेंट की बैठक बारबार हुआ करे।

अनेक राजकीय अँगरेज़ों की राय है कि यह पूर्वोक्त क़ायदा पास हो जाने से अनेक प्रकार के सुभीते हो गये हैं, अनेक प्रकार के झगड़े बन्द हो गये हैं और अनेक राजकीय काम पहले की अपेक्षा अब अधिक अच्छी तरह होने लगे हैं। एक ग्रन्थकार कहता है कि ये पराक्रम अँगरेज़ी-राज्य-रूपी क़िले की मज़बूत दीवारें हैं। इनके होने से क़िले की रक्षा उत्तम प्रकार से होती है। इन तीनों पराक्रमों के विषय में राजकार्य्य धुरन्धर लार्ड चाथम ने एक बार कहा था कि—"अँगरेज़ी-स्वातन्त्र्य का सारा धर्म्म शास्त्र इन्हीं में है"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी स्वातन्त्र्य-रक्षा के लिए यह क़िला अँगरेज़ों ने अपने देश, इँगलैंड, में बनाया। परन्तु आश्चर्य्य की बात यह है कि जहाँ जहाँ वे जाते हैं वहाँ वहाँ वह उनके साथ साथ जाता है। उसे वे स्वयम्भु समझते हैं। वह उनसे कभी दूर नहीं रहता। अब कोई दो सौ वर्ष से अँगरेज़ लोग इस देश में भी आगये हैं। और हमारा और उनका रिश्ता राजा-प्रजा का हो गया है। अतएव उनका यह स्वयम्भु क़िला इस देश में भी आ पहुँचा है; और हम हिन्दुस्तानियों को उसके भीतर आराम से रहने का मौक़ा मिला है। हमारी जान और हमारा माल सब उसके भीतर सुरक्षित है। इसमें कोई आश्चर्य्य या विलक्षणता की बात नहीं। पूर्वपुरुषों की उपार्जित सम्पत्ति का उपभोग छोटे बड़े सब भाइयों को बराबर प्राप्त होता है। यह बात सर्वथा धर्म्मशास्त्र के अनुकूल है। यह एक प्रकार का अलङ्कारिक वर्णन हुआ। इसे जाने दीजिए। यह बात साफ़ साफ़ इस तरह कही जासकती है कि इँगलैंड की प्रजा ने प्रचण्ड परिश्रम करके, जिन बातों को ध्यान में रख, अपने लिए क़ानून पास करा लिये हैं, उन्हीं बातों को ध्यान में रख, इस देश के राज्य के सम्बन्ध में भी, अँगरेज़ी गवर्नमेंट ने बहुत समझ बूझ कर क़ायदे-क़ानून बनाये हैं। रेल, तार, छापेख़ाने, फ़ोटोग्राफ़, फ़ोनोग्राफ़, टेलिफ़ोन, बाइसिकल, मोटरकार, पुतलीघर इत्यादि चीज़ें, यंत्र और कल कारख़ाने जैसे अँगरेज़ लोगों के परिश्रम से विलायत में प्रचलित होकर पीछे से हम लोगों को प्राप्त हुए हैं और उनसे हम लोग फ़ायदा उठा रहे हैं, उसी तरह यहाँ की अँगरेज़ी गवर्नमेंट के क़ायदे-क़ानून भी इँगलैंड के लोगों के परिश्रम और प्रयत्न से वहाँ सिद्ध होकर अब वे हमें भी अनायास प्राप्त हुए हैं। यह, एक प्रकार से हम पर अँगरेज़ों का बहुत बड़ा उपकार है। हम लोगों में से एक साधारण आदमी को भी, अब सरकारी सिपाही को यह कहने का अधिकार है कि बिना समन के मैं कचहरी में नहीं हाज़िर हो सकता; और किसी को पकड़ने के बाद २४ घंटे के भीतर ही न्यायाधीश के सामने, उस पर किये गये आरोप का विचार करने के लिए, हाज़िर करना तुम्हारा कर्तव्य है। यह अँगरेज़ी क़ायदे-क़ानून ही की महिमा का प्रभाव है। अँगरेज़ी राज्य के पहले ये बातें यहाँ कहीं स्वप्न में भी न थीं। अँगरेज़ लोगों के सब तरह के परिश्रमों का जो फल हुआ है उसका अंश अब हमें सहज में ही मिल रहा है। यह हमारे लिए एक अलभ्य लाभ है। अथवा यह समझना चाहिए कि एक भाई की प्राप्त की हुई सम्पत्ति का उपयोग दूसरे भाई को होना न्याय्य ही है। धर्म्मशास्त्र की आज्ञा ही ऐसी है। या यों कहिए कि दूसरी अर्वाचीन विद्याओं की तरह, राज्यव्यवहार-विद्या में अँगरेज़ लोग हमें उत्तम गुरु मिले हैं। यह ईश्वर की कृपा है। सद्गुरु की हमेशा यही इच्छा रहती है कि अपना शिष्य अपने ही समान प्रवीण और योग्य हो। अतएव इस सुयोग का हमें अच्छा उपयोग करना चाहिए। हमें चाहिए कि हम अपने गुरु के मुँह से "शाबाश" कहलवा लें और ऐसा अच्छा योग लाने के लिए परमेश्वर और अँगरेज़ महाराज का धन्यवादपूर्वक उपकार मानें—(बालबोध)।

वसन्त-विकास।

छवि ऋतुराज की रे,
अपनी ओर निहार निहारो ॥ टेक ॥

पल पल अंश घटें रजनी के, बढ़े दिवस का मान।
यथा अविद्या सकुचे ज्यों ज्यों, त्यों त्यों विकसे ज्ञान ॥१
द्रुम दलहीन हुए पुनि पाई, हरियाली भरपूर।
देखो यों अवनति को उन्नति, कर देती है दूर ॥ २
बन बन छदन छबीले छाये, कोरे रहे करील।
कोई काल मन्दभागी को, करे न सम्पतिशील ॥ ३
सरसों ने कर दिये बसन्ती, जौ गेहूँ के खेत।
मानो सुमति मिली सम्पति से, धर्म सुकर्म समेत ॥४
सूखे फुलबुन्दे कदम्ब के, कलियानी कचनार।
हो बैठे धनहीन धनी यों, निर्धन साहूकार ॥ ५
उलहे गुल्मलता तृण ओषधि, अङ्कुर कोमलकाय।
जैसे न्यायशील राजा की, प्रजा बढ़े सुख पाय ॥ ६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीठे फल देने को बौरे, मङ्गलमूल रसाल।
जैसे सकल सुलक्षण धारें, होनहार कुलपाल ॥ ७
धीरे धीरे फूल फबीले, धरें सेवती सेव।
जैसे शुद्धसत्वगुणधारी, दरसें देवी देव ॥ ८
फूले फुलवाड़ी में गेंदा, और गुलाब अनूप।
राजसभा में आय विराजे, मानों मंत्री भूप ॥ ९
लाल फूल फूले सेमर के, काढ़ कोश गम्भीर।
मानों ले प्रबाल के प्याले, मदिरा माँगें वीर ॥ १०
रस बाँटें बिकसे तड़ाग में, उपकारी अरविन्द।
दान पाय गुण गाते डोलें, याचकवृन्द मलिन्द ॥ ११
फूले पाय लाल सी लाली, टेसू गन्धविहीन।
जैसे सजें रँगीले बाबा, बिन विवेक तनपीन ॥ १२
देखो सत्यानाशी फूली, तीखे कण्टकधार।
जैसे साधुवेष कटुवादी, वञ्चक करें विहार ॥ १३
फूल फबीले बरसाते हैं, बन बीहड़ आराम।
किंवा शर युवती युवकों पर, छोड़ रहा है काम ॥१४
चारों ओर सुगन्ध उड़ावे, शीतल मन्द समीर।
जैसे सज्जन की महिमा को, प्रकट करे कविधीर ॥१५
कुंज कुंज में कोकिल कूजें, बोलें विविध विहङ्ग।
सामगान के संग बजें ज्यों, वीणा वेणु मृदङ्ग ॥ १६
त्याग विरोध मिले आपस में, सरदी और निदाघ।
बैर बिसार तपोवन में ज्यों, साथ रहैं मृग बाघ ॥१७
दूर न देखे ऋतुनायक से, रसपति और अनङ्ग।
जैसे माया जीव ब्रह्म का, छुटे न अविचल सङ्ग ॥१८
वृद्ध ब्रह्मचारी वसन्त का, करते हैं अपमान।
ज्यों रसभावभरी कविता को, भद्दी कहें अजान ॥१९
सब देशों में भर देता है, मधु उमंग रस रङ्ग।
शङ्कर भूखे भारत को भी चढ़ जाती है भङ्ग ॥ २०

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा।

आख्यायिका।

सुनते हैं किरातार्जुनीय काव्य के कर्त्ता भारवि की बुद्धि बड़ी तीव्र थी। उनके पिता मनहीं मन तो उनसे बहुत प्रसन्न रहते थे, पर बाहर वे अपनी प्रसन्नता कभी न प्रकट करते थे। विपरीत इसके वे भारवि को ज़रा ज़रा सी बात पर झिड़का करते थे। उनका मतलब था कि भारवि को अपनी विद्वत्ता का गर्व न हो; वह और भी अपनी तरक़्क़ी करें। भारवि को पिता का आन्तरिक भाव मालूम न था। फल यह हुआ कि वह पिता की निर्भर्त्सनाओं से तंग आकर पितृ-हत्या सदृश घोर पाप करने पर आमदा हो गये।

भारवि के पिता एक रात को अपने कमरे में लेटे हुए थे। कमरे की खिड़की खुली थी। पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र-बिम्ब उससे देख पड़ता था। दैवयोग से भारवि की माता भी कमरे में थी। इसी रात को भारवि कमरे के दरवाज़ पर इस इरादे से पहुँचे कि पिता का काम तमाम करें। वहाँ उन्होंने अपने माता पिता को भीतर कुछ कहते सुना। उसे चुपचाप खड़े होकर वे सुनने लगे—

माता—स्वामिन्, आज चन्द्रमा कैसा भला मालूम होता है। उसका दिव्य प्रकाश कैसा सब तरफ़ फैला हुआ है।

पिता—हाँ, चन्द्रमा का प्रकाश वैसे ही फैला हुआ है जैसे भारवि के विद्वत्त्व का निर्म्मल यश।

यह सुनते ही भारवि पर वज्रपात सा हुआ। पितृ-हत्या वे भूल गये। प्रातःकाल परिताप और पश्चात्ताप से विकल होकर वे पिता के चरणों पर गिरे और अपना मन-कल्पित पाप स्वीकार किया। सुतवत्सल पिता ने भारवि का अपराध क्षमा कर दिया। पर भारवि ने प्रायश्चित्त कराये जाने के लिए हठ की। इस पर पिता ने उन्हें १२ वर्ष ससुराल में रह कर मानसिक पितृहत्या के पाप का प्रायश्चित्त-विधान किया। भारवि ने नत-मस्तक हो कर इसे स्वीकार किया और स्त्री-सहित ससुराल सिधाये।

ससुराल में कुछ दिन तक तो इन पति-पत्नी का अच्छा आदर सत्कार होता रहा; पर धीरे धीरे वह जाता रहा। भारवि गोचारण के काम पर नियत किये गये और उनकी स्त्री को घर के मलिन काम मिले। कहते हैं इसी दुःस्थिति में भारवि ने किरातार्जुनीय की रचना की। जब वे बाहर गायें चराने जाते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब जंगल में रोज़ वहीं दो दो चार चार श्लोकों की रचना करते थे।

भारवि की स्त्री अपनी दास्य-वृत्ति की शिकायत रोज़ पति से करती थी। एक दिन अपनी भाभी को अच्छे अच्छे गहने और कपड़े पहने देख उसे अपार दुःख हुआ। उसने भारवि को अनेक मर्म्मभेदक वाक्य कहे। भारवि ने उसकी बहुत कुछ सान्त्वना की और कल तक ठहरने को कहा।

दूसरे दिन आपने किरातार्जुनीय के दूसरे सर्ग का यह श्लोक हाथ में लिया और एक धनी महाजन के पास उसे गिरवी रखने गये—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥

अर्थात् आदमी को कोई काम बिना विचार किये सहसा न करना चाहिए। अविवेक बहुत बड़ी बड़ी आपदायों का घर है। जो लोग सोच समझ कर काम करते हैं उनके गुणों पर लुब्ध होकर सम्पदायें कभी उनका साथ नहीं छोड़तीं।

उस महाजन ने इस श्लोक के तात्पर्य्य को सुन प्रसन्नतापूर्वक भारवि को यथेष्ट धन दे दिया और श्लोक के काग़ज़ को अपने सोने के कमरे में दीवार से टाँग दिया। भारवि ने अपनी स्त्री की इच्छा पूर्ण की।

इसके कुछ ही दिन बाद वह वणिक विदेश चला गया और कोई १० वर्ष बीत जाने पर लौटा। इस समय उसका एकमात्र पुत्र जवान हो गया था। वणिक रात को अपने ग्राम आया और अपनी स्त्री के चरित की परीक्षा करनी चाही। इसलिए वह किसी प्रकार छत पर चढ़कर आँगन में उतरा और सोने के कमरे में गया। वहाँ उसने देखा कि उसकी स्त्री के पलँग पर एक पुरुष भी है। क्रोध से वह जल उठा और दोनों का सिर धड़ से अलग करने के लिए उसने तलवार को मियान से बाहर निकाला। ज्यों ही प्रहार करने के लिए उसने तलवार को ऊपर उठाया त्यों ही उसकी नोक भारवि के श्लोक में लगी और वह काग़ज़ नीचे गिर पड़ा। इस पर उसे उसके इस पूर्वपरिचित श्लोक के स्मरण के साथ साथ उसके अर्थ का भी ख़याल हो आया। उसने इस तरह उन दोनों को मारना उचित न समझ कर स्त्री को जगाया। स्त्री जगते ही पति को सामने देख प्रेम-विह्वल हो उठी। पर पति ने अधीर होकर पूछा, पलँग पर और कौन है? यह सुनते ही स्त्री ने उस पुरुष के ऊपर से चादर खींच ली। वणिक ने देखा वह पुरुष और कोई नहीं, उसी का पुत्र है।

इस घटना के कारण भारवि पर उस धनी वणिक की पूज्यबुद्धि बेहद बढ़ गई। इसी समय भारवि के १२ वर्ष ससुराल-वास की अवधि भी समाप्त होने पर आई। वे इस चिन्ता ही में थे कि गिरवी रक्खे हुए अपने "सहसा विदधीत" को किस तरह छुड़ावें कि वणिक के आदमी बड़े ही आदर से उन्हें बुलाने आये। भारवि के जाने पर उस धनी वणिक ने उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उन्हें अपनी स्त्री-पुत्र का प्राणदाता समझ कर अपनी १० वर्ष की कमाई में से बहुत सा धन और देकर उस श्लोक को उनसे मोल सा लेकर सुवर्ण-पत्र पर अङ्कित कराया और उसे ऐसी जगह रक्खा जहाँ हमेशा उसकी नज़र उस पर पड़े।

यह किंवदन्ती परम्परा से भारवि के विषय में सुनी जाती है। मालूम नहीं कहाँ तक सच है। उनका पूर्वोक्त श्लोक अनमोल अवश्य है; इसमें कोई सन्देह नहीं।

रामजीलाल शर्म्मा।

पुस्तक-परीक्षा।

मेरी सूरज। ५८ पृष्ठ की एक कहानी है। कँवर श्यामसुन्दर पुरोहित, पुरानी बस्ती, जयपुर से ३ आने को मिलती है। इसमें एक वार-वनिता-प्रेमी के शाद और बरबाद होने की बातें हैं। कहानी में कई जगह अस्वाभाविकता है। ☼

ब्राह्मणोत्तेजना। श्रीविशुद्धानन्द-सरस्वती-विद्यालय, कलकत्ता, के अध्यापक श्रीजीवानन्द शर्म्मा काव्यतीर्थ ने इस छोटीसी पुस्तक की रचना की है। पुस्तक रोला छन्द में है। ब्राह्मणों की सामाजिक और विद्या-विषयक अवनति का चित्र खींचकर उन्हें कुरीतियों को छोड़ने, विद्या पढ़ने और अपने प्राचीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौरव को पुनरुज्जीवित करने के लिए उत्तेजना दी गई है। ब्राह्मणों को काव्यतीर्थजी की प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

हमारी प्राचीन ज्योतिष। कर्त्ता बाबू ठाकुरप्रसाद खत्री। मूल्य पाँच आने। इस पुस्तक में अनेक प्रमाणों द्वारा यह साबित किया गया है कि "जिन ज्योतिष-सिद्धान्तों को यन्त्रों द्वारा जान कर आज योरोपवासी अपना नूतन आविष्कार मानते हैं * * * * वे सिद्धान्त भारतवर्ष में प्राचीन ही काल में जान लिये गये थे"। पुस्तक उत्तम है। इसमें एक भूमिका भी होनी चाहिए थी।

मिस्ट्रीज़ आफ़ दि कोर्ट आफ़ लन्दन। प्रथम खण्ड। अनुवादक बाबू ठाकुरप्रसाद खत्री। मूल्य १ रुपया। अँगरेज़ी जाननेवाले इस पुस्तक से अच्छी तरह परिचित होंगे। यह कई भागों में समाप्त होगी। इसमें विचित्र विचित्र लन्दनी रहस्यों का वर्णन है। इसे पढ़ने में मन तो ज़रूर लगता है; परन्तु सम्भावित आदमी इस तरह की किताबों को ज़रा कम पसन्द करते हैं। यह और "हमारी प्राचीन ज्योतिष" विनोदवाटिका आफ़िस, काशी, से मिलती हैं।

ब्रह्मचर्य्य। बाबू लक्ष्मीनारायण गुप्त-कृत। पृष्ठ-संख्या १५। मूल्य १ पैसा। इसमें ब्रह्मचर्य्य की बड़ाई है। परन्तु लिखने का तर्ज़ अच्छा नहीं। ओरियंटल फ्रेंड्स कम्पनी, सिकन्दराराऊ (अलीगढ़) इसे बेचती है। इस पुस्तक के लेखक ही इस कम्पनी के मैनेजर हैं।

मञ्जरी उपन्यास। यह भी पूर्वोक्त गुप्त महाशय की कृति है, और सिकन्दराराऊ की वही पूर्वोक्त कम्पनी इसे "बिना मूल्य" भेजती है। पर एक आने का टिकट पाने पर। इसके प्रत्येक पृष्ठ के नीचे किताबों और दवाइयों वग़ैरह के विज्ञापन हैं। अन्त के २४-२५ पृष्ठ बिलकुल ही विज्ञापनमय हैं। इसी लिए यह "बिना मूल्य" है। उपन्यास की कहानी कैसी है और उसमें क्या है सो बतलाने की ज़रूरत नहीं क्योंकि उससे शायद उपन्यासकार का "उत्साह भङ्ग हो जायगा"। और यह हमें अभीष्ट नहीं।

लक्ष्मीउपदेशलहरी। यह मासिक पुस्तक गया के लक्ष्मी प्रेस से तीन चार वर्ष से निकलती है। इसका सम्पादन पहले एक और सज्जन करते थे। पर अब कुछ समय से छत्रपुर के बाबू भगवानदीन करने लगे हैं। आपके सम्पादकत्व में इसकी उन्नति हो चली है। पहले की अपेक्षा अब अच्छे लेख निकलने लगे हैं। कविता भी इसमें रहती है। वार्षिक मूल्य इसका सिर्फ़ १ रुपया है।

ब्रह्मचारी-आश्रम की नियमावली। पण्डित दुर्गादत्त पन्त ने हरद्वार में एक "ऋषिकुल विद्यालय" खोला है। उसीके ब्रह्मचारी-आश्रम की यह नियमावली है। यहाँ जो ब्रह्मचारी रहते हैं उनसे ब्रह्मचर्य्य पालन कराया जाता है और सनातनधर्म्म के सिद्धान्तों को अक्षुण्ण रखकर संस्कृत और अँगरेज़ी पढ़ाई जाती है। वेदपाठ, पुरोहित-कार्य्य और अग्निहोत्र आदि की भी शिक्षा दी जाती है। कार्य्य उत्तम है। ब्रह्मचारियों के लिए कुटीर आदि बनवाने के निमित्त रुपया दरकार है। जिसे कुछ देना या पूछना हो वह पण्डित आनन्द-नारायण साहब, वकील, देहरादून से पत्र-व्यवहार करे। आपही इस आश्रम की प्रबन्धकारिणी कमिटी के सभापति हैं।

गजशास्त्र। युवराज श्रीवीरविक्रमदेव, खरियार, सङ्कलित। राजपूत ऐंग्लो-ओरियंटल प्रेस, आगरा, में मुद्रित। इस पुस्तक के कर्ता यद्यपि उत्कलवासी हैं तथापि हिन्दी पर आपका बड़ा प्रेम है। आपने गजशास्त्र का सार खींचकर इस पुस्तक में रख दिया है। हाथियों की बीमारियों पर आपने जो ओषधियाँ इसमें लिखी हैं वे बहुत उपयोगी हैं। जिनके यहाँ हाथी हैं उन्हें इस पुस्तक की एक एक प्रति अवश्य रखनी चाहिए।

सार-रामायण। बाँदा-निवासी पं० शिवदयालजी कृत। दाम दस आने। पृष्ठ संख्या १९६। आरमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेस, कानपुर, से प्राप्य। इसमें रामायण की कथा का सार "भजन, कवित्त, सवैया आदि में वर्णन किया गया है"। कहीं कहीं की कविता अच्छी है। भक्तजनों को इसे ज़रूर पसन्द करना चाहिए।

❋

लखनऊ की नवाबी-द्वितीय-खण्ड। अनुवादक बाबू ठाकुरप्रसाद खत्री, सिद्धेश्वरी, बनारस। उन्हीं से प्राप्य। इसके पहले खण्ड की आलोचना सरस्वती में प्रकाशित हो चुकी है। यह भाग भी पहले ही की तरह मनोरञ्जक है। शाही हरम, मोहर्रम, और शेर, हाथी, तीतर, बटेर, बारहसिंहों आदि की लड़ाई के वर्णन बहुत ही हृदयग्राही हैं। हमने तो इस पुस्तक को बुख़ार की हरारत में पढ़ा—पढ़ने की उत्कण्ठा को किसी तरह रोक ही न सके। इसमें भी कई एक चित्र हैं। छपाई पहले खण्ड की अपेक्षा अच्छी है। यद्यपि यह पुस्तक एक अँगरेज़ी किताब का अनुवाद है, पर लिखी इस तरह गई है कि अनुवाद नहीं, असल मालूम होती है। बाबू ठाकुरप्रसाद से एक प्रार्थना है कि भाषा को विशुद्ध बनाने की तरफ़ ज़रा अधिक ध्यान रक्खें और "स्वाभावितः", "विक्राल", "स्वात्व" और "विवर्ण" आदि शब्दों के प्रयोग से भी बचें।

❋

विश्वकर्म्मवंशनिर्णय। रचयिता बाबू शिवनारायण झा, पल्टन नं० ६ जाट, झाँसी। मूल्य सवा रुपया। इसमें अनेक संस्कृत-ग्रन्थों के आधार पर इस बात के साबित करने की चेष्टा की गई है कि बढ़ई लोग ब्राह्मण हैं। कौन ब्राह्मण? मैथिलों के अन्तर्गत विश्वकर्म्मवंशी ब्राह्मण। एवमस्तु। कुछ विद्वानों की राय है कि समाज की आरम्भिक अवस्था में जातिभेद न था। पेशे के अनुसार पीछे से जातिभेद हुआ। शुरू शुरू में सब एकाकार था। अतएव चेष्टा करने से चतुर्थ वर्ण के और लोग भी अपने को ब्राह्मण साबित करने का प्रयत्न कर सकते हैं। पर ब्राह्मण "पेशे" के पुराने आर्य्यों के वंशज जब इन सबको ब्राह्मण मान लें तब न!

मनोरञ्जक श्लोक।

"अणोरणीयान् महतो महीयान्" समस्या की एक पूर्ति सरस्वती की किसी पिछली संख्या में छप चुकी है। अब प्रकारान्तर से उसकी पूर्ति सुनिए—

अणोरणीयान् महतो महीयान् मध्यो नितम्बश्च सुलोचनायाः।
तद्गात्रसङ्गात् स्खलितं मदीयं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्॥

उस सुलोचना का मध्यभाग और नितम्ब यथाक्रम सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान् से भी महान् है। उसके योग से मेरा परम पवित्र यज्ञोपवीत गिर गया। सुनते हैं, इसके आद्यन्त चरण किसी पण्डित ने याद कर रक्खे थे। बीच के दो चरण कालिदास ने लगा कर श्लोक की पूर्ति की थी।

भीमसेन शर्म्मा।

❋

सव्याधेः कृशता क्षतस्य रुधिरं दष्टस्य लालास्रुतिः,
किञ्चिन्नैतदिहास्ति तत्कथमसौ पान्थस्तपस्वी मृतः।
आ ज्ञातं मधुलम्पटैर्मधुकरैरारब्धकोलाहले,
नूनं साहसिकेन चूतमुकुले दृष्टिः समारोपिता॥

वसन्त ऋतु में, आम के बाग़ में पड़ी हुई एक मुर्दा-लाश को देखकर कोई कहता है, कि यदि यह लाश किसी चिररोगी की होती तो दुबली पतली होनी चाहिए थी। और यदि किसी आकस्मिक घाव या ज़ख़्म से इसकी मृत्यु हुई है तो रुधिर के चिह्न दिखलाई देते, वे भी नहीं। फिर क्या सर्पादि किसी विषैले जन्तु के डसने से यह मरा है? नहीं। उस दशा में मुँह से पानी टपकता होता। इन बातों में से कोई भी इसमें दिखलाई नहीं देती। फिर यह बेचारा पथिक किस तरह मर गया? इस पर उसका साथी कहता है कि ओह! मालूम हुआ, आम की जिस मंजरी पर मधु के लम्पट भौंरों ने कोलाहल मचा रक्खा है, उसे इस साहसिक-बेजा जुरअत करने वाले पथिक ने नज़र भर देख लिया। बस इसी से इस की मौत हुई है!!!

पद्मसिंह शर्म्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती।

भाग ८] एप्रिल, १९०७ [संख्या ४

विविध विषय।

फ़रवरी ०७ के "इंडियन रिव्यू" में अध्यापक रंगाचार्य्य, एम०ए०, ने हिन्दी पर एक बहुत ही विचार-पूर्ण लेख लिखा है। आपकी राय है कि देश भर में एक ही व्यापक भाषा होने की बड़ी ज़रूरत है और हिन्दी ही ऐसी भाषा है जो देश-व्यापक भाषा होने की योग्यता रखती है। यह बड़ी ख़ुशी की बात है कि जिनकी मातृभाषा द्राविड़ है वे विद्वान् भी हिन्दी के व्यापक भाषा होने के पक्षपाती हो चले हैं। हम लोगों को अब हिन्दी की उन्नति के लिए ख़ूब दत्त-चित्त होना चाहिए और उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखकर अन्यान्य प्रान्तवालों के हृदय में हिन्दी पर विशेष श्रद्धा उत्पन्न करना चाहिए। अध्यापक रंगाचार्य्य की राय है कि जिन युवकों की मातृभाषा हिन्दी नहीं उन्हें वज़ीफ़े देकर भारतवर्ष के मुख्य मुख्य स्थानों की सैर करने भेजना चाहिए और इस प्रकार उनसे प्राप्त-शिक्षा की परिपूर्त्ति कराना चाहिए। इससे वे हिन्दी बोलना सीख जायँगे। सैर के लिए निकलने के पहले ऐसे युवकों को हिन्दी का थोड़ा बहुत अभ्यास होने की शर्त होनी चाहिए और ऐसे ही लोगों को वज़ीफ़े दिये जाने चाहिएँ जो हिन्दी में अपने विचार प्रकट कर सकते हों। आपकी यह भी राय है कि इतर प्रान्तों की प्रारम्भिक पाठशालाओं में हिन्दी पढ़ाने का प्रबन्ध होना चाहिए, जिसमें यदि लड़के या लड़कियाँ हिन्दी पढ़ना चाहें, तो पढ़ने में उन्हें सुभीता हो। आप कहते हैं कि शिक्षित भारत-वासियों को इस तरह काम करना चाहिए जिसमें किसी दिन एक हिन्दी-विश्वविद्यालय की स्थापना हो सके; क्योंकि बिना ऐसे विश्वविद्यालय के भारत का उद्धार नहीं हो सकता। भगवान हमारे प्रान्त के अँगरेज़ी-विद्याविशारदों को न मालूम कब सद्-बुद्धि देगा और कब वे हिन्दी बोलने, हिन्दी लिखने और हिन्दी पढ़ने को अपना कर्त्तव्य समझेंगे।

* * *

बंबई के सचित्र साप्ताहिक पत्र "टाइम्स आव इण्डिया" के २७ फ़रवरी ०७ वाले अङ्क में भी "उर्दू बनाम हिन्दी" नाम का एक लेख निकला है। उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबू जगत्प्रसाद ने लिखा है। उसमें उर्दू लिपि के दोष और नागरी के गुण दिखलाये हैं। लिखा है, उर्दू-लिपि को फ़ारसवालों ने जब पहले पहल अरबो से लिया तब उन्हें चार अक्षर और बढ़ाने पड़े। तब कहीं काम चला। जब यह लिपि इस देश की भाषा, हिन्दुस्तानी, लिखने के लिए प्रयोग में लाई गई तब दो अक्षर और बढ़ाने पड़े। तिसपर भी इसके दोष दूर न हुए। इसके बाद लेखक ने इस लिपि की सदोषता बड़ी योग्यता से साबित की है और सिफ़ारिश की है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों को नागरी लिपि ही काम में लाना चाहिए। ऐसा करने से दोनों में मेल बढ़ेगा जिसकी कि, इस देश के कल्याण के लिए, बड़ी ज़रूरत है। क्याही अच्छा हो जो पहले हमारे काश्मीरी और कायस्थ बन्धु फ़ारसी-लिपि में किताबें, रिसाले और अख़बार लिखना छोड़कर, धीरे धीरे नागरी में उन्हें निकालना शुरू करें।

* *
*

परलोकवासी बाबू हरिश्चन्द्रजी के फुफेरे भाई बाबू राधाकृष्णदास का, गत ३ एप्रिल को, काशी में शरीरान्त होगया। हरिश्चन्द्रजी के आप बड़े स्नेह-भाजन थे। उन्हीं ने इनके हृदय में हिन्दी का प्रेम उत्पन्न किया था। लड़कपनही से ये हिन्दी में पुस्तकें लिखने लगे थे। नागरी-प्रचार के लिए इन्होंने बहुत उद्योग किया था। हरिश्चन्द्रजी का जीवन-चरित पहले पहल इन्होंने ही लिखा था। यद्यपि ये बीमार रहा करते थे तथापि हिन्दी की सेवा में यथाशक्ति सदा तत्पर रहते थे। कुछ दिन तक सरस्वती से इनका विशेष सम्बन्ध रहा था। पहले वर्ष सरस्वती की सम्पादक-समिति के सम्पादकों में ये भी थे। इनकी मृत्यु से हिन्दी की बड़ी हानि हुई।

* *
*

कुछ दिन हुए मुसलमानों का जो शिक्षा-सम्बन्धी कान्फ़रन्स हुआ था उसका हाल पाठकों ने अख़बारों में पढ़ा ही होगा। इस कान्फ़रन्स के सभापति, कलकत्ता हाईकोर्ट के नये जज, माननीय मिस्टर सैयद शर्फ़ुद्दीन थे। आपने अपनी उर्दू-वक्तृता में कहा कि वर्त्तमान काल में इस देश की उन्नति के उपायों में सब से श्रेष्ठ उपाय यह है कि विदेशी भाषाओं में जो ज्ञान-भाण्डार भरा हुआ है उसे अनुवाद के रूप में हम लोग अपने देश के भाषा-भाण्डार में भरें। आपने यह सूचना दी कि प्रत्येक शहर में एक एक कमिटी बनाई जाय जो विदेशी भाषाओं के अच्छे अच्छे ग्रन्थों की नामावली तैयार करके उनके अनुवाद का प्रबन्ध करे। सैयद साहब का कहना बहुत ठीक है। अच्छी अच्छी पुस्तकों के अनुवाद की बड़ी ज़रूरत है।

* *
*

दो तीन वर्ष पहले इन प्रान्तों की गवर्नमेंट ने जैसे लड़कों के लिए "रीडर्स" बनवाई थीं वैसे ही अब वह लड़कियों के प्रारंभिक मदरसों के लिए भी बनवाना चाहती है। तीन रीडर्स दरकार हैं—एक लोअर-प्राइमरी, एक अपर-प्राइमरी, एक मिडिल-रीडर। प्रत्येक रीडर के लिए, जो पसन्द आ जायगी और जारी होने के लायक़ समझी जायगी, गवर्नमेंट ५००) रुपये इनाम देगी। इससे कम योग्यता की रीडर्स के लिए भी पाँच पाँच सौ रुपये इनाम मिलेगा; पर ये दूसरे दरजे की रीडर्स जारी न होंगी। हिन्दी और उर्दू, दोनों प्रकार की रीडर्स की भाषा एक ही, अर्थात् रोज़-मर्रा की, होनी चाहिए। पर हिन्दी रीडर्स में फ़ारसी के शब्द न आने चाहिएँ। यदि उनकी जगह सीधे सादे हिन्दी-शब्द मिल सकें तो वही रखने चाहिएँ। इन रीडर्स में इन विषयों पर पाठ होने चाहिएँ—गृहस्थी के काम-काज, प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्त्रियों के जीवन-चरित, स्वास्थ्य-रक्षा, नीति, यात्रावर्णन और महारानी विक्टोरिया का जीवन-चरित आदि। इस साल के अन्त तक रीडर्स की छपी हुई कापियाँ इन प्रान्तों के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर के दफ़्तर में पहुँच जानी चाहिए। रीडर्स का अँगरेज़ी-अनुवाद भी छपाकर या टाइप में लिखाकर भेजना होगा। जिनको इस विषय का पूरा हाल जानना हो वे २ मार्च ०७ का प्रादेशिक गवर्नमेंट-गज़ट देखें।

* *
*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोटर-गाड़ियों की तरह मोटर बाइसिकलें भी इस देश में अब प्रायः सभी बड़े बड़े शहरों में दौड़ा करती हैं। मोटरवाली पैरगाड़ियाँ बहुत तेज़ जाती हैं। घंटे में पच्चीस तीस मील जाना तो कोई बातही नहीं। पर अमेरिका के करटिस साहब ने एक ऐसी मोटर बाइसिकल बनाई है जो रेल से भी तेज़ जाती है। इसका वज़न साढ़े तीन मन है। इसमें जो मोटर की कल लगी हुई है उसमें कोई ४० घोड़े की ताक़त है। इसकी दौड़ की परीक्षा जो हुई तो घंटे में १३६ मील के हिसाब से यह दौड़ी! पर इसका एक पुर्ज़ा बिगड़ गया। इससे सरकारी तौर पर इस दौड़ की सारटीफ़िकट न मिल सकी। अब यह पुर्ज़ा बदल दिया जायगा और फिर परीक्षा होगी। इतना वेग आज तक किसी गाड़ी में नहीं देखा गया। इसका दौड़ना क्या है हवा से बातें करना है।

***

अध्यापक मेकडानल ने रायल एशियाटिक सोसायटी के जुलाई ०६ के जरनल में एक लेख प्रकाशित करके इस देश के विद्वानों पर कई एक गुरुतर दोषों की आरोपणा की है। आपकी राय है कि हिन्दुस्तानी संस्कृताध्यापक आलोचनापूर्वक गुणदोषनिरूपण करके संस्कृत पढ़ाना नहीं जानते। भारतवर्षीय विद्वान् प्राचीन पुस्तकें प्रकाशित करने में एक ही हस्तलिखित प्रति की मनमानी कई प्रतियाँ बना लेते हैं। स्कूलों और कालेजों में संस्कृत की पाठ्य पुस्तकें समुचित रीति पर नहीं चुनी जातीं। परीक्षा-प्रश्नों में भी गड़बड़ हो जाती है। इसीलिए आप चाहते हैं कि हिन्दुस्तानियों को संस्कृत पढ़ाने के लिए अँगरेज़ अध्यापक रक्खे जायँ। अध्यापक मेकडानल की इन बातों का उत्तर बंबई के एलफ़िन्स्टन कालेज के संस्कृताध्यापक, श्रीयुक्त श्रीधर रामकृष्ण भाण्डारकर, एम० ए०, ने बड़ी योग्यता से अँगरेज़ी में दिया है और उसे पुस्तकाकार प्रकाशित किया है। इसमें उन्होंने मेकडानल साहब की प्रत्येक बात का खण्डन किया है और दिखलाया है कि साहब की कितनी ही बातें केवल कपोल-कल्पना हैं। उन्होंने साहब के संस्कृत-विद्या-गुरु, मानियर विलियम्स साहब, तक की बुरी बुरी ग़लतियाँ दिखलाई हैं। ख़ुद मेकडानल साहब की भी उन्होंने ख़बर ली है। उन्होंने साबित कर दिया है कि वैदिक मन्त्र-भाग के सिवा और किसी विषय में योरप के संस्कृतज्ञ इस देशवालों की बराबरी नहीं कर सकते। बूलर, कीलहार्न और पिटर्सन आदि ने हिन्दुस्तानियों ही से संस्कृत पढ़कर इतना नाम पाया। अध्यापक मेकडानल के लेख का मतलब यह जान पड़ता है कि संस्कृत पढ़ाने के लिए अब से गवर्नमेंट अँगरेज़ ही अध्यापक रक्खे और दो चार हिन्दुस्तानियों की मुँह की रोटी छीन ले। इस कृपा के लिए आपका धन्यवाद है। आशा है अध्यापक भाण्डारकर का उत्तर पढ़कर आप अपनी भूल समझ जायँगे। सुनते हैं आप हिन्दुस्तान में घूमने आने वाले हैं। एवं भवतु।

***

म्यूर कालेज के भूतपूर्व अध्यक्ष डाक्टर टीबो, और उसी कालेज के प्रधान संस्कृताध्यापक पण्डित गङ्गानाथ झा, जनवरी ०७ से अँगरेज़ी में 'इंडियन थॉट' नाम की एक त्रैमासिक पुस्तक निकालने लगे हैं। इसके हर अङ्क में सौ सवा सौ पृष्ठ रहते हैं। मूल्य इसका १० रुपये वार्षिक है। इसमें विशेष करके दर्शन-शास्त्र-सम्बन्धी संस्कृत के प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित ग्रन्थों का, क्रम क्रम से, अनुवाद प्रकाशित होगा। अलङ्कार, ज्योतिष, व्याकरण आदि के ग्रन्थों के अनुवाद भी कभी कभी निकलेंगे। स्वतन्त्र प्रबन्ध और आलोचनायें भी रहेंगी। प्राच्य-शास्त्रावलोकन से जिन्हें प्रेम हैं, पर संस्कृत न जानने के कारण जो उसके रसास्वादन से वञ्चित हैं, उनके लिए यह त्रैमासिक पुस्तक बहुत उपयोगी होगी। इसकी प्रशंसा सुनकर डाक्टर टीबो से हमने इसका एक नमूना माँगा। आपने कृपा करके जनवरी के अङ्क की एक प्रति नमूने के तौर पर भी भेज दी और एक आलोचना के लिए भी। एतदर्थ हम डाक्टर साहब के बहुत कृतज्ञ हैं। इस अङ्क में चार लेख हैं—

(१) श्रीहर्षकृत खण्डनखण्ड-खाद्य का अनुवाद (अपूर्ण)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) माधवाचार्य्यकृत विवरण-प्रमेय-संग्रह का अनुवाद (अपूर्ण)।

(३) भारतीय ज्योतिष-शास्त्र का इतिहास (अपूर्ण)।

(४) एक जर्मन-पण्डित कृत "वैदिक देवी देवता" ग्रन्थ की आलोचना।

(१) और (२) संस्कृत के आकर ग्रन्थ हैं। उन्हें पढ़ना और समझना साधारण पण्डितों का काम नहीं। परन्तु अँगरेज़ी में अच्छा अभ्यास रखने वाले सब लोगों के लिए ये ग्रन्थ अब सुलभ हो गये। इस त्रैमासिक में प्रकाशित ग्रन्थों और निबन्धों की आलोचना की चेष्टा हमारे लिए अनधिकार-चर्चा होगी। अतएव उस झगड़े में न पड़ कर इसकी दो एक अवान्तर बातोंहो के विषय में, प्रार्थना के रूप में, हम कुछ कहना चाहते हैं।

खण्डनखण्ड-खाद्य के अनुवाद के पहले जो 'नोट' है उसमें लिखा है कि इस ग्रन्थ के कर्त्ता बहुत करके आठवीं सदी के पहले के लोग हैं। यह चिन्त्य है। नैषध-चरित के कर्त्ता ने लिखा है कि खण्डनखण्ड-खाद्य मेरी ही रचना है। अतएव दोनों के कर्त्ता श्री-हर्ष एक ही थे। प्रबन्ध-कोश नामक जैन-ग्रन्थ के लेखक राजशेखर ने श्रीहर्ष का होना क़न्नौज के राजा जयचन्द के समय में लिखा है और दानपत्रों से जय-चन्द का ईसा की बारहवीं शताब्दि में होना सिद्ध है। अतएव श्रीहर्ष भी उसी के समकालीन हुए। यदि 'इंडियन थॉट' के सम्पादकों के पास और कोई प्रमाण इस के विरुद्ध न हो तो श्रीहर्ष का समय आठवीं सदी के पहले कैसे हो सकता है?

इस अङ्क का (३) लेख डाक्टर टीबो का लिखा हुआ है। इसमें संस्कृत के शब्द अँगरेज़ी लिपि में लिखने में कई जगह त्रुटियाँ हो गई हैं। उदाहरण—

जैसा छपा है।	जैसा चाहिए।
Shaṅkar Bālkṛiṣṇ Dikṣit	Shaṅkara Bālkṛiṣṇa Dīkṣita
Siddhānta Shiromani	Siddhānta Shiromaṇi
Vaidik Kāl	Vaidika Kāla
Yāt Sattra	Yāta Sattra

ऐसी ही और भी कई त्रुटियाँ हैं। मामूली पुस्तकों में ये बातें त्रुटियों में नहीं गिनी जातीं; पर ऐसी पुस्तकों में गिनी जाती हैं। क्योंकि संस्कृत-शब्दों के शुद्धोच्चारण के लिए लिपि-नियम बना दिये गये हैं। एतदर्थ कई एक चिह्नों की सृष्टि भी की गई है। 'Rik' (ऋक्) शब्द में 'k' के आगे 'a' का न लिखा जाना उचित है, क्योंकि 'ऋक्' का 'क्' स्वर-हीन अर्थात् हल् है; पर 'वैदिक' का 'क' और 'काल' का 'ल' स्वरयुक्त है। उनमें 'अ' स्वर विद्यमान है। अतएव 'Vaidik' के 'k' और 'Kal' के 'l' के आगे 'a' ज़रूर होना चाहिए। यही बात और भी इसी तरह के शब्दों के लिए कही जा सकती है। डाक्टर साहब ने 'Maṇḍala' (मण्डल) 'Amṛita' (अमृत) आदि के अन्त में, और अन्यत्र भी 'a' लिखा भी है। Dikṣit (दीक्षित) लिखने में तो डाक्टर साहब ने 'क्ष' के लिए 'ṣ' का प्रयोग किया; पर 'पूर्व-पक्ष' (Pūrva-Paksha) में 'क्ष' के लिए 'sh' क्यों? 'वैदिक' और 'पौराणिक' शब्दों को संस्कृतानभिज्ञ विद्वानों ने 'व्यदिक' (Vedic) और 'पौरानिक' (Pauranic) लिखकर उन्हें अँगरेज़ी बना डाला है। डाक्टर साहब वैसे विद्वान् नहीं; आप संस्कृतज्ञ हैं। फिर क्यों आपने 'Vaidika' को 'Vedic' और 'Paurāṇika' को 'Pauranic' लिखा है, मालूम नहीं? उदाहरण-गत 'वैदिक काल' (Vaidik Kāl) लिखने में आपने जिस नियम का अनुधावन किया है उसी का सर्वत्र क्यों न किया? आशा है आप इन सूचनाओं के लिए हमें क्षमा करेंगे।

पण्डित गङ्गानाथ झा यदि कभी कभी हिन्दी में भी कुछ लिखने की कृपा कर दिया करें तो बड़ी अच्छी बात हो।

* *
*

प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर ग्रियर्सन इँगलैंड से लिखते हैं:—

"I know the "Sarasvati" very well, and greatly appreciate it. It is quite one of the best Vernacular Magazines published in

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

India * * * * I hope that "Sarasvati" will have a long and prosperous career. It deserves it, and I am very glad to find that a literary Magazine, not simply devoted to the *Shringâr-ras*, but dealing with all branches of literature, has been appreciated by the people of Hindustan."

"धन्याः सरस्वती स्कन्दो जिनश्च जगति त्रयः।
पटान्तलग्नतृणवत् क्षिप्तो व्याधूय यैः स्मरः॥"

अर्थात् सरस्वती को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। जानता ही नहीं, मैं उसकी क़द्र भी बहुत करता हूँ। भारत में देशी भाषाओं की जो सबसे उत्तम सामयिक पुस्तकें निकलती हैं उन्हीं में सरस्वती भी है। आशा है समृद्धिशालिनी होकर चिरकाल तक सरस्वती जीवित रहेगी। वह इसी योग्य है; उसे चिरञ्जीव और सौभाग्यशालिनी होनाहीं चाहिए। मैं इस बात से बहुत प्रसन्न हूँ, कि भारतवासियों ने ऐसी मासिक पुस्तक की, जो सिर्फ़ शृङ्गार रस ही के नहीं, किन्तु विद्यासम्बन्धी भिन्न भिन्न अनेक विषयों के लेख प्रकाशित करती है, क़द्र की है।

डाक्टर ग्रियर्सन ने जो श्लोक लिखा है उसका मतलब है—संसार में सरस्वती, स्कन्द (शिव-सुत), और जिन ये तीन धन्य हैं। इन्हों ने (महा-बली) मार को, वस्त्रप्रान्त में लगे हुए तिनके की तरह फटकार कर दूर फेंक दिया! डाक्टर साहब की इस उत्साहजनक समालोचना के लिए हम उन के बहुत कृतज्ञ हैं। सरस्वती इस प्रशंसा के योग्य नहीं; पर जब डाक्टर साहब के सदृश विद्वान् उसपर इतनी कृपा करते हैं तब वह दूने उत्साह से हिन्दी-भाषा की, और तद्द्वारा देश की, सेवा करना अपना परम कर्त्तव्य समझेगी।

* *
*

२३ मार्च को इन प्रान्तों के छोटे लाट के कौन्सिल की बैठक थी। उसमें माननीय राय निहालचन्द बहादुर ने १९०५ के दो ऐसे अर्ज़ीदावों का उदाहरण दिया जिन्हें, नागरी अक्षरों में लिखे जाने के कारण, बनारस के मुन्सिफ़ ने, ८ अगस्त १९०५ को, लेने से इनकार कर दिया था। इनकारी के और भी कारण थे; उनमें से यह भी एक था। उन्होंने गवर्नमेंट से प्रार्थना की कि हुक्म दिया जाय, ऐसे काग़ज़ात बेरोक टोक लिये जायँ। उत्तर में गवर्नमेंट की तरफ़ से कहा गया कि मुन्सिफ़ साहब ने भूल से ऐसा किया था। उन्हें हाईकोर्ट ने हुक्म दे दिया है कि नागरी अक्षरों में लिखी हुई अर्ज़ियाँ अब न लौटाई जायँ।

राय निहालचन्द बहादुर की इस कृपा के, नागरी के हितचिन्तक कृतज्ञ हैं। पर आश्चर्य्य है बनारस के पास पड़ोस के मेम्बरों को ऐसी बातों की ख़बर नहीं रहती। उनका काम सुदूरवर्ती उर्दू-प्रधान ज़िले, मुज़फ़्फ़रनगर, के रायबहादुर जी को करना पड़ता है!

* *
*

संस्कृत में कर्णसुन्दरी नाम की एक नाटिका है। "अणहिल्ल पाटण" का चालुक्यवंशीय नरेश कर्णदेव किंवा कर्णराज इसकी कथा का नायक है। उसी के लिए इस नाटिका की रचना की गई जान पड़ती है। इसके भी कर्त्ता महाकवि बिल्हण हैं। इस नाटिका का नाम हमने "विक्रमाङ्कदेव-चरित-चर्चा" में नहीं दिया। बिल्हण ने इस पुस्तक की नान्दी में पहला श्लोक जिन-विषयक लिखा है। बिल्हण वेदपाठी ब्राह्मण थे; हिन्दुओं के तीर्थों और देवताओं में श्रद्धावान् थे। फिर जिन-स्तुति क्यों? एक और बात है। उन्होंने पुस्तक में अपना नाम सिर्फ़ बिल्हण दिया है। नाटक-परिपाटी के अनु-सार कवि को अपने यथेष्ट गुणगान करने चाहिएँ। परन्तु बिल्हण ने अपनी 'विद्यापति' पदवी का उल्लेख इसमें कहीं नहीं किया। फिर, बिल्हण दक्षिण में विक्रमादित्य के यहाँ थे। तत्सम्बन्धी नाटिका न लिखकर कर्णदेव को कथानायक क्यों बनाया? इससे यह शङ्का होती है कि कहीं ये कोई और ही बिल्हण तो नहीं। इस नाटिका में वीरसिंह नामक एक "प्रधान" का भी उल्लेख है। जिस बिल्हण ने इस नाटिका की रचना की है वे शायद इसी वीरसेन की कुमारी शशिकला के बिल्हण हों। कर्णदेव ने १०६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से १०९३ ईसवी तक राज्य किया और विक्रमाङ्कदेव ने १०७६ से ११२६ ईसवी तक। यदि विक्रमाङ्कदेव-चरित वाले ही बिल्हण ने कर्णसुन्दरी की रचना की है तो वे अनहिलपट्टन में कुछ समय तक रह कर, फिर सोमनाथ के दर्शन करके, दक्षिण को गये होंगे और कल्याण में विक्रमाङ्कदेव के आश्रम में रहे होंगे।

परलोक-वासी मिस्टर जॉन बीम्स।

विद्या विनयोपेता हरति न चेतांसि कस्य मनुजस्य ?
काञ्चनमणि-संयोगो नो जनयति कस्य लोचनानन्दम् ?

सरस्वती के पाठकों को डाक्टर हार्नली, डाक्टर ग्रियर्सन, और मिस्टर ग्रौस के जीवन-चरितों में मिस्टर बीम्स का उल्लेख मिला होगा। इन महाशय के विशेष परिचय के लिए यह नोट आज लिखा जाता है। मिस्टर बीम्स भारतीय भाषाओं के विद्वान् थे। हिन्दी से उनका विशेष सम्बन्ध था।

२१ जून १८३७ ईसवी को इनका जन्म ग्रीनिच-हास्पिटल में हुआ था। इनके पिता पादरी टामस बीम्स लंदन के सेंट जेम्स गिरजाघर के धार्मिक उपदेष्टा थे और पितामह, जान बीम्स, हमारे 'लिन्कन्स इन' के बैरिस्टर और बेन्चर थे। साथ ही वे के० सी० (K. C.) अर्थात् बादशाह के वकील, भी थे। इँगलैंड में बैरिस्टरी के बेंचर और के० सी० होना बहुत बड़े मान की बात समझी जाती है।

मिस्टर बीम्स को, मरचेंट टेलर स्कूल में डाक्टर हेसिंग की निगरानी में, शिक्षा दी गई थी। यहीं से इनको इंडियन सिविल सरविस में एक जगह मिल गई। इसके बाद, ये हेबीबरी कालेज में संस्कृत और फ़ारसी सीखने गये। १८५६-५७ के बीच इन्हें चौथे "टर्म" में संस्कृत और फ़ारसी में पारितोषिक मिले। १८५८ में ये हिन्दुस्तान पहुँचे। ५९ से ६१ तक पंजाब में इनकी नौकरी थी। ६१ से अन्त तक ये बंगाल में रहे। ६७ में स्थायी कलेक्टर और ८१ में कमिश्नर हुए। दो बार बोर्ड आव रेविन्यु के स्थानापन्न मेंबर भी रहे। सन् १८९३ के मार्च में ये इंडियन सिविल सर्विस से अलग हुए।

पंजाब और बंगाल में रहने के कारण बीम्स साहब को वहाँ की भाषाओं और उप-भाषाओं का व्यावहारिक ज्ञान हो गया। १८६६ में बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में इनके लेख पहले पहल प्रकाशित हुए। उन्हें इन्होंने चम्पारन से लिखा था। विषय था कि—अदालती उर्दू में अर्बी के शब्द बर्ते जायँ या नहीं। इस विषय पर इनकी राय का उल्लेख हमारे पिछले लेखों में हो चुका है। एक बरस पहले मिस्टर बीम्स का ध्यान बिशप कैल्डवेल के लिखे द्राविड़ी भाषाओं के तारतम्य-बोधक व्याकरण (Comparative Grammar of Dravadian Languages) पर गया। इनके विचार में आया कि—आर्य भाषाओं का भी एक ऐसा ही व्याकरण बनना चाहिए। सन् १८६६ में आपने इस विषय का अध्ययन आरम्भ किया और ७२ में उसका प्रथम फल प्रकाशित हुआ।

इस अभ्यन्तर में कई एक छोटी छोटी चीज़ें इनकी लेखनी से निकलीं। १८६७ में, "Outlines of Indian Philology" (भारतीय शब्द-व्युत्पत्ति-विद्या की बाहरी रेखाएँ) नामक पुस्तक इनकी छपी, जिसका दूसरा संस्करण १८६८ में निकला। यह सबसे पहला ग्रन्थ भारतीय भाषाओं की व्युत्पत्ति-विद्या का था। इसके पहले और किसी ने भारत की समग्र आर्य-वंशीय भाषाओं पर कोई पुस्तक नहीं लिखी थी। यद्यपि इसके बहुतेरे सिद्धान्त, बाद के भाषा-तत्त्ववेत्ताओं (डाक्टर हार्नली, डाक्टर ग्रियर्सन आदि) के अनुसन्धान से, भ्रान्तिपूर्ण सिद्ध हो गये हैं, तथापि इस ग्रन्थ की बहुतेरी बातें आज भी वैसी ही उपयोगी हैं जैसी प्रकाशित होने के समय थीं।

सन् १८६८ में इँगलैंड की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में नेपाल और भोजपुर की भाषाओं पर मिस्टर बीम्स के लेख मुद्रित हुए। इन उप-भाषाओं पर ये प्रथम लेख थे। इनके बाद डाक्टर ग्रियर्सन ने बिहारी भाषा पर लिखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८८५ ईसवी तक, बीम्स साहब का सम्बन्ध बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी से बना रहा। २० वर्ष तक आप उसकी पत्रिका में लेख लिखते रहे। इन लेखों में से कई लेख मैंने "हिन्दी", और "चन्द की हिन्दी" आदि पर देखे हैं। चन्द बरदाई की कविता का अध्ययन पहले पहल आप ही ने आरम्भ किया और आप ही के प्रयत्न से उसने प्रसिद्धि प्राप्त की। चन्द का छन्दोबद्ध अँगरेज़ी अनुवाद भी आपने शुरू किया था। पर पीछे से जब इस बात की चर्चा छिड़ी, कि रासो के कर्ता चन्द ही हैं या और कोई, तब उन्होंने उसका अवलोकन बन्द कर दिया और शायद इसीसे उन्होंने अनुवाद भी पूरा न किया। इसके सिवा पुरातत्त्व और उड़ीसे के इतिहास पर भी, १८७० और १८६३ के बीच, उक्त सभा की पत्रिका में आपने बहुत कुछ लिखा। आपके ये लेख विशेषतः चन्द बरदाई और कुछ अन्य पुराने हिन्दी कवियों पर ही हैं।

सन् १८८४-८५ में "अकबर के समय का भारतीय भूगोल—" आपने प्रकाशित किया। इस बीच में "इंडियन ऐंटिक्वेरी" (Indian Antiquary) नामक बंबई के पुरातत्त्व सम्बन्धी पत्र के भी आप सहायक लेखक थे। उस समय इंडियन ऐंटिक्वेरी में अच्छे अच्छे लेखक थे। उसमें मिस्टर बीम्स ने बड़े बड़े विद्वानों के ग्रन्थों की आलोचना की है और बंगाल और उड़ीसे के प्राचीन साहित्य पर कुछ नये लेख भी लिखे हैं।

सन् १८६९ में, सर हेनरी इलियट के "Supplemental Glossary of Indian Terms" (भारतवर्षीय पारिभाषिक-शब्द-कोष के परिशिष्ट) का संस्करण आपने छापा, जो अँगरेज़ों के लिए बहुत ही लाभदायक है। ३२ वर्ष बाद, अर्थात् १८९१ में, इनका नामी 'बंगाली भाषा का व्याकरण' मुद्रित हुआ। इसमें साधु और इतर, दोनों तरह की, बंग-भाषाओं का विवेचन है।

सेवावृत्ति से उपरत होने पर आपने इंपीरियल और एशियाटिक क्वार्टरलि रिव्यु में ही विशेष करके लिखा। एक बार आपने एक 'प्राकृत-कोश' बनाने का विचार किया था; पर ग्रन्थप्रकाशकों से पूरा प्रोत्साहन न मिलने के कारण आपने उस विचार को त्याग दिया। मरने के पहले इस अविश्रान्त परिश्रमशील विद्वान् ने बाबर के आत्मचरित (तुर्की) का अनुवाद आरम्भ किया था।

बीम्स साहब का "भारतीय आर्यभाषाओं का तारतम्यबोधक (अथवा तत्त्वसादृश्य-निरूपक) व्याकरण" इनकी लेखनी का सर्वोत्तम रत्न है। यह १८६६ में आरम्भ किया गया और क्रमशः ७२, ७५ और ७९ में प्रकाशित हुआ। सन् १८७२ में तीन तरफ़ से, आधुनिक आर्य-भाषाओं पर, युरोपियन विद्वानों की लेखनी से लेख निकले। डाक्टर हार्नली के गौड़-भाषाओं पर भाषा-तत्व-सादृश्य-निरूपक लेख, और मिस्टर बीम्स के व्याकरण का प्रथमभाग—इसी सन् में प्रकाशित हुए। डाक्टर ट्रम्प ने केवल सिंधी ही भाषा का विवेचन किया था। पर डाक्टर हार्नली के लेख बड़े महत्त्व के हुए; भाषाशास्त्र में डाक्टर साहब की गम्भीर गवेषणा के ये उदाहरण रूप हैं। इनके निश्चित किये गये बहुत से सिद्धान्त मिस्टर बीम्स ने पीछे से स्वीकार किये। पर मिस्टर बीम्स का ग्रन्थ अपने विषय का पूर्ण ग्रन्थ था। उसमें बीम्स साहब ने अद्भुत पाण्डित्य दिखलाया है। अपने सिद्धान्तों का निरूपण आपने तर्कशास्त्रानुकूल करके भी विषय को जटिल नहीं होने दिया। बड़ी सरलता और योग्यता से आपने विचार किया है। यह ग्रन्थ मिस्टर बीम्स का कीर्तिस्तम्भ है। यद्यपि इसकी बहुत सी बातें डाक्टर हार्नली और डाक्टर ग्रियर्सन की गवेषणा से रद हो गई हैं, तो भी वह अपने विषय का पहला और मौलिक ग्रन्थ होने से अब भी उसका बड़ा मान है। डाक्टर ग्रियर्सन ने लिखा है कि भाषा-शास्त्र के अध्ययन में उनको इस ग्रन्थ से बहुत सहायता मिली है।

डाक्टर ग्रियर्सन ने बीम्स साहब के मार्ग पर चलकर बहुत कुछ किया। बीम्स उन्हें बराबर प्रोत्साहन देते थे। साथ ही भाषाविषयक कामों में सहायता भी देते थे। डाक्टर ग्रियर्सन के "लिंग्युस्टिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वे" (भाषा के इतिहास) की वंग-भाषा-विषयक रिपोर्ट का आपने संशोधन कर दिया था और बहुत सी सूचनाएँ दूसरे विषयों में भी दी थीं। इस सम्बन्ध में डाक्टर ग्रियर्सन ने अपनी कृतज्ञता, मिस्टर बीम्स की मृत्यु पर, रायल एशियाटिक सोसायटी के पत्र में एक लेख लिखकर, प्रकाशित किया है। वे कहते हैं कि उस समय किसी सिविलियन का भाषा-शास्त्र के सिद्धान्तों को ढूढ़ निकालना बुरा समझा जाता था। पर उन्हें मिस्टर बीम्स से, जो सिविल-सर्विस में उनके ऊपर थे, पहला पत्र १८७८ ईसवी के लगभग पाकर बहुत उत्साह हुआ।

इतने अगाध अध्ययन में डूबे रहने पर भी मिस्टर बीम्स चिट्ठियों का उत्तर तुरन्त देते थे। डाक्टर ग्रियर्सन कहते हैं कि मिस्टर बीम्स के साथ पत्र-व्यवहार में, डाक्टर साहब ही हमेशा पीछे रहते थे। जवाब में देरी इन्हीं से होती थी।

विवाद के समय बीम्स साहब की लेखनी में बड़ी तीव्रता आजाती थी। इसका उदाहरण डाक्टर हार्नली और इनके बीच का भाषा-सम्बन्धी विवाद है। बीम्स को अपने अध्ययन में विश्वास रहता था। पर दूसरे विद्वानों की अखण्डनीय युक्तियों को आप स्वीकार भी कर लेते थे। बीम्स साहब भारतीय भाषाशास्त्र की बातों में प्रथम प्रमाण माने जाते हैं।

बीम्स साहब को फ़ारसी की कविता का बड़ा शौक़ था। भारतवर्ष के काव्यों में वे महाभारत की बड़ी तारीफ़ करते थे। उसे वे योरप के प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्यों में किसी से कम न समझते थे।

मार्च १८९३ में मिस्टर बीम्स ने सिविल सर्विस से पेन्शन ली और इँगलिस्तान आये। २४ मई सन् १९०२ को लम्बी बीमारी पाकर, समरसेट में आपका शरीर-पात हुआ। जून में रायल एशियाटिक सोसाइटी में आपके लिए शोक प्रकाशित किया गया*।

* सभा के अधिवेशन में डाक्टर ग्रियर्सन ने एक लेख पढ़ा था जो पीछे से सोसायटी के जरनल में प्रकाशित हुआ। विशेष करके उसी लेख के आधार पर यह नोटिस लिखी गई है। लेखक।

गुणी हो या निर्गुण, मरना सभी को पड़ता है। भेद इतना ही है कि एक के लिए संसार शोक करता है—उसका नाम पीछे भी सम्मान के साथ लिया जाता है—दूसरे के कूच कर जाने से पृथ्वी हलकी हो जाती है। हमारे देश में बहुत से कलेक्टर, कमिश्नर, और लाट आते और वहाँ से चले जाते हैं। किसी का नाम विद्या, विवेक, सौशील्य और सहानुभूति के बल से अचल हो जाता है, और किसी का दुर्व्यवहार के बल पर।

मिस्टर बीम्स की विधवा जीवित हैं। उनके तीन लड़के और पाँच लड़कियाँ हुईं। उनकी एक लड़की जनरल सर हेनरी गियरी को व्याही हैं। मिस्टर बीम्स के चित्र के लिए हम डाक्टर ग्रियर्सन और जनरल सर हेनरी के बहुत अनुगृहीत हैं।

हिन्दी से सम्बन्ध रखनेवाले विद्वानों में से चार के संक्षिप्त वृत्तान्त सरस्वती में प्रकाशित हो चुके। इस सम्बन्ध में इन महाशयों के विषय में और लिखा जा सकता है—डाक्टर गिलक्राइस्ट, मिस्टर फ़्रेडरिक पिन्काट, फ़्रेञ्चविद्वान् डिब्यासी, मिस्टर निकलसन् और रेवरेंड ग्रीव्ज़। फ़्रेडरिक पिन्काट की जीवनी, हरिश्चन्द्र के चरित-लेखक लिखनेवाले हैं। बड़ी कृपा हो यदि आप पिन्काट साहब पर एक छोटा सा लेख, खड्गविलास प्रेस की सामग्री के आधार पर, लिखकर सरस्वती में प्रकाशित करके इस विषय की लेखमाला को पूरा करने में हमें सहायता दें।

डाक्टर हार्नली, मिस्टर बीम्स और डाक्टर ग्रियर्सन ने* जो व्याकरण लिखे हैं, उनका उल्लेख कई बार सरस्वती में आया है। क्या ही अच्छा हो यदि कोई लेखक, इन ग्रन्थों से काट छाँट कर हिन्दी-व्याकरण-विषयक पुरातत्त्वों को प्रकाशित करें। इस विषय में, हरिश्चन्द्र की नवप्रकाशित जीवनी में एक अध्याय पढ़कर हमें बहुत प्रसन्नता हुई। यह अध्याय

* हिन्दी-व्याकरण के विषय में डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने भी कुछ लिखा था। इस विषय में उनका एक बहुत अच्छा लेख उनके "इंडो आर्यन" नामक ग्रन्थ में है जो अनुवाद के योग्य है। लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी योग्यता से लिखा गया है। हरिश्चन्द्र के चरित-लेखक महाशय से हमारी यह भी प्रार्थना है कि यदि आपको अवकाश हो तो इस विषय में भी आप हाथ लगावें। इससे हिन्दी का बड़ा उपकार होगा। हमारा विचार इस विषय में लिखने का था; और उसका आरम्भ भी किया था; पर अब उसका होना ज़रा मुश्किल मालूम होता है।

काशीप्रसाद जायसवाल।
(लिंकन्स इन, लंदन)

कर्म्मवीर।

देखकर जो विघ्न बाधाओं को घबराते नहीं।
भाग पर रह करके जो पीछे हैं पछताते नहीं।
काम कितनाहीं कठिन हो पर जो उकताते नहीं।
भीड़ पड़ने पर भी चञ्चलता जो दिखलाते नहीं।
होते हैं यक आन में उनके बुरे दिन भी भले।
सब जगह सब काल में रहते हैं वह फूले फले॥ १॥

आज जो करना है कर देते हैं उसको आजही।
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही।
मानते जी की हैं, सुनते हैं सदा सबकी कही।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आपही।
भूल कर वह दूसरे का मुँह कभी तकते नहीं।
कौन ऐसा काम है जिसको वह कर सकते नहीं॥२॥

जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं।
काम करने को जगह बातें बनाते हैं नहीं।
'आज कल' करते हुए जो दिन गँवाते हैं नहीं।
यत्न करने में कभी जो जी चुराते हैं नहीं।
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके किये।
वह नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिये॥ ३॥

गगन को छूते हुए दुर्गम पहाड़ों के शिखर।
वह घने जंगल जहाँ रहता है तम आठो पहर।
गर्जते जल-राशि की उठती हुई ऊँची लहर।
आग की भयदायिनी फैली दिशाओं में लवर।
है कँपा सकती कभी जिसके कलेजे को नहीं।
भूल कर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं॥ ४॥

चिलचिलाती धूप को जो चाँदनी देवें बना।
काम पड़ने पर करें जो शेर का भी सामना।
हँसते हँसते जो चबा लेते हैं लोहे का चना।
"है कठिन कुछ भी नहीं" जिनके है जी में यह ठना।
कोस कितने ही चलें पर वह कभी थकते नहीं।
कौन सी है गाँठ जिसको खोल वह सकते नहीं॥५॥

ठीकरों को वह बना देते हैं सोने की डली।
रंग को करके दिखा देते हैं वह सुन्दर खली।
वह बबूलों में लगा देते हैं चम्पे को कली।
काक को भी वह सिखा देते हैं कोकिल-काकली।
ऊसरों में हैं खिला देते अनूठे वह कमल।
वह लगा देते हैं उकठे काठ में भी फूल फल॥ ६॥

काम को आरम्भ करके यों नहीं जो छोड़ते।
सामना करके नहीं जो भूल कर मुँह मोड़ते।
जो गगन के फूल बातों से वृथा नहिँ तोड़ते।
संपदा मन से करोड़ों की नहीं जो जोड़ते।
बन गया हीरा उन्हीं के हाथ से है कारबन*।
काँच को करके दिखा देते हैं वह उज्जल रतन॥ ७॥

पर्वतों को काट कर सड़कें बना देते हैं वह।
सैकड़ों मरुभूमि में नदियाँ बहा देते हैं वह।
अगम जलनिधि-गर्भ में बेड़ा चला देते हैं वह।
जंगलों में भी महा मंगल मचा देते हैं वह।
भेद नभतल का उन्होंने है बहुत बतला दिया।
है उन्होंने ही निकाली तार को सारी क्रिया॥ ८॥

कार्य्य-थल को वह कभी नहिँ पूछते 'वह है कहाँ"।
कर दिखाते हैं असंभव को वही संभव यहाँ।
उलझनें आकर उन्हें पड़ती हैं जितनी ही जहाँ।
वे दिखाते हैं नया उत्साह उतना ही वहाँ।
डाल देते हैं विरोधी सैकड़ों हीं अड़चलें।
वह जगह से काम अपना ठीक करके ही टलें॥९॥

जो रुकावट डालकर होवे कोई पर्वत खड़ा।
तो उसे देते हैं अपनी युक्तियों से वह उड़ा।
बीच में पड़कर जलधि जो काम देवे गड़बड़ा।
तो बना देंगे उसे वह क्षुद्र पानी का घड़ा।

---

* कारबन = कोयला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन खँगा लँगे करेंगे व्योम में बाजीगरी।
कुछ अजब धुन काम के करने की उनमें है भरी॥१०॥

सब तरह से आज जितने देश हैं फूले फले।
बुद्धि विद्या धन विभव के हैं जहाँ डेरे डले॥
वे बनाने से उन्हीं के बन गये इतने भले।
वे सभी हैं हाथ से ऐसे सपूतों के पले।
लोग जब ऐसे समय पाकर जनम लेंगे कभी।
देश को वो जाति की होगी भलाई भी तभी॥ ११॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय।

सभा की सभ्यता।

बहुत आदमी अब तक यही समझते हैं कि सरस्वती, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, की पत्रिका है। उनके-विशेष करके उर्दू-पत्र-सम्पादकों के-जानने के लिए हम सूचित करते हैं कि सरस्वती का इस सभा से कोई सरोकार नहीं। सरस्वती ही का नहीं, किन्तु अब हमारा भी इस सभा से कोई सरोकार नहीं रहा। हमने ४ फ़रवरी ०७ से सभा की सभ्यता छोड़ दी है; हमने उसकी साधारण मेम्बरी से इस्तेफ़ा दे दिया है। लोग शायद यह जानना चाहेंगे कि जिस सभा के हम आठ नौ वर्ष मेम्बर रहे, और समय समय पर काम करके यथाशक्ति जिसकी सहायता भी हमने की, उसकी मेम्बरी से इस्तेफ़ा क्यों? इसका कारण बतलाने की हमारी इच्छा न थी; पर सभा की प्रबन्ध-कारिणी कमिटी के सभासदों का कुटिल, अनुदार और महा-अन्याय-पूर्ण व्यवहार उसे बतलाने को हमें विवश कर रहा है। सभा-सम्बन्धिनी अनेक ऐसी निन्द्य और घृणोत्पादक बातें हमारी नज़र में आई हैं, जिनको सभा के बाहरी मेम्बरों और सर्व-साधारण से छिपाये रखना गोया उन्हें धोखा देना है। काशी की इस सभा के कोई सात सौ मेम्बर हैं। सभा को अच्छी समझ कर वे उसके मेम्बर हुए हैं। गवर्नमेंट भी यही जानती है कि यह सभा अपना काम अच्छी तरह करती है; इसके सब काम विधि-विहित होते हैं; यह हिन्दी-साहित्य की उन्नत करने की चेष्टा करती है। अतएव यदि किसी को इसमें दोष देख पड़ें तो उसका कर्त्तव्य है कि वह उन्हें सर्व-साधारण पर प्रकाशित कर दे। जिसमें सब लोग सचेत हो जायँ और हो सके तो उन दोषों को दूर करने का यत्न करें। जो मनुष्य किसी समाज के दोषों को देखकर भी उन्हें प्रकट नहीं करता वह अपने को सर्व-साधारण की दृष्टि में ख़ुद ही दोषी बनाता है। क्योंकि दो चार आदमियों की अप्रसन्नता की परवा न करके जो सैकड़ों आदमियों को सचेत करके उन्हें लाभ पहुँचाता है वही समाज का सच्चा हितचिन्तक है। इन्हीं विचारों की प्रेरणा से हम आज यह लेख लिखने के लिए बाध्य हुए हैं।

सबसे पहले हम यह कह देना चाहते हैं कि सभा से हमारा कोई विरोध नहीं। सभा के उद्देश्य बहुत अच्छे हैं। हमारा सारा विरोध इसकी प्रबन्ध-कारिणी कमिटी के मेम्बरों से है। सभा के सञ्चालन का सूत्र इन्हीं लोगों के हाथ में है। ये सब काशी के ही रहने वाले हैं। अथवा यों कहना चाहिए कि सभा के सूत्रधार सिर्फ़ दोही चार आदमी हैं। कभी प्रकट रूप से, कभी अप्रकट रूप से, वही सभा की बाग-डोर अपने हाथ में रखते हैं। जिस सभासद से ये लोग किसी कारण से नाराज़ हो जाते हैं उसके साथ अन्याय करने में कोई दक़ीक़ा बाक़ी नहीं रखते। इसके हमारे पास पक्के प्रमाण मौजूद हैं।

हमने सभा के मंत्री के बहुत कहने पर दार्शनिक परिभाषा लिखी। कई आदमियों ने मिलकर उसका संशोधन किया। छपने के पहले हमने पुस्तक की संशोधित कापी देखना चाहा। इस लिए हमने हज़ार कोशिशें कीं; पर सभा ने हमारी बात न मानी; हमारी एक भी न सुनी; हमें कापी न भेजी। परन्तु इसके बहुत दिन बाद सभा के मंत्री बाबू श्यामसुन्दरदास ने, बिना हमारे लिखे ही, प्रस्ताव कर दिया कि पुस्तक का प्रूफ़ हमारे पास भेजा जाय, जिसमें हम जो संशोधन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहें कर दें। यह प्रस्ताव फ़ौरन मंज़र हो गया। तब हमने पूछा कि इस निश्चय-विपर्य्यय का कारण क्या? पर कारण सभा का बतलाया न बतला गया। हमारे प्रश्न को सुनकर सभा चुप्पी साध गई। अतएव हमने प्रूफ़ देखने से इनकार कर दिया। यह इस बात का दृढ़ प्रमाण है कि इस सभा की कमिटी के कुछ मेम्बरों की इच्छाही सब कुछ है। न्याय-अन्याय, भले-बुरे, हानि-लाभ का विचार बालायेताक़ रहता है। जिससे ये लोग ख़ुश हैं, उसके लिए सभा सब कुछ कर डालेगी; जिससे ना ख़ुश हैं उसके मान, मर्य्यादा, प्रतिष्ठा की एक तिनके के बराबर भी परवा न करेगी। उसकी न्याय-सङ्गत बात को भी न मानेगी। इससे यह निष्कर्ष निकला कि यद्यपि यह सभा छ सात सौ आदमियों से बनी है; यद्यपि ये सब सभासद सभा को उद्देश्य-सिद्धि के ही लिए चन्दा देते हैं; यद्यपि प्रबन्धकारिणी कमिटी के मेम्बर इन सब सभासदों के नौकर नहीं तो प्रतिनिधि ज़रूर हैं; तथापि इस कमिटी के मेम्बर अपनी आन्तरिक वासनाओं को पूर्ण करने के लिए, साधारण मेम्बरों के साथ अन्याय करने में कोई कसर नहीं करते।

इस बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है। पुनरुक्ति माफ़ हो। दार्शनिक परिभाषा का संशोधित पाठ, छपने के पहले, हमने देखना चाहा। पर सभा ने सूखा जवाब दिया। हम चुप हो रहे। हमने झगड़ा बढ़ाना उचित नहीं समझा। परन्तु जब उसके छपने का समय आया तब अचानक मंत्री जी ने प्रस्ताव कर दिया कि प्रूफ़ हमारे पास भेजा जाय और हम जितने संशोधन या सूचनायें करना चाहें करदें :—"So that you may make any corrections or suggestions that you may deem necessary." पूछने पर इस मतिपरिवर्तन का कारण हमें न बताया गया। इससे हमने प्रूफ़ देखने से इनकार कर दिया। इस पर सभा के पुराण-पुरुषों को एक अत्यन्त ही घिन पैदा करने वाली चालाकी सूझी। आपने क्या किया कि भारतजीवन में प्रकाशित करने के लिए इस निश्चय की जो नक़ल भेजी उससे, प्रूफ़ों में संशोधन और सूचनायें करने की बात, निकाल फेंकी। कहीं सब लोगों को मालूम हो जाय कि चाणक्य को भी चालाकी सिखलाने वाले सभा के जो चाणाक्ष कार्य्यकर्त्ता दार्शनिक परिभाषा की संशोधित कापी हमारे पास भेजना अपनी, सभा की या संशोधकों की सर्वज्ञता में बट्टा लगाना समझते थे, वही अब हमसे संशोधन और सूचनायें माँगने लगे! शिव शिव! भला ऐसा कहीं हो सकता था! देखिए, यही लोग गला फाड़ फाड़ कर तारस्वर से चिल्लाते हैं कि हम सभा की कोई कारवाई पोशीदा नहीं रखना चाहते! याद रखिए, यही इतने सरल-हृदयधारी सज्जन आगे चलकर हम में कुटिलता ढूंढने के लिए आकाश-पाताल एक कर डालेंगे। नाराज़ हो गये तो संशोधित कापी देखने तक नहीं देंगे; ख़ुश हो गये तो जितने संशोधन और सूचनायें चाहिए कर दीजिए! मना कौन करता है! इस सरल नीति को, इन नेकनियती को, इस पालिसी को देखिए और सभा की कमिटी के कौशली सभ्यों को आशीर्वाद दीजिए।

इस सभा के मंत्री के बहुत ही नम्र भाव से प्रार्थना करने पर हम इसके सभासद हुए। इसका हम लिखित प्रमाण देंगे। सभा के काम भी जो हम से हो सके किये। पर इसकी अन्यायपूर्ण और अनुचित बातें हमें बीच में कई दफ़े खटकीं। इस पर हमने सभा से सम्बन्ध छोड़ देना चाहा। पर ऐसा न करने के लिए हमसे सभा के एक स्तम्भस्वरूप सज्जन ने प्रार्थना की। कहा कि आप सभा को छोड़िए नहीं; उसकी सहायता कीजिए। हमने इस बात को मान लिया और फिर भी यथाशक्ति सहायता करते रहे। यहाँ पर हम यह कह देना चाहते हैं कि इस सभा के सभासद होने के पहले भी हमने इसका काम किया था। जिस समय पण्डित मदनमोहन मालवीय के प्रयत्न से सभा इन प्रान्तों में नागरी अक्षरों का प्रचार कराने को कोशिश कर रही थी, उस समय हमने झाँसी, जालौन, ललितपुर, बाँदा और हमीरपुर से हज़ारों हस्ताक्षर करा कर भेजे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन चार वर्ष हुए हम सभा की प्रबन्धकारिणी कमिटी के कुछ मेम्बरों के विरक्ति-भाजन हो गये। इसका प्रमाण यह है कि हमारी ही बनाई दार्शनिक परिभाषा का संशोधित पाठ हमें दिखाने से सभा के शीलनिधान कार्यकर्त्ताओं ने इनकार कर दिया। महीनों मेहनत करके, और गाँठ का रुपया भी ख़र्च करके, हमने किताब लिखी। पर हमारी ही किताब हमीं को देखने को न मिली। यदि कमिटी के महापुरुष हम से विरक्त न होते, यदि हम पर उनका पहलेही का सा सद्भाव बना होता, तो हमारी इस सर्वथा न्याय्य प्रार्थना पर वे इस तरह पत्थर न मारते? इसके बाद, जब से हमने खोज की रिपोर्ट की आलोचना की तब से तो गोया हम सभा के पक्के दुश्मन हो गये। आलोचना क्या की गोया हमने कोई घोर पाप किया। याद रखिए, रिपोर्ट के लेखक कार्य्यकारिणी कमिटी के सिर्फ़ एक सभ्य हैं। पर प्रतिवाद उसका पूरी कमिटी—नहीं पूरी सभा—की तरफ़ से किया गया। उसका फल क्या हुआ सो सरस्वती के वाचकों को मालूम ही है।

सभा की भौतिक परिभाषा में हमें अनेक ग़लतियाँ मिलीं। उसके दो एक पृष्ठों की ग़लतियों की फ़ेहरिस्त हमने सभा को भेजी और लिखा कि हमारी दार्शनिक परिभाषा के प्रूफ़-संशोधन में ग़लतियाँ न होनी चाहिएँ। यदि उसकी भी भौतिक परिभाषा की जैसी दशा हुई तो हमें पबलिक के सामने अपील करनी पड़ेगी। इसका उत्तर मिला कि—"दार्शनिक परिभाषा जो अब छप रही है उसकी शब्द-संख्या लगभग तिगुनी हो गई है × × × इस अवस्था में दार्शनिक परिभाषा के इस संस्करण को आप अपना कह कर स्वीकार करना उचित न समझेंगे। इसलिए सभा का विश्वास है कि आपको उस परिभाषा के ग्रन्थकर्त्तारूप में पबलिक के सामने अपील करने की आवश्यकता न पड़ेगी"। सभा की इस कृतघ्नता को देखकर बड़ा अफ़सोस हुआ। भौतिक परिभाषा की ग़लतियों के विषय में जो पत्र हमने सभा को लिखा था उसका मतलब सभा की कमिटी ने भारतजीवन में प्रकाशित कर दिया। ख़ैर यह अच्छा ही किया; क्योंकि सभा सर्व-साधारण की चीज़ है। उसकी सब बातें पबलिक के सामने जानी ही चाहिएँ। पर सभा के कौटिल्य को तो देखिए। हमारे प्रतिकूल उसने अपना निश्चय तो छाप दिया। परन्तु हमारी भेजी हुई भौतिक-परिभाषा की ग़लतियों की सूची उसने न छापी और न उसने अपने इस निश्चय के विषय में हमारे उत्तर ही को छापा। यही नहीं; किन्तु हमें जो पत्र उसने लिखा उसमें तो उसने 'विश्वास' शब्द का प्रयोग किया; पर भारतजीवन में उसने जो अपना निश्चय प्रकाशित किया उसमें 'विश्वास' की जगह 'कदाचित्' लिखा! सत्यशीलता, सरलता, न्यायप्रियता हो तो ऐसी!

वैज्ञानिक परिभाषाओं में से एक को छोड़कर और सब परिभाषाएँ और लोगों ने लिखीं। सिर्फ़ एक छोटी सी १७ पृष्ठ की भौगोलिक परिभाषा बाबू श्यामसुन्दरदास ने, कलकत्ते की साहित्य-परिषद् की बँगला परिभाषा को देखकर, लिखी। इन सब परिभाषाओं का संशोधन भी और ही लोगों ने किया; उनके प्रूफ़ भी और ही लोगों ने जाँचे। पर सिर्फ़ भूमिका लिखने और सामान्य पर्य्यवेक्षण करनेही भर से सभा के मंत्री, बाबू श्यामसुन्दरदास, सब परिभाषाओं के सम्पादक बन बैठे और आपका नाम सोने के अक्षरों में किताबों की जिल्द पर चमकाया गया! परन्तु महीनों परिश्रम करके पुस्तक लिखने, और एक तिहाई से भी ज़ियादह हमारे शब्द होने, पर भी सभा को 'विश्वास' हो गया कि हम दार्शनिक परिभाषा के कर्त्ता बनना पसन्द न करेंगे! सभा के मेरुदण्ड, सभा के आधारस्तम्भ, सभा के कुतुबमीनार, को हमने नाराज़ कर दिया। फिर भला सभा को क्यों ऐसा विश्वास न हो? मूल दार्शनिक परिभाषा में ४७३४ शब्द थे और दोहराई हुई में १०,७०९ शब्द हैं। यह पिछली संख्या बाबू श्यामसुन्दरदास के हिसाब से प्रायः तिगुनी है! दूनी से कुछ ज़ियादह नहीं है!!! आपने अपनी भूमिका में इसे तिगुनी लिखा और सभा महारानी ने उसे विधना के अक्षर समझ कर वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें लिख भेजा! यथार्थवाद का सबक़ कोई सभा से ले! इस विषय में सम्पादक महाशय ने बड़े बड़े गुल खिलाये हैं जिनका मधुर मधु पाठकों को यथास्थान चखने को मिलेगा।

सभा के काम-काज की समालोचना (याद रखिए समालोचना में हमने कोई बात निर्मूल नहीं कही) करने के कारण प्रबन्धकारिणी कमिटी के कुछ सुयोग्य सभासदों के धीर, गम्भीर और उदार हृदयों में हम भाले की नोक की तरह चुभने लगे। इससे यह ठहरी कि अप्रतिष्ठापूर्वक हम सभा से निकाल दिये जायँ। इसके लिए मौक़ा ढूंढ़ा जाने लगा। इन सारल्य-सदन सज्जनों के सौभाग्य या दुर्भाग्य से बहाना भी जल्द मिल गया। वह इस तरह :—

प्रबन्धकारिणी सभा के एक मेम्बर ने (बाबू श्यामसुन्दरदास ने नहीं, एक औरही सज्जन ने) हमें लिखा कि हम सभा के लिए एक पुस्तक लिख दें। उत्तर में हमने निवेदन किया कि जो सभा हम पर बड़े बड़े अन्याय करते भी नहीं सकुचती उसके लिए पुस्तक लिखने में हम असमर्थ हैं। इस समय, भारत-जीवन में, दार्शनिक-परिभाषा-विषयक 'प्रायः तिगुनी' शब्द-संख्या वाले सभा के मन्तव्य को छपे, कुछ ही दिन हुए थे। वह बात हमें याद थी। इससे हमने इन महाशय को उत्तर में यह भी लिख दिया कि सभा को अपनी करतूत का प्रतिफल या प्रायश्चित्त किसी न किसी दिन अवश्य भोगना पड़ेगा। इस पत्र को पढ़ कर उन्हें अफ़सोस हुआ। उन्होंने सभा को एक पत्र लिखा और उसके साथ हमारा यह पत्र भी भेज दिया। आप ने दार्शनिक-परिभाषा-विषयक काग़ज़-पत्रों की मिसल माँगी और यह कहा कि हमारे और सभा के बीच का वैमनस्य दूर हो जाना चाहिए।

यह पत्र सभा को एकमात्र इस उद्देश्य से लिखा गया था कि सभा ने यदि कोई भूल की हो तो उस का संशोधन कर दे। परन्तु कमिटी के शील-समुद्र कुछ सभ्यों ने यह कह कर, कि यदि हम किसी बात से अप्रसन्न हों तो साधारण सभा में अपील करें, इस उद्देश्य पर एक दम ही ख़ाक डाली। और किया क्या कि हमारे पत्र के उस प्रायश्चित्त वाले कलमे को ऐसा पकड़ा जैसे डूबता हुआ आदमी किसी टहनी को पकड़ता है। उसे लेकर ये लोग अपनी ढाई आदमियों की कमिटी में लगे कूदने। एक आध समझदार सभासद ने मना भी किया; राय भी विपरीत दे दी; पर सुनता कौन है। झट प्रस्ताव किया गया; झट वह पास हो गया; झट उसे निश्चय का रूप भी मिल गया। हम पर कुटिलता का आरोप किया गया। हम से कैफ़ियत तलब हुई। "तुमने कई दफ़े सभा के ख़िलाफ़ लेख लिखे हैं! तुम कई दफ़े पबलिक के सामने गये हो! यह बात विधि-विरुद्ध है—ज़ाब्ते के ख़िलाफ़ है! इस दशा में तुम सभा के मेम्बर नहीं रह सकते। बतलावो क्यों न तुम निकाले जाव।" इस मज़मून की हमारे पास चिट्ठी आई। यह होश नहीं कि इन्हीं की प्रार्थना पर हम सभासद हुए थे। अर्ज़ी लेकर हम इनके पास नहीं गये कि हमें सभासद बनाइए।

यह पत्र भेज कर हमारे मेहरबान महाशय हलके हुए। समझे कि मैदान मार लिया। अब इसे निकाला। इस चिट्ठी को पढ़कर हमें हँसी भी आई; क्रोध भी आया; परिताप भी हुआ। जिनकी नस नस में कुटिलता भरी है उन्हीं ने हम पर कुटिलता का आरोप किया! हमने कमिटी के सुयोग्य सभ्यों से, इस विषय में, कुछ प्रश्न किये। पर उन्होंने उत्तर देने से इन्कार कर दिया। भला सरलहृदय के सभ्य-शिरोमणि अपने प्रतिवादी को बात का कहीं उत्तर देते हैं! इस मामले में ये लोग वादी की भी जगह पर थे और जज की भी जगह पर। क्योंकि इन्होंने हम पर कुटिलता का इलज़ाम लगाया था और यही हमारे जज थे। भला कहीं कोई जज प्रतिवादी को जिरह करने की भी इजाज़त देता है! दे तो उसके न्यायीपन में बट्टा न लग जाय! ख़ैर।

लाचार होकर सभा के आरोप के उत्तर में हमें फुलस्कैप काग़ज़ के कोई ७५ पृष्ठ में एक "वक्तव्य" लिखना पड़ा। जब से हमें इन लोगों ने सभासद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाया तब से उस समय तक की सारी कथा हमने उसमें कही। यथास्थान हमने उसमें दिखलाया कि जो कमिटी हम पर कुटिलता का आरोप करने चली है उसने ऐसी ऐसी कुटिलता की है कि जिसके प्रकाशित किये जाने से सभा की इज़्ज़त दो कौड़ी की हो जायगी। जो लोग औरों के काम को अपना कह कर बढ़ बढ़ बातें मारें; जो लोग मेम्बरों को कुछ लिखें और पबलिक को कुछ बतलावें; जो लोग अपने ही मुँह अपनी तारीफ़ पायनियर में प्रकाशित करें और इंडियन प्रेस की रामायण को कहें कि सभा ने हीं उसे अपने ख़र्च* से छपाया है; जो लोग दूने को तिगुना लिख दें; आराम को बीमार कह दें; ज़िन्दा को मुर्दा बतला दें; और दूसरों से महीनों सभा का काम कराकर उनके परिश्रम और ख़र्च को कुछ भी परवा न करके उनसे चिट्ठियों के महसूल के दो चार आने तक वसूल कर लें; उनके लिए यदि यह कहा जाय कि ऐसे निन्द्य कामों का प्रायश्चित्त किसी दिन ज़रूर मिल जायगा तो क्या ग़ज़ब हो जाय! जो लोग कुछ का कुछ लिख देते हैं उनको यदि उनके कर्म्मों का फल न मिलेगा तो मिलेगा किसे? हिन्दू, बौद्ध, जैन, मुसलमान, क्रिश्चियन किसी धर्म्म के सिद्धान्तों के अनुसार सभा साबित करे कि ऐसों को किये का प्रतिफल न मिलना चाहिए। पाठकों से हम यहाँ पर यह कह देना चाहते हैं कि पूर्वोक्त सारी बातों का हमारे पास लिखित प्रमाण है। वह सब उन्हें यथासमय पढ़ने को मिलेगा।

जिन लोगों ने हम पर कुटिलता का आरोप कर के, हमें सभा से निकालने के लिए बड़ी सरगरमी से प्रस्ताव किया था, हमारे "वक्तव्य" को पढ़कर उनकी क्या दशा हुई होगी सो तो भगवान ही जाने। क्या आश्चर्य्य जो उन्हें ग़श आ गया हो। ख़ैर, "वक्तव्य" का फल यह हुआ कि हम "निर्दोष" कह कर छोड़ दिये गये। हमारे सारल्य-सागर जज महोदयों ने "Not Guilty" का "Verdict" दिया। धन्य हमारे भाग्य! हमारे ऊपर कुटिलता का आरोप करके कमिटी के एक आध महात्मा के मन में शायद यह बात आई हो कि मंत्री जी की चिट्ठी पढ़ते ही हम "जानु-पाणि" हो जायगे और "क्षमस्व" के फूल ले दौड़ेंगे; अथवा यह कह देंगे कि उस कलमे से हमारा कुछ और ही मतलब था। क्योंकि संसार में मनुष्य बहुधा अपनाहीं सा स्वभाव औरों का भी समझा करता है। जो लोग अपने हृदय-दाह को ठंढा करने के लिए २२६ को ३०० के लगभग बतलाते ज़रा भी सङ्कोच नहीं करते वे यदि समझें कि और लोग किसी बात को कह कर बदल जायँगे तो कोई अचम्भे की बात नहीं।

आठ नौ वर्ष हम सभा के मेम्बर रहे। बराबर वक्त पर चन्दा देते रहे। सभा के लिए हज़ारों हस्ताक्षर कराये। उसके लिए लेख लिखे, कवितायें लिखीं, किताबें लिखीं। गाँठ का पैसा ख़र्च किया। महीनों मेहनत की। परन्तु खोज की रिपोर्ट, तथा और कुछ बातों, की समालोचना करते ही वह सब सभा के पुराण-पुरुष हज़म कर गये और कुटिलता का आरोप करके हमें सभा से निकालने पर मुस्तैद हो गये! क्यों कहा, कि किये का फल मिल जायगा? सभा के मेम्बर होते ही तुम्हारी ज़ुबान की लगाम सभा की कमिटी के हाथ में आ गई है! तुम्हें जो कुछ कहना हो हमीं से कहो! ये इन लोगों की दलीलें हैं। हमने सभा का कुछ काम किया था; पर हमारे साथ भी जब सभा ने ऐसे ऐसे गर्हित बर्ताव किये तब वह औरों को कब छोड़ने वाली है? आत्मगौरव, आत्ममर्य्यादा, आत्मप्रतिष्ठा और वाक्स्वातन्त्र्य से जिसे रत्ती भर भी प्रेम है वह, वर्त्तमान कार्य्यकर्त्ताओं के रहते, इस सभा से सम्बन्ध नहीं रख सकता। आदमी की परीक्षा धीरे धीरे होती है। उसे होने में हमें कई वर्ष लगे।

इस सभा के आदिल अफ़सरों को इस बात का बड़ा घमण्ड है कि हमारी सभा बाज़ाब्ता संगठित है; हमारे सब काम बाज़ाब्ता और बाक़ायदा होते हैं।

* पर सभा के जिन मेम्बरों ने रामायण का सम्पादन किया है उन्होंने उलटा कुछ लिया है या नहीं, इसके ज़िक्र की कोई ज़रूरत न समझें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई काम बेक़ायदे नहीं होता; जो कुछ होता है सब बाक़ायदा, सब विधि-विहित, सब नियमानुसार। हमने जो सभा के काम की आलोचना सरस्वती में की वह बाज़ाब्ता ("Constitutional") नहीं समझी गई। पर सभा के क़ायदे-क़ानून केवल हमारे ही लिए हैं; अपने लिए नहीं। प्रमाण :—

जब हम पर कुटिलता का आरोप किया गया तब हमने पूछा कि जिस अधिवेशन में हम पर यह जुर्म लगाया गया उसमें कितने और कौन कौन मेम्बर हाज़िर थे। जवाब मिला नहीं बतावेंगे! इम्पीरियल कौन्सिल में उपस्थित मेम्बरों के नाम हमेशा प्रकाशित किये जाते हैं; प्राविन्शियल कौन्सिल के मेम्बरों के नाम हमेशा प्रकाशित किये जाते हैं; हाईकोर्ट की "फुल बेंच" में जितने जज बैठते हैं सबके नाम हमेशा प्रकाशित किये जाते हैं; जूरियों और असेसरों के नाम भी हमेशा प्रकाशित किये जाते हैं; एशियाटिक सोसायटी के अधिवेशनों में उपस्थित सभ्यों के नाम हमेशा प्रकाशित किये जाते हैं; पर सभा की कमिटी अपने सभ्यों के नाम न प्रकाशित करेगी। नाम बतला दे तो बेक़ायदगी और बेज़ाब्तगी न हो जाय! नाम बतलाना तो दूर रहा हमारे यह प्रश्न उठातेही सभा के क़ायदे-बाज़ सभ्यों ने उपस्थित सभ्यों के नाम भारतजीवन में सभा की रिपोर्टों में देना भी बन्द कर दिया। कहीं हम वहाँ उनके नाम न देख लें! अगत्त में यह झगड़ा हुआ, सितम्बर से नामावली का प्रकाशन बन्द! लीजिए, तुम को क्या हम किसी को उपस्थित सभ्यों के नाम न बतलावेंगे। 'कोरम' पूरा हुआ या नहीं इस बात के जानने का भी कोई मुसतहक़ नहीं! यह ज़ाब्ते की कारर्वाई देखी! क्यों साहब उपस्थित सभ्यों के नाम क्यों न बतलाइएगा? यदि हम आप से यह पूछें कि किसने हमारे पक्ष में राय दी, किसने विपक्ष में, तो आप न बतलाइए। सब उपस्थित सभासदों के नाम देने में क्या हर्ज? हर्ज है! व्यक्ति-विशेषता का झगड़ा लग जायगा! हाँ हाँ, ज़रूर। हरगिज़ न बतलाइए। छिपे छिपे छुरी चलाइए। हम प्रतिवादी हैं, आप वादी और जज दोनों। ज़बरदस्त ठहरे न। फिर क्यों नाम बतलावें? इस डरपोकपन—इस बेक़ायदगी—की भी कोई सीमा है। इस पर भी बाज़ाब्ता (Constitutional) काम करने का घण्टानाद!

'निहिलिस्ट' और 'अनारकिस्ट' लोगों का एक दल योरप में है। राजाओं और राजकुटुम्बों के वे दुश्मन हैं। राजवंश का संहार करना ही उनका एकमात्र उद्देश्य है। उनके सारे काम गुप्त होते हैं। उन्हीं की छाया इस सभा की कमिटी पर पड़ गई मालूम होती है! छिपे छिपे भी औरों पर इलज़ाम लगाया जाता है, यह सिद्धान्त गवर्नमेंट को इस सभा से सीख लेना चाहिए और पेनल कोड में इस विषय का एक सेक्शन बढ़ा देना चाहिए। जो किसी बात को उचित, सच और न्यायसङ्गत समझ कर करता है उसे अपना नाम छिपाने की ज़रूरत? भाई, यह बाज़ाब्ता-पन की महिमा है! अभी क्या कुछ दिन में देखिएगा, जो लोग सभा से इस्तेफ़ा देते जाते हैं उनके नाम भी शायद न प्रकाशित किये जायँगे, जिसमें किसी को यह न मालूम हो कि लोग सभा को छोड़ रहे हैं। बहुत सम्भव है, किसी दिन सभासदों की संख्या और उनकी नामावली का देना भी सभा बन्द कर देगी। फिर किसी को यह जानने का मार्ग न रहेगा कि इस सभा के सभासदों की संख्या एक है या एक लाख। औरों पर कुटिलता का आरोप कर करके सभा अपनी सरलता बढ़ाती जा रही है। देखिए उसका विस्तार कहाँ तक बढ़ता है।

हमने सभा से अनेक प्रश्न किये; अनेक काग़ज़ों की कापियाँ माँगीं; पर ज़ाब्ते के नशे में चूर रहने वाले कमिटी के कर्त्ताओं ने चुप रहने ही में अपना भला समझा। बेचारे करते क्या? उनका ज़ाब्ता और क़ायदा ही ऐसा है। कोई दो वर्ष हुए हमने एक लेख में लिखा था कि इस सभा को बाहर के भी सभासद अपनी कमिटी में रखने चाहिएँ। उस समय सभा कुछ न बोली। बात जब कुछ पुरानी हो गई तब उसने कई बाहरी लोगों को भी कमिटी में रख लिया। हमने पूछा कि हमारा "वक्तव्य"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन बाहरी मेम्बरों के पास भी भेजा गया था या नहीं; क्योंकि कमिटी के प्रत्येक अधिवेशन की कार्य्य-सूची ज़रूर ही सब कार्य्यकर्त्ता मेम्बरों के पास, उन की राय के लिए, भेजी जाती होगी। पर कमिटी के कौशली कर्ता हमारे इस प्रश्न के भी उत्तर में चुपकी साध गये। पाठक, विश्वास रखिए, इन लोगों ने "वक्तव्य" को काशी से बाहर न भेजा होगा। बिना भेजे ही बाहरी सभासदों से राय माँगी होगी। मुक़द्दमे की मिसल पढ़े बिना हीं यदि बाहरी मेम्बरों ने राय दी हो तो न्याय और बाज़ाब्तापन का चूड़ान्त उद्धार हो गया समझिए! सभा को शायद ऐसे ही कार्यकर्ता चाहिएँ जो सभा की कमिटी के सब प्रस्ताव आँख मूँद कर स्वीकार कर लें; कान तक न हिलावें। क्या आप कह सकते हैं कि इन बाहरी सभासदों के चुनने में 'पालिसी" से काम न लिया गया होगा? बहुत सम्भव है, इन में से किसी सभासद ने यदि "वक्तव्य" देखने को माँगा भी होगा तो कमिटी के कर्तव्यशील कर्म्म-चारियों ने भेजने से इन्कार कर दिया होगा। काशी के ही कुछ यार-दोस्तों के गुट्ट ने चुपके चुपके वक्तव्य को पढ़ा और "विचार" का खेल करके मुक़द्दमे का फ़ैसला कर दिया होगा। कोई बाहर का आदमी कहीं हमारी बाज़ाब्तगी और सरलता का पता पा जाय! बात यह!

जिनकी नीति का यह हाल है उनके निश्चयों अथवा फ़ैसलों की क़ीमत का अन्दाज़ पाठक ही करें। आवश्यक काग़ज़ात सब मेम्बरों को बतलाये बिना ही जिस बात का फ़ैसला सभा की कमिटी कर दे वह सिवा रद्दी के और क्या समझा जा सकता है?

"वक्तव्य" का जो फ़ैसला हमारे पास भेजा गया उस में पण्डित श्यामविहारी मिश्र, पण्डित माधवराव सप्रे और पण्डित रामनरायण मिश्र के पत्रों का उल्लेख था। हमने इनकी कापियाँ माँगी। पर सभा कोई काम बेज़ाब्ते थोड़े ही करती है। फिर भला वह किस तरह उनकी कापियाँ हमें दे सकती थी! सरकारी कचहरी में मुद्दई, मुद्दआइलैह हो नहीं, एक तटस्थ आदमी भी, किसी भी मुक़द्दमे के किसी काग़ज़ की नकल पा सकता है। लेकिन, अँगरेज़ी गवनमेंट बाज़ाब्ता काम करना क्या जाने! उसका संगठन विधि-सम्मत (Constitutional) थोड़े ही है! सिर्फ़ काशी की सभा बाज़ाब्ता काम करना जानती है और संगठन भी अकेले उसी का "Constitutional" है। इसी से तो उसने हमारे ही मुक़द्दमे की मिसल के काग़ज़ों की नक़ल हमें न दी। सन्नाटा खींच गई। "मौनं स वार्थसाधकम्" का तत्त्व एक मात्र इस सभा ने अच्छी तरह हृदयङ्गम किया है। हम ने यदि कोई बात भ्रमवश कहीं ग़लत लिख दी हो तो सभा की कमिटी के क़ायदेबाज़ वीर उसका प्रतिवाद कर सकते हैं। सभा के मंत्री, उपमंत्री, सहायक मंत्री और कर्ता, धर्ता, भर्ता जो चाहें, प्रकट होकर, हमारे कथन का खण्डन करें। पाठक विश्वास रक्खें पं० श्यामविहारी मिश्र और सप्रे जी की पूर्वोक्त चिट्ठियों में सभा की करतूत की ज़रूर बेतरह ख़बर ली गई होगी। इसी से तो उनकी नक़ल हमें भेजने का साहस सभा को नहीं हुआ। सभा का प्रत्येक सभासद सभा के काग़ज़ात देखने का अधिकार रखता है। अकेले हम नहीं रखते! यदि सभा के बाहरी सभासद सभा को अपना अंश समझते हों तो सभा के इन सब विधि-विपरीत कामों की कैफ़ियत तलब कर सकते हैं; इन चिट्ठियों को नक़ल ले सकते हैं; सभा के कर्त्ताओं को काररवाई, यदि उन्हें अनीति और अन्यायपूर्ण जान पड़े, तो उस पर अप्रसन्नता प्रकट कर सकते हैं। यदि उनके साथ भी वैसाही बर्ताव किया जाय जैसा हमारे साथ किया गया है, तो वे समझ लें कि मेम्बर होकर भी सभा पर उनका कोई ज़ोर नहीं; वह सिर्फ़ काशी के कुछ घरघमंडोपन के दासों की दासी है।

हमने अपने "वक्तव्य" में प्रसङ्गवश बाबू श्यामसुन्दर दास के ख़िलाफ़ कई बातें लिखीं और अपने कथन को लिखित प्रमाणों द्वारा पुष्ट करके यह दिखलाया कि बाबू साहब को हमारे विषय में कुछ का कुछ लिखते ज़रा भी दरेग़ नहीं आया। कमिटी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस गुट ने हमारे लेख का "विचार" किया उसकी इस विषय से सम्बन्ध रखने वाली राय सुनने लायक़ है। आप फ़रमाते हैं—"बाबू श्यामसुन्दरदास ने सभा की सेवा अत्यन्त दत्तचित्त होकर बड़े ही उच्च और शुद्ध विचारों से की है"। सुना आप ने! हम तो बाबू साहब पर निश्चित इलज़ाम लगाते हैं और कहते हैं कि उन्होंने हमारे साथ ये ये अन्याय किये; कमिटी, उत्तर में, बाबू साहब की तारीफ़ कर रही है। बाबू श्यामसुन्दरदास ने सभा की सेवा की है, और अब भी भीतर ही भीतर उपसभापति के आसन से कर रहे हैं, सो कौन नहीं जानता। पर उन आक्षेपों का—उन आरोपों का—क्या उत्तर है? कमिटी बेचारी क्या उत्तर दे? जिसकी चलाई सभा चल रही है उसके ख़िलाफ़ कारवाई वह कर किस तरह सकती है? उन्हें निकालने से रही; धमकाने से रही; दण्ड देने से रही! हम जैसे बाहरी सभासद ही पर उसका ज़ोर चल सकता है; बाबू श्यामसुन्दरदास पर नहीं!

काशी में सभा की एक प्रबन्धकारिणी कमिटी है, और वहीं एक साधारणसभा भी है। कमिटी ने बड़ी गर्जना तर्जना से हमें सूचना दी कि यदि हम उसकी किसी बात से असन्तुष्ट हों तो साधारणसभा में अपील करें। जो लोग सितम्बर ०६ के पहले भारतजीवन में प्रकाशित सभा की रिपोर्टें पढ़ते रहे हैं वे जानते होंगे कि कितने मेम्बर इन दोनों प्रकार की सभाओं के अधिवेशनों में पधारते हैं। सभा की हाज़िरी का हाल उसके वार्षिक अधिवेशनों की रिपोर्टों ही से ज़ाहिर है। १९०६ के वार्षिक अधिवेशन में ३० मेम्बर भी हाज़िर न थे! साधारण अधिवेशनों में शायद ही कभी मेम्बरों की संख्या दस से अधिक हुई हो। जो लोग प्रबन्धकारिणी कमिटी के मेम्बर हैं उन्हीं की संख्या प्रायः साधारणसभा के अधिवेशनों में भी अधिक रहती है। इस दशा में कमिटी के ख़िलाफ़ बातों की अपील साधारणसभा में करने से कहाँ तक कामयाबी हो सकती है, यह कहने की ज़रूरत नहीं। ख़ैर हमने कमिटी से कहा कि हमारे "वक्तव्य" को उसके मेम्बर अपील समझें और उसे साधारणसभा में पेश करें। पर कमिटी ठहरी बाज़ाब्ता काम करने वाली। वह भला हमारी बात क्यों सुने! उसीने हम पर कुटिलता का इलज़ाम लगाकर हमें सभा से निकालना चाहा। अर्थात् वह हुई वादी और हम हुए प्रतिवादी। पर जब हमने उसके इलज़ामों का जवाब देकर उलटा उसी पर एक नहीं, अनेक बड़े ही गुरुतर इलज़ाम लगाये, तब वह झट जज बन गई। वही न्यायाधीश हो गई। हमारे वक्तव्य पर एक रेज़ाल्यूशन पास करके उसने बाबू श्यामसुन्दरदास की तारीफ़ कर डाली और बड़ी ही उदारता से साधारणसभा से सिफ़ारिश की कि विवाद शान्त कर दिया जाय। प्रबन्धकारिणी सभा और साधारणसभा प्रायः एक ही माया ठहरी। उसने फ़ौरन ही कमिटी के निश्चय के अक्षर अक्षर को मंज़ूर कर लिया। बस मुक़द्दमे का फ़ैसला हो गया और उसकी नक़ल हमारे पास आगई। तब हमने सभा के नियम दुबारा पढ़े तो मालूम हुआ कि साधारणसभा कोई सभा ही नहीं। न उसके सभासदों का पता, न इसी का पता कि कब और किसने उन्हें चुना या मुक़र्रर किया! सभा के संगठन की बात ही नियमावली में नदारद। अतएव हमने उसके फ़ैसले को रद समझा। उसी के नहीं, प्रबन्धकारिणी कमिटी के फ़ैसले को भी। क्योंकि जिस कमिटी ने सब मेम्बरों को "वक्तव्य" दिखलाये बिना ही अपना निश्चय लिख डाला वह हरगिज़ बाज़ाब्ता नहीं माना जा सकता। इन बेज़ाब्तगियों की ओर कमिटी का ध्यान हमने आकर्षित किया, तो उत्तर मिला कि सभा के संगठन की बातें नियमावली से जान लीजिए! सुना! नियमावली जैसे हमने पहले देखी ही न हो। ख़ैर, कृपा की जो सभा ने उसकी याद दिला दी! पर उसमें कोई देखे तो देखे क्या; कुछ हो भी तो। जिन्होंने उसे बनाया है उन्हें ये बातें सूझी भी हों! बात यह है कि प्रबन्धकारिणी कमिटी के कार्यकर्ताओं के चुनने का सालाना खेल तो होता भी है; पर इस साधारणसभा के संगठन का कुछ भी पता ठिकाना नहीं। वह काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ही साधारण सभासदों की सभा है। न कभी उनका चुनाव होता है, न नियमन। यह भी नहीं मालूम कि साधारण अधिवेशनों में उपस्थित किये जाने वाले विषयों की सूची और सामग्री उनको पहले से मिलती है या नहीं। कुछ भी हो, इस विवाद से एक बात यह सिद्ध हुई कि इस सभा की काररवाइयों में बेज़ाब्तगी का अकंटक राज्य है। बाहर के सभासदों को कोई दमड़ी भर भी नहीं पूछता। उनकी कोई क़दर नहीं। जिसका नाम साधारणसभा है उसके अधिवेशनों की उन्हें पहले से ख़बर तक नहीं दी जाती; विचारणीय विषयों की सूचना तक नहीं दी जाती; उनकी राय लेना तो बहुत दूर की बात है। बात चाहे जितने महत्त्व की हो, काशीवाले आपस ही में उसका फ़ैसला कर लेते हैं। बाहर वालों का काम सिर्फ़ चन्दा देना है और काशीवालों का काम अपने और एशियाटिक सोसायटी के लिए पुस्तकों की खोज करना; ग्रन्थमाला निकालना; अपने काम की आलोचना देखकर आँखें निकालना; अपने गुट्टवाले के निन्द्य से निन्द्य कामों पर ख़ाक डाल कर उनकी तारीफ़ के तार बाँधना; और ख़ुद बेज़ाब्तगी में डूबे रह कर औरों पर बेज़ाब्ता काम करने का इलज़ाम लगाना है!!! ऐसे लोग हज़ारों रुपये क़र्ज़ करके यदि सारी सभा को बदनाम करें तो क्या आश्चर्य्य! बाहरवाले किस खेत की बथुई हैं, कोई पूछता ही नहीं। पारस्परिक सहानुभूति बढ़ाने के लिए यही लोग हिन्दी-लेखकों का एक मेला काशी में करनेवाले हैं! क्यों न हो!

"वक्तव्य"-विषयक सभा का फ़ैसला सुन चुकने पर हमने प्रार्थना की कि अपने ऊपर लगाये गये इलज़ाम का तो जवाब हमने दे दिया और सभा की उदारता के कारण बेदाग़ छूट गये; अब हमने जो सभा के कार्य्यकर्ताओं पर अनेक गुरुतर इलज़ाम लगाये हैं उनका भी विचार हो जाय। जवाब मिला, नहीं हो सकता। क्यों साहब, क्यों नहीं हो सकता? हम भी तो आप ही की तरह सभा के मेम्बर हैं। सभा आपकी मौरूसी जायदाद तो है नहीं। हमारा उसमें उतना ही साझा है जितना आपका। हाँ, हम काशी में नहीं रहते। इतनी कमी हमारे हिस्से में ज़रूर है। पर कमिटी यदि हमारी बात सुन ले तो उसके काम में बेज़ाब्तगी न आ जाय! भला कहीं यारों के ख़िलाफ़ बातों का भी कोई विचार करता है? एक तो याराना, फिर एक शहर का रहना—पड़ोस का मामला ठहरा—फिर आपस की बात! विचार के लिए जगह कहाँ? "सभा पुनः विचार" नहीं कर सकती! क्यों? इसलिए कि हमने अपना "वक्तव्य" अपने को "निर्दोष" सिद्ध करने के लिए लिखा था। उसका उद्देश्य—उसका आशय—बस इतना ही था। सो उस बात का विचार सभा ने कर दिया। अब "पुनः विचार" की क्या ज़रूरत? उसमें जो हम ने कमिटी पर अनेक आरोप लगाये हैं वह ठहरी अवान्तर बात। उस पर विचार क्यों और कैसे हो? कदापि नहीं। न्याय के मानी ही यही हैं। कल्पना कीजिए—सभा को यदि कोई किसी विषय-विशेष पर कुछ लिखे, और उसमें प्रसङ्गानुसार सप्रमाण कहीं यह भी साबित कर दे, कि कोई आदमी सभा का रुपया खा गया है; या मँगनी की गाड़ियों पर सवार होकर उसने सभा से गाड़ियों का किराया वसूल किया है; या रेल के तीसरे दरजे में सफ़र करके दूसरे दरजे का किराया सभा से लिया है; तो सभा इन बातों पर कभी ध्यान देगी! वह मूल विषय-विशेष पर ही ध्यान रक्खेगी। ज़रा भी इधर उधर नज़र न जाने देगी। उसकी काररवाई से तो यही मालूम होता है। हाँ एक बात है, कि यदि अवान्तर बात का सम्बन्ध किसी हम जैसे बाहरी सभासद से होगा, तो मूल मतलब को वह तत्काल भूल जायगी। तो उसकी दृष्टि एक मात्र उस गौण बात पर ही जा गिरेगी। इसी को तो न्याय कहते हैं। आज कल का सरकारी क़ानून यह है कि यदि किसी मुक़द्दमे में कोई गवाह झूठ बोल दे तो जज उस पर ताज़ीराते हिन्द की १९३ दफ़ा के मुताबिक़ फ़ौरन ही झूठी गवाही देने का इलज़ाम लगा देगा। मुक़द्दमे का मूल उद्देश्य अलग ही रहेगा; एक और नया मुक़द्दमा पैदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जायगा। पर सभा ठहरी बाज़ाब्ता काम करनेवाली। वह इस तरह के घोर अन्याय नहीं कर सकती! हमारी जिस चिट्ठी में प्रतिफल पानेवाली बात थी उसे जिस सज्जन ने सभा के मन्त्री महोदय को भेजा था, उन्होंने उसे एक मात्र इस आशय से भेजा था, कि सभा और हमारे बीच का वैमनस्य दूर हो जाय। पर उस समय चतुराई के चिन्तामणि, सरलता के आगार, न्यायशीलता की नाक कमिटी के मेम्बरों ने मूल आशय और मूल उद्देश्य पर २७ मन वज़नी एक टन ख़ाक डाल दी और एक गौण, अवान्तर, बात को शस्त्र बनाकर हमारी मेम्बरी काट डालने पर उतारू हो गये। परन्तु अब अपने ही ऊपर जब उन्होंने अनेक इलज़ाम लगते देखे तब तत्काल ही मूल उद्देश्य की बात याद आ गई! न्याय हो तो ऐसा। ऐसे ही सज्जनों की न्यायपरता के विश्वास पर बाहर के पाँच छ सौ आदमी चन्दा देकर सभा की पुष्टि करते हैं और समझते हैं कि हिन्दी का उद्धार हो रहा है! और कोई होता तो कहता कि भाई, ये इलज़ाम हमी पर लगाये गये हैं; इनका विचार हम नहीं कर सकते। आवो इसके लिए एक पंचायत मुक़र्रर करें। पर सभा यदि ऐसा करे तो उसकी प्रभुता न कम हो जाय। वह ठहरी बाज़ाब्ता। वह अपने मामले मुक़द्दमे आप ही निपटा सकती है। गवर्नमेंट हर साल एक आध कमीशन मुक़र्रर करती है तो करने दो। न अँगरेज़ी राज्य बाज़ाब्ता संगठित है, न उसके अधिकारियों को बाज़ाब्ता काम करने का सलीका ही है! फिर क्यों सभा गवर्नमेंट के "तौरो तरीक़" की नक़ल करे! सभा की कमिटी सभा के सैकड़ों सभासदों की प्रतिनिधि बन कर लोगों के साथ, देखिए, कैसी घृणित काररवाई करती है। बाहरी सभासदों को यदि अपने नाम, गौरव और चन्दे की राई भर भी परवा होगी तो उनको सभा के कार्य्यकर्ताओं की ये लीलायें ज़रूर खटकेंगी। और यदि उन्होंने आँख बन्द करके चन्दा भेज देना ही अपना कर्तव्य समझ रक्खा होगा तो फिर डर ही किसका है। कार्य्यकर्ता महोदय जब चाहें गौण बातों पर गदाघात करें और जब चाहें मूल उद्देश्यों पर तीरन्दाज़ी।

जब से वैज्ञानिक कोश बना है तब से सभा के कार्य्यकर्ताओं में से एक आध शख़्स का दमाग़ आसमान से बातें करने लगा है। आप समझते हैं कि कोश क्या बना समुद्र से एक पन्द्रहवाँ रत्न निकल आया। सात वर्ष के अजस्र परिश्रम से हमने यह कोश तैयार किया। मजाल है कोई इसके ख़िलाफ़ चूँ करे। मान लिया कि आपका कहना ठीक है। आप ही ने कोश बनाया; किसी और का उसमें कुछ भी साझा नहीं। पर नाम भी तो आप ही का हुआ। अब क्या भवन के दरवाज़े या उसकी छत पर आपके नाम के दमामे बजें। आप चाहते क्या हैं? सब तरफ़ तारीफ़ों के तूमार तो बँध रहे हैं। अजी साहब, हम यह भी माने लेते हैं कि नागरीप्रचारवाला हुक्म भी आप ही के पुरुषार्थ का फल है; मालवीय जी इत्यादि का उसमें कुछ भी हिस्सा नहीं। परन्तु जब आप औरों को सङ्कीर्णहृदय बतलाते हैं; औरों पर कभी प्रकट, कभी अप्रकट, प्रहार करने से नहीं चूकते; तब आपको अपने काम की सच्ची समालोचना सुनने के लिए भी तो उत्कर्ण रहना चाहिए। सात वर्ष आपने मेहनत की तो किसी पर एहसान नहीं किया। और दूसरों ने जो कुछ किया उन्होंने भी अपना फ़र्ज़ समझ कर ही किया। गुट्ट और "पालिसी" के बूते, बहुमत के आधार पर, न्याय-न्याय का विचार छोड़कर "निश्चय हुआ" लिखने से बहुत दिन तक काम नहीं चल सकता।

जिस दार्शनिक परिभाषा के तिगुने पन पर आप को इतना गर्व है उसे दर्शनशास्त्र के आचार्य्य, बनारस-कालेज के अध्यक्ष, विनिस साहब, को तो ज़रा दिखाते। उनकी राय तो ज़रा लेते। देखते तो वे क्या कहते हैं। नहीं, रासायनिक परिभाषा को ही, अँगरेज़ी और संस्कृत जाननेवाले किसी रसायन-शास्त्र के ज्ञाता को दिखाते। दिखाने से आप को अपने गर्व की इयत्ता मालूम हो जाती!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लेख से मालूम हो जायगा कि यह सभा कहाँ तक बाज़ाब्ता काम करती है; न्यायान्याय का कितना ख़याल रखती है; अपनी नस नस की कुटिलता को न निकाल कर औरों पर कुटिलता का इलज़ाम लगाने में कहाँ तक सरगरमी दिखाती है। इसके कार्य्यकर्ता कहते हैं कि हम कोई सभासम्बन्धिनी बात छिपी नहीं रखते। पर विश्वास कीजिए, यह ढकोसला मात्र है। जिस बात से अपने कार्य्यकर्ताओं की होनता साबित होती होगी उसे ये कभी प्रकाशित न करेंगे। १९ नवम्बर १९०६ के भारतजीवन में छपी सभा की रिपोर्ट का दूसरा पारा देखिए। लिखा है—"सन् १९०५ की हिन्दी-पुस्तकों की खोज की रिपोर्ट के विषय में संयुक्तप्रदेश के शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर का ८ सितम्बर का पत्र उपस्थित किया गया और बाबू श्यामसुन्दरदास ने सूचना दी कि वे उक्त रिपोर्ट को डाइरेक्टर के पत्र के अनुसार दोहरा रहे हैं"। कहिए इस व्यर्थ बकवाद की क्या ज़रूरत थी? यह तो आप बतलातेही नहीं कि रिपोर्ट में क्या दोष थे जिनके कारण उसे दोहराने की ज़रूरत पड़ी। दोहराई तेहराई तो शायद वह डाइरेक्टर साहब के यहाँ भेजने के पहले भी गई होगी। इसके जानने से सर्वसाधारण और सभा के बाहरी मेम्बरों को क्या लाभ? जो काम करता है उससे भूल होती ही है। छिपाते आप क्यों हैं? सरकारी काग़ज़ों में उलट-फेर, संशोधन-परिशोधन हुआ ही करता है। पर कार्य्यकर्ताओं के दोषों को प्रकाशित करना सभा को अभीष्ट नहीं। हाँ यदि हम जैसे किसी बाहरी सभासद की कोई बात होती तो सभा निःसङ्कोच छपवा देती कि तुम्हारी किताब में शब्द-संख्या पहले से तिगुनी हो गई है। इसलिए अब उसके कर्तृत्व का दावा करना तुम्हारी भूल है! सभा की इस तरह की सरलता और औदार्य की जब हमने अपने एक पत्र में आलोचना की तब आप जानते ही हैं, उसने क्या कारवाई की? "वक्तव्य" सम्बन्धी बातों का विचार सभा के कम से कम दो चार अधिवेशनों में तो ज़रूर ही हुआ होगा, पर उन अधिवेशनों की रिपोर्टें जो भारतजीवन को भेजी गईं उनमें इसका ज़िक्र ही न आने पाया। एक दो दफ़े आया भी तो सिर्फ़ "वक्तव्य" का हवाला भर दे दिया गया। उसमें क्या है सो बात नहीं प्रकाशित होने पाई। अतएव ये उदाहरण इस बात के काफ़ी सबूत हैं कि सभा के कर्ता जो चाहते हैं प्रकाशित करते हैं, जो नहीं चाहते नहीं करते। सारा लक्ष्य इस बात पर रहता मालूम होता है कि कार्य्यकर्ताओं की कारपरदाज़ी और सुर्ख़रूई में ज़रा भी बट्टा न लगे; औरों की मान-मर्य्यादा की कुछ परवा नहीं—चाहे रहे, चाहे जाय।

हमारे "वक्तव्य" और उसके बाद के पत्र-व्यवहार के प्रकाशित होने पर, इस सभा को कमिटी के कामों से सम्बन्ध रखनेवाली ऐसे ऐसे घृणास्पद बातें मालूम होंगी जिनका कभी स्वप्न में भी पाठकों को ख़याल न रहा होगा। सभा के कार्य्यकर्ताओं ने हमारे प्रश्नों का जवाब देना, हमारे माँगे हुए काग़ज़ भेजना, हमारी पूछी हुई बातें बतलाना, प्रायः कुछ भी मंज़ूर नहीं किया। सिर्फ़ चुप्पी साध गये। 'हाँ' या 'नहीं' तक मुँह से नहीं निकाला। क्या सभा के बाहरी ६ सौ सभासद समझते हैं कि मौक़ा आने पर उनके साथ भी ऐसा ही व्यवहार न किया जायगा? लक्षणों से तो नहीं मालूम होता। क्या आश्चर्य्य जो औरों के साथ ऐसा क्या, इससे भी बदतर व्यवहार किया गया हो, और उन्होंने सभा के कार्य्यकर्ताओं के अन्याय चुपचाप सह लिये हों! क्या आश्चर्य्य, लोग जो इस्तेफ़ा देते चले जाते हैं उसका कारण भी सभावालों की कुटिल कारस्तानियाँ ही हों!

बात यह है कि यह सभा सिर्फ़ काशी के ही कुछ लोगों के हाथ का खेल है। चूँ कि वही सभा का काम करते हैं, अतएव वे उसे अपना ही माल समझते हैं। बाहर के लोग सिर्फ़ चन्दा देना जानते हैं; वे यह नहीं देखते कि जिस काम के लिए वे चन्दा देते हैं वह ठीक तौर पर होता है या नहीं। उन्हें इन बातों के देखने और जानने का मौक़ा भी तो नहीं दिया जाता। बाहरी सभासदों को याद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखना चाहिए कि सभा के मेम्बर होते ही वे भी सभा के यश और अपयश के हिस्सेदार हो जाते हैं। परन्तु जान पड़ता है उन्हें इसका ख़याल नहीं। यदि ख़याल होता तो वार्षिक अधिवेशन के समय सौ पचास बाहरी सभासद काशी जाते और बहुमत के बल पर अन्यायी और कुटिल कार्य्यकर्ताओं को पद-च्युत करके नये कार्य्यकर्ता उनकी जगह पर नियत करते। परन्तु शायद वे समझते होंगे कि काशी में रह कर और लोगों के द्वारा सभा के काम का ठीक ठीक चलना सम्भव नहीं। ख़ैर जो कुछ हो, इस और अगले लेखों से उन पर विदित हो जायगा कि सभा के वर्तमान कार्य्यकर्ता कैसे कैसे निन्द्य काम करते हैं और अपने साथ ही सारी सभा को बदनाम करते हैं। सभा के बाहरी ६०० सभासदों ने यद्यपि हमें सभा से निकालने की स्वप्न में भी कोशिश नहीं की—यहाँ तक कि उनको इस मामले की ख़बर तक नहीं—तथापि सभा का अंश होने के कारण सभा के कार्य्यकर्ताओं ने, समष्टिरूप में, उन सबके प्रतिनिधि बन कर, यह काम किया है। बाहरी सभासदों को यह बात कहाँ तक पसन्द आवेगी, अथवा सभा के कार्य्यकर्ताओं के कृतकर्म्म को वे कहाँ तक निज कृत समझेंगे, इसके विचार का भार हम, विनम्रभाव से, उन्हीं पर छोड़ते हैं।

हमारा इरादा है कि हम इस लेख-मालिका की एक एक पुस्तकाकार कापी सभा और मातृभाषा के हित-चिन्तकों और मुख्य मुख्य राजा महाराजों को भेट करें, और इसका अँगरेज़ी-अनुवाद इस प्रान्त की गवर्नमेंट और एशियाटिक सोसायटी को भी भेजें। यह सभा सर्व-साधारण की सभा है। इसकी जिन बातों की आलोचना हमने की है और करने का विचार है वे किसी की ख़ानगी बातें नहीं हैं। वे सब लोगों से नहीं तो सभा के छ सात सौ सभासदों से ज़रूर ही सम्बन्ध रखती हैं। अतएव उन्हें उनके सामने रखना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। समष्टिरूप में सभा की भलाई के लिए, उसके दोषों को दूर करने के लिए, उसके वर्तमान कार्य्यकर्ताओं की आँखें खोलने के लिए एक मात्र यही उपाय है। सभा के कौशली कर्म्मचारियों की अनुदारता, अकृतज्ञता, अन्यायशीलता और कुटिलता का विचार काशी की "साधारणसभा" ने नहीं किया तो न सही। सर्व-साधारण और बाहरी सभासदों का समुदाय ज़रूर करेगा, करेगा और फिर करेगा। इसका हमें पूर्ण विश्वास है। क्योंकि न्याय अभी संसार से बिलकुल ही नहीं उठ गया। इस विषय में यही लोग हमारे "अपिलाँट कोर्ट" हैं।

इसके आगे हमारे "वक्तव्य" और उसके परि-शिष्ट को पढ़ने के लिए तैयार रहने की प्रार्थना पाठकों और सभा के बाहरी सभासदों से करके हम इस लेख को समाप्त करते हैं। यह लेख, "वक्तव्य" और परिशिष्ट अलग पुस्तकाकार छप रहे हैं। पुस्तक का नाम होगा "कौटिल्य-कुठार"। कानपुर के प्रसिद्ध वकील और कवि राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०, की लिखी हुई एक अँगरेज़ी भूमिका भी पुस्तक के आरम्भ में रहेगी। यह कोई सौ सवा सौ पृष्ठ की पुस्तक होगी। मूल्य आठ आने से अधिक न होगा; शायद इससे कम ही हो। हिन्दी के हितैषियों—विशेष करके सभा के सभासदों—को इसे अवश्य देखना चाहिए। जिसे लेने की इच्छा हो वह "कमलाकिशोर तिवारी, आरमी प्रेस कानपुर" को पहले ही से सूचना दे, जिसमें पुस्तक तैयार होते ही वी० पी० द्वारा भेज दी जाय। पुस्तकाकार प्रका-शित होने के पहले ये सब लेख नागपुर की हिन्दी-ग्रन्थमाला में निकलेंगे। अतएव जो लोग उसमें इन्हें पढ़ना चाहें पढ़ सकते हैं।

८—२—०७ महावीरप्रसाद द्विवेदी।

मुझको तो मुल्क से है न कुछ माल से ग़रज़,
रखता नहीं ज़माने के जंजाल से ग़रज़।
है इल्तिजा यही कि करम तू अगर करे,
वह बात दे ज़ुबाँ में कि दिल पर असर करे।

प्रोफ़ेसर आज़ाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रे मन !

१—दुर्लभ नर-तनु सुन्दर पाकर
वृथा जन्म क्यों खोता है ?
रे मन मूर्ख चेत कर झट पट
मोह-नींद क्यों सोता है ?

२—सोया, उसने ही है खोया,
जागा, उसने पाया है।
सोच आत्म-कर्त्तव्य एक क्षण
क्यों इस जग में आया है ?

३—उठता न तू, न तू सुनता है
व्यर्थ विलम्ब लगाता है।
चले गये साथी सब तेरे
यहाँ तू रहा जाता है॥

४—इस कण्टकमय वन के भीतर
तू निःशङ्क विचरता है।
रे मन मूढ़ नहीं डरता तू
आत्मघात क्यों करता है ?

५—मग है विकट कटक विषयों का
तुझे घेरता आता है।
तिस पर भी तू रे हतभागी !
ज़रा नहीं घबराता है।

६—जन, धन, दौलत, राजपाट सब
कोई काम न आवेगा।
पथ चोरों से घिरा हुआ है
यह सारा लुट जावेगा॥

७—माता, पिता, सुता, सुत, दारा
भ्राता जो दिखलाते हैं।
सो सब सुख के ही साथी हैं
अन्त साथ नहिँ जाते हैं॥

८—विद्या, विभव, धाम, धरणी सब
यहीं पड़ा रह जाता है।
धर्म एक सच्चा साथी है
उसे भूल क्यों जाता है ?

९—इसको कर विश्वास चित्त में,
झूठा सारा नाता है।
दान, दया, शम, शौच, सत्य का
अरे क्यों न अपनाता है ?

१०—अशरण-शरण दयामय हरि को
भूल, सु-अवसर खोता है।
उसकी कृपा बिना क्या कोई
सुखी कहीं भी होता है ?

११—अति अगाध माया में फँस कर
पाप-बीज क्यों बोता है ?
रे मन मूढ़, चेत कर झट पट
मोह-नींद क्यों सोता है ?

पाण्डेय लोचनप्रसाद।

बिजली की रेलगाड़ी।

(Electric Railway)

अमरीका में आजकल इस बात का यत्न हो रहा है कि किस प्रकार बिजली से रेलगाड़ी चलाने का प्रबन्ध किया जाय। बिजली से चलनेवाली ट्राम आदि साधारण गाड़ियाँ तो, सरस्वती के बहुत से पाठकों ने, कलकत्ता, मदरास आदि बड़े बड़े शहरों में भी देखी होंगी; परन्तु यह शायद उन्होंने न सुना हो, कि अमरीका-निवासी भाफ से चलनेवाली रेलगाड़ी के स्थान पर अब बिजली की रेलगाड़ी चलाने की चिन्ता में हैं। वे चाहते हैं कि किस प्रकार ख़र्च थोड़ा और लाभ अधिक हो। उनके रहने और व्यापार-व्यवहार आदि का ढंग हमारे देश का ऐसा नहीं है। हमारे देश में यदि पिता लकड़ी या बाँस की पुरानी तकड़ी से सौदा तोलता था, तो उसका लड़का भी उस तकड़ी का पिंड नहीं छोड़ता। जिन करघों से सैकड़ों बरस पहले जुलाहे कपड़े बुनते थे, आज भी भारतवर्ष के जुलाहों के हाथ में वही देखे जाते हैं। कभी किसी के मनमें आगे बढ़कर क़दम मारने का हौसला ही नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय ही रुपया है (Time is money)। इसी नियम पर अमरीका-निवासी चल रहे हैं। इनका मूल मन्त्र है—किस प्रकार थोड़ा समय लगे और काम अधिक हो। इनके कार ख़ानों में जाइए; आप सब कहीं इसी नियम की सर्व-व्यापकता पाइएगा। हमारे देश के आराकश एक भारी लकड़ी चीरने में सारा दिन लगा देते हैं; पर कभी उनके मन में यह नहीं आता कि हम क्या थोड़ा समय ख़र्च करके इस काम के करने का तरीक़ा नहीं निकाल सकते हैं? अमरीका-निवासी भाफ की रेलगाड़ी से, जो फ़ी घंटा ५० मील से अधिक जाती है, तंग आ गये हैं। वे कहते हैं कि यह चाल बड़ी सुस्त है। वैंकोवर से चिकागो २७०० मील है। उसे तै करने में तीन दिन लग जाते हैं। इससे वे चाहते हैं, कौन सा उपाय हो, जो दो ही दिन लगें; एक दिन की बचत हो।

पाठक शायद यह कहें कि ऐसी क्या आफ़त आई है! क्यों अमरीकावालों में यह धुन समाई है? ऐसी जल्दी काहे की है? भाई, अमरीका हिन्दुस्तान नहीं। यहाँ उन्नति, उन्नति, उन्नति की ही ध्वनि सब कहीं सुन पड़ती है। सभ्य संसार में बिना उन्नति के काम नहीं चल सकता। "तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः" ने ही भारत को मटियामेट कर दिया!

भला बिजली की रेलगाड़ी से लाभ क्या? एक बड़ा भारी लाभ तो बिजली की रेलगाड़ी का तत्काल ठहर जाना है। भाफ से चलनेवाली रेलगाड़ी को ठहराने के लिए समय चाहिए। हमारे देश में लोगों ने बहुधा रेलों को टक्करें सुनी होंगी। उनसे लाखों रुपये की हानि और सैकड़ों की जानें जाती हैं। ऐसी टक्करों को बिजली की गाड़ी कम कर देगी। भाफ की रेलगाड़ी में किराया अधिक लगता है। बिजली की गाड़ी में किराये की किफ़ायत होगी; थोड़े ही ख़र्च से लम्बे लम्बे सफ़र हो सकेंगे। थोड़ी तौफ़ीक़वालों को भी दूर दूर के स्थान देखने का अवसर मिलेगा। समय थोड़ा लगेगा। भाफ की रेलगाड़ी में बहुत समय लगता है। बिजली की गाड़ी इस दिक़्क़त को दूर करेगी। भाफ की गाड़ी को तो अपने खाने पीने ही में बहुत समय लग जाता है। बड़े बड़े स्टेशनों पर केवल कोयला पानी के लिए देर तक ठहरना पड़ता है। बिजली की गाड़ी को खाना पीना दरकार न होगा। बिना खाने के ही वह बराबर काम देगी। इसके सिवा भाफ के यन्त्रों को घुमाने फिराने की ज़रूरत रहती है। उसका मुँह, बिना एक चक्कर पर लाये, नहीं घूमता। बिजली की गाड़ी के लिए सब रास्ते खुले रहेंगे। जिधर, जिस समय चाहो, चलाओ; जब चाहो इधर से उधर घुमाओ; उसे कुछ भी उज़्र न होगा। इस आज्ञा-वाहक गुण के होने से बिजली सर्व-प्रिय हो रही है। भाफ के यन्त्रराम, ग्रीष्म ऋतु में, अपने ऊपर रहने वालों का नाकों दम कर देते हैं। बिजली की गाड़ी पर काम करनेवालों को यह दुख न भोगना पड़ेगा। भाफ की गाड़ी मुसाफ़िरों पर कोयला फेंक फेंक कर उनकी अप्रतिष्ठा करती है; सारे वस्त्र काले कर देती है। बिजली की गाड़ी मुसाफ़िरों से कभी ऐसी गुस्ताख़ी न करेगी। वह बड़े प्रेम, बड़ी नम्रता, से उनकी सेवा करती है; और जब मुसाफ़िर चलने लगते हैं तब मानों सीटी के द्वारा निवेदन करती है—"महाशय, फिर भी कभी दर्शन दीजिएगा"।

भारत की रेलों में तीन या चार दरजे गाड़ियों के होते हैं। अमरीका में उस तरह के कोई दरजे नहीं। यहाँ भेदभाव ही नहीं। किसी गाड़ी के अन्दर घुसो, साफ़ सुथरे गद्दे आराम कुरसियों पर पड़े हैं। एक एक मुसाफ़िर के लिए एक एक कुरसी है, जिस पर वह रात को सो भी सकता है। गाड़ी की एक तरफ़, एक छोटे कमरे में, दो नल ठंढे और गरम पानी के रहते हैं। पास ही एक शीशा दीवार में लगा रहता है। साबुन की चक्की रक्खी रहती है। एक धुला हुआ साफ़ अँगोछा लटका करता है। सब तरह का आराम गाड़ी में रहता है। एक ख़ास गाड़ी खाने पीने के लिए रहती है, जहाँ मुसाफ़िर समयानुकूल भोजन पाते हैं। अब अपने यहाँ का हाल देखिए। भेड़ बकरी की तरह, आदमी गाड़ियों में भरे जाते हैं। उनको दम लेना भी कठिन हो जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पीने के पानी के लिए हर स्टेशन पर चिल्लाना पड़ता है। पहिले और दूसरे दरजे के सिवा तीसरे और डब्बोढ़े में सारी रात जागने गुज़रती है। किसी को कुछ भी तकलीफ़ हो, कोई पूछनेवाला नहीं है। स्त्रियों की जो दुर्दशा होती है वह लिखने के योग्य नहीं। इन सब दुर्दशाओं के होने पर भी भारत-वासियों के ध्यान में कभी यह बात नहीं आती कि ये दिक़तें कैसे दूर हो सकती हैं। अमरीका की गाड़ियों में इतना आराम है, तिसपर भी लोग "उन्नति, उन्नति" की पुकार मचा रहे हैं। पर भारत के रामचन्द्र और कृष्ण की सन्तान कभी सोचती तक नहीं, कि हम कैसे इन दुःखों को दूर कर सकते हैं। यदि भारत-वर्ष के धनाढ्य पुरुषों की एक कंपनी कोई लाइन खोलने के लिए उद्यत हो जाय और लाइन बना कर अपने भाइयों के आराम का सब प्रबन्ध कर दे तो और कंपनियों के छक्के छूट जायँ, और झख मार कर वे अपने कुप्रबन्धों को दूर कर दें। रेलगाड़ियों के मालिक और अफ़सर जानते हैं कि इनके लिए कोई और लाइन तो है ही नहीं; रोने चिल्लाने दो; आख़िर जायँगे तो हमारी ही लाइन से न? बस यही कारण है कि हमारी दुर्दशा पर कोई ध्यान नहीं देता। पर अमरीका में एक नहीं अनेक कंपनियाँ हैं। और प्रत्येक की कोशिश यही रहती है कि किसी न किसी प्रकार हमारी लाइन पर अधिक मुसाफ़िर आवें। इसलिए मुसाफ़िरों के आराम का भरपूर प्रबन्ध किया जाता है। इन्हीं कंपनियों की आपस की इस प्रकार की चढ़ा ऊपरी का यह फल है जो यहाँ की एक कंपनी बिजली की गाड़ी बनाने का विचार कर रही है। भारत-वासी अप्रतिष्ठा सहते हैं; स्टेशनों पर गालियाँ खाते हैं; खाने पीने की तकलीफ़ें उठाते हैं; सारी रात जागते व्यतीत करते हैं; गरमियों में क़ैदियों की तरह गाड़ियों के भीतर बंद रहते हैं; तिसपर भी कभी यह नहीं सोचते कि क्या हम इन दिक़तों को दूर नहीं कर सकते? सचमुच सब कष्ट दूर हो सकते हैं। अमरीका की जैसी सुन्दर गाड़ियाँ बन सकती हैं; प्रबन्ध अच्छा हो सकता है; सब तरह के आराम मिल सकते हैं; बिजली की गाड़ियाँ भी बन सकती हैं। हाँ अध्यवसाय, परिश्रम, मेल और पूँजी चाहिए।

सत्यदेव। (शिकागो, अमरीका)

कर्नल आलकट।

पाठकों ने थियासफ़िकल सोसायटी का नाम सुना ही होगा। इसे स्थापित हुए कोई ३० वर्ष हुए। इसका प्रधान दफ़्तर मदरास (अडियार) में है। इस समाज के सिद्धान्त कुछ कुछ ब्रह्मवादियों के सिद्धान्तों से मिलते हैं। इसका मुख्य सिद्धान्त है—मनुष्य परमात्मा का अंश है। अतएव वह परमात्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस समाज में सब धर्म्मों और सब सम्प्रदायों के अनुयायी भर्ती हो सकते हैं। इसके अधिष्ठाताओं और कार्य्यकर्ताओं का कथन है कि हमें किसी धर्म्म से द्वेष नहीं, ईश्वर सबका एक है। हाँ उसको प्राप्ति के साधन जुदे जुदे हैं। पर इससे मुख्य उद्देश्य में बाधा नहीं आसकती। सब लोगों में भ्रातृभाव की स्थापना, ब्रह्मविद्या का प्रचार और पारस्परिक सहानुभूति की वृद्धि ही इस समाज के कर्तव्य हैं।

इसके संस्थापक कर्नल आलकट का शरीरपात हुए अभी थोड़े ही दिन हुए। मदरास में १७ फ़रवरी १९०७ को आपकी मृत्यु हुई। आपके मृत देह के पास सब धर्म्मों की प्रधान प्रधान पुस्तकें रक्खी गई थीं। यह आपकी आज्ञा से हुआ था। आप कह गये थे, ऐसा ही करना। मरने पर सब धर्म्म के अनुयायियों ने आपका कीर्तिगान किया। आपके शव का अग्नि-संस्कार हुआ। अस्थिसञ्चय का आधा भाग समुद्र में डाला गया। आधा काशी में, भागीरथी में, प्रवाहित किया गया। यह बात हिन्दू-धर्म्मानुकूल हुई।

तीन चार वर्ष हुए हमने कर्नल आलकट के जीवनचरित की सामग्री इकट्ठी करने की कोशिश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की थी। पर सफलता न हुई। जो लोग सामग्री दे सकते थे उन्होंने उत्तर दिया कि कर्नल साहब का जीवनचरित प्रकाशित नहीं हो सकता। साहब नहीं चाहते कि उनका चरित प्रकाशित हो। क्या करते? चुप रहना पड़ा। पर अब उनकी मृत्यु के बाद एनो-वेसंट ने उनका संक्षिप्त चरित अँगरेज़ी अख़बारों में छपा दिया है। उससे कर्नल साहब का कुछ हाल लोगों को मालूम हो गया है। ख़ैर। तब न सही अब सही।

कर्नल साहब के पूर्वज अँगरेज़ थे। उन्हें अमेरिका में आकर बसे कई पुश्तें हो गईं। अतएव कर्नल आलकट को अमेरिकन कहना चाहिए। अमेरिका के न्यूजर्सी प्रान्त के आरेंज नगर में कर्नल साहब का जन्म, १८३२ ईसवी में, हुआ था। आपको कृषि-विद्या से बड़ा शौक़ था। ग्रीस की गवर्नमेन्ट ने उन्हें कृषि के महकमे में एक अच्छा पद देने की इच्छा प्रकट की थी। पर उन्होंने एथन्स जाना मंज़ूर न किया। आपने अपने ही देश में एक कृषि-विद्या का स्कूल खोला। उसमें आपने बड़ी कार्यदक्षता दिखलाई। आपका बड़ा नाम हुआ। आपने कृषिविषयक एक किताब लिखी। थोड़े ही समय में वह सात दफ़े छपी। आपकी योग्यता से प्रसन्न होकर अमेरिका के अधिकारियों ने वाशिंग्टन में आपको कृषि-विभाग का डाइरेक्टर बनाना चाहा। पर इस पद को लेने से भी आपने इन्कार कर दिया। और भी कई अच्छे अच्छे काम आपको मिलते थे। पर उन्हें भी आपने नहीं मंज़ूर किया।

१८५८ में आप इँगलैंड गये। वहाँ आपने अपने कृषि-ज्ञान की और भी वृद्धि की। अमेरिका लौट कर दो किताबें और आपने कृषि पर लिखीं। इससे आपका और भी नाम हुआ।

कर्नल आलकट कुछ दिन तक एक अख़बार के सम्पादक भी रहे थे। अख़बारों में आपने कुछ दिन तक लेख भी दिये थे।

जब अमेरिका के उत्तरी और दक्षिणी राज्यों में लड़ाई शुरू हुई तब आलकट साहब फ़ौज में भरती हो गये। लड़ाई में आपने बड़ी बहादुरी दिखाई और अपने काम से अफ़सरों को बहुत प्रसन्न किया। इसके बाद उन्हें एक ऐसे मामले की तहक़ीक़ात का काम दिया गया जिसमें गवर्नमेंट का बहुतसा रुपया लोग खा गये थे। इस काम में उन्हें लोग रिश्वत देने, और रिश्वत न लेने पर, धमकाने से भी बाज़ न आये। पर आलकट साहब इससे ज़रा भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने बड़ी ही योग्यता से काम किया। फल यह हुआ कि अपराधी दस दस वर्ष के लिए जेल भेजे गये। इस काम से साहब ने बड़ी नेकनामी पाई। बड़े बड़े अफ़सरों ने उनकी प्रशंसा की और बेमाँगे प्रशंसापूर्ण पत्र भेजे।

कुछ दिन बाद आलकट साहब को कर्नल का पद मिला और वे युद्ध-विभाग के स्पेशल कमिश्नर बनाये गये। अनन्तर, जहाज़ी-महकमे के सर्वश्रेष्ठ अधिकारी ने अपने महकमे में उन्हें ले लिया। वहाँ उन्होंने अनेक सुधार किये और उस महकमे में जितनी ख़राबियाँ थीं सब दूर कर दीं। इनकी इस योग्यता पर इनका प्रधान अफ़सर इतना प्रसन्न हुआ कि उसने एक लंबी सरटीफ़िकेट दी और उसमें इनके गुणों का सविस्तर गान किया।

मैडम ब्लेवस्की की कर्नल आलकट से अमेरिका ही में भेट हुई। वहीं इन दोनों ने मिल कर थियासफ़िकल समाज की नीव डाली। उस समय कर्नल साहब ने गवर्नमेंट की नौकरी से इस्तेफ़ा दे दिया था और वकालत करने लगे थे। वकालत में आपको अच्छी आमदनी होती थी। पर धार्म्मिक और ब्रह्म-विद्याविषयक बातों को उन्होंने रुपया पैदा करने के काम से अधिक महत्त्वपूर्ण समझा। अतएव सांसारिक झगड़ों से हाथ खींच कर, १८७५ ईसवी में, पूर्वोक्त मैडम साहबा की सलाह से, आपने इस समाज की स्थापना की। आप ही इसके प्रधान अध्यक्ष नियत किये गये। इसके दो वर्ष बाद आपने भारतवर्ष के लिए प्रस्थान किया और यहाँ मद्रास में थियासफ़िकल सोसायटी का मुख्य दफ़्तर खोला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ आकर बंबई में पहले पहल आप ही ने स्वदेशी चीज़ों की एक प्रदर्शिनी खोलने का उपक्रम किया और लोगों को स्वदेशी वस्तु-व्यवहार की उत्तेजना दी। एनी बेसंट कहती हैं, कांग्रेस करने का ख़याल भी पहले पहल आप ही को हुआ था।

कर्नल साहब को बौद्ध धर्म्म से विशेष प्रेम था। आपने लङ्का में इस धर्म्म की उन्नति के लिए बहुत प्रयत्न किया। यह आप ही के प्रयत्न का फल है जो वहाँ इस समय ३ कालेज और २०३ स्कूल हैं और उनमें २५,८५६ विद्यार्थी पढ़ते हैं। जपान में भी कर्नल आलकट ने बौद्धधर्म्म की बड़ी उन्नति की। अनेक व्याख्यान आपने दिये। बौद्ध धर्म्म के भिन्न भिन्न सम्प्रदायों को आपने अपने व्याख्यानों के प्रभाव से एक कर दिया।

१८७८ ईसवी में कर्नल साहब भारतवर्ष में आये और १८८२ में आपने अपने निज के रुपये से ज़मीन वग़ैरह ले कर मदरास में थियासफ़िकल सोसायटी की इमारत बनवाई। यहाँ १८९१ में मैडम-ब्लेवस्की का शरीरपात हुआ। तब से इस सोसायटी का कार्य्यसूत्र सर्वतोभाव से आप ही के हाथ रहा। आपने अपने उद्योग और अध्यवसाय से, ३१ वर्ष में, इस सोसायटी की कोई एक हज़ार शाखायें दुनिया में खोल दीं। इस समय कोई देश ऐसा नहीं जहाँ इस सोसायटी की शाखा न हो। आप पर और मैडम ब्लावस्की पर अनेक लोगों ने अनेक प्रकार की तोहमतें लगाईं; अनेक प्रकार से उन की निन्दा की, अनेक अनुचित आक्षेप और आघात किये; पर उनकी बहुत कम परवा करके आप अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहे और जिस काम को शुरू किया था उसे उसी उत्साह से करते रहे। फल यह हुआ कि आपके कितने ही विपक्षी इस समय आपकी बातों को मानने लगे हैं। सुनते हैं आपके सारे बड़े बड़े काम महात्माओं की प्रेरणा से हुआ करते थे। ऐसी ही प्रेरणा के वशीभूत होकर आप एनी बेसंट को अपने पद का उत्तराधिकारी बनाने की सिफ़ारिश कर गये हैं।

कर्नल आलकट की बदौलत थियासफ़िकल सोसायटी से, एक बात जो सबसे अधिक महत्त्व की हुई है, वह यह है कि इस देश के अँगरेज़ी विद्वानों के हृदय में अपने देश की विद्या और शास्त्रादि पर श्रद्धा का अङ्कुर जम गया है। यह कुछ कम लाभ नहीं।

इन्दिरा।

१—क्यों, क्या यही इन्दिरा बाई ?
क्या इन्दिरा महीतल आई ?
नहीं, नहीं, यह मानव-जाई ;
सुन्दरता अति अद्भुत पाई।

२—पुण्य-नगर पूना की नारी ;
पहने श्याम रंग की सारी।
यही है इसे अतिशय प्यारी ;
सचमुच यह लोचन-सुखकारी।

३—शीश खुला रखती यह बाला ;
गले 'गलश्री' नामक माला।
नथ-मुक्ता-सौन्दर्य्य निराला ;
घर इसका इससे उजियाला।

४—कुङ्कुम का यह तिलक लगाती ;
कर्णफूल से कर्ण सजाती।
हाथों को पटली पहनाती ;
अन्य आभरण दूर हटाती।

५—जब यह देवालय को जाती,
भाव-भक्ति अतिशय दिखलाती।
हाथ जोड़ती ; शीश झुकाती ;
मन ही मन पति-कुशल मनाती।

६—शिक्षा भी है इसने पाई ;
कर-कौशल-कुशला यह 'बाई'।
पत्र केसरी और सुधारक,
इसकी चित्तवृत्ति के हारक।

७—नाटक नये देखने जाती ;
पति को सदा साथ ले जाती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख-मयङ्क को नहीं छिपाती ;
बहुत रात बीते घर आती ।

८—शाल ओढ़ बाहर जाती है ;
मन सङ्कोच नहीं लाती है ।
सखियों को जब यह पाती है ,
बातों से मधु टपकाती है ।

९—सभ्य-सभाओं में भी जाती ;
व्याख्यान सुनती ; सुख पाती ।
मनोमोद, घर लौट, बढ़ाती ;
बातें कर पति-चित्त चुराती ।

१०—यह है दाक्षिणात्य वर नारी ;
अपने शिक्षित पति को प्यारी ।
इसकी मूर्ति विलोचनहारी
रविवर्मा ने विशद उतारी ।

सम्पत्ति-शास्त्र ।

(२)

सम्पत्ति का विनिमय ।

इसके पहले लेख में सम्पत्ति की उत्पत्ति का विचार संक्षेप में किया गया । इसमें, सम्पत्ति के विनिमय से सम्बन्ध रखनेवाली मुख्य मुख्य बातों पर कुछ कहा जायगा । सम्पत्ति का विनिमय करने में पदार्थों के मूल्य और क़ीमत का बहुत काम पड़ता है । इससे इन दो शब्दों का अन्तर समझ लेना बहुत ज़रूरी है ।

हिन्दी में मूल्य, मोल, क़ीमत और दाम आदि शब्द प्रायः समानार्थक हैं । परन्तु यह शास्त्र इस देश का नहीं, योरप का है । वहाँ "Value" और "Price" इन दो शब्दों के अर्थ में भेद है । अतएव हिन्दी में भी इन दो शब्दों के भेददर्शक शब्द मानने पड़ेंगे । इससे हम यह माने लेते हैं कि Value का अर्थ मूल्य और Price का अर्थ क़ीमत है ।

मूल्य और क़ीमत ।

दो चीज़ों के परस्पर-सम्बन्ध का नाम मूल्य है । उससे तुलना का अर्थ सूचित होता है । किसी चीज़ का मूल्य ठहराने के लिए उसकी तुलना किसी और चीज़ से करनी पड़ती है । अथवा उसके बदले जो चीज़ मिल सकती है उसके परिमाण या वज़न के अनुसार उसका मूल्य निश्चित करना पड़ता है । यदि एक सेर घी के बदले चार सेर शकर मिले, तो यह कहना चाहिए कि एक सेर घी का मूल्य चार सेर शकर है । इसी से मूल्य शब्द से तुलना का अर्थ ध्वनित होता है । इस के मान लेने से यह सिद्धान्त निकलता है कि तुलना किये गये दो पदार्थों में से एक पदार्थ का मूल्य बढ़ने से दूसरे का ज़रूर कम हो जाता है । क्योंकि दोनों का मूल्य एक दम बढ़ना या एक दम कम होना असम्भव सा है । दोनों बढ़ गये हैं, या दोनों कम हो गये हैं, ये वाक्य निरर्थक हैं । एक का मूल्य बढ़ने से दूसरे का कम होना ही चाहिए । यदि कोई यह कहे कि सब चीज़ों का मूल्य और सब चीज़ों से बढ़ गया है तो उसका कोई अर्थ ही न होगा । यदि यह कहा जाय कि घी का मूल्य पहले की अपेक्षा बढ़ गया है तो इससे यही अर्थ निकलेगा कि उसके बदले कोई चीज़ जो पहले चार सेर मिलती थी अब उससे अधिक ज़रूर मिलेगी ।

आज कल चीज़ों का प्रत्यक्ष विनिमय अर्थात् बदला नहीं होता । जिसके पास घी है वह शकर वाले के पास शकर बदलने नहीं जाता । वह घी को बेच कर उसका मूल्य रुपये के रूप में ले लेता है और उस रुपये को शकर ख़रीद करता है । इस मूल्य-दर्शक रुपये पैसे, या सिक्के का नाम क़ीमत (Price) है । घी के बदले यदि शकर ली जाती तो घी का मूल्य शकर होती । पर शकर न लेकर घी का मूल्य रुपया या पैसा लिया गया । अतएव यह रुपया या पैसा घी की क़ीमत हुआ । मोटी बात यह है कि किसी चीज़ के बदले जो चीज़ मिले वह मूल्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। और उसके बदले जो रुपया पैसा मिले वह क़ीमत है। इस भेद को ध्यान में रखना चाहिए।

सब चीज़ों का मूल्य एकदम नहीं बढ़ सकता। परन्तु क़ीमत एकदम बढ़ सकती है। एक सेर घी का मूल्य चार सेर शक्कर है। इन दोनों का पारस्परिक मूल्य एक साथ नहीं बढ़ सकता। एक का बढ़ने से दूसरे का कम होना हो चाहिए। पर एक सेर घी की क़ीमत दो रुपये हो सकती है, और चार सेर शकर की भी क़ीमत बढ़कर एक से दो रुपये हो सकती है। उनकी क़ीमत एक साथ ही दूनी हो जायगी; पर उनका मूल्य पूर्ववत् रहेगा। मतलब यह कि सब चीज़ों की क़ीमत एक साथ कमोबेश हो सकती है; पर उनका मूल्य एक साथ कमोबेश नहीं हो सकता।

रुपया, पैसा या सिक्का।

सब चीज़ों के विनिमय में सुभीते के लिए सिक्के की सृष्टि हुई है। सब लोगों की सम्मति से चाहे जिस चीज़ का सिक्का बनाया जा सकता है। सोने, चाँदी और ताँबे की तो बात ही नहीं; लकड़ी, लोहा, कौड़ी और बादाम आदि के भी सिक्के हो सकते हैं। कौड़ियों का व्यवहार अब तक इस देश में है। परन्तु जिस पदार्थ का सिक्का बनाया जाय उसमें नीचे लिखे गुण होने चाहिएँ—

१—वह मूल्यवान् होना चाहिए।

२—उसका आकार छोटा होना चाहिए, जिसमें इधर उधर ले जाने में या थोड़ी जगह में बहुत से सिक्के रखने में सुभीता हो।

३—वह घिस कर, टूट कर, या गल कर जल्द ख़राब न हो सकता हो।

४—उसे पाने की सबको इच्छा होनी चाहिए।

५—उसके मूल्य में बहुत अधिक कमोबेशी न होनी चाहिए।

६—उसके विभाग हो सकें।

७—उसे लोग देखते ही पहचान लें।

इस देश में सोने, चाँदी का सिक्का है। उनमें पूर्वोक्त गुण हैं, इसीलिए उनके सिक्के बनाये जाते हैं। कोई शायद यह कहे कि हीरा तो सोने चाँदी की भी अपेक्षा अधिक मूल्यवान् होता है उसका सिक्का क्यों नहीं बनाया गया? इसका उत्तर यह है कि हीरा पहले तो बहुत दुर्लभ चीज़ है; फिर उसके टुकड़े करने से उसका मूल्य बहुत कम हो जाता है। जिस टुकड़े की क़ीमत ५०० रुपये है उसके ५ टुकड़े करने से एक टुकड़े की क़ीमत सौ रुपये न होगी। वह बहुत कम हो जायगी। फिर वह जितनी होगी उतनी निश्चित न होगी। लोग उसे देखते ही न जान सकेंगे कि इस टुकड़े की क़ीमत कितनी है।

ताँबे का सिक्का, चाँदी का सहायक मात्र है। चाँदी के बहुत छोटे छोटे टुकड़े करने में सुभीता नहीं। इसीलिए ताँबे के सहायक सिक्के की ज़रूरत पड़ी। यदि कोई क़र्ज़ अदा करने, या किसी चीज़ की क़ीमत चुकाने, में किसी को सौ दो सौ रुपये के पैसे ही देना चाहे तो वह उतने पैसे लेने से इनकार कर सकता है। पर रुपये लेने से इनकार नहीं कर सकता। यदि किसी को एक लाख रुपये भी देने हों तो वह यह नहीं कह सकता कि हम इतने रुपये न लेंगे। हमें इतनी क़ीमत का सोना या हीरा दो।

गवर्नमेंट ने जो नोट जारी किये हैं उनमें पूर्वोक्त गुणों में से कई गुण नहीं हैं। तथापि उनके न होने से कोई हानि नहीं। क्योंकि नोट यद्यपि काग़ज़ के हैं, तथापि गवर्नमेंट की साख पर वे रुपये का काम देते हैं। उन्हें काग़ज़ समझ कर कोई नहीं लेता। किन्तु रुपया ही समझ कर लेता है। लेनेवालों को यह दृढ़ विश्वास रहता है कि नोट को दिखाते ही नोट पर लिखे हुए रुपये फ़ौरन सरकारी ख़ज़ाने से मिल जायँगे।

सिक्के का मूल्य घटने बढ़ने से लेन देन और व्यापार आदि में बड़ा गड़बड़ होता है। कल्पना कीजिए कि इस देश में कहीं रुपये की एक खान निकल आई। उससे हर महीने करोड़ों रुपया निकलने लगा। जो चीज़ अधिक पैदा होती है वह ज़रूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सस्ती हो जाती है। अतएव रुपये का मूल्य ज़रूर गिर जायगा। फल यह होगा कि जो चीज़ एक रुपये को मिलती रही होगी वह शायद दो रुपये को मिलेगी। पर यह इष्ट नहीं। क्योंकि जिसकी आमदनी बँधी हुई है उसे बहुत नुक़सान उठाना पड़ेगा। इस दशा में जिसकी तनख़्वाह ५० रुपये है, और २५ रुपये महीने खाने पीने का ख़र्च है, उसे अपनी पूरी तनख़्वाह खाने पीने ही में ख़र्च कर देनी पड़ेगी। और ख़र्च उसके कहाँ से चलेंगे? इसी से सिक्के के मूल्य में कमी व बेशी होना अच्छा नहीं। इँगलंड में सोने का सिक्का है और हिन्दुस्तान में चाँदी का। पहले सोने के एक पौंड के बदले चाँदी के दस रुपये आते थे। पर धीरे धीरे चाँदी का भाव गिरने लगा। अतएव एक पौंड के बदले १० से अधिक रुपये पड़ने लगे। हिन्दुस्तान को हर साल कोई २० करोड़ रुपये इँगलंड को फ़ौज, जहाज़, अफ़सरों की तनख़्वाह और पेन्शन पानेवालों की पेन्शन के लिए देने पड़ते हैं। यह रुपया पौंड के हिसाब से देना पड़ता है। पर चाँदी का मूल्य गिर जाने से इस ख़र्च की रक़म बहुत बढ़ गई। इस मद में, कई करोड़ रुपया भारत से अधिक जाने लगा। यह देखकर गवर्नमेंट ने एक पौंड का मूल्य १५ रुपये निश्चित कर दिया और इतने ही मूल्य का सोने का एक 'सावरेन' सिक्का भी इस देश में, कुछ दिन से, जारी कर दिया। यदि गवर्नमेंट ऐसा न करती तो सम्भव है हिन्दुस्तान को इससे भी अधिक हानि उठानी पड़ती। ख़याल करने की बात है कि चाँदी के भाव में कमीबेशी होने से जब इतनी हानि हो सकती है तब जिन चीज़ों का मूल्य हमेशा ही चढ़ा उतरा करता है उनका सिक्का यदि जारी किया जाय तो न मालूम कितनी हानि हो।

पदार्थों का मूल्य।

जितनी व्यावहारिक चीज़ें हैं सबका मूल्य जुदा जुदा होता है। वह घटा बढ़ा भी करता है। यह नहीं कि जिस चीज़ का मूल्य आज १ रुपया है उसका यह मूल्य हमेशा एक सा बना रहे। हर एक चीज़ का मूल्य कई कारणों से निश्चित होता है। उसके घटने बढ़ने के भी कारण होते हैं। सम्पत्ति-शास्त्र के ज्ञाताओं ने इन कारणों का बहुत कुछ विचार किया है। पर यह शास्त्र नया होने के कारण इसके सिद्धान्त अब तक बदलते जा रहे हैं। किसीका कुछ मत है, किसीका कुछ। तथापि इस विषय में दो चार मोटी मोटी बातें, जो निश्चितप्राय हैं, लिखी जाती हैं।

मूल्य के सम्बन्ध में चीज़ों के तीन विभाग किये जा सकते हैं। यथा—

(१) वे चीज़ें जिनका परिमाण या संख्या नहीं बढ़ाई जा सकती—जितनी है उतनी ही रहती है—और जो अनन्य-साधारण हैं। उदाहरण के लिए—किसी पुराने चित्रकार का चित्र, पुराने मूर्तिकार की बनाई हुई मूर्ति, या पुराने सिक्के।

(२) वे चीज़ें जिनका संग्रह या स्टाक बढ़ाने के लिए उनके स्टाक की बढ़ती के साथ साथ उनके पैदा करने का ख़र्च भी बढ़ता जाता है। उदाहरण के लिए—गेहूँ, चना, जौ इत्यादि खेती की पैदावार और सोना, चाँदी, लोहा, कोयला आदि खनिज पदार्थ।

(३) वे चीज़ें जिनका स्टाक बढ़ाने में उत्पादन-व्यय बहुत कम बढ़ता है। चीज़ों को पैदा करने में लागत लगती है। पर कुछ चीज़ें ऐसी हैं जिनका स्टाक तो बढ़ जाता है पर लागत उतनी नहीं बढ़ती। अर्थात् जिस परिमाण में स्टाक बढ़ता है उसी परिमाण में ख़र्च नहीं बढ़ता। यहाँ ऐसी ही चीज़ों से मतलब है। उदाहरण के लिए—कलों की सहायता से बनाये गये कपड़े और लोहे और लकड़ी आदि के सामान।

यहाँ इस बात के विचार की ज़रूरत है कि उत्पादन-व्यय किसे कहते हैं और यह कैसे सम्भव है कि कोई चीज़ तैयार तो बहुत हो पर उसकी तैयारी में ख़र्च बहुत न पड़े—चीज़ का संग्रह तो अधिक हो जाय पर उस संग्रह की वृद्धि के साथ उसके अनुसार पैदा करने का ख़र्च न बढ़े?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पादन-व्यय।

किसी चीज़ की उत्पत्ति का आरम्भ होने से लेकर, तैयार होने के बाद, उसके बिकने तक, जितना ख़र्च पड़ता है उसका नाम है उत्पादन-व्यय। इसमें मज़दूरों की मज़दूरी; कल, औज़ार आदि की क़ीमत; निगरानी और ज़िम्मेदारी आदि का ख़र्च; और महाजन के रुपये या अपनी पूँजी का ब्याज शामिल समझना चाहिए। कल्पना कीजिए कि आपको गेहूँ पैदा करना है। तो खेत जोतना, बीज बोना, सींचना, निकाना, निगरानी करना, काटना, माँडना और गेहूँ तैयार होने पर उसे बाज़ार में लाकर बेचना—इन सब बातों में जो ख़र्च पड़ेगा उसकी गिनती उत्पादन-व्यय में होगी। बिना मेहनत के ये काम नहीं हो सकते और मिहनत करनेवालों को मज़दूरी देनी पड़ती है। अतएव मज़दूरी की मद में जो ख़र्च पड़ेगा वह उत्पादन-व्यय समझा जायगा। इसके सिवा हल, बैल और चरसे मोल लेने, कुँवा खोदने, खलिहान में रात को रहने के लिए छप्पर डालने में भी ख़र्च पड़ेगा। यही नहीं, किन्तु गेहूँ तैयार होने तक, मेहनत के दिनों में खाने पीने में जो ख़र्च होगा, वह भी उत्पादन-व्यय ही गिना जायगा। विचार करने से मालूम होगा कि इस ख़र्च के दो विभाग हो सकते हैं। एक मज़दूरी, दूसरी पूँजी। पूँजी पर जो मुनाफ़ा या ब्याज देना पड़ता है वह और मज़दूरी, इन दोनों का समावेश उत्पादन-व्यय में होता है। पदार्थों की क़ीमत इन बातों का ख़याल रख कर निश्चित होती है। पर इनके सिवा और भी दो बातें हैं जिन पर पदार्थों की क़ीमत अवलम्बित रहती है। ये दो बातें हैं—

खप और संग्रह।

जिन चीज़ों की आमदनी कम और खप अधिक होता है वे महँगी हो जाती हैं। उन पर ग्राहक बे-तरह टूटते हैं। पर कुछ दिनों में ग्राहकों की संख्या थोड़ी रह जाती है। जो चीज़ महँगी हो जाती है उसे सब लोग तो ले नहीं सकते; क्योंकि एक तो चीज़ थोड़ी, फिर सब लोग ज़ियादह ख़र्च नहीं कर सकते। इस तरह होते होते खप और संग्रह बराबर हो जाते हैं। खप और संग्रह बराबर होने पर उसकी क़ीमत मुक़र्रर होती है। क़ीमत बढ़ने लगती है तब खप कम हो जाता है और खप कम हो गया कि क़ीमत उतरने लगती है। निदान खप और आमदनी की समता होते ही क़ीमत का निश्चय हो जाता है। कल्पना कीजिए कि कानपुर के एक पुतलीघर ने एक थान ऊनी कपड़ा बनाकर उसका नीलाम शुरू किया। उसे लेने के लिए दस आदमी तैयार हुए। किसी ने २ रुपये लगाये, किसी ने ४, किसी ने ६। इस तरह उस थान की क़ीमत बढ़ने लगी। बढ़ते बढ़ते ५० रुपये तक पहुँची। इस पर ९ आदमियों की हिम्मत इतना रुपया देकर उसे लेने की न पड़ी। इस लिए बाक़ी के दसवें आदमी ने ५० रुपये देकर उस थान को ले लिया। अर्थात् आमदनी के बराबर खप होते ही उस थान की क़ीमत ठहर गई।

चीज़ों के खप और उनकी आमदनी में कमी-बेशी होने से क़ीमत में फरक़ ज़रूर पड़ जाता है। इस दशा में कभी भाव चढ़ जाता है, कभी उतर जाता है। पर उत्पादन-व्यय का असर भी भाव पर ज़रूर पड़ता है। बल्कि यह कहना चाहिए कि मामूली तौर पर उसी के आधार पर चीज़ों की क़ीमत का निश्चय होता है। खप अधिक और आमदनी कम होने से मुनाफ़ा अधिक होता है, पर यह स्थिति बहुत दिन तक नहीं रहती। क्योंकि जिस चीज़ का खप अधिक होता है उसे व्यापारी अधिक बनाने लगते हैं। आमदनी अधिक होते ही बाज़ार-भाव गिर जाता है। गिरते गिरते वह यहाँ तक पहुँच जाता है कि मज़-दूरी और मुनाफ़े से अधिक व्यापारी को और कुछ नहीं मिलता। अर्थात् उत्पादन-व्यय के बराबर क़ीमत आ जाती है। यदि खप इतना कम हो गया कि उस से सब ख़र्च न निकला तो उस चीज़ का बनाना कम हो जायगा, या बन्द हो जायगा। आमदनी कम होने से खप फिर बढ़ेगा और फिर क़ीमत चढ़ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगी। अन्त में क़ीमत फिर ख़र्च के बराबर आ जायगी। इससे यह सिद्धान्त निकला कि आमदनी और खप में कमीबेशी होने से क़ीमत में भी कमी-बेशी ज़रूर होती है। पर यह कमीबेशी हमेशा एक सी नहीं रहती। वह एक निश्चित मर्य्यादा के कभी इस तरफ़ हो जाती है, कभी उस तरफ़। इसी मर्य्यादा का दूसरा नाम उत्पादन-व्यय है।

जितने पदार्थ हैं उनके विनिमय-साध्य होने के लिए और भी दो बातें दरकार होती हैं। इन दो बातों के आधार पर भी पदार्थों की क़ीमत निश्चित होती है। ये दो बातें हैं—

उपयोगिता और अप्रचुरता।

जो चीज़ें उपयोगी नहीं उसे पाने की कोई इच्छा नहीं करता। बिना आवश्यकता के किसी चीज़ का खप नहीं होता। जो अन्धा है उसे पुस्तकों की क्या आवश्यकता? कोई पुस्तक कैसी ही उपयोगी क्यों न हो वह उसके काम की नहीं। उसे उसकी आवश्यकता ही नहीं। अतएव वह उसको कुछ भी क़ीमत न देगा। इसी तरह जिन चीज़ों की प्रचुरता होती है, जो बिना परिश्रम या कठिनता के प्राप्त होती हैं, उनको भी कोई क़ीमत नहीं देता। हवा की इतनी प्रचुरता है कि उसके पाने के लिए आदमी को कुछ भी कष्ट नहीं उठाना पड़ता। अतएव वह विनिमय-साध्य नहीं। वह बेचने से नहीं बिक सकती। उसे कोई मोल नहीं लेता। गेरू मिट्टी कभी कभी दवा के काम आती है। अतएव कानपुर या इलाहाबाद के लोग उसे मोल लेते हैं। पर ग्वालियर की रियासत में कई जगह गेरू के पहाड़ के पहाड़ खड़े हैं। उनके पास जो लोग रहते हैं वे गेरू के लिए एक कौड़ी भी ख़र्च न करेंगे। तात्पर्य्य यह कि जिस चीज़ के पाने में कुछ भी कठिनता नहीं पड़ती—जिसकी प्रचुरता होती है—उसकी कुछ भी क़ीमत नहीं। इसी तरह जिस चीज़ की आवश्यकता नहीं उसे भी क़ीमत देकर कोई नहीं लेता। अतएव उन्हीं चीज़ों की क़ीमत आती है जो उपयोगी होती हैं और जिनके प्राप्त करने में कुछ कठिनता पड़ती है। जो चीज़ प्रचुर परिमाण में पड़ी हुई मिलती हैं वे बे-मोल हो जाती हैं।

पहले विभाग की चीज़ों का मूल्य।

जिन चीज़ों का परिमाण या संख्या नहीं बढ़ाई जा सकती उनका मूल्य अधिक आता है। आमदनी में अधिकता न होने से वे जितनी की उतनी ही रहती हैं। इससे ख़रीदारों को उनका मूल्य अधिक देना पड़ता है। ऐसी चीज़ों की क़ीमत पर ख़र्च के तारतम्य का बहुत कम असर पड़ता है। यदि रविवर्म्मा का कोई नायाब चित्र आज से सौ वर्ष बाद किसी के पास हो और वह उसे बेचना चाहे तो उसके बनाने में जो ख़र्च पड़ा होगा उसकी अपेक्षा अधिक दाम आवेगा। पुरानी मूर्त्तियाँ, पुरानी किताबें, पुराने सिक्के, पुराने हथियार आदि की क़ीमत का भी यही हाल है। ऐसी चीज़ों की क़ीमत ख़र्च के अनुसार नहीं होती। तो फिर किस प्रकार उनकी क़ीमत निश्चित होती है? उत्तर यह है कि, जैसा ऊपर बयान किया, खप के आधार पर ऐसी चीज़ों की क़ीमत निश्चित होती है। यदि किसी के पास महाराना प्रतापसिंह या पृथ्वीराज का चित्र हो तो उसे बेचने के समय, उसके बनाने में जो ख़र्च पड़ा होगा, उसका ख़याल न किया जायगा। ख़र्च चाहे जितना कम पड़ा हो, यदि ग्राहक बहुत होंगे तो उसकी क़ीमत चढ़ती जायगी। चढ़ते चढ़ते जब एक ही ग्राहक रह जायगा तब क़ीमत निश्चित हो जायगी और जो कुछ वह देगा वही उसकी क़ीमत होगी। क्योंकि सब ग्राहक एक ही क़ीमत तो देंगे नहीं। और यदि सब बराबर बराबर क़ीमत देकर लेना चाहेंगे तो सौदा ही न होगा। जिसको उसे पाने की सब से अधिक इच्छा होगी, और उसके पास उतना रुपया भी देने को होगा, वही सब से बढ़कर क़ीमत लगावेगा। चित्र एक है अतएव चढ़ा ऊपरी करते करते जब ग्राहक भी एक रह जायगा तब खप और आमदनी का समीकरण हो जायगा और क़ीमत निश्चित होकर चित्र बिक जायगा। तात्पर्य्य यह कि इस सौदे में उत्पादन-व्यय का कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी सम्बन्ध न रहेगा। केवल खप और आमदनी के समीकरण से ही चित्र की क़ीमत निश्चित होगी।

दूसरे विभाग की चीज़ों का मूल्य।

जिन चीज़ोंकी आमदनी बढ़ने से ख़र्च भी बढ़ता है उनका समावेश इस विभाग में है। ईस्ट इंडिया कम्पनी की प्रभुता के पहले, और उसके कुछ समय बाद तक भी, इस देश में उद्योग-धन्धे की बड़ी अधिकता थी। बेहद माल तैयार होता था और देश देशान्तरों को भेजा जाता था। पर कम्पनी ने अनेक युक्तियों से उसका सर्वनाश कर दिया। यहाँ के कला-कौशल के पुनरुज्जीवन की तरफ़ गवर्नमेंट का भी विशेष ध्यान नहीं। फल यह हुआ कि इस देश का निर्वाह एक मात्र खेती की पैदावार पर रह गया है। खेती की पैदावार उन्हीं चीज़ों के अन्तर्गत है जिनकी आमदनी बढ़ाने के लिए ख़र्च भी बढ़ाना पड़ता है। अनाज की क़ीमत उत्पत्ति के ख़र्च के अनुसार ही होती है। उसकी उत्पत्ति बढ़ाने में क़ीमत का क्या हाल होता है, इसका विचार कीजिए।

सैकड़ों वर्ष से किसानी पर ही लोगों की जीविका चलती है। इस कारण अच्छी ज़मीन बहुत कम पड़ी रह गई है। सब जुत गई है। उधर आबादी भी बढ़ रही है। खाने के लिए अन्न सब को चाहिए। अतएव या तो पड़ी हुई अनुर्वरा—बुरी ज़मीन—जोती बोई जाय, या निःसत्त्व हुई पुरानी उर्वरा ज़मीन खाद इत्यादि डाल कर अच्छी बनाई जाय। दोनों बातों में ख़र्च ज़रूर बढ़ेगा। बिना ख़र्च आमदनी न बढ़ेगी। परन्तु जिस परिमाण में ख़र्च बढ़ता है उसी परिमाण में आमदनी नहीं बढ़ती। जिस खेत में ५ रुपये की खाद डालो जायगी उसमें उतनी खाद के दाम, और डालने की मज़दूरी, के बराबर आमदनी न बढ़ेगी। इधर खानेवाले भी ज़ियादह। फल यह होगा कि अनाज महँगा हो जायगा। इस पर भी यदि अनाज देशान्तर को रवाना होगा तो उसका स्टाक और भी कम हो जायगा। यही हो रहा है। इसीसे अनाज इस देश में दिनोंदिन महँगा होता जाता है। परतो ज़मीन जोतने से भी ख़र्च बढ़ता है, और ख़र्च बढ़ने से अनाज महँगा होता है।

कोई शायद यह समझे कि अनाज महँगा होने से किसानों को मुनाफ़ा होता होगा। यह भ्रम है। ज़मीन का लगान कितना देना पड़ता है, इसका स्मरण होते ही विचारवान् आदमियों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पर लगान की बात हम यहाँ नहीं कहते। यहाँ सिर्फ़ इतनाहीं कहते हैं कि अनाज पैदा करने में ख़र्च के बोझ से ही बेचारे किसान दबे जाते हैं। मुनाफ़ा उनको क्या होगा, खाक़। मुनाफ़ा होता तो क्या वे भूँखों मरते?

अनाज महँगा होने से किसानोंहीं को आपदायें नहीं झेलनी पड़तीं, किन्तु मेहनत मज़दूरी करनेवाले और लोगों को भी। यही नहीं, सभी लोगों पर इस का असर पड़ता है। क्योंकि एक तो यह देश कृषि-प्रधान है, दूसरे अनाज एक ऐसी चीज़ है कि राजा-प्रजा सब की प्राण-रक्षा उसी से होती है। उसकी जब यह दशा है तब पूँजी का बढ़ना सर्वथा असम्भव है। और बिना पूँजी के कोई उद्योग, धन्धा नहीं होसकता। फिर भला इस देश की दशा निकृष्ट होती जाय तो क्या आश्चर्य्य! ख़ैर। लिखने का मतलब यह कि ख़र्च बढ़ाने से कुछ चीज़ों की आमदनी बढ़ती ज़रूर है; पर अवस्था-विशेष में आमदनी के हिसाब से ख़र्च अधिक पड़ता है। इसके परिणाम भी भयङ्कर होते हैं।

तीसरे विभाग की चीज़ों का मूल्य।

जो चीज़ें यंत्रों की सहायता से तैयार की जाती हैं उनकी उत्पत्ति ख़र्च के हिसाब से बहुत अधिक होती है। अर्थात् उनको तैयारी में बहुत कम ख़र्च पड़ता है। इसीसे उनकी क़ीमत भी कम होती है। क्योंकि उत्पत्ति का ख़र्च जितना ही अधिक होता है, क़ीमत उतनी ही अधिक बढ़ती है। कल्पना कीजिए कि आप को ढाके की मलमल का एक थान दरकार है। उसमें जो रुई लगी है उसकी क़ीमत बहुत होगी तो दो रुपये, अधिक नहीं। पर उसे हाथ से तैयार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने में बहुत मेहनत पड़ती है। इसी से क़ीमत ज़ियादह देनी पड़ती है। मेहनत ही के हिसाब से उसकी क़ीमत १०, २०, ३०, ४० या ५० रुपये आप को देने पड़ेंगे। पर यही थान यदि किसी पुतली घर में यंत्रों की सहायता से बनेगा तो बहुत ही थोड़ी लागत में तैयार हो जायगा। अतएव क़ीमत भी उसकी कम पड़ेगी। रेल के यञ्जिन को देखिए। जो बोझ हज़ार आदमी लगने से भी नहीं ढोया जा सकता, वह, यञ्जिन की मदद से, सैकड़ों कोस दूर, कुछ ही घंटों में, पहुँच जाता है। चीज़ों की क़ीमत प्रायः मज़दूरी ही के कारण बढ़ती है। अतएव सस्ती चीज़ें तभी मिल सकती हैं, और उनका संग्रह तभी बढ़ सकता है, जब यंत्रों से काम लिया जाय। जितना ही बड़ा कारख़ाना होगा, और जितना ही अधिक यंत्रों का उपयोग किया जायगा, उतना ही माल अधिक तैयार होगा और उतनी हीं कम लागत भी लगेगी।

भारतवर्ष की ज़िन्दगी खेती से ही है। पर खेती से उत्पन्न हुई चीज़ों का संग्रह बढ़ाने में साथ ही साथ ख़र्च भी अधिक पड़ता है। इसी से अनाज महँगा बिकता है। यदि यहाँ कारख़ाने खोले जायँ और उनमें यंत्रों की मदद से चीज़ें तैयार हों तो ख़र्च कम पड़े और माल सस्ता बिके। खेती करने में तो गवर्नमेंट का लगानही मारे डालता है। वह देना ही चाहिए। किसान के पास खाने के लिए चाहे दाना न रहे; पर खेत की पैदावार बेचे बिना उसका गुज़ारा नहीं। जिस साल किसी प्रान्त में अकाल पड़ता है—पानी नहीं बरसता—उस साल भी लाखों मन ग़ल्ला विदेश भेजा जाता है। बेचारे किसान यदि ग़ल्ला न बेचें तो करें क्या? सरकारी लगान किस तरह दें? भारतवर्ष की अँगरेज़ी गवर्नमेंट ही सारी ज़मीन की ज़मींदार बन बैठी है। प्रजा का उस पर कोई हक़ नहीं।

कल-कारख़ाने खोलने में रुपया दरकार होता है। यदि कुछ आदमी मिल कर कम्पनियाँ खड़ी करें तो यथेष्ट पूँजी एकत्र हो सकती है। उससे यदि कारख़ाने खोले जायँ तो चीज़ें सस्ती हो जायँ और विदेश से आने वाले माल की कटती कम हो जाय। देश का धन देशही में रहे। दैन्य भी बहुत कुछ दूर हो जाय और अकेले खेती के भरोसे रहने से जो हानियाँ होती हैं उन से भी परित्राण हो।

सारांश।

पहले प्रकार की चीज़ों की क़ीमत खप और आमदनी (या संग्रह) के समीकरण से निश्चित होती है। खप ज़ियादह होने से क़ीमत चढ़ती है। चढ़ते चढ़ते खप और संग्रह की समता होते ही वह निश्चित हो जाती है।

दूसरे प्रकार की चीज़ों का संग्रह बढ़ाने में ख़र्च बढ़ता है। पर इस देश की अवस्था ऐसी है कि खेती की पैदावार बढ़ाने में उसकी बढ़ती के परिमाण की अपेक्षा ख़र्च का परिमाण अधिक हो जाता है। अतएव ऐसी चीज़ों की क़ीमत, आमदनी अधिक होने से, कम होने के बदले अधिक हो जाती है। अनाज के बिना कोई जी नहीं सकता। चित्र तो है नहीं कि एक चित्र के दस ग्राहक होने पर जो सबसे अधिक दाम लगाता है वह ले जाता है। बाक़ी ९ का रुपया उन्हीं के पास रह जाता है। धान्य चाहिए सब को। अतएव उसका संग्रह बढ़ाना ही पड़ता है। पर बढ़ाने से लागत अधिक लगती है। इससे अनाज की क़ीमत स्थिर न रह कर हमेशा बढ़ती हो रहेगी। प्लेग इत्यादि मारक रोगों के कारण, या और किसी प्राकृतिक या अप्राकृतिक घटनाओं के कारण, यदि जन-संख्या कम हो जाय और माल विदेश जाना बन्द हो जाय, तो अनाज सस्ता हो सकता है। अन्यथा नहीं। पर चाहे जिस भाव इस तरह की चीज़ें बिकें, क़ीमत का तारतम्य प्रायः संग्रह और खप के अनुसारही रहेगा।

तीसरे प्रकार की चीज़ों की जितनीहीं अधिक उत्पत्ति की जाय उतनाहीं कम ख़र्च पड़ता है। खप अधिक होने से उत्पत्ति अधिक होने लगेगी। यदि पहले क़ीमत कुछ चढ़ेगी तो संग्रह अधिक होते ही वह ज़रूर उतर जायगी। इस तरह धीरे धीरे खप और संग्रह का परिमाण एक हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना-शतक।

(पश्चात्ताप)

मैं अपराधी अधम अधिक अघयुत अज्ञानी ।
अवगुन को आगार अबुध अतिशय अभिमानी ॥
अविवेकी अवलम्बहीन अकरुण अन्यायी ।
अशरण अगति अनाथ अधर्म्मिन को अनुयायी ॥ १ ॥

दोषी दुर्जन दीह दर्पधारी अतिकामी ।
कपटी कुटिल कुबुद्धि क्रूर कुत्सित-पथगामी ॥
बालपनहि सोँ नाथ साथ शठ जन को कीन्हो ।
आश्रम-वर्ण-विशेष धर्म को परिहरि दीन्हो ॥ २ ॥

ब्रह्मचर्य्य व्रत नेम स्वप्नहू में न निबाह्यो ।
गुरुपद-पूजन शास्त्र-पठन में मन न उमाह्यो ॥
दियो त्यागि निज कर्म, धर्म यातें नहिँ भावैं ।
विधिप्रपञ्चवश हाय कष्ट बहुविध हम पावैं ॥ ३ ॥

सुमिरत हौँ जब नाथ आपने पाप किये को ।
थर थर काँपत देह धड़किबो बढ़त हिये को ॥
नैनन आँसू धार बहत दिन रैन हमारे ।
केहि विधि पाऊँ नाथ हाथ अवलम्ब तिहारे ॥ ४ ॥

भये जिते जग बीच नीच पामर अतिपापी ।
वर्तमान हू काल जिते पर-जन-सन्तापी ॥
तिन सब को अघ जो बटोरि इक ओर धरैहैं ।
मेरे पाप-पहाड़ निकट गुञ्जासम ह्वैहैं ॥ ४ ॥

निज निषिद्ध करतूत हेरि छाती काँपै है ।
सूझत कछु न उपाय सलिल लोचन ढाँपै है ॥
नाथ तिहारे चरणशरण बिन एहि जग माँही ।
निरवलम्ब के हेत और दूसरि गति नाँही ॥ ६ ॥

लीजै नाथ उबारि, धारि कर किते उबार्‌यौ ।
करि करुणा रघुपते किते पतितन को तार्‌यौ ॥
तेरेही रटि नाम काम पूरण सब होवैं ।
तेरेही करि ध्यान ज्ञान लहि बन्धन खोवैं ॥ ७ ॥

जग के तुम आधार पार पावत नहिँ कोऊ ।
लीला करत अनेक नेक लखि परत न सोऊ ॥
सर्वव्यापी आप आपहा सब के स्वामी ।
त्रिविध ताप तन-पाप हरन उर अन्तर्यामी ॥ ८ ॥

तुअ मायावश तात रात दिन व्यर्थ गमावैं ।
विषयवासना माँहि नाँहि यद्यपि सुख पावैं ॥
दुख पावत दिन रैन चैन चित में नहिँ लावैं ।
हाय तदपि निज दोष, तोष करि नाँहि दुरावैं ॥ ९ ॥

काम क्रोध मद मोह लोभ मात्सर्य्य जिते हैं ।
मत मेरो यह अहै सहेतुक सबै तिते हैं ॥
भली भाँति सोँ ताहि यत्न करि वश में राखै ।
नहि ताके ह्वै विवश आप दुर्गति-फल चाखै ॥ १० ॥

नहि ताको व्यवहार कियो हम उचित रीति सोँ ।
यातें लहि दुख-भार हियो थररात भीति सोँ ॥
करौं कौन उपचार भार जासोँ टरि जावे ।
हिय में जगदाधार-धारणा की मति भावे ॥ ११ ॥

(क्रम क्रम से)

जनार्द्दन झा।

माननीय बदरुद्दीन तैयब जी।

इनका जन्म बम्बई में १८ वीं आक्टोबर १८४४ को हुआ था। आप के पूर्वज अरब के रहने वाले थे। लगभग तीन सौ वर्ष हुए, वे अपने देश को छोड़ कर भारतवर्ष में आये थे। पहले काम्बे में उतरे; पर अन्त को उन्हों ने अपना अड्डा सदैव के लिए बम्बई में जमाया। इनके पिता एक पढ़े लिखे धनाढ्य व्यापारी थे।

इँगलैंड, फ़्रांस, जर्मनी तथा अन्यान्य देशों से वे व्यापार किया करते थे। अतः तैयब जी के पिता को विदेशी आदमियों और उनकी चाल ढाल से परिचित होने का अच्छा मौक़ा हाथ लगा। आपको पाश्चात्य सामाजिक गुणों ने लुभा लिया। उस समय इनके सजातीय अँगरेज़ी-शिक्षा के कट्टर विरोधी थे। परन्तु आपने इस अज्ञान-जनित, एवं तुच्छ, विरोध को लात मार कर पहले पहल अपने तीन पुत्रों को अँगरेज़ी पढ़ने विलायत भेजा। उनमें एक तैयब जी भी थे। तैयब जी को स्कूल में गये थोड़े ही दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए थे कि आपकी दृष्टि बिगड़ गई। अतः इनके पिता ने इन्हें फ़्रांस भेज दिया। वहाँ आँखों का इलाज कराकर आप इँगलैंड लौट आये और पिता की अनुमति से मिडिल टेम्पल्स में क़ानून पढ़ने लगे। १८६७ में बारिस्टर होकर आप विलायत से लौटे और बम्बई-हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। प्रथम हिन्दुस्तानी बारिस्टर होने पर भी आपकी वकालत ख़ूब चटकी। यहाँ तक कि थोड़े ही समय में आप नामी वकील हो गये।

जब आपकी बारिस्टरी धड़ाके से चल निकली तब आपका ध्यान देश की दशा की तरफ़ आकर्षित हुआ। आप देशोन्नति के लिए प्रयत्न करने लगे। १८६८ में बम्बईवालों ने मैनचेस्टर से आनेवाले माल पर, ज़कात के सम्बन्ध में, पार्लियामेंट में आवेदन-पत्र भेजने के लिए सभा की। उसमें इन्होंने पहले पहल पबलिक में वक्तृता दी। लार्ड रिपन महोदय के ज़माने में, आपने इलबर्ट बिल (Illbert Bill) पर वक्तृता दी थी। उसका प्रभाव बड़ा बेढ़ब पड़ा था। १८८२ में सर जेम्स फरगुसन ने इनको प्रान्तिक कौंसिल का मेंबर नियत किया। वहाँ पर भी इन्होंने बहुत कुछ काम कर दिखाया। कांग्रेस के जन्म सेही इनका उसके साथ घना सम्बन्ध था। उसके काम में इन्होंने बड़ा उत्साह दिखाया था। १८८७ में आप तीसरी काँग्रेस के सभापति चुने गये। १८९५ में बम्बई की प्रान्तिक सरकार को दो देशी जज हाईकोर्ट में नियत करने की आवश्यकता हुई। उसने एक तो परम श्रद्धास्पद श्रीमान् महादेव गोविन्द रानड़े को इस पद पर नियत किया, दूसरे तैयब जी को। इस काम में भी आपको बड़ा यश मिला। १९०३ में आपको थोड़े समय तक चीफ़ जस्टिस का काम करने का अवसर प्राप्त हुआ। १९०५ में आप से मुसलमानों की शिक्षा-कान्फ़रेंस के सभापति होने के लिए कहा गया। इस पर आपने कहा कि यदि कान्फ़रेंस, कांग्रेस की विरुद्धता करने के लिए है, तो मैं सभापति न हूँगा। अन्त में जब उनको विश्वास दिलाया गया कि कान्फ़रेंस, कांग्रेस के विरुद्ध नहीं है, तब आपने उसके सभापति के पद को स्वीकार किया।

कुछ दिन से इनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था। इसी से आप इँगलैंड गये थे। वहीं रविवार १९ अगस्त ०६ को आपका शरीरपात हुआ। मरते समय आपने यह इच्छा प्रकट की कि अपनी पत्नी के पास गाड़े जायँ। इस कारण आपका शव विलायत से बम्बई में लाकर भूमिस्थ किया गया।

यह बड़े देश-भक्त, अँगरेज़ी-भाषा के बड़े विद्वान् और बड़े उत्साही पुरुष थे। आप मुसलमानों को सदैव यह शिक्षा देते रहे कि कांग्रेस से कभी विरोध न करो; कांग्रेस देश-हित के लिए है। आपका अनुकरण आप के मतावलम्बियों को अवश्यमेव करना चाहिए।

आपका स्वभाव बहुत शान्त था। आपके रहन ठहन के ढंग बहुत ही सीधे सादे थे। आप रोज़ पाँच दफ़े नमाज़ पढ़ते थे। आपने अपने मतावलम्बियों की दशा सुधारने का बहुत प्रयत्न किया। बम्बई का 'अन्जुमन-ए-इस्लाम' आपकी उदारता का स्मारक स्तम्भ है। आप स्त्री-शिक्षा के बड़े पक्षपाती थे। आपकी कन्यायें ख़ूब पढ़ी लिखी हैं।

वेङ्कटेशनारायण तिवारी।

विद्यारण्य।

विद्या सम्पादन करने और सृष्टि-सौन्दर्य का कौतुक देखने के लिए मैं सफ़र को निकला। मैं काशी जी में था, तब एक बार शरत्पूर्णिमा के दिन, गङ्गातट पर, एक सुन्दर मकान की छत से, सायङ्कालीन शीतल मन्द वायु से उठनेवाली सुललित लहरों की बहार देख रहा था। सुस्निग्ध मारुत-कल्लोल अपने शीतल स्पर्श से मेरे शरीर को सुखित कर रहा था। ऊपर, गगनमण्डल में, असंख्य तारागणों के मध्य, दिव्य-लावण्ययुक्त, पूर्णचन्द्र अनिर्वचनीय शोभा दे रहा था। नीचे गङ्गाजल में पड़े हुए चन्द्र और तारकाओं के प्रतिविम्ब नृत्य करते हुए से इस प्रकार मालूम होते थे मानों चन्द्रमा अपने प्रियजनों सहित जल-विहार करता है। ज्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यों निशा देवी अपना अधिकार जमाती जाती थी त्यों त्यों शहर के लोगों का कलरव मन्द होता जाता था। अन्त में वह बिलकुल ही बन्द हो गया। और दिन भर के श्रम-सन्ताप की नाशिनी निद्रा, प्राणि-मात्र के नेत्रों में आविर्भूत होकर उनका सन्तापहरण करने लगी। ऐसे समय में मैं नेत्र मूँद कर विश्व के अमर्य्यादित्व, प्रभु की अगाध-लीला, और मनुष्य-ज्ञान के संकुचितपन आदि विषयों पर विचार कर रहा था। थोड़ी ही देर में मैं भी निन्द्रावश होगया। उस निद्रावस्था में मुझको एक विचित्र स्वप्न देख पड़ा। उसे मैं पाठकों को सुनाता हूँ।

मुझे मालूम हुआ कि मैं एक विस्तीर्ण, निबिड़ अरण्य में भ्रमण कर रहा हूँ। उसकी भूमि नूतनोद्गम, कोमल, हरित, दूर्वादलों से आच्छादित है। चारों तरफ़ गगनभेदी वृक्ष खड़े हैं। ऊपर आकाश, चन्द्र और तारकावली से देदीप्यमान है। मैं सोचने लगा कि, नीचे दूर्वादलों का गलीचा है। ऊपर वृक्षरूपी स्तम्भों पर आकाशरूपी शामियाना तना हुआ है। उसमें नक्षत्र और चन्द्ररूपी दीपक जगमगा रहे हैं। अँय्! यह किसका विलास-स्थल है? मैं इस विचार से इधर उधर देखने लगा कि यहाँ कोई है भी? तो एक ओर एक स्वच्छ सरोवर के तीर पर स्तब्ध, निश्चल, गम्भीर और प्रशान्त एक रमणीय मूर्ति मुझे देख पड़ी। उसका वह अप्रतिम लावण्य, अवर्णनीय तेज और इन दोनों से शोभित उसका प्रसन्न वदन देख, मेरे मन में पूज्यभाव उत्पन्न हो आया। देखते ही मैंने उसे साष्टाङ्ग प्रणाम किया। मेरी इच्छा होती थी कि, मैं उससे सब हाल पूँछूँ; परन्तु आश्चर्य्य और आनन्द के अतिरेक के कारण मेरी वाचा स्तब्ध होगई। बोलने के लिए मैंने बहुत प्रयत्न किया; परन्तु मुँह से शब्द न निकला। मैंने अङ्गचेष्टा से अपने मन का भाव प्रकट किया। वह हँस कर बोली:—"मैंने तेरा इंगित समझ लिया। मेरा नाम 'विद्या' है, और इस वन का नाम 'विद्यारण्य' है। इस वन की शोभा देखने के लिए तू उत्सुक है। इसलिए आ; मेरे पीछे पीछे चल; और खूब तृप्त होकर देख ले"।

दोनों ओर की वृक्षश्रेणी में वनश्री की शोभा अवलोकन करता हुआ मैं विद्यादेवी के पीछे पीछे चला। वहाँ की शोभा देखकर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ; और उन वृक्षों के विषय में सब बातें जानने के लिए मुझे उत्कण्ठा हुई। मेरी उत्कण्ठा देखकर वह बोली—"इस विद्यारण्य में अति भाग्यवान् पुरुष ही प्रवेश कर सकते हैं, और उनको भी इन वृक्षों के फल प्राप्त करने के लिए बहुत प्रयास करना पड़ता है। फलों के प्राप्त करने का सौभाग्य सब को नहीं मिलता। बहुत मनुष्य इस वन में आकर, इन वृक्षों की उँचाई देखकर ही, फल-प्राप्ति से निराश होकर लौट जाते हैं। कोई कोई बड़े उत्साह के साथ वृक्षों पर चढ़ते हैं; परन्तु आधीही दूर जाकर थक जाते हैं। आगे नहीं बढ़ सकते। जो लोग विशेष यत्नशील और दृढ़-निश्चय होते हैं, उन्हींके हाथ ये फल लगते हैं। ये फल इतने मधुर हैं कि जिसने एक बार चक्खा वह इनका स्वाद और रुचि फिर कभी नहीं भूल सकता। अब इन वृक्षों में से जो जो मुख्य हैं उनकी कथा मैं तुझसे कहती हूँ"।

"वह सामने का मनोहर वृक्ष देख। उसकी शाखायें पुष्पभार से कैसी नम्र हो गई हैं। उसके स्कन्ध से सुधामय मधुधारा प्रवाहित है। रसज्ञ भृङ्गों के पुंज के पुंज उसके चारों ओर घिरे हुए किस प्रकार गूँज रहे हैं। देख, अलङ्कृतिरूपिणी लताओं से वेष्टित होकर वह कैसी अपूर्व शोभा दे रहा है! इस वृक्ष का नाम है "काव्यतरु"।

"अब उसके दूसरी ओर जो अति प्राचीन, जीर्ण तथापि तेजस्वी वृक्ष है उसको देख। उस पर एक ही दो भृङ्ग हैं; परन्तु वे किस प्रकार उस वृक्ष के मधुपान में ग़र्क़ हैं। उसका नाम है "ज्योतिष"।

विद्या देवी के ऐसे वाक्य सुनकर उस वृक्ष के पास जाने की मेरी इच्छा हुई। उसके पास जाते ही मुझे एक विलक्षण चमत्कार देख पड़ा। इस ज्योतिष वृक्ष का मूल ज़मीन में न था। वह एक दूसरे ही प्राचीन, परन्तु डहडहे और बलवान्, वृक्ष के स्कन्ध पर उगा हुआ था। यह गूढ़ रहस्य देख कर मैंने विद्यादेवी से इसका कारण पूछा। वे बोलीं:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह दूसरा प्राचीन, परन्तु डहडहा और सारवान्, वृक्ष है। इसका नाम "गणित" है। इस वृक्ष पर ज्योतिष के समान और भी कितनेही वृक्ष उगे हैं। तथापि वह ज़रा भी वक्र, निर्बल या निःसार नहीं हुआ। अभी क्या, और भी कितने ही चमत्कार तुझे देख पड़ेंगे। आगे चल"।

धीरोदात्त गति से पैर रखती हुई वह आगे बढ़ीं। मैं भी उनके पीछे पीछे आश्चर्य्य में मग्न होता हुआ चला। कुछ दूर चलकर वे पीछे फिर कर कहने लगीं :—

"भिन्न भिन्न देशों में होने वाले बहुत से वृक्ष और लतायें यहाँ लाई गई हैं। 'ज्योतिष' और 'गणित', ये दो वृक्ष हिन्दुस्थानही के हैं। परदेशी लोग इन दो वृक्षों की क़लमें अपने अपने देश में ले गये हैं। इनके सिवा दर्शन-शास्त्र आदि वृक्षों की क़लमें वे लोग अब भी लेते रहते हैं। परन्तु दो एक को छोड़ अन्य स्वदेशीय लोग इन वृक्षों की ओर कभी झाँकते भी नहीं। इस कारण इन वृक्षों के फल पक कर नीचे गिर पड़ते हैं और वहीं पड़े पड़े सड़ गल जाते हैं! धिक्कार है ऐसे स्वदेशद्रोहियों को!"

तदनन्तर विद्यादेवी ने श्रुति, स्मृति, पुराण आदि के वृक्ष दिखलाये। बहुत वर्षों से पानी न मिलने के कारण वे शुष्क हो चले थे; पत्ते गल कर गिर पड़े थे; कीड़ों ने उनके भीतर घुस कर घर बना लिये थे। उनकी ऐसी शोचनीय दशा देख मुझे अत्यन्त खेद और दुःख हुआ। 'शास्त्र' नाम के वृक्षों की ओर जो मैंने ध्यान से देखा तो उनके नीचे बैठे हुए कई मनुष्य मुझे देख पड़े। मैंने समझा ये लोग इनकी रक्षा कर रहे होंगे। इस से मेरे मन में कुछ आशा का संचार हुआ। परन्तु ज्यों ज्यों मैं उनके निकट गया त्यों त्यों मुझे सन्ताप होने लगा। क्योंकि ये लोग उन वृक्षों की रक्षा तो करते न थे; किन्तु इस के प्रतिकूल, वे आपस में लड़ते भिड़ते हुए उनकी शाखाओं को छिन्न भिन्न कर रहे थे। यह देख मैंने विद्या देवी से पूछा कि ये झगड़ालू लोग इन वृक्षों को ऐसी दुर्दशा क्योंकर रहे हैं? वे बोलीं :—

"ये लोग दंभ, अभिमान, ईर्ष्या और स्वार्थ आदि मादक पदार्थ पान करके बेहोश हो गये हैं। इस कारण ऐसा नीच कर्म्म करते हैं। यह देख मुझे बहुत ही मर्म्मवेधक दुःख होता। इनको सुमार्ग पर लाने के लिए आज तक मैंने बहुत प्रयत्न किये; पर सब व्यर्थ गये। मनुष्यों के दुष्ट स्वभाव मरने पर ही जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं।"

इसके बाद मैंने रसायन, शारीर, चिकित्सा आदि और बहुत से छोटे बड़े वृक्ष देखे। इनको देख कर मुझे विशेष सन्तोष हुआ। जिसके कृपा-प्रसाद से आज मुझको यह अनुपम विद्यारण्य अवलोकन करने को मिला उस विद्या देवी के विषय में, मेरे मन में, पूज्य भाव दूना हो गया। मैं श्रद्धाभक्ति-पूर्वक बोला—"देवि! मुझे आज जो यह अनुपम सुख हुआ है, सो सब तुम्हारेही कृपा का फल है। अखिल भूमंडल में इसके सदृश रमणीय और निर्मल सुख का स्थान और कहीं न होगा। इसमें मुझे पूर्ण विश्वास है। तुम में शुद्ध प्रेम रखकर, एक निष्ठा से तुम्हारी सेवा करने वाले पुरुष वास्तव में धन्य हैं। इस सुखद अरण्य में अति भाग्यशाली पुरुषों के सिवा और किसी को आने का अधिकार नहीं।"

मैं और भी कुछ कहने वाला था कि विद्या देवी खिन्नवदन होकर बोलीं—"तू वास्तव में सत्य कहता है; पुरातन काल में बात ऐसी ही थी। परन्तु, हाय! अब लोगों ने मेरे इस वन की कैसी विडम्बना की है! कहाँ तो पूर्वकाल के परोपकार-रत, तत्त्वदर्शी, अध्ययनशील, एकनिष्ठ, पुण्यप्रतापी, आचार्य्य और गुरु-सेवा-परायण, भक्ति-भाव-पूर्ण, ब्रह्मचर्य्यव्रतधारी उनके सच्छिष्य! और कहाँ आजकल के वृथाभिमानी, दम्भपूर्ण, शान्तिशून्य, श्लाघाभोजी, चौर-कार्य्यरत, गर्विष्ठ गुरु, और वैसे ही उनके शिष्य! दुःख के बाद सुख का और सुख के बाद दुःख का आना संसार का नियम है। आजकल तो लाख में दोही चार मेरे निष्ठायुक्त भक्त पाये जाते हैं।"

हम दोनों परस्पर इसी प्रकार सुख दुख की बातें कर रहे थे कि इतने में एक प्रचण्ड राक्षस, अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थूल शरीर अधिकाधिक लम्बायमान करता हुआ, मुझे देख पड़ा। धीरे धीरे वह इतना दीर्घकाय हो गया कि मुझे सम्पूर्ण जगत् उसके उदर में जाता हुआ देख पड़ने लगा। मैं चकरा गया; परन्तु डरा नहीं। क्योंकि इस राक्षस का रूप डरावना नहीं था। उस की मुद्रा मोहक थी। इससे उसे देखते ही उसके पास जाने की इच्छा होती थी। सारे संसार को पेट में रखकर भी, वह क्षुधा से व्याकुल सा हो रहा था! इसका नाम विद्यादेवी ने मुझे "लोभ" बतलाया। इसके बाद छोटे बड़े और भी अनेक पिशाच उन वृक्षों को विध्वंस करते हुए मुझे देख पड़े। उनकी चेष्टा देख कर मेरा मन उद्विग्न हो उठा। मैं विद्यादेवी के पीछे चुपके चुपके चला। इतने में वे पिशाच मेरे पास आ पहुँचे और अपने अस्थिचर्मावशिष्ट हाथों की उँगलियों से मुझे खुरचने लगे। अब मैं भयभीत हुआ। मेरा यह हाल देखकर विद्यादेवी ने मेरे लिए "धैर्य्य" और "तितिक्षा" ये दो रक्षक दिये। तब मैं आगे बढ़ा और एक रम्य पर्वत के निकट पहुँचा। इस पर्वत पर चढ़ने के मार्ग पर, सामनेही, एक ओर एक दृढ़व्रता और सुशीला स्त्री और दूसरी ओर एक ऐसा ही पुरुष, खड़े थे। जो पथिक उस पर्वत पर चढ़ने की इच्छा करके आते, उनको ये दोनों आदर-सत्कार-पूर्वक सुगम मार्ग बतलाने का काम करते थे। स्त्री का नाम "श्रद्धा" और पुरुष का नाम "यत्न" था। इस पर्वत पर चढ़ना बहुत कठिन था। मैंने सोचा कि कुछ दूर चढ़ कर, फिर थोड़ी देर विश्राम करके, तब चढ़ूँगा। मेरे इस विचार को विद्यादेवी अपनी दिव्य-ज्ञान-शक्ति से समझ गईं। वे बोलीं—"छिः छिः, तेरा यह विचार ठीक नहीं। इस पर्वत पर चढ़ने में आधे मार्ग पर जो विश्राम लेता है वह फिसला हुआ समझा जाता है। यदि इस पर चढ़ना ही है तो दृढ़ निश्चय करके सीधे शिखर पर ही पहुँचना चाहिए। नहीं तो नीचे ही रहना अच्छा है। बीच में ठहरने का स्थान ही नहीं। इसलिए तू सावधानता-पूर्वक, दृढ़ता से पैर रख; नहीं तो नीचे फिसल आयेगा।"

विद्यादेवी का यह प्रेम-पूरित और हितकर उपदेश सुन मुझे धैर्य्य हुआ और मैं दृढ़ता से पैर रखने लगा।

उस धर्माचल नामक पर्वत के ऊपर पहुँचने पर जो अनिर्वचनीय और अनुपम सुख का मुझे अनुभव हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वहाँ पर शीतल मन्द वायु के स्पर्श से शरीर में रोमाञ्च हो आया। द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, इत्यादि दुष्ट मनोविकारों की पाश में बँधा हुआ मन अब स्वतन्त्र हो गया। आनन्द और आरोग्य की वहाँ विपुलता थी। वहाँ से कुछही अन्तर पर एक स्वच्छोदक रम्य सरोवर था। उसके निकट कई लावण्यलतिका सुन्दरियाँ स्वच्छन्द विहार कर रही थीं। उनका मुख प्रफुल्ल और स्वभाव सरल तथा वात्सल्यपूर्ण देख पड़ता था। ये नागकन्यायें हैं अथवा देवकन्यायें हैं? मैं यह सोच ही रहा था कि विद्यादेवी मेरे मन का भाव जान कर बोलीं:—

"तेरे मन में आई हुई कल्पना बिलकुल ठीक है। ये रमणियाँ मृत्युलोक की नहीं। इस धर्माचल ही पर इनका निवास-स्थान है। दया, भक्ति, क्षमा, शाँति, अहिंसा इत्यादि इनके नाम हैं। इस पर्वत पर जो भाग्यवान् पुरुष आकर वास करते हैं उनकी सेवा शुश्रूषा में ये तत्पर रहती हैं। जो इस सरोवर में स्नान करते हैं उनके शरीर स्वच्छ और मन स्निग्ध और जीवन पवित्र हो जाते हैं।"

इस प्रकार विद्यादेवी के कहने पर उस सरोवर में स्नान करने की मुझे उत्कण्ठा हुई। विद्यादेवी की सम्मति से मैं उस सरोवर में स्नान करने लगा। उस समय मुझे जो आनन्द हुआ वह अवर्णनीय है। मुझे अनुभव होने लगा कि मैं जल-सरोवर में नहीं किन्तु आनन्दसरोवर ही में ग़ोता लगा रहा हूँ!

इतने में बारह बजने का घंटा हुआ। मेरी निद्रा भंग हुई। नेत्र खोल कर देखता हूँ तो न अरण्य है, न पर्वत है, न सरोवर है, न कुछ है! भागीरथी के सुरम्य तट पर मैं उसी मकान में पड़ा हूँ।

लक्ष्मीधर वाजपेयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-जाति के उन्नायक सिद्धान्त।

बर्बैंक साहब के नाम से सरस्वती के पाठक परिचित होंगे। आप वनस्पति-विद्या के धुरंधर विद्वान् हैं। आपने, अपने अलौकिक चातुर्य्य से, पेड़ों, फलों और फूलों में नये नये आविष्कार करके बड़ी नामवरी प्राप्त की है। आपके नये करिश्मों के कुछ नमूने जनवरी ०७ की सरस्वती में, वनस्पति-सम्बन्धी एक लेख में, छप चुके हैं। अब आपका ध्यान मानव-जाति के सुधार की ओर भी झुका है। आप कहते हैं कि पेड़ों की तरह मनुष्यों में भी बहुत कुछ सुधार और उन्नति हो सकती है। आपकी राय है कि मनुष्य कुरूप से सुरूपवान्, वामन से दीर्घकाय, मूर्ख से महापण्डित, एवं भीरु से निर्भीक और साहसी बनाया जा सकता है। आपके मानव-जाति के उन्नायक सिद्धान्तों का सारांश सुनिए।

बरबैंक साहब का सिद्धान्त है कि जिस तरह बहुत से बीजों के संमिश्रण से पेड़ की उन्नति होती है उसी तरह बहुत से उत्तम मनुष्यों के योग से मानव-जाति की भी समुन्नति हो सकती है।

वह देश कभी उन्नति नहीं कर सकता जो सदा अपने ही देश या अपनी ही जाति में ब्याह-शादी करता रहता है। क्योंकि एकही देश में सर्वगुण-सम्पन्न मनुष्य नहीं मिल सकते। कोई देश किसी गुण में विख्यात होता है और कोई किसी में। इसलिए सब देशवालों को परस्पर शादी-ब्याह करने की प्रथा जारी कर देनी चाहिए। ऐसा करने से देश की बहुत कुछ उन्नति हो सकती है।

जिन लोगों की ब्याह-शादी का दायरा बहुत ही छोटा है, वे बेचारे भला क्यों न फिर दिनों दिन कमज़ोर, कम अक़्ल और छोटे क़द के हो जायँ? बरबैंक साहब के सिद्धान्तों के अनुसार उनका अधःपतन होनाहीं चाहिए।

बरबैंक साहब कहते हैं कि अमेरिकावालों ने इसी सिद्धान्त के अनुसार अपनी उन्नति की है। वे अन्य देशवालों के साथ सम्बन्ध कर लेते हैं। इसी कारण आजकल अमेरिका में विविध विद्याविशारद मनुष्यों की भरमार है। इसी लिए वे लोग औरों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् और तेजस्वी हैं।

बरबैंक साहब की राय है कि दुर्बल और निर्गुण मनुष्यों को शादी ही नहीं करनी चाहिए। क्योंकि उनकी सन्तान उनसे भी निर्बल होगी और उनको उनसे भी निर्बल। विवाह उन्हीं का होना चाहिए जो बलिष्ठ और गुणाढ्य हों।

नये पौधों की तरह, बच्चों के पालन-पोषण में भी बड़ी सावधानी दरकार है। जिस तरह स्वच्छ वायु और धूप से पौधों को लाभ पहुँचता है उसी तरह शिशु को भी स्वच्छ वायु और धूप की बड़ी ज़रूरत है। उनके न मिलने से जैसे पौधा मुरझा जाता है उसी तरह शिशु के कोमलाङ्ग भी संकुचित हो जाते हैं। इसलिए बालकों को सदा ऐसी जगह में रखना चाहिए जहाँ स्वच्छ वायु और धूप की कमी न हो।

जिस तरह पौधा अपने चारों ओर के वृक्षों के गुणों का अपकर्ष करता है इसी तरह शिशु पर भी स्वजनों के गुणों का पूरा पूरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए उसके माता, पिता और इतर जनों को उचित है कि वे बालक के साथ कोई ऐसी बुरी चेष्टा न करें जिसका उस पर बुरा प्रभाव पड़े। उनको कभी बच्चों से झूँठ नहीं बोलना चाहिए और न कभी छल करना चाहिए। माता, पिता आदि जनों को हँसमुख देख कर बालक का स्वभाव भी हँसमुख हो सकता है।

बालक को कभी भय न दिखाना चाहिए। उसको डराना, धमकाना, रुलाना और बात बात में दुखी करना भी बड़ी हानि पहुँचाता है।

जहाँ तक हो, बालक को सदा प्रसन्नचित्त ही रखना चाहिए। उसके खेलने के लिए उसे सुन्दर सुन्दर खिलौने और तसवीरें देनी चाहिएँ। ऐसा करने से बालक का हौसला बढ़ जाता है और उसका दिमाग़ भी तेज़ हो जाता है। सदा ख़ुश रहने से बालक की जाठराग्नि तेज़ रहती है और वह बलिष्ठ हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरबैंक साहब की राय है कि दस बरस तक बालक को पढ़ाना नहीं चाहिए। वे कहते हैं कि दस बरस तक बालक को किताब का दर्शन भी नहीं कराना चाहिए। दस बरस तक उसे प्राकृतिक दृश्य दिखाना बड़ा लाभदायक है। छोटी उम्र में पढ़ाने से उसका दिमाग़, उसका शारीरिक बल और उसकी पाचन-शक्ति कम हो जाती है। यही नहीं बल्कि पाठशाला के रुद्ध वायु से उसकी तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है। पाठशाला में अच्छे बुरे सभी तरह के बालक पढ़ा करते हैं। इस कारण उसकी कोमल प्रकृति पर उनकी बुरी आदतों का भी प्रभाव पड़ जाने की शङ्का रहती है।

बरबैंक साहब कहते हैं कि स्कूलों में सब को समान शिक्षा देना भी ठीक नहीं। क्योंकि सब लड़कों की प्रकृति भिन्न भिन्न होती है। इसलिए उनको उनकी प्रकृति के अनुसार ही शिक्षा देनी चाहिए। एक ही प्रकार की शिक्षा देने से उनकी स्वाभाविक शक्ति—उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति—सर्वथा विभ्रष्ट हो जाती है। इसलिए समान शिक्षा देकर उनकी प्राकृतिक शक्ति का विघात करना भी मानव-जाति की उन्नति में बहुत हानिकारक है।

यदि बरबैंक साहब के नियमानुसार हमारे पंजाबी और बंगाली भाई आपस में सम्बन्ध करने लगें तो हमारे देश में भी एक नये प्रकार के लोगों की सृष्टि हो। बंगालियों में, आपसही में ब्याह-शादी करते रहने से शारीरिक बल की वृद्धि होने की आशा कम है। इसी तरह पंजाबियों में भी, जब तक वे बंगालियों से सम्बन्ध न करने लगें तब तक, मानसिक बल की यथेष्ट वृद्धि नहीं हो सकती। इसलिए यदि बंगालियों और पंजाबियों का मिश्रण हो जाय तो बरबैंक साहब के सिद्धान्त की परीक्षा का फल हम लोगों को भी देखने को मिल जाय। ख़ुशी की बात है, इसका सूत्रपात होगया है।

रामजीलाल शर्म्मा।

मनोरञ्जक श्लोक।

सुख-समृद्धि के समय अपने पुराने समदुःखी साथियों को भूल जानेवाले, कृतघ्न पुरुषों के ध्यान योग्य, एक कवि की, विचित्र उत्प्रेक्षागर्भित अन्योक्ति—

तत्तेजस्तरुणे निदाघसमये तद्वारि मेघागमे,
तज्जाड्यं शिशिरे मदेकशरणैः सोढं पुरा यैर्दलैः।
आयातोऽप्यधुना फलस्य समयः कोयं विना तैरिति,
स्मृत्वातानि शुचेव रोदिति गलत्पुष्पैर्मधूकद्रुमः॥

गर्मियों के दिनों में वह सख़्त धूप, बरसात में मूसलाधार पानी और जाड़ों में वह बर्फ़वाली शीत—इन्हें, जिन पत्तों ने मेरे साथ रहते हुए सहन किया और मेरा साथ न छोड़ा, अब, उनके बिना यह फल का समय आया भी तो क्या आया! इस प्रकार उन दुःख के साथी पत्तों को याद करता हुआ, शोक से, फूलों के आँसू गिरा कर, मधूकद्रुम (महुवे का पेड़) रो सा रहा है!!

फूलने फलने के समय महुवे के पेड़ का बिलकुल पतझड़ हो जाता है।

पद्मसिंह शर्म्मा।

❋

एक बार एक रामानुजी महाशय, किसी वेदान्ती से मिले। वेदान्ती ने पूछा—"को भवान्"—आप कौन हैं? उन्होंने उत्तर दिया—"दासोऽहम्"।

फिर उन्होंने वेदान्ती से पूछा कि आप कौन हैं? वेदान्ती ने जवाब दिया :—

दासोहऽमिति मे बुद्धिः प्रागासीत् परमात्मनि।
दाकारोऽपहृतस्तेन गोपीवस्त्रापहारिणा॥

अर्थात्—पहले, परमात्मा में "दासोऽहं" यह बुद्धि मेरी भी थी; पर उस गोपियों के वस्त्र छीनने वाले ने "दाकार" को भी छीन लिया। अर्थात् 'सोऽहम्' इस प्रकार अब मेरी अभेद-वासना हो गई है।

भीमसेन शर्म्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती।

भाग ८] मई, १९०७ [संख्या ५

विविध विषय।

डाक्टर स्टीन ने पुरातन इतिहास और पुरातन पदार्थों की खोज में बड़ा नाम पाया है। मध्य एशिया में परिभ्रमण करके आपने अनेक पुरानी बातों का पता लगाया है। तुर्किस्तान के खंडहर खोद खोद कर १७०० वर्ष की पुरानी बस्ती के चिन्ह आपने ढूँढ़ निकाले हैं। खोटन प्रान्त में एक शहर निया नाम का था। उसे उजड़े बहुत समय हो गया। वहाँ लकड़ी के तख़्तों पर, खरोष्ठी लिपि में खुदे हुए कितने ही लेख आपने ज़मीन के गर्भ से खोद निकाले हैं। इन लेखों की भाषा शुरू शुरू की प्राकृत है। इन से सिद्ध होता है कि कोई ४००० वर्ष हुए जब आर्य्य लोग खोटन प्रदेश को अपने कब्ज़े में करके वहाँ रहने लग गये थे। निया से कुछ और थोड़ा पूर्व, एनडेर में, डाक्टर स्टीन को काग़ज़ पर लिखे हुए ग्रन्थ भी मिले हैं। इनमें से कुछ ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं। १६०० वर्ष हुए जब संस्कृत-भाषा का प्रचार तुर्किस्तान में हो गया था। एनडेर के आगे भारतवर्ष की पुरानी विद्या और सभ्यता का पता नहीं चलता। वहाँ से चीन की सभ्यता के चिन्ह मिलने लगते हैं। इन बातों से स्पष्ट है कि एक समय था जब इस देश की प्रभुता का प्रसार जावा द्वीप से खोटन तक और अफ़ग़ानिस्तान से स्याम तक था।

* * *

किसी किसी असभ्य देश में अभागे अपराधियों की खाल जीते जी खींची जाती है। सुनते हैं शाही ज़माने में इस देश में भी कभी कभी खाल खींची जाने का दण्ड दिया जाता था। यह असभ्य देशों की बात हुई। सभ्य देश वाले जीते जो नहीं, मरने पर, आदमी की खाल खींचने की फ़िक्र में हैं। अमेरिका वालों को आदमी का नरम नरम चमड़ा देख कर उसके बैग, बूट, स्लीपर, काठी आदि बनाने की सूझी है। कुछ डाकूरों और अमीरों ने नरचर्म्म की कुछ चीज़ें बनवाई भी हैं। पर आदमी का चमड़ा मुशकिल से मिलता है, इसलिए चीज़ें बहुत महँगी पड़ती हैं। फ़िलाडेलफ़िया में विलियम हैन्सेल चमड़े का कारोबार करते हैं। आपको किसी तरह नरचर्म्म मिल गया। उसकी आपने काठी बनवाई है। बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़ूबसूरत और बहुत चिकनी हुई है। उसका चित्र, एक अमेरिका के पत्र ने छापा है। देखकर कोई नहीं कह सकता कि यह आदमी के चमड़े की है। उसके बनाने में एक आदमी का पूरा चमड़ा लग गया है। जिस कारीगर को काठी बनाने के लिए चमड़ा दिया गया था उसे जब मालूम हो गया कि यह आदमी का चमड़ा है तब उसने उसे छूने से इनकार कर दिया। इसपर हैन्सेल साहब ने दूसरे कारीगर से उसे बनवाया; पर उसे चमड़े की क़िस्म नहीं बतलाई। इससे उसने मामूली चमड़ा जानकर बना दिया। नहीं तो शायद वह भी न बनाता। चमड़े के सभ्य रोज़गारी अब तक मुर्दों की खाल खिँचवाने का कुछ न कुछ प्रबन्ध कर लेते। पर मुशकिल यह है कि उन बेचारों को कारीगर नहीं मिलते और आदमी के चमड़े की चीज़ों का व्यवहार करने से लोग अभी हिचकते हैं। सभ्यता की वृद्धि के साथ यह हिचकिचाहट भी दूर हो जायगी। आदमी का चमड़ा उसी तरह कमाया जाता है जैसे जानवरों का। औरतों का चमड़ा मर्दों के चमड़े से अधिक नरम होता है।

* * *

फ़्रांसवालों ने आकाशविहारियों के लिए एक बहुत बड़ा इनाम नियत किया है। इनाम की रक़म है डेढ़ लाख रुपये! जो व्योमविहारी फरासीसी नमूने के आकाशयान में बैठकर पेरिस से लन्दन तक जा सकेगा उसे ही यह इनाम मिलेगा। उड्डान का दिन नियत किया गया है १४ जुलाई १९०८। पेरिस से लन्दन २१२ मील है। इस दूरी को २४ घंटे में तै करना चाहिए। जो मनुष्य सबसे पहले लन्दन पहुँच जायगा वही इनाम पाने का मुस्तहक़ होगा। इनाम की आशा से आकाशविहारी लोग अभी से बड़ी बड़ी तैयारियाँ कर रहे हैं और आकाशयानों में तरह तरह की उन्नतियाँ करने में मग्न हो रहे हैं। जिस कार्य्य के लिए लोगों में इतना उत्साह है उसे सिद्ध समझिए।

* * *

अभी तक बिना तार के तारबर्क़ी ही का काम होता था, अब बिना तार के टेलिफ़ोन भी चलेगा। पेरिस के एक वैज्ञानिक ने दो खंभे गाड़ कर और उन्हीं खंभों में "बैटरी" लगा कर बिना तार के ही बात चीत करने की तरकीब निकाली है। अभी उसने एक खंभा अपने बाग़ में गाड़ा है, दूसरा अपने मकान के पास। खंभों पर तार नहीं चढ़ाया। उनके बीच में कई दीवारें और कमरे हैं। परन्तु एक खंभे पर लगे हुए यंत्र में जो कोई कुछ कहता है वह दूसरे खंभे के पास वाला आदमी, उसमें लगे हुए चोंगे को कान में लगाकर अच्छी तरह सुन सकता है। "बैटरी" जितनी ही अधिक ज़ोरदार करदी जायगी उतनी ही दूर तक आवाज़ जायगी। इस प्रकार के टेलिफ़ोन से बड़ा लाभ होगा और ख़र्च में बेहद बचत होगी। आशा की जाती है कि बहुत जल्द इसका प्रचार होगा।

* * *

योरप वाले अजीब अजीब कलें बनाते जाते हैं। वहाँ अब ऐसी कलें बन गई हैं जो अख़बार, पोस्टकार्ड, लिफ़ाफ़े और डाक के टिकट बेचती हैं। उनके भीतर ये चीज़ें भरी रहती हैं। मोल लेने वाले ने जहाँ क़ीमत भीतर डाली कि उसकी अपेक्षित चीज़ बाहर निकल आई। कल्पना कीजिए कि आपको पैसे वाले कार्ड चाहिएँ। बस आप एक एक पैसा डालते जाइए और एक एक पोस्टकार्ड लेते जाइए। कलोंके पास आदमी रहने की कोई ज़रूरत नहीं। जरमनी की गवर्नमेंट लिफ़ाफ़े, पोस्टकार्ड और टिकिट बेचनेवाली इस तरह की ४० हज़ार कलें मोल लेना चाहती है। उनके लिए उसने नोटिस दी है। आशा है बहुत शीघ्र ये कलें उसे मिल जायँ। मिलने पर एक एक कल एक एक डाकख़ाने में रख दी जायगी। वही स्टाम्प बेचा करेगी। मरे बेचारे स्टाम्प-फ़रोश!

* * *

पाठकों ने अख़बारों में पढ़ा होगा कि तारबर्क़ी के द्वारा अब फ़ोटोग्राफ़ चित्र एक जगह से दूसरी जगह-सैकड़ों कोस दूर-भेजे जासकेंगे। इस आश्चर्य्यजनक बात के आविष्कर्त्ता जर्मनी के अन्तर्गत म्यूनिच नगर के निवासी अध्यापक कार्न हैं। उन्होंने एक अजीब यंत्र बनाया है। उसके द्वारा, सेलीनियम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामक एक रसायन के प्रयोग से, बड़े बड़े चित्र वे दोही चार मिनट में, जहाँ कहिए, भेज देते हैं। जैसा चित्र उन्हें दिया जाता है वैसाही दूसरी जगह तैयार हो जाता है। जर्मनी के युवराज का चित्र उन्हों ने ११०० मील दूर भेज कर जर्मन-नरेश को चकित कर दिया है। जर्मन-नरेश, क़ैसर महाराज, अध्यापक कार्न की चित्र-प्रेषण-प्रणाली की कामयाबी पर बहुत प्रसन्न हैं। अब अपराधियों को पकड़ने में बड़ा सुभीता होगा। कोई चोर, डाकू, हत्यारा, या बाग़ी यदि भगेगा तो उसका चित्र तार द्वारा सब कहीं भेज दिया जायगा। इस तरह वह फ़ौरन पकड़ जायगा। सचित्र पत्रों और पुस्तकों में प्रकाशित होने के लिए अब ताज़े ताज़े चित्र मिला करेंगे। फ़्राँस के एक सचित्र पत्र के मालिकों ने १९०९ ईसवी तक कार्न की प्रणाली से चित्र मँगाने का ठेका भी ले लिया। इँगलैंड और जर्मनीवाले भी इसका प्रबन्ध कर रहे हैं।

* * *

आत्मा को भारतवर्ष के दार्शनिक विद्वानों ने द्रव्य माना है। इस बात को योरप और अमेरिका के भी विद्वान् अब मानने लगे हैं। अमेरिका के डाक्टर डंकने मैक्डोगल इन्हीं में से हैं। आप आत्मा का वज़न जान लेने को बहुत दिनों से फ़िक्र में थे। अब सुनते हैं उन्हें इस बात में कामयाबी हुई है। उन्होंने बहुत बरसों के परिश्रम और खोज के बाद आत्मा का वज़न १ आउन्स, अर्थात् आधी छटाँक, निश्चित किया है। जैसे स्टेशनों पर माल तौलने के काँटे होते हैं वैसेही चबूतरेदार तराज़ू पर अनेक म्रियमाण आदमियों को लेटाकर उन्होंने उनको तौला है। मरने के पहले उनका जो वज़न था, दम निकलते ही वह एक आउन्स कम हो गया। मरने के बाद शरीर में और कारणों से जो कमीबेशी होती है उसे घटाकर यह वज़न उन्होंने निश्चित किया है। डाक्टर साहब की तराज़ू बहुत बढ़िया है। एक बाल तक का वज़न उससे मालूम हो सकता है। अभी आपकी खोज पूरी नहीं हुई; पर उसका नतीजा बीचही में लोगों को मालूम हो गया। इससे अमेरिका के समाचारपत्रों में इस विषय का वाद-विवाद बड़ी सरगरमी से शुरू हो गया है। आत्मा का अस्तित्व मान लिया गया; उसका अविनाशित्व मान लिया गया; अब उसका वज़न भी दरियाफ़्त कर लिया गया! देखें आगे ये लोग और क्या करते हैं।

* * *

हर साल, हर प्रान्त की गवर्नमेंट, राज्यशासन-विषयक एक रिपोर्ट प्रकाशित करती है। हमारे प्रान्तों की १९०५-०६ की रिपोर्ट हमें मार्च ०७ के अख़ीर में मिली। उससे मालूम हुआ कि जिस साल की यह रिपोर्ट है उस साल इन प्रान्तों में सब मिलाकर १४८१ पुस्तकें निकलीं—अर्थात् उसके पहले साल की अपेक्षा ७ फ़ी सदी कम। इनमें से ११०० नई थीं, ३२० पुरानी पुस्तकों के नये संस्करण थे, और ६१ अनुवाद थे। कितनी किस भाषा में, और कितनी किस विषय की थीं, सो भी सुन लीजिए :—

हिन्दी	५१७	कविता	३८०
उर्दू	३८६	धर्म्म	२६७
संस्कृत	८८	भाषा	१९०
अँगरेज़ी	८२	क़िस्से-कहानी	९५
फ़ारसी	३२	दर्शन-शास्त्र	८१
अरबी	२७	विज्ञान	८०
अन्यान्य ५ भाषाओं में	३४१	वैद्यक	५२
		फुटकर विषय	३३६

गवर्नमेंट की शिकायत है कि कोई अच्छी किताबें नहीं निकलीं। उपन्यासों के विषय में लिखा है कि वे बहुधा कुरुचिपूर्ण हैं; फ़िज़ूल बातों से भरे हुए हैं; भ्रष्ट हैं। मालूम नहीं हिन्दी की इन ५१७ पुस्तकों में क्या क्या है? काशी की सभा शायद अपने भवन में इसका हिसाब रखती हो!

सब मिलाकर १५१ अख़बार इस साल जारी थे। ३६ नये निकले—२० उर्दू में, १० हिन्दी में, १ संस्कृत में, १ अँगरेज़ी-बँगला में, ४ अँगरेज़ी में। ७ पुराने और ४ नये अख़बारों का निकलना बन्द हुआ। अँगरेज़ी अख़बारों और मासिक पुस्तकों में हिन्दू-कालेज मैगज़ीन और हिन्दुस्तान रिव्यू का प्रचार औरों से अधिक रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक प्रचारवाले अख़बारों में पायनियर अपना नाम न देखकर शायद कुढ़ा हो। उर्दू में आर्य्यपत्र (बरेली), सदुपकारी (बरेली) और हिन्दुस्तानी (लखनऊ) का प्रचार अधिक रहा। हिन्दी में आठ पत्र और पत्रिकाओं का। उनमें से निगमागम-चन्द्रिका का नाम सबसे पहले आया है। इन्हीं आठ में सरस्वती भी है।

***

पाठक, पण्डित गिरिधर शर्म्मा से अवश्य ही परिचित हैं। आपकी अनेक सरस और सुन्दर कवितायें सरस्वती में निकल चुकी हैं। आपने "विद्या-भास्कर" नाम का एक मासिक पत्र झालरापाटन से निकालना शुरू किया है। इसकी तीन चार संख्यायें निकल चुकी हैं। प्रति संख्या में कोई २४ पृष्ठ रहते हैं। आकार श्रीराघवेन्द्र का ऐसा है। वार्षिक मूल्य २) रुपये हैं। इसमें विशेष करके विद्या और विज्ञान सम्बन्धी लेख रहते हैं। यह कविता और "सुभाषित" श्लोकों से भी अलङ्कृत होता है। इसके लेख उपयोगी और मनोहर होते हैं। छपाई और काग़ज़ सब उत्तम है। राजपूताने में यही एक मासिक पत्र है। हिन्दी के प्रेमियों को इसकी एक नमूने की कापी तो ज़रूरही देखनी चाहिए। पसन्द आवे तो लें, न पसन्द आवे न लें।

***

उर्दू में मख़ज़न नाम की एक मासिक पुस्तक लाहौर से निकलती है। अच्छी पुस्तक है। अच्छे अच्छे लेख रहते हैं। शैख़ अब्दुलक़ादिर, बी० ए०, इसके सम्पादक हैं। इसकी फ़रवरी ०७ की संख्या में "हज़रते दिल को सवानह-उमरी" (जीवनचरित) नामक एक लेख छपा है। इस सवानह-उमरी को सैयद सज्जाद हैदर, बी० ए०, ने बग़दाद से लिखा है। यह पढ़ने लायक़ है। किनके? जो सहृदय हैं, रसिक हैं, काव्य-प्रेमी हैं उनके। लेख गद्य में है, पर पूरी कविता है। यद्यपि इसमें शृङ्गारिक भावही प्रधान है, तथापि सहृदय जन इसे पढ़कर अलौकिक आनन्द प्राप्त किये बिना नहीं रह सकते। क्योंकि अर्थगत कविता के सिवा इसके लिखने का ढंग भी निराला है। हम अपने उर्दूदाँ पाठकों से सिफ़ारिश करते हैं कि इस लेख को पढ़ें। इससे उन्हें इस बात का निश्चय हो जायगा कि गद्य में भी कैसी अच्छी कविता हो सकती है।

***

श्रीयुक्त सखाराम गणेश देउस्कर, ७१-१, सुकिया स्ट्रीट, कलकत्तसे लिखते हैं कि "जो महाशय हिन्दी भाषा में 'स्वराज्य-प्राप्ति ही एकता का मूल है' (Swarajya is the surest road to union) इस विषय पर आगामी ३० जून के पहले एक सर्वोत्तम निबन्ध लिख भेजेंगे उन्हें 'स्वराज्य-पदक' नामक एक सोने का पदक, और जिनका निबन्ध दूसरे दरजे का होगा उन्हें एक रौप्य-पदक, पुरस्कार में दिया जायगा। निबन्ध डिमाई बारहपेजी दो फ़र्मे का हो। भाषा अच्छी और बातें काम की हों"।

बात कुछ उलटी सी जान पड़ती है। एकता से स्वराज्य मिलता है या स्वराज्य से एकता?

***

क्रिकेट के प्रसिद्ध खिलाड़ी प्रिंस रणजीतसिंह जी अब 'प्रिंस' नहीं रहे। आपको जामनगर की राजगद्दी मिल गई। आप जामनगर के जाम हो गये। अब आप 'हिज़ हाइनेस' कहे जाने लगे। क्रिकेट खेलने में आप अद्वितीय हैं। इस विषय की आपने अँगरेज़ी में एक ४६६ पृष्ठ की सचित्र पुस्तक लिखी है। उसका नाम है "दि जुबिली बुक आव क्रिकेट" इस पुस्तक को आपने परलोक-वासिनी महारानी विक्टोरिया को समर्पण किया था। इँगलैंड में रहने और अच्छी शिक्षा पाने से आप के विचार बहुत उन्नत हो गये हैं। जिस तरह आपने क्रिकेट ऐसे परिश्रमसापेक्ष खेल में देश देशान्तर में भी नेकनामी पाई उसी तरह अब आप राजोचित कामों में भी अपनी योग्यता का परिचय देकर नामवरी पाने का प्रयत्न करेंगे। लोगों को—विशेष करके आप की प्रजा को—आप से ऐसीही आशा है। आपका राज्याभिषेक बड़ी धूमधाम से हो गया। आपकी प्रजा ने ऐसा शिक्षित और उन्नत-विचारशील राजा पाकर बड़ी ख़ुशी मनाई।

***

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिवानी-निवासी पण्डित माधवप्रसाद मिश्र ने १६ एप्रिल को प्लेग से शरीर छोड़ दिया। यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ। मिश्रजी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। हिन्दी लिखने में तो आप अद्वितीय थे। दो तीन वर्ष तक आपने "सुदर्शन" नामक मासिकपत्र का सम्पादन बड़ी योग्यता से किया था। आपकी अकाल मृत्यु से हिन्दी ने अपना एक उत्तम लेखक खो दिया।

* * *

मुंशी उदितनारायणलाल की मृत्युवार्ता सुनकर भी दुःख हुआ। आप ग़ाज़ीपुर में वकील थे और हिन्दी के बड़े प्रेमी थे। आपके किये हुए "दीप-निर्वाण" और "सतीनाटक" आदि कई अच्छी अच्छी बँगला किताबों के हिन्दी-अनुवाद लोग बड़े चाव से पढ़ते हैं।

* * *

जो रोमन लिपि हिन्दी-उर्दू लिखने के लिए अयोग्य ठहराई गई है उसी को पंजाब की गवर्नमेंट स्कूलों में जारी करना चाहती है। बड़े बड़े अँगरेज़-विद्वानों की राय है कि इस देश की भाषायें लिखने के लिए रोमन अक्षर उपयोगी नहीं। पर सरकार ने इस पर कुछ भी विचार न करके हुक्म दिया है कि पंजाब में लड़कियों के जो प्रारम्भिक मदरसे हैं उनकी पाठ्य पुस्तकों आदि में हिन्दी, उर्दू और पंजाबी भाषायें लिखने में रोमन अक्षरों का व्यवहार किया जा सकता है इस हुक्म से देवनागरी अक्षरों के प्रचार में बाधा पहुँचने का डर है। जिस समय स्वदेश के हितचिन्तकों का ध्यान देश भर में नागरी लिपि जारी करने का है उस समय पंजाब गवर्नमेंट को यह कारर्वाई प्रजा के नेताओं की आँखों में ज़रूर खटकनेवाली है।

* * *

गत संख्या में "सभा की सभ्यता" नामक जो लेख प्रकाशित हुआ है उसके विषय में हम साफ़ साफ़ लिख देना चाहते हैं कि हमारी शिकायतें प्रबन्धकारिणी कमिटी के सारे मेम्बरों से सम्बन्ध नहीं रखतीं। जो मेम्बर कमिटी की, या साधारण सभा की, बैठकों में शामिल नहीं थे, या जिन्होंने सभा के कृत कार्य्यों के अनुकूल राय नहीं दी, उनकी ज़रा भी शिकायत उस लेख में नहीं। उनका कोई दोष नहीं। इस बात को हमने अपने "वक्तव्य" में स्पष्ट कर दिया है। "सभा की सभ्यता" में भी नीचे लिखे हुए हमारे वाक्य इस बात के सूचक हैं—

(१) "सभा के सूत्रधार सिर्फ़ दो ही चार आदमी हैं"।
(२) "कमिटी के कुछ मेंबरों की इच्छाही सब कुछ है"।
(३) "कमिटी के कुछ सुयोग्य सभासदों के * * * हृदयों में * * * चुभने लगे"।
(४) "एक आध समझदार सभासद ने मना भी किया"।
(५) "सभा * * * सिर्फ़ काशी के कुछ घरघमंडीपन के दासों की दासी है"।

"वक्तव्य" में तो हमने यहाँ तक लिखा है कि सभा ने कमिटी के विचारकर्ता सभासदों के नाम न बतला कर गोया हमसे न्यायी और अन्यायी सभासदों के काम को एक ही काँटे में तुलाना चाहा है। नाम न जानने के कारण यदि कमिटी के सारे सभासदों को हम दोषी समझें तो भी इसके जवाबदेह हम नहीं; सभा की कमिटी ही है। क्योंकि उसी ने हमें नाम नहीं बतलाये। परन्तु हम ऐसा समझते हो नहीं। हम तो सिर्फ़ उन्हीं मेंबरों को उत्तरदाता समझते हैं जो कमिटी के अधिवेशनों में उपस्थित थे और जिन्होंने हमारी उचित और न्याययुक्त बातों के भी ख़िलाफ़ अपनी राय दी।

* * *

कलकत्ते के विद्वान्, वाग्मी, लब्धप्रतिष्ठ सज्जन बाबू कालीचरण बंद्योपाध्याय का ६ फरवरी ०७ को परलोकवास हो गया। १६ वर्ष की उम्र में इन्होंने क्रिश्चियन धर्म्म स्वीकार कर लिया था। दर्शनशास्त्र में इन्होंने एम० ए० पास किया और विश्वविद्यालय भर में पहला नम्बर पाया। तदनन्तर इन्हों ने क़ानून की बी० एल० परीक्षा भी पास की। बहुत दिन तक इन्होंने कालेजों में अध्यापकता की। फिर हाईकोर्ट में विकालत शुरू की। विकालत में बड़ा नाम पाया। विश्वविद्यालय के फ़ेलो, म्यूनीसिपालिटी के सभासद और एक प्रादेशिक कान्फ़रन्स के ये सभापति थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार का पद भी इन्हें प्राप्त हुआ था। यद्यपि ये क्रिश्चियन थे, तथापि बड़ेही देशभक्त थे। सत्य, प्रेम, ईश्वर-भक्ति और पवित्रता की मूर्त्ति थे। सत्य के वशवर्त्ती होकर इन्होंने अनेक बार अपने सहधर्म्मियों की बातों का विरोध किया। विश्वविद्यालय से सम्बन्ध रखनेवाली बातों के विचार के समय राय देते इन्होंने ज़रा भी भय नहीं किया। न्याय और सत्य-परता ही इनका सर्वस्व था। हानि-लाभ और जाति-धर्म्म का तिनके के बराबर भी आदर न करके सदा ये सत्य ही के वशवर्त्ती रहे। इनकी मृत्यु से सब को दुःख हुआ है।

* * *

किसी समय संस्कृत में अनन्त ग्रन्थरत्न भरे थे। खेद है उनका अधिकांश इस देश में नष्ट हो गया जान पड़ता है। तिबत-मिशन के अफ़सर तिबत से कितनी हीं पुस्तकें लाये थे। वे पुस्तकें एशियाटिक-सोसाइटी को दी गई हैं। महामहोपाध्याय पण्डित सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने जो उन्हें देखा तो अकेले न्यायशास्त्र पर ही उनको कोई २५ अप्राप्य ग्रन्थ मिले। इनमें से दो एक को छोड़कर शेष ग्रन्थों का इस देश में कहीं पता नहीं। ये सब ग्रन्थ तिबती भाषा में अनुवादरूप हैं। इन ग्रन्थों को देखने से मालूम होता है कि यहाँ न्याय-शास्त्र की बहुत उन्नति हुई थी। मिथिलाही में नहीं, काश्मीर, आन्ध्रदेश और नालन्दा तक में बड़े बड़े नैयायिक थे। साहित्य, काव्य, कोश और व्याकरण आदि के भी अनेक ग्रन्थ मिशन के साथ तिबत से आये हैं। कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें तिबती अनुवाद के साथ साथ मूल संस्कृत भी है। व्याकरण के तो ऐसे ऐसे ग्रन्थ हैं जिनका कभी किसी ने यहाँ नाम तक न सुना होगा। चन्द्र-व्याकरण की भी एक पुस्तक मिली है। कालिदास, दण्डी और अमर को भी तिबत के पण्डित नहीं भूले। क्योंकि मेघदूत, काव्यादर्श और अमरकोश की पुस्तकें भी मिशन के साथ तिबत से आई हैं। अभी और न मालूम संस्कृत का कितना ज्ञानभाण्डार तिबती भाषा में छिपा पड़ा होगा। "एशियाटिक सोसाइटी आफ़ बंगाल" के फ़रवरी ०७ के जनरल में दो लेख इस विषय के प्रकाशित हुए हैं। जिसकी इच्छा हो, वहाँ पढ़ सकता है।

* * *

"हिन्दी-केसरी" निकल आया। अच्छा निकला। छोटे साँचे के १२ पृष्ठ हैं। हर पृष्ठ में ४ कालम हैं। छपाई और काग़ज़ उत्तम है। पहले पृष्ठ में नाम के ऊपर मातृभूमि का चित्र है। सिर पर मुकुट है। एक सिंह इधर एक उधर अपना एक एक पंजा मुकुट पर रक्खे हुए हैं। ऊपर "वन्दे मातरम्" छपा है। ब्लाक बहुत अच्छा बना है। भाव से भरा है। भीतर तिलक का चित्र है। मुख्य लेख, उनके मराठी केसरी के "स्वराज्य और सुराज्य" लेख का हिन्दी में भावार्थ है। और भी दो एक लेख हैं। सम्पादकीय विचार विचारपूर्वक लिखे गये हैं। "स्वदेशी आन्दोलन और बहिष्कार", "स्वदेशी माल और कारख़ाने", "समाचार-संग्रह" आदि और भी इसमें कितनी ही बातें हैं। आशा है इस पत्र से वही काम होगा जो तिलक महाशय के मराठी-पत्र से हो रहा है। इसके निकालने का प्रायः सारा पुण्य पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०, को है। महाराष्ट्र होकर हिन्दी-भाषा पर आपके अखण्ड और अकृत्रिम प्रेम को देख कर उन लोगों को लज्जित होना चाहिए जिनकी जन्म-भाषा हिन्दी है, पर जो हिन्दी में एक सतर भी नहीं लिख सकते, अथवा नहीं लिखना चाहते। हिन्दी-केसरी का वार्षिक मूल्य २) रुपये है और देशसेवक प्रेस, नागपुर, के मैनेजर को लिखने से मिलता है।

श्रीयुक्त गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी, बी० ए०, एल० एल० बी०।

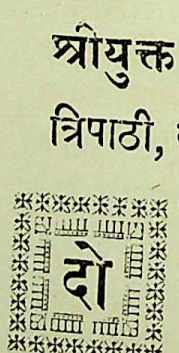

दो वर्ष से हम श्रीयुक्त गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी का परिचय हिन्दी-पाठक-वृन्द को देने का विचार कर रहे थे, किन्तु किसी न किसी कारण से आज तक हम अपनी इच्छा पूर्ण न कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बीच में इनकी पार्थिव लीला ही संवरण हो गई। अतएव शोकाकुल हृदय से इनका संक्षिप्त वृत्तान्त, जितना हमें मालूम हुआ है उतना ही, देते हैं।

श्रीयुक्त त्रिपाठी महाशय का जन्म विक्रम-संवत् १९११ की विजया दशमी (२० आक्टोबर, १८५५ ईसवी) को गुजरात प्रान्त के अन्तर्गत "नड़ीयाद" नामक क़सबे में हुआ था। ये नागर ब्राह्मण थे जो गुजरात के पंचद्राविड़ों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। इनके पिता का नाम श्रीयुक्त माधवराम धीरजराम त्रिपाठी था। गोवर्धनरामजी के जन्मसमय इनके पिता की स्थिति बहुत अच्छी थी। बम्बई में उनकी सराफ़े की दुकान थी। इसलिए चार पाँच वर्ष के बाल्य वय में ही गोवर्धनरामजी को बम्बई में रहने का सुयोग प्राप्त हुआ। इनका विद्याभ्यास वहीं शुरू हुआ। मातृ-भाषा गुजराती का अभ्यास इन्होंने वहाँ की 'बुद्धि-वर्धक-शाला' में किया। वेदान्त पर एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ (A Sketch of Vedánta Philosophy) लिखनेवाले श्रीयुक्त मनःसुखराम सूर्यराम इनके पिता के हार्दिक मित्र थे। वे गोवर्धनरामजी के अध्ययन पर पिता के तुल्य दृष्टि रखते थे। इनका अँगरेज़ी-अध्ययन-आरम्भ अपनी मातृभूमि "नडीयाद" में हुआ। वहाँ पहले तीन दरजों तक अभ्यास करके वे फिर बम्बई गये। वहाँ के 'एलफ़िन्स्टन हाई स्कूल' में चौथी से सातवीं कक्षा तक अभ्यास कर, सोलहवाँ वर्ष पूर्ण होते ही, वे बम्बई विश्वविद्यालय की प्रवेशिका-परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। बोस ही वर्ष की उम्र में इन्होंने बी० ए० की पदवी प्राप्त की। अर्थशास्त्र, इतिहास, तथा न्याय और नीतिशास्त्र, इनके ऐच्छिक विषय थे। संस्कृत के लिए इनको, सन् १८७५ ई० में, विश्वविद्यालय का 'सुन्दरजी जीवाजी एसे प्राइज़' नामक इनाम मिला। सन् १८७६ में, 'Essay on the Effects of Early Marriages on the Educational Progress of the natives of this country.'—अर्थात् बालविवाह से हमारे देशवासियों की शिक्षा-विषयक उन्नति पर क्या असर पड़ता है—इस विषय पर निबन्ध लिखने के लिए विश्वविद्यालय का 'कर-सनदास मूलजी एसे प्राइज़' भी इन्होंने प्राप्त किया।

इसके बाद इनके दुर्भाग्य के दिन आये। सात वर्ष तक इनके कुटुम्ब पर आपत्ति के घनघोर मेघ छाये रहे। गोवर्धनरामजी को पहले ही से स्वतंत्र जीवन-निर्वाह करने का शौक़ था। उन्होंने ऐसा ही जीवन व्यतीत करने का संकल्प तक कर लिया था। परन्तु सन् १८६४-६५ में, बम्बई में, 'शेयरर्स' के सट्टे का बाज़ार बहुत ही गर्म हो उठा। इनके पिता उसी की लपेट में आगये। उनको इस व्यवसाय में बहुत नुक़सान रहा। वे ऋणी हो गये। इसलिए सारे कुटुम्ब को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। पर इस महात्मा ने अचल धैर्य से सारी विपत्ति झेल डाली। और पिता को ऋणमुक्त करने का आश्वासन दिया। इस आपत्ति के कारण, माता पिता के सुख-सम्पादन के लिए, इनको अपने पूर्वोक्त संकल्प से विचलित होना पड़ा। इसी समय, अभाग्यवश, इनको एक प्रकार का शिरोरोग हो गया। अँगरेज़ी साहित्य और संस्कृत (न्याय) में एम० ए० की परीक्षा ये देना चाहते थे। पर इस रोग के कारण इन्हें वह विचार छोड़ना पड़ा। यह व्याधि बहुत दिन तक बनी रही। इससे कई बार इनका स्वास्थ्य बिगड़ा। तब भी धीरे धीरे अभ्यास करके, कई मर्तबे की निष्फलता के बाद, अन्त में ये, सन् १८८३ ई० में, एल० एल० बी० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये।

बी० ए० पास होते समय इन्होंने ये संकल्प किये थे। (१) एल० एल० बी० अर्थात् विकालत की परीक्षा में उत्तीर्ण होना, (२) एल० एल० बी० होने के बाद बम्बई में विकालत करना, (३) चालीस बयालीस वर्ष की उम्र में विकालत छोड़ना और (४) किसी की नौकरी न करना। परन्तु माता पिता की सेवा के लिए चौथा संकल्प, कुछ समय के लिए, इन्हें छोड़ना पड़ा। भावनगर राज्य में, श्रीमान् श्यामलदास परमानन्ददास के मन्त्रित्व समय में, इन्होंने उनके अँगरेज़ी-सेक्रेटरी के तौर पर नौकरी स्वीकार की। वहीं इन्होंने अपने संकल्प की पूर्ति के लिए क़ानून का अभ्यास भी शुरू किया। दीवान साहब ने इन्हें न्यायाधीश का पद देने का वादा किया और कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उस पद पर अधिक वेतन मिलेगा; सेक्रेटरी के पद पर अधिक वेतन की आशा नहीं। परन्तु विद्यारसिक गोवर्धनरामजी ने दीवान साहब ही के पास रहना पसंद किया। यहाँ इन्हें बहुत कम काम करना पड़ता था। कुटुम्ब-पोषण के लिए केवल १२५) रु० का ही वेतन इन्होंने बस समझा। १८७५ ईसवी में, बी० ए० पास करने के बाद, कई स्थानों से अच्छी अच्छी जगहों के लिए ये बुलाये गये थे। १८७६ में, कच्छ राज्य के अमात्य, स्वर्गवासी दीवान बहादुर मणीभाई जसभाई ने ३००) पर, हुज़ूर सेक्रेटरी के पद के लिए इन्हें बुलाया था। सन् १८८३ में श्रीमान् श्यामलभाई ने २५०) पर, भावनगर राज्य में, और श्रीमान् हरिदास विहारीदास देसाई ने, ३००) पर, जूनागढ़ राज्य के न्याय-विभाग में, काम करने के लिए इनसे कहा था। १८८५ में बड़ौदा राज्य के भूतपूर्व दीवान क़ाज़ी शहाबुद्दीन साहब ने, महाराज गायकवाड़ की आज्ञा से, ५००) पर उस राज्य में 'विद्याधिकारी' के पद के लिए, इन्हें बुलाया था। पीछे से कई वर्ष बाद श्रीमान् कच्छ-नरेश ने, १५००) मासिक पर दीवान का पद देने की इच्छा प्रकट की थी। परन्तु वे इन सब सूचनाओं को कृतज्ञतापूर्वक अस्वीकार ही करते गये और अपने पूर्वसंकल्प पर निश्चल रहे।

१८८३ में एल० एल० बी० पास करके, १८८४ ई० के प्रारम्भ से, इन्होंने बम्बई में विकालत का काम आरम्भ किया और अपने असली सिद्धान्त पर दृढ़ रह कर सन् १८९८ में विकालत करना छोड़ भी दिया।

धन-लोभ बहुत बुरा होता है। उससे छूटना कठिन काम है। गवर्नमेंट अपने अधिकारियों को, वृद्ध होने पर, पेन्शन लेने के लिए मजबूर करती है। तब भी लोभ के वश होकर बड़े बड़े अधिकारी अपनी नौकरी की समयावधि बढ़ाने के लिए प्रायः अनेक प्रकार के प्रयत्न और ख़ुशामद करते हैं। इतना ही नहीं, कुछ लोग तो एक सेवा-वृत्ति से निवृत्त किये जाने पर दूसरी सेवा की शृङ्खला में आप ही आप जा फँसते हैं। इस दशा में एक प्रतिष्ठित वकील का, धन की कुछ भी परवा न करके, अपने व्यवसाय को स्वयं अपनी ही इच्छा से, केवल चौदह पन्द्रह वर्ष काम करके छोड़ देना क्या तारीफ़ की बात नहीं है? गोवर्धनरामजी जैसे स्वार्थत्यागी महात्माओं के उदाहरण इस समय बहुत ही कम देख पड़ते हैं। जिस समय उन्होंने विकालत छोड़ी, वे वृद्ध नहीं थे। उनके जीवन का मध्यकाल था। उनकी कीर्त्ति खूब बढ़ रही थी। पन्द्रह वर्ष की विकालत में उनका नाम सर्वव्यापी होगया था। गुजरात, खानदेश, धारवाड़, रत्नागिरी, शोलापुर, नासिक, आदि स्थानों तक के रईस, ज़मींदार, राजे, महाराजे उन्हें काम देते थे। ऐसे समय में कीर्त्ति और कंचन दोनों का त्याग करके, 'वानप्रस्थ-सेवन'—एक क़स्बे में आत्मचिंतन—करने बैठना सबका काम नहीं।

गोवर्धनरामजी एकांतवासी और मननशील-प्रकृति थे। यश-उपार्जन की लालसा से कोई काम करना उन्हें पसन्द न था। तथापि प्रसङ्ग प्राप्त होने पर देश-सेवा, जन-सेवा और साहित्य-सेवा करने में वे सङ्कोच भी नहीं करते थे। जिस समय ये कालेज में थे इन्होंने 'हनी क्लब' (Honey Club) नामक एक मण्डली की स्थापना की थी। उसके एक अधिवेशन में इन्होंने, सन् १८७३ में, "State of Hindu Society in the Bombay Presidency" अर्थात् 'बम्बई प्रान्त में हिन्दू-समाज की अवस्था' नामक एक लेख पढ़ा था। एक बार "Is there any Creator of this Universe?" अर्थात् 'इस सृष्टि का क्या कोई उत्पन्नकर्त्ता भी है?' इस नाम का भी निबन्ध इन्होंने पढ़ा था। इससे प्रतीत होता है कि देश-सेवा और तत्त्व-चिन्तन इनके जीवन के प्रधान उद्देश्य शुरू ही से थे। बम्बई, अहमदाबाद, नडीयाद, अहमदनगर, सूरत, सिद्धपुर आदि स्थानों में इन्होंने गुजराती और अँगरेज़ी भाषाओं में कई व्याख्यान दिये थे। इनके व्याख्यान सर्वथा गम्भीर और चिन्तनयोग्य होते थे। कांग्रेस में भी इन्होंने कई वार वक्तृता दी थी।

कुछ समय हुआ अहमदाबाद में एक गुजराती-साहित्य-परिषद् का अधिवेशन हुआ था। उसके ये अध्यक्ष थे। उस समय इन्हों ने जो व्याख्यान दिया था वह बहुत ही उत्तम और युक्तिपूर्ण था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकावलोकन से इनको विशेष प्रेम था। अँगरेज़ी, गुजराती और संस्कृत के गम्भीर ग्रन्थों का इन्होंने अच्छा अभ्यास किया था। इतिहास पर इन की बहुत रुचि थी। इनका इरादा था कि सारे संसार का इतिहास पढ़कर एक प्रबन्ध लिखें कि भविष्यत् में भारत का क्या होनेवाला है। इनका ऐतिहासिक ज्ञान, इनकी पुस्तकों में, स्थान स्थान पर प्रकट होता है।

गुजराती लोगों में ये 'सरस्वतीचन्द्र' के लेखक के नाम से प्रसिद्ध हैं। गुर्जर-साहित्य में यह ग्रन्थ अद्वितीय और अपूर्व है। इसके मुक़ाबले का कोई ग्रन्थ आज तक गुजरातीभाषा में नहीं लिखा गया। इसका प्रथमभाग, सन् १८८७ में, निकला था। बकल के 'हिस्ट्री आव सिविलीज़ेशन' (सभ्यता का इतिहास) नामक ग्रन्थ के निकलने पर जैसी चर्चा इँगलंड के शिक्षित समाज में हुई थी वैसी ही 'सरस्वतीचन्द्र' के निकलने पर गुजराती-साहित्य-सेवियों में हुई थी। यह ग्रन्थ चार बड़े बड़े भागों में विभक्त है। प्रथम भाग सन् १८८७ में, दूसरा १८९२ में, तीसरा १८९८ में, और चौथा १९०१ में प्रकाशित हुआ था। अर्थात् इस समग्र पुस्तक के प्रकट होने में पंद्रह वर्ष लगे! 'सरस्वतीचन्द्र' ने गुजराती-साहित्य पर अविरल प्रकाश डाला है। पुस्तक है तो उपन्यास, परन्तु उसे ज्ञान और अनुभव का सागर कहना चाहिए। कल्पना, रस, कलाविधान, भाषा-गौरव आदि का उन्नत स्वरूप इस ग्रन्थ में मिलता है। धर्म, समाज, राजनीति, आदि अनेक गंभीर विषयों पर उसमें बड़ी ही योग्यता से चर्चा की गई है। फिर भी ख़ूबी यह है कि पुस्तक के स्वारस्य में कुछ भी बाधा नहीं आई। राजा से लेकर रंक तक, विद्वान् से मूर्ख तक, आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, सभी उसे पढ़ कर असाधारण लाभ उठाते हैं। गुजरातियों को इस ग्रन्थ ने रसज्ञ, विचारशील, और कल्पनाप्रिय बना दिया है। इस ने बहुतों के जीवन में उमंग और उत्साह भर दिया है। बहुतों के जीवन-क्षेत्र में उच्चाशय का बीज बो दिया है। बहुतों के अभिलाषों को ख़ूब उत्कट बना दिया है। कितनेहों विपथगामियों को उन्नत पथ दिखाया है। बहुतों के शुष्क जीवन को रसाप्लुत किया है। बहुत कौन कहे, गुजरात के नवीन युग का यह महाभारत है। जब तक गुजरातीभाषा का अस्तित्व रहेगा, तब तक 'सरस्वतीचन्द्र' उपन्यास भी विद्यमान रहेगा। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। इस ग्रन्थ ने इसके लेखक को अमर कर दिया।

इस पुस्तक के पहले और दूसरे भाग के अधिकांश का मराठी-भाषान्तर भी हो चुका है। हमारे जो पाठक गुजराती भाषा से परिचय रखते हैं, उन्हें यह पुस्तक देखने की हम सिफ़ारिश करते हैं। और हिन्दी-लेखकों में से जिनको उपन्यास लिखने का शौक़ है उनसे हम सविनय प्रार्थना करते हैं कि कुछ समय के लिए ऐयारी और जासूसी कथायें लिखना छोड़ कर, इस पुस्तक का भाषान्तर हिन्दी में कर डालें।

श्रीयुक्त गोवर्धनरामजी केवल उपन्यासकार ही नहीं थे; वे उत्तम कवि भी थे। कविता का उनको बाल्यावस्थाही से शौक़ था। जब वे गुजराती-वाचनमाला की दूसरी पुस्तक पढ़ते थे तभी उन्होंने उसके एक पद पर एक छोटा सा पद्य बना कर अपनी माता को भेजा था। बड़े होने पर इनकी कवित्वशक्ति का बीज अङ्कुरित हो उठा। उसका यह फल हुआ कि इन्होंने, १८८९ में, 'स्नेहमुद्रा' नामक एक उत्तम काव्यग्रन्थ प्रकट किया। इस काव्य में वैसे ही उत्तम भाव हैं जैसे कि अँगरेज़ी और संस्कृत के प्रसिद्ध कवियों में पाये जाते हैं।

१९०२ में, अपनी ज्येष्ठपुत्री के जीवनचरित को 'लीलावती नी जीवनकला' नाम से इन्होंने प्रसिद्ध किया। इनकी यह कन्या कर्तव्य-परायणा, मेधाविनी और विशुद्धचरित्रा थी। इसका चरित बहुत ही अच्छी शैली में लिखा गया है और हर एक स्त्री पुरुष के पढ़ने लायक़ है।

इनके अन्य छोटे छोटे ग्रन्थों और लेखों का उल्लेख हम नीचे करते हैं—

(१) Classical Poets of Gujrat and their influence on Society and morals—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् 'गुजरात के प्रसिद्ध कवि, और समाज तथा नीति पर उनका प्रभाव'—यह निबन्ध इन्होंने बम्बई के विलसन-कालेज में स्वर्गवासी माननीय जवेरीलाल उमियाशङ्कर याज्ञिक के सभापतित्व में पढ़ा था। यह अँगरेज़ी में है और पुस्तकाकार छपा है। गुजरात के प्राचीन कवियों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले अँगरेज़ी-शिक्षित पाठकों को यह पुस्तक ज़रूर देखना चाहिए। श्रीयुक्त गोवर्धनरामजी के अन्य सब ग्रन्थों की तरह यह भी बम्बई में एन० एम० त्रिपाठी कम्पनी–(कालबा देवी रोड) से मिलता है।

(२) 'एशिया, युरोप विगेरे खंडोमांनी महाप्रजाओना जनस्वभावनां लाक्षणिक दृष्टान्त'।

(३) 'साक्षर श्रीनवलराम लक्ष्मिराम नी जीवनकथा' यह एक बहुत बड़े गुजराती समालोचक का जीवनवृत्तान्त है और सुपाठ्य है।

(४) Conflict of Laws between Converts and Non-converts in India.

यह क़ानूनविषयक ग्रन्थ अँगरेज़ी में है।

इसके सिवा 'ईस्ट ऐन्ड वेस्ट', 'इंडिअन रिव्यू', 'हिन्दुस्तान रिव्यू' आदि अँगरेज़ी मासिक पत्रों में उनके अनेक लेख निकले हैं। 'सतीचुनी' नामक एक गुजराती सती का चरित इन्होंने 'ईस्ट ऐन्ड वेस्ट' में लिखा था। उसका भाषान्तर तैलंगीभाषा में भी हुआ है।

बम्बई-विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा में ये गुजराती के परीक्षक नियत होते थे। कई वर्ष तक ये विश्वविद्यालय के 'फ़ेलो' भी थे।

यद्यपि कई बरस से ये निवृत्तिमार्ग के पथिक हो रहे थे तथापि देश-सेवा और साहित्य-सेवा के लिए उन्हें अपने जीवन को प्रवृत्तिमय बनाना ही पड़ता था।

श्रीयुक्त गोवर्धनरामजी का स्वभाव बाल्यावस्था ही से शुद्ध, पवित्र और अनुकरणीय था। विद्यार्थिदशा में न कभी इन्होंने छिप कर किसी विद्यार्थी के परचों की नक़ल की और न किसी को नक़ल करने दिया। इनके स्वभाव में दृढ़ निश्चय बहुत था। ये गणित के विषय में बहुत ही कच्चे थे—इतने कि एक बार परीक्षा में इन्हें २०० में से केवल ८ नम्बर मिले! तब से इन्होंने इस न्यूनता को दूर करने का निश्चय किया और छुट्टी के दिनों में गणित का अभ्यास इतने परिश्रम से किया कि फिर कभी इन्हें लज्जित होने का मौक़ा नहीं आया।

वानप्रस्थ अवस्था में ये अपना अधिक समय योगसाधन और उपनिषदों के अभ्यास में व्यतीत करते थे। अनेक आधि-व्याधियों से ग्रस्त होने पर भी ये अपने संकल्प से कभी विचलित नहीं हुए। ये इस ज़माने के ब्रह्मर्षि थे। इन्हें देखते ही देखनेवाले के मन में पूज्यभाव उत्पन्न होता था। हाईकोर्ट में एक बार ये बहस कर रहे थे। उस समय इनकी कार्यकुशलता और योग्यता को देख कर इनके प्रतिपक्षी वकील मिस्तर चौबले ने यह कहा कि—

"I love you, I respect you, I revere you, I admire you." ऐसे ऐसे उद्गार और भी कई सज्जनों ने इनके विषय में निकाले हैं।

इस पूजनीय पुरुष ने, ४ जनवरी १९०७ को, मध्यान्ह के दो बजे, अपने मित्र, सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक, अध्यापक श्रीयुक्त त्रिभुवनदास गज्जर के मकान पर, इस नश्वर संसार का त्याग किया।

शिवप्रसाद दलपतराम पण्डित।

दुलाईवाली।

काशी जी के दशाश्वमेध घाट पर स्नान करके एक मनुष्य बड़ी व्यग्रता के साथ गोदौलिया की तरफ़ आ रहा था। एक हाथ में एक मैली सी तौलिया में लपेटी हुई भीगी धोती और दूसरे में सुरती की गोलियों की कई डिबियां और सुँघनी की एक पुड़िया थी। उस समय दिन के ग्यारह बजे थे। गोदौलिया की बाँई तरफ़ जो गली है, उसके भीतर एक और गली में थोड़ी दूर पर, एक टूटे से पुराने मकान में वह जा घुसा। मकान के पहले खण्ड में बहुत अँधेरा था; पर ऊपर की जगह मनुष्य के वासोपयोगी थी। नवागत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य धड़धड़ाता हुआ ऊपर चढ़ गया। वहाँ एक कोठरी में उसने हाथ की चीज़ें रखदीं और, "सीता! सीता!" कहकर पुकारने लगा। "क्या है?" कहती हुई एक दस बरस की बालिका आ खड़ी हुई। तब उस पुरुष ने कहा, "सीता! ज़रा अपनी बहिन को बुला ला।" "अच्छा" कह कर सीता गई, और कुछ देर में एक नवीना स्त्री आकर उपस्थित हुई। उसे देखते ही पुरुष ने कहा,—"लो हम लोगों को तो आज ही जाना होगा।" इस बात को सुनकर स्त्री कुछ आश्चर्य्ययुक्त होकर और झुँझला कर बोली—

"आज ही जाना होगा! यह क्यों? भला आज कैसे जाना हो सकेगा? ऐसा ही था तो सवेरे भैया से कह देते। तुम तो जानते हो कि मुँह से कह दिया; बस छुट्टी हुई। लड़की कभी बिदा की होती तो मालूम पड़ता। आज तो किसी सूरत जाना नहीं हो सकता।"

"तुम आज कहती हो! हमें तो अभी जाना है। बात यह है कि आज ही नवलकिशोर कलकत्ते से आ रहे हैं। आरे से अपनी नई बहू को भी साथ ला रहे हैं। सो उन्हों ने हमें आज ही जाने के लिए इसरार किया है। हम सब लोग मोग़लसराय से साथ ही इलाहाबाद चलेंगे। उनका तार मुझे घरसे निकलते ही मिला। इसीसे मैं झट नहा धोकर लौट आया। बस अब करना ही क्या है? कपड़ा वपड़ा जो कुछ हो बाँध बूँध कर, घंटे भर में खा पी कर, चलो चलो। जब हम तुम्हें बिदा कराने आये ही हैं तब कल के बदले आज ही सही"।

"हाँ यह बात है! नवल जो चाहें करावें। क्या एकही गाड़ी में न जाने से दोस्ती में बट्टा लग जायगा? अब तो किसी तरह रुकोगे नहीं, ज़रूर ही उनके साथ जाओगे। पर मेरे तो नाकों दम आ जायगी!"

"क्यों? किस बात से?"।

"उनकी हँसी से और किस से! हँसी ठट्ठा भी राह से अच्छी लगती है। उनकी हंसी मुझे नहीं भाती। एक रोज़ मैं चौके में बैठी पूड़ियाँ काढ़ रही थी, कि इतने में न जाने कहाँ से आकर नवल चिल्लाने लगे, "ए बुआ! ए बुआ! देखो तुम्हारी बहू पूड़ियाँ खा रही है।" मैं तो मारे सरम के मर सी गई। हाँ भाभी जी ने बात उड़ा दी सही। वे बोलीं, "खाने दो, खाने पहनने के लिए तो आई ही है।" पर मुझे उनकी हँसी बहुत बुरी लगी।"

"बस इसी से तुम उनके साथ नहीं जाना चाहती? अच्छा चलो मैं नवल से कह दूँगा कि यह बेचारी कभी रोटी तक तो खाती ही नहीं, पूरी क्यों खाने लगी!"

इतना कहकर वंशीधर कोठरी के बाहर चले आये, और बोले, "मैं तुम्हारे भैया के पास जाता हूँ। तुम रो रुलाकर तैयार हो जाना।"

इतना सुनते ही जानकीदेई की आँखें भर आईं। और असाढ़ सावन की ऐसी झड़ी लग गई।

(२)

वंशीधर इलाहाबाद के रहने वाले हैं। बनारस में ससुराल है। स्त्री को बिदा कराने आये हैं। ससुराल में एक साले, साली और सास के सिवा और कोई नहीं है। नवलकिशोर इनके दूर के नाते में ममेरे भाई हैं। पर दोनों में नाते से मित्रता का ख़्याल अधिक है। दोनों में गहरी मित्रता है। दोनों एक जान दो क़ालिब हैं।

उसी दिन वंशीधर का जाना स्थिर हो गया। सीता, बहन के संग जाने के लिए रोने लगी। माँ रोती धोती लड़की की बिदा की सामग्री इकट्ठी करने लगी। जानकीदेई भी रोती ही रोती तैयार होने लगी। कोई चीज़ भूलने पर धीमी आवाज़ से माँ को याद भी दिलाती गई। एक बजने पर स्टेशन जाने का समय आया। अब गाड़ी या इक्का लाने कौन जाय? ससुराल वालों की अवस्था अब आगे की सी नहीं कि दो चार नौकर चाकर हर समय बने रहें। सीता के बाप के न रहने से काम बिगड़ गया है। पैसेवाले के यहाँ नौकर चाकरों के सिवा और भी दो चार ख़ुशामदी घेरे रहते हैं। छूछे को कौन पूछे? एक कहारिन है; सो भी इस समय कहीं गई है। सालेराम की तबीयत अच्छी नहीं। वे हरघड़ी बिछौने से बातें करते हैं। तिस पर भी आप कहने लगे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं ही धीरे धीरे जाकर कोई सवारी ले आता हूँ। नज़दीक तो है।" वंशीधर बोले,—"नहीं, नहीं, तुम क्यों तकलीफ़ करोगे? मैं हीं जाता हूँ।"

जाते जाते वंशीधर विचारने लगे कि इक्के की सवारी तो भले घर की स्त्रियों के बैठने लायक़ नहीं होती। क्योंकि एक तो उतने ऊँचे पर चढ़ना पड़ता है; दूसरे पराये पुरुष के संग एक साथ बैठना पड़ता है। मैं एक पालकी गाड़ी ही करलूँ। उसमें सब तरह का आराम रहता है।" पर जब गाड़ीवालों ने डेढ़ रुपया किराया माँगा, तब, वंशीधर ने मनमें कहा—"चलो इक्काही सही। पहुँचने से काम। कुछ नवल-किशोर तो यहाँ से साथ हैं नहीं। इलाहाबाद में देखा जायगा।" वंशीधर इक्का ले आये, और जो कुछ असबाब था इक्के पर रख कर आप भी बैठ गये। जानकीदेई बड़ी विकलता से रोती हुई इक्के पर जाबैठी। पर इस अस्थिर संसार में स्थिरता कहाँ? यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं। इक्का जैसे जैसे आगे बढ़ता गया, वैसे ही वैसे जानकी को रुलाई भी कम होती गई। सिकरौल के स्टेशन के पास पहुँचते पहुँचते जानकी अपनी आँखें अच्छी तरह पोंछ चुकी थी। दोनों चुपचाप चले जा रहे थे, कि अचानक वंशीधर की नज़र अपनी धोती पर पड़ी; और "अरे एक बात तो हम भूलही गये।" कह कर पछतासा उठे। इक्केवाले के कान बचाकर जानकी जी ने पूछा, "क्या हुआ? क्या कोई ज़रूरी चीज़ भूल आये?"

"नहीं, एक देशी धोती पहिनकर आना था; सो भूल कर विलायती ही पहिन आये। नवल कट्टर स्वदेशी हुए हैं न? वे बंगालियों से भी बढ़ गये हैं। देखेंगे तो दो चार सुनाये बिना न रहेंगे। और, बात भी ठीक है। नाहक़ विलायती चीज़ें मोल लेकर क्यों रुपये की बरबादी की जाय? देशी लेने से भी दाम लगेगा सही; पर रहेगा तो देश ही में।"

जानकी जी ज़रा भौंहें टेढ़ी करके बोलीं, "उँह धोती तो धोती; पहिनने से काम। क्या यह बुरी है?"

इतने में स्टेशन के कुलियों ने आ घेरा। वंशीधर एक कुली करके चले। इतने में इक्केवाले ने कहा, "इधर से टिकट लेते जाइए। पुल के उस पार तो डयोढ़े दरजे का टिकट मिलता है।"

वंशीधर फिर कर बोले, "अगर मैं डयोढ़े दरजे ही का टिकट लूँ तो?"

इक्केवाला चुप हो रहा। "इक्के की सवारी देख कर इसने ऐसा कहा"— यह कहते हुए वंशीधर आगे बढ़े। यथासमय रेल पर बैठकर वंशीधर राजघाट पार करके मुग़लसराय पहुँचे। वहाँ पुल लाँघकर दूसरे प्लैटफ़ार्म पर जा बैठे। आप नवल से मिलने की ख़ुशी में प्लैटफ़ार्म के इस छोर से उस छोर तक टहलते रहे। देखते देखते गाड़ी का धुआँ दिखलाई पड़ा। मुसाफ़िर अपनी अपनी गठरी सँभालने लगे। रेलदेवी भी अपनी चाल धीमी करती हुई गम्भीरता से आ खड़ी हुई। वंशीधर एकबार चलती गाड़ी ही में शुरू से आख़ीर तक देख गये। पर नवल का कहीं पता नहीं। वंशीधर फिर सब गाड़ियों को दोहरा गये; तेहरा गये; भीतर घुस घुस कर एक एक डिब्बे को देखा। किन्तु नवल न मिले। अन्त को आप खिजला उठे, और सोचने लगे कि मुझे तो वैसी चिट्ठी लिखी, और आप न आया। मुझे अच्छा उल्लू बनाया। अच्छा जायँगे कहाँ? भेंट होने पर समझ लूँगा।" सबसे अधिक सोच तो इस बात का था कि जानकी सुनेगी तो ताने पर ताना मारेगी। पर अब सोचने का समय नहीं। रेल की बात ठहरी। वंशीधर झट गये और जानकी को लाकर ज़नानी गाड़ी में बिठाया। वह पूछने लगी, "नवल की बहू कहाँ हैं?" "वह नहीं आये, कोई अटकाव हो गया" कह कर आप बग़ल वाले कमरे में जा बैठे। टिकट तो डयोढ़े का था; पर डयोढ़े दरजे का कमरा कलकत्ते से आनेवाले मुसाफ़िरों से भरा था। इसलिए तीसरे दर्जे ही में बैठना पड़ा। जिस गाड़ी में वंशीधर बैठे थे उसके सब कमरों में मिलाकर कुल दसही बारह स्त्री-पुरुष थे। समय पर गाड़ी छूटी। नवल की बातें, और न जाने क्या अगड़ बगड़, सोचते सोचते गाड़ी कई स्टेशन पास करके मिरज़ापुर पहुँची।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

मिरज़ापुर में पेटराम की शिकायत शुरू हुई। उसने सुझाया कि इलाहाबाद पहुँचने में अभी देरी है। चलने के झंझट में अच्छी तरह उसकी पूजा किये बिना ही वंशीधर ने बनारस छोड़ा था। इसलिए आप झट प्लैटफ़ार्म पर उतरे; और पानी के बम्बे से हाथ मुँह धोकर, एक खोंचेवाले से थोड़ी सी ताज़ी पूड़ियाँ और मिठाई लेकर, निराले में बैठ आपने उन्हें ठिकाने पहुँचाया। पीछे से जानकी की सुध आई। सोचा कि पहले पूछ लें, तब कुछ मोल लेंगे। क्योंकि स्त्रियाँ नटखट होती हैं। वे रेल पर खाना पसन्द नहीं करतीं। पूछने पर वही बात हुई। तब वंशीधर लौट कर अपने कमरे में आ बैठे। यदि वे चाहते तो इस समय डयोढ़े में बैठ जाते; क्योंकि अब भीड़ कम हो गई थी। पर उन्होंने कहा, थोड़ी देर के लिए कौन बखेड़ा करे।

वंशीधर अपने कमरे में बैठे तो दो एक मुसाफ़िर अधिक देख पड़े। आगेवालों में से एक उतर भी गया था। जो लोग थे सब तीसरे हो दरजे के योग्य जान पड़ते थे; अधिक सभ्य कोई थे तो वंशीधर ही थे। उनके कमरे के पासवाले कमरे में एक भले घर की स्त्री बैठी थी। वह बेचारी सिर से पैर तक ओढ़े, सिर झुकाये, एक हाथ लंबा घूँघट काढ़े, कपड़े की गठरी सी बनी बैठी थी। वंशीधर ने सोचा इन के संग वाले भद्र पुरुष के आने पर उनके साथ बात चीत करके समय बितावेंगे। एक दो करके तीसरी घंटी बजी। तब वह स्त्री कुछ अकचका कर, थोड़ा सा मुँह खोल, जँगले से बाहर देखने लगी। ज्योंही गाड़ी छूटी, वह मानों काँप सी उठी। रेल का देना लेना तो होही गया था। अब उसको किसी की क्या परवा? वह अपनी स्वाभाविक गति से चलने लगी। प्लैटफ़ार्म पर भीड़ भी न थी। केवल दो चार आदमी रेल की अन्तिम बिदाई तक खड़े थे। जब तक स्टेशन दिखलाई दिया तब तक वह बेचारी बाहरही देखती रही। फिर अस्पष्ट स्वर से रोने लगी। उस कमरे में तीन चार प्रौढ़ा ग्रामीण-स्त्रियाँ भी थीं। एक, जो उसके पास ही थी, कहने लगी।

"अरे इनकर मनई तो नाहीं अईलेन। हो देखहो रोवल करथईन।"

दूसरी—"अरे दुसर गाड़ी में बैठा होंइहैं।"

पहली—"दुर बौरही! ई जनानी गाड़ी थोड़े है"

दूसरी—"तऊ हो भल्तो कहू।" कहकर दूसरी भद्र महिला से पूछने लगी, "कौने गाँव उतरबु बेटा! मोरजैपूरा चढ़ो हऊ न?" इसके जवाब में उसने जो कहा सो वह न सुन सकी। तब पहिली बोली—

"हट हम पुँछिलान; हम कहा काहां ऊतरबू हो? आँय ईलाहाबास?"

दूसरी—"ईलाहाबास कौन गाँव हौ गोइँयाँ?"

पहली—"अरे नाहीं जनँलू? पैयाग जो, जाहाँ मनइ मकर नाहाए जाला।"

दूसरी—"भला पैयाग जी काहे न जानीथ; ले, कहैके नाहीं, तोहरे पच के धरम से चार दाँई नहाए चुकी हंइ। एसें हो सोमवारी, अउर गहन, दका, दका, लाग रहा तउन तोहरे काशी जी नाँहाय गइ रहे।"

पहली—"आवै जाय के तो सब अऊते जाता बटले बाटेन। फुन यह साइत तो बिचारो विपत में न पड़ल बाटिन। हे हम पचा हइ; राजघाट टिकस कटऊली; मोंगल के सरायँ उतरलीह; होदे पुनः चढ़लीह।"

दूसरी—"ऐसे एक दाँइ हम आवत रहे। एक मिली औरो मोरे सँघे रही। द कौने टिसनीया पर उकर मलिकवा उतरे से कि जुरतँइहैं गड़िया खुली। अब भईया उः गरा फाड़ फाड़ नरियाय,—ए साहब गड़ोया खड़ीकर! ए साहेब गड़िया तँनी खड़ीकर।" भला गड़िया दहिनाती काहै के खड़ी होय?"

पहली—"उ मेहररूवा बड़ी उजबक रहल। भला केहू के चिल्लाए से रेलीऔ कहूँ खड़ी होला?"

इसकी इस बात पर कुल कमरे वाले हँस पड़े। अब जितने पुरुष-स्त्रियाँ थीं, एक से एक अनोखा बातें कहकर अपने अपने तजरुबे बयान करने लगीं। बीच बीच में उस अकेली अबला की स्थिति पर भी दुःख प्रकट करती जाती थीं।

तीसरी स्त्री बोली—"टीक्कसिया पल्ले बाय द नाँही! सहेबवा सुनि तो कलकत्ते ताँइ ले मसुलिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेइ। अरे इहो तो नाँहो कि दूर से आवत रहलेन, फरागत के बदे उतरलेन।

चौथी—"हम तो इनके सँघे के आदमी के देखबो न किहा गोइयाँ!"

तीसरी—"हम देखे रहली हो, मज़ेक टोपी दिहले रहलेन को!"

इस तरह उनकी बेसिर पैर की बातें सुनते सुनते वंशीधर ऊब उठे। तब वे उन स्त्रियों से कहने लगे—

"तुम तो नाहक़ उन्हें और भी डरा रही हो। ज़रूर इलाहाबाद तार गया होगा और दूसरी गाड़ी से वे भी वहाँ पहुँच जायँगे। मैं भी इलाहाबाद ही जा रहा हूँ। मेरे सँग भी स्त्रियाँ हैं। जो ऐसा ही है तो दूसरी गाड़ी के आने तक मैं स्टेशन ही पर ठहरा रहूँगा। तुम लोगों में से यदि कोई प्रयाग उतरे तो थोड़ी देर के लिए स्टेशन पर ठहर जाना। इनको अकेले छोड़ देना उचित नहीं। यदि पता मालूम हो जायगा तो मैं इन्हें इनके ठहरने के स्थान पर भी पहुँचा दूँगा।"

वंशीधर की इन बातों से उन स्त्रियों को वाक्य-धारा दूसरी ओर बह चली,—"हाँ यह बात तो आप भल कही।" "नाहीं भइया! हम पचे काहिके केहुसे कुछ कहो। अरे एक के एक करत न बाय तो दुनिया चलत कैसे बाय?" इत्यादि ज्ञान-गाथा हाने लगी। कोई कोई तो उस बेचारी को सहारा मिलते देख ख़ुश हुए और कोई कोई नाराज़ भी हुए। क्यों, सो मैं आप से नहीं बतला सकती। उस गाड़ी में जितने मनुष्य थे सभी ने इस बिषय में कुछ न कुछ कह डाला था। पिछले कमरे में केवल एक स्त्री जो फ़रासीसी छींट की दुलाई ओढ़े अकेली बैठी थी, कुछ नहीं बोली। कभी कभी घूँघट के भीतर से एक आँख निकाल कर वंशीधर की ओर वह ताक देती थी और, सामना हो जाने पर, फिर मुँह फेर लेती थी। वंशीधर सोचने लगे कि "यह क्या बात है? देखने में तो यह भले घर की मालूम होती है, पर आचरण इसका अच्छा नहीं।"

गाड़ी इलाहाबाद के पास पहुँचने को हुई। वंशीधर उस स्त्री को धीरज दिलाकर आकाश-पाताल सोचने लगे। यदि तार में कोई ख़बर न आई होगी तो दूसरी गाड़ी तक स्टेशन पर ही ठहरना पड़ेगा। और जो उससे भी कोई न आया तो क्या करूँगा? जो हो गाड़ी नैनी से छूट गई। अब साथ की उन अशिक्षिता स्त्रियों ने फिर मुँह खोला। "क भईया, जो केहु बिन टिक्कस के आवत होय तो ओकर का सजाय होला?" "अरे ओंका ई नाहीं चाहत रहा कि मेहरारू के तो बैठा दिहलेन, अउर अपुआ तऊन टिक्कस लेइ के चल दिहलेन।' किसी किसी आदमी ने तो यहाँ तक दौड़ मारी कि रात को वंशीधर इस के ज़ेवर छीन कर रफ़ूचक्कर हो जायँगे। उस गाड़ी में एक लाठी वाला भी था। उसने खुल्लम खुल्ला कहा—"का बाबू जी! कुछ हमरो साझ?" इसकी बात पर वंशीधर क्रोध से लाल हो गये। उन्होंने उसे ख़ूब धमकाया। उस समय तो वह चुप हो गया; पर यदि इलाहाबाद उतरता तो वंशीधर से बदला लिए बिना न रहता।

(४)

वंशीधर इलाहाबाद में उतरे। एक बुढ़िया को भी वहीं उतरना था। उससे उन्होंने कहा कि, "उनको भी अपने सँग उतार लो।" फिर उस बुढ़िया को उस स्त्री के पास बिठाकर आप जानकी को उतारने गये। जानकी से सब हाल कहने पर वह बोली—"अरे जाने भी दो; किस बखेड़े में पड़े हो।" पर वंशीधर ने न माना। जानकी को और उस भद्र महिला को एक ठिकाने बिठाकर आप स्टेशन मास्टर के पास गये। वंशीधर के जातेही वह बुढ़िया, जिसे उन्होंने रखवाली के लिए छोड़ा था, किसी बहाने भग गई। स्टेशन मास्टर से पूछने पर मालूम हुआ कि कोई तार नहीं आया। अब तो वंशीधर बड़े असमञ्जस में पड़े। टिकट के लिए बखेड़ा होगा। क्योंकि वह स्त्री बे-टिकट है। लौटकर आये तो किसी को न पाया। "अरे ये सब कहाँ गईं?" यह कहकर चारों तरफ़ देखने लगे। कहीं पता नहीं। इस पर वंशीधर घबराये। "आज कैसी बुरी साइत में घर से निकले कि एक के बाद दूसरी आफ़त में फँसते चले आ रहे हैं।" इतने में आपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने उस दुलाईवाली को आते देखा। "तू ही उन स्त्रियों को कहीं ले गई है" इतना कहना था कि दुलाई से मुँह खोलकर नवलकिशोर खिल खिला उठे।

"अरे यह क्या? सब तुम्हारी ही करतूत है! अब मैं समझ गया। कैसा ग़ज़ब तुमने किया है? ऐसी हँसी मुझे नहीं अच्छी लगती। मालूम होता है वह तुम्हारी ही बहू थी। अच्छा तो वे लोग गईं कहाँ?"

"वे लोग तो पालकी गाड़ी में बैठी हैं। तुम भी चलो।"

"नहीं मैं सब हाल सुन लूँगा तब चलूँगा। हाँ यह तो कहो, तुम मिरज़ापुर में कहाँ से आ निकले?"

"मिरज़ापुर नहीं मैं तो कलकत्ते से, बल्कि मुग़लसराय से, तुम्हारे साथ चला आ रहा हूँ। तुम जब मोग़लसराय में मेरे लिए चक्कर लगाते थे तब मैं डयोढ़े दरजे में ऊपर वाले बेंच पर लेटे तुम्हारा तमाशा देख रहा था। फिर मिरज़ापुर में जब तुम पेट के धन्धे में लगे थे, मैं तुम्हारे पास से निकल गया पर तुमने न देखा। मैं तुम्हारी गाड़ी में जा बैठा। सोचा कि तुम्हारे आने पर प्रकट होऊँगा। फिर थोड़ा और देख लें, करते करते यहाँ तक नौबत पहुँची। "अच्छा अब चलो, जो हुआ उसे माफ़ करो!"

यह सुन वंशीधर प्रसन्न हो गये। दोनों मित्रों में बड़े प्रेम से बातचीत होने लगी। वंशीधर बोले—"मेरे ऊपर तो जो कुछ बीती सो बीती, पर वह बेचारी, जो तुम्हारे से गुनवान के संग पहली ही बार रेल से आ रही थी, बहुत ही तंग हुई। उसे तो तुमने नाहक़ रुलाया।" वह बहुतही डर गई थी।

"नहीं जी! डर किस बात का था? हम, तुम, दोनों गाड़ी में न थे?"

"हाँ, पर, यदि मैं स्टेशन मास्टर से इत्तिला कर देता तो बखेड़ा खड़ा हो जाता न?"

"अरे तो क्या मैं मर थोड़े ही गया था! चार हाथ की दुलाई की बिसात ही कितनी?"

इसी तरह बातचीत करते करते दोनों गाड़ी के पास आये। देखा तो दोनों मित्र-बधुओं में ख़ूब हँसी हो रही है। जानकी कह रही थी—"अरे तुम जानों क्या! इन लोगों की हँसी ऐसी ही होती है। हँसी में किसी के प्राण भी निकल जायँ तो भी इन्हें दया न आवे।"

ख़ैर दोनों मित्र अपनी अपनी घरवाली को ले कर राज़ी ख़ुशी घर पहुँचे और मुझे भी उनकी यह राम-कहानी लिखने से छुट्टी मिली।

एक वङ्ग-महिला।

"वसन्तसेना"-विलास।

लैला के शुतर का न जरस बजेगा यहाँ
ख़ाक न उड़ेगी कहीं मजनूँ के वन की।
शीरीं के ग़लाम की भी तलख़ी चखोगे नहीं
टाँकी न पहाड़ पै चलेगी कोहकन की॥
काम-कन्दला के नाच गाने की लताफ़त में
गाँठ न खुलेगी माधवानल के मन की।
कञ्चन की चाह छोड़ कञ्चनी अकिञ्चन को
शङ्कर दिखावेगी लगावट लगन की॥ १॥

विक्रम के आगे की है नायिका नवेली यह
शूद्रक-रचित मृच्छकटिक में पाई है।
स्वामिनि मदनिका की, भामिनि रदनिका की,
धूता की सवति, वारवनिता की जाई है॥
मोंसो रोहसेन की है, नाम है "वसन्त-सेना",
चारुदत्तजी की प्राणवल्लभा कहाई है।
राजा रविवरमा की चित्र-चातुरी ने आज
शङ्कर सरस्वती के अङ्क में दिखाई है॥ २॥

१—कोहकन = फ़रहाद।

२—शूद्रक = मृच्छकटिक नाटक का रचयिता।
मदनिका = वसन्तसेना की दासी।
रदनिका = चारुदत्त की दासी।
धूता = चारुदत्त की स्त्री।
रोहसेन = चारुदत्त का पुत्र।
वसन्तसेना = एक वारवनिता की बेटी जिसका यह चित्र है।
चारुदत्त = वसन्तसेना का एक अकिञ्चन मित्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र की विचित्रता में अङ्गों की गठन पर
रसिक सुजान भरपूर ध्यान दीजिये।
कोमल-कलेवरा की सुन्दर सजावट के
रङ्ग ढङ्ग देखिये, प्रसङ्गरस पीजिये॥
जैसो सुन पाई ठीक वैसोही बनाई उस
चतुर चितेरे को बड़ाई बड़ो कीजिये।
मिसरी के साथ बाँस फाँस कासा मेल मान
शङ्कर की भद्दी कविता भी पढ़ लीजिये॥ ३॥

पूरण सुधाकर के अङ्क में कलङ्क बसे
खारी जलकोश रतनाकर ने पाया है।
भानु भगवान काले धब्बों से धबोले रहैं
स्वामी श्यामसुन्दर के सङ्ग योग-माया है॥
सुन्दरी वसन्तसेना बाई का विशुद्ध मन
पालक महीपति के साले का सताया है।
शङ्कर की रचना में ठीक इसी भाँति हाय
भद्दापन दूषण बनारसी समाया है॥ ४॥

ज्वारी को छुड़ाय कर, चोर का बसाया घर,
दूत की दया से मणिमाला मिली यार की।
काम की सताई, आई पीतम ने पाई बाई,
नथुनी उतारली बढ़ाई बेलि प्यार की॥
प्रेमरस पोती रही, मार सही जीती रही,
शङ्कर जलादो जड़ कोटपाल जार की।
राजबल पाया, प्राण-प्यारे को बचाया, अब
दुलही कहाती है पवित्र परिवार की॥ ५॥

सोहनी सुरङ्ग सारी कुरती किनारीदार
कामदार कञ्चुकी करेब की कसी रहै।
ठौर ठौर पूषण* से भूषण प्रकाश करें
ओज की उमङ्ग अङ्ग अङ्ग में लसी रहै॥
बातें अनुराग भरी शील सभ्यता के साथ
शङ्कर धनी की धज ध्यान में धसी रहै।
चित्र सी विचित्र महासुन्दरी वसन्तसेना
मित्र चारुदत्त के चरित्र में बसी रहै॥ ६॥

सोस पै पसार फन लङ्क लौं लपेटा मार
लट की लटक दिखलाती बलखाती थी।
माँग मुख फाड़ काढ़, मोतियों के दाने दाँत,
झूमर की जो में लप लप लपकाती थी॥
शङ्कर शिरोमणि की ज्योति का उजाला पाय
रोष भरी प्यारे रूप-कोष को रखाती थी।
बात वेणी नागिनि की तब की कही है जब
नाचती वसन्तसेना बाई गीत गाती थी॥ ७॥

कज्जल के कूट पर दीप-शिखा सोती है कि
श्यामघन मण्डल में दामिनी की धारा है।
यामिनी के अङ्क में कलाधर की कोर है कि
राहु के कबन्ध पै कराल केतु तारा है॥
शङ्कर कसौटी पर कञ्चन की लीक है कि
तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है।
काली पाटियाँ के बीच मोहिनी की माँग है कि,
ढाल पर खाँडा कामदेव का दुधारा है॥ ८॥

४—पालक = उज्जैन का राजा, उसका साला।
संस्थानक = शहर का कोतवाल, वसन्तसेना का महावैरी।

५—ज्वारी = संवाहक नामक एक ब्राह्मणपुत्र जो बौद्ध विरक्त बन गया था। वसन्तसेना ने उसको अपना स्वर्ण-कङ्कण दे कर अन्य ज्वारियों के बन्धन से छुड़ाया था।

चोर = शार्विलक नाम का एक कामी पुरुष जिसने चारुदत्त का घर फोड़ कर वसन्तसेना की धरोहर ज़ेवर चुराये और मदनिका को लाकर दिये। वसन्तसेना ने वे ज़ेवर और अपनी दासी मदनिका उसी चोर को दे दी।

दूत = मैत्रय, चारुदत्त का मित्र जो धूता की माला लेकर गहने चोरी जाने पर वसन्तसेना के पास आया था।

मार सही जीती रही = वसन्तसेना चारुदत्त के पास बाग़ में जाते समय सवारी के बदल जाने पर संस्थानक के जाल में पड़ी। उसने इसको फाँसी देकर पत्तों के ढेर में गाड़ दिया और चारुदत्त को उसका हत्यारा सिद्ध करके न्यायालय से सूली का दंड दिलाया। वसन्तसेना पत्तों के ढेर में कुलबुलाई। उसे बौद्ध विरक्त ने निकाला। पालक का राज्य छीन कर आर्य्यक राजा बना। उस नये राजा ने चारुदत्त को बचाया और वसन्तसेना को बधू की पदवी प्रदान की। धूता सती होने से बची। रोहसेन अनाथ न हुआ।

* पूषण = सूर्य्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नत उरोज यदि युगल उमेश हैं तो
काम ने भी देखो दो कमानें ताक तानी हैं।
शङ्कर कि भारती के भावने भवन पर
मोह महाराज की पताका फहरानी हैं॥
किंवा लट नागिनि की साँवली सँपेलियों ने
आधे विधु-बिम्ब पै विलास विधि ठानी हैं।
काटती हैं कामियाँ को, काटती रहैंगी, कहो
भृकुटी कटारियाँ का कैसा कड़ा पानी है॥ ९॥

तेज न रहेगा तेजधारियाँ में नाम को भी,
मङ्गल मयङ्क मन्द मन्द पड़ जायँगे।
मीन बिन मारे मर जायँगे सरोवर में,
डूब डूब शङ्कर सरोज सड़ जायँगे॥
चौंक चौंक चारों ओर चौकड़ी भरेंगे मृग,
खञ्जन खिलाड़ियों के पङ्ख झड़ जायँगे।
बोलो इन अँखियों की होड़ करने को अब
कौन से अड़ीले उपमान अड़ जायँगे॥ १०॥

आँख से न आँख लड़ जाय इसी कारण से
भिन्नता की भींत करतार ने लगाई है।
नाक में निवास करने को कुटी शङ्कर कि
छवि ने क्षपाकर की छाती पै छवाई है॥
कौन मान लेगा कीर-तुण्ड की कठोरता में
कोमलता तिल के प्रसून की समाई है।
सैकड़ों नकीले कवि खोज खोज हारे पर
ऐसी नासिका की और उपमा न पाई है॥ ११॥

अम्बर में एक यहाँ दौज के सुधाकर दो
छोड़ें वसुधा पै सुधा मन्द मुसकान की।
फूले कोकनद में कुमुदिनी के फूल खिलें
देखिये विचित्र दया भानु भगवान की।
कोमल प्रवाल के से पल्लवों पै लाखा लाल
लाखे पर लालिमा विलास करे पान की।
आज इन ओठों का सुरंगी रस पान कर
कविता रसीली भई शङ्कर सुजान की॥ १२॥

आनन-कलानिधि में दूनी कला देख देख
चाहक-चकोरों के उदास उर ऊलेंगे।
दाड़िम के दानी फल दाने उगलेंगे नहीं
कुन्द कलियों के झुण्ड झाड़ में न झूलेंगे॥
सीप के सपूतों पर शोभा न करेगी प्यार
शङ्कर चमेली और मोतिया न फूलेंगे।
दाँतों की बतीसी मणि मालिका हँसी की इस
दामिनी की दूती को न देवता भी भूलेंगे॥ १३॥

शंख जो बराबरी की घोषणा सुनावेगा तो
नार कट जायगी उदर फट जायगा।
शङ्कर कली की छवि कदली दिखावेगा तो
ऐंठ अट जायगी छवाउ छट जायगा॥
कानन में कोकिल सुराग सरसावेगा तो
होड़ हट जायगी घमंड घट जायगा।
कोई कण्ठ कंठी इस कण्ठ की बँधावेगा तो
हुंडी पट जायगी प्रसाद बट जायगा॥ १४।

उन्नति के मूल ऊँचे उर अवनीतल पै
मन्दिर मनोहर मनोज के यमल हैं।
मेल के मनोरथ मथेंगे प्रेमसागर को
साधन उतङ्ग युग मन्दर अचल हैं॥
उद्धत उमङ्ग भरे यौवन खिलाड़ी के ये
शङ्कर से गोल कड़े कन्दुक युगल हैं।
तीनों मत रूखे रसहीन हैं उरोज पीन
सुन्दर शरीर सुरपादप के फल हैं॥ १५॥

कञ्ज से चरण कर, कदली से जंघ देखो,
क्षुद्र तण्डुला से दो उरोज गोल गोल हैं।
कृष्णकुण्डला से कान, भृङ्गवल्लभा से दृग,
किंशुक सी नासिका, गुलाब से कपोल हैं॥
चञ्चरीक पटली से केश, नई कोंपल से
अधर अरुण, कलकण्ठ के से बोल हैं।
शङ्कर वसन्तसेना बाई में वसन्त के से
सोहने सुलक्षण अनेक अनमोल हैं॥ १६॥

कंचनी की रीति से रही न छैल छोकड़ों में
कुल-दुलहिन के से काम करती रही।

१६—क्षुद्रतण्डुला = पोस्त का फल, अफ़ीम की बोंड़ी।
कृष्णकुण्डला = पसेंदू का फूल, कृष्णकान्ता।
भृङ्गवल्लभा = गुलेनरगिस, देवदारिका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरता उदारता सुशीलता प्रवीणता से
शङ्कर प्रसिद्ध निज नाम करती रही ॥
अन्त लौं भलाई को न भूली किसी भाँति से भी
प्रेम का प्रचार आठौंयाम करती रही ।
चित्र के समान कर मस्तक को लाय लाय
ज्ञानी गुरु लोगों को प्रणाम करती रही ॥ १७ ॥

बाग़ की बहार देखी मोसिमे बहार में तो
दिले अन्दलीब को रिझाया गुलेतरसे ।
हाय चकराते रहे आसमाँ के चक्कर में
तो भी लौ लगी ही रही माह की महर से ॥
आतिशे मुसीबत ने दूर की कुदूरत को
बात की न बात मिली लज़्ते शकर से ।
शङ्कर नतीजा इस हाल का यही है बस
सच्ची आशक़ी में नफ़ा होता है ज़रर से ॥ १८ ॥

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा (शङ्कर)

ज्योतिष-वेदाङ्ग ।

यः परस्य विषमं विचिन्तयेत्प्राप्नुयात् स मनुजः स्वयं हि तत् ।
पूतना हरिवधार्थमाययौ प्राप सैव वधमात्मनस्ततः ॥

इस विषय पर सरस्वती में दो लेख निकल चुके हैं। एक जनवरी ०७ की संख्या में, जिसमें हमने "बार्हस्पत्य" जी के भाष्य की आलोचना की है। दूसरा फ़रवरी ०७ की संख्या में, जिसमें "पर्य्यालोचक" जी ने महामहोपाध्याय श्रीपण्डित सुधाकर द्विवेदीजी के सुधाकर-भाष्य पर अपने विचार प्रकट किये हैं। "पर्य्यालोचक" जी का लेख पण्डितों को बहुत पसन्द आया जान पड़ता है। कई विद्वानों ने उसकी प्रशंसा हमें लिख भेजी है। इनमें एक आध ज्योतिषाचार्य्य भी हैं। "पर्य्यालोचक" जी का लेख निकलने के बाद, मार्च के "हिन्दुस्तान-रिव्यू" में "बार्हस्पत्य" जी ने पण्डित सुधाकर जी के भाष्य का जवाब दिया है। उसे पढ़ कर खेद हुआ। यह हमें कभी स्वप्न में भी ख़याल न था कि द्विवेदी जी ऐसी ऐसी ग़लतियाँ करेंगे। परन्तु भूल किससे नहीं होती? भ्रम हो जाना मनुष्य के स्वभाव में दाख़िल है। पण्डित सुधाकर जी की लेखनी से पुंल्लिङ्ग 'क्रम' शब्द का नपुंसकलिङ्ग में लिखा जाना इस बात का प्रमाण है।

ज्योतिष-वेदाङ्ग एक छोटा सा ग्रन्थ है; पर पुराना होने के कारण है बड़ा आकर। उसमें भिन्न भिन्न कुल ४९ श्लोक हैं। ऋग्वेदी पाठ बहुत जगह यजुर्वेदी पाठ से नहीं मिलता। दोनों में कुछ अन्तर है। इस ग्रन्थ के समझने की कोशिश में हिन्दुस्तानी विद्वानों ने भी बहुत सिरखपी की और योरपवालों ने भी। पर आज तक उसके मुशकिल मुशकिल श्लोकों का मतलब उनको समझ में न आया। ४९ में से २३ का अर्थ तो डाक्टर टीबो आदि ने समझ लिया था; पर बाक़ी के २६ का अर्थ समझना लोहे के चने था। इन्हीं २६ का मतलब "बार्हस्पत्य" ने लिखकर इस वेदाङ्ग का उद्धार किया है। इन २६ में से १६½ श्लोकों का सही सही अर्थ दक्षिण के पण्डित शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने, कोई १० वर्ष हुए, पहले ही कर दिया था; पर उनकी पुस्तक "बार्हस्पत्य" को अपना भाष्य लिखने के बाद मिली। अतएव यह कहना अयुक्त नहीं कि बिना किसी की मदद के उन्होंने अकेले ही अवशिष्ट २६ श्लोकों का अर्थ किया। यदि दीक्षितजी के किये हुए अर्थवाले पद्य निकाल डाले जायँ ता भी १६½ श्लोकों के अर्थ करने का श्रेय सर्वथा "बार्हस्पत्य" ही को है।

डाक्टर टीबो की विद्वत्ता कौन नहीं जानता? उन्होंने संस्कृत-ग्रन्थों के आधार पर ज्योतिःशास्त्र के विषय में बहुत कुछ लिखा है। विलायत के बड़े बड़े पण्डित, विशेष करके जिन्हें हिन्दुस्तान में रहने का मौक़ा होता है, संस्कृत-ग्रन्थों के विषय में अपना मत प्रकाशित करने के पहले, इस देश के अच्छे अच्छे पण्डितों की राय ले लेते हैं। इस देश में रहने वाले विलायती विद्वान् तो एक आध भारतवर्षीय पण्डित को बहुधा अपना वेतनभोगी बनाये रखते हैं। यह बहुत अच्छी बात है। इससे उनको बड़ा लाभ होता है। संस्कृत-ग्रन्थों का मर्म्म जितना इस देश-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले जान सकते हैं उतना अन्य देशवाले नहीं। टीबो साहब बीस बाईस वर्ष तक काशी में थे। संस्कृत-कालेज से सम्बन्ध होने के कारण वे काशी के बड़े बड़े पण्डितों से ख़ूब परिचित हो गये थे। जिन विषयों का उन्हें शौक था उनमें पारङ्गत पण्डित हमेशा उनके पास रहते थे। इस दशा में यदि उन्हें किसी बात में कोई शङ्का होती रही होगी तो ज़रूर ही वे उसकी निवृत्ति पण्डितों की मदद से कर लेते रहे होंगे। डाक्टर टीबो भी ज्योतिषी, पण्डित सुधाकरजी भी ज्योतिषी। दोनों विद्वान् एक ही कालेज में। अतएव जब तक डाक्टर टीबो काशी में रहे, तब तक ज्योतिःशास्त्र के विषय में, पहले पण्डित बापूदेव शास्त्री का, फिर उनके सुयोग्य शिष्य पण्डित सुधाकर द्विवेदीजी का, नित्य सम्बन्ध रहा। हम यह माने लेते हैं कि इस शास्त्र में डाक्टर टीबो की अपेक्षा पण्डित सुधाकरजी अधिक गति रखते हैं। इससे यही सिद्ध होगा कि इस शास्त्र के सम्बन्ध में डाक्टर टीबो को जो मुशकिलें दरपेश हुई होंगी उन्हें पण्डित सुधाकरजी से हल कराने की उन्होंने ज़रूर कोशिश की होगी। अब देखिए, डाक्टर टीबो आज कोई २० वर्ष से बराबर कह रहे हैं कि ज्योतिष-वेदाङ्ग के कितने ही श्लोकों का आशय मेरी समझ में नहीं आता। इसमें कोई बनावट तो है नहीं। क्योंकि यदि समझ में आता तो वे ज़रूर ही लिख देते। कुछ का अर्थ उन्होंने लिखा ही था। अच्छा, तो क्या इससे यह नतीजा नहीं निकलता कि किसी और पण्डित ने भी उन श्लोकों का अर्थ डाक्टर टीबो को नहीं बतलाया? अथवा क्या यह बात समझ में आसकती है कि बहुत वर्ष तक एक ही कालेज में रह कर भी डाक्टर टीबो ने इस बात का ज़िक्र पण्डित सुधाकर जी से नहीं किया? अथवा क्या यह विश्वास हो सकता है कि पण्डित सुधाकरजी सदृश साधु-स्वभाव और सत्यनिष्ठ पण्डित ने जान बूझ कर उन श्लोकों का अर्थ डाक्टर साहब को नहीं बताया?

जहाँ तक हम जानते हैं, काशी के जितने विद्वान् डाक्टर टीबो के मिलनेवालों में से थे, सबको यह मालूम था कि डाक्टर साहब ज्योतिष-वेदाङ्ग का मतलब समझना चाहते हैं। अतएव जिसने उनका जो अर्थ बताया, वह यदि उन्हें ठीक मालूम हुआ, तो उसे उन्होंने प्रकाशरूप में स्वीकार कर लिया। सरल-स्वभाव और शुद्ध-हृदय विद्वानों का यही धर्म्म है। अब, विचार करने की बात है, कि यदि ज्योतिष-वेदाङ्ग का उद्धार पण्डित सुधाकरजी के बायें हाथ का खेल था—यदि आठही दस दिन में वे समग्र ग्रन्थ पर भाष्य रच सकते थे—तो दो चार दिन मेहनत करके डाक्टर टीबो की मुशकिलों को उन्होंने क्यों न हल कर दिया? ज्योतिषियों को सैकड़ों वर्ष आगे की घटनाओं का ज्ञान हो जाया करता है। शायद पण्डित सुधाकरजी ने जान लिया हो कि बार्हस्पत्य-भाष्य पन्द्रह बीस वर्ष बाद निकलनेवाला है ही। उसके निकलने ही पर एक नया भाष्य बना कर इस शास्त्र का उद्धार करेंगे! परन्तु जो कुछ यहाँ तक लिखा गया उससे तो यही मालूम होता है कि जैसे डाक्टर टीबो इस वेदाङ्ग का सम्पूर्णरूप से उद्धार करने में असमर्थ रहे वैसे ही पण्डित सुधाकरजी भी। फ़रक़ इतना ही रहा कि डाक्टर साहब ने अपनी असमर्थता को स्वीकार कर लिया, पण्डित सुधाकर जीने नहीं किया।

"हिन्दुस्तान रिव्यू" की मार्च की संख्या में "बार्हस्पत्य" जी का लेख जो प्रकाशित हुआ है उस में उन्होंने पण्डित सुधाकर जी के भाष्य की अच्छी आलोचना की है। पण्डित जी ने "बार्हस्पत्य" के भाष्य में जो भ्रम दिखाये थे, "बार्हस्पत्य" जी ने प्रायः उन सब का खण्डन करके सुधाकरजी की 'सुधा' पर बार बार चुटकियाँ ली हैं। उन्होंने साफ़ साफ़ लिख दिया है कि पण्डित सुधाकर जी के भाष्य का अधिकाँश बार्हस्पत्य-भाष्य की नक़ल है। अथवा यों कहिए कि "बार्हस्पत्य" जा की कही हुई बातों का कातकूत किया हुआ रूपान्तर* मात्र है। "बार्ह-

* "The so-called Bhāshya is, for the most part, either a copy or a *rechauffe* of my emendations, translations and explanations of the different Verses of the Jyotisha Vedānga." Bārhaspatyah.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पत्य" ने पण्डित सुधाकर जी की अनेक ग़लतियाँ बतलाकर, अपने भाष्य पर किये गये आक्षेपों को सूद सहित पण्डितजी को लौटा दिया है। बार्हस्पत्य-कृत समालोचना के दो चार नमूने देखिए। जिसे सब देखने की इच्छा हो वह "हिन्दुस्तान-रिव्यू" पढ़े।

(१) पण्डित सुधाकर जी ने अपने भाष्य में 'अदितिः' और 'बृहस्पतिः' इन दो देवताओं को 'अदितिबृहस्पती' कर दिया है। बृहस्पति एक नक्षत्र का स्वामी है, और अदिति दूसरे नक्षत्र का। पर इन दोनों का एक जोड़ कर देने से 'इन्द्राग्नी' की तरह वह एकही नक्षत्र की अधिष्ठात्री देवता हो गया। भला कहीं ऐसे मौक़ों पर भी पृथक् पृथक् दो देवता एक में जोड़े जा सकते हैं? शायद यह 'सुधा' का कोई करिश्मा है!

(२) पण्डित सुधाकर जी ने पञ्चसिद्धान्तिका ग्रन्थ का उद्धार किया है। इसके ७ वर्ष बाद शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने ज्योतिष-वेदाङ्ग पर अपनी पुस्तक लिखी। उसमें दीक्षित जी ने लिखा है कि ज्योतिष वेदाङ्ग के यजुर्वेदी पाठ के उनतीसवें और तीसवें श्लोक का मतलब मेरी समझ में अच्छी तरह नहीं आया। दीक्षितजी ने पण्डित सुधाकरजी की पञ्चसिद्धान्तिका, अपनी पुस्तक लिखने के पहले ज़रूरही देखी होगी। तिस पर भी पण्डित सुधाकर जी कहते हैं कि मैंने अपनी सिद्धान्तिका में इन श्लोकों का अर्थ पहले ही लिख दिया है। परन्तु आपका सिद्धान्तिका-भाष्य जो देखा गया तो वहाँ इन श्लोकों के भावार्थ का कहीं नामोनिशान तक नहीं। शायद पण्डित सुधाकर जी की स्मरण शक्ति में फ़र्क़ आ गया है! "बार्हस्पत्य" जी कहते हैं कि यहाँ पण्डित सुधाकर जी ने सामासिक शब्द 'द्विषष्टिहीनः' को 'द्विषष्ट्याहीनः' करके छन्दोभङ्ग तक कर डाला है! मनमाने पाठ-संशोधन की यह करामात है।

(३) पण्डित सुधाकर जी एक श्लोक की व्याख्या में कहते हैं कि १२½ पल १ प्रस्थ के बराबर होता है और ५० पल १ आढक के बराबर। यह बहुत ही भ्रमोत्पादक उक्ति है। यथार्थ बात यह है कि ५० पल पानी १ आढक जौ के बराबर होता है। पल और आढक का पारस्परिक सम्बन्ध १–६४ का है। पण्डित जी ने एक स्थान के अक्षांश अंश, कला और विकला में बतला कर गणित में अपनी पारदर्शिता दिखलाई है। पर लगभग ३ अंशों की ग़लती आपने की है। स्थानों की स्थिति बतलाने में विकला तक का गणित करने वाले ज्योतिषियों का तीन तीन अंश की ग़लती करना कितने आश्चर्य्य की बात है!

(४) ऋग्वेदी पाठ के ३४ वें श्लोक के भाष्य में पण्डित सुधाकर जी कहते हैं–"जब शुक्ल-द्वितीया से लेकर चतुर्दशी तक क्रम क्रम से उदित हुआ चन्द्रमा चतुर्दशी तिथि को दिन प्राप्त करे तब वह चतुर्दशी यज्ञ के दिन से पहला उपवास दिन होता है"। इस पर "बार्हस्पत्य" ने सुधाकर-भाष्य उद्धृत करके दिल्लगी की है और लिखा है कि जब सवेरे चन्द्रमा सूर्य्य के साथ उदय होगा तब, उस समय, अमावास्या या प्रतिपद् होगी। चतुर्दशी कैसी? इसी तरह "बार्हस्पत्य" जी ने पण्डितजी के आक्षेपों का उत्तर भी दिया है और उनकी ग़लतियाँ भी बतलाई हैं। ऊपर की उक्तियाँ सब "बार्हस्पत्य" ही की हैं, हमारी नहीं।

(५) यजुर्वेद-ज्योतिष वेदाङ्ग के बोसवें श्लोक में 'एकादशाभ्यस्तां' का संशोधन पण्डित सुधाकर जी ने किया है 'अर्कदशाभ्यस्तां'। मान लीजिए, सुधाकरजी का संशोधन ठीक है। पर उनका किया हुआ अर्थ विलक्षण है। सर्वसम्मत रीति से इसका अर्थ होना चाहिए '१०१२ से गुणा किया गया'। पर यह रीति पण्डित जी को पसन्द नहीं। आप की राय में इसका मतलब है '(१२ × १० =) १२० से गुणा किया गया'! यह सब करके भी अवशिष्ट अपूर्णांक ३/६ को आप ठिकाने न लगा सके। इस पर आपने वादा किया कि एक और श्लोक के भाष्य में उसका हिसाब समझावेंगे। पर वहाँ उसका ऐसा अर्थ लगाया कि अर्थ का अनर्थ हो गया। इस पर "बार्हस्पत्य" जी ने चुटकी ली है कि वेदों की आँख में यह सुधा डालना है या धूल झोंकना?

पर्य्यालोचक ने तो दो ही तीन भूलें दिखलाई थीं, पर "बार्हस्पत्य" जी की समालोचना से मालूम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ कि यहाँ कुछ और ही बात है। कौन विश्वास करेगा कि विश्वविख्यात महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर जी का भाष्य ऐसा होगा। सरस्वती में सौधाकर और बार्हस्पत्य भाष्यों का अनुवाद देकर मुक़ाबला करने के लिए जगह नहीं। जिनको इसका रहस्य जानना हो वे "बार्हस्पत्य" को आलोचना पढ़ें और फिर दोनों भाष्यों का मिलान करके यह देखें कि दोनों में कितना सादृश्य है। साथ ही वे इस बात को भी याद रक्खें कि "बार्हस्पत्य" भाष्य पहले निकला है, सौधाकर भाष्य पीछे।

"बार्हस्पत्य"जी का भाष्य बड़े परिश्रम से लिखा गया है। उससे मालूम होता है उन्होंने ज्योतिष-वेदाङ्ग विषय का अच्छा अध्ययन किया है। ख़ूब खोज करके उन्होंने अपने भाष्य को रचना की है। उसमें उन्होंने यथासम्भव कोई बात नहीं छोड़ी। कई जगह उन्होंने डाक्टर टीबो के मत का खण्डन किया है; पर नम्रतापूर्वक, उद्दण्डतापूर्वक नहीं। ऐसा करना अनुचित नहीं कहा जा सकता। खण्डन-मण्डन की प्रणाली बहुत पुरानी है। प्रत्येक विद्वान् को अपना मत प्रकाशित करने की स्वतन्त्रता है। सम्भव है पण्डित सुधाकर जी को "बार्हस्पत्य" की यह कारवाई अच्छी न लगी हो। क्योंकि डाक्टर टीबो से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। शायद उन्हों ने कहा हो—आप ने टीबो साहब पर कटाक्ष किये! लीजिए हम अपना अलगही भाष्य लिखकर आपकी ग़लतियाँ बताते हैं! परन्तु हमें विश्वास नहीं कि पण्डित सुधाकर जी सदृश उदारचरित विद्वान् ऐसे विचारों से प्रेरित हो कर कोई काम करेंगे। उन्हों ने बार्हस्पत्य-भाष्य के होते भी अपने भाष्य की ज़रूरत समझी होगी। इसी से उन्हों ने तत्काल उसकी रचना की।

ख़ैर "बार्हस्पत्य"जी ने ज्योतिष-वेदाङ्ग पर भाष्य बना दिया। अब सर्वसाधारण को अधिकार है, उन की बातों को मानें या न मानें। यदि उनकी दृष्टि में सुधाकर-भाष्य ही उत्तम जचे तो उसी को मानें। "बार्हस्पत्य" जी की शिकायत इसमें नहीं चल सकती। उनका जो काम था उन्होंने कर दिया। जो काम अब सर्वसाधारण का है उसे वे करेंगे। हाँ एक बात से हमें खेद ज़रूर हुआ है और हम समझते हैं और लोगों को भी होगा। वह बात यह है कि जो "बार्हस्पत्य" ब्राह्मणों का इतना आदर करते हैं, और जिनकी विद्याभिरुचि और योग्यता को देख कर ब्राह्मण भी हृदय से आशीर्वाद देते हैं, उन्हीं बार्हस्पत्य को, सौधाकर भाष्य निकलने के कारण, उसका खण्डन करना पड़ा। जिनके भाष्य की भूमिका नम्र और शिष्टतापूर्ण वचनों से भरी हुई है उनको पण्डित सुधाकर जी के ख़िलाफ़ लेखनी उठानी पड़ी। जो केवल ज्योतिष-वेदाङ्ग का उद्धार करना चाहते थे उनको दूसरों के दोष देखने और दिखाने पड़े। यह सब समय का फेर है :—

सत्यं गुणा गुणवतां विधिवैपरीत्याद्—
यत्नार्जिता अपि कलौ विफला भवन्ति।
साफल्यमस्ति सुतरामिदमेव तेषां
यत्तापयन्ति हृदयानि पुनः खलानाम्॥

पण्डित सुधाकर जी के साथ भी हमारी हार्दिक सहानुभूति है। भारतवर्ष में पण्डित जी के सदृश विद्वान् शायद ही दो एक और निकलें। ज्योतिः-शास्त्र में आपकी गति अद्वितीय है। कोई हज़ार वर्ष पहले ब्रह्मगुप्त ने इस शास्त्र में जैसा नाम पाया था, वैसाही आजकल पण्डित सुधाकर जी का है। आपने अँगरेज़ी-सिद्धान्तानुयायी गणित में विज्ञता प्राप्त करके उसका सार संस्कृत और हिन्दी की कई पुस्तकों में लिखा है। आपने इस देश के गणित और ज्योतिष-शास्त्र की पुस्तकें भी, उनकी टीका-टिप्पणियाँ और भाष्य एकत्र करके, शुद्धतापूर्वक छपवाई हैं। अँग-रेज़ी के स्कूल और कालेजों के प्रोफ़ेसर अँगरेज़ी पढ़ने वालों के लिए जो काम करते हैं वही आपने भारतवर्ष के पण्डितों के लिए किया है और बड़ी योग्यता से किया है। परन्तु गुणदोषविवेचन-पूर्वक सब बातों का गहरा विचार करके, पुराने शास्त्रों का उद्धार करने में, हमारे देशवासी प्राचीन-पद्धति के पण्डितों को अभी ज़रा कम अभ्यास है। इसी से ज्योतिष-शास्त्र के पारगामी पण्डित, बार्हस्पत्य-भाष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अपेक्षा पण्डित सुधाकर जी के भाष्य को शायद हीन समझें। कोई बीस वर्ष हुए, पण्डित सुधाकर जी ने, डाक्टर टीबो की सहायता से, ज्योतिष की प्रसिद्ध पुस्तक पञ्चसिद्धान्तिका का उद्धार किया था। इस कार्य्य का निर्वाह आप से हुआ भी बहुत अच्छी तरह से। यदि उन्हीं दिनों में पण्डित जी ज्योतिष-वेदाङ्ग पर भाष्य बनाते, अथवा अब भी छपवाने के पहले डाक्टर टीबो की सम्मति ले लेते, तो बहुत अच्छा होता। तो शायद बार्हस्पत्य जी को उनके भाष्य का खण्डन करने का मौक़ा ही न मिलता। क्योंकि आक्षेप योग्य कोई बातें उसमें लिखने को सलाह डाक्टर टीबो कभी न देते। ख़ैर जो कुछ हुआ, हो गया। अब सोच करना व्यर्थ है।

पण्डित सुधाकर जी हिन्दी से भी प्रेम रखते हैं। हिन्दी में आप प्रबन्ध भी लिखते हैं, कविता भी करते हैं। क्या ही अच्छा हो यदि आप सूर्य्यसिद्धान्त आदि ज्योतिःशास्त्र के मुख्य मुख्य ग्रन्थों का आलोचना-पूर्वक हिन्दी में अनुवाद करके इस शास्त्र के प्रचार की वृद्धि करें। अथवा यदि इसे वे विशेष परिश्रम का काम समझें तो अपने शिष्यों को सौंपकर इस उत्तर वय में आनन्द से राम नाम का स्मरण करें। सरकार की कृपा से, अँगरेज़ी पढ़े हुए, नई तरह के, अब बहुत संस्कृतज्ञ पण्डित होते जाते हैं। खण्डन मण्डन और बहु-परिश्रम-सापेक्ष खोज के झगड़े से भरे हुए प्राचीन ग्रन्थों के उद्धार का काम पण्डित सुधाकरजी को अब उन्हींके सिपुर्द कर देना चाहिए।

विन्यस्तभारस्तरुणेषु तीक्ष्णबुद्धिप्रकर्षेषु हरिं भजस्व।
न शोभते श्वापदपुङ्गवोऽपि गलन्नखो मत्तमतङ्गजेषु॥

यह लेख लिख चुकने पर "चिकित्सा" नाम की १२ पृष्ठ की एक संस्कृत-पुस्तक हमारे देखने में आई। इसे काशी के "ओझा" उपनामधारी "मैथिलवृन्द" ने लिख कर "प्राभाकरी-यंत्रालय" में छपाया है। पण्डित सुधाकर द्विवेदीजी के भाष्य के उत्तर में "बार्हस्पत्य" जी का जो लेख मार्च के "हिन्दुस्तान-रिव्यू" में निकला है उसीकी यह चिकित्सा है। इस चिकित्सा के कर्त्ता "जगद्गुरु पण्डितवर श्रीसुधाकर द्विवेदि" जी के मैथिल शिष्य हैं। इस बात को लेखक महोदयों ने कई जगह पर ख़ुद ही क़बूल किया है। इस पुस्तक में "बार्हस्पत्य" जी की बातों का जवाब तो राम का नाम ही है, बुरी बुरी गालियाँ ही उनको अधिक दी गई हैं। जिन काशी के पण्डितों से सारा भारत उचित और न्यायपूर्ण "व्यवस्था" पाने का विश्वास रखता है उन्हों ने "बार्हस्पत्य" के लेख की अच्छी "व्यवस्था" दी! बार्हस्पत्य ने अपने लेख में मीठा विनोद ज़रूर किया है। परन्तु उन्होंने शिष्टता की सीमा का ज़रा भी अतिक्रमण नहीं किया। पण्डित सुधाकरजी के शिष्यों ने इसकी कुछ परवा नहीं की। वे शिष्टता की सीमा से योजनों दूर चले गये हैं और खुल्लमखुल्ला बार्हस्पत्य जी को गालियाँ सुनाई हैं—ऐसी गालियाँ जिनका उल्लेख हम सरस्वती में नहीं कर सकते।

पण्डित सुधाकरजी के शिष्यों ने जब यह पुस्तक लिखी है तब पण्डित जी ने क्या इसे छपने से पहले न देखा होगा? और यदि देखा तो क्या उनकी अनुमति से यह पुस्तक छपी? विश्वास तो नहीं होता। संस्कृत के महाविद्वान् ही नहीं, "जगद्गुरु", अपने प्रतिस्पर्द्धी को गालियाँ दिलाना पसन्द करेंगे—यह बात समझ में नहीं आ सकती। और लोगों से ऐसे ऐसे काम हो जायँ तो आश्चर्य्य नहीं। पर परमशिष्ट, वयोवृद्ध और संस्कृत के इतने बड़े पण्डित से यदि ऐसी बातें हो जायँ तो बड़ा आश्चर्य्य है। इसी से हम को विश्वास नहीं होता कि पण्डित सुधाकर जी की अनुमति से यह पुस्तक प्रकाशित हुई है।

अच्छा, पण्डित सुधाकर जी को "गुरुवर" कहने वाले ये मैथिल शिष्य कौन हैं? पण्डित जी बनारस-कालेज में प्रोफ़ेसर हैं। ये शिष्य भी इसी कालेज के विद्यार्थी होंगे, या किसी समय रहे होंगे। इस कालेज के अध्यक्ष हैं वोनिस साहब। आप संस्कृत के उत्कृष्ट विद्वान् हैं। क्या साहब ने यह "चिकित्सा" देखी? न देखी हो तो ज़रूर देखें। देखने से उन्हें मालूम हो जायगा कि उनके कालेज के संस्कृत-विभाग में कैसी शिष्टता सिखलाई जाती है! और कालेज की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत-शिक्षा की बदौलत वहाँ के छात्र कैसे कैसे उज्ज्वल काम करते हैं!! यदि किसी विद्या-विषय में पण्डित सुधाकर द्विवेदी और वीनिस साहब का मत-भेद हो जाय तो पण्डित जी का शिष्यसमुदाय शायद साहब की भी ऐसे ही "चिकित्सा" किये बिना न रहे!!!

खजुराहो।

काल बड़ा बली है। जहाँ नदियाँ थीं वहाँ मरुस्थल है; जहाँ लहराते हुए खेत थे वहाँ गगनचुम्बी पर्वत हैं; जहाँ विशालशिखर राजप्रासाद थे वहाँ निविड़ कानन है। यह काल ही की करतूत है। खजुराहो के साथ काल ने कराल कुटिलता का व्यवहार किया है। उसकी सारी समृद्धि का उसने संहार कर डाला; विश्व-कर्म्मा के शिल्पकर्म्म को मात करनेवाली अनेक इमारतों को उसने ख़ाक में मिला दिया; बड़े बड़े पराक्रमी राजाओं, परमार्थज्ञानी पण्डितों, प्रति-कुवेर धनाढ्यों का नाम तक उसने शेष न रक्खा! सच मुच काल बड़ा बली है; उसका प्रतिद्वंद्वी संसार में नहीं। खजुराहो को उसने क्या से क्या कर डाला। एक वह समय था, जब, वह, हज़ारों वर्ष तक, एक विस्तृत प्रदेश की राजधानी था। एक यह समय है, कि लोग उसका नाम तक नहीं जानते।

आबू रिहान, इब्न भटूटा और हुएनसांग के ऐतिहासिक लेखों से मालूम होता है कि बुँदेलखण्ड का प्राचीन नाम जजोती, या जझौती, या जझावती था। यह शब्द यजुर्होता का अपभ्रंश जान पड़ता है। यहाँ यजुर्होता, अर्थात् जजोतिया, लोग रहतेथे। जैसे कान्यकुब्ज देश के नाम से कान्यकुब्ज, मिथिला के नाम से मैथिल और द्रविड़ के नाम से द्राविड़ लोगों ने प्रसिद्धि पाई; वैसे ही जजोती प्रान्त के रहनेवालों ने जजोतिया नाम पाया। बुँदेलखण्ड में अब भी जजोतिया ब्राह्मण रहते हैं; ब्राह्मण ही नहीं, बनिये तक जजोतिया कहलाते हैं। इस प्रान्त को छोड़ कर, इस देश में, जजोतिया प्रायः और कहीं नहीं रहते। खजुराहो, इसी जजोतिया प्रान्त की प्राचीन राजधानी था। इसे अब कोई कोई खजुरों भी कहते हैं।

खजुराहो का सारा वैभव नाश हो गया है। वह समूल ही उजड़ गया है। परन्तु इस भग्नावस्था में भी वहाँ कोई ३० मन्दिर अब तक विद्यमान हैं जो उसकी पुरानी समृद्धि का साक्ष्य दे रहे हैं। इनमें से ६ मन्दिर जैनों के, एक बौद्धों का और शेष २३ हिन्दुओं के हैं।

हमीरपुर ज़िले में महोबा एक तहसील है। वही अब सदर स्टेशन होनेवाला है। वह चरखारी से दस बारह मील है। जो रेलवे-लाइन मानिकपुर से झाँसी को जाती है, उस पर एक स्टेशन महोबा में है। महोबा से खजुराहो ३४ मील, छत्रपुर से २७ मील, और पन्ना से २५ मील है। खजुराहो से केन नदी ८ मील है। १०२२ ईसवी में महमूद ने कालिंजर पर चढ़ाई की थी। उसके साथ अरब का रहनेवाला आबू रिहान नामक एक इतिहास-लेखक था। पहले पहल उसी के लेख में खजुराहो का नाम पाया जाता है। वह उसे कजुराहह कहता है और जजहुति की राजधानी बतलाता है। इसके अनन्तर इब्न भटूटा के ग्रन्थ में खजुराहो का नाम मिलता है। इसका ग्रन्थ अरबी में है; ली साहब ने उसका अनुवाद अँगरेज़ी में किया है। इब्न भटूटा १३३५ ईसवी में इस देश में आया था। वह खजुराहो को कजुरा कहता है। इन लोगोंने अपने ग्रन्थों में जो पता बतलाया है उससे यह निर्भ्रान्त सिद्ध होता है कि उनका मतलब खजुराहो से ही है।

जजोती प्रान्त का नाम सबसे पहले हुएन सांग के ग्रन्थ में मिलता है। यह चीनी परिव्राजक सातवें शतक में यहाँ आया था। वह खजुराहो राजधानी का परिधि २½ मील बतलाता है और कहता है कि साधु और संन्यासियों ही की उसमें अधिक बस्ती है। उसमें कई दर्जन बौद्ध-मठ हैं; परन्तु बौद्ध-संन्यासी बहुत कम हैं। हिन्दुओं के १२ मन्दिर हैं जिनमें एक हज़ार के लगभग ब्राह्मण पूजा-पाठ के लिए रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा ब्राह्मण है; परन्तु बौद्धधर्म्म को वह हृदय से मानता है। हुएनसांग ने जजोती प्रान्त का जो वर्णन किया है उससे यह साफ़ ज़ाहिर है कि उसका मतलब उसी प्रान्त से है जो, इस समय, बुँदेलखण्ड कहलाता है। इससे यह अर्थ निकला कि प्राचीन समय में बुँदेलखण्ड का नाम, कान्यकुब्ज, गौड़ और द्रविड़ इत्यादि के साथ, जजोती था; और इस जजोती की राजधानी खजुराहो में थी। जजोती प्रान्त में जजोतियोंहीं की बस्ती अधिक थी। कान्यकुब्ज इत्यादि की तरह, जजोती प्रान्त के नाम से ही वहाँ के रहनेवाले जजोतिया कहलाये। उनका यह जजोतिया नाम अब तक बना हुआ है; परन्तु, जबसे बुँदेलों का प्राधान्य इस प्रदेश में हुआ, तब से, उनके नामानुसार, इस प्रान्त का नाम बदल कर बुँदेलखण्ड हो गया। जनरल कनिंहाम ने अपनी आरकियालाजिकल रिपोर्ट में, जहाँ से हमको इस लेख की सामग्री मिली है, इस विषय का ख़ूब विचार किया है।

इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता कि खजुराहो में चँदेलों के पहले किस किस वंश के राजाओं ने राज्य किया। परन्तु कनिंहाम साहब का अनुमान है कि हुएनसांग के समय में वहाँ ब्राह्मणों का राज्य था; उसके अनन्तर गुप्त-वंशीय राजाओं का हुआ; और सबसे पीछे चँदेलों का। ब्राह्मण राजाओं के समय के दो एक मठ बहुत ही टूटी फूटी दशा में अब तक विद्यमान है। किसी किसी मठ के एक आध पत्थर में बौद्ध-धर्म्म का सूचक—"ये धर्म्महेतुप्रभवाः"—वाक्य भी खुदा हुआ दिखलाई देता है। गुप्त-वंशीय राजाओं के राजत्व का प्रमाण उनके सिक्के और शिलालेखों से मिलता है। परन्तु चन्देलों के राजत्व के निशान औरों की अपेक्षा बहुत हैं; और बड़े बड़े हैं। ये निशान खजुराहो के विशाल मन्दिर हैं।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि ग़ज़नी के महमूद की चढ़ाई के समय से खजुराहो की शोभा क्षीण होने लगी। उस समय खजुराहो में नन्दराय नामक राजा था। खजुराहो मैदान में था; इसलिए वहाँ के क़िले में रहने से शत्रु से पराजय पाने का अधिक डर था। इसी लिए नन्दराय खजुराहो से कालिंजर के पहाड़ी क़िले में चला गया। वहाँ से, कुछ काल के अनन्तर, उसने, या उसकी सन्तति ने, महोबा में रहना पसन्द किया। बारहवें शतक के अन्त तक चन्देलवंशीय राजाओं ने अपनी राजधानी महोबा में रक्खी। वहाँ पर विजयपाल, कीर्तिवर्म्मा और मदनवर्म्मा के राजत्व के सूचक विजय-सागर, कीर्ति-सागर और मदन-सागर नाम के तालाब अब तक बने हुए हैं। तेरहवें शतक के आरम्भ में क़ुतुबुद्दीन ऐबक ने कालपी और महोबा को अपने अधिकार में कर लिया। तब से चन्देल राजा हमेशा के लिए कालिंजर में रहने लगे। जब तक चँदेले महोबा में रहे तब तक खजुराहो की अवनति धीरे धीरे होती रही। परन्तु जब उन्होंने महोबा छोड़ दिया और मुसल्मानों ने वहाँ पर अपना क़दम जमाया तब से खजुराहो की लक्ष्मी ने उसे छोड़ जाने में बहुत जल्दी की; और शीघ्र ही उसे प्रायः पूरी तौर पर परित्याग कर दिया। १३३५ ईसवी, अर्थात् इब्न भटूटा के समय, तक खजुराहो में "दुबले पतले जटाधारी अनेक योगी-यती विद्यमान थे"। परन्तु अकबर के समय में वे भी नहीं रह गये। क्योंकि आईन अकबरी में खजुराहो का कहीं नाम नहीं है उन्नीसवें शतक के आरम्भ, अर्थात् १८१८ ईसवी, फ़्रैंकलिन नाम के एक साहब ने, यहाँ पर, बिलकुल जंगल पाया था। यह साहब बन्दोबस्त के महकमे से सम्बन्ध रखते थे। इन्होंने इस प्रान्त के नक़शे "कजरौ" लिख कर उसके आगे "उजाड़" का शब्द जोड़ दिया है। परन्तु इस "उजाड़ कजरौ" में फाल्गुन के महीने में, शिवरात्रि को अब भी लाखों आदमी इकट्ठे होते हैं। यहाँ पर, इस समय, एक बहुत बड़ा मेला होता है; और दो तीन कोस तक आदमी ही आदमी नज़र आते हैं।

खजुराहो, इस समय, एक छोटा सा गाँव है। उसमें कोई दो सौ घर हैं; और एक हज़ार आदमी के लगभग रहते हैं। जजोतिया ब्राह्मण अधिक हैं;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

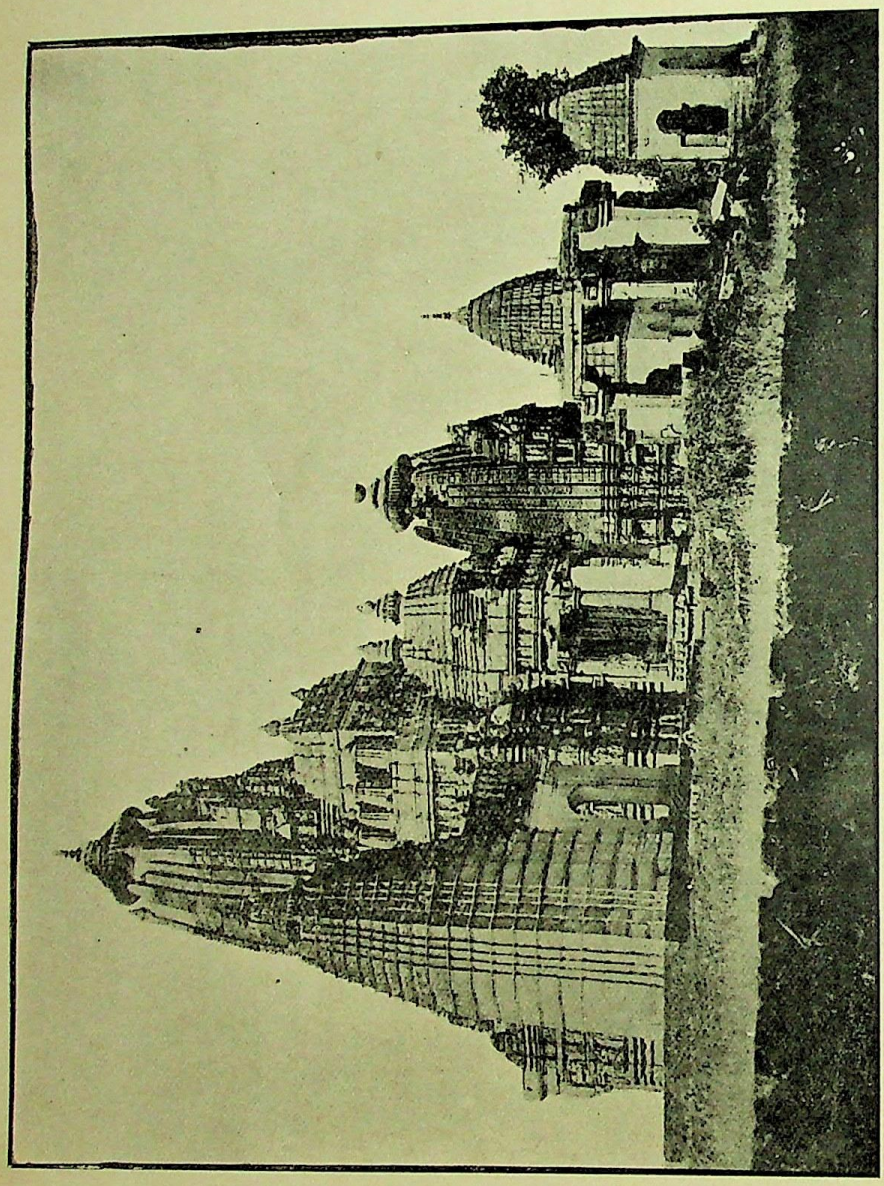

जैनमन्दिर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

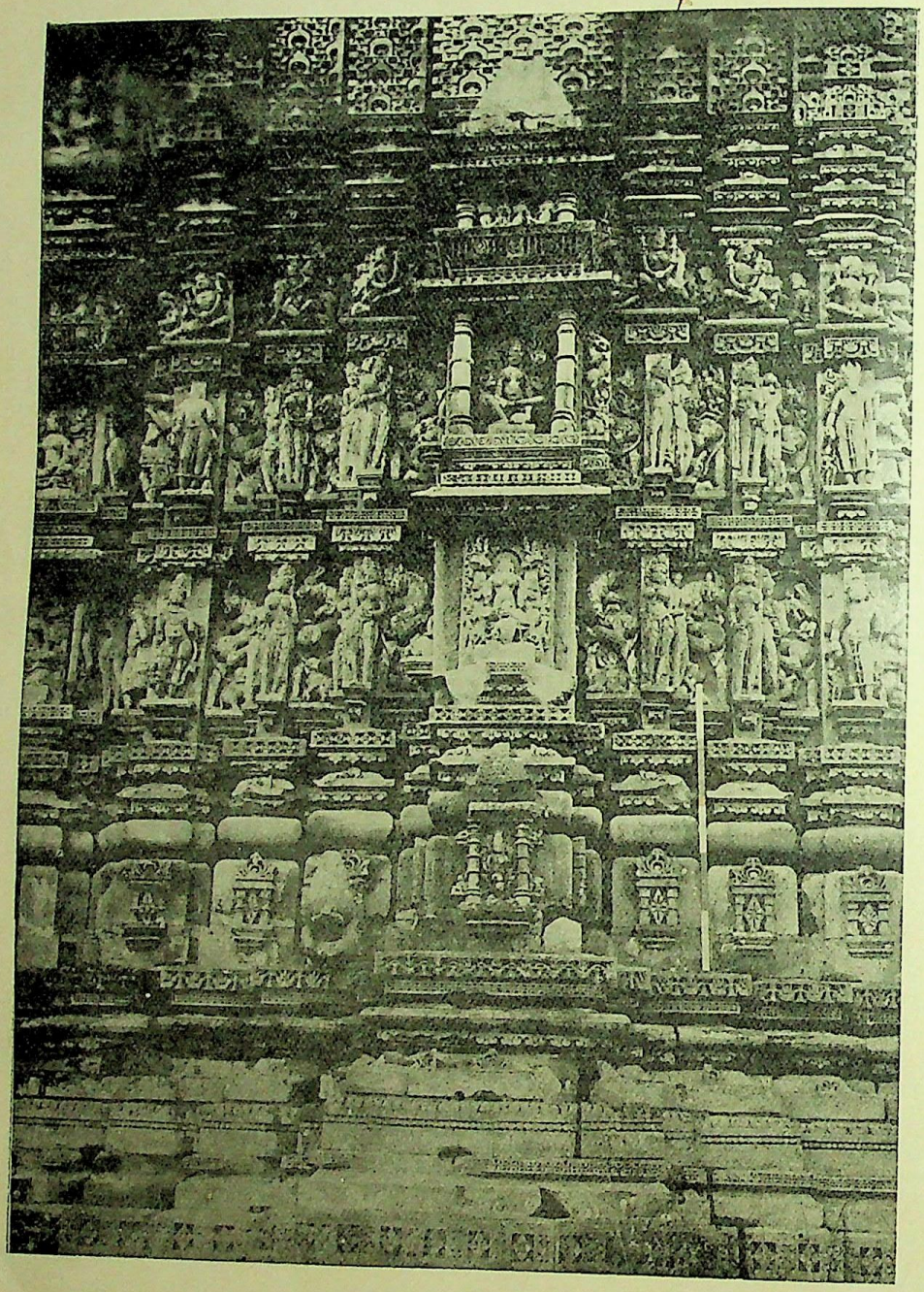

चौंसठ योगिनी का मन्दिर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

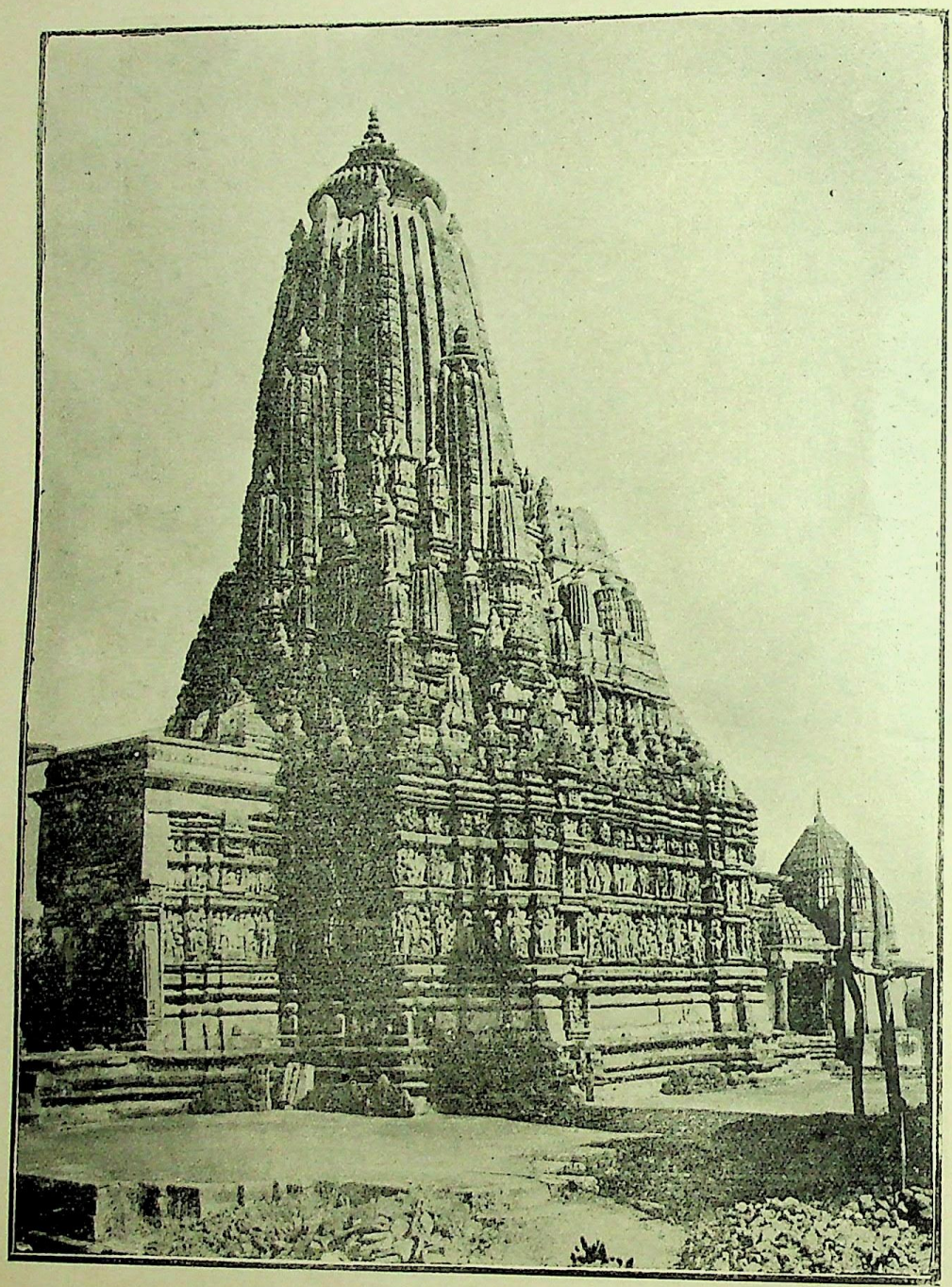

जैनमन्दिर (आदिनाथ का)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

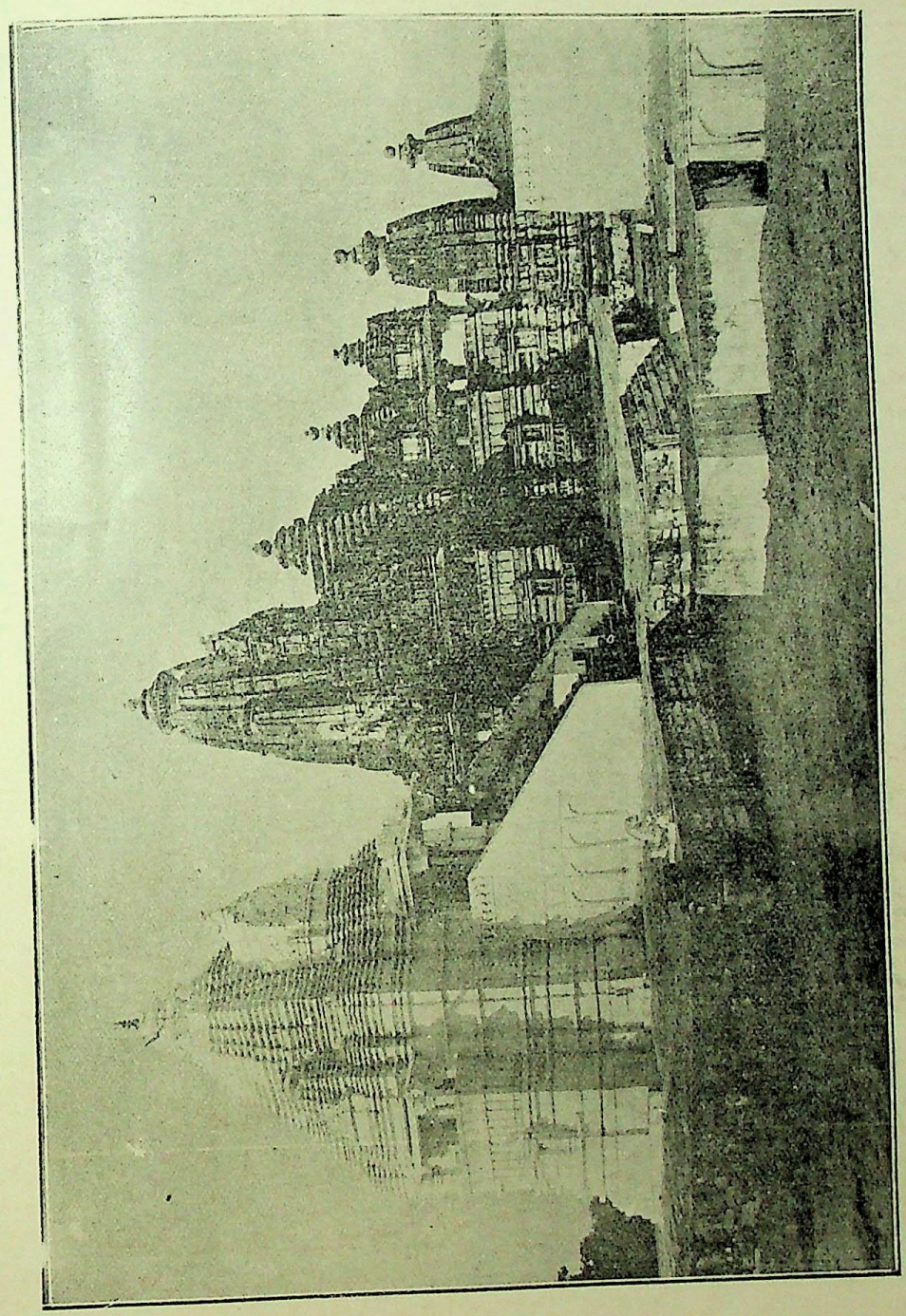

मृतङ्ग (मृत्युञ्जय) महादेव का मन्दिर।

और

चतुर्भुज का मन्दिर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्देल राजपूत कम। यहाँ के राजपूत अपने को, पृथ्वीराज के प्रतिस्पर्धी परमाण (परमर्दि) देव के वंशज बतलाते हैं। यहाँ खजूर-सागर नाम का एक बड़ा तालाब है। उसके दक्षिण-पूर्व कोने पर यह गाँव है। गाँव के चारों तरफ़ की भूमि मन्दिर और मन्दिरों के भग्नावशिष्ट भागों से घिरी हुई है। ये इमारतें, साबित और गिरी हुई, तीन जगहों पर अधिक हैं—पश्चिम की तरफ़, उत्तर की तरफ़ और दक्षिण-पूर्व की तरफ़। कुछ मन्दिर करार नामक नाले के तट पर भी हैं। यह नाला गाँव से कोई मील भर है। ये टूटे और बे-टूटे मन्दिर दूर दूर तक चले गये हैं। इन इमारतों के फैलाव के देखने से, हुएनसांग का लिखा हुआ, खजुराहो का वित्तार ठीक जान पड़ता है। सातवें शतक में इस परिव्राजक ने खजुराहो को अच्छी दशा में देखा था। उसके लिखे हुए तत्कालीन इमारतों के वर्णन से यह सिद्ध है, कि कम से कम ईसा की पहली सदी में खजुराहो अस्तित्व में था। अर्थात् खजुराहो के कोई कोई खँडहर दो हज़ार वर्ष के पुराने हैं।

खजुराहो में, भग्न और अभग्न, सब ३० मन्दिर और मठ हैं। उनके नाम हम नीचे देते हैं—

पश्चिमी-समूह
१ चौसठ जोगिनी का मन्दिर
२ गणेश का मन्दिर
३ कण्डारिया (?) महादेव
४ महादेव का मन्दिर
५ देवी जगदम्बा का मन्दिर
६ चित्रगुप्त ,,
७ विश्वनाथ ,,
८ नन्दिगण ,,
९ पार्वती ,,
१० चतुर्भुज ,,
११ वाराह ,,
१२ देवी ,,
१३ मृतङ्ग (मृत्युञ्जय) महादेव का मन्दिर (उजाड़)
१४ (उजाड़)

उत्तरी-समूह
१५ सत्यवरा (उजाड़)
१६ बम्सो की टोरिया (उजाड़)
१७ वामन का मन्दिर
१८ लक्ष्मण ,,
१९ हनुमान ,,
२० ब्रह्मा ,,

दक्षिण-पूर्वी समूह
२१ गन्थाई (बौद्ध लोगों का)
२२ पार्श्वनाथ
२३ आदिनाथ
२४ पार्श्वनाथ
२५ जिननाथ
२६ श्वेतनाथ
२७ आदिनाथ
जैनों के मन्दिर
२८ ऊँवा टीला

करार नाले के किनारे के मन्दिर
२९ नीलकण्ठ महादेव
३० कुँवर मठ

इनमें से दो चार प्रसिद्ध प्रसिद्ध मन्दिरों का वर्णन, हम, यहाँ पर, थोड़े में करते हैं—

पश्चिमी समूह में जितने मन्दिर हैं। वे प्रायः दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी के मालूम होते हैं। पर उनमें से चौंसठ जोगिनी का मन्दिर सब से पुराना है। वह आठवीं शताब्दी के इधर का नहीं जान पड़ता। चौंसठ जोगिनी के बीच का मन्दिर नष्ट हो गया है। उसके चारों तरफ़ दीवार में छोटी छोटी ६४ कोठरियाँ हैं। उन्हीं में योगिनियों की मूर्तियाँ स्थापित थीं। मन्दिर का प्राङ्गण १०२ फ़ीट लम्बा और ६० फ़ीट चौड़ा है। दीवारों की मोटाई ५½ फ़ीट है। प्रत्येक जोगिनी की कोठरी ३½ फ़ीट ऊँची है। कोठरियों का दरवाज़ा बहुत छोटा है। सब कोठरियाँ मन्दिर के आकार की हैं; उन पर कलश भी हैं। पर मूर्तियाँ उनमें अब एक भी नहीं हैं।

कण्डारिया महादेव का मन्दिर, खजुराहो में, सब से बड़ा है। वह १०९ फ़ीट लम्बा, ६० फ़ीट चौड़ा और ११६ फ़ीट ऊँचा है। उसमें मन्दिर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब लक्षण हैं। अर्द्धमण्डप, मण्डप, महामण्डप, अन्तराल और गर्भ-गृह, ये सब उसमें हैं। परन्तु यह समझ में नहीं आता कि "कण्डारिया" का मतलब क्या है? इस मन्दिर की छत में बहुत अच्छा काम है। इसका कोई भाग ऐसा नहीं है जिसमें पत्थर को काटकर मूर्त्तियाँ न बनाई गई हों। जगह जगह पर ताक़ हैं; उन पर मूर्त्तियाँ बैठी हुई हैं। भीतर, बाहर, ऊपर, नीचे यह मन्दिर मूर्त्तिमय हो रहा है। मन्दिर के भीतर २२६ और बाहर ६४६ मूर्त्तियाँ कनिंहाम साहब ने गिनी थीं। एक मन्दिर में ८७२ मूर्तियाँ! बहुत हुईं। और छोटी भी नहीं। कोई कोई मूर्त्ति तीन तीन फ़ीट ऊँची है! इन मूर्त्तियों का अधिक समूह गर्भगृह और महामण्डप के बीचवाले खम्भों पर है। इनमें से अनेक मूर्त्तियाँ अश्लीलता-व्यञ्जक हैं। सुनते हैं, कुछ तो ऐसी हैं जिनकी तरफ़ देखा नहीं जाता।

परन्तु बहुत सी मूर्त्तियाँ अच्छी भी हैं। अच्छी अधिक हैं; अश्लील कम। देवी देवताओं की जितनी मूर्त्तियाँ हैं वे सब बहुत अच्छी हैं। इस मन्दिर में ४½ फीट मोटा शिवलिङ्ग है। जान पड़ता है कि यह लिङ्ग पहले ही का है। जिस समय मन्दिर की प्रतिष्ठा हुई थी उसी समय उसकी भी स्थापना हुई थी। इस मन्दिर के बनानेवाले कारीगरों ने "कुटिल" अक्षरों में अपने नाम खोद दिये हैं। उनसे अनुमान होता है कि यह मन्दिर दशवीं शताब्दी का है।

कनिंहाम साहब एक मन्दिर का नाम "छत्र-कोपत्र" बतलाते हैं और कहते हैं कि उनको इसका मतलब नहीं समझ पड़ा। शायद यह चित्र-गुप्त का मन्दिर हो। परन्तु और बातों से मालूम होता है कि यह सूर्य्य का मन्दिर है। गर्भ-गृह के द्वार पर, इसमें सूर्य्य की तीन प्रतिमायें हैं। और भीतर ५ फ़ीट ऊँची सूर्य्य की एक बहुत ही बड़ी प्रतिमा है। उसके दोनों हाथों में कमल के फूल हैं। मूर्त्ति के नीचे, आधार में, सूर्य्य के सात घोड़े भी बने हुए हैं। इसके अर्द्धमण्डप और महामण्डप का बहुत कुछ भाग गिर पड़ा है। इसके खम्भों वग़ैरह में, कहीं कहीं पर, काम पूरा नहीं हुआ। इससे जान पड़ता है कि बनवानेवाले के इच्छानुसार काम होने के पहले ही उसे, किसी कारण से, छोड़ देना पड़ा। इसमें भी मन्दिर की बाहरी तरफ़ अश्लील मूर्त्तियों की तीन पाँतें हैं। परन्तु अश्लीलता की मात्रा इनमें कम है। ब्रह्मा, सरस्वती, शिव, पार्वती, विष्णु, लक्ष्मी और वाराह आदि की जो मूर्त्तियाँ इस मन्दिर में हैं वे बिलकुल अश्लीलतारहित हैं और देखने लायक़ हैं। इसमें कोई शिलालेख नहीं है। परन्तु दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी के कुटिल अक्षरों में भोम, सुवच और नाहिल आदि अनेक मेसनों के नाम खुदे हुए हैं।

पश्चिमी-समूह के मन्दिरों में विश्वनाथ का मन्दिर बैठ उत्तर की तरफ़ है। उसका आकार-प्रकार वैसा ही है जैसा कण्डारिया मन्दिर का है। परन्तु उससे यह कुछ छोटा है। इसकी लंबाई ८७ फ़ीट और चौड़ाई ४६ फ़ीट है। कण्डारिया से यह छोटा है सही; परन्तु उससे कहीं अच्छी हालत में है। इसके चारों कोनों में एक एक छोटा मन्दिर है। और एक सामने भी है। इन छोटे मन्दिरों में से कोई कोई अभी तक पूरा बना हुआ है; कोई कोई गिर पड़ा है। गर्भगृह के द्वार के ऊपर नन्दी पर सवार शिव की मूर्त्ति है। उसके दाहिनी तरफ़ हंस पर ब्रह्मा हैं और बाईं तरफ़ गरुड़ पर विष्णु। मन्दिर के भीतर शिव का एक लिङ्ग है। इस मन्दिर के भी बाहर अरोचक मूर्त्तियों के झुण्ड हैं। जगह जगह पर स्त्रियों की मूर्त्तियाँ हैं जिनमें यह दिखलाया गया है कि वे अपने वस्त्रों को गिराकर नग्न होना चाहती हैं। सब मिलाकर ६०२ मूर्त्तियाँ इस विशाल मन्दिर के बाहर बनी हुई हैं। उनकी उँचाई दो से ढाई फ़ीट तक है। मन्दिर के भीतर का काम बहुत अच्छा है; अनेक प्रकार का है; और बहुत है। महामण्डप और गर्भगृह की छत में दस कोने हैं और प्रत्येक कोने में आधे क़द के एक एक हाथी की मूर्त्ति है। ये मूर्त्तियाँ बाहर की तरफ़ निकली हुई हैं; और बहुत बड़ी होने के कारण मन्दिर की शोभा को कुछ कम कर देती हैं। उनके कारण मन्दिर का मनोहर दृश्य किसी क़दर छिप जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

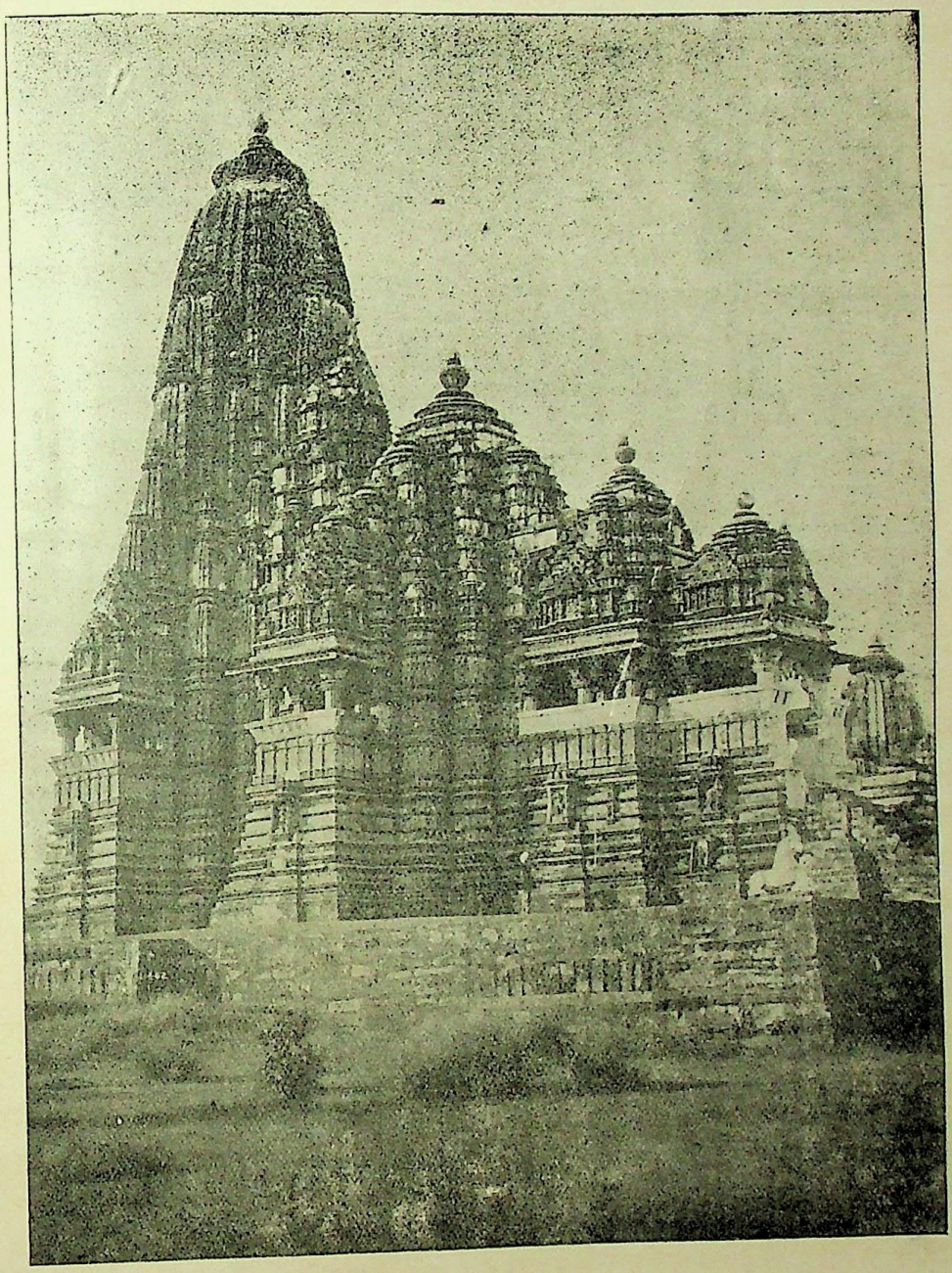

कण्डारिया महादेव का मन्दिर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

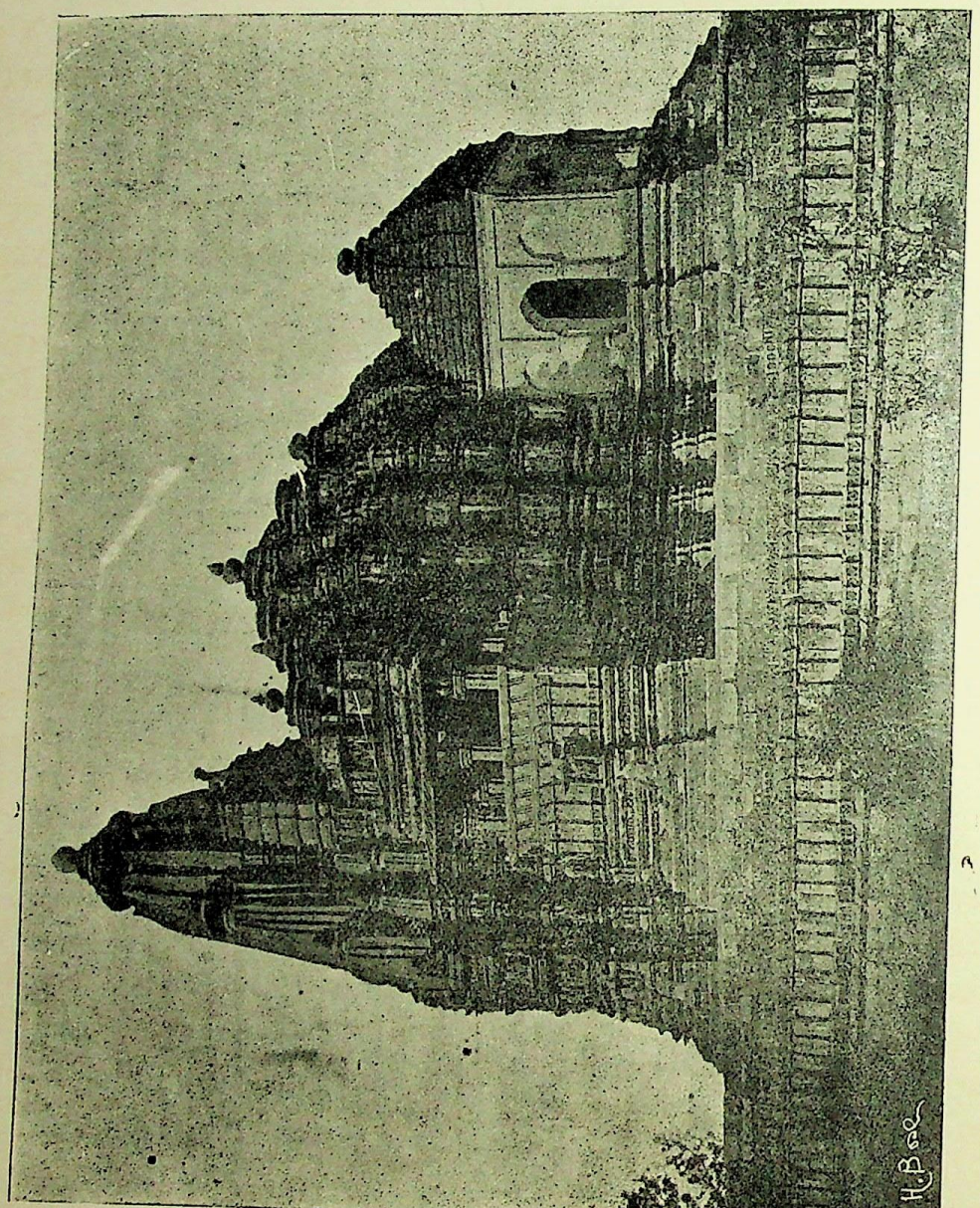

चित्रमय मन्दिर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्दिर में दो शिलालेख हैं। एक ९९९ ईसवी का, दूसरा १००१ ईसवी का। यह चन्देल राजा धङ्ग का बनवाया हुआ है। आदि में जो शिव लिङ्ग इस मन्दिर में स्थापित किया गया था वह मरकत-मय था; परन्तु उस मारकतीय लिङ्ग का अब कुछ पता नहीं। यात्रियों और मेसनों के अनेक नाम इस मन्दिर के पत्थरों पर उत्कीर्ण हैं। उन में से दो चार नाम ये हैं—श्रीजस, रान, श्रीदेवनन्द, श्रीदेवादित्य, श्रीमहानाग और श्रीजगद्देव।

खजुराहो में इतने प्राचीन मन्दिरों को देखकर आश्चर्य्य होता है। जान पड़ता है कि मुसल्मानों के आवागमन मार्ग से दूर होने के कारण उनके हथौड़े, गोलियाँ और फावड़े इन तक नहीं पहुँच सके। ऐसे ऐसे मन्दिरों को समूल खोद डालने से, जब इन लोगों के लिए स्वर्ग और मर्त्य, दोनों लोकों में, ऊँचे ऊँचे महल और मसजिदें, बिना प्रयास तैयार हो सकती हैं, तब यदि वे यहाँ तक पहुंच सकते, तो थोड़ा बहुत पुण्य-सञ्चय किये बिना कभी न रहते।

चतुर्भुज का मन्दिर भी, यहाँ पर, बड़े मन्दिरों में से है। इसे कोई कोई रामचन्द्र का मन्दिर कहते हैं और कोई कोई लक्ष्मण का। परन्तु दोनों नाम विष्णु के ही वाचक हैं। इसमें जो प्रधान मूर्त्ति है वह चतुर्बाहु है। इसलिए इस मन्दिर का नाम चतुर्भुज अधिक सार्थक है। इसकी लम्बाई चौड़ाई लगभग उतनी ही है जितनी विश्वनाथ के मन्दिर की है। और बातों में भी यह उसी के अनुरूप है। इसमें भी सामने और चारों कोनों में एक एक छोटा मन्दिर है। काम भी इसका प्रायः उसी मन्दिर का ऐसा है। हाँ, एक बात की इसमें कमी है। इसमें मूर्त्तियों की प्रचुरता नहीं है। सिर्फ़ १७० मूर्तियाँ भीतर और २३० बाहर हैं। इसके चबूतरे की दीवारों पर नक्काशी का बहुत अच्छा काम है। कहीं पर बनैले सुअरों का शिकार किया जा रहा है; कहीं पर सजे हुए हाथियों और घोड़ों की पाँतें खड़ी हैं; कहीं पर अनेक प्रकार के शस्त्रों से सज्जित सिपाही चले जा रहे हैं। इस मन्दिर में भी एक लेख है। वह ९५४ ईसवी का खुदा हुआ है। उसमें चन्देलवंशीय राजाओं के नाम, यशोवर्मा और उसके पुत्र धङ्ग तक, हैं। खजुराहो के मन्दिर छत्रपुर की रियासत में हैं। जिस समय महाराजा छत्रपुर ने इस मन्दिर की मरम्मत कराई, उस समय यह शिलालेख इस मन्दिर के नीचे एक जगह गड़ा हुआ मिला। यह बात १८४३ ईसवी के बाद की है; क्योंकि उस समय तक इस लेख का कोई पता न था। इस लेख के अनुसार यह मन्दिर राजा यशोवर्मा ने बनवाना आरम्भ किया, पर उस की मृत्यु के अनन्तर, उसके पुत्र धङ्ग के राजत्व में यह समाप्ति को पहुँचा।

मृतङ्ग महादेव अथवा मृत्युञ्जय का मन्दिर समचतुष्कोण है। भीतर से वह २४ वर्ग फ़ीट है और बाहर से ३५। उसके भीतर शिव का जो लिङ्ग है वह ८ फ़ीट ऊँचा है। मुटाई उसकी ३ फ़ीट ८ इंच है। इसमें न तो कोई शिलालेख ही है और न किसी मेसन या यात्री का कोई नाम ही है। मरम्मत करने में बाहर से इस पर इतना गाढ़ा चूना पोत दिया गया है कि उसका भीतरी दृश्य बिलकुल छिप गया है। इससे यह नहीं विदित होता कि चूने के नीचे कुछ काम था या नहीं; और था तो कैसा था। इसके शिखर पर एक चमकीला कलश है। जिसे महाराजा छत्रपुर ने लगवाया है।

उत्तरी-समूह में जितने मन्दिर हैं उनमें से वामन जी का मन्दिर सब से बड़ा है। उसकी लंबाई ६० फ़ीट और चौड़ाई ३८ फ़ीट है। मन्दिरों की बाहर की तरफ़ इसमें दो पाँत मूर्तियों की हैं। गिनती में वे कोई ३०० के लगभग होंगी। इसके भीतर वामन की भी मूर्त्ति है और ब्रह्मा, विष्णु, महेश की भी मूर्त्तियाँ हैं। इस मन्दिर में यह विशेषता है कि इसमें जो काम है वह कई प्रकार का है; एक नमूने का नहीं है; अनेक नमूने का है; और उत्तम है। यह मन्दिर भी दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी का जान पड़ता है।

दक्षिण-पूर्वी समूह में एक मन्दिर बौद्धों का और ६ जैनों के हैं। उनमें से एक जैन मन्दिर बहुत बड़ा है। वह जिननाथ के नाम से प्रसिद्ध है। उसके द्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बाज़ू में एक छोटा सा लेख है जिसमें लिखा है कि राजा धङ्ग के राज्यकाल में भव्य पाहिल ने, ९५४ ईसवी में, इस मन्दिर के लिए कई बाग़ सङ्कल्प कर दिये। उसी लेख में, इस मन्दिर का नाम, जिननाथ का मन्दिर, लिखा है। इसकी लंबाई ६० फ़ीट और चौड़ाई ३० फ़ीट है। एक धनी जैन ने इस मन्दिर की मरम्मत करा दी है। इससे यह अब बिलकुल नया मालूम होता है। देखने में यह मन्दिर बहुत सुडौल, सुन्दर और दर्शनीय है। इसके भी बाहर बहुत सी मूर्त्तियाँ हैं। जैन-मूर्त्तियों के बीच में हिन्दू देव और देवियों को भी स्थान मिला है। यात्रियों ने इस मन्दिर पर लम्बे लम्बे लेख खोद डाले हैं। इन यात्रियों में दो एक राजपुत्र भी थे।

आदिनाथ और पार्श्वनाथ के मन्दिर यद्यपि छोटे हैं; परन्तु औरों की अपेक्षा कुछ अधिक पुराने हैं।

इन मन्दिरों के सिवा, खजुराहो में, छोटी बड़ी सैकड़ों मूर्त्तियाँ हैं। उन में से कुछ खंडहरों में पड़ी हैं; कुछ मन्दिरों के आस पास रक्खी हैं; और कुछ तालाबों के किनारे रख दी गई हैं। यहाँ तक कि बड़े बड़े पेड़ों के नीचे भी वे विराज रही हैं। इन मूर्त्तियों में से एक मूर्त्ति हनूमान की है। उसके पीठक पर एक छोटा सा लेख, ८६८ ईसवी का है। चन्देल वंशीय राजाओं के समय के शिलालेखों में यह सब से पुराना है।

प्रार्थना-शतक।

(क्रमप्राप्त)

दियो ईश जेहि हेत काम सो काम कियो ना।
वाम, धाम, धन, ध्यान ठान हरिनाम लियो ना॥
जप तप योग विराग याग को जगै न इच्छा।
लगै न नीको धर्म कर्म गुरुजन की शिक्षा॥ १२॥

साजि वसन गजराजि बाजि गन विविध ढंग सों।
तोरन वन्दनवार द्वार रचि रङ्ग रङ्ग सों।
करौं पेश आराम वाम के संग सदा बसि।
योंही इच्छा करत गात यह जात अन्त नसि॥ १३॥

कियो क्रोध लै कहा अहा अवगुन न सँहारयौ।
गुरुजन पै करि रोष दोष सिर ऊपर धारयौ॥
कहि कटु वचन कृपान बान से हृदय दुखायो।
करि अनेक अभिघात जगत के जीव सतायो॥ १४॥

निज तन को करि गर्व खर्वमति कछु न विचारयौ।
क्षणभङ्गुरता हेरि फेरि अभिमान न छाँरयौ।
गुरु ढिग चाहत मान, मानिनी चरण मान कै।
मद को कियो निवाह सन्त ढिग भले शान कै॥ १५॥

शब्द रूप रस गन्ध परस वारे सुख जेते।
ते जानहुँ दुख मूल शूल छिन छिन में देते॥
अहह मोह वश ताहि नाँहिं है कोऊ त्यागत।
यद्यपि असत अनित्य कृत्य मिथ्यामय जानत॥ १६॥

परतिय परधन हेत सेंत ही मन ललचावै।
सोच करत दिन रैन चैन बिन समय गमावै॥
गिनत न ठौर कुठौर भोर से भ्रमत दीन ह्वै।
फसत अन्त अकुलात गात कृश मुख मलीन ह्वै॥ १७॥

व्रत यम नियम निवाह लाह लखि लोभ न लागै।
परकृत धर्म विशेष देख अनुराग न जागै॥
तजि कञ्चन को माल व्याल भावत है जोको।
हे प्रभु! परम अभाग भाग मेरो नहिं नीको॥ १८॥

निज वैभव के निकट विकट अस मति उपजति है।
मोँ समान को आन ज्ञान गति थिर न रहति है॥
सहि न सकत पर उदय अदयता बढ़ति दिनोदिन।
मत्सरता उर नटति घटति मर्याद छिनो छिन॥ १९॥

दिन दिन करि अविचार कियो बहु दुराचार मैं।
तासु बुरो परिणाम लह्यौ अब सब प्रकार मैं॥
जेहि अकाज वश हाय काज मैं सकल बिगारयौ।
अरु गमाय कुल धर्म सकल शुभ कर्महु छारयौ॥ २०॥

तेहि अकाज को आज करौं जो सुधि मन माँहो।
दुख पावत कर मीजि खीजि तन-ताप न जाँही॥
यह दुर्लभ नर-देह पाय हा कहा कियो मैं।
प्रिय जीवन धन वृथा कुमग महँ फेकि दियो मैं॥ २१॥

नश्वर है यह देह नेह यासों नहिं कीजै।
स्वप्न सदृश संसार प्यार कासों कहु कीजै॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

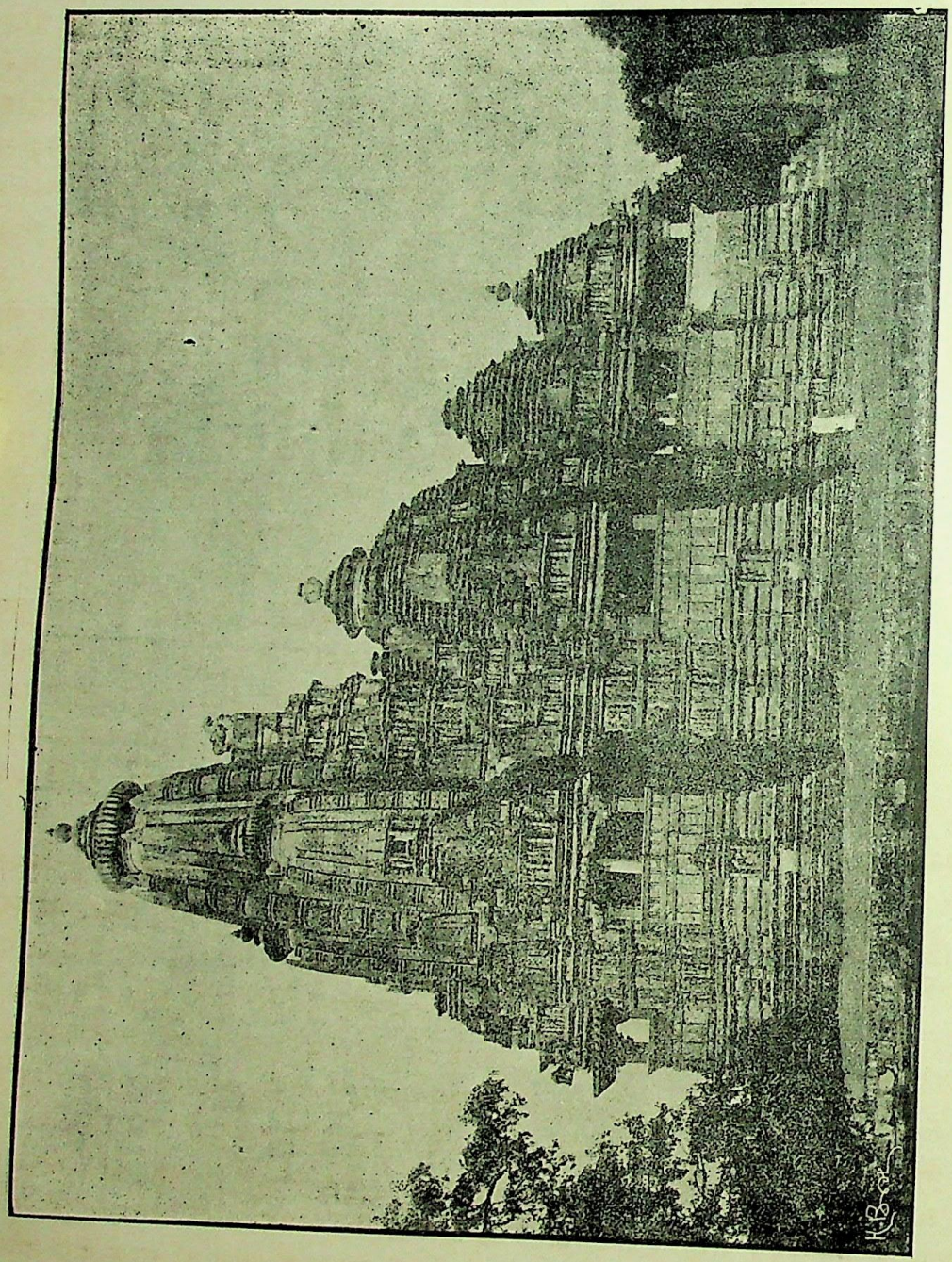

विश्वनाथ का मन्दिर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौं सोचत हू नैन सैन तरुणी के लागे।
बिसरि जात सब ज्ञान ध्यान मन्मथ मद जागे ॥२२॥
गुरुजन को उपदेश लेश भावत नहिं जीको।
स्मृति पुराण श्रुति शास्त्र गान लागत नहिं नीको॥
एक विषय सुख हेत सेंत नित यतन कियो मैं।
खान पान निज मान शयन सुख त्यागि दियो मैं॥२३॥
कीन्हो पौरुष कौन जो न इन्द्रिय वश कीन्हों।
दुखियन को दुख देखि हृदय में दया न लीन्हों॥
त्यागि असत पथ नीच, सुकृत को गह्यो न मारग।
का पुरुषारथ कियो भयो यद्यपि श्रुतिपारग॥ २४॥
चढ़ि कुपन्थ केहि भाँति नाथ! सुगतिन फल चाखैं।
केहि सुकर्म्म यश हृदय चरण तेरो गहि राखैं॥
तदपि कहौं कर जोरि अहै मन में अभिलाषा।
तुअ पद सेवन चहौं सदा पुरवहु यह आसा॥ २५॥

(क्रम क्रम से)

जनार्दन झा।

प्राणिमात्र से मनुष्य की सगोत्रता।

"A Sacred Kinship, I would not forego,
Binds me to all that breathes."

—Boyesen.

"समः सर्वेषु भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।"

एक दिन दोपहर को नदी के किनारे घास पर बैठे हुए मैंने एक गाय को अपने बछड़े सहित चरते हुए देखा। जब कभी वह बछड़ा अपनी माँ से कुछ दूर कूदता हुआ चला जाता, तब किस प्रेम से उसकी माँ उसकी ओर देखती और अपनी ममता भरी आवाज़ से उसे बुलाती। उस समय यह प्रश्न मेरे हृदय में उत्पन्न हुआ कि क्या मनुष्य कभी इस अवस्था में न था? "मनुष्य भी एक पशु है", यह कथन तो मैंने बहुत बार विद्वानों के मुँह से सुना था। परन्तु मनुष्य पशु किस प्रकार है? इसका विचार मैंने कभी नहीं किया था। मनुष्य न देवता है, न पत्थर है, न वनस्पति है, बल्कि लाखों बरस की विकास क्रियाओं (Evolutional processes) का परिणाम है। मनुष्य उन सब अवस्थाओं से होकर गुज़रा है जिनमें हम अन्य जीवों को देखते हैं।

मनुष्य का शरीर कणिकाओं (Cells) का बना हुआ है। अन्य पशुओं के भी शरीर इसी प्रकार बने हैं। पशुओं के शरीर की कणिकायें भी मनुष्यशरीर ही की कणिकायें जैसी हैं। सब कणों की उत्पत्ति धातुबीजों (प्रोटोप्लाज़्म) से है जो कोयला (Carbon), जलजन (Hydrogen), नेत्रजन (Nitrogen) और अम्लजन (Oxygen) तत्त्वों से बनता है।

मनुष्य के शरीर का ढाँचा, दूसरे पशुओं ही की तरह अधिकांश चूने (Lime) का बना हुआ है। इससे यह प्रतीत होता है कि सृष्टि के आरम्भ में कई शताब्दियाँ समुद्र के अन्दर इसको रहना पड़ा था और वहीं से अन्य प्राणियों की भाँति धीरे धीरे प्राकृतिक नियमों के अनुकूल इसकी उन्नति हुई है। यही नहीं किन्तु और प्राणियों की तरह मनुष्य भी अंडे से ही वृद्धि को प्राप्त होता है। मनुष्य, कुत्ता, मेंढक, कीड़ा सभी अपनी गर्भगत, प्रथमावस्था (Embryonic) के बाद, कुछ समय तक, एक से होते हैं। उस अवस्था में यह जानना कठिन होता है कि इनमें से कौन कुत्ता, कौन मेंढक, कौन मनुष्य का कलल अर्थात् गर्भ (Embryo) है।

अन्य प्राणियों की तरह मनुष्य भी अम्लजन (Oxygen) अन्दर ले जाता और कार्बन-डिआक्साइड (Carbon Dioxide) नामक पदार्थ बाहर निकालता है। इन्द्रियाँ सब की भिन्न भिन्न प्रकार की हों; परन्तु काम सब एक सा देती हैं। इन बातों से मनुष्य का सम्बन्ध और प्राणियों से सिद्ध है। भेद केवल इतना है कि मनुष्य की इन्द्रियाँ उन्नत हैं। यदि मनुष्य के अङ्गों और उसके शरीर की बनावट की परीक्षा करके उनकी तुलना दूसरे प्राणियों के साथ की जाय तो साफ़ पता लगेगा कि मनुष्य यदि अपने को श्रेष्ठ समझ कर दूसरे प्राणियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से घृणा या उन पर अत्याचार करे, तो यह उसकी भारी भूल है। शारीरिक सम्बन्ध में, आरम्भ से लेकर आज तक, मनुष्य की समता छोटे से छोटे प्राणी से हो सकती है; और इसका सबसे निकट कुटुम्बी, वनमानुष, इससे बहुत ही थोड़ा भेद रखता है।

विद्वान् वैज्ञानिक हक्सले (Huxley) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "मैन्स प्लेस इन नेचर" (Man's Place in Nature) में इस विषय की पूरी खोज की है। अन्त को आपने यह परिणाम निकाला है—"The structural differences which separate man from the gorilla and chimpanzee are not so great as those which separate the gorilla from the lower apes"—अर्थात् गोरीला और चिम्पंज़ी बन्दरों के शरीर की बनावट से मनुष्य के शरीर की बनावट में उतना अधिक भेद नहीं है जितना कि गोरीला और दूसरे प्रकार के नीची जातिवाले बन्दरों में है।

वानर और मनुष्य में शरीर-सम्बन्धी जो भेद है वह मौलिक नहीं; वह केवल भिन्न भिन्न दरजे का है। पश्चिम के विद्वान् वैज्ञानिकों ने इस मनुष्य-मर्कट-सम्बन्ध का पता, लाखों वर्ष व्यतीत होने पर भी, लगाया है। एक एक बात को पूरी तरह खोज की गई है। पृथ्वी के पृथक् पृथक् भागों में जाँच की गई है। समुद्र की तहों में दबे हुए पिंजरों को निकाल कर उनकी परीक्षा की गई है। हर बात के जानने के लिए वर्षों परिश्रम किया गया है। इसका फल जो निकला है वह यह है कि सब प्राणी आपस में, लाखों वर्ष एक दूसरे से जुदा होते पर भी, बन्धु हैं; और सब एक ही परिवार के अङ्ग हैं।

उदाहरण के लिए जब हम मनुष्य-गर्भ (Embryo) की वृद्धि की, पशु के गर्भ की भिन्न भिन्न अवस्थाओं से, तुलना करते हैं तब दोनों में कोई भेद नहीं पाते। मनुष्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में एक जीवकण (Protozoan) होता है जिसका व्यास $\frac{1}{175}$ इंच के क़रीब होता है। दूसरी अवस्था में वह बिना रुधिर और नाड़ियों के, एक छोटी थैली की शकल का, कण-समूह बनता है। तीसरी अवस्था में वह एक कृमि के रूप में आता है, जिसमें हृदय के स्थान पर सिर्फ़ एक नली रहती है। इस अवस्था में सिर, गरदन और जोड़ आदि नहीं होते। चौथी अवस्था में वह सबसे साधारण पीठ की हड्डियोंवाले प्राणियों की अवस्था में आता है। इस प्रकार मनुष्य-गर्भ के कई अवस्थान्तर भेद होते हैं। ये भेद बिना कारण के नहीं। ये उसकी पिछली अवस्थाओं का इतिहास बताते हैं। लाखों बरस के क्रमविकास में उस पर क्या क्या बीती है, सो सब वे प्रकट करते हैं। उसके सम्बन्धियों का पता बतलाते हैं। किस स्थान से कहाँ कहाँ कालचक्र ने उसको घुमाया है? कहाँ कहाँ रह कर उसने अपनी सब आदतें सीखी हैं? किन किन के साथ उसने बालक्रीड़ा की है? इन सब छिपी हुई बातों का पता इन्हीं भेदों से खुलता है।

प्रकृति के इस सर्वव्यापक क्रम-विकास-विषयक नियम का वर्णन यद्यपि प्राचीन भारतवर्ष के ऋषियों तथा यूनान के विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में हज़ारों वर्ष हुए किया था; परन्तु इसको सर्वसाधारण के सामने इस ढंग से लाने का काम महात्मा डारविन ने किया है। इस नियम की सर्वव्यापकता के प्रमाण आज कल हम वैज्ञानिक, सामाजिक, दार्शनिक, मानसिक तथा अन्यान्य विद्याओं का परिशीलन करने में, पाते हैं।

डारविन के प्रतिपादित इस नियम के अनुसार खोज करते हुए चिकागो के विद्वान् अध्यापक मूयर साहब ने "सार्वलौकिक सगोत्रता" (The Universal Kinship) नामी पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने शारीरिक, मानसिक और धार्मिक तीन प्रकार के प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि प्राणिमात्र आपस में बन्धु हैं। वे सब सगोत्रीय हैं। शारीरिक सगोत्रता की बात थोड़े में कही जा चुकी। अब मानसिक सगोत्रता की बात सुनिए।

मनुष्य का यह सिद्धान्त कि वह सब प्राणियों से श्रेष्ठ है, और सब प्राणी केवल उसी के फ़ायदे या आराम के लिए हैं, ठीक नहीं। मनुष्य भूल से अपने को बहुत बड़ा समझता है। मूर्खता से अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से निर्बल प्राणियों को दुख देता है। उसे अपनी पिछली अवस्था की ख़बर नहीं। सत्य तो यह है कि मनुष्य न तो ईश्वर के रूप में उत्पन्न किया गया है, न स्वर्ग से गिरे हुए किसी देवता के रूप में। मनुष्य, बंदर का सगोत्रीय है; और उसी के रूप का भी है। उसके शरीर की बनावट बन्दर से ख़ूब मिलती है। संसार के और प्राणी भी किसी न किसी अंश में उससे सम्बन्ध रखते हैं।

बहुधा लोग यह शङ्का करते हैं कि मनुष्य की मानसिक अवस्था बहुत बढ़ी चढ़ी है। अतएव उसका सम्बन्ध पशुओं से किसी प्रकार नहीं हो सकता। ऐसे आदमी केवल अपने आपको देख कर इस तरह का फ़ैसला करते हैं। उनको भूमंडल की भिन्न भिन्न मानव-जातियों की मानसिक अवस्थाओं के भेद की परीक्षा करनी चाहिए। उनकी मानसिका शक्ति का परस्पर मुक़ाबला करके विचार करन चाहिए कि देश, काल आदि से सम्बन्ध रखनेवाले किन नियमों के अनुसार ये भेद होते गये हैं? कितन अधम अवस्था में, ठीक बन्दरों की तरह, बहुत सी मनुष्यजातियाँ अब भी दुनिया में विद्यमान हैं। यदि पूरी तरह ध्यानपूर्वक देखा जाय तो पता लगेगा कि इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख आदि का ज्ञान रखनेवाले जीवात्मा का प्रादुर्भाव प्राणियों के प्रारम्भिक शरीर में भी पाया जाता है। समुद्र की तहों में रहनेवाले विचित्र प्राणियों में भी ये चिह्न किसी न किसी अंश में—बहुत ही साधारण अवस्था में—पाये जाते हैं। जहाँ शारीरिक वृद्धि धीरे धीरे होती रहती है, वहाँ उत्तम साधनों के मिलने के कारण, जीवात्मा भी अपनी शक्तिओं को प्रकट करता जाता है। मानसिक वृद्धि भी उसी नियम का फल है। मानसिक उन्नति भी अङ्गों की उन्नति के साथ होती है। "मानसिक विकास" (Mental Evolution) के रचयिता विद्वान् रोमानेस (Romanes) अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं—

I hold that if the doctrine of organic evolution is accepted, it carries with it, as a necessary corollary, the doctrine of mental evolution." अर्थात् यदि शारीर विकास का सिद्धान्त मान लिया जाय तो उसके साथ ही मानस विकास का सिद्धान्त भी सिद्ध समझना चाहिए।

हम चाहे जिस प्रकार विचार करें, हमें मानना ही पड़ेगा कि शरीर के जिस भाग को हम मस्तिष्क (brain) कहते हैं उसकी उन्नति विकास नियम के अनुसार ही हुई है। शरीर के अवस्थान्तर भेद की परीक्षा करने में हम मनुष्य का सम्बन्ध प्राणिमात्र से पाते हैं। उसके शरीर के किसी न किसी भाग की समता हम छोटे कीटकों तक में देखते हैं। जब हम मनुष्य की आदतों को जाँच करते हैं और उनको, किसी न किसी रूप में, अन्य प्राणियों में भी पाते हैं—अपने अपने दरजे के अनुसार किसी में अधिक किसी में कम—तब हमें यह मानना ही पड़ता है कि विकास का नियम सर्वव्यापक है। जो मनुष्य किसी समय पशुओं का सा स्वभाव रखता था, नहीं नहीं पशु ही था, वही आज इसी विकास सिद्धान्त की बदौलत इस उन्नत अवस्था को पहुँच गया है।

मनुष्य को छोड़ कर, साधारण पशुओं में कुत्ते को देखिए तो पता लगता है कि उसके पुराने पूर्वज भेड़िये का काम करते थे; और गीदड़ भी उन्हीं के वंशज हैं। पर कुत्ते ने अपने स्वभाव में बहुत उन्नति की है। इसके पूर्वज तेज़ी, तुन्दी, ख़ूंख़्वारी और धोखेबाज़ी के लिए कितने प्रसिद्ध थे और अब भी हैं! पर इन सब दुर्गुणों को कुत्ते ने किस प्रकार दूर कर दिया है। किस प्रकार मनुष्य के संग से उसने अपनी अवस्था को सुधारा है। पृथ्वी पर शायद ही कोई दूसरा पशु इतना विश्वास-पात्र, इतना प्यारा, इतना घरेलू होगा। इसी तरह शेर की मौसी बिल्ली को देखिए। इसकी कथा तो आपने बहुत सुनी होगी। इसके परिवार के लोग दूर दूर पाये जाते हैं। उनके कितने ही दरजे हैं। उनके स्वभावों की परीक्षा कीजिए तो पता लगेगा कि जैसे मंगोलियन जाति के लोग भिन्न भिन्न देशों में रहने, और भिन्न भिन्न जल-वायु का संसर्ग होने,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण आज अनेक अवान्तर भेदों में विभक्त हैं, परन्तु सब की उत्पत्ति एक ही वंश से हैं, उसी प्रकार बिल्ली के परिवार की भी दशा हुई है। कारण यह है कि बिल्ली मनुष्यों के पास रहने लगी है। इसलिए इसने अपने पूर्वजों की बहुत सी बातें छोड़ दी हैं; और धीरे धीरे अपनी उन्नति कर रही है।

किसी भी सभ्य जाति के इतिहास को लीजिए। जो जाति आज कला-कौशल, विज्ञान, साहित्य, सङ्गीत, सदाचार आदि के लिए प्रसिद्ध है उसकी मानसिक उन्नति असभ्य अवस्था के वन्य पुरुषों ही से हुई है। इस बात का प्रमाण पुराने इतिहास और पुरानी खोपड़ियों आदि की परीक्षा से मिलता है।

जब हम किसी असभ्य जंगली आदमी की ओर देखते हैं तब मनुष्य-समाज की बाल्यावस्था का चित्र हमारे सामने आजाता है। हज़ारों वर्ष से असभ्य अवस्था में रहनेवाले आदमियों का इतिहास जाने बिना, आज कल के सभ्य आदमियों की सामाजिक अवस्था का ज्ञान पूरी तरह नहीं हो सकता। गिलबराइथ (Gilbraith) साहब बहुत दिन तक उत्तरी अमरीका की सीपोइस नामक एक असभ्य जाति के बीच में रहे थे। वे इस जाति की सामाजिक अवस्था के विषय में कहते हैं—

"They are bigoted, barbarious and exceedingly superstitious. They regard most of the vices as virtues. Theft, arson, rape, and murder are regarded by them as the means of distinction. The young Indian is taught from childhood to regard killing as the brightest of virtues. In their dances and at their feasts, the warriors recite their deeds of theft, pillage and slaughter as precious things."

मतलब यह कि चोरी, व्यभिचार और हत्या आदि को ये लोग पुण्य समझते हैं। लड़कपन ही से इन लोगों को यह सिखलाया जाता है कि औरों को मार डालने से बढ़ कर पुण्य संसार में और नहीं। नाचने, गाने आदि में ये लोग इस तरह के कामों की तारीफ़ बड़े फ़ख्र से करते हैं।

बहुत सी बातें जिन्हें हम लोग पाप समझते हैं, असभ्यों की दृष्टि में वही पुण्यदायक हैं। जब फ्यूजी-निवासी कुछ खाने को नहीं पाते तब अपनी बूढ़ी स्त्रियों को मार कर खा जाते हैं। वे कुत्तों को नहीं मारते; कहते हैं कि बूढ़ी औरतें किसी काम नहीं आतीं; कुत्ते तो शिकार में मदद देते हैं!

इन सब बातों का विचार करने, और संसार की भिन्न भिन्न जातियों के इतिहास के क्रम को पक्षपात-रहित होकर जाँचने, से यह साबित होता है कि मनुष्य-समाज की वर्तमान अवस्था सदा से ऐसी ही नहीं रही है; किन्तु दरजे बदरजे देश-काल के अनुसार उन्नत होती गई है। जो जाति हज़ारों वर्ष हुए असभ्य दशा में थी वह आज क्रम-विकास के सर्वव्यापक नियमों के अनुसार श्रेष्ठ अवस्था को पहुँची है। मनुष्य की दया, करुणा, न्याय, धैर्य्य, सत्यता, क्षमा, दम आदि गुणों की वृद्धि लाखों बरसों के क्रम-विकास का फल है। मनुष्य यदि यह समझे कि ये गुण मैंने शुरू से ही पाये हैं; मैं कभी पशु, कीट आदि अवस्थाओं में नहीं था, तो यह उसकी बहुत बड़ी अज्ञानता है। सब प्राणी दुःख से निवृत्ति पाकर सुख की इच्छा करते हुए एक ही पथ की ओर जा रहे हैं। यदि कोई इस यात्रा में दो चार क़दम आगे या पीछे है तो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि दूसरे यात्रियों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। पुरुषार्थ का लक्षण कहते हुए सांख्य के कर्ता महर्षि कपिल ने इस बात की पुष्टि की है। उन्होंने पुरुषार्थ के नियम की सर्वव्यापकता संसार में बहुत ही अच्छी तरह सिद्ध कर दिखाई है। क्या कीट, क्या पतंग, क्या पशु, क्या पक्षी, क्या सभ्य, क्या असभ्य—सभी दुःख की अत्यन्त निवृत्ति चाहते हैं। ज्यों ज्यों प्राकृतिक नियमों के अनुसार शारीरिक साधनों में उन्हें सहायता मिलती जाती है त्यों त्यों वे "दुःख की अत्यन्त निवृत्ति" के उद्देश्य पर अधिक ध्यान देते जाते हैं। ऐक्य, प्रेम, मित्रता आदि गुणों का अस्तित्व हम मनुष्य की पशु-तुल्य अवस्था में भी पाते हैं। यही गुण धीरे धीरे वृद्धि को प्राप्त होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस उद्देश्य की सिद्धि में अग्रेसर होते हैं। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपने पीछे आनेवाले यात्रियों को प्रेम की दृष्टि से देखे और समझे कि ये भी उसी सुख-प्राप्ति के स्रोत की ओर आ रहे हैं। मूयर साहब ने अपने ग्रन्थ के तीसरे भाग, धार्म्मिक सगोत्रता (Ethical kinship), में इस विषय पर क्या लिखा है सो भी थोड़े में सुन लीजिए—

"जिस तरह का व्यवहार तुम चाहते हो कि कोई तुम्हारे साथ न करे, उस तरह का व्यवहार तुम भी दूसरे के साथ न करो"—यह धर्म का एक व्यापक लक्षण है। धर्म्माध्यक्ष और उपदेशक लोग इस लक्षण के आधार पर हमेशा ही उपदेश दिया करते हैं; परन्तु सब लोग इसके अनुसार व्यवहार करने का यत्न नहीं करते। यदि हम बहुत बढ़ कर क़दम मारते हैं तो यह समझते हैं कि इस नियम का सम्बन्ध मनुष्य-जाति तक ही है। पर यदि हम विचारपूर्वक देखते हैं तो मालूम होता है कि यह नियम सारे प्राणियों से सम्बन्ध रखता है। जिन प्राणियों या जिन पशुओं को हम समझते हैं कि सुख, दुःख का अनुभव नहीं होता; जिनको काटते हुए हमें तनिक भी दया नहीं आती; जिनको हम जड़ पदार्थ की तरह चीड़ते फाड़ते हैं; जिन्हें हम समझते हैं कि ये हमारे ही खाने, पीने के लिए पैदा किये गये हैं; उनकी इन्द्रियाँ यद्यपि हमारी इन्द्रियों की तरह उन्नत दशा में नहीं, तो भी वे सुख, दुःख और पीड़ा आदि का अनुभव करते हैं। वे दीन हैं; अनाथ हैं; इसीसे हम उनकी इस हीन अवस्था से लाभ उठाते हैं।

हम ऊचे ऊचे आसनों पर खड़े होकर चिल्लाते हैं कि हमारा उद्देश्य संसार में सुख और शान्ति फैलाना है। एकमात्र यही हमारा उद्देश्य है। परन्तु क्या इस उद्देश्य की पूर्ति निरपराध जीवों को मारने और उन्हें अपना भक्ष्य बनाने से हो सकती है? लाखों निरपराध और निर्बल पक्षी अपने परों के लिए मारे जाते हैं। इसलिए कि वे पुरुषों और स्त्रियों, दोनों, की सुन्दरता बढ़ायें। लाखों उनकी पोस्तीनों के लिए काटे जाते हैं। और मनुष्य बड़े घमंड से उस चमड़ी को पहिन कर घूमता है! ज़रा भी लज्जित नहीं होता। वह नहीं सोचता कि मनुष्य कहला कर भी मैं पशुओं के काम कर रहा हूँ। हम अपने आपको सभ्य कहते हैं। परन्तु क्या यही सभ्यता है? यदि अफ़्रीक़ा के जंगली आदमी खाल पहिनते हैं; गले में हड्डियों की मालायें डालते हैं; तो क्या हम उनसे कम हैं? हम तो श्रेष्ठ नियमों को जानते हुए—नहीं नहीं उपदेश करते हुए भी—उनके विपरीत आचरण कर रहे हैं!

सच तो यह है कि मनुष्य इन धार्मिक नियमों को केवल अपने ही समाज के लिए समझता है। एक समाज के लोग जब दूसरे समाजवालों से लड़ते झगड़ते हैं तब वे इतना भी भूल जाते हैं। तब वे इस तरह के उदार नियमों का अनुसरण केवल अपनी समाजसम्बन्धी बातों में ही करते हैं। ऐसे ही लोग पशुओं को बिना जीव के समझते हैं और उनको दुःख देने में तनिक भी दया नहीं दिखाते।

जो अपने पेशे के मनुष्यों को ही अपने दायरे में समझता है वह उदाराशय नहीं। किसी एक समाज या एक जाति को ही अपना समझना बहुत बड़ी संकीर्णता है। ऐसी समझ उसी की हो सकती है जो अपने देश के लोगों को मित्र और दूसरों को शत्रु समझता है। परन्तु उदार वही पुरुष है जो "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धान्त का क़ायल है। जिन तत्त्वदर्शी विद्वानों के नेत्र खुल गये हैं उनका सिद्धान्त यह है—

यस्मिन् सर्व्वाणि भूतानि आत्मन्येवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

ऐसे महापुरुष छोटे से छोटे कीट में भी अपने सम्बन्ध का अनुभव करते हैं। वे जैसे अपनी माता के गर्भ से उत्पन्न हुए अपने भाई को देखते हैं वैसे ही औरों को भी। "प्रेम ही परमेश्वर है" (God is Love) इस सत्यामृत को वही पान करते हैं। प्रत्येक प्राणी से वे प्रेम रखते हैं; उसके दुःख को अपना दुःख और सुख को अपना सुख समझते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी दृष्टि एक क्षण में लाखों बरस के ऐतिहासिक दृश्य को देख जाती है। वे जानते हैं कि ये सब यात्री उन्हीं के मार्ग से पीछे पीछे आ रहे हैं। इस प्रकार उन्हें एक ही गन्तव्य स्थान की ओर जाते देख उनको परमानन्द होता है। स्वतन्त्रता से विचरनेवाले पक्षियों को वे बड़े प्रेम से देखते हैं। जंगल में घास पर गुज़ारा करनेवाले पशुओं को वे प्रेम का भाजन बनाते हैं। उनका आत्मा प्राणिमात्र में अपने ही को देखता है।

हमने महात्मा मूयर के सिद्धान्त, अपने विचारों सहित, थोड़े में आपके सामने रख दिये हैं। पूरा आनन्द तो आपको तब आवे जब आप उनकी पुस्तक को पढ़ें। मनुष्यों की प्राणिमात्र से बन्धुता, उन्होंने बड़ी ही योग्यता से प्रतिपादित की है। हमारे जितने बुरे काम हैं उनका असर ज़रूर बुरा होता है। यदि हम किसी पशु को काटते हैं तो उसके दुःख से वायु में कम्पन (Vibrations) पैदा हो जाते हैं। वही अशान्ति का कारण होते हैं। उनसे हमारे सुख या शान्ति का भंग हुए बिना नहीं रहता। जैसे पतित पुरुष के पास बैठने से उसके बुरे संस्कारों का असर हम पर पड़ता है, और शुद्धाचरणी पुरुष के पास बैठने से शान्ति और आनन्द मिलता है; वैसे ही हमारे भले बुरे कामों का भी फल हमें तदनुरूप ही मिलता है। अनाथों को सताना मना है। इस बात पर हमें विश्वास भी है। हम जानते हैं कि निरपराध को दुःख देने से उसके रोने और आह भरने का बुरा असर पड़ता है। फिर भला निरपराध प्राणियों को दुःख देने से हमारे सुख का विघात क्यों न होगा? अतएव हमें उचित है कि हम सुख और शान्ति के लिए अपने प्रत्येक विचार और कर्म से उत्तम संस्कारों की वृद्धि करें; सब पर प्रेम और दया का भाव रखें; छोटे से छोटे प्राणी को भी न सतावें; और अपने हृदय पर यह लिख लें कि "प्राणिमात्र हमारे बन्धु हैं।"

Wilt thou draw near the nature of the gods?
Draw near them, then, in being merciful;
Sweet mercy is nobility's true badge.

सत्यदेव (शिकागो-विश्वविद्यालय, अमरीका)

इँगलिस्तान का बंक।*

(बैंक आव इँगलैंड)

(By Mr. Kashi-Prasad Jayaswal, M. R. A. S., of Lincoln's Inn).

बैंक आव इँगलैंड नामक बंक में ही इस देश का राजस्व कर (Revenue) जमा किया जाता है। जितनी तरह की राज्य की आमदनी है सब इस बंक में, कॉनसालिडेटेड फंड (Consolidated Fund) अर्थात् 'एकीकृत धन' नामक खाते में जमा होती है। यहाँ का बादशाह यदि चाहे कि इस बंक से मुल्की आमदनी में से एक कौड़ी भी अपने लिए मँगा ले तो नहीं मँगा सकता। यदि महामन्त्री, जो वस्तुतः रिआया की ओर से चुना जाता है, चाहे कि बादशाह को तरफ़दारी करके उसे रुपया बंक से ला दे, तो वह भी ऐसा नहीं कर सकता। बंक रुपया न देगा। बिना पार्लिमेंट की आज्ञा ईसा मसीह भी आजायँ तो उन्हें भी वह रुपया देने का नहीं, क्योंकि अन्यथा करने से वह क़ानून के सामने जवाबदेह रहेगा और क़ानून के चंगुल से महामन्त्री क्या बादशाह भी उसे नहीं बचा सकता।

कंट्रोलर और आडिटर जनरल नामक एक हाकिम पार्लिमेंट की तरफ़ से है, जिसके पास सब मन्त्री अपने अपने विभाग के लिए रुपये के लिए दरख़्वास्त भेजते हैं और वह देखता है कि उन रक़मों की मंज़ूरी पार्लिमेंट से हुई है या नहीं। अगर हुई है तो बंक के नाम रुपया देने के लिए वह हुक्म देता है। कंट्रोलर और आडिटर जनरल अपना हिसाब पार्लिमेंट में पेश करता है।

यह बंक यहाँ का सबसे बड़ा बंक है। सन् १६९४ में यह स्थापित हुआ था। इसमें गवर्नमेंट या राजा†

---

* यह लेख इँगलैंड में लिखा गया है। इससे इसमें आया हुआ 'इस देश', 'यह देश', 'यहां' इँगलिस्तान का द्योतक है।

† गवर्नमेंट से राजा (इंगलिस्तान के राजा, भारत के राजेश्वर) को बिलकुल अलग समझना चाहिए। गवर्नमेंट प्रजा की है। राजा के स्वत्व अलग हैं और निश्चित हैं। उसे कोई अधिकार यहां की गवर्नमेंट में नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj.Foundation Chennai and eGangotri

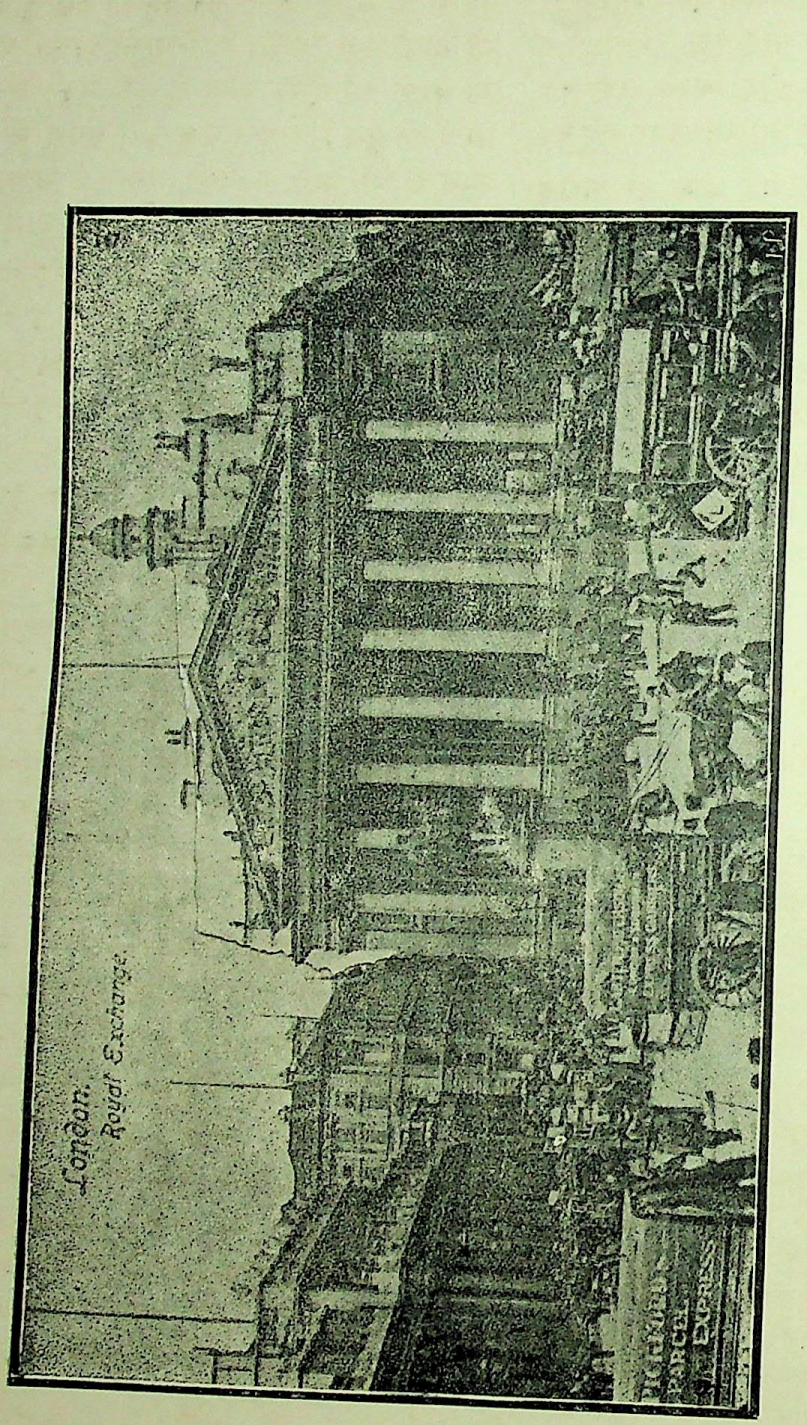

लन्दन के रायल एक्सचेंज की इमारत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कुछ भी हिस्सा नहीं। सन् १८४४ के बैंक-चार्टर ऐक्ट नामक क़ानून के अनुसार इसके दो विभाग—बैंकिंग (महाजनी लेन देन) और इशू (Issue—नोट निकालनेवाला)—हैं। और किसी बंक को क़ानून की रू से नोट निकालने का अधिकार नहीं है।

गवर्नमेंट की ज़मानत पर यह बंक २१ करोड़ रुपए (१४०००००० पाउंड) के नोट ऐसी हालत में निकाल सकता है कि इस रक़म के बराबर नक़द सोना या चाँदी उसे अपने पास तैयार रखने की कोई ज़रूरत नहीं। पर इसके ऊपर जितने के नोट बंक निकालेगा, उसके बदले नक़द सोना अपनी तिजोरी में वह तैयार रक्खेगा। ज़रूरत के दिनों में पार्लिमेंट 'बंक चार्टर ऐक्ट' को मुअत्तल रख कर, बैंक को मन माने नोट निकालने का अधिकार दे सकती है। लेकिन जब जब ऐसा किया गया है (उदाहरण के लिए—सन् १८४७-५७-और ६७ में), देखा गया है कि अधिक नोट नहीं बिक सके।

इसे देखने के लिए मैं ता० १६ जनवरी को गया। ज़मीन के भीतर बिजली से चलनेवाली रेल* का आख़िरी स्टेशन 'बैंक' है। इस बैंक के नाम से एक मुहल्ला ही मशहूर है। इसके सामने रायल एक्सचेंज की आलीशान इमारत है, जिसकी दीवारों पर अन्दर की तरफ़ कई हज़ार रुपए के एक एक ऐतिहासिक चित्र बने हुए हैं। इस मकान में लंदन के महाजन, शाम के चार बजे, रुपये के बाज़ार के भाव तै करते हैं। बैंक से सट कर लोम्बार्ड स्ट्रीट नाम की गली है जिसमें कितने ही बंक हैं। फिर फेनचर्च स्ट्रीट, व्यापारियों का मुहल्ला है। ये मुहल्ले दुनिया भर में धनवान् गिने जाते हैं। फेनचर्च के बाद मिन्सिंगलेन है जहाँ सब तरह के आमदनी और रफ़्तनी के बानों का सौदा होता है। इसे लंदन में 'the Lane' (दि लेन) कहते हैं। बंक आव इंगलैंड के आस ही पास इंगलैंड भर का धन भरा है। लंदन के इसी भाग को 'सिटी' (शहर) कहते हैं।

बैंक के अन्दर लोगों को देखने बहुत कम देते हैं। इससे लिख कर नहीं पूछा गया; क्योंकि लिखने पर बैंकवालों से कोरा जवाब पाने का भय था। ११॥ बजे सेक्रेटरी के दफ़्तर में एक दूसरे बंक की मार्फ़त जाना हुआ। कुछ इधर उधर करके सेक्रेटरी साहब ने बंक दिखलाना मंज़ूर किया और १२ बजे आने को कहा। बैंक के फाटक लोहे के हैं। किसी फाटक पर पुलिस या संतरी दिन में नहीं रहता। रुपया लेने देने के लिए लगातार आदमी आते जाते रहते हैं। पहले फाटक के बाद आँगन में एक लम्बा, अच्छी सूरत का, आदमी, कबीर पंथियों की सी टोपी लगाये, जिसके दो सिरे दोनों कानों को साये में किये हुए थे, और, एक लाल रंग का चोग़ा पहने, टहल रहा था। यह ख़ाली हाथ था। इसके साथ एक और आदमी मामूली कपड़ों में टहल रहा था। मालूम हुआ कि यह दूसरा 'डिटेकटिव' अर्थात् जासूसी पुलिस है। ये दोनों टहलते में ठमकते नहीं थे।

१२ बजे सेक्रेटरी के पास फिर गये। एक किताब पर उसने हमारी सही ली और एक प्यादा बैंक की वर्दी में हम पर तैनात किया। इसने आकर

* इस रेलवे की गाड़ियां दो दो मिनट के अन्तर पर रवाना होती हैं। ६ मील की लाइन है। 'लिफ्ट' नाम के खटोलों से भूगर्भ में उतरना और वहां से ऊपर जाना होता है। भीतर दिन सा उजाला रहता है। बिजली की रोशनी रहती है और हवा का ऐसा उत्तम प्रबन्ध है कि ताज़ी हवा भरी रहती है। हर घंटे हज़ारों घन-फुट वायु पंप से बाहर फेंक दी जाती है और भीतर ली जाती है। कहीं कहीं ६० फुट पृथ्वीतल से नीचे गाड़ी चलती है। बोगदे (सुरंग) में जी ज़रा नहीं ऊबता। गर्मी में तर और जाड़े में वह गर्म रहता है। हरएक ट्रेन में तीन सौ आदमी के बैठने की जगह होती है। ६ गाड़ियों की ट्रेन होती है। ऐसी रेलवे लंदन शहर में तीन हैं जिनमें से एक टेम्स नदी के नीचे होकर निकल गई है। रेलवे की सुरंगें लोहे की मेहराबों पर हैं। इस रेल गाड़ी में चीज़ छूट जाने पर एक आफ़िस में रक्खी रहती है। जब चाहे जाकर ले आइए। मानों थाती जमा है, पर किराया ज़रूर देना होगा। जिस रेलवे का स्टेशन 'बैंक' है उसका किराया चाहे एक स्टेशन जाइए, चाहे अख़ीर तक, २ पेंस (२ आने) है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टोपी उतार शिष्टाचार दिखलाया। सेक्रेटरी आगे हुए। एक कमरे में गये। प्यादे ने झुक कर मुझे ठहरने को कहा। एक मिनट के बाद प्यादे ने एक उँगली से सलाम करके भीतर आने के लिए इशारा किया और दर्वाज़े का पल्ला खोल कर खड़ा हुआ। अंदर जाने पर मालूम हुआ कि यही ख़ज़ाना (Treasury) है। सेक्रेटरी दर्वाज़े के पास हमारे पीछे अलग चुपचाप खड़े थे। अंदर जाते ही एक अधेड़ आदमी ने एक लोहे की संदूक़ खोली और कहा "जनाब, ख़ज़ाने में यह सबसे बेशक़ीमती आलमारी है।" इसमें सर्कारी नोट थे। नोटों के दो बंडल लेकर उसने मेरे हाथों में दिये और कहा—"आपके हाथ में इतना रुपया है कि अगर सोना ख़रीदा जाय तो सोलह टन (४३२ मन) वज़न में हो। दो मिलियन पाउंड के नोट थे पौंड पन्द्रह रुपये का और मिलियन दस लाख का होता है! मैंने धन्यवाद के साथ नोट वापिस दिये। ये एक एक हज़ार पाउंड के नोट थे। दो मिलियन पाउंड के तीन करोड़ रुपये हुए। ख़ज़ानची ने मुसकुरा कर कहा "अब आप कह सकते हैं कि एक बार इतना रुपया आपके हाथ से गुज़र गया है!" इसके बाद चट कठपुतली की तरह एक दूसरे अधेड़ ने दूसरी संदूक़ में एक ताली घुमाई और पहले ने, जिससे अब तक बातें हो रहीं थीं, दूसरी ताली, जो उसके पास थी, लगा कर संदूक़ का मुँह खोल दिया। दूसरे ने, जिसकी सुपुर्दगी में यह संदूक़ थी, कहा—"जनाब, इसमें बैंक के ख़ज़ाने का सब से अधिक सोना है।" और एक थैली मेरे हाथ में देकर कहा कि यह एक हज़ार पाउंड की थैली है। मैंने कहा कि ख़ज़ानची साहब क्या मैं पूछ सकता हूँ कि इस कमरे की कुल क़ीमत क्या है, और इस नाट की संदूक़ में कितना रुपया है, तथा रोज़ाना आपको कितना रुपया देना पड़ता है। उसने जवाब दिया कि इसमें कोई ६० मिलियन पाउंड* है! संदूक़ में कोई ४० मिलियन के नोट उस समय थे। रोज़ाना ख़र्च कई मिलियन का बतलाया, जिसे मैं नोट नहीं कर सका। एक छोटी सी गाड़ी पर लदी हुई थैलियाँ एक ख़ास संदूक़ के पास, जिस पर एक शहर का नाम लिखा था, पहुँचाई गईं। मालूम हुआ कि नामांकित संदूक़ बैंकों के नाम पर उन्हीं के लिए हैं।

धन्यवाद देकर कमरे से चलने लगा तो देखा कि सेक्रेटरी साहब अपनी दुबली पतली सूरत लिए, बाहरी जैसे, द्वार पर भीतर की ओर मुँह किये खड़े हैं। आपने फ़र्माया, "खेद है मैं आपके साथ और नहीं ठहर सकूंगा। यह प्यादा दूसरे विभाग आपको दिखलाएगा।"

वहाँ से रुपये जमा करने और लेने के महकमे में गया। वहाँ बहुत आदमी अपना अपना काम कर रहे थे। फिर एक बड़े हाल में प्यादा ले गया, जिसे उसने 'कोर्ट' बतलाया। मैंने पूछा "कोर्ट किसका"? उसने कहा, यहाँ डाइरेक्टर लोग बैठ कर आठ दिन का हिसाब जाँचते हैं।

यहाँ से उस विभाग में ले गया जहाँ काग़ज़ के रुपये बन रहे थे। पहले हिस्से में पोस्टल आर्डर*, दश शिलिंग तक के छप रहे थे।

दूसरे हिस्से में हमारे हिन्दुस्तान के लिए दस रुपए और हज़ार रुपए के नोट छप रहे थे। यह स्थान मामूली इंजन से चलनेवाला छापाख़ाना मालूम पड़ता था। कोई बीस आदमी काम कर रहे थे। नोट के काग़ज़ का बंडल कल पर रख दिया और हरा रंग पहले छाप लिया। एक दफ़े में जितना हरा छपना चाहिए छप जाता है। फिर हरे छपे काग़ज़ों को दूसरी, बहुत तेज़ चलती हुई, कल (रोलिंग प्रेस) पर ले गये। इसमें से होकर आने पर काग़ज़ पर सब काले छापे लगातार, नम्बर, तारीख़, दस्तख़त सहित, खटाखट छपते चले जाते थे। नम्बरों को

* एक मिलियन पाउंड के १½ करोड़ रु० हुए।

* इस देश में छोटी छोटी रक़में प्रायः पोस्टल आर्डर से भेजी जाती हैं। डाक घर से आर्डर ख़रीद लीजिए और उस पर पाने वाले का नाम लिख कर लिफ़ाफ़े में बिना रजिस्टरी किये भेज दीजिए। वह चाहे जिस डाक घर में भुन जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान से एक आदमी खड़ा देख रहा था। बस दो रोलरों में घूमने पर नोट पक्का बन जाता है। पूछने पर मालूम हुआ कि २० मिनट में १००० नोट, दस रुपएवाले, छपते हैं। यही प्रक्रिया हज़ार रुपए के नोट की भी थी। हज़ारवाले ज़रा धीरे में छपते थे। यहाँ का नोट भी हज़ार हज़ार पाउंड का छप रहा था। इसमें हरा रंग नहीं होता। एक ही बार में छप जाता है। इन नोटों के काग़ज़ दूसरी जगह से बन कर आते हैं। पर छपते बैंक में हैं। हिन्दुस्तानी नोट हिन्दुस्तान के लिए, अंगरेज़ी यहाँ के लिए, और पोस्टल ऑर्डर पोस्ट आफ़िस विभाग के लिए छपते हैं। पूछने पर मालूम हुआ कि सब तरह का मिला कर कोई २० हज़ार नोट हर रोज़ यहाँ के बैंक से निकलता है। याद रखिए इँगलैंड में गवर्नमेंट नोट नहीं निकालती। यहाँ के नोट सब इसी बैंक के हैं। इसकी इतनी थाप है कि सरकारी नोटोंहीं की तरह बैंक के नोट लेन देन में काम आते हैं।

यहाँ से चल कर उस कमरे में पहुँचा जहाँ बाज़ार से घूम कर आये हुए सोने के सिक्के फिर से तौल कर ख़ज़ाने में भेजे जाते थे। पाउंड की ढेरी में से फावड़े के समान एक औज़ार से अशर्फ़ियाँ उठा कर एक आदमी एक चोंगे में भर देता था। फिर वह चोंगा आप ही आप, एक एक की बहुत लंबी बींड में, कल पर उन्हें सुला देता था और इन कलों का यह काम था कि ये अशर्फ़ियाँ को तौल कर नीचे उन्हें खटाखट छोड़ती जाती थीं। नीचे दो थैलियाँ लगी हुई थीं। जो वज़न में कम होती थी वह अशर्फ़ी एक में और जो ठीक होती थी वह दूसरी में खटाखट टपक रही थी।

बाद इसके कुछ लिखने पढ़ने के विभाग दिखला कर प्यादे ने सिर से टोपी उठाकर कहा कि अब सब दिखला चुका। यह रास्ता बाहर का है। तब इसके हाथ में एक सिक्का देकर मैंने बाहर का रास्ता लिया।

काशीप्रसाद जायसवाल।

प्रभु-प्रताप।

चाँद वो सूरज गगन में घूमते हैं रात दिन।
तेज वो तम से दिशा होती है उजली वो मलिन।
वायु बहती है घटा उठती है जलती है अगिन।
फूल होता है अचानक बज्र से बढ़कर कठिन।
जिस निराले काल के भी काल के कौशल के बल।
वह करे सब काल में संसार का मंगल सकल ॥१॥

क्या नहीं है हाथ में उसके वह क्या करता नहीं।
चाहता जो कुछ है वह फिर वह कभी टरता नहीं।
सुख नहीं पाता है वह जिस पर है वह ढरता नहीं।
कौन फिर उसको भरे जिसको है वह भरता नहीं।
जितनी हैं करतूत उसकी वह निराली हैं सभी।
उसके भेदों का पता कोई नहीं पाता कभी ॥ २ ॥

कितनेही सुन्दर बसे नगरों को देता है उजाड़।
धूल कर देता है ऊँचे ऊँचे कितनेही पहाड़ ॥
एक झटके में करोड़ों पेड़ लेता है उखाड़।
इस सकल ब्रह्माण्ड को पल भर में सकता है बिगाड़।
उसके भय से काँपते हैं देवता भी रात दिन।
मोम हो जाता है वहभी जो है पत्थर से कठिन ॥३॥

राज पाकर जिसको करते देखते थे हम बिहार।
माँगता फिरता है वह कल भीख हाथों को पसार।
एक टुकड़े के लिये जो घूमता था द्वार द्वार।
आज धरती है कँपाती उसके धौंसे की धुकार।
नित्य ऐसी कितनी ही लीला किया करता है वह।
रंक करता है कभी सिर पर मुकुट धरता है वह ॥४॥

कितनेही उजड़े हुए घर को बसाता है वही।
कितने ही बिगड़े हुए को भी बनाता है वही।
गिरने वाले को पकड़ करके उठाता है वही।
भूलने वाले को सीधा पथ दिखाता है वही।
इस धरा पर है नहीं सुनता कोई जिसकी कही।
उस दुखी की सब बिथा सुनता समझता है वही॥५॥

डाल सकता शीश पर जिस के पिता छाया नहीं।
गोद माता की खुली जिसके लिये पाया नहीं।
है पसीजी देख कर जिसकी बिथा जाया नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम आती दीखती जिसके लिये काया नहीं।
बाँह ऐसे दीन को है प्यार से गहता वही।
सब जगह सब काल उसके साथ है रहता वही ॥६॥

वह अँधेरी रात जिसमें है घिरी काली घटा।
वह बिकट जंगल जहाँ पर शेर रहता है डटा।
वह महा मरघट पिशाचों का जहाँ है जमघटा।
वह भयङ्कर ठाम जो है लोथ से बिलकुल पटा।
मत डरो यह कुछ किसी का कर कभी सकते नहीं।
क्या सकल संसार पाता है पड़ा सोता कहीं ॥ ७ ॥

जिस महामरुभूमि से कढ़ती सदा है लू लपट।
वारि की धारा मधुर रहती उसी के है निकट।
जिस विशद जलराशि का है दूर तक मिलता न तट।
है उसी के बीच हो जाता धरातल भी प्रकट।
वह कृपा ऐसी किया करता है कितनी ही सदा।
लाभ जिससे हैं उठाते सैकड़ों जन सरबदा ॥ ८ ॥

जिस अँधेरे को नहीं करता कभी सूरज शमन।
उस अँधेरे को सदा करता है वह पल में दमन।
भूल करके भी किसी का है जहाँ जाता न मन।
वह बिना आयास के करता वहाँ भी है गमन।
देवतों के ध्यान में भी जो नहीं आता कभी।
उस खेलाड़ी के लिये हस्तामलक है वह सभी ॥ ९ ॥

जगमगाती गगन-मंडल की विविध तारावली।
फूल फल सब रंग के सब भाँति की सुन्दर कली।
सब तरह के पेड़ उनकी पत्तियाँ साँचे ढली।
अति अनूठे पङ्ख की चिड़ियाँ प्रकृति-हाथों पली।
आँख वाले के हृदय में है बिठा देती यही।
इन अनूठे विश्व चित्रों का चितेरा है वही ॥ १० ॥

जिसने देखा है अरोरा बोरिएलिस का समा।
रङ्ग जिसकी आँख में है मेघमाला का जमा।
जो समझ ले व्यूह तारों का अधर में है थमा।
जो लखे सब कुछ लिए है घूमती सिगरी छमा।
कुछ लगाता है वही करतूति का उसका पता।
भाव कुछ उसके गुनों का है वही सकता बता ॥११॥

है कहीं लाखों करोड़ों कोस में जल ही भरा।
है करोड़ों मील में फैली कहीं सूखी धरा।
है कहीं परबत जमाये दूर तक अपना परा।
देख पड़ता है कहीं मैदान कोसों तक हरा।
"बह रहीं नदियाँ कहीं", "हैं गिर रहे झरने कहीं।"
किस जगह उसकी हमें महिमा दिखाती है नहीं ॥१२॥

जी लगाकर आँख की देखो क्रिया कौतुक भरी।
इस कलेजे के बनावट की लखो जादूगरी।
देखकर भेजा बिचारो फिर विमल बाजीगरी।
इस तरह सब देह की सोचो सरस कारीगरी।
फिर बतादो यह हमें संसार के मानव सकल।
इस जगत में है किसी की तूलिका इतनी प्रबल ॥१३॥

जब जनमने का नहीं था नाम भी हमने लिया।
दो घड़ा तैयार दूधों का तभी उसने किया।
आपदा टालीं अनेकों बुद्धि बल विद्या दिया।
की भलाई की न जाने और भी कितनी क्रिया।
तीन पन है बीतता तब भी तनक चेते नहीं।
हम पतित ऐसे हैं उसका नाम तक लेते नहीं ॥१४॥

हे प्रभो! है भेद तेरा वेद भी पाता नहीं।
शेष शिव सनकादि को भी अंत दिखलाता नहीं।
क्या अजब है जो हमें गाने सुयश आता नहीं।
व्योमतल पर चींटियों का जी कभी जाता नहीं।
मन मनाने के लिए जो कुछ ढिठाई की गई।
कीजिये उसको क्षमा प्रभु बात तो अनुचित भई ॥१५॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय।

हड़ताल।

इन दिनों, भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में, भिन्न भिन्न व्यवसायों के लोग हड़ताल कर रहे हैं। सात, आठ वर्ष की बात है कि, जी० आई० पी० रेलवे के तारबाबुओं ने बहुत बड़ी हड़ताल की थी। उस समय, हड़ताल करनेवालों के साथ, सब लोगों ने अपनी अपनी सहानुभूति प्रकट की थी। परन्तु हड़तालियों में एकता न होने के कारण, उनका यत्न सफल न हुआ। थोड़े दिन हुए कि, ई० आई० रेलवे के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौकरों ने भी हड़ताल की थी; उसका परिणाम कुछ कुछ सन्तोष-दायक हुआ। कलकत्ते के मेहतरों और झाड़ू बरदारों ने, कोलम्बो के गाड़ीवालों ने, बम्बई के चिट्ठीरसों ने और कई पुतलीघरों के मज़दूरों ने भी हड़ताल की है। जमालपुर और असनसोल में तो, कुछ समय हुआ हड़तालों की तेज़ी बहुत बढ़ गई थी। बंगाल-नागपुर रेलवे, नार्थ-ब्यस्टर्न रेलवे, अवध-रुहेलखंड रेलवे और अन्य अन्य स्थानों में भी हड़ताल होने की आशंका हुई थी और भी कहीं कहीं है। कोई कहते हैं कि, इस समय हिन्दुस्तान में हड़तालों की बीमारी फैली है; कोई कहते हैं कि, यह सब "स्वदेशी-आन्दोलन" का परिणाम है। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि, हड़तालों का वास्तव सम्बन्ध, औद्योगिक और आर्थिक विषयों ही से है। किसी किसी विशेष राजनीतिक स्थिति में भी हड़तालों का उपयोग होता है। इस निबन्ध में हड़ताल का, आर्थिक दृष्टि से, कुछ विवेचन करने का हमारा विचार है।

जब किसी देश की सम्पत्ति थोड़े से पूंजीवालों के हाथ में आ जाती है और अन्य लोगों को मज़दूरी से अपना निर्वाह करना पड़ता है, तब पूंजीवाले अपने व्यापार का सब नफ़ा स्वयं आप ही ले लेते हैं, और जिन लोगों के परिश्रम से यह सम्पत्ति उत्पन्न की जाती है, उनको वे पेट भर खाने को नहीं देते। ऐसी दशा में श्रम करनेवाले मज़दूरों को हड़ताल करनी पड़ती है। एडवर्ड डायसी नाम के एक लेखक ने अँगरेज़ीभाषा के बृहत्कोश (इन्साइक्लोपीडिया) में लिखा है—"Strikes have increased in number and in effectiveness. In the future, as in the past, all trade disputes must be ultimately settled on the 'pull devil, pull baker' principle, by strikes on the part of men and lock-outs on the part of the masters," अर्थात् हड़तालों की संख्या बढ़ गई है और उनकी कार्य-क्षमता भी अधिक हो गई है। जिस नियम के अनुसार व्यापार विषयक सब झगड़ों का पहिले तसफ़िया होता था, उसी नियम का अवलम्ब भविष्य में भी किया जायगा। अर्थात् काम करनेवाले हड़ताल करेंगे, और कारख़ानों के मालिक उन्हें काम से छुड़ा देंगे।"

पश्चिमी देशों में भिन्न भिन्न व्यवसायियों की भिन्न भिन्न जातियाँ नहीं हैं। जो आदमी आज सुनार का काम करता है, वही कल आपको चमार का काम करता हुआ देख पड़ेगा। इसी सामाजिक व्यवस्था का परिणाम, पश्चिमी देशों की आर्थिक दशा पर, स्पर्धा के रूप में दिखाई देता है। अर्थात् जिस समाज में, सब लोगों को, हर तरह के व्यवसाय करने की स्वतन्त्रता है—जिस समाज के लोगों को हर तरह के व्यवसाय करने की आज़ादी है—उन लोगों की तनख़्वाह केवल पारस्परिक स्पर्धा (Competition) ही से ठहराई जाती है।

जब काम कम रहता है और मज़दूर बहुत रहते हैं, तब मज़दूरी की दर घट जाती है और कारख़ाने वालों को बहुत नफ़ा होता है। ऐसी अवस्था में मज़दूरों को दिन भर श्रम करने पर भी पेट भर भोजन नहीं मिलता। इसी लिए वे लोग हड़ताल किया करते हैं। प्राचीन समय में इस देश की समाज-रचना भिन्न तत्त्व पर की गई थी। यहाँ पर यह माना जाता था कि, मनुष्य जन्म ही से अमुक वर्ण (जाति) का है। प्रायः सब व्यवसायियों की भिन्न भिन्न जातियाँ थीं; जैसे कुम्हार, सुनार, लोहार, बढ़ई आदि। चाहे किसी एक जाति के लोगों में परस्पर स्पर्धा होती रही हो; परन्तु एक जाति के लोगों के व्यवसाय में अन्य जाति के लोग स्वतन्त्रता-पूर्वक घुस कर उन से स्पर्धा नहीं कर सकते थे। जब कभी किसी एक जाति का व्यवसायी दूसरी जाति का व्यवसाय करने लग जाता था, तब लोग उसका हुक्का पानी बन्द करके जाति से बहिष्कृत कर दिया करते थे। इसका फल यह होता था कि, प्रत्येक जाति के व्यवसायियों के स्वत्वों की पूरी पूरी रक्षा होती थी। जाति-भेद या वर्ण-भेद इस समय किसी कारण से चाहे दूषित माना जाय, तथापि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औद्योगिक अथवा आर्थिक दृष्टि से, उससे बहुत लाभ होता था। जाति और व्यवसाय का उपर्युक्त सम्बन्ध अँगरेज़ी अमलदारी में नष्ट हो रहा है। अब तो प्रत्येक मनुष्य यही समझता और कहता है कि, मैं हर तरह के व्यवसाय करने के लिए स्वतन्त्र हूँ। अर्थात् जिस तत्त्व पर पश्चिमी देशों के समाज की रचना की गई है, उसी तत्त्व का अवलम्ब इस देश के लोग भी धीरे धीरे कर रहे हैं। हम यह नहीं कह सकते कि यह बात अच्छी है या बुरी; किन्तु यह अवश्य कहेंगे कि, समाज की परिवर्तित स्थिति के अनुसार इस देश के भिन्न भिन्न व्यवसायियों और मज़दूरों को स्पर्धा और हड़ताल करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि, वह अपने नफ़े का हिस्सा किसी दूसरे को देना नहीं चाहता। जो पूँजीवाले, अपनी पूँजी लगाकर, बड़े बड़े व्यवसाय करते हैं, वे यही चाहते हैं कि, सब नफ़ा अपने ही हाथ में बना रहे—जिन मज़दूरों के श्रम से व्यवसाय किया जाता है, उनको उस नफ़े का कुछ भी हिस्सा न मिले। इसी को अर्थशास्त्र में "पूँजी और श्रम का हित-विरोध" कहते हैं।

कारख़ानों के मालिक जिन शर्तों पर मज़दूरों से काम कराना चाहते हैं, उनको जब वे लोग मिल कर अस्वीकार करते हैं, तब मज़दूरों की हड़ताल होती है। प्रायः लोग हड़ताल की निन्दा करते हैं और मज़दूरों पर दोष लगाते हैं। परन्तु स्मरण रहे कि, यद्यपि हड़ताल से कारख़ाने वालों और मज़दूरों का बहुत नुक़सान होता है, तथापि इसमें संदेह नहीं कि, मज़दूरों को अपने स्वत्त्व की रक्षा करने का पूरा अधिकार है। मज़दूर और कारख़ाने के मालिक में, दुकानदार और ग्राहक का नाता है। यदि दुकानदार अपनी कोई चीज़ ग्राहक के मुँह माँगे दाम पर न दे, तो वह अन्यायी या अपराधी नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार जब कारख़ानों के मालिक, मज़दूरों को अमुक तनख़्वाह पर या अमुक घंटे तक श्रम करने के लिए कहते हैं, तब उनकी बातों को स्वीकार करने वा न करने का मज़दूरों को पूरा हक़ है। यदि मज़दूर अपने श्रम को कारख़ाने वालों के मुँहमाँगे दाम पर न बेचें, तो क्या वे दोषी या अपराधी हो सकते हैं? कदापि नहीं। नीति-दृष्टि से वे किसी प्रकार दोषी नहीं कहे जा सकते। अतएव जब श्रम करनेवाले मज़दूर अधिक तनख़्वाह पाने, या अपनी तनख़्वाह की दर घटने न देने, या अपने अन्य दुःखों को दूर करने, के लिए एकत्र हो कर हड़ताल करते हैं तब (जब तक वे औरों की स्वाधीनता का भंग न करें तब तक) उन्हें किसी तरह दोषी समझना न चाहिए।

जब तक मज़दूर लोग अज्ञानी थे और अपने हित-साधन के लिए, एकत्र होकर उद्योग नहीं कर सकते थे, तब तक पूँजीवाले मनमानी मौज करते थे। परन्तु जबसे देश में दुर्भिक्ष आदि अनेक कारणों से अनाज महँगा होने लगा, और लोग दिन भर मिहनत करके भी भूखों मरने लगे, तबसे उन लोगों की आँखें खुलीं; तब से उनको एकत्र होकर अपने स्वत्व की रक्षा करने का महत्त्व मालूम हुआ। परन्तु इस प्रकार उद्योग करनेवाले लोगों की एकता के चिरस्थायी न होने के कारण उनकी हड़ताल से बहुत लाभ नहीं होता। भिन्न भिन्न व्यवसाय के लोगों को, एकता चिरस्थायी करने के लिए, व्यापारिक समाज (Union) स्थापित करना चाहिए। व्यापारिक समाजों से बड़ा भारी लाभ यह होता है कि, सब मज़दूर एकत्र होकर पूँजीवालों के साथ अपने स्वत्व की रक्षा के लिए बराबरी से लड़ सकते हैं और प्रसंगानुसार कुछ दिनों तक बिना काम के ख़ाली भी रह सकते हैं। जिन मज़दूरों को व्यापारी-समाज का आश्रय नहीं रहता, वे लोग बड़ी बड़ी पूँजीवालों की चंगुल में सहज ही आ जाते हैं।

किसी एक व्यवसाय में काम करनेवालों की स्थापित की हुई मंडली, समवाय, सभा या संघ को व्यापार-समाज (Union) कहते हैं। इस समाज से मज़दूरों को दो लाभ होते हैं। पहिला यह कि,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपत्ति-काल में समाज द्वारा उन लोगों की सहायता की जाती है, जिनको कारख़ानों के मालिक काम पर से अलग कर देते हैं। दूसरा यह कि, जिस कारख़ाने में वे लोग काम करते हैं, वहाँ उनको अधिक तनख़्वाह दिलाने या काम के घंटे घटाने का उद्योग किया जाता है। और जब जब मौक़ा आता है तब तब मंडली अर्थात् समाज के प्रबन्धकर्ता अपने सभासदों की ओर से कारख़ानेवालों के साथ पत्रव्यवहार आदि करके झगड़ों का तसफ़िया कर लेते हैं। मंडली के नियमों के अनुसार, प्रत्येक मज़दूर को जो सभासद होता है, हर महीने कुछ चन्दा देना पड़ता है। ऐसे व्यापार-समाज इँगलैंड में बहुत से हैं। कपास के रोज़गार में, पुतलीघरों में, जहाज़ बनाने के कारख़ानों में काम करनेवाले मज़दूरों की सभायें स्थापित हैं। जब वे किसी कारण से हड़ताल करते हैं, तब उन लोगों का निर्वाह उनकी सभा या मंडली के द्रव्य से होता है। सन् १९०० ई० में इँगलैंड के भिन्न भिन्न व्यवसायों की एक हज़ार दो सौ बहत्तर सभायें थीं, जिनके सभासदों की संख्या उन्नीस लाख थी! इसी प्रकार की सभायें इस देश में भी होनी चाहिएँ। प्रेसमैन, कम्पाज़िटर, सिग्नैलर (तार बाबू), पोस्टमैन, पुतलीघरों के मज़दूर, ख़लासी, रेलवे के नौकर आदि लोगों को अपने अपने व्यवसायों के क्लेश दूर करने के लिए, सभा, संघ, मंडली, समवाय, यूनियन इत्यादि स्थापित करना चाहिए, और उन्हीं के द्वारा उन लोगों को इस बात का निर्णय करना चाहिए कि, अपने स्वत्वों की पूरी पूरी रक्षा होती है या नहीं। यदि आज कल कोई किसी यूनियन के आश्रय के बिना हड़ताल करेगा, तो उसे कदापि सफलता प्राप्त न होगी। हड़तालों की सफलता के लिए, सब लोगों की सहायता और सहानुभूति की आवश्यकता है।

श्रम और पूँजी में (अर्थात् मज़दूरों और कारख़ानेवालों में) जो हित-विरोध होता है उसका नाश करने के लिए, यूरप में यूनियन के सिवा और भी अनेक उपाय किये जाते हैं। परन्तु यूरप और हिन्दुस्तान की आर्थिक तथा औद्योगिक दशा में आकाश-पाताल का अन्तर है। वहाँ के सब कारख़ाने स्वतन्त्र हैं, किन्तु यहाँ एक भी ऐसा कारख़ाना नहीं है जो, किसी न किसी तरह, सरकार की कृपा पर अवलम्बित न हो। यथार्थ में इस देश के सब कारख़ाने या तो ख़ुद सरकार के हाथ में हैं, या सरकार के आश्रित हैं। जैसे रेलवे, टेलिग्राफ़, पोस्ट आफ़िस, आबपाशी, अकालरक्षण आदि सब सरकार ही के अधीन हैं। यदि यह कहा जाय कि, इस देश की गवर्नमेंट एक बड़े भारी कारख़ाने की मालिक है, तो अतिशयोक्ति न होगी। जब इस प्रकार के मालिक के मज़दूर, पेट भर भोजन पाने और सुख से रहने का दावा करते हैं, और जब राज-सत्ता से वह दावा नामंज़ूर किया जाता है, तब वह केवल अर्थशास्त्र ही का विषय नहीं रह जाता; उस समय केवल अर्थशास्त्र के साधारण नियमों का अवलम्बन करने से कुछ लाभ नहीं होता। ऐसी दशा में अन्य उपायों का अवलम्बन करना पड़ता है, जिनका वर्णन इँगलैंड और यूरप के अन्य देशों के इतिहासों में किया गया है। परन्तु इस विषय की चर्चा सरस्वती में नहीं की जाती; क्योंकि उसका सम्बन्ध राजनीति से है।

माधवराव सप्रे।

बाबू राधाकृष्णदास।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई, हिन्दी के कवि और सुलेखक तथा काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के मन्त्री, बाबू राधाकृष्णदास, के नाम से प्रायः सभी हिन्दी जाननेवाले परिचित होंगे। हिन्दी के दुर्भाग्य से उनका भी शरीर तारीख़ २ अप्रैल सन् १९०७ को छूट गया। उनकी अवस्था इस समय ४२ वर्ष की थी। यों तो वे सदा रुग्ण हो रहा करते थे, परन्तु गत दो तीन वर्ष से लकवे के कारण वे बहुत दुखी रहते थे। आश्चर्य यही है कि मरने के कुछ महीने पहिले उनकी अवस्था अच्छी हो चली थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रायः सभी सभा-सोसाइटियों में वे आने लग गये थे। १०वीं मार्च की बात है कि जब काशी-निवासियों की ओर से बाबू लक्ष्मीचन्द एम० ए० को, जिनको संयुक्तप्रदेश की सरकार ने विलायत में कारीगरी सीखने के लिए वज़ीफ़ा (छात्र-वृत्ति) दिया है, बधाई देने के निमित्त एक बड़ी सभा की गई थी। उसमें हमारे बाबू साहब भी उपस्थित थे। बाबू साहब की लेखनी बहुत दिनों से शान्त थी। नागरीप्रचारिणी पत्रिका के सम्पादन के अतिरिक्त शायद ही कोई दूसरा विद्यासम्बन्धी काम वे इधर करते थे। इसका एकमात्र कारण उनका रुग्ण रहना था। रोगी तो ये बचपन ही से रहते थे, जिसके कारण इनकी शिक्षा में भी विघ्न पड़ा।

ये हिन्दी के अतिरिक्त अँगरेज़ी, उर्दू, बँगला और गुजराती भी जानते थे। बँगला की बहुत सी पुस्तकों का इन्होंने अनुवाद भी किया है। हिन्दी में लेख लिखने की प्रेरणा इनको बाबू हरिश्चन्द्रजी ने की थी। १४ और १५ वर्ष की अवस्था में जो लेख इन्होंने लिखे उनको पढ़ कर भारतेन्दुजी इनको उत्साहित करते थे और उनके छापने का प्रबन्ध कर देते थे। मृत बाबू साहब सदैव बाबू हरिश्चन्द्र का यश गाते रहे। "पूज्यपाद भाई साहब" सदैव उनकी जिह्वा पर रहता था।

बाबू राधाकृष्णदास का स्वभाव सरल और नम्र था। धैर्य और शान्ति को वे झगड़े के समय में भी नहीं छोड़ते थे। मनुष्य का स्वभाव सदा एक सा नहीं रहता और न प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति ही एक सी होती है। इसी कारण, बड़ी बड़ी सभा और कमेटियों में भी लोग अधीर और अशान्त हो जाते हैं। राग, द्वेष, स्वमत-प्रतिपादन के भाव उत्पन्न होने लगते हैं। ऐसे समय में भी किसी ने बाबू राधाकृष्णदास की मुखाकृति को खिन्न नहीं पाया। यहाँ तक कि कभी कभी उनके दिल्लगीबाज़ मित्र उनकी वैष्णवता पर हास्य करते थे। परन्तु तब भी वे कभी उत्तर नहीं देते थे।

बाबू साहब थे तो कट्टर वैष्णव परन्तु स्त्रियों की वर्तमान अवस्था के सुधार, विधवाविवाह, समुद्रयात्रा इत्यादि के पक्षपाती थे। "दुःखिनीबाला" के टाइटिल-पेज पर लिखा है कि यह पुस्तक "बाल्य-विवाह, जन्मपत्रविवाह-निषेध और विधवाविवाह के न होने का अशुभ परिणाम दिखाने को" रची गई थी। बाबू हरिश्चन्द्रजी के जीवनचरित में समाजसुधार पर जो कुछ उन्होंने लिखा है उसको पढ़ कर साफ़ मालूम होता है कि बाबू साहब यदि कर्तव्य में नहीं तो अपनी राय में तो अवश्य लकीर के फ़क़ीर नहीं थे।

"आर्यचरितामृत", "धर्मालाप", "दुःखिनी-बाला", "निःसहाय हिन्दू" इत्यादि पुस्तकों से उनका स्वदेशानुराग प्रकट होता है। पर हिन्दी-साहित्य के लिए जो कुछ उन्होंने किया वह सब से बढ़ कर है। "सामयिक पत्रों का इतिहास", बाबू हरिश्चन्द्र, सूरदास, श्रीनागरीदास, कविवर विहारीलाल के जीवन-चरित्र, "महारानो पद्मावती", "प्रताप-नाटक" "स्वर्णलता", "दुर्गेशनन्दिनो" इत्यादि पुस्तकों की रचना और "भक्तनामावली" "सुजान-चरित्र" "फरुखसियर का जंगनामा", "नन्ददास की रास-पञ्चाध्यायी", "सूरसागर", "नहुष-नाटक" का सम्पादन करना हिन्दी की साधारण सेवा नहीं है। बाबू हरिश्चन्द्रजी के कितने ही अधूरे ग्रन्थों को इन्होंने पूर्ण किया था—जैसे "कालचक्र", "प्रशस्ति-संग्रह", "सतीप्रताप", "राजसिंह" इत्यादि। प्रयाग के इंडियन प्रेस ने नागरी की प्रशंसनीय सेवा की है। इस प्रेस के दो काम चिरस्मरणीय रहेंगे। एक तो तुलसीदास को रामायण का विशुद्धरूप में छापना और दूसरा "सरस्वती" ऐसी सुन्दर और उत्तम मासिक-पत्रिका का निकालना। इन दोनों कामों में मृत बाबू साहेब का भी हाथ था। रामायण के सम्पादन करनेवालों में ये भी थे और जब सरस्वती निकलनी आरम्भ हुई थी उस समय इसकी एक सम्पादकसमिति थी, जिसके बाबू राधाकृष्णदास भी एक उत्साही सभ्य थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सबके अतिरिक्त उनकी अटल कीर्ति काशी-नागरीप्रचारिणी सभा है। संसार की प्रायः सभी सभाएँ प्रारम्भ में वक्तृता देने और वादकला सीखने के लिए स्थापित हुई हैं। नागरीप्रचारिणी सभा की भी उत्पत्ति कुछ मिडिल और इन्ट्रेन्स में पढनेवाले लड़कों ने, अपने को अँगरेज़ी में व्याख्यान देने के अयोग्य समझ कर, हिन्दी में व्याख्यान देने की शक्ति बढ़ाने के निमित्त, की थी। कई वर्षों तक इसमें केवल लेख पढ़े जाते थे और व्याख्यान होते थे। १८९४ ईसवी में बाबू राधाकृष्णदास ने सभा का सभासद होना स्वीकार किया। हिन्दी के प्रायः सभी सुलेखक सभा में इसके पीछे शरीक हुए। बाबू साहब के अनुरोध से बहुत से स्थानिक साहित्य-सेवी सभा में आने लगे और धीरे धीरे अमली काम करने की ओर लोगों का ध्यान होने लगा। पहिले सभा की ओर से एक स्कूल खोला गया था। इसका उद्देश्य था कि महाजनी लिखनेवाले लड़के शुद्ध नागरी लिखने का अभ्यास करें। परन्तु यह स्कूल नहीं चला। समय पाकर नागरीप्रचारिणी पत्रिका, ग्रन्थ-माला और स्फुट पुस्तकों का छपना आरम्भ हुआ। यहाँ तक कि आज नागरीप्रचारिणी सभा भारतवर्ष की प्रधान सभाओं में गिनी जाती है। यह कहना तो ठीक नहीं होगा कि सभा की उन्नति के एकमात्र कारण मृत बाबू साहब ही थे; क्योंकि सभा की और भी पुरुषों ने निरन्तर सेवा की है; परन्तु सभा का कोई भी कार्यकर्ता इस बात को स्वीकार करने में संकोच नहीं करेगा कि बाबू राधाकृष्णदास उन थोड़े लोगों में से हैं जिन्होंने निःस्वार्थ, अहंकार-रहित और सरलतापूर्वक सदा सभा की सेवा की है। सभा ने केवल अपनी कृतज्ञता का परिचय दिया जब उसने ६ अप्रेल को एक सर्वसाधारणसभा करके बाबू राधाकृष्णदास की मृत्यु पर शोक प्रकट किया और उनका स्मारक बनाना निश्चय किया। इस सभा में पादरी, थियासौफ़िस्ट, सनातनधर्मी और आर्य्यसमाजी सब एकत्र हुए थे और सबने थोड़ा बहुत चन्दा दिया। एक हिन्दू-स्त्री ने कहला भेजा कि मैं मृत बाबू साहब का चित्र बनाने का व्यय दूँगी जो कि सभाभवन में रक्खा जाय। अभी चन्दे की संख्या अधिक नहीं हुई है, परन्तु आशा है कि सभा की अपील का—जो प्रकाशित हो रही है—फल अच्छा हो और बाबू साहब का कोई ऐसा स्मारक बने जिससे हिन्दी की उन्नति में सहायता हो। यह भी प्रकट कर देना अनुचित न होगा कि बाबू साहब वसीयतनामे के द्वारा अपनी सब पुस्तकें सभा को दे गये हैं और सभा को धन से भी सहायता करने की इच्छा अपने उत्तराधिकारियों पर प्रकट कर गये हैं।

बाबू साहब को लोग बच्चाबाबू कहा करते थे। इन दिनों ये ठीके का रोज़गार करते थे। दुःख की बात है कि ऐसे सज्जन पुत्र को उत्पन्न करनेवाली माता अब तक विद्यमान है। माता के अतिरिक्त इनके परिवार में स्त्री, २ लड़के और २ लड़कियाँ हैं।

रामनारायण मिश्र।

मनोरञ्जक श्लोक।

खलों के स्वभाव से सम्बन्ध रखनेवाली एक उक्ति :—

कस्त्वं भद्र! खलेश्वरोहमिह किं घोरे वने स्थीयते?
शार्दूलादिभिरेव हिंस्रपशुभिः खाद्योहमित्याशया।
कस्मात् कष्टमिदं त्वया व्यवसितं? मद्देहमांसाशिनः,
प्रत्युत्पन्ननृमांसभक्षणधियस्ते घ्नन्तु सर्वानिति॥

भाई! तुम कौन हो? मैं खलों का ईश्वर हूँ। ठीक; पर यह तो बताओ, तुम यहाँ इस घोर वन में बैठे किस लिए हो? मैं यहाँ इस इरादे से बैठा हूँ कि सिंहादि हिंस्र पशु मुझे खा जायँ। ऐं यह क्या! यह प्राणकष्ट तुम क्यों उठाना चाहते हो? बता दूँ? सिर्फ़ इसलिए कि मुझे खाकर, उन सिंहादिकों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरमांस का चसका लगजाय, और वे सब आदमियों को मारकर खा जायँ!!!

पद्मसिंह शर्मा।

❋

एक कवि ने किसी कृपण की क्या ही मीठी निन्दा की है। वह कहता है :—

कृपणेन समो दाता न भूतो न भविष्यति।
अस्पृशन्नेव वित्तानि यः परेभ्यः प्रयच्छति॥

अर्थात् कृपण मनुष्य के बराबर संसार में कोई दानी ही नहीं। उसके बराबर दानी आज तक न कोई हुआ, न होगा। क्योंकि और लोग तो अपने धन का अधिकांश भोग करने बाद कुछ थोंही सा दान करते हैं। पर कृपण आदमी, भोगना तो दूर, उसे छूता तक नहीं। वह उसे सब का सब, ज्यों का त्यों, योंही दूसरों को दे डालता है। औरों के लिए ही छोड़ मरता है!

रामजोलाल शर्मा।

❋

अंतस्सारविहीनानामुपदेशो न जायते।
मलयाचलसंसर्गान्न वेणुश्चन्दनायते॥

जिस प्रकार मलयाचल पर उत्पन्न होने पर भी, अन्तःसारहीन, अर्थात् पोला, होने के कारण बाँस चंदन की सुगन्ध को धारण नहीं करता, उसी प्रकार जो पुरुष सहृदय नहीं हैं वे चाहे जितने दिन सज्जन पुरुषों के साथ रहें, पर अन्तःसारहीन होने के कारण उनके उपदेशों को वे ग्रहण नहीं कर सकते।

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री।

निवेदन।

सरस्वती में समालोचना के लिए जो पुस्तकें आती हैं उनमें कितनी ही ऐसी भी रहती हैं जिनको पढ़ना व्यर्थ कालातिपात करना है। उनसे न पढ़नेवाले ही का कुछ लाभ होता है न लिखने ही वाले का। अतएव हमने निश्चय किया है कि आगे से हम सिर्फ़ उन्हीं पुस्तकों की आलोचना सरस्वती में प्रकाशित करेंगे जो पुस्तक कहलाये जाने योग्य हैं। जो समय और जो स्थान अनुपयोगी क्षुद्र पुस्तकों की आलोचना में ख़र्च होता है उसे औरों कुछ अधिक आलोचना में ख़र्च करना ही मुनासिब मालूम होता है। कोई कोई ग्रन्थकार दो दो चार चार पन्ने को निरुपयोगी पुस्तकें समालोचना के लिए भेजते हैं और चाहते हैं कि तत्काल ही हम उनकी रसीद लिख भेजें और अगली ही संख्या में उनकी समालोचना भी छाप दें। यदि देरी होती है तो तकाज़े पर तकाज़े आते हैं; सो भी कभी कभी बड़ी ही मधुर भाषा में। ये सज्जन समझते हैं कि पुस्तक भेज कर इन्होंने सरस्वती पर कोई बहुत बड़ा एहसान किया। कोई कोई दस दस बीस बीस वर्ष की छपी हुई पुरानी पुस्तकें समालोचना के लिए भेजते हैं। कोई लिखते हैं पुस्तक की क़ीमत और मिलने का पता समालोचना में लिखना न भूल जाइएगा और भूल जाते हैं तो सख्त उलाहने मिलते हैं। इन सब से हमारी प्रार्थना है कि आलोचना से विज्ञापन का काम नहीं निकल सकता। अतएव पुस्तकों का मूल्य, कमीशन का निर्ख़ और मिलने का पता यदि लिखने से रह जाय तो पुस्तक भेजनेवाले क्षमा करें। आशा है पुस्तकों की पहुँच लिखने और कब समालोचना निकलेगी, यह बतलाने के लिए, हमसे कोई तकाज़ा न करेगा। जो पुस्तकें समालोचना के योग्य होंगी उन पर कुछ लिखना अपना कर्तव्य समझकर हम उनकी आलोचना, स्थान मिलते ही, सरस्वती में प्रकाशित करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

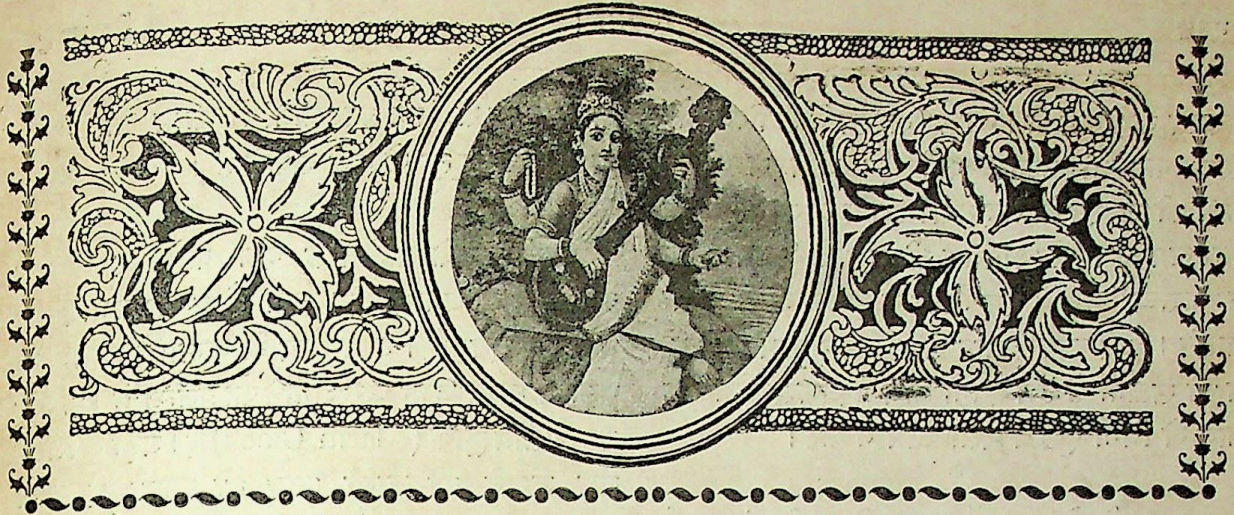

सरस्वती।

भाग ८] जून, १९०७ [संख्या ६

विविध विषय।

हिन्दी के कुछ "साहित्यसेवी" सज्जनों से हम नम्रतापूर्वक एक प्रार्थना करना चाहते हैं। प्रार्थना यह है कि यदि वे किसी की पुस्तक या उसके कुछ अंश को अपनी तरफ़ से प्रकाशित करना चाहें तो पुस्तककर्ता से अनुमति ज़रूर ले लिया करें। अनुमति न सही, सूचनाही दे दिया करें। यदि और किसी ख़याल से नहीं तो शिष्टाचारही के ख़याल से सही। समालोचना के लिए किसी के लेख या लेखांश को उद्धृत करना अनुचित नहीं, और न किसी समाचारपत्र या मासिक पुस्तक के लेख, लेखांश या उसके अनुवाद ही को अपने समाचारपत्र या सामयिक पुस्तक में उसका नाम देकर प्रकाशित करना अनुचित है। पर उसे अलग पुस्तकाकार या अपनी पुस्तक का अंश बनाकर प्रकाशित करना बहुत अनुचित है। सरस्वती के कितनेही लेखों के नक़ल किये जाने की शिकायत हम दो एक दफ़े कर चुके हैं। अब हम देखते हैं कि लोग हमारे पद्य अपनी पुस्तकों में शामिल करके प्रकाशित करने लगे हैं। ऐसा करने में कोई तो लेखक का नाम दे देते हैं। कोई देना बिलकुल ही भूल जाते हैं। कोई हमारा "बाल-विधवा-विलाप" अपनी पुस्तक में शामिल कर रहा है, कोई "मांसाहारी को हण्टर", कोई "कान्यकुब्जलीलामृत"। पर "श्रोत्रिय शङ्करलाल बिजनौर निवासी तथा प्रधान विधवा विवाह प्रचारक सभा युक्त प्रदेश" ने इन लोगों से भी आगे क़दम बढ़ाया है। गत वर्ष हमने "माता पिता का कर्त्तव्य" नामक एक लेख सरस्वती की कई संख्याओं में प्रकाशित किया था। यह लेखमालिका स्पेन्सर की "शिक्षा" नामक पुस्तक के कुछ अंश का अनुवाद थी। इन लेखों को श्रोत्रिय जी ने अपने बरेली के "दीन-बन्धु" प्रस में पुस्तकाकार छपाकर प्रकाशित किया है। आपने ११०० कापियाँ पुस्तक की छापी हैं और एक पैसे की चीज़ को चार पैसे में बेच रहे हैं। यह पुस्तक आपने हमारेही पास "समालोचनार्थ" भेजी है! इस निर्भीकता और शिष्टता को तो देखिए। आपने इस लेखमाला के पुस्तकाकार छापने के लिए "सरस्वती" से अनुमति लेने की मुतलक़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़रूरत नहीं समझी। सिर्फ़ "सरस्वती से लिया है" लिख कर ही नजात पाई है। कौन सरस्वती, कहाँ की सरस्वती, यह तक लिखना आपने मुनासिब नहीं समझा। ख़ैर श्रोत्रिय जी मज़े से "माता-पिता का कर्त्तव्य" बेचें। हम बिक्री में ख़लल नहीं डालना चाहते। पर आपसे और आपके समान-शील-व्यवसायी सज्जनों से हम इतनी प्रार्थना ज़रूर करेंगे कि आगे से बिना पूछे वे ऐसा काम न करें।

***

सरस्वती के सातवें भाग की छठी संख्या में धनुर्विद्या-विशारद राना सुल्तानसिंह का चरित प्रकाशित हो चुका है। उसे पाठकों ने पढ़ा ही होगा। आज हम, इस संख्या में, राना साहब और उन के चिरञ्जीव कुमार शूरसिंह का चित्र प्रकाशित करते हैं। कुमार शूरसिंह अपने पिता ही के तुल्य धनुर्धर हैं। वे भी प्रायः वे सब वेध कर सकते हैं जो उनके पिता राना सुल्तानसिंह जी करते हैं। यह चित्रयुग्म पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी ने नागपुर से सरस्वती में प्रकाशित होने के लिए भेजा है। हम आपकी इस कृपा के बड़े कृतज्ञ हैं।

***

जो लोग बिजली के कारख़ानों में काम करते हैं उनकी जान हमेशा धोखे में रहती है। क्योंकि बिजली से भरे हुए तार यदि बदन से छू जाते हैं तो बिजली आदमी के शरीर में घुस जाती है और उसके धक्के से आदमी अपने प्राण खो बैठता है। इस तरह की दुर्घटनाओं से बचने के लिए यम० आर्टमायफ़ नामक एक रूसी विज्ञानी ने एक ऐसी पोशाक बनाई है जिसे पहनने से शरीर के भीतर बिजली नहीं प्रवेश कर सकती। कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो बिजली के ग्राहक हैं। पर कुछ ऐसे हैं जो उसके प्रतिसारक हैं। अर्थात् उनके भीतर बिजली नहीं प्रवेश कर सकती। यह पोशाक इसी पिछली तरह के किसी पदार्थ के योग से बनाई गई है। अब बिजली के लैम्प, बिजली की ट्राम-गाड़ी और बिजली की रेल तक के कारख़ाने हो गये हैं। अतः इस पोशाक को पहनने से, इन कारख़ानों में काम करने वाले आदमी अपमृत्यु से बच सकते हैं।

***

जार्जिया के रहनेवाले एक कारीगर ने एक अद्भुत लैम्प बनाया है। इस लैम्प का लगाव एक घड़ी से रहता है। घड़ी लैम्प के पास ही रहती है। घड़ी में घण्टी बजा कर जगाने का प्रबन्ध है। अर्थात् वह अलार्म क्लाक (Alarm Clock) है। घड़ी में जितने बजे जगाने की चाभी लगा दी जाती है उतने बजे, घण्टी बजतेही, लैम्प भी जल उठता है। लैम्प के बीच में एक नली रहती है। उसमें दियासलाई लगी रहती है। दियासलाई, बत्ती के पास एक बटन की शकल की चीज़ से कुछही दूर पर रहती है। घण्टी बजतेही वह बटन आगे खिंच जाता है और दियासलाई को रगड़ कर जला देता है। इस तरह लैम्प, बिना किसी के जलाये, जल उठता है। रात के समय, बीमार आदमियों को यथासमय दवा पानी देने के लिए, यह लैम्प बहुत उपयोगी है। यों तो, समय भी मालूम हो जाना और लैम्प भी जल उठनाही क्या कम सुभीता है?

***

पुराने ज़माने में एशिया माइनियर में आसीरिया नाम का एक सूबा था। उसकी राजधानी बाबुल या बाबीलोनिया में थी। वहाँ कई एक बहुत बड़े बड़े बादशाह हुए हैं। आज से कोई ढाई तीन हज़ार वर्ष पहिले तक बाबुल अत्यन्त उन्नत अवस्था में था। उसमें सैकड़ों विशाल विशाल मन्दिर और राजभवन आदि थे। वहाँ का क़िला बहुतही मज़बूत था। परन्तु साइरस, डारियस, हस्टास्पेस और ज़रक्सीज़ आदि फ़ारस के पराक्रमी बादशाहों ने उस पर हमले कर करके उसका बिलकुलही तहस नहस कर डाला। जब सिकन्दर बाबुल में पहुँचा तब उसे उजाड़ पाया। बाबुल की प्राचीनता के ख़याल से यूरप और अमेरिका के पुरातत्वज्ञानी वहाँ अकसर जाया करते हैं और वहाँ के खँडहरों को खोद खोद कर पुरानी चीज़ें निकाला करते हैं। उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीज़ों से बहुत पुरानी ऐतिहासिक बातों का पता लगता है। शिकागो (अमेरिका) के विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने, अभी कुछ दिन हुए, वहाँ कई एक विद्वानों को भेजा था। उन लोगों ने एक अज्ञात राजा डेविड की सङ्गमरमर की मूर्त्ति, आदमी के क़द की, ज़मीन से खोद कर निकाली है। जहाँ से यह मूर्त्ति निकली है वहाँ ईंट-पत्थर से बने हुए मन्दिरों के बहुत पुराने अवशिष्ट भाग ज़मीन में गड़े हुए थे। उनकी ईंटों पर जो चिन्ह हैं उनसे सिद्ध है कि वे पुराने मन्दिर ईसा के ३८०० वर्ष पहिले के थे! यह मूर्त्ति उन मन्दिरों के अवशिष्ट भाग के भी नीचे ज़मीन में थी। इस का सिर घुटा हुआ है। न इसके डाढ़ी है, न मूँछ। ऊपर का भाग नङ्गा है; पर कमर से नीचे मूर्त्ति को एक घाँघरा सा पहनाया हुआ है। मूर्त्ति के दाहने कन्धे पर एक लेख भी है। उससे जाना जाता है कि उदननकी के राजा डेविड की वह मूर्त्ति है और वह एक मन्दिर में स्थापित थी। वह कम से कम ६,४०० वर्ष की पुरानी मूर्त्ति है! इससे अधिक पुरानी मूर्त्ति, आज तक, और कहीं नहीं पाई गई। इस से साबित है कि प्राचीन आसीरिया या मेज़ापोटामिया के लोग, छः सात हज़ार वर्ष पहिले, सङ्गमरमर की अच्छी अच्छी मूर्त्तियाँ और पकी हुई ईंटों के अच्छे अच्छे मन्दिर बनाना जानते थे।

*
* *

बेतार की तारबर्क़ी में अब पेड़ों से भी काम लिया जायगा। कैलीफार्निया के मेजर इस्कुयर ने बहुत दिन तक जाँच करके यह सिद्ध किया है कि बेतार की तार की ख़बरें पेड़ों के द्वारा पकड़ी जा सकती हैं और ज़मीन पर खड़े हुए तार लेनेवालों को सहज में पहुँचाई जा सकती हैं।

*
* *

चीन में एक ऐसे पहाड़ का पता लगा है जो बिलकुल लोहे का है। चीन के कैंटन नगर से ४०० मील उत्तर एक जगह फुकीन है। उसी के पास यह पहाड़ है। कच्चे लोहे का यह अनन्त भाण्डार है। सारी दुनिया में जितना लोहा ख़र्च होता है उतना अकेला यही पहाड़, कम से कम सौ वर्ष तक, दे सकता है। इसी के पास कोयले की एक खान भी है। यह और भी अच्छी बात है। लोहे के उत्पत्ति-स्थान के पास कोयला ज़रूर ही चाहिए। बिना उसके कामही नहीं चल सकता। इस पहाड़ के लोहे को साफ़ करने के लिए चीनियों ने एक कम्पनी खड़ी की है। वे विदेशियों को कोयले के काम पर नौकर तो रखते हैं; पर हिस्सेदारी देने से इन्कार करते हैं। वे उसका अधिकार और मुनाफ़ा सब अपनेही लिए रखना चाहते हैं। इस बात पर योरप और अमेरिका वाले मुँह फुला रहे हैं। पर चीनवाले उनकी एक नहीं सुनते। आर्ज़ नाम के एक साहब इस कम्पनी में यञ्जिनियर हैं। आपही ने ये सब बातें प्रकाशित की हैं। आपको चीनवाले सिर्फ़ नौकरी देते हैं। उनके नौकर होकर आप वहाँ काम करते हैं। नफ़े नुक़सान से आपका कुछ सरोकार नहीं। आप कहते हैं कि इस चीनी कम्पनीवाले अपने विदेशी मुलाज़िमों के साथ बड़ी मेहरबानी से पेश आते हैं। साहब का ख़याल है कि यदि चीन में सभ्यता और शिक्षा इसी क्रम से बढ़ती गई तो बहुत जल्द चीन एक शक्तिशाली राज्य हो जायगा। इस पर्वत में यह विशेषता है कि इसका लोहा मक़नातीसी है। उसमें चुम्बक के गुण हैं। यदि उसके दो चार टुकड़े हाथ से उठाये जायँ तो वे एक दूसरे को पकड़ लेते हैं—उनकी एक शृङ्खला सी बन जाती है।

*
* *

गत एप्रिल से आगरे के सर्वोपयोगी मासिक-पत्र, स्वदेशबान्धव का आकार बढ़ कर क्राउन अठपेजी हो गया। सरस्वती की तरह प्रत्येक पृष्ठ में अब दो कालम होने लगे। काग़ज़ भी पहले से अच्छा हो गया। अब उसके इस साइज़ के हर महीने २८ पृष्ठ निकलते हैं। इतनी उन्नति होने पर भी उसका वार्षिक मूल्य सिर्फ़ आठ आने बढ़ा। अर्थात् एक से डेढ़ रुपया हो गया। एप्रिल के अंक में पण्डित सत्यनारायण की कविता "वन्दे मातरम्"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत अच्छी हुई है। "भारत की राष्ट्र-भाषा", "मित्रता", "गङ्गा देवी" आदि लेख इस अङ्क में सभी अच्छे हैं। इसी अङ्क में क्या, इस पत्र में प्रायः हमेशाही उपयोगी लेख निकला करते हैं। इसके सम्पादक और मालिक कुँवर हनुमन्तसिंह जी का उत्साह, अध्यवसाय और स्वदेश-भाषा-प्रेम तारीफ़ के लायक़ है। हिन्दी के हितचिन्तकों और प्रेमियों को इसे ज़रूर लेना चाहिए। लड़कों, लड़कियों और स्त्रियों के लिए भी यह पत्र बहुत उपयोगी है।

***

पण्डित जनार्दन जोशी, बी० ए०, डेप्युटी कलेक्टर मुरादाबाद ने "ज्योतिष-चमत्कार" नामक एक अच्छी पुस्तक हिन्दी में बनाई है। मूल्य १२ आने है। इस में आपने फलित ज्योतिष के मुख्य मुख्य विषय लिख कर इस बात को युक्ति और तर्क द्वारा सिद्ध कर दिखाया है कि फलित ज्योतिष पर विश्वास करना नादानी है। ज्योतिष का यह अङ्ग हमलोगों को यूनानियों से प्राप्त हुआ है। वह हमारा नहीं। फलित ग्रंथों के आधार पर विवाह आदि का जो विचार किया जाता है उस से जो जो हानियाँ होती हैं उसका भी जोशीजी ने बड़ी ही योग्यता से वर्णन किया है। लड़की-लड़के के विवाहादि में नाड़ी और वर्ण आदि के विचार के झगड़े में पड़ने वालों को यह पुस्तक ज़रूर देखनी चाहिए।

***

महारानी विक्टोरिया के लिखे हुए पत्र पुस्तकाकार छप रहे हैं। महाराज सातवें एडवर्ड ख़ुद ही उनका सम्पादन करते हैं। पुस्तक तीन जिल्दों में ख़तम होगी। प्रत्येक जिल्द में छः छः सौ पृष्ठ रहेंगे। पुस्तक बहुत अच्छे काग़ज़ पर छपेगी और बड़ी ही मनोहर जिल्द बाँधी जायगी। प्रत्येक जिल्द की क़ीमत ५० रुपये के क़रीब होगी। इसकी तीसरी जिल्द में १८५७ के सिपाही-विद्रोह, और १८५८ वाले महारानी के घोषणा-पत्र के सम्बन्ध की बातें रहेंगी। अतएव इस देश के लिए यह पिछला भाग बड़े महत्त्व का होगा।

***

स्वदेशी कारीगरी की उन्नति चाहने वालों को सुनकर ख़ुशी होगी कि अब इस देश में भी अच्छे से अच्छे हारमोनियम बनने लगे। नारियल बाज़ार, कानपुर, के बाबू हीरालाल ऐसे हारमोनियम बनाते हैं जो विदेशी हारमोनियम से १९ नहीं २१ होते हैं। इनका रूप, रङ्ग, सफ़ाई और सुर की मधुरता देख कर चित्त प्रसन्न हो जाता है। अँगरेज़ तक इनके बनाये हारमोनियम लेते हैं। २५ रुपये से लेकर १७५ तक के हारमोनियम ये बनाते हैं। हमने इनके पैंतालीस पैंतालीस रुपये वाले दो हारमोनियम ख़ुद देखे और बहुत अच्छे पाया। इनके हारमोनियम का नाम है "भारती फ़्लूट"।

***

यूरोप और अमेरिका में लोगों का ध्यान अभी तक विशेष करके विज्ञान-वृद्धिही की ओर था। अब अध्यात्मविद्या की ओर भी गया है। मरे हुओं से बात चीत करने, उनका चित्र उतारने, उनको प्रत्यक्ष प्रकट करने का बहुत कुछ आयोजन हो रहा है। पाइपर नाम की एक अमेरिका-निवासिनी मेम को परलोक गत आत्माओं ने अपना एजंट सा बना लिया है। इस स्त्री के शरीर में आत्माओं को प्रवेश करते देर ही नहीं लगती। वे आती हैं। पूछी हुई बातें उसके हाथ से लिख देती हैं, और अनेक आश्चर्य्यजनक रहस्यों का उद्घाटन करके अपनी अमानवीय शक्तियों का परिचय देती हैं। जो आत्मायें बहुत उन्नत होती हैं वे किसी विशेष उन्नत लोक में रहती हैं। वे इस लोक से कम सम्बन्ध रखना चाहती हैं। पर अन्य आत्मायें मरने पर भी मनुष्य लोक को नहीं भूलतीं और मौक़ा पातेही मनुष्य-शरीर में सञ्चार करती हैं।

***

भूत-भावना भी ऐसेही सञ्चारों का उदाहरण है। अब भूतावेश की घटनाओं पर भी लोगों को विश्वास आ रहा है। अख़बारों और मासिक पुस्तकों में—विशेष करके अध्यात्मविद्या सम्बन्धी में—ऐसी घटनाओं के वर्णन विस्तारपूर्वक निकलने लगे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूत भगाने में ओझा लोगों की मंत्र-विद्या के अद्भुत असर पर अचम्भा प्रकट किया जाता है। विशेष विशेष देवस्थानों की महिमा के गीत गाये जाते हैं। दक्षिण के गाणगापुर, नरसोबा की बाड़ी, रायगढ़ आदि के देवमन्दिरों में जाने से भूताविष्ट लोग जाते ही आराम हो जाते हैं। वहाँ भूतों को अद्भुत लीला और देवताओं का अद्भुत प्रभाव देखने में आता है। इन सब बातों का वर्णन अब यूरप और अमेरिका के पत्रों में भी प्रकाशित होने लगा है। अध्यात्मविद्या के शौक़ीन कहते हैं, इन घटनाओं से मनुष्य को बहुत लाभ पहुँच सकता है। मरने के बाद आत्मा का नाश नहीं हो जाता। जीव फिर भी कहीं रहता है। और उचित साधन प्राप्त होने पर, वह इस लोक वालों से, बात चीत भी कर सकता है। ये सब महत्त्व की बातें हैं। क्यों नहीं! जिनका सिद्धान्त है—"A cow has no soul", (गाय के आत्मा नहीं) उनके लिए इन बातों का जानना ज़रूर बहुत बड़े महत्त्व की बात है।

***

डाक्टर पीबल्स अमेरिका के रहनेवाले हैं। उनको इन बातों से बड़ा शोक है। एक किताबही उन्होंने इस विषय की लिख डाली है। उनमें आत्माओं और भूतों के सञ्चार की अनेक अद्भुत अद्भुत घटनाओं का वर्णन है। उन्होंने लुरैन्सी नाम की एक कुमारिका के विषय में लिखा है कि उसके शरीर में रोफ नाम का एक मृत कुमारिका की आत्मा प्रविष्ट हो गई। वह बहुत दिन तक उस शरीर में रही। तब तक लुरैन्सी की आत्मा कहीं और लोक में जाकर रही। रोफ की आत्मा लुरैन्सी के शरीर को लेकर अपने घर आई और परलोक विषयक कितनीहीं अद्भुत अद्भुत बातें बतलाईं। जब लुरैन्सी की आत्मा लौटी तब रोफ की आत्मा ने उसके शरीर को छोड़ दिया, पर ऐसा करने में उसे बड़ा अफ़सोस हुआ। लुरैन्सी ने लौट कर फिर अपने शरीर को अपने घर पहुँचाया। इस घटना की सत्यता की गवाही बड़े बड़े नामी आदमियों ने दी है। उन सब के नाम पीबल्स साहब ने अपनी किताब में लिखे हैं।

***

गत वर्ष, सितम्बर की सरस्वती में एक लेख छपा था। नाम था उसका "भेड़ियों की माँद में पले हुए लड़के"। इस लेख के ३५८-३५९ पृष्ठों पर छपरा वाले लड़के का जो हाल है उसका संक्षेप, इस साल, इलाहाबाद विश्वविद्यालय को यूँट्रन्स परीक्षा में आया था। मज़मून की भाषा उर्दू और अक्षर फ़ारसी कर दिये गये थे। उसका अनुवाद अँगरेज़ी में माँगा गया था। अनुवाद के परचे के दो भाग थे। पहिले भाग "G" में भेड़ियों की माँदवाले बच्चे का मज़मून था, दूसरे भाग "H" में, जून १९०६ की सरस्वती के २०७ वें पृष्ठ पर जो आफ़रीक़ा के महप्रदेश से सम्बन्ध रखनेवाला नोट छपा था, उसका उर्दू रूपान्तर था। इसका भी अनुवाद कराया गया था।

रायबहादुर पण्डित लक्ष्मीशङ्कर मिश्र, एम० ए०।

श्री लक्ष्मीशङ्कर प्रवर, विद्वज्जन आधार।
हाय कासिका-धाम तजि, गये ब्रह्म आगार॥

पण्डित लक्ष्मीशङ्कर जी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। आप पण्डित रामजसन मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र थे। आपके पिता संस्कृत-कालेज, बनारस, में प्रोफ़ेसर थे। पण्डित लक्ष्मीशङ्कर जी का जन्म १८४९ ईसवी में हुआ था। आप लड़कपन ही से गम्भीर, सुशील और कुशाग्र-बुद्धि थे। ८ वर्ष की उम्र में आप बनारस-कालेज में अँगरेज़ी पढ़ने के लिए भर्ती हुए। हर क्लास में आप योग्यतापूर्वक पास होते गये। किसी परीक्षा में कभी आप फ़ेल नहीं हुए। आपके अध्यापक आपसे हमेशा प्रसन्न रहते थे। साहित्य की अपेक्षा गणित विशेष क्लिष्ट है। इस कारण बहुधा लड़के गणित विषय को पसन्द नहीं करते। वे उसे छोड़ साहित्य की ओर झुक जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। पर पण्डित लक्ष्मीशङ्कर जी का गणित ही पर विशेष प्रेम था। यह उनकी मस्तिष्क-शक्ति के बलवती होने का प्रमाण था। आपने एम० ए० में गणित ही लिया था। उस समय बनारस कालेज में राजर्स साहब गणित के प्रोफ़ेसर थे। उन्हें पण्डित जी की तीव्र बुद्धि देख कर आश्चर्य्य होता था।

१८७० ई० में पण्डित लक्ष्मीशङ्करजी ने "आनर्स" (नेकनामी) के साथ गणित में एम० ए० पास किया। आप की योग्यता और प्रतिभा पर मुग्ध होकर कालेज के प्रधानाध्यापक ग्रिफ़िथ साहब ने आपको अपनेही कालेज में गणित का प्रोफ़ेसर नियत किया। पण्डित लक्ष्मीशङ्कर की पढ़ाने की शैली ऐसी अच्छी थी कि कठिन से भी कठिन बातों को वे सहज में समझा देते थे। इससे इनके विद्यार्थी इनसे बहुत ख़ुश रहते थे। इनके पढ़ाये हुए छात्रों में से बहुतेरे अच्छे अच्छे पदों पर नियुक्त हुए। विचारपति सैयद महमूद और कुंवर ज्वालाप्रसाद (जज) ने इन्हीं से गणित पढ़ा था। ये दोनों महाशय पण्डित लक्ष्मीशङ्कर जी का आदर सत्कार, मरते दम तक, विद्यागुरु ही की तरह बराबर करते थे।

बनारस में बनारस-इन्स्टिट्यूट नाम की एक सभा थी। डाक्टर टीबो, सर सैयद अहमद और राजा शिवप्रसाद आदि बड़े बड़े लोग उसके मेम्बर थे। हमारे पण्डित जी भी उसके मेम्बर थे। आप कभी कभी इस सभा में अच्छे अच्छे विषयों पर व्याख्यान देते थे, जिन्हें सुनकर आपकी कल्पना-शक्ति और विद्वत्ता की बड़े बड़े विद्वान् प्रशंसा करते थे।

पण्डित लक्ष्मीशङ्कर जी समय को बहुमूल्य समझते थे। वे कभी अपना समय व्यर्थ न खोते थे। अनेक आवश्यक काम करने पर जो समय आप को मिलता था उसमें आप उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखते थे। जिस समय आप बनारस-कालेज में गणित के प्रोफ़ेसर थे, उस समय आपने त्रिकोणमिति (Trigonometry) नामक गणित का एक ग्रन्थ हिन्दी में लिखा। उसकी उत्तमता पर प्रसन्न होकर इन-प्रान्तों के तत्कालीन, छोटे लाट, सर विलियम म्योर साहब, ने पण्डित जी को एक हज़ार रुपया पारितोषिक दिया।

अङ्क-गणित में अच्छी पुस्तकों का अभाव देख कर पण्डितजी ने अपना ध्यान इस तरफ़ फेरा। थोड़े ही दिनों में आपने गणित-कौमुदी नामक एक उत्तम ग्रन्थ, चार भागों में, बनाया। इस ग्रन्थ के बन जाने से अङ्क-गणित पढ़ाने में अध्यापकों को जो कठिनाइयाँ उठानी पड़ती थीं वे प्रायः दूर हो गईं। इन प्रान्तों के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर साहब ने इसे पसन्द करके पाठशालाओं में जारी कर दिया। यह ग्रन्थ अब तक पाठशालाओं में पढ़ाया जाता है।

१८७७ ईसवी तक पण्डित जी गणित-शास्त्र के अध्यापक रहे। इसके बाद आप बनारस-कालेज में विज्ञान-शास्त्र के अध्यापक हुए। अब आपने विज्ञान पर पुस्तकें लिखना आरम्भ किया और पदार्थ-विज्ञान-विटप, प्राकृतिक-भूगोल-चन्द्रिका, वायुचक्र-विज्ञान, स्थिति-विद्या और गतिविद्या आदि बहुत ही उपयोगी पुस्तकों की रचना करके मातृ-भाषा के कोश को भरा। यदि पण्डितजी की तरह उच्च शिक्षा पाये हुए हमारे देश के विद्वान् हिन्दी लिखने का परिश्रम उठाते तो हिन्दी का बहुत कुछ उद्धार हो गया होता। पर उस बेचारी के ऐसे भाग्य कहाँ!

पाठकों ने "काशी-पत्रिका" का नाम सुना होगा। यह पत्रिका बहुत दिनों तक काशी से निकलती रही है। पहले इसे बाबू बालेश्वरप्रसादजी, बी० ए०, निकालते थे। आपही उसके सम्पादक थे। आप बनारस-नार्मल-स्कूल के हेडमास्टर थे। पत्रिका पाक्षिक थी। जब पण्डित लक्ष्मीशङ्करजी बनारस डिवीज़न के मदरसों के स्थानापन्न इन्स्पेक्टर हुए तब बाबू बालेश्वरप्रसादजी ने काशी-पत्रिका पण्डित लक्ष्मीशङ्कर जी को दे दी। तब से आप उसका सम्पादन करने लगे। आप उसे अपने चन्द्रप्रभा-प्रेस से निकालने लगे और साप्ताहिक कर दिया। गणित, विज्ञान, साहित्य, नीति और शिक्षा आदि विषयों पर बहुतही उपयोगी लेख आप उसमें निकालने लगे। उसकी उपयोगिता को देखकर इन प्रान्तों के शिक्षा-विभाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के डाइरेक्टर, श्रीयुक्त ह्वाइट साहब, ने उसे पाठशालाओं में जारी कर दिया। उसकी बहुत सी कापियाँ शिक्षा-विभाग के लिए मोल ली जाने लगीं। ह्वाइट साहब के बाद श्रीयुक्त लिविस साहब डाइरेक्टर हुए। आपने काशी-पत्रिका और अलीगढ़-इन्स्टिट्यूट-गज़ट के सिवा पञ्जाब के अँगरेज़ी पत्र, ट्रिब्यून, को भी लेना शुरू कर दिया। ट्रिब्यून भी मदरसों में जाने लगा। इस से ख़र्च बढ़ गया। फल यह हुआ कि संयुक्त प्रान्त की कौंसिल में इस विषय पर एतराज़ किया गया। इस कारण गवर्नमेंट ने अपने ख़र्च से समाचार-पत्रों और सामयिक पुस्तकों का मदरसों में भेजना बन्द कर दिया। तब से पण्डित लक्ष्मीशङ्करजी को काशी-पत्रिका बन्द करनी पड़ी। क्योंकि उसका विशेष ख़र्च मदरसोंही में था। जब वह बन्द हो गया, और स्वदेशवासियों ने काशीपत्रिका की सहायता न की, तब पण्डितजी उसे बन्द करने के सिवा और करतेहो क्या?

जिस समय पण्डितजी बनारस-कालेज में अध्यापक थे, उस समय बनारस डिवीज़न के मदरसों की दशा अच्छी न थी; पठन-पाठन की प्रणाली का कोई ठीक प्रबन्ध न था। इस अव्यवस्था को दूर करने के लिए गवर्नमेंट ने पण्डितजी को, १८८५ में, बनारस डिवीज़न का स्थानापन्न इन्स्पेक्टर नियत किया। गवर्नमेंट पण्डितजी की योग्यता और कार्य-दक्षता का परिचय पा चुकी थी। अतएव उसने पण्डित जी ही को इस पद के योग्य समझा। आपने भी गवर्नमेंट की आशाओं को अच्छी तरह पूरा किया। कुछ ही दिनों में आपने मदरसों की अव्यवस्था दूर कर दी। उनकी दशा सुधर गई। सब विषयों में यथेष्ट उन्नति हो गई।

१८८८ ईसवी में गवर्नमेंट ने पण्डितजी को इलाहाबाद डिवीज़न का भी स्थानापन्न इन्स्पेक्टर नियत किया। आपने दोनों डिवीज़नों का काम बड़ी ही योग्यता से सँभाला। आपके सुप्रबन्ध से सब ख़ुश रहे।

आपकी कारपरदाज़ी और योग्यता से प्रसन्न होकर, १८८९ में, गवर्नमेंट ने आपको रायबहादुर की पदवी से विभूषित किया।

पण्डितजी कलकत्ता और इलाहाबाद दोनों विश्वविद्यालयों के 'फ़ेलो' थे। आपसे आपके मातहत कर्म्मचारी हमेशा ख़ुश रहते थे। आप उनकी योग्यता और कार्य्यदक्षता पर हमेशा ध्यान रखते थे और तदनुकूल उनकी पदोन्नति और वेतनोन्नति भी करते थे। न्याय से आप कभी विचलित न होते थे। परीक्षा लेने का ढङ्ग आपका ऐसा अच्छा था कि उसे देख कर अध्यापकों को सहजही में शिक्षा देने की प्रणाली का अनुभव हो जाता था।

पण्डित जी की योग्यता को श्रीमान् ह्वाइट साहब अच्छी तरह जान गये थे। अतएव, शिक्षा-सम्बन्धी सुधार के जितने काम होते थे उनमें ह्वाइट साहब पण्डितजी से प्रायः सम्मति लिया करते थे। शिक्षा-सम्बन्धी नियम-पुस्तक (कोड) बनाने में डाइरेक्टर साहब ने पण्डितजी से बहुत सहायता ली थी।

१८८२ ईसवी में, बड़े लाट लार्ड रिपन ने एक शिक्षा-कमिशन नियत किया था। उसमें इन प्रान्तों की तरफ़ से साक्ष्य देने के लिए पण्डित जी नियत किये गये थे। आपने कमिशन के सम्मुख उपस्थित होकर कमिशन के पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर बड़ी ही योग्यता से दिया था।

पण्डितजी की प्रबन्ध-दक्षता और योग्यता की प्रशंसा सुनकर बङ्गाल के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर, श्रीमान् क्राफ़्ट साहब, ने आपको बिहार सर्किल की इन्स्पेक्टरी देनी चाही। इस पर पण्डित जी ने अपने डाइरेक्टर ह्वाइट साहब से सम्मति माँगी। पर डाइरेक्टर साहब ने आप को अपने सरकिल से बाहर भेजना मंज़ूर न किया। उन्होंने कहा कि मैं आपको यहीं इन्स्पेक्टर बनाऊँगा। मैं अपने सुयोग्य और अनुभवशील कर्म्मचारियों को अन्यत्र भेजना अनुचित समझता हूँ। अतएव रायबहादुर महाशय ने बिहार प्रदेश में विहार करना अस्वीकार कर दिया। १८९२ ई० में, ह्वाइट साहब ने पण्डितजी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवध प्रान्त का स्थानापन्न इन्स्पेक्टर बना भी दिया। पर इसके कुछही दिन बाद ह्वाइट साहब पेन्शन लेकर विलायत चले गये। उनकी जगह पर श्रीमान् नेस्फ़ील्ड साहब इन प्रान्तों के डाइरेक्टर हुए।

पण्डितजी सत्यशील, न्यायपरायण और दृढ़-प्रतिज्ञ थे। वे किसी का तोषामोद करना अनुचित और नीचता समझते थे। ख़ुशामद आपको पसन्द न थी। इसी से कुछ लोग आपसे अप्रसन्न रहते थे। जिस समय आप अवध में क़ायम मुकाम इन्स्पेक्टर थे, इनके विद्वेषियों ने नेस्फ़ील्ड साहब से इनके ख़िलाफ़ बातें कह कर उनका चित्त इनकी तरफ़ से कलुषित कर दिया। दोनों में अनबन हो गई। फल यह हुआ कि नेस्फ़ील्ड साहब ने इन्हें फिर बनारस डिवीज़न में क़ायम मुक़ाम इन्पेक्टरी पर भेज दिया। कुछ दिन बाद नेस्फ़ील्ड साहब ने क़ायम-मुकाम इन्स्पेक्टरों को जगह ही तोड़ दी। उसे तोड़ कर साहब ने, १८९५ में, पण्डितजी को असिस्टन्ट इन्स्पेक्टर कर दिया। परन्तु पण्डित जी की तनख़्वाह वही रही। और असिस्टंट इन्स्पेक्टरों की तरह ये इन्स्पेक्टरों के मातहत भी नहीं रक्खे गये। ये भी यूरोपियन इन्स्पेक्टरों की तरह सीधे डाइरेक्टर साहब से लिखा पढ़ी करते थे।

१९०३ में श्रीमान् लिविस साहब ने रुहेलखण्ड डिवीज़न के सुधार के लिए इनकी बदली वहाँ कर दी। पर वहाँ जाना पण्डित जी ने पसन्द नहीं किया। अतएव आपने पेन्शन ले ली और बनारसही में बने रहे।

रायबहादुर पण्डित लक्ष्मीशङ्कर जो पीछे पीछे अक्सर बीमार रहा करते थे। अन्त में सर्वग्रासी काल ने आपको इस लोक से उठा ही लिया। २ दिसम्बर १९०६ को आप परलोकवासी हुए।

पण्डित जी ने उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिखकर हिन्दी की बहुत सेवा की है। यदि आपके जन्म का गौरव और किसी देश, या इसी देश के और किसी प्रान्त, को प्राप्त होता तो आपकी कोई न कोई यादगार ज़रूर बन जाती। पर इन प्रान्तों में अपनी मातृभाषा और उसके उन्नायकों की बेक़दरी देखकर परिताप होता है। यदि कोई सज्जन पण्डित जी का कोई स्मारक चिह्न स्थापित करने का यत्न करें तो बहुतही अच्छी बात हो।

इस निबन्ध को समाप्त करने के पहले मैं पण्डित जी के अनुज श्रीमान् पण्डित रमाशङ्करजी मिश्र, एम० ए०, सी० एस०, मैजिस्ट्रेट और कलैक्टर, ग़ाज़ीपुर, को अनेक धन्यवाद देता हूँ। इस निबन्ध के सम्बन्ध में जो कुछ मैं ने आपसे पूछा आपने बड़ी कृपा करके बतलाया, और मेरे लेख का अनुमोदन किया। एतदर्थ मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ।

रामनारायणसिंह।
(सब डेपुटी इन्स्पेक्टर मदारिस, मिर्ज़ापुर)

प्रार्थना-शतक।
(क्रमप्राप्त)

नित नवसुख की आस राखि बहु देश सिधारयौ।
मनवाञ्छित फल हेतु विविध उद्यम करि हारयौ॥
करि कविता बहुभाँति गुणी नृपवरहि रिझायो।
पै तुअ पद परिहरे हाथ फल एक न आयो॥ २६॥

बिन उपजे तुअ भक्ति शक्ति नहिं घटै काम को।
बिना कामना घटे साधना सबै नाम की॥
जितनो चाहत काम होत अविराम तितै नर।
लहत न मन आराम काम के किङ्कर पल भर॥ २७॥

जानत बहु नर यदपि नाथ त्रिभुवन के नायक।
बिन माँगेहू सकल भक्त वाञ्छित फलदायक॥
तदपि तोहि तजि हाय मन्दमति अधम पेट हित।
सहि अनेक अपमान करत मानुष-सेवा नित॥ २८॥

तेरे सेवन माहिँ नाँहि कछु समय नियन्त्रित।
नहिँ कछु मन में त्रास होत रहि नित्य स्वतन्त्रित॥
होन परत नहिँ बाध्य असत आलाप हेत पुनि।
तदपि न तोंकौं भजत मूढ़ गुनगन एतो गुनि॥ २९॥

नहिँ तेरे दरबार माँहि मुँह देखी बातैं।
नहिँ कोऊ अस नीच करै काहू की घातै॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहै दीन जन हेत सदाहो द्वार अबारित ।
भजै तदपि नहिँ तोहि मनुज अज्ञान प्रतारित ॥३०॥

नहिँ तुम कुटिल कटाक्ष हेरि निज गर्व जनावत ।
नहिँ अनीति पथ पाँय राखि जन जीय दुखावत ॥
नहिँ परिहरि परमार्थ स्वार्थ हित अनरथ ठानत ।
तदपि मूढ़ मन तोहिँ नाहिँ निज प्रभु करि मानत ॥३१॥

दैहिक दुख सोँ हृदय रहत अति आकुल मेरो ।
चित चिन्तित नित रहत सोचि गृह-कृत्य घनेरो ॥
लौकिक सुख उपचार करत दिन रैन गमाऊँ ।
तब तुअ पद केहि समय सेवि सन्तत सुख पाऊँ ॥३२॥

अहो धन्य जगदीश आप उर अन्तरयामी ।
जानत सकल रहस्य गूढ़ त्रिभुवन के स्वामी ॥
अशरण शरण अनाथ नाथ मानत सब तोँकोँ ।
लैहो अवसि उबारि जानि शरणागत मोँकोँ ॥ ३३ ॥

मैं सब साधनहीन यदपि दुरधीन दीन अति ।
विषयवासना माँहि सदा राखत अभङ्ग रति ॥
तदपि तिहारी भक्ति चहत दुर्लभ निलज्ज यह ।
जिमि वामन मतिमन्द मोहवश चन्द छुअन चह ॥३४॥

जो रसना कोँ झूठ बैन सम्मति निरधारै ॥
पर-निन्दा को श्रवण करन हित श्रेष्ठ बिचारै ॥
निरखि पराई नारि नैन सफलित करि मानै ।
सो केहि विधि तुअ चरण सेवि जीवन सुख जानै ॥३५॥

तजि सात्विक शुचि खाद्य अशुचि रुचि सोँ नित जेमत ।
हृद्य सरस गोदुग्ध त्यागि जो मदिरा सेवत ॥
सुखद शुद्ध आचार जिन्हें लागत नहिँ नीको ।
कबहुँ न रुचिहै भक्ति सुधारस तिनके जी को ॥३६॥

जो पर-तिय-पद पूजि हाथ सारथ करि जानै ।
ताकोँ लखि अनुकूल धन्य मानुष तन मानै ॥
धर्म कर्म व्रत नेम याग जप जिन्हें न भावै ।
सो रतिपति मदमाँति क्यों न प्रभु तुम्हैं भुलावै ॥३७॥

हित अनहित को ज्ञान जिन्हें मन में कछु नाहीं ।
केवल विषय विनोद-मोद भावत मन माहीं ॥
जो सपनेहु आदरहिँ नाहिँ सज्जन की शिक्षा ।
प्रभु सो तुअ पद भजन हेतु करिहैं कत इच्छा ॥३८॥

जो लौकिक-सुख-हेतु निन्द्य साधन अभिलाखै ।
साधुन सोँ करि वैर नेह नीचन सोँ राखै ॥
करि प्रपञ्च बहु भाँति आपनो मतलब साधै ।
सो पामर केहि हेतु चरण तेरो आराधै ॥ ३९ ॥

जो हिंसारत सदा जीव-संकुलहि सतावै ।
निर्दयता को रूप धारि अति हर्ष मनावै ॥
करि बिन कारण रोष दोष-वारिध अवगाहै ।
सो केहि बिधि प्रभु चरणकमल चिन्तन चित चाहै ॥४०

जो इन्द्रिय सुख असत मोहवश सत्य विचारै ।
नित निज तन सुख हेतु विविध उद्यम करि हारै ॥
करै न पर-उपकार कबहुँ, अप्रिय बहु भाषै ।
केहि प्रकार सो नाथ भजन तेरो अभिलाषै ॥ ४१ ॥

जो वैभव-बल-बुद्धि-वीरता-गर्व ठानि मन ।
गिनत न काहू और जगत महँ निज-समान जन ॥
अहङ्कार सोँ फूलि एक अपने कोँ मानै ।
सो सपनेहुँ कत नाथ तोहि निज प्रभु करि जानै ॥४२॥

जो न मातु, पितु, सुहृद, बन्धु, गुरुजन सिख मानै ।
नहिँ विद्या, व्रत, तीर्थ, सुकृत-मूलक अनुमानै ॥
निज मति के अनुसार करै कारज निषिद्ध अति ।
केहि विधि उपजै ताहि रावरी-चरण-भक्ति-मति ॥४३॥

जो पर-औगुन गूढ़ प्रकट करि गुनहि छिपावत ।
पर-उन्नति लखि हाय अधिक मन में दुख पावत ॥
नित पर-अनहित हेत आपनो हित बिनसावै ।
सो किमि हरिपद पूजि हर्ष सोँ हृदय जुड़ावै ॥ ४४ ॥

जो तजि निज शुभ कर्म गहै परधर्म-प्रणाली ।
औरहु को भरमाय ठगै निज मत प्रतिपाली ॥
मन गढ़न्त करि अर्थ शास्त्र-मर्याद मिटावै ।
सो तुअ सगुन स्वरूप सेवि कत मान घटावै ॥ ४५ ॥

बिन जाने शुभ शास्त्र करै बहु वृथा जल्पना ।
करि कुतर्क दिन रैन सत्य निज मानि कल्पना ॥
जो श्रुति-सम्मति-भिन्न आपनो मत प्रकटावै ।
सो केहि विधि तुअ सुयश गाय जीवन सुख पावै ॥४६॥

जब लोँ भजै न तोहि नाथ नित प्रेम भाव सोँ ।
तब लोँ सकै न बाँचि कोउ माया-प्रभाव सोँ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापै प्रभु तुम करहु कृपा किञ्चित करुणानिधि।
सोइ निरन्तर चहै सदा तुअ सेवन सब बिधि ॥४७॥

जो अधर्म सों डरै करै कारज नहिँ अनुचित।
राखै सब पर दया सदा चाहै सब को हित॥
नहिँ जाके मन माहिँ रहै कछु विषय वासना।
सोई करि तुअ भजन लहै शुभ सकल कामना ॥४८॥

जो जानत यह देह अहै सविकार विनश्वर।
दुःख मूल बहुबार कर्मवश होत विकस्वर॥
जो समझत नर-देह लह्यौ यह बड़े भाग सों।
सो प्रभु तेरो भजन चहै नित भक्ति-भाव सों॥ ४९॥

जो सत्यव्रत साधि वचन अप्रिय नहिँ बोलै।
काम विवश ह्वै कबहुँ नाहिँ ललना-सँग डोलै॥
राखि शुद्ध आचार करै सतसङ्ग नेम सों।
सोइ कृतारथ होत ठानि तुअ भक्ति प्रेम सों॥ ५०॥

[क्रम क्रम से]

जनार्दन झा।

कालिदास का समय।

अँगरेज़ी पढ़े लिखे आदमियों में संस्कृत भाषा और संस्कृत-साहित्य आदि की चर्चा पहले की अपेक्षा इस समय अधिक है। इस का पुण्य इस देश के विद्वानों को कम, किन्तु योरप के विद्वानों को अधिक है। यदि योरप के पण्डित संस्कृत ग्रन्थों की आलोचना, उनके परिशीलन, उन के प्रकाशन में दत्तचित्त न होते तो इस देश के अँगरेज़ी-विद्या-विशारदों का ध्यान शायद ही इस ओर आकर्षित होता। योरप के विद्वानों ने हिन्दुस्तान ही में नहीं, इँगलैंड और जर्मनी में भी संस्कृत की ख़ूब चर्चा की है और अब तक किये जा रहे हैं। जैसे जैसे वे संस्कृत में पारदर्शिता प्राप्त करते जाते हैं वैसे वैसे वे इस बात के अधिकाधिक क़ायल होते जाते हैं कि विद्या और विज्ञान में पाश्चात्य देश हिन्दुस्तान के कितने ऋणी हैं। इस विषय में जर्मनी के पण्डित अग्रणी हैं। उन को संस्कृत से बड़ा प्रेम है। जर्मनी के दस पन्द्रह कालेजों में संस्कृत-अध्यापन का प्रबन्ध है। वहाँ से आज तक सैकड़ों नहीं, हज़ारों संस्कृत के ग्रन्थ टीका, टिप्पणी और जर्मन-भाषानुवाद सहित प्रकाशित हुए हैं। कई एक सामयिक पुस्तकें वहाँ से ऐसी निकलती हैं जिन में सिर्फ़ संस्कृत-ग्रन्थ और संस्कृत-साहित्य-सम्बन्धी लेख रहते हैं। वहाँ संस्कृत के अनन्त दुष्प्राप्य ग्रन्थ सुरक्षित हैं। उनकी नामावली देखकर उनके असंख्येयत्व और महत्त्व के ख़याल से मन आश्चर्य्य-सागर में मग्न हो जाता है। यद्यपि इस देश में अँगरेज़ों का प्रभुत्व है और दो डेढ़ सौ वर्ष से है, तथापि संस्कृत का पुनरुज्जीवन करने के लिए उनकी अपेक्षा जर्मनी वाले ही अधिक प्रयत्नशील हैं। इस बात को देखकर जान पड़ता है कि इस देश से जर्मनी का सम्बन्ध अधिक है, इंगलैंड का कम। क्योंकि जर्मनी में कितनी ही जगह संस्कृत-शिक्षा का प्रबन्ध है, इँगलैंड में सिर्फ़ आक्सफर्ड में। जर्मनी में इस समय भी दस बीस संस्कृतज्ञ मिलेंगे, इंगलैंड में सिर्फ़ दो ही चार।

किसी भाषा का इतिहास लिखना मानों उसके समग्र साहित्य का मन्थन करना है। संस्कृत साहित्य अगाध है। अब तक उसकी थाह नहीं मिली। अतएव ऐसे साहित्य का इतिहास लिखना और भी कठिन काम है। क्योंकि इतिहास लिखने में सारे साहित्य का पूरा पूरा ज्ञान होना चाहिए। इतिहास-लेखक को वेद, वेदाङ्ग, शास्त्र, पुराण, स्मृति, तंत्र, काव्य साहित्य आदि सभी विषयों का अच्छा ज्ञाता होना चाहिए। जिस विषय को वह जानता ही नहीं, उस पर लिखेगा क्या? इसी से संस्कृत का इतिहास लिखना बहुत बड़ी विद्वत्ता और बहुत अधिक परिश्रमशीलता का काम है। फिर यदि यही काम किसी विदेशी जर्मन या अँगरेज़ को करना पड़े तो उसकी कठिनता सौगुनी अधिक बढ़ गई समझनी चाहिए। परन्तु इन सब कठिनाइयों को झेलकर जर्मन-पण्डित मैक्समूलर और वेबर ने संस्कृत का इतिहास लिख डाला। उनका इतिहास दोषपूर्ण ही क्यों न हो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपूर्ण ही क्यों न हो, वे प्रशंसा-पात्र ज़रूर हैं। हम भारतवासियों से जो काम न हुआ वह उन्होंने कर दिया, यही क्या कम है? आदमी से भूल होती है। इन विद्वानों ने यदि इतिहास लिखने में भूलें की हों, या भ्रमवश कोई बातें आक्षेप योग्य लिख दी हों, तो हिन्दुस्तानी विद्वान् यदि कर सकें तो, उनका संशोधन कर दें। हर्ष की बात है दक्षिण के एक आध पण्डित ने संस्कृत का इतिहास लिखकर पुराने भ्रामक मतों का खण्डन किया भी है।

मोक्षमूलर और वेबर के संस्कृत इतिहास पुराने हो गये। उनके लिखे जाने के बाद बहुत सी नई नई बातें मालूम हुई हैं, बहुत से मत बदल गये हैं, बहुत से अप्राप्य ग्रन्थ प्राप्त होकर प्रकाशित हो गये हैं। मोक्षमूलर और वेबर के लिखे इतिहास क़ीमती भी ज़्यादह हैं; मोक्षमूलर की पुस्तक तो अब मिलती नहीं। इन्हीं बातों के ख़याल से, "Literatures of the world" (सारे संसार के भाषा-साहित्य) नामक पुस्तकमाला में प्रकाशित होने के लिए, अध्यापक मेकडानल ने अँगरेज़ी में एक और संस्कृत-साहित्य का इतिहास लिखा है। मेकडानल साहब आक्सफर्ड में संस्कृताध्यापक हैं। कोई २५ वर्ष से आप संस्कृत के अध्ययन और अध्यापन में लगे हुए हैं। वैदिक-साहित्य-विषयक आपने कई ग्रन्थ लिखे हैं। आप अच्छे वैयाकरण भी मालूम होते हैं; क्योंकि अध्यापक मोक्षमूलर के संस्कृत-व्याकरण का एक संक्षिप्त संस्करण भी आपने प्रकाशित किया है। यदि आप और कुछ न लिखते, तो भी आपका अकेला संस्कृत-साहित्येतिहास ही आप की विद्वत्ता और योग्यता का परिचय देने के लिए काफ़ी होता।

अध्यापक मेकडानल का इतिहास प्रकाशित हुए अभी बहुत बरसें नहीं हुईं। खोज और जाँच से जितनी नई नई बातें मालूम हुई हैं सब का समावेश आपने इस पुस्तक में किया है। पुस्तक उत्तम हुई है। उसे देखकर भारत-वासियों को लज्जित होना चाहिए। क्योंकि बड़े बड़े उपाधिकारी भारतवासी संस्कृत के अद्वितीय ज्ञाता होकर भी संस्कृत का इतिहास लिखने का यत्न नहीं करते। और यदि संस्कृत-सम्बन्धी कोई लेख, पुस्तक, या अनुवाद लिखते भी हैं तो अँगरेज़ों में लिखकर अँगरेज़ी भाषा को गँदला करते हैं। अपनी मातृ-भाषा हिन्दी लिखते उन्हें शरम लगती है। हिन्दी जानने वाले लाखों, करोड़ों भारतवासियों को, संस्कृत में छिपे पड़े हुये अनेक उज्ज्वल रत्नों का प्रकाश दिखाने की वे ज़रूरत नहीं समझते। ज़रूरत समझते हैं वे देशी और विदेशी अँगरेज़ीदाँ महानुभावों को अपने विद्वत्व-प्रकाश की चमक दिखाने की! स्वार्थ, तेरी जय!

अध्यापक मेकडनाल ने अपना इतिहास पक्षपात-रहित होकर लिखा है। जहां तक उन्हें प्रमाण मिला है, निडर होकर, उन्होंने पाश्चात्य देशों को, विद्या, विज्ञान और कला-कौशल में भारत का ऋणी बताया है। प्राचीनों पर नवीनता का आरोप बेपरवाही से नहीं किया। आपकी पुस्तक में एक बहुत बड़ी बात यह देखने में आई कि आपने किसी भी विषय का विचार करते समय उद्दण्डता नहीं की, शालीनता ही दिखाई है। काव्यों के विषय में एक जगह आप लिखते हैं:—

"It is impossible even for the Sanscrit scholar who has not lived in India to appreciate fully the merits of this later poetry much more so for those who can only become acquainted with it in translations."

अर्थात् संस्कृत का चाहे कोई जितना विद्वान् हो यदि वह हिन्दुस्तान में नहीं रहा तो भारत, रामायण और अन्यान्य काव्यों के गुणोत्कर्ष का पूरा पूरा अन्दाज़ करना उसके लिए असम्भव है। जिन्हों ने इन काव्यों का परिचय सिर्फ़ अनुवाद पढ़कर ही प्राप्त किया है उनके लिए तो यह और भी असम्भव है। इसके कुछ दूर आगे आपने लिखा है कि वे एक ऐसे विद्वान् को जानते हैं जिन्होंने भारतीय संस्कृत-काव्यों के अगाध समुद्र में ऐसी डुबकी लगाई है कि उन्हें अब और किसी भाषा के काव्यों में आनन्द ही नहीं मिलता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे मालूम होता है कि अध्यापक मेकडानल संस्कृत-साहित्य के महत्त्व और विदेशी विद्वानों की न्यूनता को अच्छी तरह समझते हैं। इस गुण-ग्राहकता और यथार्थवाद के लिए हम आपका हृदय से अभिनन्दन करते हैं। आपके इन्हीं गुणों से उत्साहित और साहसवान् होकर हम आपसे कालिदास के विषय में कुछ निवेदन करना चाहते हैं।

यह जनश्रुति इस देश में हज़ारों वर्ष से चली आती है कि कालिदास, विक्रमादित्य के सभा-पंडित थे। विक्रमादित्य का संवत् प्रचलित है। इस संवत् का आरम्भ ईसवी के ५७ वर्ष पहिले, सितंबर की १८ तारीख़, बृहस्पतिवार, को हुआ था। पर ईसा के पहिले सचमुच ही कोई विक्रमादित्य इस देश में थे या नहीं, इसका ऐतहासिक प्रमाण चाहिए। कोई शिला-लेख, कोई दानपत्र, कोई शासन-पत्र? सो कुछ नहीं मिला। पाश्चात्य विद्वानों का पहिले ख़याल था कि संस्कृत की विशेष उन्नति ईसा के छठे शतक में हुई। अतएव उन्होंने अनुमान किया कि कालिदास के रघुवंश और शकुन्तला आदि ग्रन्थ उसी समय बने होंगे। अर्थात् कालिदास का स्थिति-काल छठी शताब्दी हुआ। अब रहे विक्रमादित्य सो उस समय का भी मेल कालिदास के समय से मिल गया। फर्गुसन साहब ने लिखा कि विक्रमादित्य नाम के एक राजा ने ५४४ ईसवी में शकों को परास्त किया। इस घटना की यादगार में उसी ने छठी शताब्दी में अपने नाम का विक्रम-संवत् चलाया। परन्तु उस समय से छ सौ वर्ष पहिले से!!! अर्थात् विक्रमादित्य पर एक नई घटना को छ सौ वर्ष की पुरानी बतलाने का आरोप लगाया गया। इस आरोप में इस देश के प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता भाउ दाजी भी शायद शामिल थे। पर और जाँच करने पर मालूम हुआ कि छठे शतक में शक तो नहीं, हूण अलबत्ते इस देश से निकाले गये थे। पर इनको निकालने वाले राजा का नाम था यशोधर्म्म विष्णु-वर्द्धन। विक्रमादित्य नहीं। इन सब का निष्कर्ष यह निकला कि छठी शताब्दी में विक्रमादित्य कोई था ही नहीं।

इसके बाद बूलर, पीटर्सन और फ्लीट आदि साहबों ने कुछ खुदे हुए लेखों के आधार पर यह राय दी कि विक्रम-संवत् ५४४ ईसवी में नहीं शुरू हुआ था; उसके सौ वर्ष से भी अधिक पहले यह जारी था; पर उस समय इसका नाम था मालव संवत्। कोई ८०० ईसवी के क़रीब इसी मालव-संवत् का नाम विक्रम-संवत् हो गया। मालव-संवत् पहले क्यों नाम पड़ा? फिर क्यों विक्रम संवत् हुआ? किसने मालव-संवत् चलाया? इन बातों पर बहस करने की यहाँ ज़रूरत नहीं। यहाँ इस उल्लेख से सिर्फ़ इतना ही मतलब है कि छठे शतक में विक्रमादित्य न थे और उनका कालिदास का अखण्ड सम्बन्ध होने के कारण कालिदास भी उस समय न थे। अच्छा तो विक्रमादित्य थे कब? "The great king Vikramaditya vanishes from the historical graund of the 6th century into the realm of myth." वे छठे शतक की ऐतिहासिक भूमि से उड़कर पौराणिक क़िस्से कहानियों के राज्य में जा गिरे? अर्थात् उनकी स्थिति का कोई ऐतिहासिक पता ठिकाना नहीं। यह मेकडानल साहब की राय हुई।

कालिदास के छठे शतक में होने के और जो जो अनुमान विद्वानों ने किये थे उन सब का खण्डन अध्यापक मेकडानल ने ख़ुद ही कर दिया है। इस से उनके विषय में हम कुछ नहीं कहते। पर अध्यापक महाशय को कालिदास के बहुत पुराने, अर्थात् ईसा के पहले पहली शताब्दी में, होने का कोई प्रमाण नहीं मिला। अनुमान की भी कोई जगह आपको नहीं मिली। आपने इस महाकवि को सिर्फ़ १०० वर्ष और पहले पहुँचाया। "Thus, there is, in the present state of our knowledge, good reason to suppose that Kalidas lived not in the 6th, but in the beginning of the 5th century A. D." अर्थात् पाँचवें शतक के आरम्भ में कालिदास के होने का अनुमान करने के लिए यथेष्ट कारण है। क्यों? इसलिए—

४७३ ईसवी का एक खुदा हुआ लेख मन्दसौर में मिला है। यह लेख कविताबद्ध है। कविताकार का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम था वत्सभट्टि। इसने कालिदासीय कविता का अनुसरण किया है। कई बातों में इस कवि की कविता कालिदास की कविता से मिलती है। इसी से साहब ने, और अन्यान्य पाश्चात्य पण्डितों ने भी, यह अनुमान किया कि कालिदास पाँचवें शतक के आरम्भ में, वत्सभट्टि से कोई ५० वर्ष पहले अर्थात् विद्यमान थे।

इसके साथ ही साहब की यह भी राय है कि गिरिनार में ईसा की दूसरी शताब्दी के जो खुदे हुए लेख गद्य में मिले हैं उन से सिद्ध होता है कि उस समय भी अच्छी कविता का प्रचार था। अर्थात् जिस ढंग की कविता कालिदास, भवभूति आदि की है उसी ढंग की कविता दूसरे शतक में भी होती थी। यही नहीं किन्तु ईसा के पहले शतक में भी आलङ्कारिक कविता होती थी। अश्वघोष नामक बौद्ध भिक्षु ८० ईसवी में हुआ है। उसने बुद्धचरित नामक काव्य लिखा है। वह अच्छा काव्य है। काव्य ही नहीं, महाकाव्य है। ख़ुद उसी में लिखा है कि वह महाकाव्य है। तिस पर भी मेकडानल साहब कालिदास की स्थिति पाँचवें शतक के शुरू में ही अनुमान करते हैं। अधिक से अधिक आप इतना हीं कहते हैं कि इस स्थिति-निर्णय में अब भी शायद सौ दो सौ वर्ष का फ़रक़ हो ("And is even now doubtful to the extent of a century or two.")

अब जो हम बुद्धचरित को देखते हैं तो उसमें कालिदास के काव्यों की छाया एक नहीं अनेक जगहों पर मिलती है। प्रमाण*—

कालिदास की छाया के ऐसे सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं। अश्वघोष की कविता में कालिदास की कविता का शब्दगत ही सादृश्य नहीं, किन्तु पदगत सादृश्य, अर्थगत सादृश्य, अलङ्कार गत सादृश्य भी मिलता है। इससे यह स्पष्ट सूचित होता है कि अश्वघोष के समय में कालिदास की कविता ख़ूब प्रसिद्ध हो गई थी और अश्वघोष ने उसकी ख़ूब सैर की थी। सैर ही नहीं उसकी ज़ुबान पर वह चढ़ी हुई थी। अन्यथा इतनी सदृशता कभी न पाई जाती। प्रतिभा के बल से जो बात एक कवि कह देता है वही दूसरा भी कह सकता है। पर यह नहीं कि एक कहे "वाता ववुः स्पर्शसुखाः"। तो दूसरा भी कहे "वाता ववुः स्पर्शसुखाः"। एक कहे "इच्छाकुवंशप्रभवः", तो दूसरा कहे "इच्छाकुवंशप्रभवस्य"। अच्छा यदि दो एक दफ़े ऐसा हो भी तो यह कदापि संभव नहीं कि बार बार हो। बिना एक दूसरे की कविता को देखे इस तरह उक्ति, अर्थ, पद, शब्द आदि के सादृश्य बार बार मुँह से नहीं निकल सकते। तो फिर, अश्वघोष से कालिदास प्राचीन हुए। अश्वघोष को आप ईसा की पहली शताब्दी में हुआ बतलाते हैं। कालिदास को कम से कम १०० वर्ष तो पहले हुआ बतलाइए। क्योंकि मालवा से काश्मीर तक उसकी कविता के प्रचार में इतना समय तो ज़रूरही लगा होगा। जिस वत्सभट्टि का कविता मन्दसौर में मिली है वह वहीं कहीं आस पास का रहने वाला होगा।

	अश्वघोष		कालिदास
* (१)	अतोऽपि नैकान्तसुखोऽस्ति कश्चि- न्नैकान्तदुःखः पुरुषः पृथिव्याम्	} = {	कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
(२)	बुद्धः परप्रत्ययतो हि को व्रजेत्	=	मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः
(३)	प्रतिगृह्य ततः स भर्तुराज्ञाम्	=	तथेति शेषामिव भर्तुराज्ञाम्
(४)	वाता ववुः स्पर्शसुखा मनोज्ञाः	=	वाता ववुः स्पर्शसुखाः प्रसेदुः
(५)	तं द्रष्टुं नहि शेकतुर्न मोक्तुम्	=	नच खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम्
(६)	दिशः प्रसेदुः प्रबभौ निशाकरः	=	दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः
(७)	कनकवलयभूषितप्रकोष्ठैः	=	कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः
(८)	इक्ष्वाकुवंशप्रभवस्य राज्ञः	=	इक्ष्वाकुवंशप्रभवः कथं त्वा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास की स्थिति भी मालवा ही में प्रसिद्ध है। अतएव जब एक मालवावासी कवि के मन पर कालिदास की कविता का संस्कार ५० वर्ष के बाद हुआ आप बतलाते हैं, तब सुदूर पश्चिम प्रान्त के अश्वघोष को कालिदास की कविता का परिचय होने में १०० वर्ष यदि लगे हों तो कुछ असम्भव नहीं।

आप शायद यह कहें कि इसका क्या प्रमाण है कि अश्वघोष ही ने कालिदास की छाया ली। सम्भव है कालिदास, अश्वघोष के बाद हुए हों और उन्हीं ने अश्वघोष की छाया ली हो। उत्तर में प्रार्थना है कि वत्सभट्टि को आप कालिदास की कविता का अनुसरण करने वाला क्यों कहते हैं? कालिदासही को आप वत्सभट्टि का अनुयायी क्यों नहीं कहते? सम्भव है वत्सभट्टि कोई बहुत बड़ा कवि रहा हो। उसने महाकाव्य बनाये हों। वे कालिदास के समय में प्रचलित रहे हों। अब न मिलते हों। अतएव यह क्यों न कहिए कि वत्सभट्टि के बाद छठी शताब्दीही में (वही पुरानी बात) कालिदास थे। परन्तु हमें आशा है इस तरह की दलीलें कोई समझदार आदमी न पेश करेगा। कालिदास बहुत प्रसिद्ध कवि थे। उनकी कीर्त्ति जल्द दूर दूर तक फैल गई होगी और उनके काव्यों का प्रचार भी जल्द हो गया होगा। प्रसिद्ध ग्रन्थकार की कृति देखने का शौक़ पण्डितों को स्वभावही से होता है। अश्वघोष और वत्सभट्टि, कालिदास की टक्कर के कवि न थे। अतएव कालिदास की कविता की छाया लेना उन्हीं के लिए अधिक सयुक्तिक मालूम होता है।

यहाँ पर यह आक्षेप हो सकता है कि कालिदास की ऐसी विशुद्ध संस्कृत के खुदे हुए लेख ईसा के १०० वर्ष पहले के कोई नहीं मिले। इस तरह का सब से पुराना लेख जो मिला है वह ईसा की दूसरी शताब्दी का है। अतएव यह कैसे माना जा सकता है कि उस से दो ढाई सौ वर्ष पहले ऐसी विशुद्ध और परिमार्जित भाषा लिखी जाती थी, अथवा ऐसे मनोहर काव्य किये जाते थे। इसका उत्तर यह है कि अप्राप्ति का अर्थ अभाव नहीं। कालिदास के समय के विशुद्ध भाषा-पूर्ण, शिला-लेख या ताम्रपत्र नहीं मिले, इससे यह अर्थ कहां निकलता है कि ऐसी भाषा उस समय थी ही नहीं? फिर, सारी भारत-भूमि तो खोद डाली नहीं गई। सम्भव है इस तरह के लेख कहीं अब तक दबे पड़े हों। वाल्मीकि-रामायण को तो प्रोफ़ेसर मेकडानल भी ईसा से पुरानी बताते हैं। उसके कुछ हिस्से को आप ईसा से ५०० वर्ष पुराना और कुछ को क़रीब २०० वर्ष के पुराना कहते हैं। अब आप यदि कम पुराने हिस्से की कविता और भाषा को कालिदास की कविता से मिला देखेंगे तो हमें विश्वास है कि दोनों में बहुत अधिक भेद न पावेंगे:—

(१) चञ्चच्चन्द्रकरस्पर्शहर्षोन्मीलिततारका।
अहो रागवती सन्ध्या जहाति स्वयमम्बरम्॥

(२) या भाति लक्ष्मीर्भुवि मन्दरस्था यथा प्रदोषेषु च सागरस्था।
तथैव तोयेषु च पुष्करस्था रराज सा चारु निशाकरस्था॥

(३) हंसो यथा राजत पंजरस्थः सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः।
वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थश्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाम्बरस्थः॥

यह वाल्मीकि की कविता है। अब यदि आप इसे ईसा से दो सौ वर्ष भी पुरानी मानें तो भी आप को यह कहने की मुतलक़ जगह नहीं कि कालिदास के समय में विशुद्ध, परिमाजित और आलङ्कारिक कविता नहीं लिखी जाती थी। वाल्मीकि की गवाही हज़ार शिला-लेखों की गवाही से कम विश्वसनीय नहीं मानी जा सकती। वाल्मीकि की कविता के पूर्वोद्धृत नमूने कैसे सरस, कैसे सालङ्कार और कैसे परिमार्जित, हैं यह तो आपको बताने की ज़रूरत ही नहीं।

यदि कालिदास की स्थिति पाँचवें शतक के आरम्भ में मान ली जाय तो क्या उस समय या उस के उत्तर काल में कालिदास की ऐसी कविता और भी किसी की प्राप्त हुई है। यदि क्रम क्रम से परि-मार्जित संस्कृत की उन्नति मानी जाय तो पाँचवें शतक के बाद तो कालिदास की कविता से भी बढ़कर कविता होनी चाहिए थी। पर ऐसी कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता, कोई पुस्तक, कोई ग्रन्थ, कोई लेख नहीं प्राप्त हुए। इस विषय में कालिदास से किसी का नम्बर ऊँचा नहीं गया बात यह है कि विशुद्ध, सरल और मनोहर कविता लिखना सब का काम नहीं। कालिदास में यह गुण सब से बढ़ कर था। इसी से नये पुराने किसी कवि ने उनकी सी भाषा और कविता नहीं लिख पाई।

इस विवेचन से सिद्ध है कि ईसा के १०० नहीं २०० वर्ष पहले भी परिमार्जित संस्कृत का प्रचार हो गया था; और चूँकि अश्वघोष की कविता में कालिदास की कविता की छाया विद्यमान है। अतएव कालिदास ज़रूर ईसाई सन् के पहले के हैं। रोज़ डेविड्स साहब ने अपनी एक पुस्तक में अनुमान किया है कि अश्वघोष का बुद्धचरित ईसा की दूसरी शताब्दी की रचना है। यदि यह मान लिया जाय तो भी कालिदास दूसरी शताब्दी से पुराने हुए। ख़ैर किसी तरह उन्हें पांचवीं शताब्दी के शुरू से निकलने का मौक़ा तो मिले।

अमितगति नाम का एक जैन पण्डित हो गया है। उसने सुभाषित-रत्न-सन्दोह नामक एक ग्रन्थ बनाया है। उसके अन्त में उसने लिखा है—

समारूढ़े पूतत्रिदिववसतिं विक्रमनृपे।
सहस्रे वर्षाणां प्रभवति च पञ्चाशदधिके॥
समाप्तं पञ्चम्यामवति धरणिं मुञ्जनृपतौ।
सिते पक्षे पौषे बुधहितमिदं शास्त्रमनघम्॥

इससे सूचित होता है कि जिस समय राजा मुञ्ज राज्य करता था उस समय यह पुस्तक समाप्त हुई और उस समय विक्रमादित्य को मरे १०५० वर्ष हुए थे। मुञ्ज का समय ईसा की दसवीं शताब्दी है। इस हिसाब से उसे कोई ९०० वर्ष हुए। यदि नौ सौ वर्षों में १०५० वर्ष जोड़ दिये जायँ तो १९५० हो जायँ। अर्थात् यह संख्या विक्रम के संवत् के लगभग पहुँच जाय। इससे स्पष्ट है कि १००० वर्ष पहले भी बड़े बड़े पण्डित, और मालवा के पण्डित, विक्रम के अस्तित्व को मानते थे। उसे पौराणिक क़िस्से कहानियों का पूत नहीं समझते थे।

कालिदास का समय ईसा के पहले, पहले शतक में, सिद्धप्राय है। विक्रम का और कालिदास का अखण्ड साथ था। जनश्रुति यही कहती है। अतएव विक्रम की ऐतिहासिकता को एक दमही न क़बूल करना ज़रा साहस का काम है। कितनेही विक्रमादित्य हो गये हैं। ईसा के ५५ वर्ष पहले कोई विक्रमादित्य न था, इसका तो प्रमाण आज तक कहीं मिला नहीं। जनश्रुति और अमितगति आदि पण्डितों के कथन से तो उसका होनाही साबित होता है। यदि उसके होने का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं तो उसके न होने का भी कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं। इस तुल्यबलत्व की अवस्था में अध्यापक मेकडानल का यह कहना कि छठे शतक में विक्रमादित्य की स्थिति का प्रमाण न मिलने से वह कहानियों का कान्त हो गया, सर्वथा अनुचित है। विक्रम संवत् ही का पहला नाम मालव संवत् है। ठीक है। पर इसका पता तो अभी तक लगा नहीं कि उसे किसने चलाया था। यदि यह साबित हो जाता कि उस का प्रचारक कोई और ही था, विक्रमादित्य न था, तो विक्रमादित्य के विषय में अध्यापक महाशय ने जो राय दी है वह अधिक युक्तिसंगत होती।

सम्भूय-समुत्थान

अर्थात्

मिलजुल कर व्यवसाय करना।

(Co-operation)

आजकल संसार एक कठिन संग्राम-क्षेत्र हो रहा है। तमाम जातियाँ जीवन की होड़ लगा रही हैं। प्रत्येक को अपने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए इस समराङ्गण में पदार्पण करना ही पड़ता है—चाहे इच्छा से करे चाहे अनिच्छा से। समयरूपी विमान पर चढ़ कर बुद्धि और पुरुषार्थरूपी तलवार लेकर एक दूसरे को उद्घोषणा दे रहा है। इस उद्घोषणा में दो ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिज्ञायें हैं—जियो या मरो। जो जीना चाहता है, जिसे स्वतन्त्रता प्रिय है, वह अपने सामर्थ्य का परिचय देता है, और अपनी शक्ति के अनुसार अपना भक्ष्य औरों से छीन लेता है। नहीं तो तुरन्त ही पददलित किया जाकर दासत्व के अंधकूप में ढकेल दिया जाता है। यह लड़ाई केवल सामनेही से नहीं लड़ी जाती; अगल बग़ल का बचाव भी करना पड़ता है। जो जिस बात में कमज़ोर है वह उसी बात से मारा जाता है। या तो आगे बढ़ो या पीछे हटो; स्थायी नहीं रह सकते। प्रकृतिदेवी भी आज कल इसी नियम की दुहाई दे रही हैं। सो यदि भारत को जीवित रहना है—अपनी सन्तान को दुर्भिक्ष-पीड़ा से बचाना है—तो इसे भी इस क्षेत्र में आना ही होगा और अपनी शक्ति का परिचय देकर औरों से अपना हिस्सा लेना ही होगा। मुक़ाबिला करना ज़रूरी है। सर जान मार्ले ने अपने एक व्याख्यान में कहा है—"जिन जातियों को रणचातुरी से देश-विजय करने थे वे कर चुकीं; अब खेत उसी जाति के हाथ में रहेगा जो व्यापार में दूसरे को पराजित कर सकेगी"। इसलिए आज कल व्यापारोन्नति ही जीवनाधार है। यदि इसमें भारत अपनी कार्यपटुता दिखा सके तभी जीवित रह सकता है। अन्यथा उसे मिट्टी में मिल गया समझिए।

भारत में व्यापार की हीनावस्था है। इससे कोई भी इनकार नहीं कर सकता। इसलिए, आइए पाठक! आज हम इसी के कारणों और उनके निवारण करने के उपायों पर विचार करें।

बहुत पुराने समय से एकतादेवी की उपासना होती आई है। जहाँ उसका आदर होता है वहाँ वह भी प्राकृतिक सुख के भंडार को भरती है। आज कल तो उसकी पूजा की महिमा बहुत ही बढ़ गई है। संसार की सभी जीवित जातियाँ उसके सामने सिर झुकाती हैं। सो यदि हमें भी जीवित बनना है तो हमें भी उसी की उपासना में दत्तचित्त होना चाहिए।

मिलजुल कर काम करने में बड़ी शक्ति है। जिसको अकेला आदमी नहीं कर सकता, दो चार आदमी मिलकर सुगमता से कर लेते हैं। विचार-पूर्वक देखा जाय तो भारतवर्ष में हज़ारों गाँव ऐसे मिलेंगे जहाँ व्यापार और शिल्प की उन्नति सहज में हो सकती है। परन्तु एक आदमी अकेले किसी काम को नहीं कर सकता; और न एक आदमी के पास इतना प्रचुर धन ही होता है कि वह बिना किसी की सहायता के स्वयं उसको चला ले जाय। ऐसे अवसर पर हम लोगों को कम्पनी खड़ी करके काम करना सीखना चाहिए। कुछ आदमियों को मिल कर, अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिए, आपस में चन्दा करके, धन एकत्र कर लेना चाहिए। इसके बाद कुछ प्रतिष्ठित और पुरुषार्थी मनुष्यों की एक प्रबन्धकारिणी सभा बना लेनी चाहिए। और एक योग्य और तजरिबेकार सज्जन को उसका अधिष्ठाता नियत करके उसी को कम्पनी का काम चलाने का भार दे देना चाहिए। प्रबन्धकारिणी कमेटी के सभासद कम्पनी के जमा ख़र्च की निगरानी किया करें। जिससे मूलधन में कोई गोलमाल न होने पावे। इस प्रकार जहाँ जैसी आवश्यकता हो कोई भी काम या कारख़ाना सुगमता से चलाया जा सकता है, और यहाँ के मृतप्राय व्यापार का पुनरुज्जीवन किया जा सकता है। परन्तु ऐसे कामों में रुपया लगाना हम लोग नहीं जानते। यह बात शिक्षित अशिक्षित सभी में पाई जाती है। बम्बई और कलकत्ते को छोड़ कर, जहाँ व्यापाररूपी लता कुछ लहलहा उठी है, भारतवर्ष में अन्यत्र ऐसे बहुत कम कारख़ाने हैं जिन्हें हिन्दुस्तानी ही चलाते हों और अधिकतर वही उनके हिस्सेदार भी हों। यह बात व्यापार की वृद्धि में कंटक हो रही है। इसलिए इसके निकालने का अति शीघ्र प्रयत्न करना चाहिए। इस शोचनीय अवस्था के कारण हम नीचे लिखते हैं।

(१) पहला कारण यह है कि हम लोग स्पृश्य धन (Tangible form of money) के बड़े प्रेमी हैं—अर्थात् हम अपने धन को ऐसी अवस्था में रखना चाहते हैं जिसमें हम सदैव उसे अपनी आँखों से देखते रहें। इस प्रेम की जड़ उस अशान्ति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मय अराजकता के समय में पड़ी है जब व्यापार-विषयक पारस्परिक संमेलन का प्रायः अभाव सा था। ठग, डाकू और पिंडारियों के झुंड दिन दहाड़े लोगों को लूट लेते थे। यहाँ तक कि छोटे छोटे ज़मींदार भी कभी कभी एक गाँव से दूसरे गाँव पर चढ़ाई किया करते थे और उस पर दख़ल हो जाने पर उसे लूट भी लेते थे। क्या आश्चर्य्य है यदि उस विपत्ति के समय में लोगों ने आपने धन को ज़मींदारी में लगाना अच्छा समझा, जिसमें उसे न चोर चुरा सकें न डाकू लूट सकें। जो लोग ज़मींदारी न ख़रीद सकते थे वे अपने धन को पृथ्वी के पेट में छिपा देते थे; अथवा मणि-मुक्ताओं के रूप में, अपनी असूर्य्यम्पश्या प्रियतमाओं के कर-कमलों की नज़र कर देते थे। वह समय ही वैसा था। लोग एक शहर से दूसरे शहर पहुँचना कठिन समस्या समझते थे। बड़ी बड़ी शाह-राहों पर भी डाकू लोग निडर घूमा करते थे। विदेश-यात्रा साधारण बात न थी। उस समय अपनेही घर की छतों तले रहना और खेतही जोत कर निर्वाह करना अच्छा था। परन्तु अब कालचक्र घूम गया है और पारस्परिक सहायता के सूर्य्य का उदय हो आया है। अतएव अब हम लोगों को अपनी पुरानी आदत छोड़नी चाहिए। अब ठग और पिण्डारी नामावशेष हो गये हैं; गाँवों पर चढ़ाइयाँ बन्द हो गईं हैं; रास्ते साफ़ पड़े हैं। एक बच्चा भी पेशावर से कलकत्ते बेखटके जा सकता है। ज़मीन अब भी बड़ी अमूल्य वस्तु है; हमारी जननी है; हमारी जीवनाधार है। परन्तु अब वह उतनी लाभदायक नहीं रही, जितनी कि कुछ दिन पहले थी। लगान बढ़ जाने के कारण अब ज़मीन की उपज बहुत मँहगी हो गई है। इसलिए अब उसी पर अवलम्ब करना बुद्धिमानी का काम नहीं। रुपये को गाड़ रखना या गहने बनवाने की हानियाँ अब सब के ध्यान में आ गई हैं। इसलिए अब हमको उन व्यवसायों में रुपया लगाने का साहस करना चाहिए जो हमारे और हमारे देश दोनों के लिए उपकारी हों।

(२) दूसरा कारण इस शोचनीय अवस्था का यह है कि भारत वर्ष में रुपये के उधार व्यवहार का उद्यम किसी एक आदमी का उद्यम नहीं है; किन्तु ज़मींदार, मुनीब, दूकानदार, सौदागर, लेखक, अध्यापक, वकील प्रायः सभी इस उद्यम को करते हैं। बहुत करके ज़ेवर गिरवी रख कर रुपया उधार दिया जाता है। बड़े बड़े प्रतिष्ठित लोग भी ज़ेवर गिरवी रखकर रुपया देने का पेशा करते हैं।

यह पेशा करने वाले १०० रुपये उधार देकर साल में ३० रुपये व्याज खाते हैं। इसमें रुपये डूबने का डर भी नहीं; क्योंकि ज़मानत के तौर पर उधार लेनेवाले का ज़ेवर वे अपनी सन्दूक़ में बन्द रखते हैं। फिर भला ऐसे लाभदायक पेशे पर लोग जो टूटें तो क्या आश्चर्य्य! परन्तु ऐसे व्यवसाय शिल्प और व्यापार की उन्नति के बाधक हैं। क्योंकि जो आदमी घर बैठे रुपये के बदले माल रख कर ३० रुपये सैकड़ा पैदा कर सकता है वह किसी ऐसे व्यवसाय में, जिस में सिर्फ़ १० रुपए सैकड़ा लाभ होना सम्भव है और जिस के 'फेल' हो जाने का भी डर है, ज़रूरही रुपया लगाने में आगा पीछा करेगा। रुपया कमाने के लिहाज़ से ऐसी बातों को बुरा बतलाना मूर्खता है। परन्तु सोचने से यह साफ़ मालूम हो जाता है, कि ज़ेवर गिरवी रखने में उतना लाभ नहीं है जितना कि ऊपर से जान पड़ता है। क्योंकि इस पेशे वाले के यहाँ गिरवी रक्खा हुआ ज़ेवर कुछ दिन बाद छुड़ा लिया जाता है, और यह सिलसिला लगा रहने पर भी दूसरों को देने के लिये उसके यहाँ रुपया रक्खा ही रहता है। हमेशा रुपया उधार लेने वालों की राह देखनी पड़ती है। अतएव यदि हिसाब लगाया जाय तो ३० रुपये सैकड़े व्याज लेने पर भी, वास्तविक व्याज जो सारी पूँजी पर मिलता है शायदही १० या १२ रुपये सैकड़े के हिसाब से पड़ता हो। यही पूँजी यदि किसी बड़े उद्योग धन्धे में लगाई जाय तो लगानेवाले का रुपया एक दिन भी बेकार नहीं रहता। साथही उसे तत्सम्बन्धी लिखा पढ़ी या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबन्ध आदि के बखेड़े में भी नहीं पड़ना पड़ता। प्रत्येक आदमी अपना अपना व्यवसाय निर्विघ्न करता रहता है। उसका रुपया हमेशा बढ़ा करता है और वह घर बैठे उससे लाभ उठाया करता है।

दूसरी बात रुपया उधार देने में ध्यान देने योग्य यह है कि इस व्यवसाय के करने वालों के मूलधन का वास्तविक मूल्य (Intrinsic value) कभी नहीं बढ़ता। अर्थात् मूलधन का मूल्य वर्षारम्भ में जो सौ रुपया था वही वर्षान्त में भी रहेगा।

परन्तु बड़े बड़े उद्योग-धन्धों में रुपया लगाने से हिस्सों के मूल्य का बढ़ जाना बहुत सम्भव है। इस दशा में रुपया लगाने वाले को कोरा मुनाफाही न मिलेगा, किन्तु उसके मूलधन की क़ीमत भी बढ़ जायगी। मान लीजिए आपने १००) रुपये का एक हिस्सा किसी कम्पनी में ख़रीदा। यदि कम्पनी को सफलता हुई और वर्ष के अन्त में ८ रुपये सैकड़े का दर से मुनाफ़ा दिया गया तो सम्भव है कि आप के १०० रुपये के हिस्से का मूल्य १२० रुपये हो जाय। तब उसकी वास्तविक दर ८ रुपये सैकड़े नहीं, किन्तु २० रुपये सैकड़े हो जायगी। ऐसे कामों में कभी कभी बेहद लाभ होता है। दृष्टान्त के लिए कोयले का काम करनेवाली बङ्गाल की कटरसगढ़-झरिया कम्पनी को लीजिए। कोई ६ वर्ष हुए, इसके हिस्से (शेयर) दस दस रुपये के बिकते थे। अचानक इसके कोयले की माँग बढ़ी और इसके हिस्से का मूल्य भी बढ़ने लगा। यहाँ तक कि १० रुपये का शेयर ४२ रुपये में लिया जाने लगा। यहीं तक समाप्ति न समझिए। कोयले की मांग इतनी बढ़ी थी कि यह कम्पनी अकेले यथेष्ट कोयला न खोद सकी। इससे इसने अपनी कुछ भूमि एक नई कम्पनी—"शिवपुर कोल माइनिङ्ग कम्पनी" को बेच दिया। इसने झरिया कम्पनी के हर एक साझी को, जिसके ५ शेयर इसमें थे, चार शेयर, पाँच पाँच रुपये के, विना मूल्य दिये। इस कम्पनी की भी बड़ी बढ़ती हुई और इसका भी पाँच रुपये का शेयर २४ रुपये में लिया जाने लगा। अब ज़रा उस आदमी की अवस्था पर ध्यान दीजिए जिसने १००) रुपये के दस शेयर्स पुरानी कम्पनी में ख़रीद लिये थे। अब उसके १०० के ४२० रुपये हो गये और ४० रुपये के हिसाब से मुनाफ़ा अलग। इसके सिवा उसके ८ शेयर्स इस नई कम्पनी में ११८) के और हो गये। अर्थात् १०० रुपये सैकड़े की जगह उसके ५३२ रुपये मूल धन में हो गये। और मुनाफ़ा अलग। भला ऐसे लाभ के मुक़ाबले में लेन देन से होने वाला लाभ क्या चीज़ है? परन्तु ऐसे अवसर सदैव हाथ नहीं आते; इसलिए प्रत्येक रुपया लगानेवाले को अपना रुपया बहुत समझ बूझ कर लगाना चाहिए।

(३) तीसरा कारण उद्योग-धन्धों में रुपया लगाने से डरने का यह है कि हम लोगों ने बहुत धोखे खाये हैं। बहुत सी कम्पनियाँ बड़े उत्साह के साथ आरम्भ की गईं, परन्तु थोड़े ही दिनों में उनका दिवाला निकल गया, जिससे किसी किसी रुपया लगानेवाले की घर गृहस्थी तक बिक गई। इसी से, जिस प्रकार दूध का जला छाछ भी फूंक फूंक कर पीता है, लोग रुपया लगाने में हिचकिचाते हैं। ऐसी बहुत सी मिसालें मौजूद हैं। सन् १८९० ईसवी में बंगाल की सोने की खानिवाली कंपनी की बात याद कीजिए। अफ़वाह उड़ी कि बंगाले में सोना भरा पड़ा है। एक कम्पनी खोली गई। हवा में गाँठें बाँधी गईं। यहाँ तक कि कच्चे बंगाली सोने के टुकड़े भी कलकत्ते में दिखाये गये। सोने के नाम में बड़ी आकर्षणशक्ति है। फिर क्या था शेयर्स बिकने लगे। दिन दूने रात चौगुने होने लगे। अमीरों, राजाओं और नवाबों ने ख़ूब ही शेयर्स ख़रीदे। परन्तु पीछे से भंडा फूट गया। टाँय टाँय फिस! मालूम हुआ कि बंगाल की खानों में सोने का नामोनिशान नहीं। एक आदमी इस चालाकी से माल मार कर अमीर हो गया। परन्तु शेयर्स ख़रीदनेवालों के घर हाहाकार मच गया। यही दशा, १८८२-८३ में, मैसूर राज्य की वाइनाद की पहाड़ियों की खानों की हुई। यद्यपि इसमें अँगरेज़ों ही का रुपया बरबाद हुआ था तथापि उसका प्रभाव इस देशवालों पर भी बहुत पड़ा था। एक बात है कि यह बिलकुल गप ही न थी। सोने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की खानें अवश्य थीं। और उनसे भारतवासी पहले सोना निकालते भी थे। इसी से लोगों को ख़याल हुआ कि उस समय वर्त्तमान काल की सी कलें न थीं। इससे हिन्दुस्तानी केवल ऊपर ही ऊपर का सोना निकाल सके होंगे। नीचे का सोना, यंत्रों की मदद से बड़ी सुगमता से निकल आवेगा। यह सम्भव भी था। ख़ैर कम्पनी खुली। वाइनाद की पहाड़ियों पर बँगले बनने लगे। खान में काम लेने की कुछ कलें आ भी गईं। कुछ पहाड़ियों के पेट से सोना निकालने के लिए इँगलेंड से रवाना हुईं। काम आरम्भ हो गया। ये कलें अभी रास्ते ही में थीं कि पहाड़ियों का पेट फाड़ कर जो देखा गया तो सोना न दारद। रास्ते में पड़ी कलें रास्ते ही में छोड़ दी गईं। वे अब भी जीर्ण शीर्ण अवस्था में वहाँ पड़ी हैं और पथिकों को इस घटना का स्मरण कराती हैं। काँच, दियासलाई और काग़ज़ आदि बनाने के और भी बहुत से कारख़ाने खुले और थोड़े ही दिनों में लोप हो गये। तो भला ऐसे भयानक काम में रुपया कोई क्यों लगावे? रुपये के बदले माल रख कर, जिसमें कुछ भी जोखिम नहीं, रुपया कमाना क्या बुरा है? इस पर भी ज़रा विचार की ज़रूरत है। विचार करने से ठीक बात समझ में आ जाती है। सोने की खानों में बहुत लोगों ने तो कम्पनी के चालाक सिद्ध-साधकों की चिकनी चूपड़ी बातों के फन्दे में पड़ कर रुपया दे दिया था। फिर सोना निकालने का व्यवसाय आशापूर्ण होने पर भी बड़े ख़तरे का है। क्योंकि पहले से ही यह अनुमान कर लेना कि खान में कितना सोना है, असम्भव है। पर कोयले की खान में कोयले के वज़न का अनुमान पहले से कर लिया जासकता है, कि इसमें इतने हज़ार या लाख मन कोयला है। परन्तु सोना खानि में रगों की तरह फैला रहता है। उनका पता लगाना सहज नहीं। हां कोयले की तहें सीधी होती हैं। इसलिए उसका वज़न जान लेना सुगम है। इसलिए सोने की खान का काम एक प्रकार का जुआ है। पर कोयले की बात और तरह की है।

अतएव लोगों को नई कम्पनियों के एजंटों की बादरचाट बातों और मन लुभानेवाली भाषा में लिखे गये रंग बिरंगे विज्ञापनों से सदैव होशियार रहना चाहिए। उनके फन्दे में पड़ कर धोका खा जाने का बड़ा डर रहता है। लेकिन कम्पनियाँ खड़ी करने वाले भी भले बुरे सब तरह के होते हैं। इसलिए रुपया देनेवालों को इन्हें भली प्रकार जाँच लेना चाहिए। रुपया देने के पहले यह अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि प्रस्तावित कम्पनी वास्तव में कहीं है भी या नहीं? फिर इसके प्रबन्धकर्ता और अधिष्ठाता माननीय और प्रभावशाली हैं या नहीं? सब से बड़ी बात यह है कि आदमी को अपना मन ख़ूब भर लेना चाहिए कि यह कम्पनी चलेगी या नहीं। जब सब तरह दिलजमई हो जाय तब रुपया देना चाहिए। जिन कारणों से काँच और दियासलाई आदि के छोटे छोटे कारख़ाने न चल सके उनको ख़ूब सोच समझ कर काम शुरू करना चाहिए। इनके 'फ़ेल' होने का मुख्य कारण यह है कि बहुधा ये काम बिना पूर्ण योग्यता के; बिना तत्सम्बन्धी शिल्पकला-कौशल के; और बिना काफ़ी पूंजी के प्रारम्भ कर दिये जाते हैं। जिस कम्पनी के पास इतना भी धन न हो कि काम चल निकलने तक वह अपना ख़र्च सँभाल सके उसे भला कैसे कामयाबी हो सकती है? जिस कारख़ाने का दफ़्तर एक अँधेरे झोपड़े में हो; जिसके मैनेजर या कारकुन घुनी हुई मेज़ के सामने एक टूटी कुर्सी पर तशरीफ़ रखते हों; और तीन चार मरियल कुली इधर उधर फिर रहे हों; उसकी ज़िन्दगी चन्दरोज़ाही समझिए। यद्यपि आलीशान आफ़िस और भाप से चलनेवाली कलों से ही सफलता प्राप्त नहीं होती, तथापि कारख़ाने की इमारत और सामान ऐसा तो ज़रूर ही होना चाहिए जो दर्शक के चित्त को आकर्षित करके, उस पर अपने गौरव की धाक जमा दे।

(४) चौथी बात जो इस मामले में विघ्न डालती है वह हम लोगों का एक दूसरे पर विश्वास न करना है। बड़े अफ़सोस की बात है कि हमलोग अपनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही पर विश्वास नहीं करते। विश्वास न करने की हमें आदत सी हो गई है। लोग इस बात पर बहुत विचार भी नहीं करते। यहाँ तक कि सीधे सादे आदमी को बहुधा लोग बेवक़ूफ़ बनाकर मज़ाक़ उड़ाते हैं। वह नौकर उल्लू समझा जाता है जो अपने मालिक से अपनी तनख़्वाह के सिवा चालाकी से कुछ अधिक नहीं ऐंठ लेता। आज कल यह चाल हो गई है कि जब लोग किसी से उसकी तनख़्वाह पूँछते हैं तो साथही ऊपरी आमदनी भी पूँछी जाती है। लोगों को एक अन्ध-विश्वास सा हो गया है कि प्रत्येक आदमी अपने व्यवसाय में कुछ न कुछ चालाकी ज़रूर करता है। इसी बुनियाद पर लोग कह देते हैं कि कम्पनियों के मैनेजर ज़रूरही होशियार आदमी रक्खे जाते होंगे। अतएव वे चालाकी करने से क्यों चूकते होंगे। इसकी मिसाल मन्दिरों के महन्त और प्रबन्ध-कर्ताओं से दी जाती है जो इस तरह की चालाकी के लिए बदनाम हैं। लोग कहते हैं कि जब ऐसों का यह हाल है तब साझे की कम्पनियाँ के मैनेजर भला क्यों न चालाकी करते होंगे? इसी से लोग एक दूसरे का एतबार नहीं करते। यह बात व्यापारिक उन्नति में बड़ी बाधा डाल रही है। रुपया लगानेवाले को सावधान ज़रूर रहना चाहिए; परन्तु अपने साथियों का कुछ विश्वास भी करना चाहिए। उनको समझना चाहिए कि एक सुसंगठित कम्पनी में गोलमाल करना बहुत कठिन है। क्योंकि ऐसी कम्पनियों के प्रबन्धकर्ता मन्दिरों के महन्तों की तरह नहीं होते। यहाँ सब हिसाब-किताब यथानियम रक्खा जाता है जिसकी जाँच हुआ करती है। मैनेजर के ऊपर कितने ही तजरिबेकार और इज़्ज़तदार डाइरेक्टर्स (Directors) होते हैं। छोटे छोटे ख़र्च भी कई जगह लिखे जाते हैं। इसके सिवा हर साझीदार के पास हर साल जमा ख़र्च का ब्योरेवार चिट्ठा भेजा जाता है। वह ख़ुद भी वार्षिक या छमाही मीटिङ्ग में डाइरेक्टरों से जो चाहे पूँछ सकता है और जब चाहे हिसाब की जाँच कर सकता है।

इस अविश्वास की मुख्य जड़ हमारे यहाँ, सौदा लेने में मोल तोल करने की कुरीति है। बाज़ार में जिस चीज़ का मूल्य पहले २० रुपये कहा जाता है वह १० या १५ ही में दे दी जाती है। क्या इस से यह नहीं सिद्ध होता कि बेचने वाला उस चीज़ के उचित मूल्य से अधिक लेना चाहता है। इसी से अविश्वास इतना बढ़ गया है। ऐसी धोकेबाज़ी साधारणतः छोटे से लेकर बड़े सौदागरों तक में पाई जाती है। इसीलिए आज कल बाज़ारों में ख़रीदार दुकानदार को और दुकानदार ख़रीदार को अपनी अपनी चालाकी से बेवक़ूफ़ बनाने का यत्न करता है। हाय हाय यह बड़ीही घृणित रीति है। ज़रा सी बात के लिए लोग कितना झूठ बोलते हैं। किसी को कुछ लेना होता है तो वह और और चीज़ों की क़ीमत पूछने के बाद उस चीज़ पर हाथ लगाता है। यह इस लिए किया जाता है जिस से दुकानदार को यह न मालूम हो कि ग्राहक को उस चीज़ की ज़रूरत है। यह मालूम हो जाने से दुकानदार क़ीमत और भी बढ़ाकर बतलाता है।

जैसे किसी को एक छाता लेना है। वह दुकान पर जायगा। दुकान में छातों के अलावा और भी बहुत सी चीज़ें हैं। ग्राहक महाशय पहले एक और ही चीज़ उठाकर उसके दाम पूँछेंगे। (यह झूँठ नम्बर १ हुआ)। फिर आप कहेंगे कि यह वैसी नहीं है जैसी आप चाहते हैं (झूँठ नं० २)। इसी तरह करते कराते अचानक छाते की तरफ़ देख कर कहेंगे कि थोड़े दिनों में तो छाता लेनाही पड़ेगा, लाओ इन्हीं की दूकान से ले लें। तब आप छाते के दाम पूछेंगे। (झूठ नं० ३) दुकानदार कहेगा—"३ रुपये"। ग्राहक महाशय हँस कर चल देंगे और थोड़ी दूर जाकर कहेंगे "१॥) रुपया लोगे"? (झूठ नं० ४) दुकानदार आवाज़ देगा—"ठहरिए तो जनाब; तशरीफ़ लाइए; सौदा कहीं भागने से तै होता है? अच्छा पौने तीन रुपये देजाइए"। ग्राहक—"पौने दो में देना हो दे दो; ज़ियादह बातें बनाना हम नहीं जानते हैं" (झूठ नं० ५)। दुकानदार—"अच्छा साहब, आप २॥ रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही दे जाइए। लीजिए। वह २) रु० कह कर झपट के चल देंगे (झूठ नं० ६)। थोड़ी दूर जाने के बाद आप सोचेंगे कि शायद वह न बुलाये। इधर दुकानदार सोचता है कि शिकार हाथ से निकला जा रहा है। इस से ज्योंही ग्राहक महाशय मोड़ पर से झुकते हैं कि वह चिल्लाता है। "आइए साहब आइए; ले जाइए"। बस सौदा तै हो जाता है। ग्राहक महाशय समझते हैं कि सस्ता लाये। उधर दुकानदार कहता है "बचा, कहाँ तक होशियारी करोगे; मैंने चार आने पिछले ग्राहक की बनिस्बत तुम से ज़्यादा ही लिये हैं"। अब देखिए एक अदना सी चीज़ छाता ख़रीदने में ग्राहक ने ६ दफ़ः झूठ बोला। दुकानदार कितनो दफ़े झूठ बोला, सो हमने गिनाही नहीं। शिव! शिव! झूठ बोलना कितना घोर पाप है!

अब कल्पना कीजिए। एक ऐसी दुकान है जहाँ एकही बात कही जाती है। ग्राहक जाता है। चीज़ पसन्द करता है। दाम पूँछता है। जी में आता है, ले लेता है, नहीं तो नम्रतापूर्वक चीज़ वापस कर के चल देता है। यह कैसी सीधी सादी रीति है। दुकानदार और ख़रीदार दोनों मिथ्याभाषण के पाप से बचते हैं। और एक दूसरे पर विश्वास भी करते हैं। इससे ज़ाहिर है कि जब तक यहां यह मोल तोल की निन्दित कुरीति प्रचलित रहेगी तब तक लोग एक दूसरे पर विश्वास कभो न करेंगे। जहाँ तक हो सके इस कुरीति को बहुत शीघ्र मिटाना चाहिए।

बड़े अफ़सोस की बात है कि इस देश के मदरसों, स्कूलों और कालेजों में धर्म या सदाचार विषयक विशिष्ट शिक्षा नहीं दी जाती। शिक्षा का मुख्य तात्पर्य यही है कि वह मनुष्य के विचारों को उच्च करे और निन्दनीय कामों से घृणा पैदा करे। कुचाली, कुमार्गी और धोखेबाज़ सभो देशों में हैं। परन्तु वहाँ उनके दुर्गुणों को दूर करने के लिए उपाय भी तो किये जाते हैं। स्कूलों में धर्म्म और सदाचार की शिक्षा देने में कोई कसर नहीं की जाती। बचपनही से बच्च सुधारे जाते हैं। देश की आमदनी का बहुत बड़ा भाग शिक्षा के लिए ख़र्च किया जाता है। वास्तव में छोटे छोटे बालक ही देश के भावी गौरव के कारण होते हैं। इनको सुधारना देश को सुधारना है। इसलिए व्यापारिक उन्नति के लिए भी हमको अपने बच्चों के सुधारने में जोजान से प्रयत्न करना चाहिए। क्या ऐसा भी समय कभी आवेगा जब भारत का प्रत्येक बच्चा अपना अपना कर्तव्य दृढ़ता से करने को उद्यत होगा; अपने और अपने देश के भरण-पोषण के लिए तन-मन-धन सभी अर्पण करने को सदैव उत्सुक रहेगा? भाई! आइए, हम सब मिलकर अपनी भावी सन्तति का कार्य्य-क्षेत्र तैयार करने के लिए इन सब प्रचलित कुरीतियों के निवारण करने का प्रयत्न करें। यह वृद्ध भारत अब हमारेही पुरुषार्थ का मुँह देख रहा है। इसलिए अब हमको उठना चाहिए और एक दूसरे की सहायता से मिल जुल कर काम करना सीखना चाहिए। निश्चय जानिए, यदि हम सब मिल कर अपनी सहायता आप करने लगें तो भारत के उद्धार में देर न लगे*।

व्रजविहारीलाल शुक्ल।

ग्रीष्म।

१—ग्रीष्म-काल है यह अब आया;
रौद्र-रूप इसने दिखलाया।
जग में हाहाकार मचाया;
गरमी का विस्तार बढ़ाया।

२—दिनकर-किरणों की खा मार
हिमगिरि को दुख मिला अपार।
जमा बर्फ़ भी गल जाता है;
चोटी पर से ढल जाता है।

३—सन् सन् लूह भयङ्कर चलती।
भूमि आग सी धकधक जलती।
सूख गये हैं सर-सरिता सब;
बूँद एक भी जल न रहा अब।

*Industrial India नामक किताब के आधार पर लिखित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—पशु-पक्षी सब घबराते हैं ;
छाया जहाँ, वहीं जाते हैं।
जान बिना पानी जाती है ;
जीभ निकल बाहर आती है।

५—पानी कहीं देख जो पाते ,
जल्दी वहीं दौड़ सब जाते।
शूकर, बाघ, बैल, मृग, चीते ,
एक ठौर सब पानी पीते।

६—तो भी घात नहीं करते हैं ,
मारें क्या, ख़ुदही मरते हैं।
मानों जो दुख में पड़ जाता ,
वैर-भाव वह सभी भुलाता।

७—तालों के जल उबल रहे हैं ,
मत्स्य विकल हो उछल रहे हैं।
बगुले सुख से उनको खाते ;
पर-दुख से दुर्जन सुख पाते।

८—गरमी से जी अकुलाता है ;
सब का मुख सूखा जाता है।
बहता है दिन रात पसीना ;
कठिन जान पड़ता अब जीना।

९—पकने लगे बाग़ में आम ;
तरबूज़ों के बढ़ते दाम।
केशर, चन्दन, बिकते रोज़ ,
ख़स, कपूर की होती खोज।

१०—कभी न कोई दोपहरी भर
जाते कहीं, छोड़ अपने घर।
धूप, लूह की लपटों से डर,
सो रहते किवाड़ दे देकर।

११—चारों ओर धूल छा जाती ;
रोज़ शाम को आँधी आती।
छानें छप्पर तोड़ गिराती ;
बड़े बड़े उत्पात मँचाती।

१२—सारी देह तप्त हो जाती ;
जलती कभी, कभी खुजलाती।
फुन्सी फोड़े हो जाते हैं ;
देह खुजाते दिन जाते हैं।

१३—लोग सभी आँगन में सोते ;
ज्यों त्यों करके रजनी खोते।
अच्छी नींद नहीं आती है ;
बहुत तबीयत घबराती है।

१४—भोर वायु ठंढी जब चलती ,
चैन कहीं तब थोड़ी मिलती।
यही ग्रीष्म में क्या थोड़ा है ;
जग में दुख-सुख का जोड़ा है।

पाण्डेय लोचनप्रसाद।

सम्पादकीय योग्यता।

ड मैगेज़ीन नाम की एक मासिक पत्रिका अँगरेज़ी में निकलती है। उसमें एक लेख निकला है। उस लेख में वर्तमान समय के विद्वानों और मुख्य मुख्य समाचारपत्रों के सम्पादकों की इस विषय में सम्मतियाँ प्रकाशित हुई हैं कि समाचारपत्रों की कामयाबी के लिए सम्पादक में कौन कौन गुण होने चाहिएँ। विषय बड़े महत्त्व का है। इससे कुछ सम्मतियों का संक्षिप्त भावार्थ हम यहाँ पर प्रकाशित करते हैं। आशा है हिन्दी के समाचारपत्रों और पत्रिकाओं के सम्पादकों के लिए ये सम्मतियाँ उपदेशजनक नहीं, तो मनोरञ्जक ज़रूर होंगी—

सर ह्यू गिलज़ीन-रीड कहते हैं—"सम्पादक का पद पाना सौभाग्य की बात है। सम्पादकों के कर्तव्य एक नहीं, अनेक हैं। उन्हें पूरी पूरी स्वाधीनता रहती है। ज़िम्मेदारी भी उन पर कम नहीं रहती। जिसने एक दफ़े यह काम किया उसे इसमें कुछ ऐसा आनन्द मिलता है कि उसका उत्साह बढ़ता ही जाता है। इस काम के लिए लड़कपन ही से सम्पादकीय शिक्षा की ज़रूरत होती है। इसके लिए धैर्य्य दरकार है। जल्दी करने से कामयाबी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती। मुख्य बात तो यह है कि सम्पादक बनाये नहीं बनता; उसके लिए जिन गुणों की अपेक्षा होती है वे जन्म से ही पैदा होते हैं। साहित्य का उत्तम ज्ञान, दूरदर्शिता और व्यापक दृष्टि आदि बातें तजरिबे और अध्ययन से प्राप्त हो सकती हैं, पर सम्पादकीय कार्य में कामयाबी की कुंजी मनुष्य माँ के पेट से ही लाता है"।

रिव्यू आफ़ रिव्यूज़ के सम्पादक, स्टीड साहब कहते हैं—"सम्पादक का पहला गुण यह होना चाहिए कि प्रत्येक विषय का उसे अच्छा परिज्ञान हो; चाहे जो विषय हो उस पर लेख लिखने में उसे आनन्द मिले; और जिस विषय की वह चर्चा करे जी जान होम कर करे, किसी बात की कसर न रक्खे"।

"दूसरा गुण सम्पादक में यह होना चाहिए कि जिस विषय पर उसे कुछ लिखना हो उस विषय का उसे पूरा पूरा ज्ञान हो, तत्सम्बन्धी अपने विचारों को वह ख़ूब अच्छी तरह, निश्चयपूर्वक, अपने मन में स्थिर कर ले। इसके बाद वह उन विचारों को इस तरह साफ़ साफ़ प्रकट करे कि महामूर्ख आदमी भी उसकी बातें सुन कर उसके दिली मतलब को समझ जाय। ऐसा न हो कि उसका मतलब कुछ हो, पर पढ़नेवाले कुछ और ही समझें"।

"सम्पादक के लिए एक और बात की भी ज़रूरत है। वह यह कि उसे नींद अच्छी तरह लेना चाहिए। यदि किसी कारण से किसी रात को कम नींद आवे तो मौक़ा पाते ही उस कमी को किसी और रात को पूरा कर लेना चाहिए"।

"इसके कहने की मैं कोई ज़रूरत नहीं समझता कि सम्पादक के लिए अच्छे स्वास्थ्य, विशेष परिश्रम और उत्तम बुद्धिमत्ता आदि की भी आवश्यकता है। ये गुण तो होने ही चाहिएँ। हाँ एक बात की मैं सबसे अधिक ज़रूरत समझता हूँ। सम्पादक की विचारशक्ति ऐसी तीव्र होनी चाहिए कि सूक्ष्म से सूक्ष्म बात भी उसके ध्यान में आजानी चाहिए"।

ब्यलफ़ास्ट न्यूज़ लेटर के सम्पादक, सर जेम्स हेंड्रसन, कहते हैं—"समालोचना करने की शक्ति; जिस विषय का विचार चला हो उसे ऐसी चित्ताकर्षक भाषा में लिखना, जिसे पढ़ते ही पढ़नेवाले का चित्त उस तरफ़ खिंच जाय और उसे पढ़े बिना उससे न रहा जाय; किसी वक्तृता अथवा किसी विशेष घटना पर विचार करते समय उसकी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बातों का ध्यान में आ जाना; उत्तम शिक्षा; और विद्या की प्रत्येक शाखा का जहाँ तक हो अधिक ज्ञान—इन्हीं गुणों की सम्पादक के लिए सबसे अधिक आवश्यकता है। इनके बिना सम्पादक का काम अच्छी तरह नहीं चल सकता"।

व्यस्ट मिनिस्टर गज़ट के सम्पादक, जे० ए० स्पेंडर की राय है—"लिखने की अच्छी योग्यता; दृढ-प्रतिज्ञा; जिस समाचारपत्र से उसका सम्बन्ध हो, अथवा जिसके लिए उसे लेख लिखने पड़ते हों, उसके सिद्धान्तों के अनुसार अपनी बुद्धि से काम लेने की शक्ति और व्यवसाय तथा व्यवहार सम्बन्धी बातों का यथेष्ट ज्ञान। जीवन-सम्बन्धी और सामाजिक बातों में तजरिबे का होना; तथा साहस। नये सम्पादक के लिए इन्हीं गुणों की आवश्यकता होती है। इनके होने से वह अपने व्यवसाय में कामयाब हो सकता है"।

पालमाल गज़ट के सम्पादक, सर डगलस स्टेट कहते हैं—"और मामूली बातों के सिवा, नये सम्पादक को सख़्त काम और नाउम्मैदी का सामना करने के लिए भी हमेशा तैयार रहना चाहिए। उसे अपने कर्तव्य का सबसे अधिक ख़याल होना चाहिए और जिस काम में वह हाथ डाले उसे जी जान से करना चाहिए"।

पीपुल के सम्पादक, गोज़े हटन अपनी सम्मति में सर एडविन आर्नल्ड के ये वाक्य उद्धृत करते हैं—"सम्पादक के लिए सब प्रकार की विद्या, ज्ञान और तजरिबे की ज़रूरत होती है। कोई बात ऐसी नहीं जिसका उपयोग उसे न होता हो"। हटन साहब की निज की राय यह है कि सब प्रकार की शिक्षा—विशेष करके व्यापार-विषयक—सम्पादक के बड़े काम आती है। इनकी भी राय है कि सम्पादकीय गुण मनुष्य को जन्म से ही प्राप्त होते हैं; उपार्जन करने से नहीं मिलते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक विद्वान् का नाम है एम० एच० स्पीलमम। आप ललित कलाओं का अच्छा ज्ञान रखते हैं और उनकी समालोचना करने में सिद्धहस्त हैं। आपको सम्पादकीय बातों का भी उत्तम अनुभव है। आप सम्पादक के लिए इन बातों की आवश्यकता समझते हैं—"अच्छा स्वास्थ्य, अच्छा चाल चलन, शिष्टाचार, सबसे मेल जोल, सब बातों में विश्वासपात्रता, किसी बात पर कुछ लिखते समय सत्यता का ख़याल, सब विषयों का थोड़ा बहुत ज्ञान, लिखने की योग्यता और समझ बूझ कर उत्साह-पूर्वक अपना काम करने की शक्ति"।

स्काटस्मैन के भूतपूर्व सम्पादक, सी० ए० कूफ़र की राय है—"सम्पादकीय काम करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति, इतिहास और प्रसिद्ध प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थों का ज्ञान, प्रकृत विषय में बुद्धि को संलग्न करने की शक्ति, हर एक बात की आलोचना करने की योग्यता, यथार्थ कथन की आदत, तर्कशास्त्रानुमोदित विचार-परम्परा और परिश्रम"।

मैन्चेस्टर गार्जियन के सम्पादक, सी० पी० स्काट कहते हैं कि सिर्फ़ एकही बात ऐसी है जिसके बिना कोई आदमी सम्पादकीय काम नहीं कर सकता। वह बात है "दिमाग़"। अर्थात् अच्छे दिमाग़ का ही आदमी सम्पादकीय काम को योग्यता से कर सकता है।

जितने मुँह उतनी बातें! फिर भी कुछ बातें ऐसी हैं जो एक दूसरे की राय से मिलती भी हैं। कुछ हो। इन बड़े बड़े सम्पादकों की बातें हम लोगों के विचार करने लायक़ ज़रूर हैं। इसी से हमने इनके कथन का स्थूल भावार्थ प्रकाशित करना उचित समझा।

सचिव-युग्म।

स संख्या में इँगलैंड के प्रधान सचिव सर हेनरी कैम्बेल बैनरमैन और उनके सहायक भारत-सचिव राइट आनरेबल जॉन मार्ले के हाफ-टोन चित्र पाठकों को भेंट किये जाते हैं। इस सचिवद्वय का चरित पाठकों ने अन्यान्य अख़बारों और मासिकपत्रों में पढ़ाही होगा। इससे परिचय के लिए इनके विषय की हम सिर्फ़ दोही चार बातें लिखेंगे।

कैम्बेल बैनरमैन।

बैनरमैन साहब ग्लासगो के रईस हैं। १८३६ ई० में वहीं इनका जन्म हुआ था। इस समय इनकी उम्र ७० वर्ष की है। १८६१ में केम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालेज से इन्होंने एम० ए० पास किया। इनके पिता और बड़े भाई पक्के 'कन्सरवेटिव' थे पर आश्चर्य्य यह है कि ये उसी घर में 'लिबरल' पैदा हुए। इनके राजकीय विचार बड़ेही उदार हैं। १८६८ में ये [illegible] पहिल पारलियामेंट में, स्टर्लिंग शहर की त[illegible] सभासद चुने गये। तब से आज तक ये उस [illegible]हर की तरफ़ से प्रजा-प्रतिनिधि हैं। बहुत दिनों तक ये बड़े बड़े पदों पर रह चुके हैं। कई वर्ष तक ये युद्ध-विभाग के मंत्री थे। कई वर्ष तक आयरलैंड के प्रधान मंत्री थे। और अब कोई डेढ़ वर्ष से महाराज सप्तम एडवर्ड के मुख्य मंत्री हैं। अब इन्हें मंत्रियों के मंत्री, अर्थात् अँगरेज़ी राजसभा के सूत्रधार, कहना चाहिए।

ये बोर-युद्ध के बहुत ख़िलाफ़ थे। यदि बालफ़र साहब की जगह पर उस समय ये प्रधान मंत्री होते तो यह युद्ध कभी न होने पाता। इन्हों ने साफ़ साफ़ कह दिया था कि जिस ढंग से यह युद्ध हो रहा है वह अनुचित है। उसे युद्ध नहीं कह सकते।

इनका स्वभाव बहुत सरल, सच्चा और उदार है। इनमें कर्त्तव्य-निष्ठा भी बहुत है। आजकल लार्ड्स और कामन्स में जो विरोधभाव हो रहा है उसे निःसङ्कोच होकर ये दूर करना चाहते हैं। लार्ड्स लोगों की काररवाई इनको पसन्द नहीं। उनकी शक्ति को मात्रा ये युक्ति से कम करने के फ़िराक़ में हैं। ये नहीं चाहते कि प्रजा के हिताहित का विचार न करके "हाउस आफ़ लार्ड्स" में बैठनेवाले लार्ड्स मनमानी करें।

कैम्बेल-बैनरमैन साहब अच्छे वक्ता नहीं। ये अपनी वक्तृता कभी कभी लिख कर ले जाते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनाते हैं। इनको क्रोध कम आता है। ये विनोद-शील ऐसे हैं कि इनके प्रतिपक्षी भी इनकी बातें सुन कर हँस देते हैं। चेम्बरलेन साहब के राजनैतिक विचार कई विषयों में बिलकुल इनके उलटे हैं। तथापि चेम्बरलेन साहब इनका बड़ा आदर करते हैं। इनके ख़िलाफ़ उन्हें प्रायः हमेशा ही बोलना पड़ता है। पर इससे बैनरमैन-विषयक उनकी आदरबुद्धि कम नहीं हुई।

बैनरमैन बड़ेही स्पष्टवक्ता हैं। जब लिबरल पक्ष का प्रधानमण्डल नियत हुआ और ये मुख्य मंत्री हुए तब चेम्बरलेन साहब ने नये मंत्रियों से यह पूँछने का प्रयत्न करना चाहा कि वे प्रतिबद्ध व्यापार के अनुकूल हैं या प्रतिकूल। इस पर प्रधान मंत्री ने साफ़ कह दिया कि इस विषय को फिर पार्लियामेंट में पेश करने की ज़रूरत नहीं। इस विषय में प्रजा की क्या राय है सो सारे संसार को मालूम हो गई है। रूस की नई पारलियामेंट डूमा जब बन्द कर दी गई तब इन्होंने बड़े आवेश से पार्लियामेंट में कहा—"डूमा मर गई; वह चिरञ्जीव रहे; उसकी जय हो"। रूस ऐसे बलवान् देश के लिए इस तरह की उक्ति मुँह से निकालना बड़े साहस का काम है। बैनरमैन का कहना सच निकला। डूमा फिर जी उठी है। एक दफ़े बालफ़र साहब ने बोरों को पारलियामेंट देने के ख़िलाफ़ बहुत कुछ कहा और लिबरल दल की निन्दा की। बैनरमैन ने इसका यथेष्ट उत्तर देना चाहा। पर बालफर साहब ने अपनी वक्तृता इतनी लम्बी कर दी कि इनको सिर्फ़ एक मिनट उत्तर देने को मिला। इस एकही मिनट में इन्होंने कहा—"मुझे बोलने के लिए सिर्फ़ एक मिनट रह गया है। पर इतने ही में मैं यह कहना चाहता हूँ कि जब से मैंने पारलियामेंट में क़दम रक्खा तब से आज तक ऐसा अयोग्य, ऐसा अनुचित, ऐसा सदोष और ऐसा देशाभिमान-शून्य भाषण मैंने कभी नहीं सुना"!

बैनरमैन घर के अमीर हैं। इन्हें कोई सात आठ लाख रुपये साल की आमदनी है। परन्तु ये बहुत सीधे सादे स्वभाव के हैं। ये अच्छे विद्वान् हैं। विद्या का इन्हें व्यसन है। खूब पुस्तकावलोकन करते हैं। फ़्रेंच और जर्मन भाषायें ये अच्छी तरह जानते हैं। इनके यहाँ प्राचीन भाषाओं की पुस्तकों का अच्छा संग्रह है।

जॉन मार्ले।

आज कल हिन्दुस्तान के कर्त्ता-धर्ता जान मार्ले ही हैं। "सेक्रेटरी आव स्टेट फ़ार इँडिया" यही हैं। इस देश से सम्बन्ध रखनेवाली बातों में इनकी शक्ति अपार है। इनके पहले ब्राडरिक साहब इस पद पर थे। इतने बड़े लार्ड कर्ज़न को उन्हींके कारण लाटपन छोड़ कर विलायत लौट जाना पड़ा। इतने ही से भारत-सचिव की प्रभुता का अन्दाज़ हो सकता है।

इनका जन्म इँगलैंड के ब्लाकबर्न नगर में, १८३८ ईसवी में, हुआ था। कैम्बेल बैनरमैन से ये वर्ष दो वर्ष छोटे हैं। ये आक्सफ़र्ड के बी० ए० हैं। इनकी विद्वत्ता देखकर केम्ब्रिज और ग्लासगो के विश्वविद्यालयों ने इन्हें एल० एल० डी० की पदवी दी है। यह पदवी बिरलों ही को मिलती है और बड़ी आदरणीय समझी जाती है। इन्होंने कितनेही दैनिक और मासिकपत्रों की सम्पादकता की है। विद्याव्यासङ्ग का इन्हें बड़ा चसका है। लिखने पढ़ने से इन्हें अत्यधिक प्रेम है। पुस्तकें और लेख लिखने का तो इन्हें रोग सा हो गया है। कुछ न कुछ लिखा ही करते हैं। बर्क, क्रामवेल, रूसो और काबडन के चरित इन्होंने लिखे हैं। उनका बड़ा आदर है। ग्लाडस्टन साहब का तो इतना अच्छा चरित इन्होंने लिखा है कि उसकी बराबरी का एक भी चरित अँगरेज़ी भाषा में नहीं है। इस चरित की तीन जिल्दें हैं। इसके लिए एक पुस्तक-प्रकाशक ने डेढ़ लाख रुपये इन्हें दिये हैं!

१८८३ में पहले पहल इन्होंने "न्यू कैसल ऑन टाइन" नामक नगर की तरफ़ से पारलियामेंट में प्रवेश किया। तब से बराबर आज तक वहां बने हुए हैं। इँगलैंड के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री, परलोक-वासी ग्लाडस्टन साहब, के ये चेले हैं। ये भी उदार-दलवालों में से हैं। सुनते हैं, इनका सिद्धान्त यह है कि मनोविकारों के वश न होकर जो बात न्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और देशहितकारी मालूम हो वही करना चाहिए। इस सिद्धान्त का उल्लेख इन्होंने भारतसचिव होने के पहले, आयरलैंड और भारत के सम्बन्ध में व्याख्यान देते समय, कई दफ़े दिया भी है। आयरलैंड के यह चीफ़ सेक्रेटरी रह चुके हैं। उस पद पर रह कर उस देश का बहुत कुछ हित इन्होंने किया है। भारत और आयरलैंड की कई बातों में थोड़ी बहुत समता है। सम्भव है आयरलैंड की तरह भारत की शिकायतें भी दूर करने की ये चेष्टा करें। और कुछ की भी है। "वन्दे मातरम्" कहने की इन्होंने अनुमति दिलाई है, "स्वदेशी" मामलों में शामिल होने के कारण जो लड़के बंगाले के स्कूलों से निकाल दिये गये थे उन्हें इन्होंने बिना किसी शर्त के फिर से भरती करा दिया है। फुलर साहब की आक्षेपयोग्य काररवाइयों की तीव्र आलोचना भी इन्होंने की थी। उनका इस्तेफ़ा देना भी इन्हीं की दृढ-न्यायपरता का फल था। सुनते हैं यहाँ के कौंसिलों में हिन्दुस्तानी मेम्बरों की संख्या भी ये बढ़ाना चाहते हैं और विलायत में अपनी कौंसिल में भी एक आध हिन्दुस्तानी रखना चाहते हैं। अलीगढ़-कालेज के मारिसन साहब को रक्खा भी है।

इस देश की प्रजा के नायकों को मार्ले साहब से बहुत कुछ आशा थी, पर कई बातों में उन्हें ना उम्मैदी हो गई है। हिन्दुस्तानियों के माँगे हुए स्वत्व देने में मार्ले साहब को अनेक प्रकार के विचार करने पड़ते होंगे। इँगलैंड का लाभ उन्हें पहले देखना पड़ता होगा, भारत का पीछे। फिर जो बातें सैकड़ों साल से होती आई हैं उनको एकदम से बदल देना सहज भी तो नहीं है। व्यवहार और नीति के झूले में इन्हें झूलना पड़ता है। बहुत सी बातें ऐसी हैं जिनके करने से भारत का तो हित है, पर इँगलैंड का अहित। ऐसी बातें करने में इन्हें ज़रूर ही आगा पीछा होता होगा। इसी से इनकी उदारनीतिगर्भित उक्तियाँ इस देश के लिए कम फलवती होती हैं। भारत को इस समय व्यापार-प्रतिबन्ध अपेक्षित है—जिसमें विदेशी माल की आमदनी कम होजाय। पर हाल में जो कालोनियों का कान्फ़रन्स लन्दन में हुआ था उसमें इसके ख़िलाफ़ काररवाई हुई थी। इसका भी कारण वही इँगलैंड का हित-साधन है। लाला लाजपत राय को जो देश से निकाल दिये जाने की सज़ा मिली है इसका भी यही कारण हो सकता है। ६ जून को पारलियामेंट में हिन्दुस्तान के "बजट" पर बहस करते समय इन्होंने अपना असली रूप दिखा दिया है। आप यहाँ वालों के लाभ के लिए कुछ सुधार के काम ज़रूर करना चाहते हैं; पर ऐसा कोई काम आप न करेंगे जिसके कारण अँगरेज़ी राज्य को धक्का लगे। लाला लाजपत राय और अजीतसिंह का देश-निर्वासन, किसी किसी ज़िले में सभायें करने की मनाई, सख़्त लिखनेवाले अख़बारों पर मुक़द्दमें क़ायम करना आदि अँगरेज़ी राज्य के हितसाधनही के लिए है।

ख़ैर, जो कुछ हो, मार्ले साहब की गिनती यदि बहुत भले सचिवों में नहीं तो बुरों में भी नहीं है। इनमें एक और बड़ा भारी गुण यह है कि ये बड़े ही निस्पृह हैं। लोभ इनमें छू तक नहीं गया। प्रसिद्ध करोड़पती ऐंड्रू कारनेगी ने लार्ड आकून का पुस्तकालय लाखों रुपये ख़र्च करके मोल लिया और इनकी विद्वत्ता और विद्याभिरुचि पर मोहित होकर इन्हें समर्पण कर दिया। इन्होंने क्या किया कि उस सारे पुस्तकालय को ग्लासगो-विश्वविद्यालय को दे डाला! इनकी उदारता, सत्यनिष्ठा और भलमंसी के कारण इनका नाम पड़ गया है—"प्रामाणिक जॉन"।

शिकागो का रविवार।

शिकागो विश्वविद्यालय के कुछ दृश्य हम पाठकों की भेंट कर चुके हैं और यहाँ के पठन-पाठन की व्यवस्था का भी कुछ वर्णन कर चुके हैं। यहाँ की शिक्षाप्रणाली पर भी हमें एक लेख लिखना है। उसे हम फिर कभी लिखेंगे। आज हमने यह निश्चय किया है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

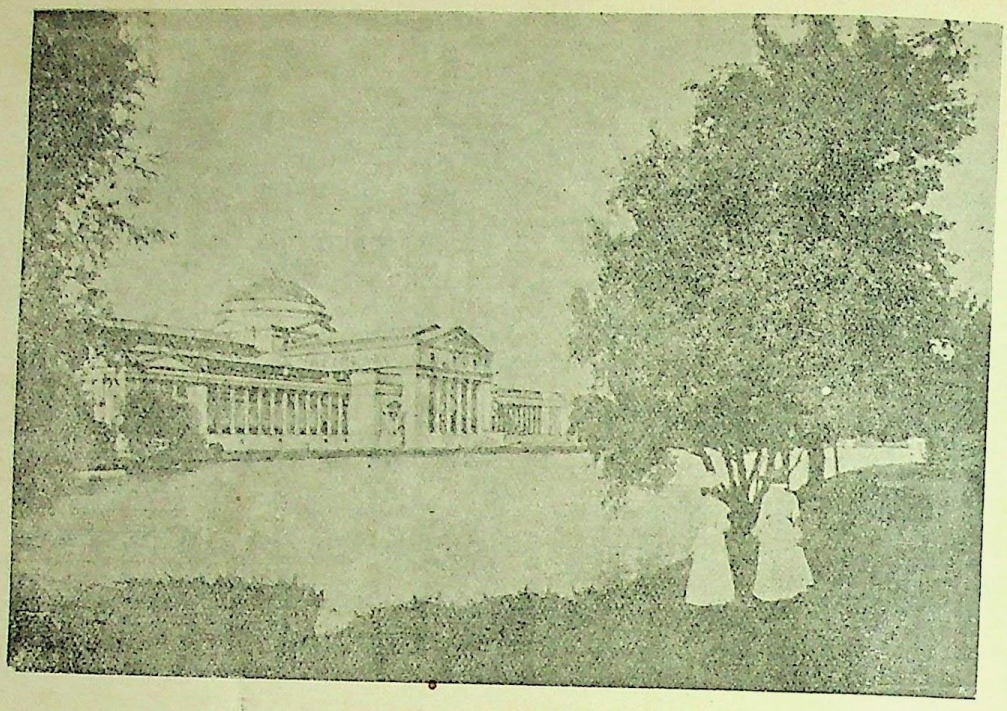

फ़ील्ड म्यूज़ियम अर्थात् अजायबघर।

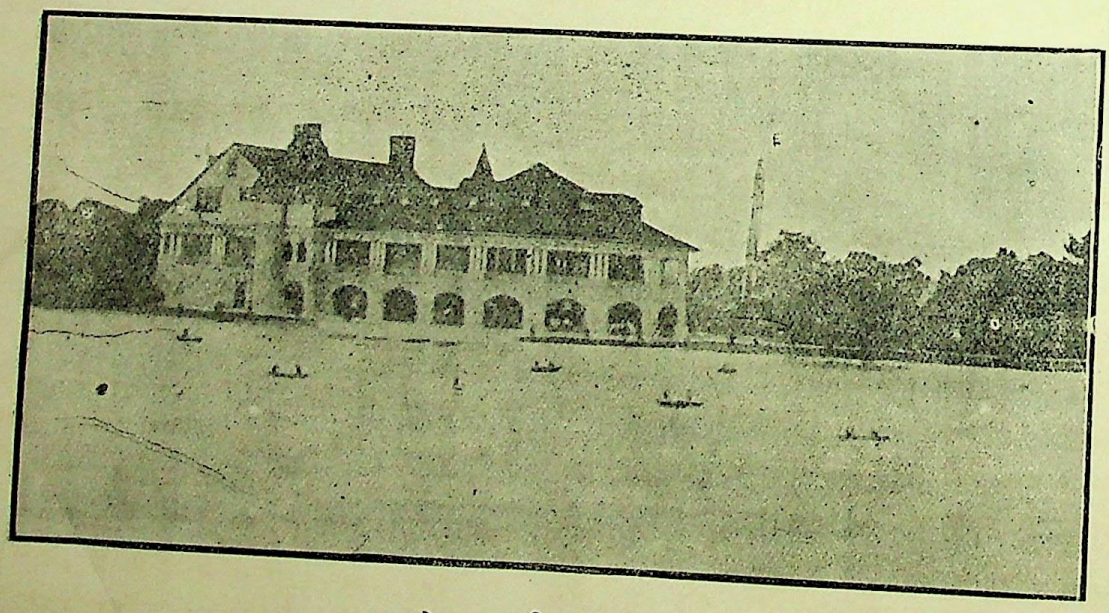

हम्बोल्ड पार्क (उद्यान)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको शिकागो की सैर करावें, इसके अजीब अजीब दृश्य दिखावें, और आपको बतलावें कि इस प्रसिद्ध नगरी में कौन कौन स्थान दर्शनीय हैं। साथ ही हम इस नगर के निवासियों के रहन सहन का ब्यौरा भी देते जायँगे, जिसमें आपको अमरीका के इस प्रान्त वालों की जीवनचर्य्या के विषय में भी कुछ ज्ञान हो जाय। इस काम के लिए हमने रविवार का दिन चुना है। उसी की महिमा हम इस लेख में वर्णन करेंगे। इससे हमारा अभीष्ट भी सिद्ध हो जायगा और आपको यह भी मालूम हो जायगा कि शिकागो के निवासी रविवार की छुट्टी किस तरह मनाते हैं।

रविवार छुट्टी का दिन है। भारतवर्ष में छोटे छोटे बच्चे जो स्कूलों में पढ़ते हैं वे भी यह बात जानते हैं। एशिया और अफ़्रीक़ा में जहाँ जहाँ ईसाई लोगों का राज्य है सब कहीं स्कूलों और दफ़्तरों में रविवार को छुट्टी रहती है। परन्तु रविवार की छुट्टी किस तरह मनानी चाहिए, यह बात ईसाई-धर्म्मावलम्बियों के बीच रहे बिना अच्छी तरह नहीं अनुभव की जासकती। रविवार की छुट्टी मनाने के लिए शिकागो में कैसे कैसे स्थान बनाये गये हैं और किस प्रकार यहाँ वाले जीवन का आनन्द लूटते हैं, इसका संक्षिप्त हाल सुनिए।

ईसाई-धर्म्म में रविवार को काम करना मना है। इसलिए सब दुकानें, पुस्तकालय, कारख़ाने आदि इस दिन बन्द रहते हैं। क्या निर्धन क्या धनवान, क्या नौकर क्या स्वामी, क्या बालक क्या वृद्ध, क्या स्त्री क्या पुरुष सब के लिए आज छुट्टी है। १०½ या ११ बजे, नियत समय पर, प्रातःकाल, प्रायः सब लोग अपने अपने गिरजाघरों में जाते हुए दिखाई देते हैं। वहाँ ईश्वराराधना के बाद घर लौट कर भोजन करते हैं। फिर कुछ देर आराम करके सैर को निकलते हैं।

शिकागो बहुत बड़ा शहर है। संसार के बड़े शहरों में इसका तीसरा नम्बर है। यहाँ एक "फ़ील्ड म्यूज़ियम" अर्थात् अजायबघर है। यह मिशिगन झील के किनारे, शिकागो-विश्वविद्यालय से थोड़ी ही दूर पर, है। रविवार को सबेरे नौ बजे से शाम के पाँच बजे तक, सब को यहाँ मुफ़्त सैर करने की आज्ञा है। इसलिए इस दिन यहाँ बड़ी भीड़ रहती है। आठ नौ बरस के बालक, बालिकायें ऐसे ही स्थानों से अपनी विद्या का आरम्भ करते हैं। क्योंकि यहाँ पर संसार की उन सब अद्भुत वस्तुओं का संग्रह है, जो शिकागो के प्रसिद्ध सांसारिक मेले (World's Fair) में इकट्ठा की गई थीं। यहां यह बात यथाक्रम दिखलाई गई है कि पृथ्वी के ऊपर प्राणियों का जीवन, प्राकृतिक नियमों के अनुसार, किस प्रकार वर्तमान अवस्था को पहुँचा है। भूगर्भ-विद्या-सम्बन्धी पदार्थों को भिन्न भिन्न कमरों में दरजे बदरजे रख कर उनका क्रम-विकास अच्छी तरह दिखलाया गया है। यहाँ यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि उत्तरी अमरीका के हिरन किस प्रकार भिन्न भिन्न चारों ऋतुओं में अपना रंग बदलते हैं। किस प्रकार प्रकृति-माता बर्फ़ के दिनों में उनको भोजन देती है। उत्तरीय ध्रुव में रहनेवाले रीछों के बर्फ़ के भीतर बने हुए घर क्या ही अच्छी तरह दिखाये गये हैं। यहाँ यह बात प्रत्यक्ष मालूम हो जाती है कि अमरीका के प्राचीन निवासी (Red Indians) किन देवी-देवताओं को पूजा करते थे, कैसे घरों में रहा करते थे, किस प्रकार किन चीज़ों की मदद से पहनने के वस्त्र बनाते थे। उनकी नौकायें, उनके खाने पीने का सामान, उनके देवालय, उनके युद्ध के शस्त्र—सब चीज़ें बहुत ही अच्छी तरह दिखाई गई हैं। सबसे अधिक सक्षम ही प्राणी संसार में बाक़ी रहते हैं। इस सिद्धान्त की पुष्टि इन दृश्यों को देखते ही हो जाती है। जब हमने इन चीज़ों को देखा तब तत्काल हमें यह ख़याल हो आया कि क्या भारतवासियों का नाम, उनकी चीज़ें, उनका इतिहास, आदि सब कुछ नष्ट होकर किसी दिन लंदन के अँगरेज़ी अजायबघर (British Museum) में ही तो न रह जायगा?

इस अजायबघर के मध्य में महात्मा कोलम्बस की दीर्घकाय मूर्ति (Statue) विराजमान है। इस जिनोआ-निवासी को देखकर दर्शक के मन में भाँति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाँति के विचार उत्पन्न होने लगते हैं और एक अद्भुत दृश्य आँखों के सामने घूम जाता है। पुरानी अमरीका और आज की अमरीका में कितना अन्तर है? वे यहाँ के प्राचीननिवासी कहाँ गये? पिछली तीन शताब्दियों में यहाँ की भूमि का कैसा रूप बदला है? कहाँ योरप? कहाँ अमरीका? हज़ारों कोस का अन्तर! भारतवर्ष की तलाश में एक पुरुष भूल से इधर आ निकलता है। उसका आना क्या है, यमराज के आने का सँदेसा है! हज़ारों वर्ष से रहनेवाले, स्वतन्त्रता से विचरने वाले, क्या पशु, क्या पक्षी, क्या मनुष्य सभी तीनही शताब्दियों के अंदर स्वाहा हो जाते हैं! करोड़ों भैंसे अमरीका के जंगलों में न जाने कब से, आनन्द-पूर्वक विचरते थे। पर आज उनका नामोनिशान तक नहीं मिलता। उन सब जीवों ने क्या अपराध किया था? क्यों एक दूर देश में बसनेवाली जाति, जिसका कोई अधिकार इस देश पर नहीं था, आकर यहाँ के असली रहनेवालों को नष्ट करने का कारण हुई? क्या यही ईश्वरीय न्याय है? नास्तिकता से भरे हुए ऐसेही प्रश्न यहाँ दर्शक के मन में उठते हैं। तत्काल एक आवाज़ कान में आती है—"प्रकृति का यह अटल सिद्धान्त है कि सबसे अधिक सक्षम—सबसे अधिक योग्य—हो का दुनिया में गुज़ारा है"। यदि तुम अपना अस्तित्व चाहते हो तो अपने पास पड़ोसवालों की बराबरी के बन जाओ। वही जाति अपना नाम संसार में स्थिर रख सकती है जो इस नियम के अनुकूल चलती है।

इस अजायबघर में वनस्पतिविद्या, रसायनविद्या, जन्तुविद्या, विहङ्गविद्या, नर-शरीर-विद्या आदि भिन्न भिन्न विद्याओं के सम्बन्ध की सामग्री भी विद्यमान है। "एक पंथ दो काज"। छुट्टी का दिन है। सैर भी कीजिए और कुछ सीखिए भी। उन्नति के कैसे अच्छे मौक़े यहाँ के निवासियों को दिये जाते हैं। बालकपन से ही खेल के बहाने यहाँ वाले इतनी वाक़फ़ियत हासिल कर लेते हैं जो हमारे देश में दस बरस स्कूल में पढ़ने से भी नहीं होती।

अजायबघर से बाहर निकल कर देखिए, झील के किनारे किनारे, सड़क बनी हुई है। बेंचें रखी हुई हैं। वहाँ स्त्री, पुरुष, बालक आनन्द से बैठे हैं और हँस खेल रहे हैं। उनके चेहरों को देखिए। "स्वतन्त्रता" उनके माथे पर जगमगा रही है। नवयुवक अपनी प्रियतमाओं के साथ इधर से उधर, उधर से इधर, घूमते और वार्तालाप करते हुए क्या ही भले मालूम होते हैं। मिशिगन झील भी उनके इन प्रेम के भावों को देख कर प्रसन्न मालूम होती है। वह अपने स्वच्छ शीतल पवन के झोंकों से उन्हें आशीर्वाद सा दे रही है। जल की तरंगें छोटे छोटे बालकों को देख कर, उनसे मिलने के लिए, बड़े आल्हाद से आगे बढ़ती हैं; परन्तु तत्काल ही यह सोच कर कि शायद कुछ बेअदबी न हुई हो पीछे हट जाती हैं। इस समय भगवान् सूर्य्य अपने दिन के कार्य्य को पूर्ण कर पश्चिम की ओर गमन करते हैं।

इस अजायबघर के सिवा और भी बहुत से स्थान शिकागो-निवासियों को रविवार मनाने के लिए हैं। कितनेही उद्यान (Parks) ऐसे हैं जहाँ "पियानो" बाजे तथा मन बहलाने के और अनेक सामान रखे रहते हैं। वहाँ आकर लोग बैठते हैं; संगीत सुनते हैं; और आनन्द-मग्न होकर घर जाते हैं।

यहाँ एक उद्यान है जिसका नाम हम्बोल्ड पार्क है। इसमें नहर के ढङ्ग के जल के बड़े बड़े और लम्बे कुण्ड हैं। उनमें जल भरा रहता है। छोटी छोटी नावें पानी पर तैरा करती हैं। ये नावें खेल के लिए हैं। ग्रीष्मकाल में यहाँ नावों की दौड़ होती है। रविवार के दिन इन उद्यानों का दृश्य बहुतही मनोहर हो जाता है। नवयुवक नौकायें खेते हुए हँसते, खेलते, गाते, जीवन का आनन्द लेते हैं। एक एक नौका पर प्रायः एक नवयुवक और एक युवती स्त्री होती है। वे सहाध्यायी मित्र, अथवा पति-पत्नी होते हैं। इस तरह की संगति इस देश में बुरी नहीं मानी जाती और न हम लोगों के देश की तरह बुरे भाव ही इन लोगों में उत्पन्न होते हैं। स्त्रियों की बड़ी प्रतिष्ठा है। कोई बहुतही पतित पुरुष होगा जो उनके साथ नीच व्यवहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

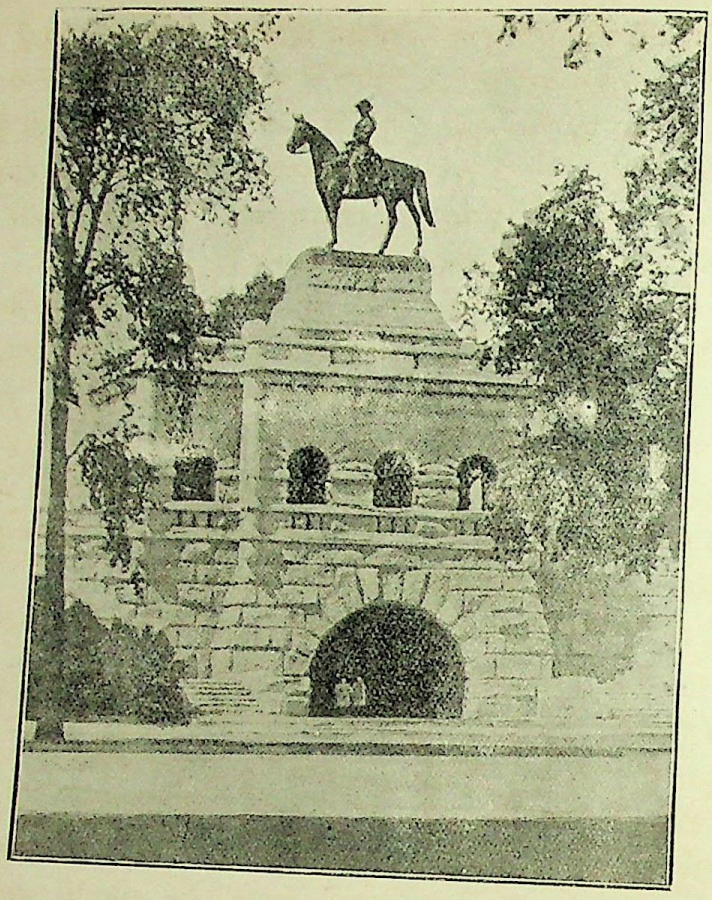

लिंकन-उद्यान में वीर-वर ग्रांट का स्मारक।

लिंकन-उद्यान का वानस्पतिक उद्यान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करेगा। ऐसे पुरुष के लिए क़ानून में बड़े भारी दण्ड का विधान है। प्रायः सभी उद्यानों में ऐसे जल-कुण्ड हैं। जो स्थान जिस के निकट हो वह वहीं जा कर रविवार को आनन्द मनाता है।

कोई शायद पूँछे कि क्या और रोज़ वहाँ जाना मना है? ऐसा नहीं है। परन्तु कारण यह है कि अधिकांश लोगों को सिवा रविवार के और रोज़ छुट्टी ही नहीं मिलती। इसलिए रविवार कोही इन उद्यानों में लोग एकत्र होते हैं। रोज़ सिर्फ़ कहीं कहीं टेनिस खेलते हुए स्त्री-पुरुष दिखाई देते हैं। यह बात ग्रीष्मऋतु की है। जाड़ों में जब इन कुण्डों का पानी जम जाता है तब वहाँ पर लोग "स्केटिंग" (Skating) करते हैं। स्केटिंग एक प्रकार का खेल है। आज कल, दिसम्बर में, स्केटिंग का समय है। बे-हद जाड़ा पड़ रहा है। पर बालक बालिकायें इन स्थानों में नाचती हुई दिखाई देती हैं।

लिंकन-उद्यान भी बहुत प्रसिद्ध है। इसमें अमरीका के विख्यात योद्धा वोर-वर ग्राण्ट की मूर्त्ति है। अश्वारूढ़ ग्राण्ट, इस देश के इतिहास के ज्ञाता को एक भयङ्कर युद्ध का स्मरण कराते हैं। यह युद्ध ग़ुलामों के व्यापार को बन्द करने के लिए आपस में हुआ था। अमरीका के उत्तर के लोग चाहते थे कि ग़ुलामों का व्यापार बन्द हो जाय। उनका सिद्धान्त था—"स्वतंत्रता की दृष्टि में सब आदमी बराबर हैं"! जीवन और स्वतंत्रता के स्वाभाविक नियमों में सब का हक़ एक सा है। वे नहीं चाहते थे कि अमरीका जैसे स्वतंत्र देश में मनुष्य भेड़-बकरियों की तरह बिकें। इस सत्य सिद्धान्त की रक्षा के लिए एक लोमहर्षण युद्ध, उत्तर और दक्षिण निवासियों में हुआ; और परिणाम में सत्य की जय हुई। शूर-वीर ग्राण्ट इस युद्ध में उत्तर वालों की ओर से सेनापति थे। वे काले हबशियों को वैसाही चाहते थे जैसा कि गोरे चमड़ेवाले अमेरिका के निवासियों को। इस महात्मा का स्मारक चिह्न दर्शक को एक नया जीवन प्रदान करता है। वह उसे सूचना देता है कि किसी मनुष्य को दूसरे पर शासन करने का अधिकार नहीं है। सब मनुष्य इस विषय में बराबर हैं। समाज एक यन्त्र की भाँति है। मनुष्य-समुदाय उसके पुरज़े हैं। अपनी अपनी योग्यतानुसार सब समाज के सेवक हैं। किसी से घृणा मत करो। क्या काला, क्या गोरा, सब एकही पिता के पुत्र हैं।

इस उद्यान के एक भाग में भिन्न भिन्न प्रकार के पौधे रखे हुए हैं। जो वृक्ष जिस तापमान में जी सकता है उसी के अनुसार वहाँ उसे उष्णता पहुँचाई गई है और उसकी रक्षा की गई है। उष्ण देशों के अनेक वृक्ष यहाँ देखने में आते हैं। दर्शक को वनस्पति-विद्या-सम्बन्धी बहुत सी बातें यहाँ मालूम हो जाती हैं।

उद्यानों के सिवा बहुत से और भी स्थान लोगों के बैठने, उठने, हँसने, खेलने के लिए हैं। शिकागो बहुत बड़ा नगर है। इससे नगर-निवासियों के आराम और शुद्ध पवन की प्राप्ति के लिए, बीच बीच गलियों में, "बानलिवर्ड" (Bonlevard) नामक विहार-स्थल हैं। यहाँ की गलियाँ अपने देशों की जैसी नहीं हैं। गलियाँ क्या एक बाज़ार हैं। पत्थर के मकानों के आगे, दोनों किनारों पर, पाँच फ़ीट के क़रीब रास्ता, सड़क से ऊँचा, लोगों के चलने के लिए बना हुआ है। बीच की सड़क गाड़ी, घोड़े, मोटर आदि के लिए है। खुले मकानों और चौड़ी सड़कों के कोने पर भी, हवा साफ़ रखने और ग़रीब आदमियों के मनोरंजन तथा लाभ के लिए थोड़ी थोड़ी दूर पर विहार-वाटिकायें हैं, जहाँ बैठने के लिए बेंचें रखी रहती हैं। काम से थके हुए स्त्री-पुरुष रोज़ सायंकाल यहाँ दिखाई देते हैं। क्योंकि और स्थानों में गाने, बजाने और जल-विहार आदि के लिए थोड़ा बहुत ख़र्च करना पड़ता है, जो थोड़ी आमदनी के लोग नहीं कर सकते। उनके लिए ऐसे स्थानों, उद्यानों और अजायबघरों में घूमने की स्वतंत्रता है। यत्न यह किया गया है कि सब को इस स्वतंत्र देश में आनन्द प्राप्त करने का अवसर मिले। यहाँ जो धन व्यय किया जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है वह शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की उन्नति के लिए किया जाता है।

यह तो हुई दिन की बात। अब रात की सुनिए। यहाँ बहुत से नाटक-घर, प्रदर्शनियाँ और समाज हैं, जहाँ अपनी अपनी रुचि के अनुसार लोग रात को जाते हैं। शिकागो में लोग अकसर रात को भी गिरजों में जाते हैं। रात को भी वहाँ उपदेश, गायन और हरिकीर्तन होता है। यहाँ एक जगह "ह्वाइट सिटी" (White City) श्वेतनगर है। बहुत से लोग वहाँ जाते हैं। इस जगह को "श्वेतनगर" इसलिए कहते हैं कि यहाँ बिजली की शुभ्र रोशनी होती है, जिससे रात को भी दिन ही सा रहता है। इसके विशाल द्वार पर बड़े मोटे मोटे बिजली के प्रकाश के अक्षरों में "दि ह्वाइट सिटी" (The White City) लिखा हुआ है। बिजली की महिमा यहाँ खूबही देखने को मिलती है। स्थान स्थान पर प्रकाशमय रंग बरंगे अक्षर-चित्र बने हुए हैं, जो मिनट मिनट में रंग बदलते हैं। इस श्वेतनगर के भीतर अनेक मनोरञ्जक स्थान हैं। कहीं पर गाना हो रहा है; कहीं बड़े बड़े "हालों" में नाच हो रहा है; कहीं "सरकस" का तमाशा है। दुनिया भर के तमाशा करनेवाले लाये जाते हैं। गरमी के दिनों में वे, तीनही चार मास में, हज़ारों रुपया कमा लेते हैं! यह स्थान एक कम्पनी का है। उसके नौकर सारी दुनिया में तमाशा करने वालों को लाने के लिए घूमा करते हैं। भारतवर्ष के यदि दो तीन अच्छे अच्छे पहलवान, किसी देशी कम्पनी के साथ, अमरीका में आवें तो हज़ारों रुपये कमा कर ले जायँ। हमारे देश में अभी लोगों ने रुपया पैदा करने का ढङ्ग नहीं सीखा। एक साधारण मनुष्य इँगलिस्तान से आकर, हिन्दुस्तान में विज्ञापनों के द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त करके, लाखों बटोर कर ले जाता है। परन्तु हमारे स्वदेशी कारीगर, पहलवान, बाज़ीगर आदि कभी इस ओर आने का साहस नहीं करते। अमरीका में कुश्ती का शौक़ बढ़ रहा है। यदि इस समय कोई पहलवान थोड़ा सा रुपया ख़र्च करके इधर आवे और किसी अच्छी कम्पनी की मारफ़त कुश्ती हो, तो लाखों रुपए के वारे न्यारे हो जायँ।

इस श्वेतनगर में रविवार को बड़ा भारी मेला होता है। गाड़ियाँ स्त्री-पुरुषों से लदी हुई जाती हैं। हज़ारों दर्शक इकट्ठे होते हैं। रात के ८ बजे से ११ या १२ बजे तक मेला रहता है। यह स्थान केवल गरमियों में खुलता है; क्योंकि जाड़ों में शीत के कारण यहाँ कोई नहीं आता। शीतऋतु के लिए नगर के भीतर और अनेक स्थान हैं जहाँ और ही तरह के मनोरञ्जक खेल होते हैं।

रविवार का दिन इस नगरी में लोग इसी तरह व्यतीत करते हैं। अब यहाँ वालों की जीवन-चर्या का मिलान यदि हम भारतवर्ष से करते हैं तो कितना बड़ा अन्तर पाते हैं। उन तमाशों या नाटकों की बात जाने दीजिए जिनको हमारे बहुत से पाठक शायद अच्छा न समझें। पर और ऐसे कितने मनोरञ्जक या शिक्षाप्रद खेल तमाशे हैं जिनका हमारे स्वदेशी भाइयों को शौक़ हो? वे अपने अवकाश को, अपनी छुट्टियों को, किस तरह बिताते हैं? भङ्ग पी कर, ताश खेलकर, पतङ्ग उड़ाकर, और व्यर्थ के बकवाद में लिप्त रह कर। वक़्त की वे क़ीमतही नहीं जानते। यद्यपि कुछ पढ़े लिखे लोग ऐसे हैं जो इन बुराइयों से बचे हुए हैं; परन्तु वे तीस करोड़ की जन-संख्या में दाल में नमक के बराबर भी नहीं। आधी संख्या हमारे देश में मूर्खा स्त्रियों की है जिनको बाहर निकलने की आज्ञा ही नहीं! जहाँ के निवासी सैकड़े पीछे पाँच से भी कम साक्षर हैं, उन्हें दुर्व्यसनों में डूबने से भगवानही बचावे!

पाठक, यह शिकागो के एक दिन का दृश्य आप की भेंट किया गया। आशा है कि आप इससे लाभ उठाने का यत्न करेंगे। सोचिए तो सही, हमारे देश के करोड़ों निर्धन किस तरह जीवन-जंजाल काट रहे हैं? जिन्हें हम नीच जाति के समझते हैं उन्हें किस घृणा की दृष्टि से हम देखते हैं? उनके सुख की हम कितनी परवा करते हैं? अपने घर, अपने नगर, अपनी दिनचर्या आदि का अन्य देशों से मुक़ाबिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

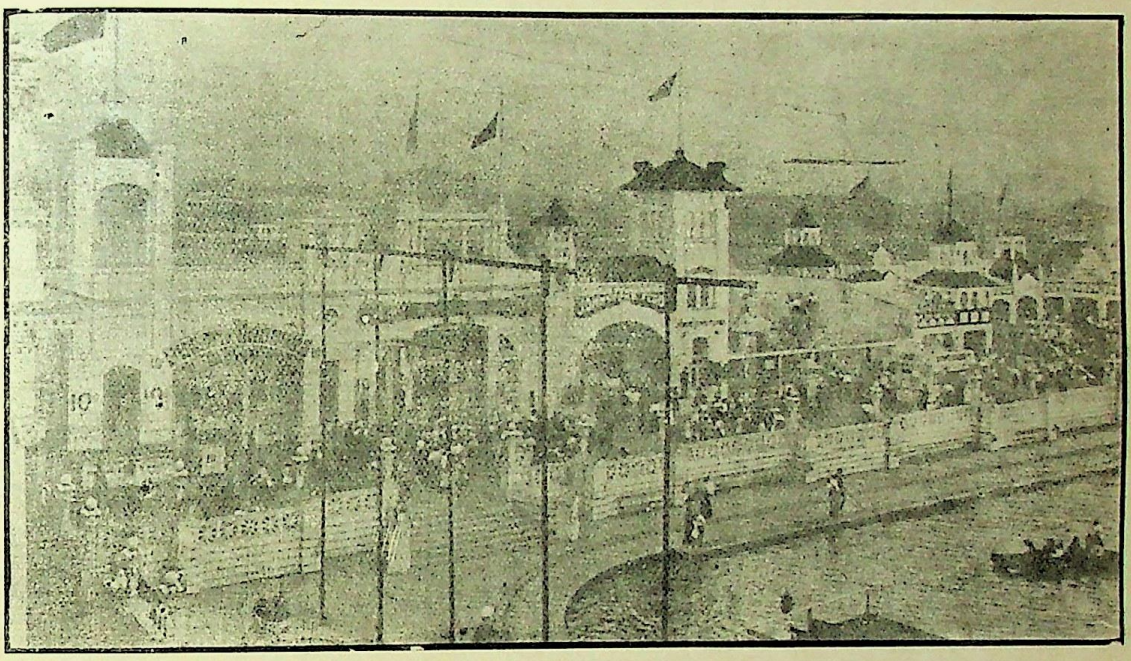

शिकागो का श्वेत-नगर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

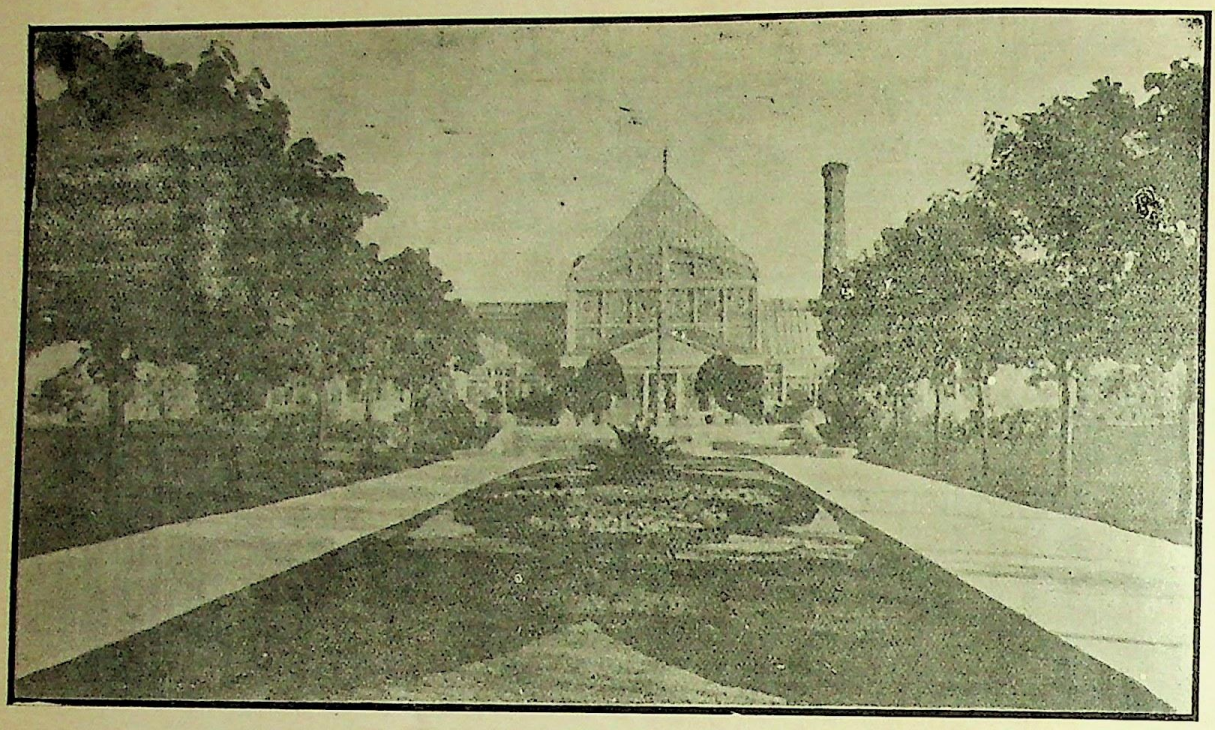

शिकागो का डगलस-उद्यान ।

शिकागो का सर्वसाधारण विहार-स्थल ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Ghennai and eGangotri

कीजिए और देखिए कि इस समय हमारा कर्त्तव्य क्या है? यह रविवार का दृश्य आपको इसलिए नहीं दिखाया गया कि इसे देखकर आप भूल जाइए। नहीं; इससे आप कुछ सीखिए। यह दृश्य एक महान् उद्देश्य को सामने रखकर दिखाया गया है। कृपा करके, विचार तो कीजिए कि वह महान् उद्देश्य क्या है?

सत्यदेव (शिकागो, अमरीका)

महाराज दशरथ का आखेट ।

(छायानुवाद-सहित)

अथ यथासुखमार्तवमुत्सवं समनुभूय विलासवतीसखः ।
नरपतिश्चक्रमे मृगयारतिं समधुमन्मधुमन्मथसन्निभः ॥ १ ॥

तदनन्तर अद्भुत बलशाली,
मधु-सूदन-मधु-मदन-समान;
वर-विलासिनी-बधू-वृन्द के
साथी अथवा प्यारे प्राण ।
महाराज दशरथ ने करके
ऋतुसम्बन्धी भोगविलास,
भूपोचितमृगया विहार की
की सुखकर कामना प्रकाश ॥

परिचयं चललक्ष्यनिपातने भयरुषोश्च तदिङ्गितबोधनम् ।
श्रमजयात्प्रगुणां च करोत्यसौ तनुमतोऽनुमतः सचिवैर्ययौ ॥२॥

मृगया से जङ्गम जीवों पर
लक्ष्य लगाना आता है;
उनके क्रोध और भय-सूचक
चिन्ह-ज्ञान हो जाता है।
श्रम-सहिष्णु कर तनु को मृगया
उसे बनाती सुदृढ़ समर्थ,
इस से सचिवों की सम्मति से
चले अवध-भूपाल तदर्थ ॥

मृगवनोपगमक्षमवेषभृद्विपुलकण्ठनिशक्तशरासनः ।
गगनमश्वखुरोद्धतरेणुभिर्नृपसविता स वितानमिवाकरोत् ॥ ३ ॥

मृग-कानन में गमन योग्य निज
धारण किये शिकारी वेश,
शोभित किये भव्य धन्वा से
अपना विपुल स्कन्ध-प्रदेश ।
उस नर-रवि ने अश्व-खुरों से
उड़ी हुई रज के द्वारा,
मानों पृथुल वितान तना सा
किया विलुप्त गगन सारा ॥

ग्रथितमौलिरसौ वनमालया तरुपलाशसवर्णतनुच्छदः ।
तुरगवल्गनचञ्चलकुण्डलो विरुरुचे रुरुचेष्टितभूमिषु ॥ ४ ॥

महा मनोहर वन-माला से
किये सुशोभित अपना शीश,
तरु-पल्लव-सम हरे रङ्ग का
पहने कवच कोशलाधीश ।
चपल-तुरङ्गम-गति से चञ्चल
कुण्डल धारण किये नरेश,
जा पहुँचा उस वनस्थली में
थे जिसमें रुरुहरिण विशेष ॥

तनुलतावनिवेशितविग्रहा भ्रमरसंक्रमितेक्षणवृत्तयः ।
ददृशुरध्वनि तं वनदेवताः सुनयनं नयनानन्दितकोसलम् ॥ ५ ॥

मृदुल लताओं को अर्पित कर
अपना अतिशय दिव्य शरीर,
रखकर मधुप-मालिकाओं में
अपनी नेत्रवृत्ति गम्भीर ।
वनदेवी-समूह से पथ में
गया विलोका वह भूपाल,
वह सुनयन जिसने सुनीति से
किया सुखी निज देश विशाल ॥

श्वगणिवागुरिकैः प्रथमास्थितं व्यपगतानलदस्यु विवेश सः ।
स्थिरतुरङ्गमभूमि निपानवन्मृगवयोगवयोपचितं वनम् ॥ ६ ॥

कुत्ते और जाल वाले जन
जहाँ हुए पहलेही प्राप्त,
थी हय-योग्य भूमि जिसकी दृढ़,
मृग-विहङ्ग-गवयों से व्याप्त ।
दावानल-तस्कर-वियुक्त था जो
सलिलाशय-युक्त रुचिर,
ऐसे मृगया-योग्य विपिन में
किया प्रवेश भूप ने फिर ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ नभस्य इव त्रिदशायुधं कनकपिङ्गतडिद्गुणसंयुक्तम्।
धनुरधिज्यमनाधिरुपाददे नरवरो रवगेषितकेसरी ॥ ७ ॥

मनोव्यथा से रहित, मनुज-वर,
कोशलेश ने तदनन्तर,
करते हुए कुपित सिंहों को
कर टङ्कार शब्द खरतर।
चपला-रूपी प्रत्यञ्चा-युत
इन्द्र-धनुष को, भाद्र-समान,
स्वर्ण-समान पिङ्ग मौर्वी-युत
ग्रहण किया कोदण्ड महान ॥

तस्य स्तनप्रणयिभिर्मुहुरेणशावैर्व्याहन्यमानहरिणीगमनं पुरस्तात्।
आविर्बभूव कुशगर्भमुखं मृगाणां यूथं तदग्रसरगार्वितकृष्णसारम् ॥ ८॥

स्तन-प्रेमी शिशुओं से जिनकी
रुद्ध हुई गति बारं बार,
ऐसी रुचिर-दृगी मृगियों के
आगे शोभित भले प्रकार।
दाबे हुए दर्भ आनन में
गर्वित कृष्णसार वाला,
दिया दिखाई कोसलेश को
मृग-गण मद से मतवाला ॥

तत्प्रार्थितं जवनवाजिगतेन राज्ञा तूणीमुखोद्धृतशरेणविशीर्णपङ्क्ति।
श्यामीचकार वनमाकुलदृष्टिपातैर्वातेरितोत्पलदलप्रकरैरिवार्द्रैः॥ ९॥

शर खींचते हुए तरकस से
द्रुत-गामी हय पर आरूढ़,
देख दौड़ते उस नरपति को
हो कर "किंकर्त्तव्य विमूढ़"
पंक्ति भङ्ग कर उस मृग-गण ने
व्याकुल सजल दृष्टि द्वारा
मानो अनिलाकुल कमलों से
श्यामल किया विपिन सारा ॥

(रघुवंश से)

[असमाप्त

मैथिलीशरण गुप्त।

सचाई का शिखर।

इस देश में यद्यपि हज़ारों कहानियाँ गाँव गाँव में लोगों को आती हैं तथापि कोई उनका संग्रह नहीं करता। यह खेद की बात है। और देशवाले अपनी कहानियाँ, अपने ग्रामीण गीत और अपनी कहावतें एकत्र करते हैं। पर यहाँ के लोग अपनी मातृभाषा लिखने ही से घृणा करते हैं। कहानियाँ इकट्ठी करना तो दूर की बात है।

"माडर्न-रिव्यू" की अप्रेल ०७ की संख्या में शेख़चिल्ली के नाम से, एक जाट और बनिये की कहानी प्रकाशित हुई है। यह कहानी यद्यपि दर्शन और रसायन आदि शास्त्रों के रहस्यों से परिपूर्ण नहीं है, तथापि मनोग्राहक अवश्य है। सरस्वती के मनचले पाठकों के मनोविनोदार्थ उसे हम नीचे लिखते हैं।

एक गाँव में एक बनिया रहता था। वह आटे-दाल की दुकान करता था। दुकान बहुत बड़ी नहीं थी, तथापि आस पास के गाँवों के लोगों को उनकी सब आवश्यक चीज़ें मिल जाया करती थीं। एक दिन वह बनिया पास के एक क़सबे में दुकान के लिए कुछ चीज़ें ख़रीदने जा रहा था। राह में उसी गाँव के एक जाट से उसकी भेट हो गई। जाट भी उसी क़सबे को जा रहा था। महाजन को उसे क़र्ज़ की क़िस्त देनी थी। यह क़र्ज़ उसके परदादे ने अपनी स्त्री के क्रिया-कर्म्म में ख़र्च करने के लिए महाजन से लिया था। क़र्ज़ लिया तो सौ रुपया ही था; पर ब्याज दर ब्याज के मारे पचास वर्ष में वह बढ़ते बढ़ते एक हज़ार हो गया था। बेचारा जाट रात दिन इसी सोच में रहा करता था कि अपनी थोड़ी सी खेती की उपज से क़र्ज़ की उतनी भारी रक़म वह क्योंकर अदा कर सकेगा। इस समय भी वह उसी सोच में था। इतने में उसके साथी बनिया ने कहा, चौधरीजी जान पड़ता है तुम अपने सूदख़ोर महाजन को क़िस्त देने जा रहे हो। क्यों भाई, क्या कोई ऐसी जुगत नहीं हो सकती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे तुम्हारी यह बाप दादे की धरती उस मूज़ी के चंगुल से बच जाय। क्योंकि यदि कोई ज़ुगत न निकली तो तुम्हारे खेत पात महाजन देवता ज़रूर ही डकार जायंगे। उत्तर में जाट ने कहा, साह जी! तुम जानते ही हो मेरी हालत कैसी है। तिस पर भी मैं अपने परदादे के इस पुराने क़र्ज़ को अदा करने की नीयत रखता हूँ। पर मेरे खोटे नसीब से मुझे महाजन ऐसा मिला है कि वह पुराने क़र्ज़ के लेहाज़ से एक कौड़ी की भी रियायत नहीं करना चाहता। मेरी अक़्ल नहीं काम करती कि मैं अपनी थोड़ी सी खेती से इतना भारी क़र्ज़ अदा करके क्योंकर उसके हाथ से अपने खेत पात बिकने से बचा सकूँगा? इतना सुन कर बनिये ने कहा, चौधरीजी, घबराइए नहीं। इतने दुखी न हूजिए। भगवान ने नसीब में जो कुछ लिख दिया है सो अमिट है। आइए, कोई कहानी कहते चलें जिसमें रास्ता जल्द कट जाय और आपको क़र्ज़ की चिन्ता थोड़ी देर के लिए भूल जाय। जाट ने कहा, साहजी, बात तो आपने अच्छी कही। क़िस्मत के लिखे पर रोने से होता जाता तो कुछ नहीं, आँखें ज़रूर ख़राब हो जाती हैं। अच्छा है, राह की थकावट दूर करने के लिए कोई कहानी कहिए। आपकी कहानी पूरी हो जाने पर मैं भी एक कहानी कहूँगा। पर मैं कहानी सुनना और कहना इस शर्त पर मंज़ूर करता हूँ कि वह कहानी चाहे जितनी झूठ और असम्भव हो, हम में से कोई उसे झूठ या मनगढंत न कहे। जो उसे झूठ या मनगढंत कहे वह एक हज़ार रुपया दंड दे। बनिये ने उस शर्त को मंज़ूर कर लिया और कहानी शुरू की।

उसने कहा, चौधरीजी! तुम इस बात को तो जानते ही हो कि, मेरा परदादा बहुत बड़ा आदमी था; उसका घर रुपये पैसे से भरा हुआ था।

जाट—साहजी! आपने सच कहा।

बनिया—मेरा परदादा एक दफ़े चालीस जहाज़ लेकर चीन को गया। वहाँ उसने जवाहिरात का रोज़गार किया।

जाट—हाँ, साहजी, फिर—

ब०—वहाँ मेरा परदादा बहुत दिन तक रहा। उसका रोज़गार ख़ूब चटका। वहाँ से वह अनन्त धन और अनोखी अनोखी चीज़ें लाया। उन अनोखी चीज़ों में एक सोने की मूर्त्ति भी थी। उस मूर्त्ति को वहाँ के एक कारीगर ने ऐसी चतुराई से बनाया था कि उससे जो बात पूछी जाती थी, उसका उत्तर वह तुरन्त देती थी।

जा०—साहजी, आपने बहुत सच कहा।

ब०—जब मेरा परदादा घर आया तब गाँव के लोग उस मूर्त्ति से अपने बड़े बूढ़ों के हाल पूछने के लिए बहुत आया करते थे और उसके उत्तर से बहुत प्रसन्न होते थे। उस मूर्त्ति से कोई बात पूछने के लिए एक दिन तेरा परदादा भी मेरे घर आया। उसने पूछा कि संसार में सबसे अधिक बुद्धिमान् कौन लोग होते हैं? मूर्त्ति ने कहा "बनिया"। तब उसने पूछा कि सबसे अधिक मूर्ख कौन लोग होते हैं? मूर्त्ति ने कहा "जाट"। इस पर तेरे परदादा ने उस मूर्त्ति से पूछा कि मेरे घराने में सबसे बड़ा मूर्ख कौन होगा? उसने कहा "चौधरी लहरीसिंह" (हमारे जाटजी का यही नाम था)।

जा०—इसमें क्या सन्देह? साहजी, आप बिलकुल सच कह रहे हैं।

बनिये की इस बात से जाट के दिल पर बहुत गहरी चोट लगी। उसने अपने मन में ठान लिया कि इसके चाँईपने का उत्तर मैं भी ऐसा दूँगा कि मरते दम तक यह कभी न भूलेगा।

ब०—होते होते उस मूर्त्ति की बात राजा के कान तक पहुँची। राजा ने मेरे परदादा को बुलाकर अपना दीवान बनाया।

जा०—हाँ, साह जी आपने बहुत ठीक कहा, कहते जाइए।

ब०—मेरा परदादा बहुत दिन तक उस राजा का दीवान रहा। उसके बाद वह जगह मेरे दादा को मिली। मेरा दादा आरामतलब आदमी था। राज के काम-काज की उसे कुछ परवा न थी। उसकी इस लापरवाई को देख राजा ने उसे एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पागल हाथी के पाँव से बँधवा कर मरवाडालने का हुक्म दिया। पर जब मेरे दादा को उस हाथी ने देखा तब उस ने उसे सूँड़ से उठा कर अपनी पीठ पर बिठा लिया; मारा नहीं।

जा०—साह जी, आप सच फ़रमा रहे हैं, आगे।

ब०—जब राजा ने देखा कि हाथी ने मेरे दादा को नहीं मारा, तब उसका क्रोध जाता रहा। उसने प्रसन्न होकर मेरे दादा को उसकी जगह तो फिर देही दी, ख़िताब भी उसने कई एक दिये। मेरे दादा के मरने पर उसकी जगह मेरे बाप को मिली। पर मेरे बाप को बनिज का अधिक चाव था। इसलिए उसने नौकरी छोड़ दी। देश देशाँतर में बनिज व्यापार के लिए वह जाने आने लगा। दुनिया की सैर में उसने कई अजीब अजीब चीज़ें देखीं। कहीं उसने देखा कि लँगड़े आदमी नीचे को मुँह किये पेड़ों की डालों से लटक रहे हैं। कहीं काने और और कहीं विशालकाय देव इधर उधर फिर रहे हैं। इत्यादि इत्यादि। एक दिन एक मच्छर डँक मारने की घात में मेरे बाप के सिर पर गुनगुना रहा था। उस से मेरे बाप को बहुत तकलीफ़ होती थी। पर वह बड़े असमंजस में था कि क्योंकर उस से अपनी जान बचावे। तुम जानतेही हो कि हम लोग कितने दयालु होते हैं। छोटे से छोटे जीव को भी नहीं मारते।

जा०—साह जी, आप ने सच फ़र्माया।

ब०—तब मेरे बाप ने बहुत दुखी होकर उस मच्छर को दण्डवत किया और उससे माफ़ी चाही। मेरे बाप से इस प्रकार का आदर सत्कार पाकर उस मच्छर ने कहा—"आप जैसे भले साहजी को मैंने अभी तक न देखा था। मैं तुम्हारी कुछ भलाई करना चाहता हूँ"। इतना कह कर उसने ज्योंही अपना मुंह खोला त्योंही उसमें मेरे बाप ने निरे सोने का बना हुआ चमचमाता एक बड़ा भारी महल, उसके बड़े बड़े फाटक और असंख्य खिड़कियाँ आदि देखीं। उनमें से एक खिड़की में बैठी हुई मेरे बाप ने एक ऐसी मनोहारिणी युवती देखी जैसी उसने कभी न देखी थी। महल की डेवढ़ी पर एक देहाती गँवार उस राज-युवती से बात चीत कर रहा था। मेरा बाप बड़ा साहसी था। वह झट उस मच्छड़ के मुँह में कूद पड़ा। उसके पेट में जाकर अँधेरे में वहाँ वह इधर उधर हाथ पाँव चलाने लगा।

जा०—साहजी, ख़ूब कही, आगे चलिए।

ब०—कुछ देर बाद वह अंधकार जाता रहा। तब मेरे बाप ने उस राज-महल, उस राजकुमारी और उस देहाती गँवार आदि को फिर देखा। मेरा बाप साहसी सो थाही; उसने उस देहाती गँवार पर, जो कि तेरा बाप ही था, हमला किया। अधिक तूल कौन करे, वे दोनों उस मच्छड़ के पेट में एक साल तक बराबर लड़ते रहे। अंत में तेरे बाप ने हार मान कर उस राजकुमारीसम्बन्धी अपना हक़ छोड़ दिया। तब मेरे बाप ने उस कुमारी से शादी कर ली। वे दोनों उस राजभवन में बड़े ठाठ से रहने लगे। मैं वहीं पैदा हुआ। तेरा बाप वहीं दरबानी करता था। उसका काम रात दिन डेवढ़ी पर हाज़िर रहने का था। जब मेरी उम्र १५ वर्ष की हुई तब एक दिन उस राजभवन पर गरम पानी की ख़ूब वर्षा हुई। उस गरम पानी की वर्षा के साथ हम लोग एक उबलते हुए समुद्र में जा पहुँचे। अनेक आफ़तों को झेलकर हम चारों अर्थात् मेरा बाप, मेरी माँ, मैं, और तेरा बाप, समुद्र के किनारे जा पहुँचे। वहाँ जातेही हम लोगों ने देखा कि हम सब एक बावरचीख़ाने में हैं। वहाँ की भटियारन हम लोगों की तरफ़ बड़े तअ़ज्जुब की निगाह से देख रही थी। थोड़ी देर बाद जब उसे विश्वास हो गया कि हम लोग मानवीय जन्तु हैं, कोई देव-दानव नहीं, तब उसने कहा तुम भले आदमियों ने तो मेरा शोरबा बिगाड़ ही डाला था। जिस देग़ची में पानी उबल रहा था, उसमें घुस कर मुझे डराने से तुम्हारा क्या मतलब था? इस प्रकार उसकी ऊची नीची बातें सुनकर हम लोगों ने उससे माफ़ी माँगी। हम लोगों ने कहा, बीबी! भूल से हम लोग उस देग़ची में जा पड़े थे। कोई १५ वर्ष तक हम लोग एक मच्छड़ के पेट के भीतर एक महल में रहते थे। इसबात को सुनकर उस भटियारन ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताज्जुब से कहा, अरे ठीक है; अभी १५ मिनिट हुए एक मच्छड़ मैंने यहाँ देखा था। उसी मुए ने मुझे काटा था। उसके काटने से ही मेरे बदन पर यह चकत्ता हो आया है। मुझे जान पड़ता है कि उसने तुम लोगों को इस चकत्ते के भीतर ज़रूर रख दिया होगा। क्योंकि उसमें जब खुजलाहट पैदा हुई तब मैंने ज्यों ही उसे दबाया त्योंही उसमें से एक छोटी सी काली बूँद निकल कर देगची के खौलते हुए पानी में जा गिरी। मुझे स्वप्न में भी यह ख़याल नहीं हुआ था कि तुम सब उसी में थे। मेरे बाप ने कहा, बीबी! तुम्हें हम लोगों के यहाँ आने का सच्चा हाल मालूम होगया जान पड़ता है, सो हमारे पन्द्रह साल तुम्हारे १५ मिनिट के बराबर हुए! यद्यपि अपने शरीर की मुटाई आदि के लेहाज़ से मैं १५ वर्ष के लड़के कैसा जान पड़ता था, पर वास्तव में मैं था १५ ही मिनिट का। मुझे यह जान कर बड़ा आश्चर्य्य हुआ कि हम लोग उस मच्छड़ के पेट में सिर्फ़ पन्द्रह मिनट ही रहे; और उतने ही समय में मैं पैदा भी हुआ और इतना बड़ा भी हो गया। साथ ही मेरे और तेरे बाप ने अपनी अपनी उम्र के पन्द्रह पन्द्रह साल और बिताये। इस समय मेरी उम्र यद्यपि पच्चीस वर्ष के लगभग जान पड़ती है तथापि यथार्थ में मैं दस ही वर्ष का हूँ। मेरी इस बेहिसाब बाढ़ का सबब यही हो सकता है कि मैं १५ मिनिट तक उस मच्छड़ के जलते हुए पेट में रहा।

जा०—साहजी, आपका कहना बिलकुल सच है।

ब०—जब हम लोग बाहर आये तब मालूम हुआ कि किसी दूसरे मुल्क, अर्थात् इस गाँव, में पहुँच गये हैं। तब से मेरे बाप ने—जो इसके पहले राजा का दीवान था—दुकान करना शुरू किया और मैं भी उसे मदद देने लगा। वह राजकुमारी, जो मेरी मा थी, थोड़े दिन हुए मर गई। ये सब बातें तो तुम जानतेही हो। यही मेरी रामकहानी है।

जा०—साहजी, तुम्हारी रामकहानी बड़ी खरी है। वह रत्ती, बदाम, छदाम, भर भी झूठ नहीं। मेरी कहानी इससे कम सच्ची नहीं है; पर हाँ वह इतनी दिलचस्प अलबत्ते नहीं है। कहने की आवश्यकता नहीं, मेरी कहानी का एक एक अक्षर सच है। मन लगाकर सुनिए। लीजिए मैं शुरू करता हूँ।

इस गाँव में जितने आदमी रहते हैं, मेरा परदादा सबसे अधिक धनवान था। उसके रोबदार चेहरे, उसकी भलमंसी, उसके चाल-चलन, और उसके काम-काज को देखकर सब लोग उसकी हमेशा तारीफ़ करते थे। आस पास के गाँवों में उसका बड़ा आदर था। वह एक बहुत बड़े दबदबे का आदमी था। जात बिरादरी में सबसे ऊँची बैठक उसीको दी जाती थी। मजलिस में हुक्का भी सबसे पहले उसी के सामने आता था। उसमें बड़े बड़े गुण थे। उनके कारण लोग उसे बहुत चाहते थे। जब कोई किसी आफ़त में फँस जाता, मेरा परदादा, अपनी हैसियत के मुताबिक़, उसे मदद देता था। वह अपने हल-बैलों से ग़रीबों के खेत जुतवा देता था; अपने आदमी भेजकर उनके खेतों की फ़सल कटवा देता था। अपने घर आये हुए का आदर करने में वह कोई बात उठा नहीं रखता था। गाँव के लोगों के झगड़ों को वह आपस ही में तै कर देता था। गाँव में एक आदमी भी ऐसा न था जो उसके फ़ैसले को न मानता हो। सच तो यह है कि उसके हुक्म शाही हुक्मों से भी बढ़ कर माने जाते थे। ताक़त में वह रुस्तम और भीम से कम न था। इससे बदमाश आदमी उससे बहुत डरा करते थे। उसके डर के मारे न तो कोई सामाजिक नियम ही भंग करता था और न और ही कोई बुरा काम करता था।

ब०—वाह चौधरीजी वाह, आपने सच कहा।

जा०—एक दफ़े हमारे गाँव में बड़ा भारी अकाल पड़ा। वर्षा न हुई। गाँव की नदी और कुँए सब सूख गये। पेड़ों की पत्तियाँ पीली हो होकर झड़ गईं। प्यास और भूख के मारे गाँव के आस पास सैकड़ों जानवर मरने लगे। यही हाल पखेरुओं का भी था। जब मेरे परदादा ने देखा कि लोगों के पास खाने पीने के लिए कुछ नहीं रहा, इससे जो इनकी रक्षा का कोई उपाय जल्द न किया जायगा तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके भी मर जाने का डर है, तब उसने गाँव के सब जाटों को इकट्ठा करके कहा—"भाइयो! इसमें कोई शक नहीं कि इन्द्र भगवान हम लोगों से बहुत रूठ गये हैं। अगर वे न रूठे होते तो वर्षा ज़रूर होती। इस आफ़त से बचने के लिए हम लोग अगर अब कोई उपाय न करेंगे तो भूखों मर जाँयगे। जो तुम लोग मेरी सलाह मानो तो मैं अनाज की कमी न होने दूंगा। ६ महीने के लिए तुम लोग अपने अपने खेत मुझे दे दो। मैं उनमें अच्छी फ़सल पैदा करूंगा"।

सब जाटों ने एक स्वर से उत्तर दिया कि हम लोगों ने अपने अपने खेत आपको छः महीने के लिए दिये। यह सुनते ही मेरे परदादा ने अपनी कमर ख़ूब मज़बूती से कस कर उस एक हज़ार बीघे के गाँव को एक झटके में उठा कर अपने सिर पर रख लिया।

ब०—चौधरीजी, ख़ूब कही। बात बिलकुल सच है (इस असम्भव बात को सुन कर बनिया मन ही मन ख़ूब हँसा)।

जा०—मेरा परदादा उस गाँव को अपने सिर पर रख कर, पानी का पता लगाते इधर उधर फिरने लगा। जहां पानी बरसता वहीं उस गाँव को अपने सिर पर रक्खे हुए वह जा पहुँचता; और गाँव के खेतों और तालाबों में उस पानी को इकट्ठा कर लेता। इस प्रकार खेतों को पानी देकर उसने जाटों से कहा कि भाई, अब तुम लोग अपने अपने खेत जोत डालो और उनमें बीज बो दो। क़िस्सा कोताह, मेरा परदादा अपने सिर पर उस भारी गाँव को लेकर बादलों के पीछे देश देश फिरता रहा। ख़ूब जी जान होम कर उसने काम किया। उसके हुक्म को मान कर सब जाटों ने अपने अपने खेतों में बीज बोया। भगवान् की कृपा से उस साल इतनी अच्छी फ़सल हुई जितनी कभी न हुई थी। गेहूँ को ख़ूब पानी मिलने के कारण उनके पौधे इतने ऊँचे बढ़े कि उनके सिरे बादलों से टकराने लगे।

ब०—चौधरीजी, बात आपने सच कही।

जा०—गाँव वालों के सहित गाँव को सिर पर रक्खे हुए, जब मेरा परदादा दुनिया भर का चक्कर लगाकर अपनी जगह पर आ गया, तब उसने गाँव को वहाँ ज्यों का त्यों रख दिया। मेरे परदादे ने उस साल ख़ूब अनाज पैदा किया। वह समूचे गाँव का मालिक हो गया। उस साल गेहूँ के दाने भी ख़ूब बड़े बड़े हुए। एक एक दाना तेरे सिर के बराबर था।

ब०—चौधरी जी, आपने ठीक कहा; इसमें शक नहीं।

जा०—जब सब अनाज इकट्ठा किया गया तब वह इतना हुआ कि उसके रखने के लिए काफ़ी जगह तक न मिली। यह ख़बर जब और लोगों को मालूम हुई, तब दूर दूर से आदमी उसे ख़रीदने के लिए वहाँ आने लगे। अनाज बेचकर मेरे परदादा ने ख़ूब फ़ायदा उठाया। ग़रीबों को हज़ारों नहीं लाखों रुपए मेरे परदादा ने दिये। जो बहुत ही तँग हाल थे उनको उसने मुफ्त में बहुत सा अनाज दे डाला। जो ख़रीदने लायक़ थे उनसे यौंही थोड़ी सी क़ीमत ली।

जिस वक्त जाट अपनी कहानी यहाँ तक कह चुका ठीक उसी वक्त वे लोग क़सबे में पहुँच गये। वहाँ पहुँच कर जाट ने अपनी कहानी इस तरह आगे बढ़ाई।

उस वक्त तेरा परदादा बहुत तंग हाल था। उसे मेरे परदादा ने अनाज तोलने के लिए नौकर रख लिया।

ब०—चौधरी जी, सच कहते हो।

जा०—तेरा परदादा रातदिन अनाज तौला करता था। उसकी हालत उस वक्त बहुत ही बुरी थी। उसे देख कर रहम आता था। इसके सिवा वह बेवक़ूफ़ इतना था कि तौलने में ग़लतियाँ भी बेहिसाब किया करता था। इससे मेरे परदादा को उसकी गोशमाली ख़ूब करनी पड़ती थी। कभी कभी नहीं, रोज़।

ब०—चौधरी जी, सच है।

इतने में वे लोग उस महाजन की दुकान पर जा पहुँचे, जिसे जाट क़र्ज़ की क़िस्त देने गया था। दुकान पर जाकर उन लोगों ने देखा कि महाजन अपनी गद्दी पर बैठा है। उन्होंने उससे 'राम राम' की और वहीं नीचे बैठ गये। जाट ने महाजन से बिना बात चीत किये ही, कहानी आगे शुरू कर दी। उसने कहा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक रोज़ नवाब सआदतअलीख़ां की किसी बात के जवाब में इनके मुंह से एक अनुचित शब्द निकल गया। इस पर नवाब साहब मन ही मन सैयद इन्शा पर नाराज़ हो गये। इन्शा, नवाब को उत्तमोत्तम कविता और लतीफ़े सुनाया करते थे। एक दिन आपने बहुतही अच्छा लतीफ़ा सुनाया। सुन कर नवाब साहब ने इन्शा की बड़ी तारीफ़ की। इस पर इन्शा मूंछों पर ताव देकर बोले कि, हुज़ूर के इक़बाल से क़यामत तक ऐसीही बातें कहे जाऊंगा, जो न देखी हों न सुनी हों। सआदतअली नाराज़ थे ही। कहा, बहुत नहीं रोज़ दो लतीफ़े सुना दिया करो। पर ऐसे हों जो न देखे हों, न सुने हों। यदि इसमें फ़र्क़ पड़ा तो ख़ैर न होगी। अब इन्शा पर आफ़त नम्बर १ आई। ये बहुत हैरान हुए। रोज़ दो लतीफ़े, नये, कहां से लावें? ख़ैर कुछ दिन तक किसी तरह गुज़रा; लोगों से नई नई बातें पूंछ पांछ कर, उनमें नमक मिर्च मिलाकर, काम चलाया। एक दिन आप किसी के यहां मिलने गये। इधर नवाब ने बुला भेजा। आप मकान पर न मिले। नवाब ने हुक्म दिया, आज से किसी और के यहां न जाया करो। यह आफ़त नम्बर २ हुई। ईश्वर भी इनसे रूठ सा गया। इनका जवान लड़का मर गया। आफ़त नम्बर ३ हुई। इस सदमे से इनके दिमाग़ में फ़र्क़ आ गया। एक दिन सआदतअलीख़ां की सवारी इनके मकान के पास से निकली। इन्होंने नवाब को सरे राह सख्त, सुस्त कहा। नवाब ने इनकी तनख़्वाह बन्द कर दी। यह आफ़त नम्बर ४ हुई। कुछ दिनों बाद इनकी दशा बहुतही बिगड़ गई। विक्षिप्तता भी बढ़ गई और तंगदस्ती भी। इनके एक दोस्त का कथन है कि जहां हाथी झूमते थे वहां ख़ाक उड़ने लगी और कुत्ते लोटने लगे। इनकी बीवी के पास ओढ़ने को चादर तक न रही। पागलपने की हालत में मकान के भीतर राख के एक ढेर के पास, नंगे बदन, पड़े रहने की इन्हें नौबत आई। जो इन्शा अपनी कविता की बलन्दी से आसमान को कँपाते थे और खुदही अपनी कविता के विषयमें गर्वोक्तियाँ कहते थे, मरने के समय उनकी बड़ीही दुर्दशा हुई।

बिगड़े दिनों में एक बार मैले कुचैले, फटे पुराने, कपड़े पहने, गले में एक तोबड़ा लटकाये, हाथ में एक छोटा सा हुक्का लिये सैयद इन्शा एक मुशायरे में पहुंचे। मुशायरे में जाना शायद यह इनका आख़िरी था। वहां इन्होंने सब शायरों के इकट्ठा होने के पहलेही, थैले से निकाल कर एक ग़ज़ल पढ़ी। उसके कई मिसरे बहुतही हृदय-द्रावक हैं। देखिए—

कमर बाँधे हुए चलने को यां सब यार बैठे हैं।
बहुत आगे गये बाक़ी जो हैं तैयार बैठे हैं॥
न छेड़ ए निगहते बादे बहारी राह लग अपने।
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेज़ार बैठे हैं॥
नजीबों का अजब कुछ हाल है इस दौर में यारो।
जहाँ पूछो यही कहते हैं हम बेकार बैठे हैं॥
भला गर्दिश फलक की चैन देती है किसे इन्शा।
ग़नीमत है कि हमसूरत यहाँ दो चार बैठे हैं॥

इस ग़ज़ल को पढ़ कर इन्शा तो चले गये, पर सुनने वालों का जी भर आया और बड़ी देर तक मुशायरे में सन्नाटा छाया रहा।

इँगलैन्ड में भी कई एक कवि और ग्रंथकार ऐसे हो गये हैं जिनको इन्शाही की तरह आफ़तें झेलनी पड़ी हैं।

एक दिन सबेरे हम एक सूनसान सड़क पर घूम रहे थे। पासही एक गाँव था। उसमें एक मनुष्य "सबै दिन नहीं बराबर जात" यह पद बड़े ही लय से गा रहा था। उसने चित्त पर बड़ा असर किया। उसे सुनकर कालिदास की—

"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण"

और माघ की—

"हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः"

उक्ति स्मरण हो आई। सैयद इन्शा के अन्तिम जीवन की दुःखपूर्ण घटना भी याद आ गई। इसी से यह नोट लिखना पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक तरुणी का नीलाम।

मुइतरी नाम की एक वेश्या ने, जो कविता भी करती थी, एक बार अपने दिल के विषय में एक पद्य कहा था। जहां तक हमें याद है, वह पद्य यह था:—

ख़रीदारो लो चल के बाज़ार देखो।
दिले मुश्तरी अब बिका चाहता है॥

इस वारवनिता ने तो अपना दिलही बेचना चाहा था; पर अमेरिका की ख़ूब पढ़ी लिखी एक नौ जवान कुमारिका ने अपने सारे शरीर को, मन और प्राण सहित, नीलाम कर देने का इश्तहार दिया है। वह युवती वाशिंगटन की रहनेवाली है। शिकागो में वह टाइपराइटिङ्ग का काम करती है। मरते दम तक सर्व श्रेष्ठ "बोली" बोलने वाले की दासी होने का इसने विचार किया है। वह अपने को नीलाम करना चाहती है। इसका कारण आप उसी के मुँह से सुनिए:—

"इस नीलामी नाटिस को पढ़ कर लोगों को आश्चर्य्य होगा। परन्तु आश्चर्य्य करने का कोई कारण नहीं। क्योंकि और तरुण लड़कियां भी तो अपने को बेच कर लोगों की ग़ुलामी करती हैं। हां, उनकी ग़ुलामी कुछ कुछ दूसरी तरह की ज़रूर है। पर है वह भी पूरी पूरी ग़ुलामी। ग़ुलामी के सिवा और कुछ नहीं। कोई कोई प्रति सप्ताह तनख़्वाह पाने के परिवर्तन में, अपने को बेच डालती हैं; कोई कोई पतिप्राप्ति के परिवर्त्तन में। पति को मालिक बनाकर उसके आधीन रहना क्या ग़ुलामी नहीं? औरों की नौकरी करना क्या ग़ुलामी नहीं? ये बातें सर्व साधारण के सामने प्रकाश-रूप से नहीं होतीं। हर एक नौ जवान लड़की चुपचाप ग़ुलामी स्वीकार कर लेती हैं। यही बात मैं प्रकाश-रूप से करना चाहती हूं। मैं सब लोगों को सूचना देकर अपने को नीलाम करने जाता हूं। इस तरह नीलाम करने से मुझे आशा है मेरी क़ीमत लोग कुछ अधिक लगावेंगे। अतएव खुल्लम खुल्ला नीलाम करने में हानि ही क्या है?

"मेरा परलोकवासी पिता सरकारी नौकर था। मुझे लिखाने, पढ़ाने और शिक्षा देने में उसने ३०,००० रुपये ख़र्च किये। इतनी लागत से मैं जवान होकर नीलाम होने के लायक़ हुई हूं। पर यद्यपि मैं जी जान होम कर "टाइप राइटिङ्ग" का काम करती हूं, तथापि ३० रुपये हफ्ते से अधिक मुझे तनख़्वाह नहीं मिलती। मेरी तैयारी में जो मूल धन लगाया गया है। उस पर यह ५ फ़ी सदी के हिसाब से भी तो नहीं पड़ता! अब मैं यह जानने के लिए उत्कंठित हो रही हूं कि ग़ुलामों के मालिक अमेरिका निवासी धनवान् लोग, ज़ियादहसे ज़ियादह कितनी क़ीमत देकर ग़ुलाम बनाने के लिए अमेरिका ही की एक तरुण कुमारी को ख़रीद कर सकते हैं। मैं जानना चाहती हूं कि इस तरह की ग़ुलाम कुमारिकाओं का बाज़ार भाव क्या है। जब कोई आदमी किसी चीज़ को ख़रीद करना चाहता है तब वह उसके गुणों का वर्णन भी सुनना चाहता है। बहुत अच्छा, जब मैं अपना नीलाम करने पर उतारू हूं, तब अपना वर्णन भी अपने ही मुंह से क्यों न कर दूं"। सुनिए—

"मैं तरुण हूं, समझदार हूं, पढ़ी लिखी हूं, शिष्ट हूं, व्यवहारज्ञ हूं, सच बोलती हूं, विश्वास-पात्र हूं, न्यायनिष्ठ हूं, काव्यरसज्ञ हूं, तत्वज्ञ हूं, उदार हूं—सब से बड़ा गुण मुझमें यह है कि मैं स्त्रीत्व के सर्वोच्च गुणों से विभूषित हूं। मेरे भूरे नेत्र बड़े बड़े हैं। मेरे ओठों से सरसता टपकती है। मेरे दाँत अनार के दाने हैं। मैं अपने को सुन्दरी तो नहीं कह सकती, पर मेरी शकल सूरत बहुत ही लुभावनी है। मेरा चरित्र ख़ूब उच्च और दृढ़तापूर्ण है। हाव भाव भी मुझमें कम नहीं हैं। दिल मेरा छोटा नहीं, बहुत बड़ा है। कभी कभी मैं बहुतही विनोदशील हो जाती हूं। मैं ख़ुश मिज़ाज होकर अपनी प्रतिष्ठा का हमेशा ख़याल रखती हूं। पढ़ने लिखने में मैं ख़ूब दिल लगाती हूं। मैं धार्म्मिक तो हूं, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म्मान्ध नहीं। मैं सीना तो नहीं जानती; पर पहनने के कपड़े बहुत अच्छे काट सकती हूँ। और काटना नहीं मुशकिल काम है। दुकान में रक्खे हुए भले बुरे मांस की मुझे पहचान नहीं; पर खिलाने पिलाने में मैं बड़ी होशियार हूँ। मेहमानों को ख़ुश करना मैं बहुत अच्छा जानती हूँ। हिसाब लगाने में मैं कच्ची हूँ; पर अच्छे अच्छे क़िस्से कहना मुझे ख़ूब आता है"।

यह इस अमेरिकन तरुणी के इश्तहार का कुछ अंश है। इसने अपने इश्तहार में यह भी लिख दिया है कि, कौन सर्वश्रेष्ठ बोली बोलने वाला है, इसका फ़ैसला करना सर्वथा मेरेही हाथ में है। मैं जिसे चाहूँगी उसी की लगाई हुई कीमत क़बूल करके उसके हाथ अपने को बेच दूंगी। सुनते हैं बहुत लोगों ने इस कुमारी के साथ शादी करने की इच्छा ज़ाहिर की है। ये सब सभ्यता के चोचले हैं। देखते जाइए, यूरप और अमेरिका के सभ्य-समाज में क्या क्या गुल खिलते हैं।

मृगनैनी बनने का सुयोग।

पति—मैंने सुना है कि मिर्ज़ापुर के डाकृर ओमेरा ने आँख बनाने की क्रिया में एक अद्भुत शस्त्रोपचार (Operation) कर दिखाया है।

स्त्री—कैसा शस्त्रोपचार किया है, उसका कुछ वर्णन भी तो कीजिए।

पति—मैंने सुना है कि एक अंधी स्त्री की ख़राब आँखें निकाल कर फेंक दीं और उनकी जगह एक कुत्ते की आँखें ऐसी कुशलता के साथ बिठाल दीं कि चन्द दिनों में वह स्त्री देखने लगी।

स्त्री—निस्सन्देह, यह तो बड़ी अद्भुत कारीगरी है। ऐसे डाकृर को तो धन्वन्तरि का अवतार कहना चाहिए। मिर्ज़ापुर के लोग बड़े भाग्यवान् हैं, जिनके शहर में एक ऐसे उत्तम डाकृर रहते हैं।

पति—अजी भाग्यवान् तो केवल वहाँ के महाजनों को कह सकते हैं जो डाकृर साहब को अपने घर पर बुला कर दवा करा सकते हैं। मामूली आदमी तो सिविल सर्जन की फ़ीस और उनकी क़ीमती दवाओं का ख़र्च ही नहीं गवारा कर सकते।

स्त्री—अजी जो ग़रीब हैं वे अस्पताल में जाकर डाकृर साहब से दवा करा सकते हैं।

पति—अस्पताल में तो प्रतिदिन इतने रोगी जाते हैं कि सिविल सर्जन के लिए सब रोगियों को देखना कठिन हो जाता है।

स्त्री—यदि सिविल सर्जन सब ग़रीब रोगियों को नहीं देख सकते तो उन्होंने उस ग़रीब अंधी औरत की आँखें कैसे बनाईं?

पति—अजी वह औरत क़िस्मत की अच्छी थी; उसकी आँखें बन गईं। अब यदि शहर के सब अंधे और अंधियाँ जाकर अपनी आँखें बदलवाना चाहें तो क्या डाकृर साहब उनकी दरख़्वास्त मंजूर कर लेंगे?

स्त्री—क्यों नहीं, वह प्रतिदिन एक एक करके सबकी आँखें बना सकते हैं।

पति—तो तुम भी क्यों नहीं जातीं? तुम्हारी आँखें ज़रा छोटी हैं; इन्हें बड़ी करा लावो।

स्त्री—भाड़ में जायँ बड़ी बड़ी आँखें। क्या बड़ी बड़ी आँखें लेकर मैं अपने को आफ़त में डालूंगी। देखो, बंगालिनों की आँखें बड़ी बड़ी होती हैं। वे बेचारी आज कल कैसी मुसीबत में पड़ी हैं। यदि अबला जाति की पूर्णरूप से रक्षा करनेवाली महारानी विक्टोरिया जीती होतीं तो कदाचित् मैं भी अपनी आँखें बड़ी कराने की हिम्मत करती। आजकल की हलचल में तो मैं ऐसी हिम्मत नहीं कर सकती। फिर यदि बड़ी आँखों से आप मुझे कुछ अधिक बड़े देख पड़ते तो मैं अपने को ख़तरे में भी डालना पसंद करती। व्यर्थ कष्ट उठाने से क्या लाभ?

पति—अगर तुमको मैं बड़ा न देख पड़ूंगा तो न सही; तुम तो मेरी आँखों में बड़ी हो जावगी। तुम्हारे कानों तक फैले हुए बड़े नेत्रों को देखकर मेरे नेत्र तो आनन्दित होंगे। तुम्हारे नेत्ररूपी कमलों को देखकर मेरे चक्षुरूपी चंचरीक तो प्रफुल्लित रहेंगे और रहीम का यह दोहा चरितार्थ होता रहेगा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यों रहीम सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, अँखियन को सुख होत॥

स्त्री—बस आपको इन्हीं बातों का हर वक्त ध्यान रहता है। अच्छा हुआ जो इस साल आप कांग्रेस में कलकत्ते नहीं गये, नहीं तो वहां से आपका लौटना कठिन हो जाता। भला यह तो बतलाइए कि डाकृर साहब ने उस अंधी औरत के नेत्रकूपों में कुत्ते के नेत्र क्यों लगाये, क्या किसी और अच्छे जानवर की आँखें न मिल सकती थीं?

पति—अजी कुछ अँगरेज़ हिन्दुस्तानियों को कुत्ते के समान समझते हैं। इसलिए डाकृर साहब ने हिन्दुस्तानी औरत की आँखों में कुत्ते ही की आँखें लगाना मुनासिब समझा होगा।

स्त्री—अङ्गरेज़ लोग शायद हिन्दुस्तानियों को इस कारण कुत्ते समझते हैं कि वे हमेशा से स्वामि-भक्त रहे हैं। और स्वामिभक्ति है भी अच्छी चीज़। क्योंकि बिना इसके स्वतंत्र देशों में भी काम नहीं चल सकता। जब परमेश्वर ही बिना भक्ति के नहीं रीझता तब मनुष्य कैसे रीझ सकता है। यह तो हुई हिन्दुस्तानियों की बात। अब यह बतलाइए कि यदि कोई फ़िरङ्गिन अंधी हो जाय तो डाकृर साहब उसकी आँखों की जगह किस जानवर की आँखें लगावेंगे?

पति—फ़िरङ्गिन के लिए तो बिल्ली की आँखें अच्छी होंगी।

स्त्री—बिल्ली की आँखें तो छोटी होती हैं; वे काहे को फ़िरङ्गिनों को पसन्द आवेंगी?

पति—अजी अँगरेज़ों को नीली ही पीली आँखें पसन्द होती हैं; इसलिए वे उस रङ्ग की छोटी आँखें भी पसन्द कर लेंगे।

स्त्री—मैंने सुना है कि इटलीवासी फ़िरङ्गी काले नेत्र पसंद करते हैं।

पति—तो उनके लिए डाकृर साहब कोई काली बिल्ली ढूंढ़ लेंगे।

स्त्री—अजी आप तो हँसा करते हैं, क्या काली बिल्लियों के नेत्र काले होते हैं?

पति—अजी फिर मैं क्या बतलाऊँ; जो डाकृर-साहब को सूझेगा करेंगे। अगर मुझ से पूछा जाय तो मैं इटली, रूम, अरब वग़ैरह की स्त्रियों के लिए ऊँटनी की आँखें लगाने की राय दूँगा। क्योंकि उस की आँखें बड़ी कँटीली और प्यारी मालूम होती हैं और उन मुल्कों में ऊँटनियाँ इफ़रात से मिल भी सकती हैं। जो फ़िरङ्गी लम्बी गर्दनवाली रमणी पसंद करते हैं उनके लिए तो ऊँटनी की गर्दन एक वाञ्छनीय वस्तु है और संभव है कि जिस रमणी के ऊँटनी की आँखें लगाई जायँ उसकी गर्दन भी कुछ दिनों में लम्बी हो जाय।

स्त्री—क्यों नहीं, और वह कुछ दिनों में बिना पानी पिये रेगिस्तान में दौड़ने भी लगे।

पति—तो क्या जो स्त्रियाँ मृगाक्षी कहलाती हैं वे जङ्गलों में घास चरती फिरती हैं?

स्त्री—आपकी बातों से तो ऐसाही मालूम होता है। अच्छा अब इन बातों को जाने दीजिए। मुझे मृगाक्षी शब्द सुनकर यह बात याद आई कि हिन्दुस्तानी स्त्रियों की आँखों में डाकृर साहब मृगी की आँखें क्यों नहीं लगाते? हिन्दुस्तानी काव्यों में तो जहाँ देखो वहाँ मृगनैनी ही स्त्रियों की प्रशंसा है, और सब सुन्दर स्त्रियों को यही पदवी पाने की आकांक्षा रहती है।

पति—अगर तुम्हारी भी यही इच्छा हो तो मैं डाकृर साहब से तुम को भी मृगनैनी बना देने की दरख़्वास्त करूँ। मिर्ज़ापुर के बड़े अस्पताल के पास होगन साहब ने एक बाग़ में कई मृग और मृगी पाल रखी हैं। इससे मृगी ढूढ़ने के लिए हमलोगों को कहीं दूर भी न जाना पड़ेगा।

स्त्री—अजी होगन साहब अपनी मृगी काहे को देने लगे।

पति—अजी वे न देंगे तो मैं दस बीस रुपये ख़र्च करके तुम्हारे लिए किसी दूसरी जगह से एक मृगी मँगा दूँगा। और जब यह प्रथा चल निकलेगी तब तो बधिक लोग मृगी लिए गली गली पुकारते और यह दोहा कहते फिरेंगे—

मृगनैनी यदि बनन है, लो यहि मृग के नैन।
जाकी कोरन में बसै, धनुसायक युत मैन॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फिर जब हिन्दू और मुसल्मान-रमणियें की देखा देखी कोई हिन्दुस्तानी ईसाइन भी कोई मृग या मृगी ख़रीद लेगी और डाक्टर साहब को अपने मकान के पास से जाते देखेगी तो पुकार कर कहेगी "ओमेरा डाक्टर, ओमेरा डाक्टर! मुझे भी मृगनैनी बनाता जा और अपनी फ़ीस लेता जा"। फिर तो थोड़े ही दिनों में मिर्ज़ापुर में झुण्ड की झुण्ड मृगनैनी सुन्दरियाँ देख पड़ने लगेंगी, और मृगलोचनी बनने की लालसा से दूर दूर के नगरों से नवयौवना चञ्चला स्त्रियाँ चौकड़ी भरती चली आवेंगी।

भगवानदास।

पुस्तक-परीक्षा।

भारतभ्रमण। इस पुस्तक को देखकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। हिन्दी में यह एक हीरक रत्न है। इसे भेजने की कृपा बाबू साधुचरणप्रसाद, मिश्र पोखरा, बनारस, ने की है। आपने इसे बड़े खोज से लिखा है। इसके पाँच भाग हैं। पृष्ठ-संख्या सबकी कोई ढाई हज़ार है। मूल्य छ रुपये छ आने है, जो पुस्तक की उपयोगिता को देखते कुछ भी नहीं है। इसमें प्रायः सारे भारतवर्ष के प्रसिद्ध प्रसिद्ध तीर्थ, शहर, मन्दिर और दर्शनीय स्थलों का वर्णन है। सब मिला कर कोई ७०० स्थानों का वर्णन है। तीर्थों और प्राचीन स्थानों के वर्णन में स्मृतियों, पुराणों और महाभारत, रामायण आदि ग्रन्थों से मदद ली गई है। जगह जगह पर बड़े बड़े शहरों के नक़शे दिये गये हैं। प्रसिद्ध प्रसिद्ध मन्दिरों और इमारतों के चित्र भी लगाये गये हैं। इसके सिवा भारतवर्ष की मुख्य मुख्य लिपियों के नमूने हैं। यही नहीं, अशोक आदि प्राचीन राजाओं के समय के कई शिलालेखों की नक़लें भी हैं। नदियाँ, पर्वत, आबादी और हर एक प्रान्त की रीति-रस्मों का भी वर्णन इस पुस्तक में है। थैकर की डाइरेक्टरी, आरकियालाजिकल रिपोर्ट्स और हर एक ज़िले और प्रान्त के गैज़ेटियर में जो बातें हैं उनका विशेषांश अकेले इस भारतभ्रमण को देखने से मालूम हो सकता है। रेल के बड़े बड़े जंकशन से जो रेल की लाइनें गई हैं उनका उल्लेख और उन पर जो बड़े बड़े स्थान हैं उनकी दूरी भी इसमें दी गई है। रचयिता ने इस पुस्तक को सर्वोपयोगी बनाने में कोई कसर नहीं की। पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी गई है। जिन्हें मक़दूर हो उनको इसकी एक एक प्रति अवश्य रखनी चाहिए। विशेष करके पुस्तकालयों में तो इसे ज़रूर ही स्थान मिलना चाहिए।

❋

पत्रप्रबन्धमञ्जरी। पण्डित अम्बिकाप्रसाद तिवारी, हेड मास्टर, तहसीली स्कूल शिवराजपुर, ज़िले कानपुर की बनाई। मूल्य ५ आने। इस सवा सौ पृष्ठ की पुस्तक में चालीस पचास चिट्ठियाँ हैं। चिट्ठियों का मज़मून उत्तम है। भाषा सरल है। पुस्तक लड़के और लड़कियाँ दोनों के पढ़ने लायक़ है। संयुक्त और मध्य-प्रान्तों के शिक्षा-विभागों ने इसे इनाम देने के लिए नियत की गई पुस्तकों की नामावली में रक्खा है। अपर प्राइमरी और वर्नाक्युलर फ़ाइनल के विद्यार्थियों के सिवा औरों के लिए भी यह पुस्तक लाभदायक है।

❋

नागरी-लिपि-पुस्तक। मसवानपुर (कानपुर) निवासी पण्डित गौरीशङ्कर भट्ट कृत। दाम १ आना। भट्ट महाशय हिन्दी-लिपि-विषयक दो पुस्तकें प्रकाशित करके बड़ा नाम पाचुके हैं। अब आपने हिन्दी-लिपि की यह "कापी-बुक" तैयार की है। इसमें देवनागरी लिखने का अभ्यास करनेवाले लड़के लड़कियों के लिए "खड़ी, पड़ी और तिरछी रेखाएं तथा अक्षरों के अंश और उनसे बने हुए कुछ अक्षर दिये गये हैं। इन्हीं के योग से वर्णमाला के सब अक्षर बनाये जा सकते हैं" अतएव यह कापी-बुक बहुत उपयोगी है।

❋

ओषधियाँ। मऊ (वाज़िदपुर) ज़िला दरभङ्गा के पण्डित जगेश्वरप्रसाद नन्दे ने एक डिबिया मंजन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजी है। मंजन ख़ुशबूदार है। नन्दे महाशय कहते हैं आपने इसे जंगली जड़ी बूटियों ही से बनाया है। दाम फ़ी डिबिया साढ़े तीन आने। आपने हिक्काघ्नी बटिकायें भी एक शीशी में भेजी हैं। आप कहते हैं गोली मुँह में रखने से कैसी ही हिचकियाँ क्यों न आती हों, फ़ौरन बन्द हो जाती हैं। मूल्य एक शीशी का आठ आने।

❋

कर्पूरस्तवः। प्राभाकरी कम्पनी, रामकटोरा, बनारस द्वारा प्रकाशित। मूल्य ४ आने। यह काली का प्रसिद्ध प्राचीन स्तोत्र है। बड़ी सुन्दरता और शुद्धता से छापा गया है। पण्डितराज रङ्गनाथ की टीका सहित है। टीका विस्तृत है। टीका में बीच बीच तन्त्रों के प्रमाण भी दिये हुए हैं। पुस्तक के आरम्भ में काली का एक चित्र भी है।

❋

दादाभाई नौरोजी का सचित्र चरित। भारतजीवन के सम्पादक बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्त कृत। मूल्य डेढ़ आना। दादा भाई के चरित से सम्बन्ध रखनेवाली मुख्य मुख्य सभी बातें इसमें आ गई हैं। इस पुस्तक के पढ़ने वालों को थोड़े ही में दादाभाई की गुणावली का बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है।

❋

श्रीनन्दीश्वरचित्रम्। एक काग़ज़ पर नन्दीश्वर का चित्र है। उसमें महिम्न स्तोत्र लिखा हुआ है। आध आने का टिकिट पाने से बाबू भगवानबख़्शसिंह, राजकटारा, पोस्ट गौराजमऊ, ज़िला सुलतानपुर, मुफ़्त भेजते हैं। उन्हीं ने यह चित्र बनाया है।

❋

उनासिर क़दीम व जदीद। लेखक मुंशी तुराबअली, इन्स्पेक्टिंग् पण्डित, स्कूल सदर पुरनियाँ। उर्दू की पुस्तक है। इसमें इस बात के साबित करने की चेष्टा की गई है कि ख़ाक, बाद, आब व आतश ही से दुनिया क़ायम है। जो कुछ संसार में देख पड़ता है उसके अस्तित्व का आधार यही चार तत्व हैं। आज कल के विद्वानों ने जो और अनेक तत्व ढूँढ निकाले हैं वे तत्वही नहीं। ये बातें कहाँ तक सही हैं सो रसायन शास्त्र के आचार्य्य ही जानें। पर अर्वाचीन रसायन-विज्ञान के सिद्धान्त ग़लत, और प्राचीन तत्वज्ञानियों के सिद्धान्त सही, यह बात अँगरेज़ी-विद्या के विद्वानों को खटकनेवाली ज़रूर है। भाषा इस पुस्तक की बे तरह क्लिष्ट है। फ़ारसी, अरबी शब्दों की भरमार अधिक है। उर्दू के शब्दों की कम।

विज्ञप्ति।

प्रिल की सरस्वती में पाठकों ने "सभा की सभ्यता" नामक लेख पढ़ा होगा। काशी की नागरीप्रचारिणी सभा की अन्तरात्मा, बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०, उसके उत्तर के नाम से, एक विकत्थना-बहुल लेख भारतमित्र में लिख रहे हैं। आपने उसमें बेतरह ऊल जलूल बातें कही हैं। अतएव आपके इस प्रलापरोग की हमें उग्र-चिकित्सा करना है और यह दिखलाना है कि जो मनुष्य औरों पर, बिना बिचारे, बिना प्रमाण दिये, बड़े से भी बड़े दोषारोप करते नहीं सकुचता वह ख़ुद किस क़िमाश का है और उसकी बातों और दलीलों में कितना तथ्यांश है। यह चिकित्सा "हिन्दी-बङ्गवासी" में "शीलनिधानजी की शालीनता" के नाम से शुरू हो गई है। पाठक, वहीं उसे पढ़ सकते हैं। १२-६-०७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती।

भाग ८] जुलाई, १९०७ [संख्या ७

चित्रदर्शन।

मय नाम के एक शिल्पकार ने खाण्डवप्रस्थ में युधिष्ठिर के लिए एक अद्भुत महल और सभागृह बनाया। राजसूय-यज्ञ के समय दुर्योधन खाण्डवप्रस्थ गया और पाण्डवों का वैभव देख ईर्ष्या से जल उठा। महल में ऐसी अजीब कारीगरी थी कि जहाँ जल था वहाँ अजनबी आदमी को थल मालूम होता था और जहाँ थल था वहाँ जल। दुर्योधन की भी यही दशा हुई। जल को उसने थल समझा। फल यह हुआ कि वह पानी के हौज़ में गिर पड़ा और उसके कपड़े भीग गये। जहाँ थल था उसने समझा जल भरा है। इससे अपना जामा ऊपर को उसने उठा लिया कि कहीं भीग न जाय। इन घटनाओं पर पाण्डवों ने दुर्योधन की खूब दिल्लगी उड़ाई। दुर्योधन के पिता धृतराष्ट्र अन्धे थे। इस बात को लक्ष्य करके भीम ने कहा, यार, अन्धे के अन्धाही होता है। इस विषाक्त विनोद से दुर्योधन को मर्मान्तक वेदना हुई। खाण्डवप्रस्थ से लौटकर उसने पाण्डवों से बदला लेना चाहा। अपने मामा शकुनि की सहायता से युधिष्ठिर के साथ जुआ खेल कर उसने उनका सारा राजपाट जीत लेने की ठानी।

इस पर धृतराष्ट्र और विदुर ने उसे बहुत कुछ समझाया; पर दुर्योधन ने उनकी एक न सुनी। युधिष्ठिर को जुवा खेलने के लिए बुलावा दिया गया। युधिष्ठिर ठहरे क्षात्रधर्म्म के पूरे पण्डित। विपक्षियों के बुलाने पर जुवा खेलने न जाना उन्होंने कायरपन समझा। इससे वे गये। शकुनि बड़ा जुआरी था। उसीने दुर्योधन की तरफ़ से पाँसे उठाये। जुवा होने लगा। शकुनि के कौशल से युधिष्ठिर हारने लगे। राज, पाट, धन, धान्य, घर, द्वार, दास, दासी, भाई सब धीरे धीरे हार गये। तब वे द्रौपदी को दाँव पर लगाने के लिए प्रचारण किये गये। उसे भी उन्होंने लगा दिया और हार गये। द्रौपदी दुर्योधन की हो गई। दुर्योधन ने उसे सभा में बुला भेजा। वह उस समय एकवस्त्रा थी; रजस्का थी। इससे नहीं आसकी। इस पर दुर्योधन का भाई दुःशासन उसे ज़बरदस्ती पकड़ लाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा में धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, कर्ण, आदि सब कौरव बैठे थे। द्रौपदी ने आकर उनसे अनेक प्रकार की बातें कहीं, बहुत कुछ समझाया बुझाया। पर किसी कौरव को उस पर दया न आई। कर्ण ने उलटा जले पर नमक छिड़का; द्रौपदी को "बन्धकी" कहा। आपने फ़रमाया कि ऐसी स्त्री को सभा में एकवस्त्रा अवस्था ही में नहीं, किन्तु विवस्त्रा अवस्था में भी लाना अनुचित नहीं। अच्छा, दुःशासन, जिस एक वस्त्र का यह बार बार नाम लेती है उसे भी उसके बदन से खींच लो। यह सुनकर पाण्डवों को अपार सन्ताप हुआ। क्रोध से उनका शरीर जलने लगा। पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर द्रौपदी को हार चुके थे। इससे करही क्या सकते थे। वचनबद्ध थे। अधोवदन बैठे ही रहना पड़ा।

दुरात्मा दुःशासन उठा। उसके उठतेही द्रौपदी कँप उठी। उसने समझा इन अधर्मियों की—इन पतितों की—सभा में मेरी बेइज़्ज़ती होने में कसर नहीं। यह वह सोच ही रही थी कि दुःशासन ने उसके वस्त्र का एक भाग पकड़ कर खींचा। द्रौपदी का शरीर कमर से ऊपर बेवस्त्र हो गया। दुःखातिरेक से विकल होकर उसने आँखें मूंद लीं। बायें हाथ से उसने अपनी साड़ी थाँभी और दाहना हाथ सिर पर रखकर बेबस उसने पुकारा—

"दुख हरो द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी"

लिखें कैसे? आगे की उसकी कारुणिक पुकार तो लिखी ही नहीं जाती—

"गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किन्न जानासि केशव?
हे नाथ! हे रमानाथ! व्रजनाथार्त्तिनाशन!
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्द्दन!"

कहते हुए उसने हाथ से अपना मुँह ढक लिया। उसके मुँह से "द्वारकानाथ" निकलते ही आर्ति-नाशन कृष्ण को उस पर दया आई। उन्होंने उसकी लाज रख ली। उसका वस्त्र बढ़ने लगा। उसके ढेर हो गये। पर अन्त न हुआ। द्रौपदी बेइज़्ज़त होने से बच गई।

इस दृश्य को श्रीमान् धुरन्धर ने सरस्वती के लिए एक चित्र में अङ्कित किया है। यह चित्र इस संख्या में पाठकों को उपहार दिया जाता है। चित्र, इस दृश्य की आद्यावस्था का है। तब दुर्योधन ने वस्त्र पर हाथ लगाया ही भर था। इसीसे उसका ढेर चित्र में नहीं दिखाया गया। करुणा रस का परिपाक होकर यहीं उसका छोर हो गया था। इस कारण अगला दृश्य दिखाना अनावश्यक था।

विविध विषय।

पाठकों को ज्ञात होगा, कुछ समय हुआ, सानफ़्रांसिस्को, अमेरिका, में एक बहुत बड़ा भूकम्प हुआ था। उससे एक अजीब घटना हुई है। रगों और पट्ठों की बीमारी से जो लोग सख़्त बीमार थे वे तक भूकम्प के धक्के खाकर आराम हो गये। जिनकी बीमारी सख़्त नहीं थी उनकी तो कुछ बातही नहीं। १५ वर्ष से एक आदमी लक़वे से बीमार था। वह बिलकुल अच्छा हो गया। दिमाग़ की बीमारी से पीड़ित आदमी भी आराम हो गये। कितनेही पागल आदमियों का पागलपन जाता रहा। एक डाक्टर साहब पागल थे। जब भूकम्प आया तब आप पागलख़ाने में थे। उसका धक्का लगते ही आपका दिमाग़ी ख़लल एकदम दूर हो गया और दौड़कर आप उन लोगों के साथ काम करने लगे जो घायलों को उठाने और उनके बदन पर मरहम पट्टी लगाने का काम कर रहे थे। गोया आप कभी पागल हुए ही न थे। अभी तक विद्वानों को इस बात का पता नहीं लगा कि भूकम्प और इन रोगों में क्या पारस्परिक सम्बन्ध है।

* * *

पाठकों ने बड़े बड़े स्टेशनों और शहरों में बीचम साहब की गोलियों (Beecham's Pills) का विज्ञापन देखा होगा। इस विख्यात वटिका-विक्रेता का, ८६ वर्ष की उम्र में, गत ६ एप्रिल को, शरीरपात हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। कोई ५० वर्ष हुए, ये साहब बाज़ार में बैठे अपनी गोलियाँ बेचा करते थे। पर विज्ञापनों की बदौलत ये कुछ ही बरस बाद अमीर हो गये। १५ लाख रुपये साल ये विज्ञापनों में ख़र्च करते थे! छोटे से छोटे पत्र में भी इनके विज्ञापन शुरू शुरू में छपते थे। जो इतना रुपया सिर्फ़ विज्ञापनों में ख़र्च करेगा उसकी आमदनी का क्या ठिकाना है। सेंट हेलिन्स में इनका कारख़ाना है। बहुत बड़ी इमारत है। एक छोटी सी नाचीज़ दवा बेचकर ये करोड़पती हो गये थे। अध्यवसाय, परिश्रम और व्यवसाय-कौशल से क्या नहीं हो सकता? अब इनके बड़े बेटे इनके कारख़ाने के मालिक हुए हैं। दस बारह वर्ष से ये बाप की जगह काम करते हैं। इनके कारख़ाने के कारण सेंट हेलिन्स का नाम सारी दुनिया में मशहूर हो गया। यह जगह एक ऐतिहासिक घटना के कारण प्रसिद्ध है। पर उसको अब लोग प्रायः भूल गये हैं। एक बार इँगलैंड के एक मदरसे में किसी परीक्षक ने एक लड़के से पूछा कि सेंट हेलिन्स किस लिए मशहूर है? उसने जवाब दिया—"बीचम साहब की गोलियों के लिए"! लड़का उस ऐतिहासिक घटना को भूल गया। उसकी जगह बीचम साहब की गोलियों की प्रसिद्धि उसके दिमाग़ में भर गई थी। इसी से उसने वैसा जवाब दिया। इस देश से कारोबार करने में सुभीता होने के लिए, बीचम साहब के कहने से, उनके कारख़ाने के एक मुलाज़िम को हिन्दुस्तानी सीखनी पड़ी थी। कोई देश इस समय ऐसा नहीं जहाँ इनकी गोलियों की ऐजन्सी या शाख़ें न हों।

* * *

"अमेरिकन जनरल एग्ज़ामिनर" नाम का एक अख़बार अमेरिका से निकलता है। उसमें कुमारी मुचलर नामक एक स्त्री ने अपनी आँखों देखा हुआ परलोक का हाल प्रकाशित किया है! वह स्त्री नर-लोक और परलोक के बीच गतागत किया करती है। वह समाधिस्थ हो जाती है और दो दो तीन तीन दिन तक उसकी आत्मा परलोक में रहती है। उसका शरीर इस लोक में पड़ा रह जाता है। वहाँ से लौट कर जब उसकी आत्मा शरीर में आजाती है तब वह फिर पूर्ववत् चलने, फिरने और सांसारिक काम करने लगती है। वह कहती है परलोक कहीं अन्यत्र नहीं। वह यहीं है। हर आदमी के पास है। वह भी एक दुनिया है। वहाँ अपने पूर्वपरिचित जनों से फिर भेंट होती है। वहाँ की नैसर्गिक शोभा और सुख का बयान नहीं हो सकता। आदमी जल के भीतर प्रवेश कर सकता है; पर कपड़े नहीं भीगते। समुद्र के तल में भी वह आसानी से जा सकता है। आकाश में उड़ सकता है। किसी वस्तु की इच्छा होते ही वह प्राप्त हो जाती है—वहाँ इच्छा ही प्राप्ति है। बुढ़ापा किसी को नहीं सताता। मरने पर आत्मा पृथ्वी पर ही रहती है, पर एक अलौकिक देश में। वहाँ सब चीज़ें अधिक सुन्दर और सुखकर इस कारण मालूम होती हैं, क्योंकि ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति बहुत सूक्ष्म हो जाती है। वहाँ का सङ्गीत सुनकर चित्त को अलौकिक आनन्द होता है। स्वर्गीय सङ्गीत बड़ा ही आल्हादकारक है। वहाँ कभी रात नहीं होती। थोड़ी देर तक सिर्फ़ उषःकाल रहता है। फिर प्रभात हो जाता है।

अमेरिकावालों की आत्माओं की आमद-रफ्त तो स्वर्ग में भी होने लगी। अब वहाँ सिर्फ़ सशरीर जाना बाक़ी है।

* * *

एक विद्वान् ने प्राकृतिक उदाहरणों द्वारा इस बात को सिद्ध किया है कि प्रत्येक पुरुष को एक ही विवाह करने—एक ही स्त्री रखने—की ईश्वराज्ञा है। उसने सारे संसार की नर-नारियों की संख्या पर से यह हिसाब लगाया है कि जगत् में जितने पुरुष हैं, प्रायः उतनी ही स्त्रियाँ भी हैं—मर्द और औरतों की संख्या प्रायः बराबर है। इस हिसाब में लड़के और लड़कियाँ भी शामिल हैं। योरप और अमेरिका आदि में जितने सफ़ेद चमड़े के आदमी हैं उनमें प्रति १०० आदमियों के मुक़ाबिले में १०१ स्त्रियाँ हैं। अमेरिका के हबशियों में भी नर-नारियों की संख्या में यही सम्बन्ध है। जापानियों में प्रति १०२ आदमियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक़ाबिले में १०० स्त्रियाँ हैं। भारतवर्ष में कुछ विशेषता है। और वह विशेषता ऐसी है जो ध्यान में रखने लायक़ है। यहाँ १०४ आदमियों और लड़कों के मुक़ाबिले में १०० स्त्रियाँ और लड़कियाँ हैं। अर्थात् पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ कुछ अधिक कम हैं। अतएव इस देश में एक पुरुष को एक से अधिक स्त्री-सम्बन्ध करना अन्याय है, ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन है और प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है।

*
* *

विलायत में रेलों की चाल बहुत ज़ियादह है। घंटे में ६० मील तो कोई बातही नहीं। वहाँ स्टेशनों के बीच एक एक मिनट बचाने की कोशिश की जाती है। एक पल भी व्यर्थ नहीं जाने पाता। दो दो सौ मील तक डाक गाड़ियाँ बिना ठहरे दौड़ती चली जाती हैं। डाक के थैले चलती हुई गाड़ी से ही दे दिये जाते हैं और ले भी लिये जाते हैं। किस तरह यह काम होता है, इस विषय में एक नोट सरस्वती में निकल चुका है। पाठकों को शायद यह ख़याल हो कि इतनी लंबी दौड़ों में यंजिन पानी कैसे लेता होगा तो इसका यह जवाब है कि ट्रेन दौड़ती रहती है और यंजिन पानी लेता जाता है। रेल की दोनों पटरियों के बीच में नीचे कोई ½ मील लंबी एक चरही सी बनाई जाती है। हर ६० या ७० मील पर ऐसी चरही रहती है। यह ६ इंच गहरी और १८ इंच चौड़ी होती है। इसमें पानी भरा रहता है। जो यंजिन इससे पानी लेते हैं उनमें एक टेढ़ा टेढ़ा पंप लगा रहता है। जब यंजिन चरही के ऊपर आजाता है तब ड्राइवर इस पंप के मुँह को ढीला करके चरही के पानी तक पहुँचा देता है। बस पानी का स्पर्श होते ही वह ऊपर चढ़ने लगता है और कोई १५ सेकंड में दो हज़ार गैलन पानी यंजिन के भीतर चला जाता है! इन चरहियों के पास पानी के तालाब रहते हैं। जहाँ चरही ख़ाली हुई कि फिर वह भर दी जाती है। इस प्रबन्ध से पानी के लिए यंजिनों को खड़ा नहीं होना पड़ता और वक्त की बहुत बचत होती है।

*
* *

पृथ्वी को जीवधारियों के रहने योग्य हुए करोड़ों वर्ष होगये। समय समय के अनुसार उस पर अनन्त जीव जन्तु पैदा हुए और हज़ारों वर्ष के बाद उनका वंश लोप हो गया। पृथ्वी की आदिम अवस्था में जीवधारियों की कितनी ही जातियाँ बड़ीही भयङ्कर और बड़ीही क्रूर थीं। इनका नाश हुए लाखों, करोड़ों वर्ष हुए। पर पृथ्वी के पेट में "फासिल" के रूप में इनके अस्थिपञ्जर अब तक कहीं कहीं दबे पड़े हैं। उनको निकाल कर शरीरशास्त्र के ज्ञाता, वैज्ञानिक नियमों के अनुसार, उनके सजीवावस्था के आकार-प्रकार और रूप-रंग आदि का निश्चय करके पूर्ववत् उनकी मूर्तियाँ और चित्र बना लेते हैं। इस तरह के एक आध प्राणी का चित्र सरस्वती में प्रकाशित भी हो चुका है। हाल में एक ऐसे ही क्रूरकर्म्मा प्राणी का और पता लगा है। इसका नाम रक्खा गया है "नौसारस"। यह उत्तरी अमरीका का निवासी था। बड़ी बड़ी झीलों और नदियों में यह रहा करता था। इसकी "फ़ासिल" के आधार पर जो मूर्ति इसकी बनाई गई है वह न्यूयार्क के अजायब घर में रक्खी है। उसे देख कर ही डर लगता है। यह मगर-जाति का प्राणी था। भूगर्भ-विद्या के ज्ञाताओं का मत है कि एक करोड़ बीस लाख वर्ष हुए जब यह प्राणी बड़े बड़े तालाबों, झीलों और नदियों में रहता था। कभी कभी यह किनारे पर भी पड़ा रहता था। जहाँ यह रहता था, और जीवों का रहना मुशकिल हो जाता था। उनका यह सर्वनाश कर डालता था। इसके दाँत शेर के दाँतों की तरह तेज़ और नुकीले थे। ज़मीन पर यह बहुत धीरे धीरे चलता था। लंबाई इसकी कोई ९ फ़ीट और उँचाई ४ फ़ीट थी। इसकी पीठ पर कठोर और काँटेदार एक ऊँची दीवार सी रहती थी। इससे कोई प्राणी उछल कर इसके ऊपर न बैठ सकते थे और इसे किसी तरह की हानि न पहुँचा सकते थे। जिस झील में यह रहता था उसका यही सार्वभौम राजा बन जाता था। बड़े बड़े मगर इसकी तीव्र दंष्ट्राओं से फाड़े जाकर बिना कुचले ही इसके पेट में पहुँच जाते थे। इसके अगले दाँत तीन तीन इंच तक लंबे होते थे। इसका सिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत बड़ा, कुछ कुछ गैंडे के सिर की शकल का, था। पूंछ छोटी थी। पंजों के नाखून दो दो इंच लंबे थे।

नौसारस।

यह मांस-भक्षी प्राणी था और शिकार को दाँतों से फाड़ कर निगल जाया करता था।

* *

बड़े बड़े भयङ्कर जंगी जहाज़ों के बनवाने में करोड़ों रुपये ख़र्च करके भी योरप की शक्तियाँ कुछ वर्षों से संसार में शान्ति फैलाने की चिन्ता में हैं। १८९९ में एक भारी सभा हाग में इसी अभिप्राय से हुई थी। अब फिर शान्तिप्रचार के लिए हाग में एक सभा होनेवाली है। एप्रिल में न्यूयार्क नगर में अमरीका तथा और और देशों के प्रतिनिधि "शान्तिप्रचार" विषय पर विचार करने के लिए एकत्र हुए थे। लंबी लंबी वक्तृतायें हुईं; रेज़ोल्यूशन भी पास हुए। इंग्लिस्तान के प्रसिद्ध अख़बार-नवीस स्टेड साहब भी पधारे थे। आपने अमरीका के बड़े बड़े नगरों में इसी विषय पर व्याख्यान भी दिये हैं। देखिए परिणाम क्या होता है।

* *

योरप और अमेरिका में एक ओर तो शान्ति फैलाने का यत्न हो रहा है, दूसरी ओर मनुष्यमात्र के लिए एक भाषा करने का उद्योग भी हो रहा है। इस सार्वजनिक भाषा का नाम एसपिरेन्टो (Espiranto) है। इस पर सरस्वती में दो एक नोट प्रकाशित हो चुके हैं। यह भाषा अँगरेज़ी, जरमन, फ़्रेंच, स्पेनिश आदि भाषाओं के आधार पर बनाई गई है। अमरीका में बहुत सी सभायें इसके प्रचार के लिए हैं। मई में शिकागो-विश्वविद्यालय के एसपिरेन्टो क्लब ने इसी भाषा में एक नाटक किया था। विचार बहुत उत्तम है। भूगोल-भ्रमण करने वाले लोगों को, एक भाषा हो जाने से, बहुत सुभीता होगा। जापान में भी इस भाषा के प्रचार के लिए बड़ी कोशिश हो रही है। सरस्वती के पाठकों के लिए हम एक लेख इस भाषा के विषय में विस्तारपूर्वक लिखना चाहते हैं।

* *

राबर्ट लेन्डमेर (Robert Lendlmayr) नामक एक विद्वान् ने इस विषय पर एक लेख लिखा है कि कई पशु, पक्षी और कीटकों से हमें ऋतुओं की सूचना मिल सकती है। आप कहते हैं, कि क्यों चिड़ियाँ कभी अधिक ऊपर कभी अधिक नीचे उड़ती हैं? कारण यह है कि जिन कीड़ों को वे खाती हैं वे कभी ऊपर कभी नीचे उड़ते हैं। वे कीड़े ऋतु के अनुसार अपनी रक्षा के लिए ऊपर या नीचे रहते हैं। कुछ कीड़े दूर से आनेवाली बिजली की लहरों को अपनी इन्द्रियों से अनुभव कर लेते हैं। वायुमंडल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जो तरङ्गें ऊपर नीचे आती जाती हैं उनका और वायु के दबाव का उन्हें ज्ञान हो जाता है। इसी से वे पहिले ही से अपनी रक्षा का उपाय सोचते हैं। यद्यपि अभी वैज्ञानिक ढंग से सब बातें नहीं मालूम हुईं तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ वर्षों की लगातार परीक्षाओं से इस बात का ज्ञान होने लगेगा कि इन सब बातों का आपस में क्या सम्बन्ध है।

*
* *

भारतवर्ष में मच्छड़ों से बड़ी तकलीफ़ मिलती है। पर सहनशील भारतवासियों ने कभी उनके दूर करने के उपाय नहीं सोचे। योरप और अमरीका वालों की बात न्यारी है। कोई उनकी तरक़्क़ी या आराम में ज़रा सी बाधा डाले, बस वे हाथ धोकर उसके पीछे पड़ जाते हैं। अमरीका के न्यूजेरेसी प्रान्त में मच्छड़ों को दूर करने के उपाय सोचे जा रहे हैं। साढ़े दस लाख रुपया सरकार की ओर से मच्छड़ों के नाश के लिए ख़र्च करने की तजवीज़ है। न्यूयार्क के प्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्र "पापुलर साइंस (Popular Science) में अध्यापक स्मिथ ने इस विषय पर एक बड़ा रोचक लेख लिखा है और बतलाया है कि मच्छड़ों के दूर करने पर न्यूजेरेसी की आमदनी करोड़ों रुपए बढ़ जायगी। मच्छड़ बहुत सी बीमारियाँ फैलाते हैं। हमारे देश में तो रात को सोना मुशकिल कर देते हैं। भारतवासियों को अपनी सन्तान की विद्यावृद्धि के लिए रुपया नहीं मिलता। भला दूसरी बातों की ओर उनका ध्यान कैसे जा सकेगा। ये सब स्वतन्त्र देशों की बातें हैं।*

*
* *

कलकत्ते की एक लिपिविस्तारपरिषद "देवनागर" नाम का जो बहुभाषा-भाषी मासिकपत्र निकालने वाली थी सो निकल आया। पत्र बहुत अच्छा निकला। इसके पहले अङ्क में बड़े साँचे के मोटे चिकने काग़ज़ के ४० पृष्ठ हैं। छपाई उत्तम है। तीन हाफ़टोन चित्र भी हैं। इसके कवर पर सरस्वती का छोटा सा चित्र है। उसके पैरों से अक्षरमय देवनागर नद निकला है। भिन्न भिन्न प्रान्तों के ८ आदमी किनारे पर खड़े हैं। एक साहब उन्हें उस नद को दिखला रहे हैं। पत्र की पीठ पर भारतवर्ष का एक नक़शा है जिसमें यह दिखाया गया है कि कौन भाषा कहाँ बोली जाती है। हिन्दी, उर्दू, बँगला, मराठी, पंजाबी, नैपाली, कनाडी और तामील भाषाओं के लेख, इस अङ्क में हैं। पर सब देवनागरी अक्षरों में हैं। हिन्दी में पद्माकर कवि का जीवनचरित, पण्डित नकछेदी तिवारी का लिखा हुआ बहुत अच्छा है। इस तरह के पत्र का निकालना बहुत कठिन काम है। पर भारत में एक लिपि प्रचार के लिए इससे बढ़कर और उपाय भी नहीं है। पत्र का वार्षिक मूल्य ३॥ रुपया है और मैनेजर "देवनागर", ८५ ग्रे स्ट्रीट, कलकत्ते से मिलता है।

*
* *

सरस्वती की पीठ पर इंडियन प्रेस, प्रयाग, का जो "हिन्दी-लेखकों से निवेदन" छपता रहा है उसका फल दृष्टिगोचर होने लगा। हिन्दी-प्रेमियों के लिए यह बड़ाही शुभ-संवाद है। इस प्रेस के मालिकों ने "चीनदर्पण" के प्रणेता पण्डित महेन्दुलाल गर्ग-कृत "जापान-दर्पण" नाम की, ३४८ पृष्ठ की, एक परमोत्तम पुस्तक छाप कर प्रकाशित कर दी। और अच्छे टाइप, अच्छे काग़ज़ और मनोमोहक "कवर" की इस इतनी बड़ी पुस्तक का मूल्य जानते हैं आप कितना रक्खा गया है? तीन नहीं, दो नहीं, सिर्फ़ एक रुपया! अब क्या इस पर भी यह पुस्तक लेने में किसी को कोई बहाना हो सकता है? जापान की तरक़्क़ी को देखकर इस समय सारा सभ्य संसार दंग हो रहा है। उससे हमें सैकड़ों नहीं, हज़ारों नहीं, लाखों तरह की शिक्षायें मिल सकती हैं। उन सब का बीज इस पुस्तक में आपको मिलेगा। इसमें

* यह और इसके पहले के तीन नोट श्रीयुक्त सत्यदेव जी शिकागो के भेजे हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं वाहनादवनतोत्तरकायमीष-
द्विध्यन्तमुद्धृतसटाः प्रतिहन्तुमीषुः ।
नात्मानमस्य विविदुः सहसा वराहा
वृक्षेषु विद्धमिषुभिर्जघनाश्रयेषु ॥ १३ ॥

हयारूढ़, कुछ आगे झुक कर,
नरपति ने शर सन्धाना ;
केश खड़े कर उधर वराहों
ने धावा करना ठाना ।
पर जिन पेड़ों से वे सट कर
खड़े हुए थे बाँध परा
कब उनमें बिध गये शरों से
यह तक जाना नहीं ज़रा ॥

तेनाभिघातरभसस्य विकृष्य पत्री
वन्यस्य नेत्रविवरे महिषस्य मुक्तः ।
निर्भिद्य विग्रहमशोणितलिप्तपुङ्ख-
स्तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात् ॥ १४ ॥

वध को उद्यत वन्य महिष के
नेत्र-विवर में अति सत्वर,
नृप से छोड़ा गया खींच कर
घोर उरग सम शर खर-तर ।
रुधिर गाँस में लगे बिना ही
उसकी देह विदारण कर,
प्रथम गिरा कर उसे भूमि पर,
गिरा आप फिरं तदनन्तर ॥

प्रायो विषाणपरिमोक्षलघूत्तमाङ्गान्
खड्गांश्चकार नृपतिर्निशितैः क्षुरप्रैः ।
शृङ्गं स दृप्तविनयाधिकृतः परेषा-
मत्युच्छ्रितं न ममृषे न तु दीर्घमायुः ॥ १५ ॥

तब तीखे बाणों से नृप ने
काट काट कर सींग अनन्त,
खड्ग नाम वाले गैड़ों के
सिर हलके कर दिये तुरन्त ।
दुष्ट-दमन करने को उद्यत
वह नर-नाथ महा बलवान,
सह न सका सींगों की उन्नति,
न कि उनकी वह आयु महान ॥

व्याघ्रानभीरभिमुखोत्पतितान्गुहाभ्यः
फुल्लासनाग्रविटपानिव वायुरुग्णान् ।
शिक्षाविशेषलघुहस्ततया निमेषा-
त्तूणीचकार शरपूरितवक्त्ररन्ध्रान् ॥ १६ ॥

निकल गुहाओं के भीतर से
सन्मुख चले व्याघ्र बलवान,
वायु-वेग से भग्न सर्ज के
कुसुमित अगले भाग समान ।
उनके मुँह में निर्भय नृप ने
शर-समूह भर बारंबार,
बना दिया उनको तरकस सा,
कर-लाघव-लीला विस्तार ॥

निर्घातोग्रैः कुञ्जलीनाञ्जिघांसु-
र्ज्यानिर्घोषैः क्षोभयामास सिंहान् ।
नूनं तेषामभ्यसूयापरोऽभू-
द्वीर्योदग्रे राजशब्दे मृगेषु ॥ १७ ॥

कुञ्जस्थित सिंहों के वध की
तब भूपति ने इच्छा कर,
वज्र तुल्य प्रत्यञ्चा-रव से
क्षोभित किया उन्हें अतितर ।
क्योंकि उन्होंने मृग-राजा का
दर्पपूर्ण जो पद पाया
इससे नृप को हुई असूया
झट उनके सम्मुख आया ॥

तान्हत्वा गजकुलबद्धतीव्रवैरान्
काकुत्स्थः कुटिलनखाग्रलग्नमुक्तान् ।
आत्मानं रणकृतकर्मणां गजाना-
मानृण्यं गतमिव मार्गणैरमंस्त ॥ १८ ॥

तीव्र शत्रुता रखने वाले
सारे करि-कुल से सब काल
मुक्ता-युक्त कुटिल नख वाले
सिंहों को वध कर तत्काल ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज दशरथ ने रण में
करनेवाले निज उपकार,
उऋण किया अपने को द्विरदों
से शर द्वारा भले प्रकार॥

चमरान्परितः प्रवर्तिताश्वः
क्वचिदाकर्णविकृष्टभल्लवर्षी।
नृपतीनिव तान् वियोज्य सद्यः
सितबालव्यजनैर्जगाम शान्तिम्॥ १९॥

श्रुति पर्यन्त खींच कर धन्वा
तब उसने हय दौड़ाया,
और चमर नामक पशुओं पर
शर-समूह निज बरसाया।
भूपालों के से उन सब के
रुचिर शुभ्र चामर हर कर,
देख चमर-विरहित उनको तब
हुआ शान्त मन में नृप-वर॥

अपि तुरगसमीपादुत्पतन्तं मयूरं
न स रुचिरकलापं बाणलक्ष्यीचकार।
सपदि गतमनस्कश्चित्रमाल्यानुकीर्णे
रतिविगलितबन्धे केशपाशे प्रियायाः॥ २०॥

उड़ता हुआ निकट भी हय के
नृप ने देख मयूर समक्ष,
उस सुन्दर पक्षों वाले को
किया न अपने शर का लक्ष्य।
स्मरण आगया उसे प्रिया का
रति-विगलित-बन्धन कच-भार।
चित्रविचित्रपुष्प माला से
गुँथा हुआ सुन्दरता-सार॥

तस्य कर्कशविहारसम्भवं
स्वेदमाननविलग्नजालकम्।
आचचाम स तुषारशीकरो
भिन्नपल्लवपुटो वनानिलः॥ २१॥

मृदुल-पल्लवों के सम्पुट को
भिन्न भिन्न करने वाली,
शीतल-सलिल-कणों से संयुत
मन्द, मधुर-परिमलशाली।
ऐसी विपिन-वायु ने नृप का
सुखा दिया सब स्वेद-निकर,
कठिन परिश्रम के कारण जो
प्रकट हुआ था आनन पर॥

(रघुवंश से)

मैथिलीशरण गुप्त।

कीलाक्षरलिपि।

लखनऊ हिन्दुस्तान का एक नामी शहर है। वहाँ यों तो हर क़ौम के आदमी रहते हैं लेकिन मुसलमानों और कश्मीरियों की कसरत है। ज़बान वहाँ की उर्दू है। एक दिन का ज़िक्र है कि सय्यद नूरअली रामपुरी अपने बँगले के बाग़ीचे में अकेले बैठे एक देवनागरी की किताब आवाज़ के साथ पढ़ रहे थे कि पीछे से बे-मालूम पण्डित शंकरनाथ आगा आ पहुँचे। आते ही आग़ाजी के कान में यह आवाज़ पहुँची, 'टिड्ढाणञ् द्वयसज् * * *' सुनते ही बेइख़्तियार बोले, "लाहौल-व-ला-क़ुवत! क्या आप अमलि-हाज़िरात कर रहे हैं?" यह आवाज़ सुनकर सय्यद साहिब चौंक उठे, मगर अपने बेतकल्लुफ़ दोस्त को देखकर किताब बन्द कर दी, और उनका यथायोग्य सत्कार करके बात चीत करने लगे। थोड़ी देर बाद आग़ा महाशय पूछने लगे, 'यह आप क्या सक़ील सक़ील लफ़्ज़ कह रहे थे?' सय्यद साहिब ने जवाब दिया, 'बर अक्स निहन्द नामि ज़ंगी काफ़ूर! आपके मुँह से यह सवाल! जनाब मैं संस्कृत ज़बान के मशहूर वाज़-इ-सर्फ़नहव पाणिनि की किताब का मुतालअ कर रहा हूँ।'

आग़ाजी—'क्या ख़ूब! अरबी गई, फ़ारसी गई, उर्दू गई! यह आपको हिन्दी की चिन्दी निकालने का शौक़ कब से हुआ? हज के बाद संस्किरत का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुताला चिमानी दारद ? क्या मार्च की सुरसुती को देखकर आप उर्दू हिन्दी के रस्मुल्ख़त के झगड़े में तो नहीं पड़ गये' ?

सय्यद साहिब—'महरबान ! बात तो कुछ ऐसी ही सी है। यह तो मैं एक मौक़े पर आपसे पहले ही अर्ज़ कर चुका हूँ कि फ़रायज़ि हज से फ़ारिग़ होकर मैं दमिश्क़ बग़दाद वग़ैरा भी गया था और उस मुल्क में, जिसको इराक़ि अ़जम कहते हैं, सफ़र करते हुए मैंने अकसर जगह पर जर्मनो, फ़ान्स और अमेरिका के आलिमों को पुराने मिस्मारशुदा शहरों के टीलों को खोदते हुए देखा था। ख़ैर, आजकल उस मुल्क की शुहरत इस वजह से हो रही है कि इन पुराने शहरों के खंड्रात में से निहायत पुराने और नादिर कत्बे बरामद हुए हैं, जिनकी तअ़दाद हज़ारों क्या बल्कि लाखों कहनी चाहिए। इन कत्बों में से कुछ मैंने भी देखे। उन पर जो इबारत लिखी थी, उसको देखकर मालूम हुआ कि उस क़दीम ज़माने का रस्मुल्ख़त, बक़ौल आपके, न हिन्दी था न उर्दू, बल्कि किसी परिन्द के पंजों के निशान से मालूम होते थे। और दर्याफ़्त से मालूम हुआ कि उस ज़माने की मुरव्वज ज़बान भी अ़रबी व संस्कृत से अलहदा थी, अगरचे इबरानी ज़बान से किसी क़दर मिलती थी।'

आग़ाजी—'जी हाँ ! आपने उस रस्मुल्ख़त का नाम भी बतलाया था। उसको अ़रब के मवर्रिख़ों ने 'मिस्मारी' के नाम से मख़सूस किया है। मगर कुजा इराक़ि अ़जम व कुजा हिन्दोस्तान ! उर्दू हिन्दी के झगड़े को मिस्मारी रस्मुल्ख़त से क्या तअ़ल्लुक़ ?'

सय्यद साहिब—'आग़ा साहिब, उर्दू हिन्दी का झगड़ा तो कल का है। मुझे रस्मुल्ख़त की असलियत दर्याफ़्त करने का शौक़ अ़रसे से है। यह तो सभी जानते हैं कि उर्दू का रस्मुल्ख़त अ़रब से लिया गया है, और इन्क़िलाबि ज़माना की वजह से जो जो तब्दीलियां इस रस्मुल्ख़त में वाक़अ़ हुईं वह भी अज़्हरमिनुश्शम्स हैं, लेकिन यह बात बहुत कम लोगों को मालूम है कि हिन्दी का रस्मुल्ख़त जो आजकल इस सूबे में रायज है वह महज़ दो तीन सदी से जारी है। ख़ास हिन्दोस्तान में हो ज़मानए सलफ़ और हाल के रस्मुल्ख़त में ज़मीन आस्मान का फ़र्क़ है। अब यह सवाल पैदा होता है कि अ़रब, हिन्दोस्तान, अ़जम वग़ैरा मुख़्तलिफ़ मुल्कों के रस्मुल्ख़त का इख़्तिलाफ़ इत्तिफ़ाक़िया पैदा हो गया है या इख़्तिलाफ़ि ज़बान की वजह से ? इस सवाल के हल करने के लिए और नीज़ इस बात की तहक़ीक़ात के लिए कि यह मुख़्तलिफ़ रस्मुल्ख़त हमेशा से इसी तरह चले आये हैं या किसी एक मुश्तरिक रस्मुल्ख़त से निकले हैं मैंने हज से वापस आकर ज़बानि बाबुल और संस्कृत का मुतालअ़ शुरू किया। बाबुली ज़बान के हालात मालूम करने में मुझे L. W. King वग़ैरा उलमा की तसानीफ़ से बहुत कुछ मदद मिली। और संस्कृत पढ़ने में पण्डित देवदत्त साहिब मेरी बहुत मदद करते हैं—

आग़ाजी—'यादश बख़ैर ! पण्डित देवदत्तजी भी आगये। आइए महाराज !" * * *

सय्यद साहिब—"—पण्डित जी मुझ पर बड़ी इनायात करते हैं। शास्त्रीजी की कोशिश से ही मैंने संस्कृत के सर्फ़-नहव में किसी क़दर इस्तेदाद हासिल कर ली है, जिस वक्त आप तशरीफ़ लाये थे मैं लफ़्ज़ यवनानी वग़ैरा के इश्तिक़ाक़ का हाल देख रहा था।'

पण्डित देवदत्त शास्त्री—'मीर साहब ! अब कृपा करके आप इश्तिकाकादि अर्बी भाषा के शब्दों का प्रयोग न कीजिए। सरल हिन्दी बोलिए। हाँ, आप उस दिन कहते थे कि बर्बरदेश की लिपि संसार की सब लिपियों से अलग है। अब उसका कुछ हाल बतलाइए।'

आग़ाजी—'इस मज़मून के सुनने का तो मुझको भी अज़हद इश्तियाक़ है। मैं भी सुनूंगा, लेकिन बराहि महरबानी ठेठ हिन्दी न बोलिएगा। मैं संस्किरत नहीं जानता।'

सय्यद नूरअ़ली साहिब अपना मज़मून शुरू करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर्बरदेश की कीलाक्षरलिपि।

"बहुत लोगों का ख़याल है कि अबल यूनानी जो हिन्दुस्तान में आया मक़दूनिया का बादशाह सिकन्दर था; इससे पहले हिन्दुस्तान के रहनेवालों को यूनान का या उस मुल्क के आदमियों व ज़बान का कुछ हाल मालूम नहीं था। और इसी ख़याल को ठीक मानकर यूरुप के अकसर संस्कृतज्ञ लोगों ने अनुमान किया है कि पाणिनि का व्याकरण ईसा से तीन सौ वर्ष से ज़ियादा पुराना नहीं है। क्योंकि उस व्याकरण में यवनानी लिपि का ज़िक्र आया है—"

शास्त्रीजी—"जी यह तो है ही है, 'इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्' अष्टाध्यायी के चौथे अध्याय के पहले चरण का ४९वां सूत्र है और इस पर 'यवनाल्लिप्याम्' वार्तिक है। परन्तु यह कहना ठीक नहीं कि यवन लोगों का परिचय पाकर ही पाणिनि मुनि ने यह शब्द रचा है क्योंकि शब्द अनादि हैं और प्राचीन ऋषियों के मुख से भविष्यद्वाणी होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।"

सय्यद साहिब—"शास्त्रीजी, आपके सिद्धान्त बहुत यथार्थ हैं। मगर आजकल के ज़माने में शब्द-प्रमाण को लोग बहुत कम मानते हैं। जहाँ तक होता है प्रत्यक्ष और अनुमान की चेष्टा करते हैं। ख़ैर! पाणिनि के समय के विषय में लोगों का मतभेद है। गोल्डस्टूकर ने लिखा है कि यवनानी लिपि से पाणिनि का अभिप्राय बर्बरदेश की कीलाक्षरलिपि से था, मगर और लोग गोल्डस्टूकर की राय को नहीं मानते और कहते हैं कि यवनानी से मतलब यूनान की ज़बान से हो था। ख़ैर, पाणिनि का मतलब कुछ ही हो, यह बात अब अच्छी तरह से सिद्ध हो गई है कि हिन्दुस्तान और बर्बरदेश के लोगों का परस्पर परिचय ईसा से सात सौ वर्ष पहले से भी पुराना है। इसलिए ऐसी ऐसी अललटप्पू बातों से पाणिनि के समय का निर्णय नहीं हो सकता, क्योंकि यवन शब्द का विकृतरूप 'जवन' बर्बरदेश में बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है और सम्भव है कि पाणिनि ने बर्बर लोगों से ही 'यवनानी' लिपि का हाल सुना हो।"

आग़ाजी—"अच्छा तो आप हिन्दुस्तान-रिव्यू के कॉण्ट्रिब्यूटर 'बार्हस्पत्य' से इस मामले में मुत्तफ़िक़ुर्राय हैं?"

सय्यद साहिब—"बेशक! मेरे ख़याल में उस शख़्स ने लफ़्ज़ 'बर्बर' और 'यवन' की अच्छी तरह तहक़ीक़ात की है। लेकिन हम तो कहाँ से कहाँ चले आये! मुझको सिर्फ़ यह कहना है कि हिन्दुस्तान के रहनेवाले पुराने ज़माने में बर्बर लोगों को जानते थे और उनके लिखने पढ़ने के क़ायदों को भी जानते थे। मुमकिन है कि किसी वक़्त में दोनों की लिपि एक ही रही हो और समय के फेर से उसमें फ़र्क़ पड़ गया हो। ख़ैर, यह बहुत दूर की बातें हैं अभी इनके ज़िक्र की ज़रूरत नहीं है। इस वक़्त सिर्फ़ यह फ़र्ज़ कर लीजिए कि जैसा हिन्दू लोग अपनी संस्कृत ज़बान को बहुत पुराना मानते हैं इसी तरह बर्बर भाषा भी बहुत पुरानी है। और जिस तरह संस्कृत भाषा में वेदों के समय से लेकर पाणिनि के समय तक परिवर्तन हुए हैं वैसे ही बर्बर भाषा में भी हुए। फ़र्क़ केवल इतना ही है कि संस्कृत भाषा का प्रचार भारतवर्ष में आज तक जारी है; मगर बर्बर भाषा का प्रचार ईसा के सौ पचास वर्ष पहले ही से बन्द हो गया।

आग़ाजी—"क्यों साहब, यह जो हम सुनते आये हैं कि दुनिया की असली ज़बानें कुल तीन हैं यानी संस्किरत, अरबी और तुर्की, और बाक़ी सब ज़बानें इन्हीं से निकली हैं, क्या यह बात ठीक है? और आपकी बर्बर ज़बान इनमें से किसके साथ ज़ियादा तअल्लुक़ रखती है?"

सय्यद साहिब—"कसरति तहक़ीक़ात की वजह से ज़बानों की तक़सीम का सवाल अब बहुत पेचीदा हो गया है। बर्बर भाषा की बाबत जो कुछ मुझे मालूम है वह कहता हूँ। यह मैं पहले कह चुका हूँ कि उस मुल्क के पुराने खंडरात से जो कत्बे निकले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं वह सब कीलाक्षरलिपि में लिखे हुए हैं। इन्हीं कत्बों के पढ़ने से मालूम हुआ है कि पुराने ज़माने में वह सरज़मीन निहायत ज़रख़ेज़ थी और वहाँ एक निहायत ख़ुशहाल क़ौम बसती थी जिसकी ज़बान इबरानी ज़बान से मिलती-जुलती थी। इस क़ौम ने अपना नाम 'बर्बर' या 'बाबिल' रखा था और बहुत अरसे से उस मुल्क पर क़ाबिज़ और आबाद थी। लेकिन तहक़ीक़ात से यह भी मालूम हुआ है कि यह बर्बर लोग उस मुल्क के असली बाशिन्दे नहीं थे; बल्कि किसी वक़्त में वहाँ के असली लोगों पर फ़तह पाकर आबाद हुए थे। इस असली क़ौम का नाम 'सुमेर' था और वह यह कहा करती थी कि हम उत्तर की तरफ़ से आकर यहां बसे हैं।"

शास्त्रीजी—"यह सुमेर कहीं सुमेरुपर्वत का नाम तो नहीं है?"

सय्यद साहिब—"मालूम नहीं। ख़ैर! इन सुमेर लोगों की ज़बान इबरानी से बिलकुल नहीं मिलती थी; बल्कि बिलकुल अलहदा थी।"

शास्त्रीजी—"क्यों साहब, संस्कृत से मिलती थी?"

सय्यद साहिब—"किस समय की संस्कृत से? संस्कृत भी तो बदलती रही है!"

शास्त्रीजी—"अच्छा आगे चलिए!"

सय्यद साहिब—"ईसा से हज़ार पन्द्रह सौ वर्ष पहले 'असुर' लोगों ने इस मुल्क पर आक्रमण किया, और बर्बर लोगों को पराजित करके अपनी भाषा को, जो इबरानी से बहुत मिलती है, चलाया; मगर पुरानी भाषा के शब्द भी बोलते रहे।"

आग़ाजी—"बस यह समझिए कि जैसे मुसलमान बादशाहों के वक़्त में उर्दू ज़बान।"

सय्यद साहिब—"ठीक! मगर फ़र्क़ इतना है कि मुसलमान बादशाहों ने हिन्दुस्तान में आकर अपना रस्मुलख़त जारी किया। 'असुर' लोगों ने प्राचीन सुमेर लोगों का जारी किया हुआ ही इख़्तियार कर लिया।"

शास्त्रीजी—"अजी, उस समय दूसरी लिपि बनी ही नहीं होगी, नहीं तो 'असुर' लोग कब मानने वाले थे। क्यों साहब उन शिलालेखों में देवासुर-संग्राम की तो कुछ चर्चा नहीं है?"

सय्यद साहिब—"है तो सही, परन्तु इस समय उसका ज़िक्र नहीं कर सकता, फिर किसी दिन आपको सुनाऊँगा।"

आग़ाजी—"क़ते कलाम मुआफ़ हो! मिस्मारी रस्मुलख़त को इस सब झगड़े से क्या तअल्लुक़ है?"

सय्यद साहिब—"तवालति तक़रीर के लिए मैं मुआफ़ी चाहता हूँ। इन सब बातों के कहने से मेरी ग़रज़ यह थी कि बावजूदे कि तीन चार हज़ार साल के अरसे में उस मुल्क के रहनेवालों में और उनकी ज़बान में कई बार तग़ैयुरोतबद्दुल हुआ लेकिन उनका रस्मुलख़त बराबर वही रहा। और इन्हीं वजूहात से उस ज़बान और रस्मुलख़त के समझने में ग़ैरमामूली दिक़्क़तें पेश आई हैं।"

आग़ाजी—"ख़ैर, अब तमहीद तमाम शुद। हमें अब उस रस्मुलख़त की शकल दिखाइए।"

* * * * * *

आग़ाजी—"सुब्हानल्लः! किताबें हैं या.....! अच्छा! Cuneiform Inscriptions of Western Asia, by H. C. Rawlinson. ख़ैर, खोलिए।' * * * * * * * *

शास्त्रीजी—"क्यों साहब! यह जो धेली, पावली, आनों के चिह्न बन रहे हैं यही बर्बरदेश की लिपि है?"

आग़ाजी—"शास्त्री जी आपने अच्छी तरह नहीं देखा। धेली, पावली के निशान तो सीधे और टेढ़े ख़त होते हैं, यह तो कीलें सी बिखरी हुई मालूम होती हैं। भला, सीधे सादे ख़तों को छोड़कर कील की शकल के गावदुम निशान क्यों बनाये?"

सय्यद साहिब—"हज़रत। इसकी वजह है। उस मुल्क में पत्थर नहीं होता। ज़ियादातर कत्बे भीगी हुई मिट्टी की तख़्तियों पर नोकदार क़लम से कन्दा किये जाते थे। ज़रा आप गीली मिट्टी की एक तख़्ती बनाकर उसको कील की नोक से दबाइए, सूराख़ नहीं होगा, बल्कि नारंगी की पेंदी की तरह कील के चारों तरफ़ तख़्ती की सतह दब जायगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब आप कील को एक तरफ़ चलाकर आहिस्ते से उठा लीजिए। बस इन्हीं निशानात की शक्ल का निशान बन जायगा। और चूंकि कील दहिने हाथ में थाम कर बाईं तरफ़ को नहीं चला सकते, इस वजह से बर्बरदेश की लिपि देवनागरी की तरह बाईं तरफ़ से दहिनी तरफ़ को लिखी और पढ़ी जाती है।"

आग़ाजी—"ख़ूब! मगर यह तो फ़रमाइए कि जब बक़ौल आपके इस रस्मुलख़त का रिवाज दो हज़ार साल से बन्द है तो रॉलिन्सन (Rawlinson) वग़ैरा ने इन कत्बों को पढ़ और समझ क्योंकर लिया।"

सय्यद साहिब—"जनाब! क़दीम ज़माने के मतरूकशुदा रस्मुलख़त को पढ़ और समझ लेना एक दिन का काम नहीं है। इन चीज़ों को असलियत को पहुँचने में महीनों क्या बरसों लगते हैं। लेकिन नाम उसका होता है जो अव्वल ही अव्वल इस काम में कामयाब हो। हिन्दुस्तान में राजा अशोक के पाली ज़बान के कत्बे का पढ़ना प्रिंसेप् (Prinsep) साहिब का हिस्सा था। उसी तरह मिस्मारी कत्बों को पहले ही पहल पढ़ने और समझने का फ़ख़ रॉलिन्सन् (Rawlinson) और ग्रोट्फ़ेण्ड (Grotefend) को हासिल हुआ। उनके बाद बीसियों आदमियों की मिहनत से अब सौ बरस के बाद उस मुल्क की पुरानी ज़बान कुछ अच्छी तरह समझ में आई है।"

शास्त्रीजी—"मीर साहब, यह तो सब ठीक। परन्तु यह तो बतलाइए कि उन दोनों साहब लोगों ने क्योंकर वह लेख पढ़ लिए। हम पुराने ढंग के ब्राह्मण हैं, अँगरेज़ी भाषा बिलकुल नहीं जानते। क्या हम भी उसी ढंगपर चलने से अँगरेज़ी वर्णमाला जान सकते हैं?"

सय्यद साहिब—"महाराज, आपने बहुत ही अच्छी बात कही। उन लोगों ने किसी प्राचीन राजा के शिलालेखों को देखकर कीलाक्षरलिपि की वर्णमाला बनाली। आप इस विज्ञापन को देखकर अँगरेज़ी वर्णमाला बना लीजिए। विज्ञापन युक्तप्रान्त के एक छापे खाने का है—

THE INDIAN-PRESS OF ALLAHÁBÁD IS ONE OF THE FOREMOST PRINTING ESTABLISHMENTS IN INDIA. IT TURNS OUT NEAT AND ACCURATE WORK, EQUAL TO THE BEST OF ANY FOREIGN COUNTRY. BESIDES PRINTING SEVERAL ENGLISH PERIODICALS, IT PUBLISHES A VERNACULAR MONTHLY MAGAZINE OF ITS OWN—THE SARASWATÍ. THIS MAGAZINE IS KNOWN THROUGHOUT THE PROVINCES OF ÁGRA AND OUDH FOR ITS EXCELLENT ARTICLES AND SUPERIOR GET UP. THE SARASWATÍ IS EDITED AT JUHI (CAWNPORE), BUT IS PUBLISHED BY THE INDIAN-PRESS AT ALLAHÁBÁD.

ALLAHÁBÁD KÁ INDIAN-PRESS HINDUSTÁN KE NÁMÍ CHHÁPAKHÁNON MEN SE EK HAI. US MEN GAIR MULKON KE UMDÁ SE UMDÁ KÁM KÍ BARÁBAR SÁF AUR SAHÍH KÁM HOTÁ HAI. ALÁWÁ KAÍ ANGREZÍ RISÁLAJÁT KE, US SE KHÁS EK DESÍ ZABÁN KÁ MÁHWÁRÍ RISÁLÁ, JIS KÁ NÁM SARASWATÍ HAI, SHÁE HOTÁ HAI. YEH RISÁLÁ APNE ÁLÁ MAZÁMÍN AUR UMDA WAZÁ KÍ WAJAH SE SÚBA-JÁT-Í ÁGRA WA OUDH MEN MASHHÚR HAI.

SARASWATÍ KE MAZÁMÍN JUHI (KÁNPUR) MEN MURATTAB HOTE HAIN, LEKIN US KÍ ISHÁAT INDIAN-PRESS WÁKÁ ALLAHÁBÁD SE HOTÍ HAI.

शास्त्रीजी—"आपके कहने से अनुमान होता है कि यह एक ही विज्ञापन दो भिन्न भाषाओं में है, यद्यपि दोनों की वर्णमाला एक ही है। और यह भी देखने से मालूम होता है कि दोनों पाठों में चार पांच पदों को छोड़कर बाक़ी पद परस्पर नहीं मिलते और मिलें कहाँ से भाषाएं ही जो भिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठहरीं। परन्तु यह समझ में नहीं आता कि यह चार पाँच पद क्यों दोनों में समान रूप के हैं, और यदि इसका कारण निश्चय हो भी जाय, तो भी इस विज्ञापन की सहायता से अँगरेज़ी वर्णमाला क्योंकर बन सकती है?"

आग़ाजी—"अख़ाह! शास्त्रीजी आपको यह नहीं मालूम! देखिए मैं बतलाऊँ। यह जो चार पाँच लफ़्ज़ दोनों ज़बानों में यकसाँ लिखे हैं यह अस्माए मा—"

सय्यद साहिब—"बस आप ज़रा ताम्मुल कीजिए! आप अँगरेज़ी हुरूफ़तहज्जी से वाक़िफ़ हैं इसलिए आप पर वजह साफ़ ज़ाहिर है। आप की तारीफ़ तो तब थी जब किसी ग़ैर ज़बान की तहरीर में बिलामदद ग़ैरे यह ख़याल आपको आजाता।"

आग़ाजी—"बेशक आप दुरुस्त फ़रमाते हैं, ग्रोटफ़ेण्ड और रॉलिन्सन ने बड़ी तारीफ़ के लायक़ काम किया।"

पण्डित देवदत्त शास्त्री विज्ञापन की लिपि का विचार कर ही रहे थे कि इतने में मवज़्ज़िन की आवाज़ आई। सय्यद साहिब को मग़रिब की नमाज़ का ख़याल आया। शास्त्रीजी भी सन्ध्या से पहले घर पहुँचने की फ़िक्र में पड़े, और आग़ाजी को भी मेसोनिक लॉज (Masonic Lodge) की याद आई। चलते समय शास्त्रीजी ने कहा, "मीरसाहब, हम यह विज्ञापन लिये जाते हैं। घर पहुँचकर इस वर्णमाला को समझने का यत्न करेंगे। आज हमारे स्कूल की परीक्षा समाप्त होकर स्कूल बन्द हो गया है; एक महीने बाद खुलेगा। हमारा गाँव तिलहर के स्टेशन से नौ दस कोस है। कल प्रातःकाल की गाड़ी में सवार होकर यहाँ से जायँगे और आशा है कि सायंकाल तक घर पहुँच जायँगे। यदि सब तरह से कुशल रहा तो अगले महीने की पचीस छबीस तारीख़ तक फिर आप से मिलेंगे।"

[असमाप्त

"बार्हस्पत्यः"

निदाघ-वर्णन।

१—अहह! उष्ण हवा चलने लगी;
अवनि आतप से जलने लगी।
गगन में रज का दल छा गया;
गत वसन्त हुआ तप आगया॥

२—न उड़ता अब पुष्प-पराग है;
न पिक के मन में अनुराग है।
न मलयानिल ही चलती कभी;
प्रकृति-दृश्य मलीन हुए सभी॥

३—प्रखर आतप से दुख पा कर,
सुखद चन्दन पङ्क लगा कर।
मृदुल मञ्जुल और सुवासित
पहनती अब वस्त्र वधू नित॥

४—कर रहीं अति ताप प्रदान हैं;
हर रहीं सलिलाशय मान हैं।
अति-प्रचण्ड-प्रकाश-निधान हैं;
रवि-मयूख मयूख* समान हैं॥

५—तरु जहाँ करते मधु-दान थे,
हृदय को हरते †द्विज-गान थे।
अचल थी मधु‡ की सुषमा जहाँ
बिखर भस्म रही अब है वहाँ!!!

६—सर समान हुईं नदियाँ अब,
सर हुए कृश पल्वल§ से सब।
सकल पल्वल सूख गये तथा,
अहह! दुस्सह है तप सर्वथा॥

७—न घटती तनु की अब दाह है;
सलिल की रहती नित चाह है।
कल नहीं पड़ती गरमी बड़ी,
युग समान अहो कटती घड़ी॥

८—व्यथित होकर आतप से अति,
तृण नहीं चरते पशु सम्प्रति।

---

* मयूख = अग्नि की ज्वाला।
† द्विज = पक्षी।
‡ मधु = चैत्र।
§ पल्वल = पोखरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिण, सिंह, मतङ्गज, शूकर,
तृषित हैं फिरते वन भीतर ॥

९—प्रखर आतप से अकुला कर,
दल-दृगम्बु गिरा कर भू पर।
पवन-पीड़ित वृक्ष लता सब,
रुदन सा करते रहते अब ॥

१०—तृषित भी खग दोपहरी भर
तज नहीं सकते निज कोटर।
छिप किसी बिधि वे रहते वहीं;
निकलते तप के भय से नहीं ॥

११—यह न मारुत है वर व्याल है;
न यह आतप है करवाल है।
न यह भूमि, चिता सुविशाल है;
तप नहीं यह काल कराल है ॥

१२—मुदित मीन जहाँ नित डोलते,
मधुप थे कमलों पर बोलते।
शशि-छटा प्रतिबिम्बित थी जहाँ,
अहह! आज मरुस्थल है वहाँ ॥

१३—प्रचण्ड मार्त्तण्ड हुए अतीव;
हैं ताप से व्याकुल सर्व जीव।
वृक्षादि हैं कान्तिविहीन, दीन;
हुईं रजःपूर्ण दिशा मलीन ॥

१४—है जो जगत्प्राण मरुत् प्रसिद्ध,
होते उसी से अब प्राण विद्ध।
हैं ख्यात जो मित्र तथा दिनेश,
देते वही हैं अब तीक्ष्ण क्लेश!

१५—कान्ता कपोलों पर स्वेद-सीकर,
हैं यों सुहाते तप में मनोहर।
ज्यों ओस के बूँद प्रभातकाल में,
फूले हुए सुन्दर पद्म-जाल में ॥

१६—है तीर तुल्य लगती तप में समीर,
सन्ताप-पीड़ित सदा रहता शरीर।
स्वेद-प्रवाह बहता रहता नितान्त,
होती तृषा सलिल पीकर भी न शान्त ॥

१७—कर्पूर, चन्दन, सुशीतल, स्वच्छ नीर,
भूगर्भगेह, जलयंत्र, तथा उशीर।
चन्द्र-प्रकाश, मृदु भोजन, पुष्प-हार,
देते समस्त सुख हैं अब ये अपार ॥*

मैथिलीशरण गुप्त।

कवि और कविता।

पाँच छ वर्ष हुए सरस्वती की किसी संख्या में "कवि-कर्तव्य" नाम का एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें यह दिखलाया गया था कि कविता को सरस, मनोरञ्जक और हृदय-ग्राहिणी बनाने के लिए कवि को किन किन बातों का ख़याल रखना चाहिए। क्योंकि अच्छी कविता लिखना सब का काम नहीं। पर इस बात का विचार आज-कल के कितनेहीं पद्य-रचना-कर्ता बहुत कम करते हैं। उन्होंने कविता लिखना बहुत सहल काम समझ लिया है। वे शायद तुली हुई पंक्तियों ही को कविता समझते हैं। यह भ्रम है। कविता एक चीज़ है, तुली हुई शब्द-स्थापना दूसरी चीज़।

उर्दू का साहित्य-समूह हिन्दी से बहुत बढ़ा चढ़ा है। इस बात को क़बूल करनाही चाहिए। हिन्दी के हितैषियों को उचित है कि हिन्दी-साहित्य को उन्नत करके उसकी लाज रक्खें। उर्दू में इस समय अनेक विषयों के कितनेही ऐसे ऐसे ग्रन्थ विद्यमान हैं जिनका हिन्दी में नाम तक नहीं। उर्दू-लेखकों में शम्सुल-उलमा हाली, आज़ाद, ज़काउल्ला, नज़ीरअहमद आदि की बराबरी करनेवाला हिन्दी में शायदही कोई हो। इन साहित्य-सेवियों ने उर्दू के ज्ञानागार को ख़ूब समृद्धि-शाली कर दिया है। हिन्दीवालों को चाहिए कि वे इन लोगों की पुस्तकें पढ़ें और वैसेही पुस्तकें हिन्दी में लिखने की कोशिश करें। इनमें से प्रोफ़ेसर आज़ाद का ज़िक्र सरस्वती में आचुका है। उनकी एक किताब

* यह कविता गत मास देने से रह गई थी। इससे इस बार देना पड़ा। सं० स०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भाषा-सम्बन्धी कुछ अवतरण देकर आज़ाद की विद्वत्ता का परिचय हम पाठकों से करा चुके हैं। आज हमें हाली के विषय में कुछ कहना है।

शम्स-उल-उलमा मौलाना अल्ताफ़ हुसैन, हाली, उर्दू के बहुत बड़े कवि हैं। आपने उर्दू में नई तरह की कविता की नींव डाली है। आपकी "मुसद्दस" नाम की कविता ग़ज़ब की है। जिन्होंने इसे न पढ़ा हो, ज़रूर पढ़ें। आप देहली के पास, पानीपत के रहनेवाले हैं। देहली के प्रसिद्ध कवि असदुल्ला ख़ाँ (ग़ालिब) की कृपा से आपने कविता सीखी। पहले आप लाहौर में मुलाज़िम थे। वहाँ से देहली आये। अब आप शायद पानीपत में मकान ही पर रहते हैं। बूढ़े हो गये हैं। आपने कई अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखी हैं। कविता में आपका बड़ा नाम है। आपने "मुक़द्दमा" नाम का एक लेख लिखा है। यह लेख आपके "दीवान" के साथ छपा है। इस लेख में आपने कवि और कविता पर अपने विचार बड़ी योग्यता से प्रकट किये हैं। प्रायः उसी के आधार पर हम यह लेख लिखते हैं।

यह बात सिद्ध समझी गई है कि कविता अभ्यास से नहीं आती। जिसमें कविता करने का स्वाभाविक माद्दा होता है वही कविता कर सकता है। देखा गया है कि जिस विषय पर बड़े बड़े विद्वान् अच्छी कविता नहीं कर सकते उसी पर अपढ़ और कम उम्र लड़के कभी कभी अच्छी कविता लिख देते हैं। इससे स्पष्ट है कि किसी किसी में कविता लिखने की इस्तेदाद स्वाभाविक होती है—ईश्वरदत्त होती है। जो चीज़ ईश्वरदत्त है वह अवश्य लाभदायक होगी। वह निरर्थक नहीं हो सकती। उससे समाज को कुछ न कुछ लाभ अवश्य पहुँचता है। अतएव यदि कोई यह समझता हो कि कविता करना व्यर्थ है तो यह उसकी भूल है। हाँ कविता के लक्षणों से च्युत, तुले हुए वर्णों या मात्राओं की पद्य-नामक पंक्तियाँ, व्यर्थ हो सकती हैं। आज कल प्रायः ऐसी ही पद्य-मालिकाओं का प्राचुर्य्य है। इससे यदि कविता को कोई व्यर्थ समझे तो आश्चर्य्य नहीं।

कविता यदि यथार्थ में कविता है तो सम्भव नहीं कि उसे सुनकर सुनने वाले पर कुछ असर न हो। कविता से दुनिया में आज तक बहुत बड़े बड़े काम हुए हैं। इस बात के प्रमाण मौजूद हैं। अच्छी कविता सुनकर कविता-गत रस के अनुसार, दुःख, शोक, क्रोध, करुणा, जोश आदि भाव पैदा हुए बिना नहीं रहते। और जैसा भाव मन में पैदा होता है, कार्य्य के रूप में फल भी वैसा ही होता है। हम लोगों में, पुराने ज़माने में, भाट, चारण आदि अपनी कविता ही की बदौलत वीरों में वीरता का सञ्चार कर देते थे। पुराणादि में कारुणिक प्रसङ्गों का वर्णन सुनने और उत्तर-रामचरित आदि दृश्य काव्यों का अभिनय देखने, से जो अश्रुपात होने लगता है वह क्या है? वह अच्छी कविता ही का प्रभाव है। पुराने ज़माने में ग्रीस के एथन्स नगर वाले मेगारावालों से वैरभाव रखते थे। एक टापू के लिए उनमें कई दफ़े लड़ाइयाँ हुईं। पर हर दफ़े एथन्सवालों ही की हार हुई। इस पर सोलन नाम के विद्वान् को बड़ा दुःख हुआ। उसने एक कविता लिखी। उसे उसने एक ऊंची जगह पर चढ़ कर एथन्स वालों को सुनाया। कविता का भावार्थ यह था—"मैं एथन्स में न पैदा होता तो अच्छा था। मैं किसी और देश में क्यों न पैदा हुआ? मुझे ऐसे देश में पैदा होना था जहाँ के निवासी मेरे देश-भाइयों से अधिक वीर, अधिक कठोर-हृदय और उनकी विद्या से बिलकुल बे-ख़बर होते। मैं अपनी वर्तमान अवस्था की अपेक्षा उस अवस्था से अधिक सन्तुष्ट होता। यदि मैं किसी ऐसे देश में पैदा होता तो लोग मुझे देखकर यह तो न कहते कि, यह आदमी उसी एथन्स का रहने वाला है जहाँ वाले मेगारा के निवासियों से लड़ाई में हार गये और लड़ाई के मैदान से भग निकले। प्यारे देशबन्धु! अपने शत्रुओं से जल्द इसका बदला लो। अपने इस कलङ्क को फ़ौरन धो डालो। अपने लज्जाजनक पराजय के अपयश को दूर कर दो। जब तक अपने अन्यायी शत्रुओं के हाथ से अपना छिना हुआ देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिण, सिंह, मतङ्गज, शूकर,
तृषित हैं फिरते वन भीतर ॥

९—प्रखर आतप से अकुला कर,
दल-दृगम्बु गिरा कर भू पर।
पवन-पीड़ित वृक्ष लता सब,
रुदन सा करते रहते अब ॥

१०—तृषित भी खग दोपहरी भर
तज नहीं सकते निज कोटर।
छिप किसी बिधि वे रहते वहीं;
निकलते तप के भय से नहीं ॥

११—यह न मारुत है वर व्याल है;
न यह आतप है करवाल है।
न यह भूमि, चिता सुविशाल है;
तप नहीं यह काल कराल है ॥

१२—मुदित मीन जहाँ नित डोलते,
मधुप थे कमलों पर बोलते।
शशि-छटा प्रतिबिम्बित थी जहाँ,
अहह! आज मरुस्थल है वहाँ ॥

१३—प्रचण्ड मार्त्तण्ड हुए अतीव;
हैं ताप से व्याकुल सर्व जीव।
वृक्षादि हैं कान्तिविहीन, दीन;
हुईं रजःपूर्ण दिशा मलीन ॥

१४—है जो जगत्प्राण मरुत् प्रसिद्ध,
होते उसी से अब प्राण विद्ध।
हैं ख्यात जो मित्र तथा दिनेश,
देते वही हैं अब तीक्ष्ण क्लेश!

१५—कान्ता कपोलों पर स्वेद-सीकर,
हैं यों सुहाते तप में मनोहर।
ज्यों ओस के बूँद प्रभातकाल में,
फूले हुए सुन्दर पद्म-जाल में ॥

१६—है तीर तुल्य लगती तप में समीर,
सन्ताप-पीड़ित सदा रहता शरीर।
स्वेद-प्रवाह बहता रहता नितान्त,
होती तृषा सलिल पीकर भी न शान्त ॥

१७—कर्पूर, चन्दन, सुशीतल, स्वच्छ नीर,
भूगर्भगेह, जलयंत्र, तथा उशीर।
चन्द्र-प्रकाश, मृदु भोजन, पुष्प-हार,
देते समस्त सुख हैं अब ये अपार ॥*

मैथिलीशरण गुप्त।

कवि और कविता।

कुछ वर्ष हुए सरस्वती की किसी संख्या में "कवि-कर्तव्य" नाम का एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें यह दिखलाया गया था कि कविता को सरस, मनोरञ्जक और हृदय-ग्राहिणी बनाने के लिए कवि को किन किन बातों का ख़याल रखना चाहिए। क्योंकि अच्छी कविता लिखना सब का काम नहीं। पर इस बात का विचार आज-कल के कितनेहीं पद्य-रचना-कर्ता बहुत कम करते हैं। उन्होंने कविता लिखना बहुत सहल काम समझ लिया है। वे शायद तुली हुई पंक्तियों ही को कविता समझते हैं। यह भ्रम है। कविता एक चीज़ है, तुली हुई शब्द-स्थापना दूसरी चीज़।

उर्दू का साहित्य-समूह हिन्दी से बहुत बढ़ा चढ़ा है। इस बात को क़बूल करनाही चाहिए। हिन्दी के हितैषियों को उचित है कि हिन्दी-साहित्य को उन्नत करके उसकी लाज रक्खें। उर्दू में इस समय अनेक विषयों के कितनेही ऐसे ऐसे ग्रन्थ विद्यमान हैं जिनका हिन्दी में नाम तक नहीं। उर्दू-लेखकों में शम्सुल-उलमा हाली, आज़ाद, ज़काउल्ला, नज़ीरअहमद आदि की बराबरी करनेवाला हिन्दी में शायदही कोई हो। इन साहित्य-सेवियों ने उर्दू के ज्ञानागार को ख़ूब समृद्धि-शाली कर दिया है। हिन्दीवालों को चाहिए कि वे इन लोगों की पुस्तकें पढ़ें और वैसेही पुस्तकें हिन्दी में लिखने की कोशिश करें। इनमें से प्रोफ़ेसर आज़ाद का ज़िक्र सरस्वती में आचुका है। उनकी एक किताब

* यह कविता गत मास देने से रह गई थी। इससे इस बार देना पड़ा। सं० स०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भाषा-सम्बन्धी कुछ अवतरण देकर आज़ाद की विद्वत्ता का परिचय हम पाठकों से करा चुके हैं। आज हमें हाली के विषय में कुछ कहना है।

शम्स-उल-उल्मा मौलाना अल्ताफ़ हुसैन, हाली, उर्दू के बहुत बड़े कवि हैं। आपने उर्दू में नई तरह की कविता की नीव डाली है। आपकी "मुसद्दस" नाम की कविता ग़ज़ब की है। जिन्होंने इसे न पढ़ा हो, ज़रूर पढ़ें। आप देहली के पास, पानीपत के रहनेवाले हैं। देहली के प्रसिद्ध कवि असदुल्ला ख़ाँ (ग़ालिब) की कृपा से आपने कविता सीखी। पहले आप लाहौर में मुलाज़िम थे। वहाँ से देहली आये। अब आप शायद पानीपत में मकान ही पर रहते हैं। बूढ़े हो गये हैं। आपने कई अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखी हैं। कविता में आपका बड़ा नाम है। आपने "मुक़द्दमा" नाम का एक लेख लिखा है। यह लेख आपके "दीवान" के साथ छपा है। इस लेख में आपने कवि और कविता पर अपने विचार बड़ी योग्यता से प्रकट किये हैं। प्रायः उसी के आधार पर हम यह लेख लिखते हैं।

यह बात सिद्ध समझी गई है कि कविता अभ्यास से नहीं आती। जिसमें कविता करने का स्वाभाविक माद्दा होता है वही कविता कर सकता है। देखा गया है कि जिस विषय पर बड़े बड़े विद्वान् अच्छी कविता नहीं कर सकते उसी पर अपढ़ और कम उम्र लड़के कभी कभी अच्छी कविता लिख देते हैं। इससे स्पष्ट है कि किसी किसी में कविता लिखने की इस्तेदाद स्वाभाविक होती है—ईश्वरदत्त होती है। जो चीज़ ईश्वरदत्त है वह अवश्य लाभदायक होगी। वह निरर्थक नहीं हो सकती। उससे समाज को कुछ न कुछ लाभ अवश्य पहुँचता है। अतएव यदि कोई यह समझता हो कि कविता करना व्यर्थ है तो यह उसकी भूल है। हाँ कविता के लक्षणों से च्युत, तुले हुए वर्णों या मात्राओं की पद्य-नामक पंक्तियाँ, व्यर्थ हो सकती हैं। आज कल प्रायः ऐसी ही पद्य-मालिकाओं का प्राचुर्य्य है। इससे यदि कविता को कोई व्यर्थ समझे तो आश्चर्य्य नहीं।

कविता यदि यथार्थ में कविता है तो सम्भव नहीं कि उसे सुनकर सुनने वाले पर कुछ असर न हो। कविता से दुनिया में आज तक बहुत बड़े बड़े काम हुए हैं। इस बात के प्रमाण मौजूद हैं। अच्छी कविता सुनकर कविता-गत रस के अनुसार, दुःख, शोक, क्रोध, करुणा, जोश आदि भाव पैदा हुए बिना नहीं रहते। और जैसा भाव मन में पैदा होता है, कार्य्य के रूप में फल भी वैसा ही होता है। हम लोगों में, पुराने ज़माने में, भाट, चारण आदि अपनी कविता ही की बदौलत वीरों में वीरता का सञ्चार कर देते थे। पुराणादि में कारुणिक प्रसङ्गों का वर्णन सुनने और उत्तर-रामचरित आदि दृश्य काव्यों का अभिनय देखने, से जो अश्रुपात होने लगता है वह क्या है? वह अच्छी कविता ही का प्रभाव है। पुराने ज़माने में ग्रीस के एथन्स नगर वाले मेगारावालों से वैरभाव रखते थे। एक टापू के लिए उनमें कई दफ़े लड़ाइयाँ हुई। पर हर दफ़े एथन्सवालों ही की हार हुई। इस पर सोलन नाम के विद्वान् को बड़ा दुःख हुआ। उसने एक कविता लिखी। उसे उसने एक ऊंची जगह पर चढ़ कर एथन्स वालों को सुनाया। कविता का भावार्थ यह था—"मैं एथन्स में न पैदा होता तो अच्छा था। मैं किसी और देश में क्यों न पैदा हुआ? मुझे ऐसे देश में पैदा होना था जहाँ के निवासी मेरे देश-भाइयों से अधिक वीर, अधिक कठोर-हृदय और उनकी विद्या से बिलकुल बे-ख़बर होते। मैं अपनी वर्तमान अवस्था की अपेक्षा उस अवस्था से अधिक सन्तुष्ट होता। यदि मैं किसी ऐसे देश में पैदा होता तो लोग मुझे देखकर यह तो न कहते कि, यह आदमी उसी एथन्स का रहने वाला है जहाँ वाले मेगारा के निवासियों से लड़ाई में हार गये और लड़ाई के मैदान से भग निकले। प्यारे देशबन्धु! अपने शत्रुओं से जल्द इसका बदला लो। अपने इस कलङ्क को फ़ौरन धो डालो। अपने लज्जाजनक पराजय के अपयश को दूर कर दो। जब तक अपने अन्यायी शत्रुओं के हाथ से अपना छिना हुआ देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न छुड़ा लो तब तक एक मिनट भी चैन से न बैठो"। इस कविता का लोगों के दिल पर इतना असर हुआ कि फ़ौरन मेगारावालों पर फिर चढ़ाई कर दी गई और जिस टापू के लिए यह बखेड़ा हुआ था उसे एथन्सवालों ने लेकर कल की। इस चढ़ाई में सोलन ही सेनापति बनाया गया था।

रोम, इँगलैंड, अरब, फ़ारस आदि देशों में इस बात के सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं कि कवियों ने असम्भव बातें सम्भव कर दिखाई हैं। जहाँ पस्त-हिम्मती का दौर दौरा था वहाँ जोश पैदा कर दिया है। जहाँ शान्ति थी वहाँ ग़दर मचा दिया है। अतएव कविता एक असाधारण चीज़ है। परन्तु बिरलेही को सत्कवि होने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

जब तक ज्ञान-वृद्धि नहीं होती—जब तक सभ्यता का ज़माना नहीं आता—तभी तक कविता की विशेष उन्नति होती है। क्योंकि सभ्यता और कविता में परस्पर विरोध है। सभ्यता और विद्या की वृद्धि होने से कविता का असर कम हो जाता है। कविता में कुछ न कुछ झूठ का अंश ज़रूर रहता है। असभ्य अथवा अर्द्ध-सभ्य लोगों को यह अंश कम खटकता है, शिक्षित और सभ्य लोगों को बहुत। तुलसीदास की रामायण के ख़ास ख़ास स्थलों का स्त्रियों पर जितना प्रभाव पड़ता है उतना पढ़े लिखे आदमियों पर नहीं। पुराने काव्यों को पढ़ने से लोगों का चित्त जितना पहले आकृष्ट होता था उतना अब नहीं होता। हज़ारों वर्ष से कविता का क्रम जारी है। जिन प्राकृतिक बातों का वर्णन कवि करते हैं उनका वर्णन बहुत कुछ अब तक हो चुका। जो नये कवि होते हैं वे भी उलट फेर से प्रायः उन्हीं बातों का वर्णन करते हैं। इसी से अब कविता कम हृदयग्राहिणी होती है।

संसार में जो बात जैसी देख पड़े कवि को उसे वैसी ही वर्णन करनी चाहिए। उसके लिए किसी तरह की रोक या पाबन्दी का होना अच्छा नहीं। दबाव से कवि का जोश दब जाता है। उसके मन में जो भाव आपही आप पैदा होते हैं उन्हें जब वह निडर होकर अपनी कविता में प्रकट करता है तभी उसका पूरा पूरा असर लोगों पर पड़ता है। बनावट से कविता बिगड़ जाती है। किसी राजा या किसी व्यक्ति-विशेष के गुण दोषों को देखकर कवि के मन में जो भाव उद्भूत हों उन्हें यदि वह बे रोक टोक प्रकट कर दे तो उसकी कविता हृदयद्रावक हुए बिना न रहे। परन्तु परतंत्रता, या पुरस्कार-प्राप्ति, या और किसी कारण से, सच बात कहने में किसी तरह की रुकावट पैदा हो जाने से, यदि उसे अपने मन की बात कहने का साहस नहीं होता तो, कविता का रस ज़रूर कम हो जाता है। इस दशा में अच्छे कवियों की भी कविता नीरस, अतएव प्रभावहीन, हो जाती है। सामाजिक और राजनैतिक विषयों में, कटु होने से सच कहना भी जहाँ मना है, वहाँ इन विषयों पर कविता करनेवाले कवियों की उक्तियों का प्रभाव क्षीण हुए बिना नहीं रहता। कवि के लिए कोई रोक न होनी चाहिए। अथवा जिस विषय में रोक हो उस विषय पर कविता ही न लिखनी चाहिए। नदी, तालाब, वन, पर्वत, फूल, पत्ती, गरमी, सरदी आदि ही के वर्णन से उसे सन्तोष करना उचित है।

ख़ुशामद के ज़माने में कविता की बुरी हालत होती है। जो कवि राजाओं, नवाबों या बादशाहों के आश्रय में रहते हैं, अथवा उनको ख़ुश करने के इरादे से कविता करते हैं, उनको ख़ुशामद करनी पड़ती है। वे अपने आश्रयदाताओं की इतनी प्रशंसा करते हैं, इतनी स्तुति करते हैं, कि उनकी उक्तियाँ असलियत से बहुत दूर जा पड़ती हैं। इससे कविता को बहुत हानि पहुँचती है। विशेष करके शिक्षित और सभ्य देशों में कवि का काम प्रभावोत्पादक रीति से यथार्थ घटनाओं का वर्णन करना है, आकाश-कुसुमों के गुलदस्ते तैयार करना नहीं। अलङ्कार-शास्त्र के आचार्यों ने अतिशयोक्ति एक अलङ्कार ज़रूर माना है। परन्तु अभावोक्तियाँ भी क्या कोई अलङ्कार हैं? किसी कवि की बेसिर पैर की बातें सुनकर, किस समझदार आदमी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्द-प्राप्ति हो सकती है ? जिस समाज के लोग अपनी झूठी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होते हैं वह समाज कभी प्रशंसनीय नहीं समझा जाता। काबुल के अमीर हबीबुल्लाख़ाँ ने कवितावद्ध अपनी निराधार प्रशंसा सुनने से, अभी कुछ ही दिन हुए, इनकार कर दिया। यह बात पाठकों से छिपी नहीं है। ख़ुशामद-पसन्द आदमी कभी आदर की दृष्टि से नहीं देखे जाते।

कारणवश अमीरों की झूठी प्रशंसा करने, अथवा किसी एकही विषय की कविता में कवि-समुदाय के आजन्म लगे रहने, से कविता की सीमा कट छँट कर बहुत थोड़ी रह जाती है। इस तरह की कविता उर्दू में बहुत अधिक है। यदि यह कहें कि आशिक़ाना (शृंगारिक) कविता के सिवा और तरह की कविता उर्दू में है ही नहीं, तो बहुत बड़ी अत्युक्ति न होगी। किसी दीवान को उठाइए, किसी मसनवी को उठाइए, आशिक़-माशूक़ों के रंगीन रहस्यों से आप उसे आरंभ से अन्त तक रंगी हुई पाइएगा। इश्क़ भी यदि सच्चा हो तो कविता में कुछ असलियत आसकती है। पर क्या कोई कह सकता है कि आशिक़ाना शेर कहनेवालों का सारा रोना, कराहना, ठंढी सासें लेना, जीते ही अपनी क़ब्रोंपर चिराग़ जलाना सब सच है ? सब न सही, उनके प्रलापों का क्या थोड़ा सा भी अंश सच है ? फिर इस तरह की कविता सैकड़ों वर्ष से होती आ रही है। अनेक कवि हो चुके, जिन्होंने इस विषय पर न मालूम क्या क्या लिख डाला है। इस दशा में नये कवि अपनी कविता में नयापन कैसे ला सकते हैं ? वही तुक, वही छन्द, वही शब्द, वही उपमा, वही रूपक ! इस पर भी लोग पुरानी लकीर को बराबर पीटते जाते हैं। कवित्त, सवैये, घनाक्षरी, दोहे, सोरठे लिखने से बाज़ नहीं आते। नख-सिख, नायिका-भेद, अलङ्कार-शास्त्र पर पुस्तकों पर पुस्तकें लिखते चले जाते हैं। अपनी व्यर्थ बनावटी बातों से देवी-देवताओं तक को बदनाम करने से नहीं सकुचते। फल इसका यह हुआ है कि कविता की असलियत काफ़ूर हो गई है। उसे सुनकर सुनने वाले के चित्त पर कुछ भी असर नहीं होता। उलटा कभी कभी मन में घृणा का उद्रेक अवश्य उत्पन्न हो जाता है।

कविता के बिगड़ने और उसकी सीमा परिमित हो जाने से साहित्य पर भारी आघात होता है। वह बरबाद हो जाता है। भाषा में दोष आ जाता है। जब कविता की प्रणाली बिगड़ जाती है तब उसका असर सारे ग्रन्थकारों पर पड़ता है। यही क्यों, सर्वसाधारण की बोल चाल तक में कविता के दोष आ जाते हैं। जिन शब्दों, जिन भावों, जिन उक्तियों का प्रयोग कवि करते हैं उन्हीं का प्रयोग और लोग भी करने लगते हैं। भाषा और बोल चाल के सम्बन्ध में कविही प्रमाण माने जाते हैं। कवियों हीं के प्रयुक्त शब्दों और मुहाविरों को कोशकार अपने कोशों में रखते हैं। मतलब यह कि भाषा और बोल चाल का बनाना या बिगाड़ना प्रायः कवियों ही के हाथ में रहता है। जिस भाषा के कवि अपनी कविता में बुरे शब्द और बुरे भाव भरते रहते हैं उस भाषा की उन्नति तो होती नहीं, उलटा अवनति होती जाती है।

कविता-प्रणाली के बिगड़ जाने पर यदि कोई नये तरह की स्वाभाविक कविता करने लगता है तो लोग उसकी निन्दा करते हैं। कुछ नासमझ और नादान आदमी कहते हैं यह बड़ी भद्दी कविता है। कुछ कहते हैं यह कविता ही नहीं। कुछ कहते हैं कि यह कविता तो "छन्दःप्रभाकर" में दिये गये लक्षणों से च्युत है, अतएव यह निर्दोष नहीं। बात यह है कि जिसे वे अब तक कविता कहते आये हैं वही उनकी समझ में कविता है और सब कोरी काँव काँव! इसी तरह की नुकताचीनी से तंग आकर अँगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि-गोल्डस्मिथ ने अपनी कविता को सम्बोधन करके उसकी सान्त्वना की है। वह कहता है—"कविते! यह बेक़दरी का ज़माना है। लोगों के चित्त का तेरी तरफ़ खिँचना तो दूर रहा, उलटा सब कहीं तेरी निन्दा होती है। तेरी बदौलत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा-समाजों और जलसों में मुझे लज्जित होना पड़ता है। पर जब मैं अकेला होता हूँ तब तुझ पर मैं घमण्ड करता हूँ। याद रख, तेरी उत्पत्ति स्वाभाविक है। जो लोग अपने प्राकृतिक बल पर भरोसा रखते हैं वे निर्धन होकर भी आनन्द से रह सकते हैं। पर अप्राकृतिक बल पर किया गया गर्व कुछ दिन बाद ज़रूर चूर्ण हो जाता है"। गोल्डस्मिथ ने इस विषय में बहुत कुछ कहा है; पर हमने उसके कथन का सारांश बहुत ही थोड़े शब्दों में दिया है। इससे प्रकट है कि नई कविता-प्रणाली पर भृकुटी टेढ़ी करनेवाले कवि-प्रकाण्डों के कहने की कुछ भी परवा न करके अपने स्वीकृत पथ से ज़रा भी इधर उधर होना उचित नहीं। नई बातों से घबराना और उनके पक्षपातियों की निन्दा करना मनुष्य का स्वभाव ही सा हो गया है। अतएव नई भाषा और नई कविता पर यदि कोई नुकताचीनी करे तो आश्चर्य्य नहीं।

आजकल लोगों ने कविता और पद्य को एक ही चीज़ समझ रक्खा है। यह भ्रम है। कविता और पद्य में वही भेद है जो अँगरेज़ी की 'पोयटरी' (Poetry) और 'वर्स' (Verse) में है। किसी प्रभावोत्पादक और मनोरञ्जक लेख, बात या वक्तृता का नाम कविता है। और नियमानुसार तुली हुई सतरों का नाम पद्य है। जिस पद्य के पढ़ने या सुनने से चित्त पर असर नहीं होता वह कविता नहीं। वह मपी तुली शब्द-स्थापना मात्र है। गद्य और पद्य दोनों में कविता हो सकती है। तुकबन्दी और अनुप्रास कविता के लिए अपरिहार्य्य नहीं। संस्कृत का प्रायः सारा पद्य-समूह बिना तुकबन्दी का है। और संस्कृत से बढ़कर कविता शायद ही किसी और भाषा में हो। अरब में भी सैकड़ों अच्छे अच्छे कवि हो गये हैं। वहाँ भी शुरू शुरू में तुकबन्दी का बिलकुल ख़याल न था। अँगरेज़ी में भी अनुप्रास-हीन बेतुकी कविता होती है। हाँ एक बात ज़रूर है कि वज़न और क़ाफ़िये से कविता अधिक चित्ताकर्षक हो जाती है। पर कविता के लिए ये बातें ऐसी ही हैं जैसे कि शरीर के लिए वस्त्राभरण। यदि कविता का प्रधान धर्म्म मनोरञ्जकता और प्रभावोत्पादकता उसमें न हो तो इनका होना निष्फल समझना चाहिए। पद्य के लिए क़ाफ़िए वग़ैरह की ज़रूरत है। कविता के लिए नहीं। कविता के लिए तो ये बातें एक प्रकार से उलटा हानिकारक हैं। तुले हुए शब्दों में कविता करने और तुक, अनुप्रास आदि ढूँढने से कवियों के विचार-स्वातन्त्र्य में बड़ी बाधा आती है। पद्य के नियम कवि के लिए एक प्रकार की बेड़ियाँ हैं। उनसे जकड़ जाने से कवियों को अपने स्वाभाविक उड्डान में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कवि का काम है कि वह अपने मनोभावों को स्वाधीनतापूर्वक प्रकट करे। पर क़ाफ़िया और वज़न उसकी स्वाधीनता में विघ्न डालते हैं। उसे अपने भावों को वे स्वतन्त्रता से नहीं प्रकट होने देते। क़ाफ़िये और वज़न को पहले ढूँढ़ कर कवि को अपने मनोभाव तदनुकूल गढ़ने पड़ते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि प्रधान बात अप्रधानता को प्राप्त हो जाती है, और एक बहुत ही गौण बात प्रधानता के आसन पर जा बैठती है। इससे कवि अपने भाव स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं प्रकट कर सकता। फल यह होता है कि कवि की कविता का असर कम हो जाता है। कभी कभी तो वह बिलकुल ही जाता रहता है। अब आपही कहिए कि जो वज़न और क़ाफ़िया कविता के लक्षण का कोई अंश नहीं उन्हेंही प्रधानता देना भारी भूल है या नहीं?

जो बात एक असाधारण और निराले ढंग से शब्दों के द्वारा इस तरह प्रकट की जाय, कि सुनने वाले पर उसका कुछ न कुछ असर ज़रूर पड़े, उसी का नाम कविता है। आज कल हिन्दी में जो सज्जन पद्य-रचना करते हैं और उसे कविता समझ कर छपाने दौड़ते हैं उनको यह बात ज़रूर याद रखनी चाहिए। इन पद्य-रचयिताओं में कुछ ऐसे भी हैं जो अपने पद्यों को कालिदास, होमर और बाइरन की कविता से भी बढ़ कर समझते हैं। यदि कोई सम्पादक उन्हें प्रकाशित करने से इनकार करता है तो वे अपना अपमान समझते हैं और बेचारे सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के खिलाफ़ नाटक, प्रहसन और व्यङ्ग्यपूर्ण लेख प्रकाशित करके अपने जी की जलन शान्त करते हैं। वे इस बात को बिलकुलही भूल जाते हैं कि यदि उनकी पद्य-रचना अच्छी हो तो कौन ऐसा मूर्ख होगा जो उसे अपने पत्र या पुस्तक में सहर्ष और सधन्यवाद न प्रकाशित करेगा ?

कवि का सब से बड़ा गुण नई नई बातों का सूझना है। उसके लिए 'इमैजिनेशन' (Imagination) की बड़ी ज़रूरत है। जिसमें जितनीही अधिक यह शक्ति होगी वह उतनीही अधिक अच्छी कविता लिख सकेगा। कविता के लिए उपज चाहिए। नये नये भावों की उपज जिसके हृदय में नहीं होती वह कभी अच्छी कविता नहीं लिख सकता। ये बातें प्रतिभा की बदौलत होती हैं। इसी लिए संस्कृत-वालों ने प्रतिभा को प्रधानता दी है। प्रतिभा ईश्वरदत्त होती है। अभ्यास से वह नहीं प्राप्त होती। इस शक्ति को कवि माँ के पेट से लेकर पैदा होता है। इसी की बदौलत वह भूत और भविष्यत् को हस्तामलकवत् देखता है। वर्तमान की तो कोई बात ही नहीं। इसी की कृपा से वह सांसारिक बातों को एक अजीब निराले ढंग से बयान करता है जिसे सुनकर सुनने वाले के हृदयोदधि में नाना प्रकार के सुख, दुःख, आश्चर्य्य आदि विकारों की लहरें उठने लगती हैं। कवि कभी कभी ऐसी अद्भुत बातें कह देते हैं कि जो कवि नहीं हैं उनकी पहुँच वहाँ तक कभी हो ही नहीं सकती।

कवि का काम है कि वह प्रकृति-विकास को खूब ध्यान से देखे। प्रकृति की लीला का कोई ओर छोर नहीं। वह अनन्त है। प्रकृति अद्भुत अद्भुत खेल खेला करती है। एक छोटे से फूल में वह अजीब अजीब कौशल दिखाती है। वे साधारण आदमियों के ध्यान में नहीं आते। वे उनको समझ ही नहीं सकते। पर कवि अपनी सूक्ष्म दृष्टि से प्रकृति के कौशल अच्छी तरह देख लेता है; उनका वर्णन भी वह करता है; उनसे नाना प्रकार की शिक्षा भी ग्रहण करता है; और अपनी कविता के द्वारा संसार को लाभ पहुँचाता है। जिस कवि में प्राकृतिक दृश्य और प्रकृति के कौशल देखने और समझने का जितनाहीं अधिक ज्ञान होता है वह उतनाही बड़ा कवि भी होता है। प्रकृति-पर्य्यालोचना के सिवा कवि को मानव-स्वभाव की आलोचना का भी अभ्यास करना चाहिए। मनुष्य अपने जीवन में अनेक प्रकार के सुख दुःख आदि का अनुभव करता है। उसकी दशा कभी एक सी नहीं रहती। अनेक प्रकार के विकार-तरङ्ग उसके मन में उठाही करते हैं। इन विकारों की जाँच, ज्ञान और अनुभव करना सब का काम नहीं। केवल कवि ही इनके अनुभव करने और कविता द्वारा औरों को इनका अनुभव कराने में समर्थ होता है। जिसे कभी पुत्रशोक नहीं हुआ उसे उस शोक का यथार्थ ज्ञान होना सम्भव नहीं। पर यदि वह कवि है तो वह पुत्र-शोकाकुल पिता या माता की आत्मा में प्रवेश सा करके उसका अनुभव कर लेता है। उस अनुभव का वह इस तरह वर्णन करता है कि सुननेवाला तन्मनस्क होकर उस दुःख से अभिभूत हो जाता है। उसे ऐसा मालूम होने लगता है कि स्वयं उसी पर वह दुःख पड़ रहा है। जिस कवि को मनोविकारों और प्राकृतिक बातों का यथेष्ट ज्ञान नहीं होता वह कदापि अच्छा कवि नहीं हो सकता।

हाली के मुक़द्दमे को पढ़कर श्रीपण्डित पद्मसिंह शर्म्मा ने एक छोटा सा लेख सरस्वती में छपने भेजा है। उसमें आपने अलङ्कार शास्त्र के आचार्य्यों की राय लिखी है और संक्षेपतया यह दिखलाया है कि हमारे आलङ्कारिकों ने कविता के लिए किन किन बातों की ज़रूरत समझी है। इस लेख को अलग न प्रकाशित करके यहीं किये देते हैं। पाठक देखेंगे कि हाली की राय संस्कृतवालों से बहुत कुछ मिलती है।

नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतञ्च बहुनिर्मलम्।
अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः॥

(आचार्यदण्डी—काव्यादर्श)

"अर्थात् स्वाभाविकी प्रतिभा-शक्ति, (१) शब्द-शास्त्रादि तथा लोकाचारादि का विशुद्ध ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"(२) और प्रगाढ़ अभ्यास (३) यह सब मिलकर "काव्यरूप सम्पत्ति का कारण है—"श्रुत" शब्द के "अर्थ पं० जीवानन्द विद्यासागर ने ये किये हैं-- ""श्रुतं शास्त्रज्ञानं लोकाचारादिज्ञानञ्च"। 'लोका- "चारादिज्ञान' पद सृष्टिकार्य और मानवस्वभाव "इन दोनों के ज्ञान का बोधक है। जिनका उल्लेख "हाली ने अपनी दूसरी और तीसरी शर्त "सृष्टिकार्य- "पर्यालोचना" और "शब्दविन्यास-चातुर्य" नामक "में किया है। प्रगाढ़ अभ्यास की आवश्यकता "हाली ने "आमद और आवुर्द में फ़र्क़" पर बहस "करते हुए सिद्ध की है।

"इसी अभिप्राय का एक श्लोक यह है—

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥

"अर्थात् प्रतिभाशक्ति, काव्यादिशास्त्र तथा "लोकाचारादि के अवलोकन से प्राप्त हुई निपुणता, "और काव्यज्ञों की शिक्षा के अनुसार अभ्यास, ये "तीनों बातें कविता के उद्भव में हेतु हैं।

"कई आचार्यों ने प्रतिभा को ही काव्य का "कारण मानकर, व्युत्पत्ति को उसकी सुन्दरता का "और अभ्यास को वृद्धि का हेतु माना है। यथा—

कवित्वं जायते शक्तेर्वर्द्धतेऽभ्यासयोगतः।
तस्य चारुत्वनिष्पत्तौ व्युत्पात्तिस्तु गरीयसी॥

"इस मत की पुष्टि भी हाली के उस लेख से "होती है जो उन्होंने सब से पहली शर्त "तख़य्युल" "(प्रतिभा) पर लिखा है।

"इन्हीं सब बातों को हाली ने अपने मुक़द्दमे में "३७ से ५४ पृष्ठ तक उदाहरणादिकों से पल्लवित "किया है।

"सृष्टिकार्य-निरीक्षण की आवश्यकता" कवि "को क्यों है? इस बात को हाली ने 'मसनवी' पर "बहस करते हुए एक उदाहरण द्वारा समझाया "है। वे लिखते हैं—

"..... इसी प्रकार क़िस्से में ऐसी छोटी "छोटी प्रासङ्गिक बातों का बयान करना, जिन्हें "तजरिबा और मुशाहिदा झुटलाते हों, कदापि उचित "नहीं। इससे आख्यायिकाकार का इतना बेसलीक़ा- "पन साबित नहीं होता, जितनी उसकी अज्ञता "और लोकवृत्तान्त से अनभिज्ञता, या ज़रूरी "अनुभव प्राप्त करने से बेपरवाई साबित होती "है। जैसा कि "बदरेमुनीर" में एक ख़ास मौक़े "और वक़्त का समाँ इस तरह बयान किया है—

वो गाने का आलम वो हुस्ने बुताँ,
वो गुलशन की ख़ूबी वो दिन का समाँ।
दरख़्तों की कुछ छाँव और कुछ वो धूप,
वो धानों की सब्ज़ी वो सरसों का रूप॥

"अख़ीर मिसरे से साफ़ यह प्रतीत होता है "कि एक तरफ़ धान खड़े थे और एक तरफ़ सरसों "फूल रही थी। मगर यह बात वाक़े के ख़िलाफ़ "है, क्योंकि धान ख़रीफ़ में होते हैं, और सरसों "रबी में गेहुओं के साथ बोई जाती है।

"इसी विषय का कविकुलगुरु कालिदास के "विश्वविख्यात काव्य, तथा कविवर बिहारीलाल "की सतसई से एक एक प्रत्युदाहरण सुनिए—

"इक्षुच्छायनिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः॥"

रघुवंश।

"रघु की दिग्विजयार्थ यात्रा के उपोद्घात में "शरद्ऋतु का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि "ईख की छाया में बैठी हुईं धान रखानेवाली स्त्रियाँ "रघु का यश गाती थीं"। शरत्काल में जब धान "के खेत पकते हैं तब ईख इतनी बड़ी हो आती है "कि उसकी छाया में बैठकर खेत रखा सकें। ईख "और धान के खेत भी प्रायः पास ही पास हुआ "करते हैं। कवि को ये सब बातें विदित थीं। "श्लोक में इस दशा का—इस वास्तविक घटना "का—चित्र सा खींच दिया गया है। श्लोक पढ़ते "ही वह समाँ आँखों में फिरने लगता है।

"महाराजाधिराज विक्रमादित्य के सखा, राजसी "ठाठ से रहनेवाले कालिदास, ने ग़रीब किसानों "की, नगर से दूर, जङ्गल से सम्बन्ध रखनेवाली "एक वास्तविक घटना का कैसा मनोहर चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" उतारा है। यह उनके 'प्रकृतिपर्यालोचक' होने का
" दृढ़ प्रमाण है। दूसरा प्रत्युदाहरण—

सन सूक्यौ बीत्यौ बनौ ऊखौ लई उखारि।
हरी हरी अरहर अजौं धर धरहर हियनारि!
सतसई।

" पहले सन सूखता है, फिर बन—बाड़ी या कपास
" के खेत की बहार ख़त्म होती है। पुनः ईख के उखड़ने
" की बारी आती है। और इन सब से पीछे गेहुओं
" के साथ तक अरहर, हरी भरी खड़ी रहती है।

" ये सब बातें कवि ने कैसे सुन्दर और सरल
" ढंग से क्रमपूर्वक इस दोहे में बयान की हैं। इस
" के अनुप्रास की छटा, आदि अन्य काव्यगुणों पर
" ध्यान दिलाने का यह अवसर नहीं।

कविता को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए उचित शब्द-स्थापना की भी बड़ी ज़रूरत है। किसी मनोविकार या दृश्य के वर्णन में ढूंढ़ ढूंढ़कर ऐसे शब्द रखने चाहिएँ जो सुननेवाले की आँखों के सामने वर्ण्यविषय का एक चित्र सा खींच दें। मनोभाव चाहे कैसा ही अच्छा क्यों न हो, यदि वह तदनुकूल शब्दों में न प्रकट किया गया, तो उसका असर यदि जाता नहीं रहता तो कम ज़रूर हो जाता है। इसीलिए कवि को चुन चुनकर ऐसे शब्द रखना चाहिए, और इस क्रम से रखना चाहिए, जिससे उसके मन का भाव पूरे तौर पर व्यक्त हो जाय। उसमें कसर न पड़े। मनोभाव शब्दोंहीं के द्वारा व्यक्त होता है। अतएव सयुक्तिक शब्दस्थापना के बिना कवि की कविता तादृश हृदयहारिणी नहीं हो सकती। जो कवि अच्छी शब्दस्थापना करना नहीं जानता, अथवा यों कहिए कि जिसके पास काफ़ी शब्द-समूह नहीं है, उसे कविता करने का परिश्रमही न करना चाहिए। जो सुकवि हैं उन्हें एक एक शब्द की योग्यता ज्ञात रहती है। वे ख़ूब जानते हैं कि किस शब्द में क्या प्रभाव है। अतएव जिस शब्द में उनका भाव प्रकट करने की एक बाल भर भी कमी होती है उसका वे कभी प्रयोग नहीं करते। आजकल के पद्य-रचना-कर्ता महाशयों को इस बात का बहुत कम ख़याल रहता है। इसीसे उनकी कविता, यदि अच्छे भाव से भरी हुई भी हुई तो भी, बहुत कम असर पैदा करती है। जो कवि प्रति पंक्ति में, निरर्थक 'सु', 'जु' और 'रु' का प्रयोग करता है वह मानों इस बात की ख़ुदही सरटीफ़िकेट दे रहा है कि मेरे अधिकृत शब्दकोश में शब्दों की कमी है। ऐसे कवियों की कविता कदापि सर्वसम्मत और प्रभावोत्पादक नहीं हो सकती।

अँगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि मिल्टन ने कविता के तीन गुण वर्णन किये हैं। उसकी राय है कि कविता सादी हो; जोश से भरी हुई हो; और असलियत से गिरी हुई न हो।

सादगी से यह मतलब नहीं कि सिर्फ़ शब्दसमूह ही सादा हो, किन्तु विचार-परम्परा भी सादी हो। भाव और विचार ऐसे सूक्ष्म और छिपे हुए न हों कि उनका मतलब समझ में न आवे, या देर से समझ में आवे। यदि कविता में कोई ध्वनि हो तो इतनी दूर की न हो जो उसे समझने में गहरे विचार की ज़रूरत हो। कविता पढ़ने या सुननेवाले को ऐसी साफ़ सुथरी सड़क मिलनी चाहिए जिस पर कंकर, पत्थर, टीले, ख़न्दक, काँटे और झाड़ियों का नाम न हो। वह ख़ूब साफ़ और हमवार हो जिससे उस पर चलनेवाला आराम से चला जाय। जिस तरह सड़क ज़रा भी ऊंची नीची होने से बाइसिकल (पैरगाड़ी) के सवार को दचके लगते हैं उसी तरह कविता की सड़क यदि थोड़ी भी नाहमवार हुई तो पढ़ने वाले के हृदय पर धक्का लगे बिना नहीं रहता। कवितारूपी सड़क के इधर उधर स्वच्छ पानी के नदी-नाले बहते हों; दोनों तरफ़ फलों फूलों से लदे हुए पेड़ हों; जगह जगह पर विश्राम करने योग्य स्थान बने हों; प्राकृतिक दृश्यों की नई नई झाँकियाँ आँखों को लुभाती हों। दुनिया में आजतक जितने अच्छे अच्छे कवि हुए हैं उनकी कविता ऐसी ही देखी गई है। अटपटे भाव और अटपटे शब्द प्रयोग करने वाले कवियों की कभी क़द्र नहीं हुई। यदि कभी किसी की कुछ हुई भी है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो थोड़े ही दिन तक। ऐसे कवि विस्मृति के अन्धकार में ऐसे छिप गये हैं कि इस समय उनका कोई नाम तक नहीं जानता। एक मात्र सूखा शब्द-झङ्कार ही जिन कवियों की करामात है उन्हें चाहिए कि वे एक दमही बोलना बन्द कर दें।

भाव चाहे कैसा ही ऊँचा क्यों न हो, पेचीदा न होना चाहिए। वह ऐसे शब्दों के द्वारा प्रकट किया जाना चाहिए जिनसे सब लोग परिचित हों। मतलब यह कि भाषा बोल चाल की हो। क्योंकि कविता की भाषा बोल चाल से जितनी ही अधिक दूर जा पड़ती है उतनीही उसकी सादगी कम हो जाती है। बोलचाल से मतलब उस भाषा से है जिसे ख़ास और आम सब बोलते हैं। विद्वान् और अविद्वान् दोनों जिसे काम में लाते हैं। इसी तरह कवि को मुहाविरे का भी ख़याल रखना चाहिए। जो मुहाविरा सर्वसम्मत है वही प्रयोग करना चाहिए। हिन्दी और उर्दू में कुछ शब्द अन्य भाषाओं के भी आ गये हैं। वे यदि बोल चाल के हैं तो उनका प्रयोग सदोष नहीं माना जा सकता। उन्हें त्याज्य नहीं समझना चाहिए। कोई कोई ऐसे शब्दों को उनके मूलरूप में लिखनाही सही समझते हैं। पर यह उनकी भूल है। जब अन्य भाषा का कोई शब्द किसी और भाषा में आ जाता है तब वह उसी भाषा का हो जाता है। अतएव उसे उसकी मूलभाषा के रूप में लिखने जाना भाषाविज्ञान के नियमों के ख़िलाफ़ है। ख़ुद 'मुहावरह' शब्द को ही देखिए। जब उसे अनेक लोग हिन्दी में 'मुहाविरा' लिखने और बोलने लगे, तब उसका असल रूप जाता रहा। वह हिन्दी का शब्द हो गया। यदि अन्य भाषाओं के बहु-प्रयुक्त शब्दों का मूल रूप ही शुद्ध माना जायगा तो घर, घड़ा, हाथ, पाँव, नाक, कान, ग़श, मुसल्मान, क़ुरान, मैगेज़ीन, एडमिरल, लालटेन आदि शब्दों को भी उनके पूर्व रूप में ले जाना पड़ेगा। एशियाटिक सोसाइटी के जनवरी ०७ के जर्नल में फ़्रेंच और अँगरेज़ी आदि यूरोपियन भाषाओं के १३८ शब्द ऐसे दिये गये हैं जो फ़ारस के फ़ारसी अख़बारों में प्रयुक्त हैं। इनमें से कितनेही शब्दों का रूपान्तर हो गया है। अब यदि इस तरह के शब्द अपने मूलरूप में लिखे जायँगे तो भाषा में बेतरह गड़ बड़ पैदा हो जायगी।

असलियत से यह मतलब नहीं कि कविता एक प्रकार का इतिहास समझा जाय और हर बात में सचाई का ख़याल रक्खा जाय। यह नहीं कि सचाई की कसौटी पर कसने पर यदि कुछ भी कसर मालूम हो तो कविता का कवितापन जाता रहे। असलियत से सिर्फ़ इतनाही मतलब है कि कविता बे बुनियाद न हो। उसमें जो उक्ति हो वह मानवी मनोविकारों और प्राकृतिक नियमों के आधार पर कही गई हो। स्वाभाविकता से उसका लगाव न छूटा हो। कवि यदि अपनी या और किसी की तारीफ़ करने लगे और यदि वह उसे सच मुचही सच समझे, अर्थात् यदि उसकी भावना वैसी ही हो, तो वह भी असलियत से ख़ाली नहीं, फिर चाहे और लोग उसे उसका उलटाही क्यों न समझते हों। परन्तु इन बातों में भी स्वाभाविकता से दूर न जाना चाहिए। क्योंकि स्वाभाविक अर्थात् 'नेचुरल' (Natural) उक्तियाँ ही सुननेवाले के हृदय पर असर कर सकती हैं, अस्वाभाविक नहीं। असलियत को लिये हुए कवि स्वतंत्रतापूर्वक जो चाहे कह सकता है। असल बात को एक नये साँचे में ढालकर कुछ दूर तक इधर उधर भी उड्डान कर सकता है; पर असलियत के लगाव को वह नहीं छोड़ता। असलियत को हाथ से जाने देना मानो कविता को प्रायः निर्जीव कर डालना है। शब्द और अर्थ दोनों ही के सम्बन्ध में उसे स्वाभाविकता का अनुधावन करना चाहिए। जिस बात के कहने में लोग स्वाभाविक रीति पर जैसे और जिस क्रम से, शब्द प्रयोग करते हैं वैसे ही कवि को भी करना चाहिए। कविता में उसे कोई बात ऐसी न कहनी चाहिए जो दुनिया में न होती हो। जो बातें हमेशा हुआ करती हैं, अथवा जिन बातों का होना सम्भव है, वही स्वाभाविक हैं। अर्थ की स्वाभाविकता से मतलब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी ही बातों से है। हम इन बातों को उदाहरण देकर अधिक स्पष्ट कर देते, पर लेख बढ़ जाने के डर से ऐसा नहीं करते।

जोश से यह मतलब है कि कवि जो कुछ कहे इस तरह कहे मानो उसके प्रयुक्त शब्द आपही आप उसके मुँह से निकल गये हैं। उनसे बनावट न ज़ाहिर हो। यह न मालूम हो कि कवि ने कोशिश करके ये बातें कही हैं; किन्तु यह मालूम हो कि उसके हृदगत भावों ने कविता के रूप में अपने को प्रकट कराने के लिए उसे विवश किया है। जो कवि है उसमें जोश स्वाभाविक होता है। वर्ण्य वस्तु को देखकर, किसी अदृश्य शक्ति की प्रेरणा से, वह उस पर कविता करने के लिए विवश सा हो जाता है। उसमें एक अलौकिक शक्ति पैदा हो जाती है। इसी शक्ति के बल से वह सजीवही नहीं, निर्जीव चीज़ों तक का वर्णन ऐसे प्रभावोत्पादक ढँग से करता है कि यदि उन चीज़ों में बोलने की शक्ति होती तो ख़ुद वे भी उससे अच्छा वर्णन न कर सकतीं। जोश से यह भी मतलब नहीं कि कविता के शब्द ख़ूब ज़ोरदार और जोशीले हों। सम्भव है शब्द ज़ोरदार न हों; पर जोश उनमें छिपा हुआ हो। धीमे शब्दों में भी जोश रह सकता है और पढ़ने या सुनने वाले के हृदय पर चोट कर सकता है। परन्तु ऐसे शब्दों का प्रयोग करना ऐसे वैसे कवि का काम नहीं। जो लोग मीठी छुरी से तेज़ तलवार का काम लेना जानते हैं वही धीमे शब्दों में जोश भर सकते हैं।

सादगी, असलियत और जोश, यदि ये तीनों गुण कविता में हों तो कहनाही क्या है। परन्तु बहुधा अच्छी कविता में भी इनमें से एक आध गुण की कमी पाई जाती है। कभी कभी देखा जाता है कि कविता में केवल जोश रहता है, सादगी और असलियत नहीं। कभी कभी सादगी और जोश पाये जाते हैं, असलियत नहीं। परन्तु बिना असलियत के जोश का होना बहुत कठिन है। अतएव कवि को असलियत का सब से अधिक ध्यान रखना चाहिए।

अच्छी कविता की सब से बड़ी परीक्षा यह है कि उसे सुनते ही लोग बोल उठें कि सच कहा है। वही कवि सच्चे कवि हैं जिन की कविता सुन कर लोगों के मुँह से सहसा यह उक्ति निकलती है। ऐसे कवि धन्य हैं। और जिस देश में ऐसे कवि पैदा होते हैं वह देश भी धन्य है। ऐसे ही कवियों की कविता चिरकाल तक जीवित रहती है।

मौलाना हाली ने अपने लेख में भली बुरी, सब तरह की, कविताओं के उदाहरण दिये हैं और उनके गुण-दोष बतलाये हैं। उन्होंने ग़ालिब के एक शेर को उत्कृष्ट कविता का नमूना बतलाया है और उसका मुक़ाबला शेख़ शादी की एक उक्ति से करके ग़ालिब की उक्ति की बड़ी प्रशंसा की है। इस विषय में पण्डित पद्मसिंह शर्म्मा ने एक छोटा सा मज़मून हमारे पास भेजा है उसे हम नीचे उद्धृत करके इस लेख को समाप्त करते हैं। ग़ालिब का शेर है—

"उनके देखे से जो आजाती है रौनक़ मुँह पर,
"वो समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।

"अर्थात् अपनी विरहजन्य कृशता या दयनीय "अवस्था को प्रेमी, अपने प्रेमपात्र पर किसी प्रकार "ज़ाहिर नहीं कर सकता; क्योंकि विरह की दशा में "प्रेमपात्र उसके पास नहीं होता; और जब वह आता "है तब हर्षातिरेक से उसकी दशा बदल जाती है।

"इस शेर की मौलाना हाली ने बहुत प्रशंसा की "है। "दीवानेहाली" के मुक़द्दमे और "यादगारे-"ग़ालिब" में इसे उद्धृत करके दिखलाया है, कि "यह शेर कवि की प्रतिभाशक्ति का सर्वोत्कृष्ट नमूना "है। इसके शब्द और अर्थ दोनों में समानरूप से "प्रतिभा का स्वरूप झलकता है। इसके साथ एक "शेर शैख़सादी का यह लिखा है—

"गुफ़्ता बूदम् चु बियाई ग़मेदिल बा तो बगोयम्।
"चे बगोयम् के ग़म अज़दिल बरवद चूँ तो बियाई॥

"अर्थात् प्रेमी अपने प्रेमपात्र से कहता है कि "मैं कहता था कि जो तू आवे तो दिल का ग़म "तुझसे कहूँ; पर अब क्या कहूँ, क्योंकि जब तू "आता है तब दिल से ग़म ही जाता रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाली कहते हैं कि इन दोनों शेरों का अभि-
"प्राय तो यही है कि किसी प्रकार अपना दुःख या
"सन्ताप प्रेमपात्र पर ज़ाहिर नहीं किया जा सकता।
"पर सादी के बयान में यह सन्देह बाक़ी रह जाता
"है कि सम्भव है, प्रेमपात्र अपने प्रेमी की ज़ाहिरी
"बदहाली देख कर समझ जाय कि इसका मन
"सन्तप्त है; क्योंकि सादी के बयान से सिर्फ़ यही
"मालूम होता है कि प्रेमपात्र के आने से ग़म जाता
"रहता है; न यह कि ज़ाहिरी हालत भी बदल
"जाती है। पर मिर्ज़ा ग़ालिब के बयान में यह
"सन्देह भी नहीं रहता। तथापि सादी के शेर को
"मिर्ज़ा के शेर पर तर्जीह देनी चाहिए, क्योंकि वह
"इससे पहला है।

"यह तो हुई शैख़सादी और मिर्ज़ा ग़ालिब की
"बात। अब देखिए व्रजभाषा के कालिदास या
"गोवर्द्धनाचार्य, कविवर विहारीलाल, इसी विषय
"को ग़ालिब से पहले कैसे अच्छे और निराले ढंग
"से कह गये हैं—

"जो वाके तन को दसा देख्यौ चाहत आप।
"तौ बलि नेक विलोकिये चलि औचक चुपचाप॥
"(विरहनिवेदन; सखी की उक्ति नायक से)

"अर्थात् जो आप उस विरहिणी के शरीर की
"दशा देखना चाहते हो, तो मैं बलिहारी, ज़रा
"अचानक और चुपचाप चलकर देखिए। यदि
"आपके पहुँचने की उसे ख़बर हो गई तो उसकी
"कृशता और दुर्बलता दूर होकर उसे स्वस्थता
"प्राप्त हो जायगी। फिर उसकी विरहजन्य अवस्था
"का ठीक ठीक प्रत्यक्ष अनुभव आपको न हो सकेगा।
"इसलिए मेरी प्रार्थना है कि अचानक और चुपचाप
"चलकर उसे देखिए, जिससे मेरी बात का आपको
"विश्वास हो, और उस पर दया आवे। यह भाव।

"हमारी राय में यह दोहा उक्त दोनों शेरों से
"बहुत उत्कृष्ट है। इन शेरों से तो यही पाया जाता
"है कि प्रेमपात्र के पहुँचने या उसे देखने पर ही
"प्रेमी की हालत बदल जाती है। पर दोहे में
"'औचक' 'चुपचाप' शब्दों से यह ध्वनि भी
"निकलती है कि यदि अचानक और चुपचाप न
"चले और किसी प्रकार तुम्हारे चल पड़ने की ख़बर
"उस तक पहुँच गई, तो तुम्हारे पहुँचने से पहले,
"इस शुभ संवाद के पहुँचते ही उसकी दशा और
"से और हो जायगी, जिससे आप उसे उस दय-
"नीय अवस्था में न देख सकेंगे, जिसका दिखाना
"अभीष्ट है!

प्रार्थना-शतक।

(क्रमप्राप्त)

जो शम दम नियमादि धर्म्म की करि उपासना।
राखत सब पै तुल्य भाव तजि विषय-वासना॥
जासु हृदय महँ रहै भावना सदा तिहारी।
होत सोइ सब भाँति मुक्ति-पथ को अधिकारी॥५१॥

निरहङ्कार, उदार, सदा निस्पृह, निर्दूषित।
विद्या-विनय-विवेक-बुद्धि-शुभशील-विभूषित॥
जो प्रसन्नमन मनुज भजन नित करै तिहारो।
ताके करतल माँहि लसै अभिमत फल चारो॥५२॥

निजकृत शुभ अरु अशुभ कर्म्मवश विवश जीवगन।
विविध बार लहि जन्म अन्त पावत मानुष तन॥
भाँति भाँति के जीव जगत महँ विधि उपजाये।
तिन महँ सब सों श्रेष्ठ चतुर मानुषहि बनाये॥५३॥

दियो विरचि श्रुति, शास्त्र सृष्टिकर्ता इनके हित।
जासों ये निज धर्म्म-कर्म्म-शिक्षा पावैं नित॥
तेहि निजमति-अनुसार पठन-पाठन करि मुनिगन।
स्मृति-पुराण बहु बिरचि लगे शुभ पथ दरसावन॥५४॥

वर्णाश्रम-आचार देश-अनुसार यथोचित।
कर्म्म शुभाशुभ को विचार कीन्हो बहु कलिपत॥
सुखद पन्थ दरसाय किये उपकार घनेरे।
करि करुणा-उपदेश दिये लिखि कै बहुतेरे॥५५॥

जानतहू शुभ अशुभ कर्म मुनिगन के टेरे
तुअ मायावश चित्त रहत विषयन में घेरे॥
पन्थ सुगम लखि नीच ऊँच गति की तजि आशा।
पड़े रहैं भवसिन्धु बीच नहिँ मिटै पिपासा॥५६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमिरि विषय-सुख-भोग व्यर्थ मानुष तन खोवै।
अन्तकाल पछिताय हाय निज कृति पै रोवै॥
पै कछु होत न लाभ भजन तेरे बिन कीन्हे।
विकल होत हत-बुद्धि भार पातक सिर लीन्हे॥५७॥

जानत यद्यपि नाथ अहै लौकिक सुख झूठो।
तदपि विषय-सुख-हेतु रहत चञ्चल चित रूठो॥
तुअ माया-वश-बुद्धि चित्त गति रोकि सकै ना।
विविध विषय-सुख भोगि चित्त यह नैकु थकै ना॥५८॥

तुअ माया-वश नाथ विषय-सुख सत्य मानि कै।
तजन चहत नहिँ मूढ़ परमप्रिय ताहि जानि कै॥
कहि निषेध कौं विधि कितने की मति भटकावै।
करि प्रपञ्च बहुभाँति रावरी भक्ति नसावै॥ ५९॥

कोऊ कहत अनादि सृष्टि योंहीं चलि आवै।
याको सिरजनहार नाहिँ कोउ पुरुष लखावै॥
स्वाभाविक है धर्म जनन अरु मरण जीव को।
लौकिक सुख सम्भोग एक फल सकल जीव को॥६०॥

अन्तर्दृष्टि-विहीन कितेक अनीश्वरवादी।
निजकुतर्कवश मन्द, मानि यह जगत अनादी॥
भजैं न तौंकौं मूढ़ गूढ़ कछु भेद न जानैं।
तजि श्रुतिसम्मत वाक्य बादि अपनो मत ठानैं॥६१॥

कोऊ प्रकृति प्रधान मानि सब तुच्छ बखानैं।
कोऊ जग को मूल हेतु तत्त्वहि कौं जानैं॥
यों अनेक मतभेद-जाल में फँसि नर केते।
हरि-पद-भजन-विहीन व्यर्थ जीवन खो देते॥ ६२॥

मैं यद्यपि मतिमन्द शास्त्र को मर्म न जानौं।
तदपि नाथ मैं तोहिँ सृष्टिकर्ता अनुमानौं॥
यह असार संसार सत्य मायावश भासत।
अन्तर्हित ह्वै सकल वस्तु महँ आप विराजत॥ ६३॥

व्यापक ब्रह्म अनादि आप अज ईश अनामय।
अप्रमेय अविचिन्त्य सच्चिदानन्द सदाशय॥
निज इच्छा अनुसार सुकृतहित सगुन रूप धरि।
ले अनेक अवतार हरत अघ साधुत्राण करि॥ ६४॥

[क्रम क्रम से]

जनार्दन झा।

लन्दन का क्यू नामक शाही बाग़।

लन्दन में एक जगह हाइडपार्क है। उससे कोई छ सात मील दूर क्यू नाम का एक गाँव है। वह टेम्स नदी के तट पर है। वहीं लन्दन का मशहूर शाही बाग़ है। यह कोई ३५० वर्ष का पुराना है। अथवा यों कहिए कि इसका जन्म हुए ३५० वर्ष हुए। पहले इसका रक़बा सिर्फ़ ९ एकड़ था। पर अब २५० एकड़ है। महारानी विक्टोरिया ने इसके रक़बे को बहुत बढ़ाया। कोई ४७ एकड़ ज़मीन उन्होंने इसमें जोड़ी। और भी उन्होंने इसके लिए बहुत कुछ किया। यह अद्वितीय बाग़ है। यह वनस्पति-शास्त्रीय वाटिका या उद्यान है। इतनी बड़ी और इतनी प्रसिद्ध वनस्पतिशाला दुनिया में दूसरी नहीं। इसकी सफ़ाई, इसका सुप्रबन्ध, इसके अद्भुत अद्भुत वृक्ष, लता, फल, फूल आदि देखकर अक्ल दंग हो जाती है।

पहली एप्रिल को यहाँ गर्मी पड़ रही थी। ख़ूब धूप थी। ओवर कोट पहनने की ज़रूरत न थी। ईस्टर की तातील में प्रायः सारी मित्रमण्डली समुद्र के किनारे सैर को चली गई थी। अकेले जी ऊब रहा था। विचार हुआ कि दिन अच्छा है, चलो 'क्यू' देख आवें। दर्वाज़े ही से ट्रेम क्यू को जाती है। निकल कर चौमुहाने पर ट्रेम के लिए खड़े हुए। कई गाड़ियाँ आईं और बिना ठहरे निकल गईं। क्यू जानेवालों से सब भरी हुई थीं। एक भी बैठने की जगह कोतल नहीं; पर क्यू की तरफ़ से इधर को आनेवाली गाड़ियाँ सब ख़ाली आ रही थीं। उन्हीं में से मैं एक में इस इरादे से बैठ गया कि चलो जब यह लौटेगी, इसी पर बैठे चले चलेंगे। यह दो फरलांग आगे बढ़ी थी कि हमारा ही जैसा इरादा रखनेवालों से भर गई। सारा शहर क्यू को जाता हुआ देख पड़ा।

क्यू के पास पहुँचने पर देखा बाग़ के बाहर के दुकानदार, झूलनेवाले वग़ैरह, जैसे अपने यहाँ मेलों में देखने में आते हैं, पैसा लूट रहे हैं। नर-नारियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ताँता लगा हुआ है; नारी अधिक नर कम। एक होटल के दरवाज़े पर एक सजीला हिन्दुस्तानी, हिन्दुस्तानी कपड़ों में, खड़ा था। इसे देखकर अनायास बातें करने का मन हो आया। इससे वहाँ ठहर गया। उसने सलाम करके पूछा, "साअब, क्या हुक्म है?" मैंने धन्यवाद देकर कहा, कुछ नहीं, सिर्फ़ तुम्हें देखने को ठहर गया। इस दिन मैं अकेले चार घंटे घूमता रहा; पर सिवा इस आदमी के और किसी से एक भी बात करने का मौक़ा नहीं आया।

क्यू में किसी तरह का टिकट नहीं लगता। बाग़ में प्रवेश करने के कई फाटक हैं जो बहुत अच्छे बने हुए हैं। पहले क्यूपैलेस (शाही महल) देखने गया। इसमें सौ बरस पहले का शाही ठाठ था। कुर्सियाँ वग़ैरह बहुत मामूली, जैसी ग़रीब हिन्दुस्तानियों के यहाँ होती हैं। महल की इमारत भी बहुत साधारण। कमरे गरम करने की अँगेठियाँ वैसी ही जैसी आजकल यहाँ के ग़रीब आदमियों के मकानों में होती हैं।

इसके बाद "टिंबर हौस" नामक मकान में गया। यहाँ यूरप और भारत की तरह तरह की लकड़ियों के नमूने काट कर, और एक तरफ़ वार्निश करके, रक्खे हुए हैं। फिर एक शीशे के घर में गया, जिसमें भाप से कुछ गरमी पैदा करके जावा आदि पूर्वी टापुओं के छोटे छोटे वृक्ष और लताएँ पाली गई हैं। अनन्तर, यहाँ के बहुत बड़े और बहुत प्रसिद्ध "तालवृक्षालय" को देखने गया। यह शीशे का एक ऊँचा मकान है। इसमें ताड़ जाति के पूर्वदेशीय वृक्ष हैं। इसमें इतनी गरमी रहती है जितनी हमारे यहाँ जेठ बैशाख में होती है। दोही मिनट में पसीने से तर होकर बाहर भग आना पड़ा।

बाग़ में कई म्यूज़ियम (अजायब घर) भी हैं। इनमें विलक्षण विलक्षण पुष्प, पौधे, बीज और वृक्षों के भिन्न भिन्न भागों के नमूने मोम के बने हुए रक्खे हैं। कुछ वृक्षों की जड़ के टुकड़े रक्खे हुए हैं जो बिलकुल मनुष्य की शकल के हैं। आँख, कान, नाक, हाथ, मुँह सब साफ़—पर स्वाभाविक हैं, आपही आप बने हुए हैं। यों देखने से विश्वास नहीं हो सकता कि मनुष्य के बनाये नहीं हैं। ग़ौर करने से भेद मालूम होता है।

एक काच के घर में कुमुदनी भी लगी हुई है। पर कमल नहीं। कमल की नक़ल म्यूज़ियम में है। काच के दूसरे घर में सेंहुड की जाति के अनेक पौधे हैं। इसमें ताड़वाले घर से कुछ कम गरमी दी जाती है।

इसके बाद, मैं Green Houses (हरे घर) में गया। यहाँ नेत्रों को और गात्र को भी बहुत सुख मिला। सारा घर फूलों से भरा हुआ था। मधुमक्खियाँ रस ले रही थीं। मालूम होता था कि ऋतुराज यहाँ क़ैद हैं। इस मकान से निकलने का मन नहीं होता था। माली बराबर चिल्ला रहे थे "चलते जाइए, कृपाकर", पर दर्शक बहुत धीरे धीरे घूम रहे थे।

यहाँ चीनवालों के पैगोड़ा (मीनार के नमूने के मन्दिर) की एक नक़ल है। यह १७६२ का बना हुआ है। उँचाई में १६३ फ़ीट है। इसमें १० खण्ड हैं। इस बाग़ में कोई १०० वर्ष पहले कितनेही मन्दिर भी थे। रोम, ग्रीस, ईजिप्ट और चीन आदि के अजीब अजीब मन्दिरों के ये नमूने थे। अब भी कई एक हैं। उनमें से "सूर्य्य-मन्दिर" दर्शनीय है। और सब गिरा दिये गये।

नार्थ नाम की एक कुमारिका लेडी थी। लड़कपनही से उसे फलों, फूलों और पौधों के चित्र खींचने का शौक़ था। आस्ट्रेलिया, तस्मानियां, न्यूज़ीलैंड, जावा, सीरिया, ईजिप्ट और हिन्दुस्तान आदि देशों में बरसों घूम कर उसने हज़ारों अद्भुत अद्भुत पुष्पादि के रंगीन चित्र बनाये। उन सब को उसने इस शाहीबाग़ के लिए दे डाला और उन्हें रखने के लिए अपनेही रुपये से एक इमारत भी बनवा दी। जिस घर में ये चित्र रक्खे हुए हैं देखने लायक़ है—बहुत ही विलक्षण है। इस कुमारी ने उम्र भर की मेहनत का फल ब्रिटिशजाति को समर्पण कर दिया। देशभक्ति हो तो ऐसी। इस महत्कार्य के लिए इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

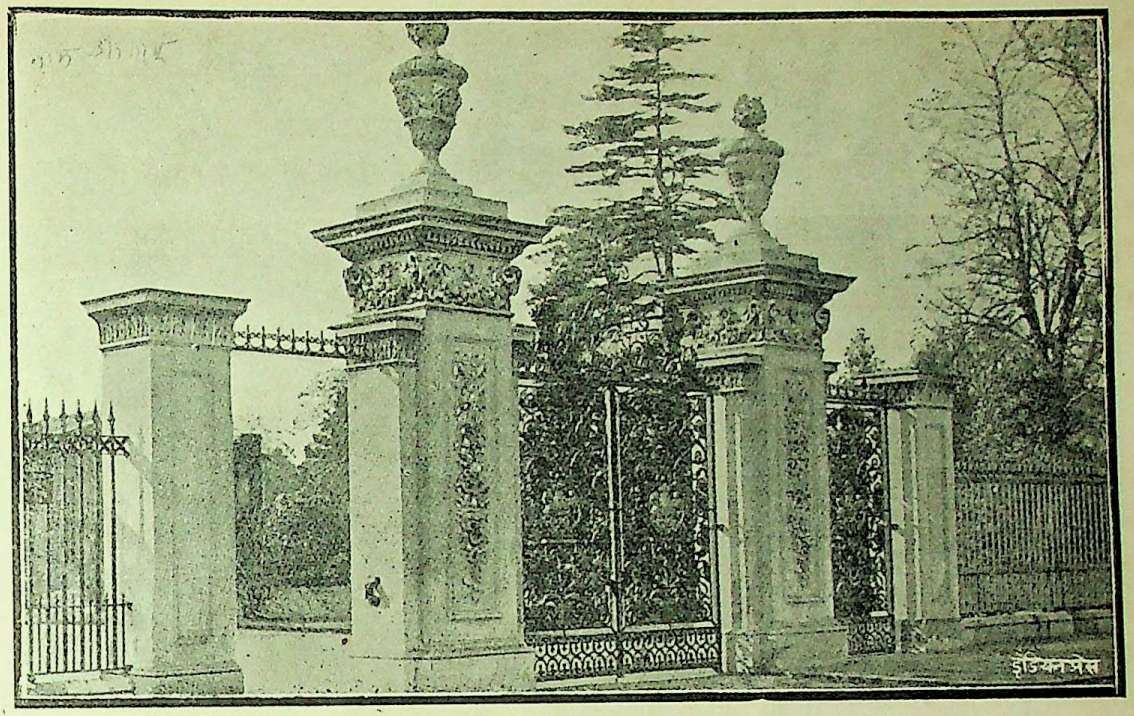

शाही बाग़ के फाटक ।

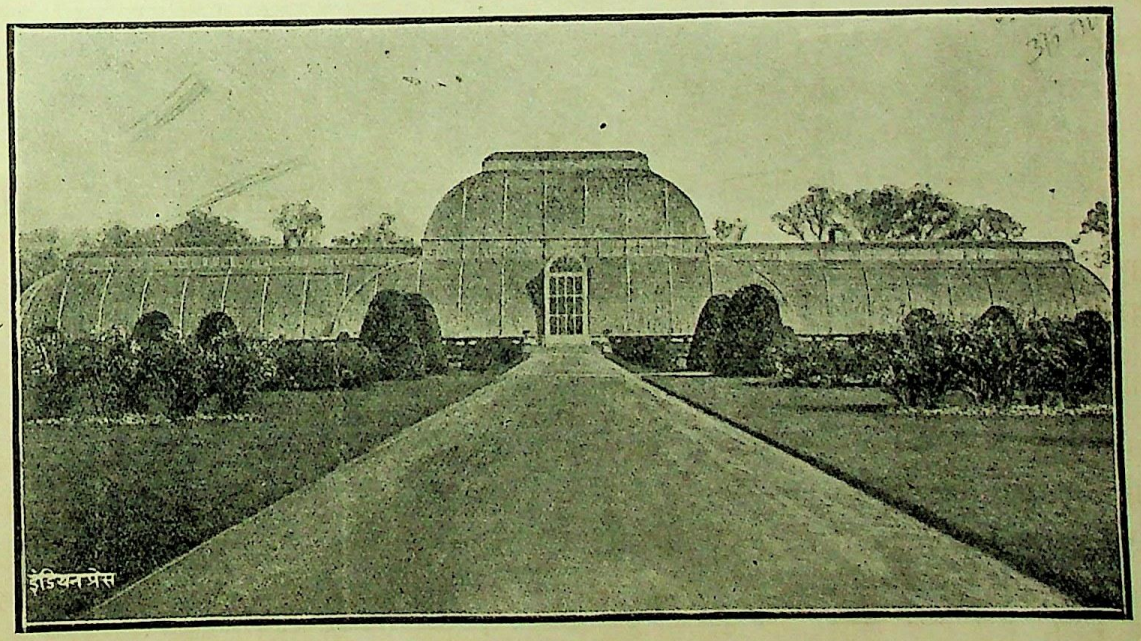

शाही बाग़ का तालवृक्षालय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

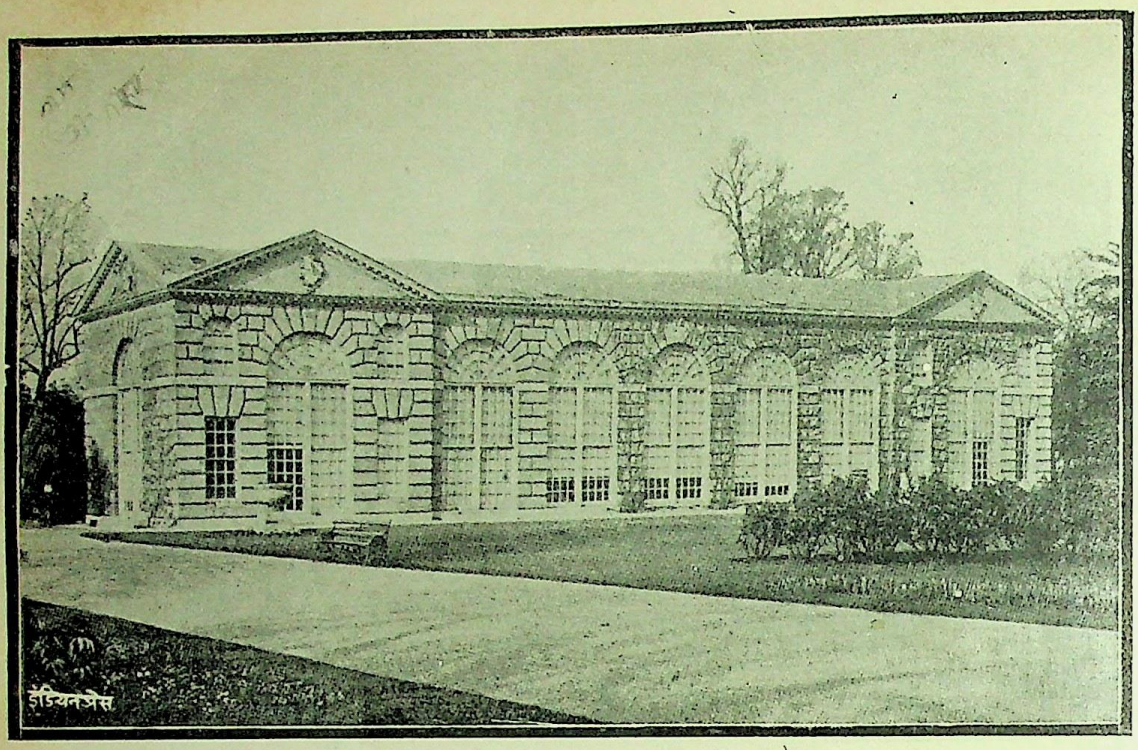

शाही बाग़ का अजायब-घर, नं० २।

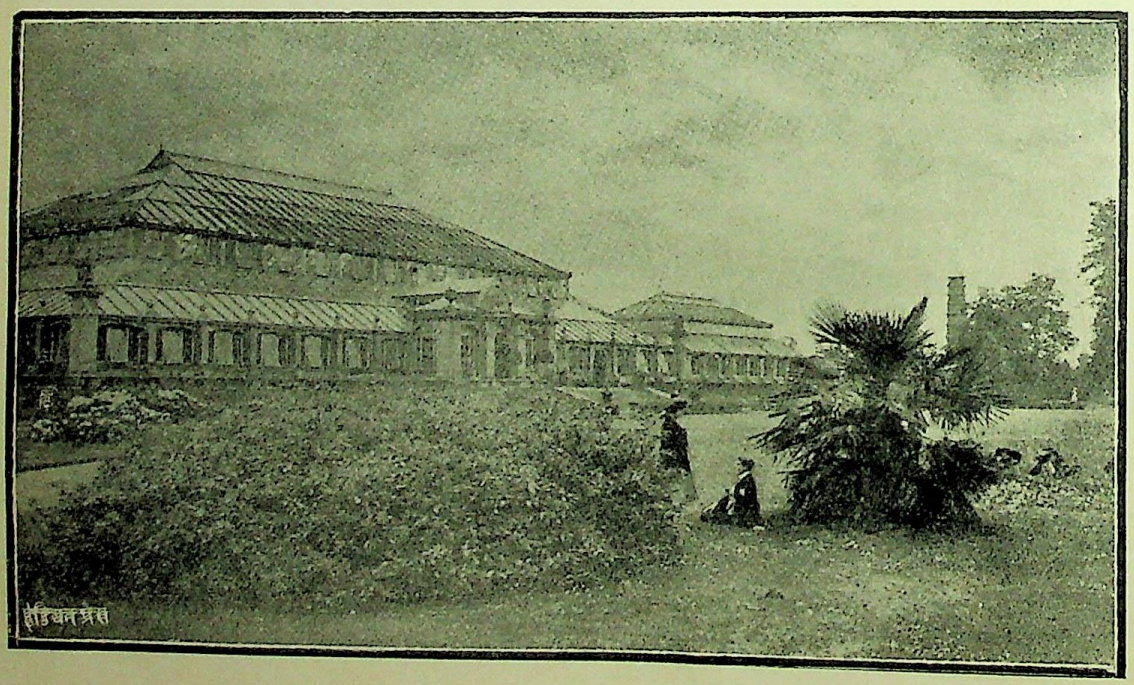

शाही बाग़ की अल्पोष्ण वनस्पतिशाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

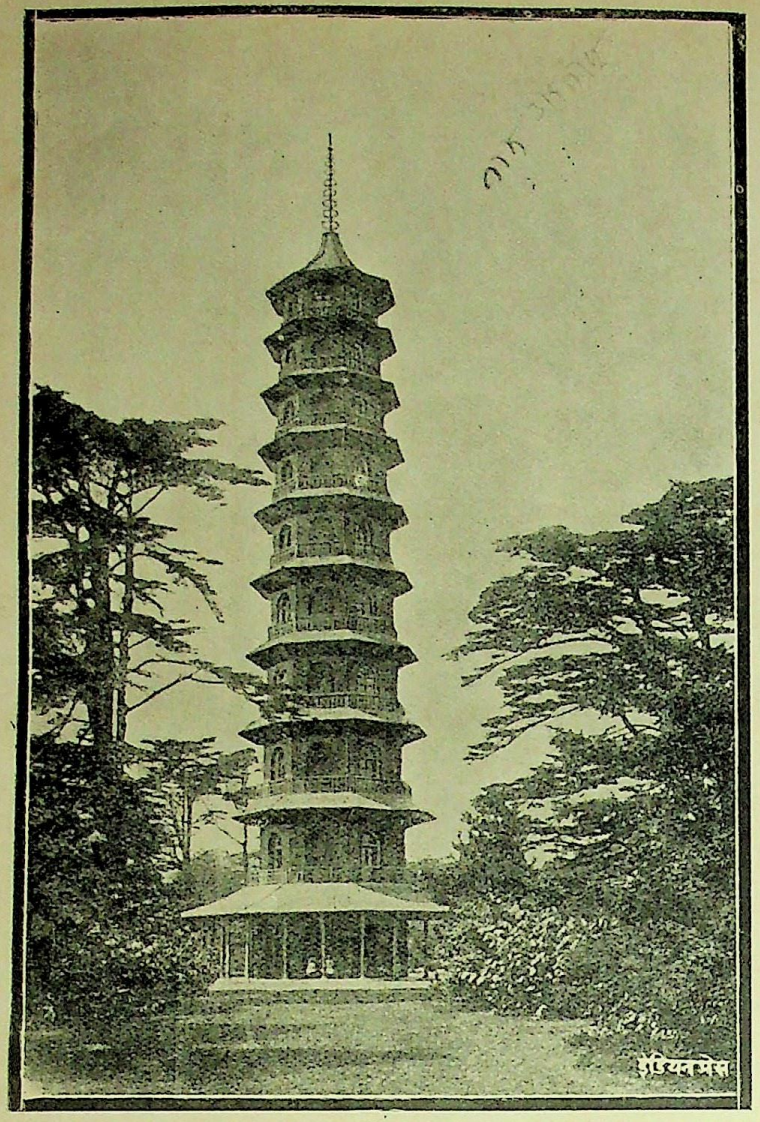

शाही बाग़ का पैगोडा ।

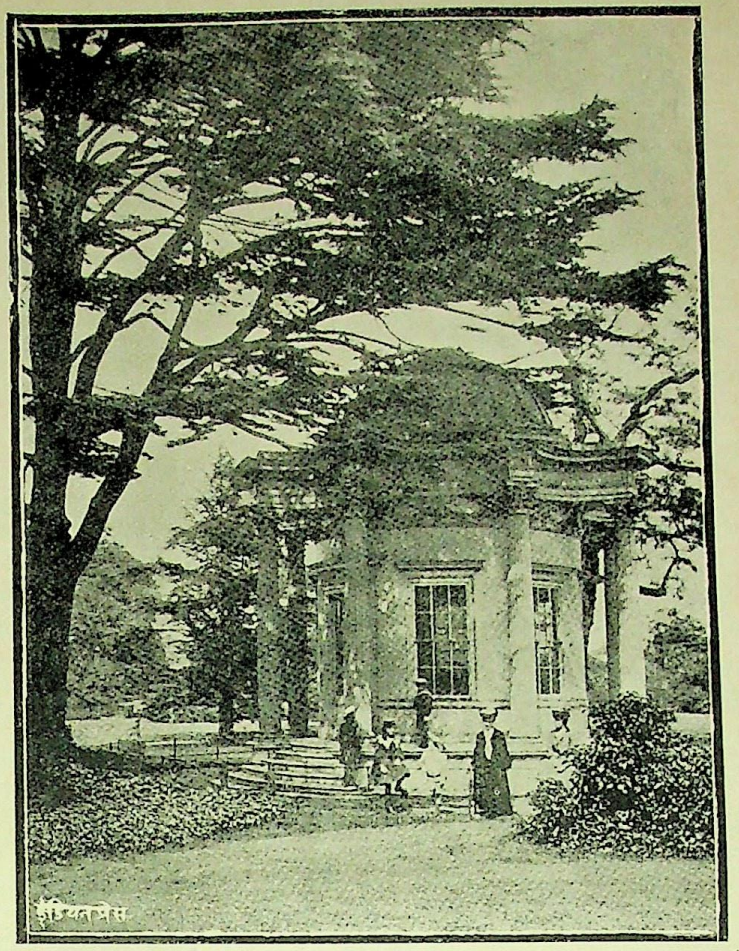

शाही बाग़ का सूर्य्य-मन्दिर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाराशय लेडी का नाम बड़े ही भक्तिभाव से लिया जाता है।

बाग़ में दो तड़ाग भी हैं और बग़ल में टेम्स नदी है। इन मकानों के देखने में तीन घंटे लगे। पीछे बाग़ में टहलने लगा। धूप कड़ी थी। हर वृक्ष की छाया में घास पर नर-नारियों का वृन्द छायासुख ले रहा था। बहुतेरे घास पर लेटे हुए थे। एक भी पेड़ ऐसा न था जिसके नीचे सुन्दरियाँ और बच्चे न लेटे हों। घर से लाई हुई खाने पीने की चीज़ें लोग खा रहे थे। ठीक वैसाही दृश्य था जैसा अपने यहाँ बरसात में, और, और ऋतुओं में शहर के बाहर किसी किसी मेले में, देखने में आता है। फ़र्क़ यह था कि शोर नहीं था—कोई ज़ोर से बोलता या हँसता नहीं था। हुज्जत या बेतरतीबी नहीं थी। और यह कि अपने यहाँ प्रेमी प्रेमिका पास पास बैठे हुए प्रेमपूर्ण बातें करते नहीं देख पड़ते। यहाँ हर पौधे, हर पेड़, के नीचे प्रेमी, चाव भरी आँखों से, और नरम नरम हाथों से अपने हृदय के भाव निःसङ्कोच प्रकट कर रहे थे।

काशीप्रसाद जायसवाल, लन्दन।

स्वदेशी बनाम बायकाट।

आजकल भारत में जिधर देखिए उधर ही स्वदेश, स्वराज्य और स्वदेशवस्तु-प्रेम की ध्वनि सुनाई दे रही है। भारतहितैषियों का मुख्य व्याख्येय विषय यही हो रहा है। कोई समाचारपत्र ऐसा नहीं जिसमें इसकी चर्चा न हो। यह बड़े हर्ष की बात है। पर इस चर्चा में "स्वदेशी" के साथ एक "बायकाट" भी लगा हुआ है। "स्वदेशी" शब्द का अर्थ तो स्पष्ट ही है। इसकी विशेष व्याख्या की आवश्यकता नहीं। रहा "बायकाट" शब्द, सो उसका भाव है "वैदेशिक-वस्तु-वर्जन"। "स्वदेशी" और "बायकाट" प्रायः समानार्थक होकर भी परस्पर कुछ पार्थक्य रखते हैं।

"बायकाट" का इतिहास सुनिए। १८७९-८० ईसवी की बात है, आयरलैंड में बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा। हज़ारों आदमी भूखों मर गये। वहाँ के किसान भी अँगरेज़ थे और ज़मींदार भी अँगरेज़। परन्तु ऐसे दुर्भिक्ष के समय—ऐसी महाविपत्ति के समय—भी वहाँ के ज़मींदारों को किसानों पर दया न आई। वे बराबर उनसे मालगुज़ारी लेते ही रहे। इस घोर अन्याय से वहाँ की प्रजा—वहाँ के किसान लोग—ज़मींदारों से बिगड़ उठे। एक बहुत बड़े ज़मींदार साहब का कारिन्दा बड़ा निर्दयी था। उसका नाम था कप्तान "बायकाट"। उसके अत्याचार से प्रजा बहुत पीड़ित हुई। इससे सब लोगों ने उससे सम्बन्ध छोड़ दिया। उससे कोई सरोकार न रखने की प्रतिज्ञा कर ली। उसकी नौकरी तक किसी ने न की। यहाँ तक कि काम करने के लिए जब उसे कोई आदमी न मिला तब खेती बारी का सारा काम उसको और उसकी स्त्री को ही, अपने हाथों, करना पड़ा। तब से किसी वस्तु के सर्वथा परित्याग का नाम "बायकाट" हो गया। यहाँ तक कि "बायकाट" का अर्थही "परित्याग" या "बहिष्कार" माना जाने लगा। परन्तु हमारे देश में जो "बायकाट" की चर्चा हो रही है, उसका तात्पर्य अँगरेज़ों के बहिष्कार से नहीं, किन्तु वैदेशिक वस्तुओं के—विशेष करके अँगरेज़ी वस्तुओं के—बहिष्कार से है।

चैत्र के "प्रवासी" में एक लेख निकला है। उसमें लेखक ने बायकाट का समर्थन किया है और उसके विरोधियों के आक्षेपों का उत्तर भी दिया है। आपके कथन का मतलब हम नीचे देते हैं।

बायकाट के विरोधी बायकाट में पाँच दोष बतलाते हैं। पहला यह कि बायकाट "अबाधवाणिज्य-नीति" का विरोधी है। दूसरे वह द्वेषमूलक है। तीसरे वह "निगेटिव" अर्थात् "अभावात्मक" या "निषेधात्मक" है। चौथा दोष वे यह बतलाते हैं कि वह "निष्फल" है। और सब से बड़ा दोष उनकी समझ में यह है कि बायकाट "प्रेम का विरोधी" है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब क्रम से इन पाँचों आपत्तियों का लेखक ने जिस तरह निराकरण किया है सो भी सुनिए। अच्छा सबसे पहले अबाधवाणिज्य-नीति को लीजिए। पहले तो यह विचारना चाहिए कि अबाधवाणिज्य किसे कहते हैं। अनेक देशों के परस्पर वस्तु-विनिमय करने का नाम "आबाधवाणिज्य नीति" है। अर्थात् एक देश अपने यहाँ की पैदा हुई वस्तु दूसरे देश को देकर उसकी आवश्यकता को पूरी करदे और उसके बदले में अपनी आवश्यक वस्तु उससे ले ले। इसी को अबाधवाणिज्य कहते हैं।

उदाहरण—

कल्पना कीजिए कि वंगदेश में जितने धन और जितने श्रम से ५० मन चावल या २५ मन सन पैदा होता है, उतने ही धन और उतनेही श्रम से ब्रह्मदेश में ४५ मन चावल या १५ मन सन पैदा होता है। वंगदेश में १ मन सन दो मन चावल के बराबर है। या यों कहिए कि एक मन सन के बदले दो मन चावल आसकता है। अब ब्रह्मदेश का विचार कीजिए। वहाँ १ मन सन के बदले में ३ मन चावल आते हैं। अर्थात् वंगदेश में सन सस्ता और चावल महँगा है और ब्रह्मदेश में इसका उलटा, अर्थात् सन महँगा और चावल सस्ता, है।

यदि इन दोनों देशों में परस्पर अदला-बदली जारी हो जाय तो दोनों को लाभ हो सकता है। देखिए यदि वंगदेश वाले अपने यहाँ से १ मन सन के बदले ब्रह्मदेश से चावल लेना चाहें तो तीन मन चावल मिलेंगे। यदि हम उसमें से आने जाने आदि का ख़र्च निकाल डालें तो भी २॥ मन चावल बच रहेंगे। ऐसा करने से वंगदेश वालों को १ मन सन देने से आध मन चावल मुनाफ़े में मिलेंगे, क्योंकि अपने यहाँ तो १ मन सन के बदले दो ही मन चावल मिलता था और ब्रह्मदेश से उन्हें २॥ मन मिला।

इसी तरह यदि ब्रह्मदेश वाले ॥ मन चावल देकर बंगदेश से सन लेना चाहें तो २ मन ही चावलों के बदले १ मन सन मिल सकता है। आध मन में आने जाने का सब ख़र्चा सध जायगा। ऐसा करने से ब्रह्मदेशवालों को भी आध मन चावल की बचत रह सकती है। क्योंकि उनके देश में ३ मन चावलों के बदले १ मन सन आता है। अतएव यदि वंगदेश से व्यापार जारी रक्खा जाय तो २॥ मन ही चावलों के बदले १ मन सन उन्हें मिल सकता है।

यदि ऐसा न किया जाय तो समझना चाहिए कि दोनों देशों को हानि उठानी पड़ती है। अतएव परस्पर व्यापार से फ़ायदा उठाने के लिए वंगदेश को सन की पैदावार बढ़ानी चाहिए और ब्रह्मदेश को चावल की। इसी का नाम "अबाधवाणिज्य नीति" है। परन्तु यह नीति वहीं चल सकती है और वहीं इस नीति से पूरा पूरा लाभ हो सकता है जहाँ परस्पर दोनों देशों के राजनैतिक नियम सानुकूल हों; जहाँ उन नियमों में संकीर्णता न हो; और जहाँ प्रजा को पूरी स्वतन्त्रता हो। जहाँ ये बातें नहीं, अर्थात् जहाँ की प्रजा पराधीन है, वहाँ इस अबाधवाणिज्य-नीति से कुछ लाभ नहीं हो सकता। वहाँ यह नीति चल ही नहीं सकती।

लोग कहते हैं कि भारत और इँग्लेंड में परस्पर अबाधवाणिज्य-नीति के आधार पर व्यापार होता है। पर हम कहते हैं ऐसी नाम मात्र की नीति से भारत को कुछ भी लाभ नहीं, उलटा हानि ही हानि है। यदि इस नीति से लाभ होता है तो विदेशी व्यापारियों को ही होता है। विलायत से भारत में जो काँच, पत्थर, लोहा, लक्कड़ आता है उसके बदले भारत वैसी ही एक चीज़ अर्थात् नमक दे सकता था। परन्तु नमक का व्यापार तो हमारी न्यायशीला गवर्नमेंट ने अपने अधीन कर रक्खा है। इन विदेशी चीज़ों और बच्चों के खिलौनों के बदले में भारत अन्न और रुई आदि परमोपयोगी वस्तु देता है अर्थात् जीवनोपयोगी चोज़ देकर विदेश से वह व्यर्थ चीज़ें लेता है। इससे इस देश की बड़ी अधोगति होती चली जारही है।

भारत सर्वथा परतन्त्र है। जो वह चाहता है, नहीं कर सकता। उसकी उमंगें भीतर ही भीतर उठ उठ कर लीन हो जाती हैं। उमंगों के मारे जाने से वह निरुद्यम, निरुत्साह और निश्चेष्ट हो गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिल्प-वाणिज्य की वृद्धि के लिए जिन विद्याओं की आवश्यकता है उनके पढ़ाने का भारत में अच्छा प्रबन्ध नहीं। न यहाँ भूगर्भ-विद्या का कोई विद्यालय है, न खनिजविद्या का। न यहाँ रसायनविद्या के पढ़ाने का कहीं अच्छा प्रबन्ध है, न उत्तम वैश्वकर्म-विद्या (इंजीनियरी) ही का। यदि किसी भारतीय युवक के जीमें इनमें से किसी विद्या के सीखने की चाह हुई भी तो वह मन ही में विलीन हो जाती है। यदि किसी ने बड़ा ही साहस किया तो हज़ारों फूँक कर विलायत जाता है। पर विलायत वही जा सकता है जिसके पास काफ़ी रुपया है। इन विद्याओं के सीखने का यहाँ कोई समुचित प्रबन्ध नहीं। जहाँ कहीं थोड़ा बहुत है भी वहाँ के नियम महासंकीर्ण हैं। उदाहरण के लिए रुड़की-कालेज ही को लीजिए। वहाँ सब प्रदेशों के विद्यार्थी भरती ही नहीं किये जाते।

व्यापार के लिए नाव और जहाज़ बनाने तथा चलाने की विद्या का सीखना भी परम आवश्यक है। बिना इसके व्यापार की वृद्धि नहीं हो सकती। परन्तु इस विद्या के सीखने का भी यहाँ कोई प्रबन्ध नहीं है। यही नहीं बल्कि कोई भारतीय जन यदि विलायत जाकर भी यह विद्या सीखना चाहता है, तो उसे भी नहीं सिखलाई जाती।

इन बातों पर विचार करने से अच्छी तरह मालूम होता है कि भारत-वासियों के हाथ पैर ख़ूब जकड़े हुए हैं। उनको वाणिज्योपयोगी किसी साधन का भी अच्छा सुभीता नहीं है। इतने पर भी तारीफ़ यह है कि लोग अबाधवाणिज्य की दुहाई मचा रहे हैं।

जब ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत में प्रथम पदार्पण किया तब भारत की आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी थी। तब भारत का व्यापार ख़ूब चमक रहा था। यदि तब भारत और इंग्लेंड में अबाधवाणिज्य की नीति चलाई जाती तो हम जानते कि भारत के विषय में उस नीति के नियामकों की शुभ कामना है। उस समय तो ऐसी ऐसी चालें चली गईं कि भारत का व्यापार सर्वथा नष्ट भ्रष्ट हो गया।

जिस समय भारत से विलायत को कपड़ा जाता था, उस समय यह नीति नहीं उपयोग में लाई गई। उस समय जो विलायती चीज़ें भारत में आती थीं उनपर तो सिर्फ़ फ़ीसदी २॥) रु० महसूल था। पर जो भारत से विलायत को जाती थीं उन पर सैकड़ा पीछे ४००) रु० महसूल! जब ऐसी ऐसी चालबाज़ियों से भारत के व्यापार का सत्यानाश हो चुका तब, बाद में, अबाधवाणिज्य की नीति जारी की गई। क्या इसी का नाम अबाधवाणिज्य-नीति है?

देखिए, विलायत वाले आपके ही देश से ५ रुपये की रुई लेजाकर, उसके कपड़े तैयार करके, आपही को उसे ५० रुपये पर बेच जाते हैं। शायद आप उस रुई के पाँच रुपये लेकर अपने मन में ख़ुश होते होंगे कि हमने अपने माल के विदेशियों से ५ रुपये ले लिए। पर यह ख़ुशी नहीं बल्कि रोना है। याद रखिए, जिस समय विलायती सौदागर आपको ५ रुपये दे जाता है, उसी समय मानों वह आप से यह कह जाता है कि "इन पाँच रुपयों में ४५ और मिलाइए। हम इस रुई का कपड़ा तैयार करके लाते हैं। वह कपड़ा आप को देकर हम आप से ५० रुपये लेंगे"।

विदेशियों ने जो भारत के साथ अबाधवाणिज्य-नीति का सहारा लिया है वह परोपकार या भारत के उपकार के लिए नहीं है; वह है अपने पेट के लिए, अपने देश के लिए। जो वे ऐसा न करते, और भारत से विलायत में अन्न न जाता, तो विलायत वालों को बहुत बड़ी आफ़त का सामना करना पड़ता। हम इन लोगों की स्वदेश-भक्ति की प्रशंसा करते हैं। इसी का नाम देशानुराग है। इसके लिए हम विदेशियों को दोषी नहीं समझते। क्योंकि उनका वही धर्म था जो उन्होंने किया है। उनका वही कर्त्तव्य है जो वे कर रहे हैं। यदि आपका भारतदेश भूखों मरे तो उसकी चिन्ता से वे अपना धर्म क्यों छोड़ें? वे अपने देशवालों को क्यों भूखों मारें?

इन बातों से सिद्ध है कि भारत को अबाधवाणिज्य-नीति की आवश्यकता नहीं। क्योंकि ईश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कृपा से हमारी भारतभूमि ऐसी उर्वरा है, ऐसी उपजाऊ है, कि इसमें सभी आवश्यकीय चीज़ें पैदा होती हैं और हो सकती हैं। हमारी मातृभूमि सजला है, सफला है, और सस्यश्यामला है।

जिस समय विदेशी बनियों ने भारत में आकर यहाँ के माल पर ४००) सैकड़ा महसूल लगाया था, यदि उस समय, भारत का कोई स्वतन्त्र राजा होता तो विदेशी माल पर वह ५००) सैकड़ा महसूल लगा देता। पर यह बात न थी, इससे भारतीय व्यापार धीरे धीरे नष्ट हो गया। अब उचित है कि सब भारत-वासी मिलकर इस गिरे हुए भारत-व्यापार को फिर से जगावें। यदि स्वदेशी राजा नहीं है तो कुछ पर्वा नहीं; हमको ख़ुद विदेशी माल पर महसूल लगाना चाहिए। किस तरह? उदाहरण लीजिए—

कल्पना कीजिए कि विलायती धोती यहाँ १) में मिलती है। इस एक रुपये में रुई, मज़दूरी, महसूल वग़ैरह ख़र्च और एक या दो आने मुनाफ़े का भी शामिल है। यदि इसी तरह की धोती भारत में तैयार कराई जाय तो शायद १=) में पड़े। अर्थात् विलायती धोती से देशी धोती =) महँगी बिके। यह स्वाभाविक बात है कि सब लोग—चाहे ग़रीब हों चाहे अमीर—सस्ता ही माल पसन्द करते हैं और करना भी चाहिए। ऐसी दशा में देशी धोती की बिक्री होने की आशा नहीं।

यदि भारत में स्वदेशी गवर्नमेंट होती तो वह इस बात को देखकर विदेशी धोती पर फ़ी धोती =) महसूल लगा देती। ऐसा करने से, विदेशी धोती जो पहले १) में मिलती थी १=) में मिलने लगती। इस दशा में १=) वाली स्वदेशी धोती की ख़ूब बिक्री होती और विदेशी को कोई छूता तक नहीं। जब स्वदेशी धोतियों की बिक्री बढ़ती तब देशी व्यापार की भी बढ़ती होती।

विदेशी माल पर इस प्रकार कर लगाने को "शिल्परक्षा" कहते हैं। कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि अँगरेज़ी-उपनिवेश-निवासी इसी तरह स्वदेशी शिल्प-रक्षा करते हैं। जब कभी वे ज़रूरत देखते हैं तभी झट वे विदेशी माल पर महसूल लगाकर उसे इतना महँगा कर देते हैं कि उसे कोई नहीं लेता।

अब सवाल यह है कि हम किस तरह विदेशी माल पर महसूल लगा सकते हैं। सुनिए, निराश न हूजिए, इसका उपाय भी हम आपको बतलाये देते हैं। आप थोड़ी देर के लिए, भारत के समस्त व्यापार का कर्ता धर्ता अपने ही को मानकर, ख़ुद ही, विदेशी माल पर, फ़ी धोती, =) महसूल लगा दीजिए। आप अपने मन में इस बात को पक्की कर लीजिए कि हमने विदेशी धोती पर =) महसूल लगा दिया है। ऐसी भावना करके आप उस विलायती धोती को १) की न समझ कर १=) की समझिए। जब आप ऐसा समझेंगे तब विलायती धोती से स्वदेशी धोती ज़रूरही सस्ती पड़ेगी। फिर सब लोग स्वदेशीही धोती लेंगे। याद रखिए, जब आपके देश में प्रत्येक देशहितैषी की यही पवित्र भावना—यही उन्नत अभिलाषा—होगी तब आपका अभीष्ट ज़रूर सिद्ध हो जायगा।

जॉन स्टुअर्ट मिल ने अपने सम्पत्ति-शास्त्र में लिखा है कि—"महसूल लगा कर उसी चीज़ को महँगा करना चाहिए जो चीज़ अपने देश में पैदा हो सके; अन्यथा कुछ फ़ायदा नहीं।" यह बिलकुल सच है। परन्तु ऐसी कौन चीज़ है जो हमारी भारत-भूमि में न पैदा होती हो, या जिसके पैदा करने की शक्ति उसमें न हो? हमारी मातृभूमि में प्रायः सभी आवश्यक चीज़ें पैदा होती हैं और हो सकती हैं। इसलिए अब समस्त भारत-निवासियों का प्रधान कर्तव्य यही है कि वे किन्तु परन्तु में अधिक न उलझ कर, विदेशी वस्तुओं पर महसूल लगा कर, उन्हें महँगा कर दें और स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार बढ़ावें। जो जो आवश्यक चीज़ें अभी तक भारत में तैयार न होती हों उनकी तैयारी का प्रबन्ध करें; उनके लिए जगह जगह कल-कारख़ाने जारी करें।

यहाँ कोई कोई अदूरदर्शी यह शङ्का करेंगे कि हम एक रुपये की धोती के लिए १=) क्यों दें? तीन आने की हानि हम क्यों उठावें? पर उन्हें सोचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए कि वह १) तो आपके हाथ से विलायत की धन-संख्या बढ़ावेगा और यह १॥) आपके देश में रह कर आपके देशी भाइयों को भूखों मरने से बचावेगा। यह कोई अर्थहानि नहीं कही जा सकती । जातीय जीवन में अर्थलाभ ही परम पुरुषार्थ नहीं माना जा सकता। क्या कोई विचारशील मनुष्य अपनी अल्प सी हानि न सह कर स्वदेश का सत्यानाश कर सकता है ? कभी नहीं। हम कह सकते हैं कि जो आदमी अपनी तुच्छ सी हानि की परवा न करके देश का सच्चा हित करना चाहता है वही सच्चा देश-भक्त और वही अपनी मातृ-भूमि का सच्चा सपूत है।

यहाँ तक जो कुछ कहा गया उससे सिद्ध हुआ कि हमारे लिए अबाध्यवाणिज्य-नीति हितकर नहीं। शुरू शुरू में इस नीति को अर्द्धचन्द्र देकरही इस देश का व्यापार नष्ट और विलायत का व्यापार विस्तृत किया गया है। अतएव बायकाट के विपक्षियों की थोथी बातों को सुना अनसुना करके हमें बायकाट-व्रत से च्युत न होना चाहिए।

कोई कोई बायकाट को द्वेषमूलक या भेदकारक कहते हैं। पर यह उनका भ्रम है। द्वेष करना बहुत बुरी बात है। हमारी यह इच्छा कभी नहीं है कि भारत से किसी का द्वेष बढ़े। हम मेल बढ़ाना ही अच्छा समझते हैं। हम चाहते हैं कि हमारा भारत जैसा प्राचीन काल में सर्व-विद्यानिधान था और कला कौशल, व्यापार आदि में सब देशों का शिरोमणि था, वैसा ही अब भी हो जाय। हम किसी से द्वेष करना नहीं चाहते ; चाहते हैं सिर्फ़ यही कि भारत मैनचेस्टर से वस्त्र न ले, उलटा वह उसे और अन्य देशों को दे। हम चाहते हैं कि अपने देश के कच्चे माल-मसालों से हम ख़ुद अपने देश में चीज़ें तैयार करें। हम चाहते हैं कि हमारा देश गेहूं चावल आदि धान्यों से सदा भरपूर बना रहे जिससे दुर्भिक्ष पड़ने पर भी प्रजा अपना जीवननिर्वाह कर सके।

किसी किसी के मुँह से यह भी सुनने में आता है कि बायकाट निगेटिव है अर्थात् इसमें निषेधात्मक या अभावात्मक भाव भरा हुआ है। ख़ूब, क्या ऐसा कहनेवालों को यह नहीं मालूम कि भाव-अभाव का नित्य सम्बन्ध है ? आपको स्वदेशी से तो प्रीति है ही। घृणा है तो इस बायकाट से । हम पूँछते हैं कि आपके स्वदेशी शब्द से, क्या बायकाट का भाव नहीं निकलता ? क्या विदेशी वस्तुओं के बिना त्यागे स्वदेशी वस्तुओं का ग्रहण कभी सम्भव है ? यह तो बिलकुल वही बात हुई कि "सच बोलो, पर झूठ न बोलने की प्रतिज्ञा मत करो" !

कोई कोई कहते हैं कि बायकाट से, अर्थात् वैदेशिक वस्तुवर्जन से, हमारा काम ही न चलेगा। वे यह भी कहते हैं कि भारत में सौ पचास आदमियों ने ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा कर भी ली तो इससे क्या हो सकता है। इसके उत्तर में हम सिर्फ़ एक दृष्टान्त देना चाहते हैं। वह यह है—

एक दिन किसी राजा ने अपने नगर-निवासियों को आज्ञा दी कि आज रात को तुम लोग सब मिल कर एक एक लोटा दूध एक कुंड में डाल देना जिससे वह दूध से भर जाय । सवेरे हम देखेंगे। राजाज्ञा सब ने मंज़ूर की । परन्तु अपने घर जाकर हर आदमी जी में सोचने लगा कि और सब लोग तो कुंड में दूध डालेंहीगे, यदि हम दूध की जगह एक लोटा पानी ही डाल दें तो क्या हानि ! निदान वे सब रात को पानी का एक एक लोटा उस कुंड में डाल आये । सवेरे राजा ने देखा तो कुंड पानी से भरा है। दूध का नाम नहीं !

इस दृष्टान्त से सिद्ध है कि किसी काम में यह सोचना कि दो चार आदमी करही क्या सकते हैं, बहुत बड़ी नादानी है। ऐसा सोचने वालों का कभी कोई काम नहीं हो सकता । सर्वदा उद्योग और उत्साह को बढ़ाते ही रहना उन्नति का मूल है। एक के उदाहरण से अनेक उसके अनुयायी हो जाते हैं।

किसी किसी धर्माभिमानी का मत है कि बायकाट "प्रेम-विरोधी" है। परन्तु यह हमारी समझ में नहीं आता कि उन्होंने प्रेम किस वस्तु का नाम रख छोड़ा है । क्या विदेशी व्यापारियों के प्रेम से मतलब है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूस के प्रसिद्ध लेखक "टाल्सटाय" ने कहा है—"जो मनुष्य अपने देश से प्रेम करना नहीं जानता उसका सांसारिक प्रेम झूँठा है। उच्चतम प्रेमधर्म का यह सिद्धान्त है कि यदि तुम्हारे देशी भाई कपड़े के लिए मुहताज हों, और तुम मनमाने वस्त्रों से सजे बजे हो; यदि तुम्हारे भाई भूखों मरते हों, और तुम्हारे पास आवश्यकता से भी अधिक खाने पीने का सामान हो; तो ऐसी दुरवस्था के लिए तुम्ही अपराधी है; तुम्ही दोषी हो। तुम्हारे स्वदेशी भाई नहीं"।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बायकाट के समर्थक लेखक ने अपने मत को बड़ी योग्यता से स्थापित किया है। पर हमारी अल्प बुद्धि में "बायकाट" की जगह "स्वदेशी" शब्द का ही प्रयोग समुचित है। दोनों का मतलब यद्यपि एक है तथापि बायकाट के ऐतिहासिक अर्थ में एक प्रकार का विषम विष भरा हुआ है। उसमें एक ऐसा डंक है जिसका दंश दूसरे पक्षवालों के हृदय में पीड़ा पैदा किये बिना नहीं रहता। स्वदेश-प्रेम के पारावार में आप आकण्ठ मग्न हूजिए, पर विपक्षियों को डंक न मारिए। बायकाट एक भयङ्कर शस्त्र है। उसे चलाना सबका काम नहीं। उसका प्रहार विफल होने से चलानेवालों का सर्वनाश हो सकता है। बायकाट पर राजनैतिक रंग चढ़ा हुआ है। वह वङ्ग-विच्छेद-कर्त्ताओं के बल का विरोधी है। "तुमने हमारी इच्छा के ख़िलाफ़ वङ्ग का विच्छेद करही दिया। अच्छा हम तुम्हारे देश की चीज़ों का बायकाट करते हैं"—यह इस शब्द का आन्तरिक आशय है। इस तरह के आशय के प्रचार और विस्तार की ज़रूरत नहीं। हिन्दुस्तान अमेरिका नहीं, और न चीन ही है। फिर जब बायकाट से वही मतलब सिद्ध होता है जो स्वदेशी से, तब ऐसे विद्वेषमूलक शब्द या भाव की भावना क्यों? जो कार्य्य-सिद्धि बायकाट-कर्ता बन कर हो सकती है वही स्वदेशी-सेवक बनकर हो सकती है। इस दशा में बायकाट की घोषणा बुद्धिमत्ता का काम नहीं—

जो मधु दीन्हेही मरे माहुर दीजे नाहिँ।

रामजीलाल शर्म्मा।

भिन्न-भाषाओं में समानार्थवाची पद्य।

[१]

एक भाषा के कवियों के भाव तो यदा कदा एक दूसरे से मिलही जाते हैं, भिन्न-भाषाओं के कवियों के भाव भी कभी कभी आपस में लड़ जाते हैं। नैषध-चरित में दमयन्ती की एक उक्ति है—

प्रियं न मृत्युं न लभे त्वदीप्सितं
तदेव न स्यान्मम यत्त्वमिच्छसि।
वियोगमेवेच्छ मनः प्रियेण मे
तव प्रसादान्न भवत्यसावपि॥

अर्थात् हे मन, न तो मुझे तेरा ईप्सित, प्रिय, नल, ही मिलता है और न उसकी अप्राप्ति में मुझे मृत्युही आती है। जो कुछ तू चाहता है वही मुझे नहीं मिलता। इससे तू मेरे प्रियतम से मेरे वियोग की इच्छा कर (वियोग की इच्छा करने से मुझे उसका उलटा संयोग ज़रूर प्राप्त होगा) हाय हाय! तेरे प्रसाद से वियोग भी दुर्लभ हो गया है।

उर्दू के मशहूर शायर मोमिन ने भी एक शेर कहा है जो इससे बहुत कुछ मिलता है। वह कहता है—

माँगा करेंगे अब से दोआ हिज्रे यार को।
आख़िर तो दुश्मनी है दोआ को असर के साथ॥

इसी तरह का एक शेर ग़ालिब ने भी कहा है। सुनिए—

ख़ूब था पहले से होते जो हम अपने बदख़्वाह।
कि भला चाहते हैं और बुरा होता है॥

[२]

नैषधचरित में जहाँ पर पूर्वोक्त पद्य है उसी के पास एक और है। यह समझ कर कि अब मुझे नल की प्राप्ति न होगी, दमयन्ती जीना व्यर्थ समझती है और अपने जीवन से कहती है—

विलम्बसे जीवित किं द्रुतं द्रुतं
ज्वलत्यदस्ते हृदयं निकेतनम्।
जहासि नाद्यापि मृषासुखासिका-
मपूर्वमालस्यमिदं तवेदृशम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे जीवित, तुम देरी क्यों कर रहे हो ? किस मतलब से तुम ठहरे हो ? जल्द द्रवीभूत हो । जल्द निकलो । तुम देखते नहीं कि मेरा हृदयरूपी यह तुम्हारा घर जल रहा है । अब तक भी तुम्हें मृषा सुखाशा बनी हुई है ! अफ़सोस ! तुम ग़ज़ब के आलसी हो । जिसका घर जलता है वह क्या उसी के भीतर बैठा रहता है । यह तो तुम ख़ुद ही जल मरने की योजना कर रहे हो ।

उर्दू के प्रसिद्ध शायर सौदा ने एक शेर कहा है जिसका भाव इस पद्य के भाव से बहुत कुछ मिलता है । देखिए—

दिल इश्क़ के शोले से जो भड़का तो रहा क्या ?
ए जान, निकल जा कि लगी मुत्तसिल आतिश ।

[३]

चन्द्रोदय और विरहीजन-सम्बन्धी एक पुरानी उक्ति है—

सायं नायमुदेति वासरमणिश्चन्द्रो न चण्डद्युति-
र्दावाग्निः कथमम्बरे ? किमशनिः ? स्वच्छान्तरिक्षे कथम् ?
हन्तेदं निरणायि पान्थरमणीप्राणानिलस्याशया
धावद्घोरविभावरीविषधरीभोगस्थभीमो मणिः ।

इस समय सायंकाल है । इसलिए अब यह सूर्य तो निकलही नहीं रहा । और चन्द्रमा शीतरश्मि है । उसमें यह उष्णता कैसी ? अतः यह सूर्य भी नहीं, चन्द्र भी नहीं । तब क्या यह दावानल है ? पर उसका आश्रय तो वन है ; वह आकाश में कहाँ ? फिर क्या यह अशनि–वज्र की आग–है ? नहीं, क्योंकि इस समय आकाश स्वच्छ, मेघरहित है, और उसका साहचर्य मेघ के साथ है । इस कारण यह अशनि भी नहीं । ओः ! मालूम हो गया, प्रोषितपतिका, विरहिणी, के प्राणवायु के पान करने की इच्छा से दौड़ी आती हुई घोररात्रिरूप साँपन के फन की यह भयानक मणि है, और कुछ नहीं ! ! !

यह एक लौकिक प्रसिद्धि है कि प्रायः रात को एक ख़ास क़िस्म का साँप, अपने फन को मणि के चाँदने में ओस चाटने और हवा खाने निकला करता है । इस श्लोक के चौथे चरण की साँपिन से शायद उसी से मतलब है ।

इस श्लोक से कुछ मिलता जुलता भाव, फ़ारसी और उर्दू के प्रसिद्ध कवि मिर्ज़ा ग़ालिब के एक फ़ारसी शेर में भी पाया जाता है । देखिए—

दर हिज़् तरब् बेशकुनद् तावो तबम् रा,
महताब कफ़े मारे स्याहस्त शबम् रा ।

अर्थात् वियोगसमय में भोगविलास की सामग्री से मेरी व्याकुलता और सन्ताप और अधिक बढ़ जाते हैं । इस कारण चाँदनी, मेरी रात्रि (वियोग-रात्रि) के बारे में कृष्णसर्प के फन की तरह भयप्रद है । यदि उपचार से 'फण' का अर्थ यहाँ 'फणस्थ मणि' लिया जाय तो उपर्युक्त श्लोक के साथ इसकी पूरी समानार्थता हो जाय ।

[४]

एक और कवि कहता है—

रात्रिराज ! सुकुमारशरीरः, कः सहेत तव नाम मयूखान् ?
स्पर्शमाप्य सहसैव यदीयं, चन्द्रकान्तदृषदोपि गलन्ति ॥

हे रात्रिराज, चन्द्र ! कौन सुकुमार (नाज़ुकबदन) प्राणी तुम्हारी उन किरणों को बरदाश्त कर सकता है, जिनका स्पर्श पाते ही चन्द्रकान्त पत्थर (चन्द्रकान्तमणि) भी पिघल जाते हैं ! सुकुमार प्राणियों की तो कथा ही क्या है !

उर्दू के महाकवि 'ज़ौक़' की भी इस तरह की एक विचित्रोक्ति सुनने लायक़ है । आप कहते हैं—

अफ़सुर्दादिल के वास्ते क्या चाँदनी का लुत्फ़,
लिपटा पड़ा है मुर्दा सा गोया कफ़न के साथ ।

[५]

मृच्छकटिक नाटक का नायक, चारुदत्त, दरिद्रता से पीड़ित होकर कहता है—

दारिद्र्य, शोचामि भवन्तमेव-मस्मच्छरीर सुहृदित्युषित्वा ।
विपन्नदेहे मयि मन्दभाग्ये ममेति चिन्ता क्व गमिस्यसि त्वम् ?

हे दारिद्र्य, सुहृद् बनकर आप इतने दिनों तक मेरे शरीर में वास करते रहे । इससे मुझे बड़ा सोच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि मुझ मन्दभाग्य के शरीरपात होने पर आप कहाँ जाइएगा ? यह चिन्ता मुझे बहुत तंग कर रही है।

उर्दू के मशहूर शायर मोमिन ने भी वियोगरात्रि को सम्बोधन करके इसी तरह की एक उक्ति कही है—

तू कहाँ जायगी कुछ अपना ठिकाना कर ले।
हम तो कल ख़्वाबे अदम में शबे हिजराँ ! होंगे ॥

पद्मसिंह शर्म्मा।

मनोरञ्जक श्लोक।

अविद्यावाक्पतेश्चात्र विद्यावागीशता कुतः।
अमङ्गलस्य वारस्य यथा मङ्गलवारता ॥

किसी राजसभा में किसी मूर्ख की उपाधि विद्यावागीश थी। यह दशा देख किसी पण्डित ने पूंछा कि यह अविद्यावागीश विद्यावागीश किस तरह हो गया ? इस पर किसी ने उत्तर दिया कि जैसे महाअमङ्गलकारी भूमिपुत्र का नाम मङ्गलवार पड़ा उसी तरह इसका भी।

फलित ज्योतिष में मङ्गल की गिनती क्रूरवारों में है।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी।

विनीत विज्ञप्ति।

काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के उपसभापति, बाबू श्यामसुन्दर-दास, "सभा की सभ्यता" नामक लेख के विषय में, १५ जून ०७ के भारतमित्र में लिखते हैं—"मेरी सविनय द्विवेदीजी से प्रार्थना है कि जान अथवा अनजान में जो कुछ मुझसे भूल हुई हो उसे क्षमा करें और भूल जायँ। शान्तिपूर्वक इस मामले को ठण्ढा करें"। इसका उत्तर हमने हिन्दीबङ्गवासी में दिया है। यहाँ हमें सिर्फ़ इतना ही निवेदन करना है कि सभा के काम-काज-सम्बन्ध में हमने आपकी कितनीहीं आज्ञायें मानी हैं। आपकी यह आज्ञा भी शिरोधार्य्य है। अब आप "इस मामले को ठण्ढा" ही समझें। आपकी "उदारता" का जो उत्तर हम हिन्दी-बङ्गवासी में दे रहे हैं उसके बाद इस विषय में और कुछ भी लिखने का हमारा इरादा नहीं। यहाँ तक कि अब हमने "कौटिल्य-कुठार" के प्रकाशन का भी विचार स्थगित कर दिया है। छपने पर उसे वी० पी० भेजने के लिए जो हमारे पास अनेक पत्र आये हैं उनके लेखक कृपापूर्वक अब हमें क्षमा करें। उनमें से जो सज्जन सभा के मेम्बर हैं वे उसे सभा से ही मँगा कर—यदि वह भेजने की उदारता दिखावे—पढ़ सकते हैं। आशा है, भविष्यत् में, बाबू श्यामसुन्दरदास और सभा के अन्यान्य कार्यकर्ता कुटिल नीति को छोड़कर सरल व्यवहार का अधिक ख़याल रक्खेंगे; और जिन बातों की हमने "वक्तव्य" तथा और और लेखों में शिकायत की है उन्हें दूर करने की चेष्टा भी करेंगे।

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

सरस्वती के ग्राहकों को पत्र में अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिखना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती ।

भाग ८] अगस्त, १९०७ [संख्या ८

विविध विषय ।

कनाडा के रहनेवाले राबिनसन नामक एक घड़ीसाज़ ने दुनिया भर में सबसे छोटा एक यंजिन बनाया है। पुतलाघरों के यंजिनों की तरह वह यंजिन भी अचल है। वह एक छोटी सी मक्खी के बराबर है। उसका वज़न है सिर्फ़ ४ ग्रेन। अर्थात् अगर ऐसे २४० यंजिन हों तो उनका वज़न कोई छटाँक भर हो! परन्तु इस यंजिन का वेग इतना अधिक है कि सुनकर आश्चर्य्य होता है। एक मिनट में वह छ हज़ार चक्कर लगाता है! छोटे होने के कारण, बिना ख़ुर्दबीन के, उसका घूमना नहीं देख पड़ता। वह १७ टुकड़ों को जोड़ कर बनाया गया है। कुछ टुकड़े लोहे के हैं; कुछ सोने के। घनीभूत हवा के ज़ोर से वह चलता है। कुछ दिन हुए, वह कनाडा की एक प्रदर्शिनी में दिखाया गया था। देखनेवालों ने राबिनसन साहब की पेट भर तारीफ़ की थी।

*
* *

जो चीज़ एक दफ़े गरम हो जाती है वह कुछ देर तक गरम बनी रहती है। चाय की देगची आग पर से उतार ली जाने पर भी बहुत देर तक गरम रहती है। यदि वह कपड़े से लपेट कर रक्खी जाय तो और भी देर तक ठंढी नहीं होती। उसकी गरमी जल्द नहीं निकलती। इस बात को देखकर जरमनी के रहनेवाले वैक नामक एक साहब की मेम ने एक ऐसा सन्दूक़ लकड़ी का बनाया है, जिसके भीतर देगची में रक्खी हुई चीज़ें आप ही आप पका करती हैं। हाँ कुछ देर तक उनको आग पर पहले ज़रूर रखना पड़ता है। अर्थात् पहले उनमें आग की गरमी पहुँचा देनी पड़ती है। इस सन्दूक़ के भीतर कई ख़ाने रहते हैं और नमदे से वे ख़ूब मढ़े रहते हैं। उनमें घास या पयाल भर कर उसके बीच में गरम देगची रख दी जाती है और सन्दूक़ का ढक्कन बन्द कर दिया जाता है। इससे देगची की गरमी घंटों बाहर नहीं निकलती। यदि उबाल आने के बाद चूल्हे पर पाँच मिनट तक खिचड़ी की बटलोई चढ़ी रहे और फिर उतार कर वह इस सन्दूक़ के भीतर रख दी जाय तो कोई एक घंटे में खिचड़ी उतनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गरमी से आपही आप पक जायगी। इसी तरह तरकारियाँ, मेवे और फल इत्यादि भी पकाये जासकते हैं। दूध शाम को गरम करके इसके भीतर रखने से रात भर गरम रहता है। इससे ईंधन, मेहनत और समय सबकी बचत होती है। योरप में इस सन्दूक़ का ख़ूब प्रचार हो रहा है। जरमनी के फ़्रांकफर्ट शहर का एक सौदागर इन सन्दूक़ों को बेचता है।

* * *

योरप के बोहेमिया नामक प्रदेश में दो लड़कियाँ जुड़ी हुई पैदा हुई थीं। इनकी उम्र इस समय २५ वर्ष की है। ये एक किसान की लड़कियाँ हैं। इनके बचपन में पेरिस के डाक्टर इनके बाप को बहुत सा रुपया इस शर्त पर देते थे कि वह, चीर फाड़ करके, लड़कियों को अलग अलग करने का उन्हें तजरिबा करने दे। पर बाप ने इस बात को मंज़ूर नहीं किया, क्योंकि लड़कियाँ ख़ूब नीरोग, प्रसन्नचित्त और हृष्ट-पुष्ट थीं। इन लड़कियों ने योरप के भिन्न भिन्न प्रदेशों में अपनी प्रदर्शिनी करके बहुत सा रुपया कमाया है। इनके बाप ने इन्हें अच्छी तरह शिक्षा दी है। ये जर्मन, अँगरेज़ी और फ़रासीसी भाषायें उत्तमता से जानती हैं और सितार और बायलिन भी ख़ूब बजाती हैं। दोनों के स्वभाव अलग अलग हैं। एक गंभीर है, दूसरी वाचाल। यदि एक का सिर दर्द करता है तो दूसरी का नहीं। इनकी नाड़ियों की गति भी अलग अलग है। ये कमर के नीचे जुड़ी हुई हैं। एक एक करवट सोती है, दूसरी दूसरी करवट। अब वीना नामक नगरी में इनकी प्रदर्शिनी होनेवाली है। पर प्रदर्शिनी के पहले एक प्रसिद्ध डाक्टर "एक्स रेज़" (X Rays) नामक किरणों के योग से इनके जुड़े हुए अङ्ग की परीक्षा करके देखेंगे कि यदि काट कर ये अलग अलग कर दी जायँ तो इनके जीवित का संशय तो नहीं है।

* * *

हम लोगों में अच्छी शिक्षा पाये हुए लोग भी ऐसे बहुत कम होंगे जिन्होंने मुख्य मुख्य धर्म्म-ग्रन्थों का भी आदि से अन्त तक पाठ किया हो। उनका मर्म्म जानना तो बहुत दूर की बात है। परन्तु क्रिश्चियन-धर्म्माधिकारियों में से अनेक लोग बाइबिल का विलक्षण ज्ञान रखते हैं। एक ने तो बाइबल के शब्द ही नहीं, अक्षर तक गिन डाले हैं। बहुत दिन के परिश्रम से उसने यह काम कर पाया है। हिसाब सुनिए—

बाइबल।

	प्राचीन पुस्तक	नवीन पुस्तक	कुल
भाग	३९	२७	६६
अध्याय	९२९	२६०	१,१८९
पद्य (श्लोक-संख्या)	३३,२१४	७,९५९	४१,१७३
शब्द	५,९३,४९८	१,८१,२५३	७,७४,७५१
अक्षर	२७,२८,१००	८,३८,३८०	३५,६६,४८०

इस परिश्रम का फल क्या हुआ सो तो पादरी साहब ही जानें, पर आपका अध्यवसाय अवश्य प्रशंसनीय है।

* * *

मौलवी अब्दुल मुक़्तदीर ने एक अँगरेज़ी मासिक पुस्तक में हिन्दुस्तान के मुसलमान बादशाहों पर एक अच्छा लेख लिखा है। उसमें बाबर से लेकर बहादुर शाह तक की विद्वत्ता की चर्चा है। बाबर फ़ारसी और तुर्की का अच्छा विद्वान् था। हुमायूं और दारा को भी गिनती अब तक विद्वानों में थी। पर अब मौलवी साहब ने साबित किया है कि हुमायूं का भाई मिर्ज़ा कामरान और बहादुरशाह पहला और दूसरा—ये तीनों भी ख़ूब पढ़े लिखे थे। मिर्ज़ा कामरान तो उत्तम कवि था। अकबर को छोड़कर बाक़ी सब मुग़ल बादशाह थोड़ा बहुत पढ़े थे। पर अकबर बिलकुल ही अपढ़ था। इस बात के मौलवी साहब ने प्रमाण दिये हैं और लिखा है कि हुमायूं ने चार आलिम आदमियों को अकबर के पढ़ाने के लिए रक्खा था। पर आपने ऊंटों का तमाशा देखने, कबूतर उड़ाने और कुत्ते दौड़ाने ही को पढ़ना लिखना समझा। अकबरनामे में लिखा है कि अकबर फ़ारसी और हिन्दी की कविता जानता था; और दीवाने हाफ़िज़ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलालुद्दीन रूमी की मसनवी की कविता कण्ठ पाठ करता था। इसे मौलवी साहब ग़लत बताते हैं। आप कहते हैं, यह बात किसीने अकबरनामे में पीछे से लिख दी है। जहांगीर ने अपने आत्मचरित में ख़ुद लिखा है कि मेरा बाप अपढ़ था। पर विद्वानों के पास हमेशा बैठने और उनसे बातचीत करने से उसमें ऐसी योग्यता आगई थी कि उसकी बातों से कोई यह नहीं जान सकता था कि यह अपढ़ है।

* * *

घोड़ों की, रेलगाड़ियों की, नावों की, आदमियों की दौड़ें तो होती ही हैं, अब कबूतरों की भी दौड़ें होने लगी हैं। अमेरिका में हज़ारों कबूतर दौड़ाये जाते हैं। हाँ, वे ज़मीन पर नहीं दौड़ते, आसमान में दौड़ते हैं। पहले वे मकान से कुछ दूर ले जाकर छोड़ दिये जाते हैं। जब वहाँ से वे घर, अपने अड्डे, पर बेचूक उड़ आने लगते हैं तब और दूर ले जाकर छोड़े जाते हैं। यह दूरी १००० मील तक बढ़ती जाती है। इसी तरह उनको उड़ने की शिक्षा दी जाती है। पाठकों को सुनकर आश्चर्य्य होगा, कबूतर रेल से भी तेज़ दौड़ते हैं। ५०० मील की दूरी तै करने में उनका औसत वेग फ़ी घंटे ४६ मील है। दूरी अधिक होने से वेग क्रम क्रम से कम हो जाता है। उनके वेग का हिसाब, जो लिख रक्खा गया है, इस प्रकार है—

दूरी मीलों में			उड़ने का वेग, फ़ी घंटा
१००	...	...	८६ मील
२००	...	...	६४ ,,
३००	...	...	६३ ,,
४००	...	...	५८ ,,
५००	...	...	५४ ,,
६००	...	...	४४ ,,
७००	...	...	४३ ,,
८३६	...	...	१७ ,,
१०००	...	...	४ ,,

* * *

भारत का पुराना इतिहास अन्धकार में छिपा है। शिलालेख और ताम्रपत्ररूपी तारकाओं के प्रकाश में जो कभी कभी उसका अल्पाल्प दर्शन हो जाता है उसी को इतिहास-प्रेमी बहुत समझते हैं। परन्तु ये शिलालेख और ताम्रपत्र दुष्प्राप्य पदार्थ हैं। कलकत्ता, बंबई, लन्दन और जर्मनी के दो एक नगरों से विदेशी भाषाओं में पुरातत्त्वविषयक जो पुस्तकें निकलती हैं उन्हीं में बहुधा ये प्रकाशित होते हैं और उन्हीं में इन पर निबन्ध लिखे जाते हैं। सिर्फ़ हिन्दी जाननेवाले इनके लाभ से बिलकुलही वञ्चित रहते हैं। बड़े हर्ष की बात है कि उदयपुर के पुरातत्त्ववेत्ता पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा हिन्दी के इस अभाव को दूर करने पर सन्नद्ध हुए हैं। आपने "ऐतिहासिकग्रन्थमाला" नाम की एक पुस्तक कई खण्डों में प्रकाशित करने का विचार किया है। उसका पहला खण्ड छपकर तैयार हो गया। इसमें छठी से लेकर ईसा की बारहवीं शताब्दी तक के प्राचीन सोलंकी राजाओं का वर्णन है। यह वर्णन अनुमानमूलक नहीं है। यह इतिहास है। हर एक बात ताम्रपत्रों, शिलालेखों और पुरानी पुस्तकों के आधार पर लिखी गई है। स्थान स्थान पर उनका हवाला है और उनके वाक्य भी उद्धृत किये गये हैं। हिन्दी में इस तरह की यह पहली ही पुस्तक है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है और बहुत उपयोगी है। हम पण्डित गौरीशङ्करजी के इस प्रशंसनीय काम का हृदय से अभिनन्दन करते हैं, और उनसे प्रार्थना करते हैं, कि इसके अन्यान्य खण्डों को भी यथाशक्ति शीघ्र ही लिख डालें। पुस्तक अच्छे टाइप में चिकने काग़ज़ पर छपी है और २ रुपये को मिलती है।

* * *

बंबई का आम मशहूर है। वहां के आमों में "हापुस" नाम का आम सबसे अच्छा होता है। वज़न में वह कोई आधपाव होता है। इससे बड़ा नहीं होता। परन्तु इस आम के आकार में किसी ने वैसीही अद्भुत उन्नति कर दी है जैसी कि अमेरिका के बरबैंक साहब वहाँ के फूलों और फलों में उन्नति कर रहे हैं। बंबई से कोई २० मील दूर एक जगह बोरीविली है। वहाँ इस साल एक बाग़ में सवा सेर वज़नी आम हुए हैं! बाग़ अभी बिलकुल नया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौधे अभी बिलकुलही बच्चे हैं। पहलेही पहल उनमें फल लगे हैं। तिस पर भी यह हाल! दो तीन साल बाद उनमें सवा सेर से भी बड़े आम लगने की आशा है। यह आम साधारण "हापुस" से भी अधिक मीठा है और गुठली बहुत ही छोटी है। सुनते हैं, इस साल बहुत ही थोड़े आम निकले थे और वे १५ रुपये दर्जन बिके थे।

* * *

राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुंशी देवीप्रसाद, मुंसिफ़, जोधपुर, ने अपनी दो किताबें—राजरसनामृत, पहला भाग, और रूठीरानी, भेजने की कृपा की है। पहली ८८ पृष्ठ की पुस्तक है और ॥) को मिलती है, दूसरी ६० पृष्ठ की है और ।=) को मिलती है। राजरसनामृत में जैसलमेर, उदयपुर, जयपुर, बीकानेर, कृष्णगढ़ और बूंदी के नृपकवियों का संक्षिप्त चरित और उनकी कविता के नमूने हैं। राजाओं के चरित संक्षिप्त होने पर भी मनोरञ्जक हैं। कविता भी किसी किसी की उत्तम है—विशेष करके नागरीदास और महाराव राजा विष्णुसिंह की। इतिहास और काव्य दोनों दृष्टियों से यह पुस्तक उपादेय है। दूसरी पुस्तक, रूठीरानी, उपन्यास के रूप में जोधपुर के राव मालदेव की रानी उमादे का चरित है। यह रानी विवाह के दिन से पति के मृत्यु तक बराबर रूठी ही रही। बड़ी ही दिलचस्प कहानी है। पर कहानी होकर भी इतिहास है। इसका ऐतिहासिक भाग विकृत नहीं होने पाया। मुंशी देवीप्रसादजी के हृदय में कुछ काल से हिन्दी का भी प्रेम अङ्कुरित हुआ है। वह बराबर बढ़ता जाता है। आशा है आपकी बदौलत हिन्दी को और भी अनेक उत्तमोत्तम पुस्तकें प्राप्त करने का सौभाग्य होगा। सुनते हैं मुंशीजी ने जहाँगीर के आत्मचरित का अनुवाद भी हिन्दी में किया है और उसका नाम रक्खा है जहाँगीरनामा।

* * *

ओले पड़ने से फ़सल को बहुत नुक़सान पहुँचता है—यह बात सभी को मालूम है। हिन्दुस्तान की अपेक्षा योरप में ज़ियादा ठंढ पड़ती है। इससे वहाँ अकसर ओले पड़ते हैं और बड़ी हानि करते हैं। योरपवाले किसी भी काम को मनुष्य की शक्ति के बाहर नहीं समझते। उन्होंने इसकी भी तरकीब निकाल ली कि ओले न गिरने पावें। तोपों की बाढ़ दागकर वायुमण्डल में वे ऐसा परिवर्तन पैदा कर देते हैं कि या तो ओले गिरानेवाले बादल ही तितर बितर हो जाते हैं या उनसे ओले गिरने की जगह पानी बरसता है। इस तरकीब का व्यवहार फ़्रांस, जर्मनी और आस्ट्रिया में इतना बढ़ गया है कि इस काम के लिए मुहकमें क़ायम हो गये हैं। यह तरकीब हर स्ट्राज़र नाम के वैज्ञानिक ने निकाली है। उसने यह देखकर कि ओले का तूफ़ान आने के पहले वायुमण्डल में सन्नाटा छा जाता है, यह सोचा कि किसी तरह यदि इस सन्नाटे को दूर कर सकें तो शायद ओले का गिरना टल जाय। इसी ख़याल से उसने तजरिबे करने शुरू किये और कुछ दिनों में पूरी पूरी कामयाबी हासिल कर ली।

* * *

इस संख्या के साथ राजकुमार फ़ूशिमी का चित्र पाठकों को भेट किया जाता है। जापान के राजवंश में ये सबसे बड़े हैं। आपने कितने ही देश देखे हैं। सफ़र आपने बहुत किया है। कुछ समय तक ये अमेरिका और रूस में जापान की तरफ़ से एक बहुत बड़े पद पर रह चुके हैं। आप विद्वान् भी हैं और योद्धा भी। युद्ध-विद्या में आप ख़ूब निपुण हैं। चीन-जापान और रूस-जापान युद्ध में इन्होंने बड़ी मुस्तैदी से काम किया था। उस साल इँगलैंड के राजकुमार जापान पधारे थे। वहाँ उनका ख़ूब आदर-सत्कार हुआ था। उसीका बदला देने के लिए जापान-सम्राट् मिकाडो ने कुमार फ़ूशिमी को अभी हाल में इँगलैंड भेजा था। वहाँ हमारे राजेश्वर सातवें एडवर्ड ने आपको सर आँखों पर लिया। आपकी बड़ी ख़ातिर तवाज़ो हुई। आपको सब तरह प्रसन्न रखने के लिए कोई कसर बाक़ी नहीं रक्खी गई। इँगलैंड से आप अमेरिका रवाना हो गये हैं। अमेरिका से जापान लौट जायँगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित कुन्दनलाल ।

विता भी प्रकृति-चित्रण है। वह भी एक प्रकार की चित्रविद्या है। पर कविता और चित्रकला दोनों से एक ही साथ प्रेम होना बहुधा कम देखा गया है। पण्डित कुन्दनलाल में दोनों बातें एक ही साथ थीं।

पण्डित कुन्दनलाल गौड ब्राह्मण थे। इनके पितामह का नाम गिरिधारीलाल और पिता का चतुर्भुज था। संवत् १९१५ में इनका जन्म मथुरा में हुआ था। इनके बड़े भाई पण्डित श्यामलालजी जयपुर में वैद्य थे और पण्डित प्यारेलालजी सरिश्तेदार।

पण्डित जी के पूर्वज साधारण गृहस्थ थे। मालदार न थे। तथापि उन्होंने पण्डित कुन्दनलाल को यथाशक्ति शिक्षा देने में कोई कसर नहीं होने दी। वे मथुरा के ज़िला-स्कूल में पढ़ने भेजे गये और कई वर्ष तक वहाँ रहे। लड़कपनहीं से उन्हें चित्र खींचने का शौक़ था। एक बार, सुनते हैं, मथुरा के तत्कालीन जाइंट मैजिस्ट्रेट ग्राउज़ साहब स्कूल देखने गये। वहाँ कुन्दनलाल ने, छात्रावस्था में, ग्राउज़ साहब को देखते ही उनका चित्र खींचा और उसी वक्त स्कूल ही में उन्हें भेंट किया। इतनी थोड़ी उम्र में कुन्दनलाल का चित्रनैपुण्य देखकर ग्राउज़ साहब बहुत ख़ुश हुए। तभी से ये साहब के कृपापात्र हुए और बहुत कुछ उनसे सहायता पाई।

स्कूल छोड़ कर पण्डित कुन्दनलाल ने सरकारी नौकरी करली। जिस समय ये बुलन्दशहर में कलेक्टरी के हेड क्लार्क थे, ग्राउज़ साहब फ़तेहगढ़ की कलक्टरी पर बदल आये। वहाँ इन्होंने पण्डित कुन्दनलाल की भी बदली करा ली। तब से पण्डित जी का और साहब का, साहब के पेन्शन लेकर विलायत जाने तक, अखण्ड साथ रहा।

पण्डित कुन्दनलाल यद्यपि अँगरेज़ी के पदवीधर न थे, तथापि अँगरेज़ी लिखने और बोलने में उन्हें पदवीधरों से भी अधिक अभ्यास था। उनकी अँगरेज़ी की चिट्ठियों से उनकी योग्यता का अच्छा परिचय मिलता है। उनकी कई चिट्ठियाँ हमारे पास हैं। उनमें कितनी ही बातें उन्होंने बड़े महत्त्व की लिखी हैं। हिन्दी, अँगरेज़ी के सिवा पण्डितजी उर्दू भी जानते थे। चित्रकला में तो आप बहुत ही व्युत्पन्न थे। चित्र खींचने में ये इतने चतुर थे कि आदमी को सामने बिठाकर बात की बात में उसका बहुत ही अच्छा चित्र खींच देते थे। कई नुमायशों में इनके चित्रों की बड़ी तारीफ़ हुई थी और शायद इन्हें कोई पदक भी मिला था। "एक हिन्दू विधवा" और "राजपूत ब्राइड" (नवविवाहिता राजपूत-वधू)—इनके ये दो चित्र बहुत बढ़िया समझे गये थे। "मराठा" और "मराठिन" का भी एक जोड़ा चित्र इन्होंने अच्छा बनाया था। सब मिलाकर कोई छः सात चित्र इन्होंने बनाये थे; पर औरों के नाम हमें नहीं मालूम हुए। नव-विवाहिता राजपूत-वधू के साथ उसके पति का भी चित्र था। पति लड़ाई में जाने के लिए तैयार था। जाने के पहले वह अपनी नवीना वधू से मिलने आया। उसे देखकर वधू ने कहा—

रणकूं चाल्याँ साहिबा कांईं ढूंडत साथ।
थारे साथी तीन छे हिया, कटारी, हाथ॥

यही भाव चित्र में दिखाया गया था। चित्र के नीचे यह दोहा भी था। दोहे का अनुवाद भी अँगरेज़ी में इस प्रकार था—

Bound for fray, why halt my Lord ?
What other aid need be ?
Heart, right hand and trenchant sword
Are thy sure champions three.

यह चित्र शिमला की चित्र-प्रदर्शिनी कमिटी को बहुत पसन्द आया था। एक अँगरेज़ चित्रकार ने इसे इतना पसन्द किया कि अपना १५०) रुपये का एक चित्र देकर इसे बदल लिया।

"हिन्दू-विधवा" का चित्र इन्होंने १८८८ ईसवी में बनाया था। इसका एक फ़ोटो फ़तेहगढ़ से श्रीबाबू हरप्रसादजी ने हमारे पास भेजा है। उसे हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस संख्या में प्रकाशित करते हैं। यह चित्र भी प्रदर्शिनी के अधिकारियों ने बहुत पसन्द किया था।

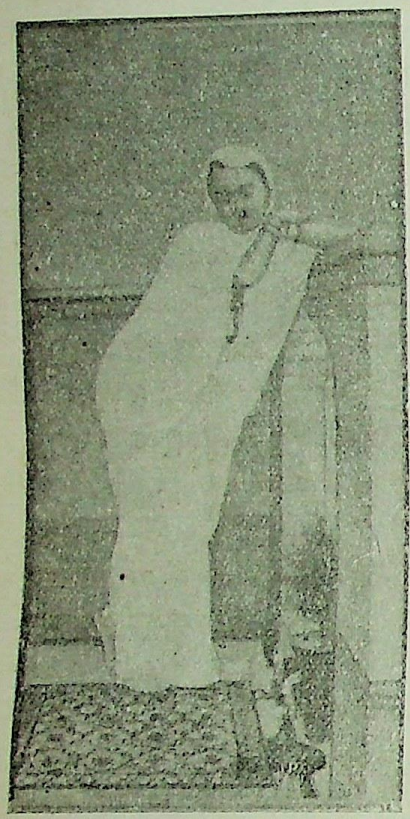

कुछ लोगों का—ख़ास करके विदेशियों का—ख़याल है कि भारतवर्ष की विधवा स्त्रियों की बड़ी दुर्दशा होती है। उन्हें और और क्लेशों के सिवा खाने पहनने का भी क्लेश उठाना पड़ता है। इस ख़याल को दूर करने के लिए भी पंडित जी ने एक चित्र बनाया था। यह इन प्रान्तों की एक तरुण विधवा का चित्र था। इसे हम इस संख्या में प्रकाशित करते हैं। यहाँ कांच की चूड़ियाँ, नथ, बिछुवे आदि चीज़ों और रंग बरंगे कपड़ों को छोड़कर और सब चीज़ें पहनने ओढ़ने का विधवाओं को अधिकार है। खाने पीने में भी उन्हें कोई कष्ट नहीं दिया जाता। सिर के बाल भी नहीं मुँडाये जाते। यही भाव इस चित्र में दिखाया गया है। चित्रगत विधवा के अवयव इस बात की गवाही दे रहे हैं कि उसे खाने पीने को कोई तकलीफ़ नहीं। प्रातःकालीन स्नान और पूजन के पश्चात् यह स्त्री परमेश्वर से नित्य यही प्रार्थना करती थी कि मरने के बाद मेरा मेरे पति से फिर संयोग हो। जिस दिन का यह चित्र है उस दिन स्नान और प्रार्थना के बाद वह अपने मकान की छत पर दीवार से लगकर खड़ी हो गई है और पति के सोच में ध्यानस्थ सी है।

यदि पण्डित कुन्दनलालजी के कुटुम्बियों अथवा मित्रों में से कोई सज्जन हमें उनके अन्य चित्रों का भी एक एक फ़ोटो भेजने की कृपा करें तो हम उन्हें कृतज्ञतापूर्वक सरस्वती में प्रकाशित करेंगे।

संवत् १९४८ के आरम्भ (सन् १८९१ ई०) से पण्डित कुन्दनलाल ने "कवि व चित्रकार" नाम का एक त्रैमासिक पत्र फ़तेहगढ़ से निकाला। इसका उद्देश्य कविता और चित्र-विद्या की उन्नति था। चित्र भी इसमें कभी कभी निकलते थे। इसके साथ एक बार नरगिस के स्वाभाविक पुष्प-गुच्छ का एक रंगीन चित्र निकला था, और एक बार सेब के पुष्प-गुच्छ का। ये चित्र बड़ेही मनोहर थे। हमें याद पड़ता है, पण्डित कुन्दनलाल ने लिखा था कि ये गुच्छ एक हिन्दू-कुल-कामिनी के कर-कौशल के फल हैं। पण्डितजी इस पत्र में चित्रकला और फ़ोटो-विषयक अनेक उपयोगी और सहज में बोधगम्य बातें लिखा करते थे। दो एक दफ़े आपने अच्छे अच्छे चित्र और "डिज़ाइन" बनाकर भेजने वालों को इनाम देने की भी घोषणा प्रकाशित की थी।

कवि व चित्रकार के पहले अङ्क के आरम्भ में एक संस्कृत-लावनी छपी थी। उसका शुरू इस प्रकार है—

प्रणमामि राधिकाकान्त पादयुगलन्ते
यद्विहरति रविजातीरविपुलविपिनान्ते।

इसके 'प्रणमामि' का 'प्र' बड़े आकार में, बेल बूटों के भीतर, बनाया गया था। सो किसी किसी रसिक कवि को वह देख ही न पड़ा। इस पर उन्होंने सम्पादक से शिकायतें कीं, जिन्हें पढ़कर पण्डित कुन्दनलाल को ललित-कलाओं की अधोगति पर बड़ा दुःख हुआ। इतना बड़ा और इतना साफ़ 'प्र' होने पर भी, सिर्फ़ बेल बूटेदार होने के कारण, लोगों की नज़र से ग़ायब हो गया!

कवि व चित्रकार में अच्छी अच्छी कवितायें, कविता-विषयक प्रबन्ध, पुस्तकों की आलोचनायें और चित्रकला-विषयक लेख छपते थे। पूर्ति करने के लिए समस्यायें भी दी जाती थीं। पहली समस्या इस विषय पर दी गई थी कि किसने और किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्देश्य से जालियों का प्रचार किया। इसपर सैकड़ों पूर्तियाँ आईं। पर विशेष करके शृङ्गार ही रस की। कुछ तो अश्लील तक थीं। जालियों के उद्देश्य को भी कविजनों ने शृङ्गार ही में डुबो दिया, यह देख पण्डित कुन्दनलाल को अफ़सोस हुआ। पर और रसों की भी कुछ पूर्तियाँ थीं। अच्छी अच्छी पूर्तियों को पण्डितजी ने जाल-कौमुदी नामक पुस्तक में प्रकाशित किया। इस पुस्तक में जालियों की उत्पत्ति पर पण्डित जी ने एक लेख बड़े खोज से लिखा है। और कोई पौने तीन सौ तरह की जालियों के नमूने दिये हैं। जालियाँ बनाने की रीति आदि का भी वर्णन इसमें है। जाली-विषयक पूर्तियों की जांच के लिए एक कमिटी बनी। उसके सभापति राजा लक्ष्मणसिंह जी हुए। कमिटी ने ७ कवियों की पूर्तियों को अच्छा ठहराया। उनमें से तीन को पण्डित कुन्दनलाल ने दुशाला, घड़ी और ओढ़नी अपनी तरफ़ से पारितोषिक दिया, और शेष ४ को राजा लक्ष्मणसिंह ने अपनी तरफ़ से पगड़ी। पहला पुरस्कार, अर्थात् दुशाला, पण्डित जयदेवजी (अलवर) को मिला। पण्डित नाथूराम शङ्करजी ने पगड़ी पाई। चन्द्रकला बाई (बूंदी) ने ओढ़नी।

कोई दो साल तक कवि व चित्रकार निकला। प्रत्येक अङ्क में एक न एक समस्यापूर्ति छपती रही। पूर्तियाँ अलग "पूर्तिपत्र" में निकलती थीं। पूर्तिपत्र कवि व चित्रकार के अङ्क के साथ ही बँटता था।

(१) भाल लिखी लिपि को सक टार
(२) सार यहै उपकार तजै ना
(३) उन्नति यों करिये कविता की
(४) बार करो जिन बार बराबर
(५) अब तो सब को गुरुदेव रुपैया

आदि समस्याओं पर उत्तमोत्तम पूर्तियाँ इस पत्र में प्रकाशित हुईं। कुन्दनलालजी ने अच्छी अच्छी पूर्तियों के उपलक्ष्य में कवियों को सोने चाँदी के पदक, घड़ियाँ, पगड़ी आदि देकर उनका उत्साह ख़ूब बढ़ाया।

कविता और चित्रकला के ऐसे प्रेमी को कुटिल काल ने बहुत दिन तक इस लोक में नहीं रहने दिया। पण्डित कुन्दनलाल जी पहले श्वास-रोग से दुखी रहा करते थे। पर अब वे वात-व्याधि से पीड़ित हो गये। उन पर फ़ालिज का दौरा हुआ। वे फ़तेहगढ़ से जयपुर गये। उनके कुटुम्बी वहीं थे। वहाँ चिकित्सा से पहले कुछ आराम भी हुआ। पर तीसरे दौरे में उसने पण्डित जी की जान लेकर ही कल की। संवत् १९५१ की चैत्र शुक्ल पूर्णिमा को, सिर्फ़ ३६ वर्ष की उम्र में, उन्होंने शरीर छोड़ दिया। कवि व चित्रकार का निकलना बन्द हो गया। साथ ही कवियों को पदक और दुशाले मिलने भी बन्द हो गये। कवि व चित्रकार का जो अङ्क उनकी मृत्यु के बाद निकला उसमें कितने ही कवियों ने बड़ी ही हृदयविदारिणी कविता में पण्डित जी के असमय परलोकवास पर शोक प्रकट किया।

पण्डित कुन्दनलाल जी ने, पहली स्त्री के मरने पर, दूसरा विवाह किया था। मरने के वर्ष ही डेढ़ वर्ष पहले यह विवाह हुआ था। अतएव यह और भी दुःख की बात हुई।

पण्डित जी थियासफ़िकल सोसायटी के सभासद थे और उसके तत्त्वों में अच्छी पारदर्शिता रखते थे।

ग्राउज़ साहब ने तुलसीदास की रामायण का जो अँगरेज़ी में अनुवाद किया है वह पहले ८ रुपये में आता था। इससे इन्होंने उसे साहब की अनुमति से ख़ुद छपाया और सर्वसाधारण के सुभीते के लिए उसकी क़ीमत घटाकर सिर्फ़ ३ रुपये करदी।

इन्होंने फ़तेहगढ़ में एक सदुपकारिणी सभा भी स्थापित की थी। उसके आप सभापति थे। सज्जन और कुलीन स्त्री-पुरुष जो भूखे प्यासे रह कर किसी तरह दिन काटते हैं, पर अप्रतिष्ठा के डर से किसी से कुछ माँग नहीं सकते उन्हें इस सभा से गुप्त सहायता मिलती थी। इस सभा ने कितने ही अनाथों और दीन-दुखियों का पालन किया। यह अब तक बनी हुई है और अब तक दो चार दीनों को अन्न, वस्त्र दे रही है।

पण्डित कुन्दनलालजी बड़े उदार, बड़े स्वदेश-भक्त और बड़े विद्या-प्रेमी थे। कवि व चित्रकार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकालने में उन्होंने बहुत रुपया ख़र्च किया। पर हिन्दी के प्रवीण पाठकों ने उनके पत्र की बहुत कम क़दर की। पण्डित जी एक पत्र में लिखते हैं—

My father left me no great fortune, nor my luck is over-fond of me. What little I can earn is hardly sufficient for my own family, which is by no means small. I conduct the paper at a very heavy loss (one year's loss amounting to over Rs 800!) and this is in a sense injustice to my family, who have stronger claims on me than the magazine. Yet I do what I can for the love of knowledge and glory of my country. * * * I have sacrificed my health, my money, my time and, if, still the King does not like the dish, woe to the goat which has lost its life!

अर्थात्—न हमारे कोई मोरूसी जायदाद है, न हम ख़ुद ही भाग्यवान् हैं। जो कुछ थोड़ा हमें मिलता है हमारे ही बाल-बच्चों के लिए काफ़ी नहीं। कुटुम्ब भी हमारा छोटा नहीं। कवि व चित्रकार को चलाने में हमें बहुत नुक़सान उठाना पड़ता है। गत वर्ष हम ८०० रुपये से भी अधिक के घाटे में रहे! यह हमने मानो अपने कुटुम्ब पर ज़ुल्म किया—अन्याय किया। कवि व चित्रकार की अपेक्षा अपने कुटुम्बियों की ज़रूरतों को रफ़ा करना हमारा पहला काम है। पत्र की अपेक्षा कुटुम्ब का हक़ अधिक है। तिसपर भी अपने देश की सुख्याति और विद्याभिरुचि की प्रेरणा से जो कुछ हम से हो सकता है, करते हैं। हमने अपना आरोग्य नष्ट कर दिया, अपना समय नष्ट कर दिया, अपना रुपया नष्ट कर दिया; इस पर भी यदि "खाना-पसन्द" शाह को शोरबा अच्छा न लगे तो उस छाग के लिए शोक है जिसने अपनी जान खो दी!

इससे पण्डित कुन्दनलाल जी के औदार्य्य, विद्या-प्रेम और स्वदेशाभिमान का अच्छा परिचय मिलता है। इतनी हानि उठाकर और इतना आत्महितोत्सर्ग करके भी पण्डित जी हिन्दी बोलनेवालों की सहानुभूति नहीं प्राप्त कर सके। यह हिन्दी-भाषा-भाषियों के लिए बहुत बड़े कलङ्क की बात है। यह चौदह पन्द्रह वर्ष पहले की व्यवस्था का वर्णन है। पर अब तक यह दुरवस्था प्रायः पूर्ववत् बनी हुई है। अब तक हिन्दी-पत्रों, पत्रिकाओं और पुस्तकों का विशेष आदर नहीं है। अब तक हिन्दी बोलनेवाली माता के सपूत हिन्दी में ख़्वाब देखना छोड़ कर लिखना, पढ़ना पसन्द नहीं करते। देखें कब तक यह उदासीनता अटल रहती है—"कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी"।

पण्डित कुन्दनलाल जी का फ़ोटो और इस लेख की बहुत कुछ सामग्री भेजने के लिए हम फ़तहगढ़ के म्यूनीसिपल कमिश्नर, बाबू हरप्रसादजी, के बहुत कृतज्ञ हैं।

मालती-महिमा।

१—"है आज तो दिवस कृष्ण-चतुर्दशी का,
पूरा विकास फिर क्यों यह है शशी का"।
यों चित्त को चकित जो कर डालती है,
ऐसी मयङ्क-वदनी यह मालती है॥

२—मंत्री सु-भूरिवसु* को यह है कुमारी,
श्रीदेवरात†-सुत माधव-प्राणप्यारी।
हारी विलोक इस की छवि देव-नारी,
पूजार्थ आज हरि-मन्दिर में पधारी॥

३—सारी सुरङ्ग पहने अति-मोद-दात्री,
प्यारी किसे न लगती यह चारु-गात्री।
मानों तड़ित् तज अनस्थिरता अशेष,
है सोहती अरुण-अम्बुद में विशेष॥

४—पुष्पादि से ग्रथित सुन्दर रूप-राशि,
आलोक आज इसकी यह केशपाशी।
रक्खे हुए मणि-फणोपरि कान्तिमान,
होता किसे असित पन्नग का न ध्यान?

* भूरिवसु = पद्मावती के राजा का मंत्री और मालती का पिता।
† देवरात = विदर्भाधिपति का मंत्री और माधव का पिता तथा भूरिवसु का सहपाठी, सखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—ये केश देख इसके मृदु माँगदार,
हे विज्ञ दर्शक! कहो तुमहो विचार।
सिन्दूर-रेख मिस क्या चिकुरान्धकार*,
जिह्वा ललाट-विधु पै न रहा पसार?

६—कन्दर्प के धनुष का गुण-गान सारा,
प्यारा तभी तक सखे! रहता हमारा।
होते हमें स्मरण हैं जबलों न नीके,
भ्रू-चाप ये युगल मञ्जुल मालती के॥

७—आलोक नेत्र इसके मृग से विशाल,
डूबे सलज्ज जल में झष†, कञ्ज-जाल।
जो बात आप यह सत्य नहीं बताते,
तो क्यों बिना सलिल वे अति ताप पाते?

८—निष्कम्प-दीपक-शिखा सम दीप्तिमान,
है नाक जो न यह कीर-मुखोपमान।
तो द्वार बन्द कर ओष्ठ-कपाट से यों,
तद्दन्त-दाड़िम मुखालय में छिपे क्यों?

९—गोरे, गुलाब-दल से, अति गोल गोल,
कैसे मनोज्ञ युग ये इसके कपोल।
मानों शरीर-गृह में विधि के बनाये,
कन्दर्प के मुकुर मञ्जुल हैं सुहाये॥

१०—ताम्बूल से अधर लाल नहीं बने हैं,
योहीं स्वभाव वश सुन्दरता-सने हैं।
दृष्टान्त हैं प्रकट ये इसके प्रधान,
"हैं चाहते न कुछ भूषण, रूपवान"॥

११—भ्रू-चाप और दृग-बाण विषाक्त जान,
पाता न राहु मन में भय जो महान।
तो पूर्ण चन्द्र भ्रम से वह दैत्य पापी,
क्या मालती-वदन को तजता कदापि?

१२—है दाहिने कर-सरोरुह में निराली,
शोभायमान शिव-पूजन-वस्तु-थाली।
लम्बायमान जघनों तक बाहु वाम,
है योग कञ्ज-कदली-द्रुम सा ललाम॥

१३—निःशेष सुन्दर वधू-कुल में मनोज्ञ,
पाई गई जब यही बलि-दान-योग्य*।
कैसी ललाम फिर है यह मञ्जुदेही,
कीजे विचार इसका इस बात सेही॥

१४—प्रख्यात जो कवि हुआ भवभूति† नाम,
गाया चरित्र इसका उसने ललाम।
नाना रसार्द्र इसका वह सच्चरित्र,
है सर्वथा मनन योग्य बड़ा पवित्र॥

१५—धर्म्मानुसार‡ जब ब्राह्म-विवाह-द्वारा,?
थी होनहार यह माधव-धर्म्मदारा।
आपत्ति एक उस काल हुई महान,
था हाय! स्वप्न तक में जिसका न ध्यान॥

१६—पद्मावती-नृपति का सु-कृपाधिकारी,
था एक जो मनुज नन्दन नाम धारी।
अन्याय-पूर्ण उसने कर यत्न नाना,
चाहा इसे निज वधू सहसा बनाना॥

---

* विकुर + अन्धकार = केशरूपी अन्धकार।

† झष = मीन।

* अघोरघण्ट नामक एक कापालिक था। उसे मन्त्र-सिद्धि के लिए एक अलौकिक रूपवती सुन्दरी अपनी आराध्य देवता कराला देवी को बलि देनी थी। अस्तु, बेचारी मालती ही बलिदान के योग्य मानी गई अतएव रात में सोती हुई वह मन्त्र द्वारा उक्त देवी के मन्दिर में लाई गई। जागने पर उसने जब अपने को इस विपत्ति में देखा तब वह निज जनों को पुकार पुकार कर बड़े आर्त्तस्वर से रोने-चिल्लाने लगी। इसी समय मालती की प्राप्ति से निराश होकर (निराश होने का कारण २०, २१ और २२ वें पद्य में वर्णित है) श्मशान में शरीर त्यागने के लिए, माधव घूम रहा था। वहां से थोड़ी ही दूर पर कराला देवी का वह मन्दिर था। उसने मालती का रोना सुनकर मन्दिर में जाके अघोरघण्ट का वध किया और मालती को बचाया। उस समय अघोरघण्ट की शिष्या कपालकुण्डला माधव से बदला लेने की चिन्ता करती हुई वहाँ से भाग गई।

† महाकवि भवभूति—"मालती-माधव" नामक नाटक का रचयिता।

‡ देवरात और भूरिवसु जब गुरु गृह में विद्याभ्यास करते थे तब उन दोनों का यह विचार हुआ कि यदि हम दो में से किसी एक को पुत्र और दूसरे को पुत्री हुई तो हम उनका परस्पर विवाह करेंगे। इसी प्रतिज्ञानुसार मालती माधव को व्याही जानेवाली थी। इसीलिए "धर्म्मानुसार" कहा गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७—भूपाल भी कर सका न उसे निराश,
की मंत्रि-भूरिवसु से स्वमति-प्रकाश।
दुःखी हुआ वह उसे सुन के महान,
'नाहीं' नहीं कर सका निज स्वामि जान॥

१८—ज्योंही चरित्र यह माधव ने निहारा,
होके हताश उसने मरना विचारा!
होता न दुःसह शरीर-वियोग वैसा,
होता निज प्रिय-वियोग असह्य जैसा॥

१९—ऐसे व्यथा-समय में तप को विहाय,
"कामन्दकी*" अति हुई इनको सहाय।
चातुर्य्य-युक्त उसने सब कार्य्य साधा,
की दूर शीघ्र इनकी सब विघ्न-बाधा॥

२०—जो निन्द्य नन्दन मनोहर मालती से
था चाहता निज विवाह-प्रबन्ध जीसे।
खोनी पड़ी स्व-भगिनी उलटी उसी को,
देते सदा जय जगत्-प्रभु सत्य ही को॥

२१—उद्वाह-उत्सव-अनन्तर भी न माना,
चाहा विपक्ष-कुल ने इनको सताना।
होती परन्तु जिस पै प्रभु की दया है,
होता अनिष्ट उसका किस का किया है?

२२—रच कर जिसने यों, मालती का सुचित्र,
ललित कर दिया है और भी तच्चरित्र।
वह नृप रविवर्म्मा, चित्रकार-प्रधान,
अहह! अब नहीं है, विश्व में विद्यमान!

मैथिलीशरण गुप्त।

* कामन्दकी, एक बाल-ब्रह्मचारिणी तपस्विनी तथा देवरात और भूरिवसु की गुरु-भगिनी थी। कुछ काल से वह पद्मावती पुरी में ही रहने लगी थी। उसने लड़कपन में इन दोनों के साथ विद्याध्ययन किया था। और उन दोनों ने परस्पर सम्बन्धी होने की प्रतिज्ञा भी उसके सामने ही की थी। उनकी उक्त प्रतिज्ञा का उसको ध्यान था और वह इनके कुटुम्ब से अत्यन्त प्रीति करती थी। इससे उसने नाना प्रकार के कौशल से मालती का माधव से, और नन्दन की बहिन मदयन्तिका का माधव के मित्र मकरन्द से, गान्धर्व विवाह करवा दिया।

पक्का गँठिबन्धन।

[अ]लाहो अकबर! के शब्द से रणभूमि गूंज उठी है। एक ओर तीन लाख मुसलमानी सेना और दूसरी ओर तीन हज़ार हिन्दू सेना। नदी की बाढ़ के बीच में अकेले पीपल के वृक्ष के समान हिन्दू-वीर-गण तमाम रात और तमाम दिन लड़कर नहीं हटे। पर अब उखड़ने के लक्षण दिखाई देते हैं। उनके उखड़ते ही भारत की विजय-पताका भी भूमिपर लोट जायगी और आज के इस अस्ताचलगामी सहस्रकिरण के साथ भारतवर्ष का गौरवसूर्य सदा के लिए अस्त हो जायगा।

"हर हर महादेव!" पाठक आप बता सकते हैं कि वह वीर युवा कौन है जो केवल पैंतीस साथियों को लेकर, नंगी तलवार हाथ में लिए, घोड़े पर सवार, भारत की अधिष्ठात्री देवी के करनिक्षिप्त चमकते हुए वज्र के समान शत्रुसैन्य के ऊपर टूट पड़ा? आप बता सकते हैं, किसके प्रताप से यह अगणित यवन-सैन्य, प्रचण्ड आँधी के झोकों से हिलाये गये बड़े भारी जंगल के समान, खलबला उठा? किसके वज्र-गंभीर "हर हर महादेव" शब्द में तीन लाख म्लेच्छ-कंठ की "अल्लाहो अकबर" ध्वनि डूब गई? किसकी उठी हुई तलवार के सामने बाघ की झपट से त्रस्त भेड़ों की तरह शत्रुसैन्य एक मुहूर्त में भग खड़ा हुआ? आप कह सकते हैं कि उस दिन आर्यावर्त्त के सूर्यदेव, सहस्ररक्तकिरणस्पर्श से, किसकी शोणितसिक्त तलवार को आशीर्वाद देकर, अस्ताचल में विश्राम करने गये? पाठक, आप बतला सकते हैं?

यह वही ललितसिंह हैं—काञ्ची के सेनापति, भारतवर्ष के इतिहास के ध्रुव नक्षत्र।

(२)

पाठक, आप जानते हैं कि आज काञ्चीनगर में किस लिए इतना उत्सव हो रहा है? महलों के ऊपर जयपताका क्यों इतनी चंचल हो उठी है? क्या केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायु से अथवा आनन्द से ? द्वार द्वार पर कदलीवृक्ष और मंगलकलश, घर घर में शंखध्वनि, सड़कों और गलियों में दीपमाला विराजमान है। शहरपनाह की दीवारों पर मनुष्य ही मनुष्य दिखाई देते हैं। नगरवासी बड़ी उत्कंठा से किसकी आगमन-प्रतीक्षा कर रहे हैं ? अकस्मात् पुरुषकंठ की जयध्वनि और स्त्रीकंठ की मंगलगीत-ध्वनि एकत्रित हुई और बादलों को भेद कर पलकहीन नक्षत्रलोक की ओर उठी। तारागण पवनकम्पित दीपमाला की तरह काँपने लगे।

पाठक, इस वीर-श्रेष्ठ को, जो एक वेगगामी घोड़े पर सवार होकर नगर-द्वार में प्रवेश कर रहा है, आप पहचानते हैं ? यह हमारे वही पूर्वपरिचित ललितसिंह, कांचा के सेनापति, हैं। शत्रु को मार कर ये अपने स्वामी कांचीराज के चरणों पर शत्रु-रक्तचिह्नित खड्ग भेंट देने आये हैं। इसी कारण इतना उत्सव हो रहा है।

परन्तु जो इतनी जयध्वनि हो रही है, सेनापति का उसकी ओर ध्यान ही नहीं है। खिड़कियों से नगरवासिनी स्त्रियाँ जो इतनी पुष्पवर्षा कर रही हैं उसकी ओर इनकी दृष्टि ही नहीं है। जिस समय कोई तृषित पथिक जंगली रास्ते से सरोवर की ओर दौड़ता है, उस समय यदि सूखे पत्ते उसके सिर पर गिरते रहें तो क्या वह उनपर ध्यान देता है ? अधीरचित्त ललितसिंह को दृष्टि में ये सम्मान उन्हीं सूखे पत्तों के समान नीरस, क्षुद्र और तुच्छ जान पड़ने लगे। अन्त में घोड़ा जब अन्तःपुर-प्रासाद के सामने जाकर उपस्थित हुआ तब क्षणभर के लिए सेनापति ने उसकी लगाम खींची। घोड़ा ज़रा ठहरा। क्षणभर के लिए ललितसिंह ने एक बार महल की खिड़की पर तृषित दृष्टि डाली। मुहूर्त्तमात्र के लिए उन्होंने देखा कि दो लज्जा-भरी आँखें एक-बार चकित की भाँति उनके मुखपर पड़ीं; और सुन्दर कोमल करों से एक फूलों की माला छूटकर उनके सामने भूमिपर जा पड़ी। उसी दम घोड़े से उतरकर उन्होंने उस माला को उठाया और पगड़ी पर धर लिया; और एक बार कृतार्थ-दृष्टि से ऊपर देखा। इस समय खिड़की बन्द हो चुकी थी—दीप बुझ चुका था।

(३)

हज़ार हज़ार शत्रुओं के निकट जो कभी परास्त नहीं होते, दो चंचल मृगनयनों से वे हार जाते हैं। सेनापति बहुत काल तक धैर्य को, बहुत मज़बूत क़िले के समान, हृदय में रक्षा करते चले आये। परन्तु कल सायंकाल दो कजरारे नयनों की लज्जा-युक्त और वेग से हटने वाली दृष्टि ने उस क़िले की दीवार पर आघात किया और इतने दिनों का धैर्य पल भर में चूर होकर धूल में मिल गया। पर, सेनापति, तुमको लज्जित होना चाहिए। क्या तुमको यह उचित है कि तुम संध्यासमय अँधेरे में चोर की तरह राजान्तःपुर के नज़रबाग़ की दीवार लाँघो ? तुम तो भुवनविजयी वीर पुरुष हो !

परन्तु जो उपन्यास लिखता है उसकी कहीं रोक टोक नहीं है। उसे द्वारपाल भी द्वार पर नहीं रोकते। असूर्यम्पश्या स्त्रियाँ भी उससे पर्दा नहीं करतीं। इस कारण, आइए, इस रमणीय राजान्तःपुर की निर्जन वाटिका में एक बार प्रवेश करें, जहाँ दक्षिण वायु पंखा झलने पर नियुक्त है। पाठक-पाठिका-गण आइए आइए, मैं आप लोगों को निडर होकर चले आने की आज्ञा देता हूँ।

एक बार नेत्र खोलकर देखिए। मौलसिरी के नीचे तृण-शय्या पर संध्यातारा की प्रतिमा के समान यह कौन बैठी है ? क्या आप इनको पहचानते हैं ? ऐसी सुन्दरता कहीं देखी है ? सौन्दर्य का वर्णन कभी किया जा सकता है ? क्या भाषा कभी किसी मंत्र के बल से इस प्रकार जीवन, यौवन और लावण्य से पूरित हो सकती है ? पाठक, यदि आपकी द्वितीय बार की विवाहिता स्त्री हो तो उसका मुख स्मरण कीजिए। हे रूपवती पाठिका, जिस युवती को देख कर तुमने अपनी सखी से कहा है कि "बहिन, देखने में यह कौन बहुत अच्छी है ? सुन्दरी है, पर श्री नहीं" उसका मुख स्मरण करो। उस वृक्ष के नीचे बैठी हुई राजकुमारी के साथ उसका कुछ सादृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलेगा। क्या अब पहचाना वह कौन है? यही राजकुमारी चन्द्रकला है।

राजकुमारी आंचल में फूल रखकर मुख नीचा किये हुए माला गूँथ रही है। बीच बीच में एक एक बार अँगुलियों को अपने सुकुमार कार्य में शिथिल कर देती है। उदासीन दृष्टि किसी एक बड़ी दूरवाले चित्ताराज्य में भ्रमण कर रही है। राजकुमारी क्या सोच रही है?

परन्तु, हे पाठक, इस प्रश्न का उत्तर हम न देंगे। कुमारी के एकान्त हृदयमन्दिर में, आज इस सुनसान सन्ध्यासमय, एक मर्त्य देवता की आरती हो रही है। इससे, हम अपना अपवित्र कौतूहल लेकर वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते। यह देखिए एक लम्बी साँस पूजा के सुगन्धित धूपधूम की भाँति सन्ध्या के वायु में मिल गई; और आँसुओं की दो बूँदें दो फूल की कलियों के समान उस अज्ञात देवता के चरणों के उद्देश्य में टपक पड़ीं।

ऐसे समय में पीछे से किसी पुरुष ने गंभीर आवेग से काँपते हुए और रुकते हुए स्वर से पुकारा—"राजकुमारी"!

राजकुमारी एकाएक भय से चिल्ला उठी। चारों ओर से पहरेवाले दौड़े और उन्होंने अपराधी को बन्दी बना लिया। राजकुमारी ने होश में आकर देखा कि सेनापति बन्दी हो गये हैं।

(४)

ऐसे अपराध में प्राणदण्ड ही का नियम था। परन्तु पूर्वकृत उपकार को स्मरण कर राजा ने सेनापति को निर्वासित कर दिया। सेनापति ने मन में कहा—"देवि, जब तुम्हारे नेत्र भी धोखा दे सकते हैं तब जगत् में सत्य कहीं नहीं है। आज से मैं मनुष्य का वैरी हुआ"। एक बड़े डाकूदल के सर्दार होकर ललितसिंह जंगल में निवास करने लगे।

हे पाठक, आपके अथवा हमारे समान मनुष्य ऐसी घटना उपस्थित होने से क्या करता? अवश्य ही जहाँ पर निर्वासित किया जाता, वहाँ वह किसी दूसरी नौकरी को तलाश करता, अथवा एक नया समाचारपत्र निकालता। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ कष्ट होता—सो केवल अन्न के अभाव से। परन्तु सेनापति के समान बड़े लोग, जो उपन्यास में सुलभ और पृथ्वी में दुर्लभ हैं, नौकरी नहीं करते और अख़बार भी नहीं चलाते। वे लोग जब अच्छी दशा में रहते हैं तब एक निश्वास में समस्त जगत् का उपकार कर डालते हैं और मनोरथ के तिलमात्र व्यर्थ होते ही क्रोधोन्मत्त होकर कहते हैं "राक्षसी पृथ्वी, पिशाच समाज, तुम लोगों की छाती पर चढ़ कर इसका बदला लेंगे"। यह कह कर दस्यु का व्यवसाय आरम्भ करते हैं। ऐसा व्यवहार अँगरेज़ी काव्यों में भी देखा जाता है। और अवश्य ही यह प्रथा राजपूतों में भी प्रचलित थी।

डाकुओं के उपद्रव से उस देश के लोग तंग आगये। पर ये असामान्य डाकू लोग अनाथ के सहाय, दरिद्र के मित्र, दुर्बल के आश्रय, थे। केवल धनी, उच्चकुलोत्पन्न, बड़े आदमी और राजकर्मचारियों के लिए ये कालान्तक यमराज के तुल्य थे।

घोर जंगल है। सूर्य्यदेव अभी पूर्णरूप से अस्त नहीं हुए हैं। किन्तु वनच्छाया में अकालरात्रि का प्रादुर्भाव हो चुका है। एक अल्पवयस्क युवक अपरिचित मार्ग पर अकेला चल रहा है। कमर में जो तलवार बँधी हुई है, उसका भार दुःसह प्रतीत होता है। जंगल में बहुत थोड़ा भी शब्द होने से, वह, भीतहृदय हिरन के समान, चकित हो जाता है; पर तोभी इस अति शीघ्र आनेवाली रात्रि और अनजाने जंगल में दृढ़ सङ्कल्प के साथ आगे बढ़ रहा है।

डाकुओं ने आकर सर्दार को ख़बर दी—"महाराज, बड़ा भारी शिकार हाथ लगा है। सिर पर मुकुट, राजा के तुल्य वेश, और कमर में तलवार है"।

सर्दार ने कहा—"तो फिर यह शिकार मेरा है। तुम लोग यहीं ठहरो"।

पथिक ने चलते चलते अकस्मात् एक बार सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट का शब्द सुना। उत्कण्ठित होकर चारों ओर नेत्र उठाकर उसने देखा। सहसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वक्षस्थल के ठीक बीच में एक तीर आकर लगा। पथिक पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सरदार समीप जाकर घुटनों के बल बैठ गया और झुककर आहत के मुख की ओर देखने लगा। पृथ्वी पर पड़ा हुआ पथिक सरदार का हाथ पकड़ कर केवल एक बार धीमे स्वर से बोला–"ललित"!

क्षणभर में डाकू का हृदय मानों सौ टुकड़े हो गया और उससे एक शब्द निकला–"राजकुमारी"!

दूसरे डाकुओं ने आकर देखा कि शिकार और शिकारी दोनों अन्तिम आलिङ्गन में बद्ध होकर मरे पड़े हैं।

राजकुमारी ने एक दिन सन्ध्यासमय अपने अन्तःपुरवाले नज़रबाग़ में अज्ञान से ललितसिंह पर राजदण्ड चलाया था। ललितसिंह ने और एक दिन सायङ्काल के समय जंगल में अज्ञान से राजकुमारी पर तीर चलाया। इस संसार के बाहर यदि कहीं मिलाप हुआ हो तो आज दोनों के अपराध दोनों ने क्षमा किये होंगे।*

प्रमथनाथ भट्टाचार्य्य।

प्रार्थना-शतक।

(क्रमप्राप्त)

सर्वशक्तिसम्पन्न रहहिँ जो सदा एक रस।
उद्भव, पालन, प्रलय, होत जिनकी इच्छावश॥
जो घट घट मँह व्यापि रहे ईश्वर अविनाशी।
करति जगत-उत्पत्ति प्रकृति जाकी बनि दासी॥६५॥

प्रथम रच्यौ आकाश पवन तासों सिरजायो।
तासों अनल प्रचारि अनल सों जल प्रगटायो॥
जल सों पृथिवी बिरचि सकल संसार सृष्टि कै।
त्रिगुणमयी यह प्रकृति सबनि पै रहति दृष्टि कै॥६६॥

त्रिगुण सत्त्वरजतमोमिलित ये पञ्च भूत हैं।
बुद्धि अहङ्कृति चित्त मनहु के संग त्रिगुण हैं॥
गगन, पवन, जल, अनल, भूमि, इन पाँच तत्त्व सों।
शब्द, परस, रस, रूप, गन्ध प्रगट्यो गुणत्व सों॥६७॥

ज्ञानेन्द्रिय पुनि पञ्च भये इनके सहकारी।
आँख, कान, त्वक, नाक, जोह, निज निज गुणधारी॥
कर्मेन्द्रिय पुनि पाँच तत्त्व ही के गुन जाये।
प्राणादिक त्यों ईश विरचि विग्रह निरमाये॥६८॥

दै पुनि जीवनशक्ति जीव कों कियो सचेतन।
निज लीलावश ताहि कियो पुनि कर्मनिकेतन॥
बिरचे अगनित लोक कहाँ लौं ताहि गिनाऊँ।
जब अपनी यह अल्प देह को पार न पाऊँ॥६९॥

देखि चराचर चमत्कार चहुँ ओर विलक्षण।
अनुभव करि तुअ शक्ति होत चित चकित प्रतिक्षण॥
जलचर थलचर आदि जीव जग जिते निहारे।
अद्भुत शक्ति प्रमाण लसैं प्रत्यक्ष तिहारे॥७०॥

चहचहाय चहुँ ओर पक्षिगण महिमा तेरी।
बरनत हैं दिन रैन चैन चित पाय घनेरी॥
पशु यद्यपि अज्ञान तदपि वह शान्त भाव सों।
लहत निरन्तर विपिन-बीच सुख तुअ प्रभाव सों॥७१॥

केते अणुपरिमान जीव नहिँ देत लखाई।
चलत फिरत हैं सोउ धन्य तेरी प्रभुताई॥
कितने हैं गिरिकलपकाय जल थल के वासी।
जो तुअ गरिमा की प्रतीति उपजावत खासी॥७२॥

सब की तू सुधि लेत धन्य तेरी महिमा है।
सब पै राखत दीठि सबहि सब भाँति निबाहै॥
जब देखूँ तरु, लता आदि की अविरल शोभा।
तब तुअ गुन पै रीझि जात मिटि मन को छोभा॥७३॥

कहुँ गिरि उच्च विशाल लसैं कज्जलछवि धारे।
तुहिन-राशि तें ढके शिखर सुन्दर उजियारे॥
मानहुँ सो तुअ सुयश सृष्टिकौशल सिर लीन्हे।
जासों कढ़ि सुरनदी आदि पावन जग कीन्हे॥७४॥

कहुँ झरना झरि तप्त जीव कों करैं सुशीतल।
लखि ताकी यह दया मानि उपकार महीतल॥
सहि सिर ऊपर भार छमा गुन सों प्रभु तेरी।
करैं भक्ति उपचार प्रकृति-बन्धन सों घेरी॥७५॥

---

* बंगभाषा के प्रसिद्ध लेखक बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक आख्यायिका का भावानुवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहुँ सरवर मँह फूलि कमल शोभा सरसावत।
प्रभुपदछवि को ध्यान भक्त मनमाँहि जगावत॥
करत भृङ्ग झङ्कार परसि ताकौं सुख मानत।
झुण्ड झुण्ड मिलि नाथ तिहारो गुनगन गावत॥७६॥

जल, थल, नभ, महँ जहाँ वस्तु जो परै लखाई।
सो सब तेरी प्रकृतिशक्ति की अहै निकाई॥
धन्य तिहारी शक्ति धन्य कौतुक है तेरो।
सुमिरि तिहारो कृत्य होत विस्मित मन मेरो॥७७॥

निराधार मँह राखि आप ब्रह्माण्ड-भाण्ड को।
दिखरावत आश्चर्य नित्य निजकला-काण्ड को॥
कौन वस्तु केहि हेतु रच्यौ तुम कहाँ कौन विधि।
लीला अगम अपार जानि को सकै दयानिधि॥७८॥

लसत प्रभाकर रूप रावरो परम प्रतापी।
उद्भव, पालन, प्रलय शक्ति जिनमें है व्यापी॥
अनुशासन सोउ मानि रावरो नेम सहित नित।
दसदिस किरण बगारि रहत नभ बीच प्रकाशित॥७९॥

[क्रम क्रम से]

जनार्दन झा।

बुद्धदेव।

यह संसार परमेश्वर का लीलाक्षेत्र है। इसमें सृष्टि से लेकर आज तक नहीं मालूम कितनी दैवी लीलायें हो चुकीं और कितनी भविष्य में होंगी। उनकी गिनती करना शक्ति के बाहर है। कभी कभी ऐसे परिवर्तन होते हैं जो बहुत ही विलक्षण होते हैं। उनका प्रभाव विश्व के सभी स्थावर, जङ्गम विषयों पर होता है। उनसे विद्या, बुद्धि, विवेक, कला-कौशल आदि कुछ अपूर्व आकार में परिणत हो जाते हैं।

जिस समय भारतभूमि में बौद्धधर्म का प्रचार हुआ था वह समय विलक्षण घटना का था। उसका ऐसा प्रभाव पड़ा था कि भारत की अर्धाधिक शिक्षित, अशिक्षित, प्रजा उसके फेर में आगई। बौद्ध विद्वानों ने विविध दर्शनसम्बन्धी ग्रन्थ बनाकर, खण्डन-मण्डन द्वारा, अपने धर्म की सत्यता अचल कर दी। इन ग्रन्थों से अद्भुत विचार और विवेक-शक्ति का पता लगता है। उनके विवेचन और विचार में अच्छे अच्छे दार्शनिक पण्डित भी गोता खाजाया करते हैं। बौद्धों के साहित्य की उत्तमता और गाम्भीर्य इसी से प्रकट है कि उनके सिद्धान्तों के खण्डन के लिए भगवान् शङ्कराचार्य जैसे महापुरुषों को कठिन श्रम करके नाना ग्रन्थ लिखने पड़े। धर्म-द्वेष से भारत के प्राचीन पण्डितों ने बौद्ध साहित्य पर बहुत कम विचार किया है। और जिन्होंने कुछ किया भी है उन्होंने किसी न किसी तरह से सत्य का अपलाप ही किया है। धर्मद्वेष से विचारशक्ति को दूषित करके शास्त्रीय विचार करना बड़ी भारी भूल है। बुद्धिमान् लोग सदा से इस बात की निन्दा करते आये हैं। आज कल यूरोप के विद्वान् पुराने साहित्य को खोज खोज कर उस पर अच्छे अच्छे ग्रन्थ लिख रहे हैं। यदि हमारे यहाँ के शिक्षित जन, धर्मद्वेष से उनका निरादर करें तो खेद की बात है। प्राचीन समय में विद्वान् लोग अन्य सामयिक भाषायें भी जानते थे और उनके ग्रन्थ पढ़ते थे। एक भाषा में पूर्ण दक्ष हो जाने पर दूसरी भाषा में अधिक श्रम नहीं पड़ता। परन्तु हम देखते हैं कि संस्कृत-भाषा के जो ज्ञाता हैं वे उसी में मस्त रहते हैं। वे अन्य भाषाओं का ज्ञान नहीं रखते। इसी लिए उनके विचार विस्तृत नहीं होते। नाना मतों का ज्ञान हुए बिना कोई सिद्धान्त अभ्रान्त नहीं निश्चित हो सकता। खेद है हमारे यहाँ के पण्डित लोग इन बातों में पीछे पड़ते जाते हैं। उनके स्वत्व का अपहरण यूरोपियन लोग कर रहे हैं और उसे अनेक रूपों में परिणत करके संसार को चकित कर रहे हैं। इस समय यदि कोई बौद्धों के साहित्य, धर्म, आचार, जीवन आदि विषयों को जानना चाहे तो उसे अँगरेज़ी के सिवा किसी और भाषा में इन बातों का पूरा पूरा हाल नहीं मिल सकता।

अँगरेज़ी में बुधिस्ट इंडिया (Buddhist India) नामक एक ग्रन्थ है। उसे रीज़ डेविड्स साहब ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखा है। उसमें बौद्धों का राज्य, जाति, भाषा, साहित्य और धर्म आदि विषयों का सविस्तर वर्णन है। जर्मनी के ओलडेंबर्ग साहब ने 'बुद्ध' (Buddha) नामक ग्रन्थ लिखा है। उसका अँगरेज़ी में अनुवाद हो गया है। उसमें भी बौद्धों का पूरा आख्यान है। इस विषय के छोटे मोटे सैकड़ों ग्रन्थ यूरप की भाषाओं में उपलब्ध हैं, जिनमें ख़ूब सुन्दर रीति से बौद्धों का पुरातत्व वर्णित है। भारत में बङ्गाली जाति पर भगवती सरस्वती की विशेष कृपा है। इस समय ये लोग जितने शिक्षित हैं, भारतवर्ष में उतने और कोई नहीं हैं। अँगरेज़ी सीखकर उसका अच्छा उपयोग इन लोगों ने किया है, और कर रहे हैं। उसके द्वारा अपनी मातृभूमि और मातृभाषा का जैसा गौरव ये बढ़ा रहे हैं, वह हमारी इस गिरी हुई दशा में भी भारत के लिए प्रतिष्ठाजनक है।

यूरप के विद्वानों का अनुसरण करके इस देश में पहले पहल डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने बौद्ध धर्म की आलोचना का पथ दिखलाया। बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी के जर्नलों में भिन्न भिन्न विषयों पर डाक्टर मित्र के अनेक गवेषणापूर्ण लेख निकले हैं। इसके बाद बङ्गभाषा में डाक्टर रामदास सेन, अघोरनाथ साध, श्रीसत्येन्द्रनाथ ठाकुर आदि विद्वानों ने भी इस विषय में कई लेख और ग्रन्थ लिखकर बङ्गदेश में इस लुप्त साहित्य की चर्चा चलाई। कई साल से महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री जी बौद्धधर्म की आलोचना में लगे हुए हैं। कुछ समय हुआ इनका एक छोटा सा ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था। उसका नाम है 'Discovery of living Buddhism in Bengal" अर्थात् "बंगाल में प्रचलित बौद्ध धर्म्म का पता"। राय शरच्चन्द्रदास बहादुर सी० आई० ई० ने जब से कलकत्ता में बुधिस्ट टेक्स्ट सोसायटी (Buddhist Text Society) स्थापित की है तब से बंगाल के सिवा अन्यान्य प्रान्तों में भी बौद्ध धर्म्म की चर्चा होने लगी है। इस सभा के द्वारा बौद्धों के अनेक दुर्लभ ग्रन्थ, संस्कृत, पाली आदि भाषाओं के, प्रकाशित हुआ करते हैं। तिब्बत, लङ्का, स्याम आदि देशों में अनेक बौद्ध ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। ये सब प्रायः पाली और प्राकृत भाषाओं में हैं। जातक, दिव्यावदान, जातकमाला, अवदानशतक, अवदानकल्पलता, महावस्तु आदि ग्रन्थों में बुद्धदेव के पूर्व जन्म की बातें हैं। इन ग्रन्थों का साधारण नाम 'जातक' है। बौद्ध शास्त्र मुख्य मुख्य नौ या बारह भागों में विभक्त है। उसके एक भाग का नाम जातक है। पाली भाषा के जातक ग्रन्थ बहुत प्राचीन हैं। पाली जातकों से ही पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, कथासरित्सागर, वेतालपञ्चविंशति आदि ग्रन्थ बनाये गये हैं। इन्हीं ग्रन्थों की कथाओं के आधार पर यूरप में "Useful Fables" अर्थात् "उपयोगी कहानियाँ" नाम के ग्रन्थ की रचना हुई है। इसी की सहायता से ईश्वरचन्द्रविद्यासागर ने "कथामाला" नामक बालोपयोगी पुस्तक बङ्ग-भाषा में रची थी।

महाकवि-क्षेमेन्द्र-कृत अवदानकल्पलता में सविस्तर बुद्धचरित है। सन् १२०२ ईसवी में इस ग्रन्थ का तिब्बती भाषा में अनुवाद हुआ था। यह बहुत दुर्लभ हो गया है। राय शरच्चन्द्र बहादुर तिब्बती अक्षरों के सहारे इस ग्रन्थ को आज कल बङ्गाल की एशियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित कर रहे हैं। इसके पहले डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने ललितविस्तर नामक बौद्ध ग्रन्थ का उत्तम संस्करण उक्त सभा द्वारा प्रकाशित किया था। कहते हैं, ललितविस्तर का अनुवाद चीनी भाषा में शेष हान् वंश के राज्य-काल, २२१—२६३ ईसवी, में हुआ था। भारतवर्ष में उसके पहले मूल संस्कृत ग्रन्थ वर्तमान था। अश्वघोषकृत "बुद्धचरित" काव्य विलायत में कावेल साहब ने प्रकाशित किया है। इसका भी चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था। अश्वघोष, राजा कनिष्क के धर्मोपदेशक थे। ये सब ग्रन्थ संस्कृत में हैं। संस्कृतज्ञ इन ग्रन्थों से बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

"बुद्धदेव" जो इस लेख का शीर्षक है, एक ग्रन्थ का नाम है। थोड़े ही दिन हुए यह बङ्ग-भाषा में प्रकाशित हुआ है। इसके कर्ता महामहोपाध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम० ए० महाशय हैं। आप कलकत्ता प्रेसीडेन्सी कालेज के संस्कृताध्यापक हैं। आप पुरातत्व के बड़े अनुरागी हैं। थोड़े ही समय में आपने बड़े बड़े काम कर डाले और यशस्वी हुए। डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र के पुरातत्त्व के उच्च सिंहासन को आजकल आप ही सुशोभित कर रहे हैं। बौद्ध साहित्य के उद्धार में विद्याभूषण जी खूब तत्पर हैं। भिन्न भिन्न देशों में जो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनके, तथा ललितविस्तर, महावग्ग आदि संस्कृत और पाली ग्रन्थों के, आधार से बुद्धदेव का जीवनचरित, उनका बुद्धत्वलाभ, उनका धर्मप्रचार उनके उपदेश आदि विषय विद्याभूषण महाशय ने बड़ी योग्यता से इस ग्रन्थ में लिखे हैं। बौद्धदर्शन का इसमें सिर्फ़ कहीं कहीं उल्लेख है, विशेष नहीं है। परन्तु दर्शन के सिवा जो कुछ ज्ञेय विषय हैं वे सब प्रमाणपूर्वक बहुत अच्छी तरह लिखे गये हैं। ऐसा नानामतभूषित ग्रन्थ आजतक किसी भाषा में नहीं निकला। सरस्वती के बङ्गभाषा-विशारद पाठकों से हम इसे पढ़ने के लिए अनुरोध करते हैं। और साथ ही प्रार्थना करते हैं कि वे भी इस प्रकार के ग्रन्थ हिन्दी में लिखने का प्रयत्न करें। अँगरेज़ी के दिग्गज पण्डित होकर हिन्दी को तुच्छ समझना उनके लिए बड़े कलङ्क की बात है। उन्हें विद्याभूषण जी के बँगला-प्रेम को देखकर शरमिन्दा होना चाहिए।

पुराणों में लिखा है कि बुद्ध भगवान् विष्णु का अवतार थे। परन्तु आजकल बहुत से बौद्ध धर्म्म वाले शाक्यसिंह का अवतारत्व स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि अवतार हिन्दुओं को शास्त्रीय कथा है। बौद्धशास्त्र में उसका कहीं पता नहीं है। शाक्यसिंह ने अपने को कहीं अवतार कह कर परिचय नहीं दिया। पुराणों के अनुसार बुद्धावतार गया में हुआ था। किन्तु बौद्धों के उपास्य बुद्ध ने कपिलवस्तु नामक स्थान में जन्म लिया था। बुद्धावतार की माता का नाम पुराणों में अञ्जना लिखा है। परन्तु यह नाम बौद्धग्रन्थों में कहीं नहीं मिलता। परन्तु ये बातें विश्वास-योग्य नहीं हैं। शाक्यसिंह ही पुराणों में विष्णु के अवतार लिखे हैं, अवतार वाले बुद्ध कोई और बुद्ध नहीं हैं। महावंश नामक ग्रन्थ में लिखा है कि बुद्ध के मातामह का नाम अञ्जन था। अञ्जन की कन्या मायादेवी, जो बुद्ध की माता थीं, अञ्जना नाम से प्रसिद्ध थीं। जिस समय बौद्ध धर्म प्रायः समस्त एशिया में फैला हुआ था, उसी समय अधिकांश पुराणों की रचना हुई है। पुराणकारों ने बुद्धदेव ही को विष्णु का अवतार लिख दिया है। यह बात शायद उन्होंने इसलिए की हो, जिसमें बौद्ध धर्म्म को कोई स्वतंत्र धर्म्म न समझे।

जिन प्राचीन संस्कृत और पाली ग्रन्थों का नाम ऊपर लिखा गया है उनके मत से बुद्धदेव के जन्म समय में अन्तर पड़ता है। सिंहली महावंश नामक पाली ग्रन्थ के मत से बुद्ध का जन्म ६२३ वर्ष ईसा के पहले सिद्ध होता है और निर्वाण ५४३ वर्ष पहले। किसी किसी तिब्बती ग्रन्थ में ५१३ वर्ष ईसा के पहले जन्म लिखा है। यूरोपियन पण्डितों ने ईसा के ४८० वर्ष पहले जन्म, और ईसा के पहले चौथी सदी में महापरिनिर्वाण सिद्ध किया है।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी।

रेडियम।

अमेरिका आदि देशों में सर्वसाधारण को रेडियम के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का बड़ा अनुराग उत्पन्न हुआ है। इस अनुराग की मात्रा यहाँ तक बढ़ी है कि पदार्थविज्ञान के इतिहास में ऐसा कदाचित् ही कभी हुआ हो। सन् १६६७ ई० में फ़ासफ़रस को प्राप्ति ने कुछ ऐसा ही अनुराग उत्पन्न किया था। १८९५ ई० में "एक्स रेज़" ने भी कुछ हलचल मचाई थी। परन्तु रेडियम की चर्चा सबसे बढ़ गई है। रेडियम के विषय में सरस्वती में कुछ लिखा जाचुका है। आज हम इस विषय में और भी कुछ लिखने का साहस करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेडियम की प्राप्ति इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि एक पदार्थ की प्राप्ति और उसका ज्ञान किस भाँति दूसरे पदार्थ की प्राप्ति का कारण हो जाता है। रेडियम की प्राप्ति और उसके गुणों का ज्ञान, जिज्ञासा की ऐसी क्रियाओं द्वारा किया गया है जिन्हें देखकर अच्छे अच्छे विलायती विज्ञानियों के छक्के छूट गये हैं। जो कुछ इस विषय में जाना गया है वह एक देश के नहीं किन्तु कई देशों के वैज्ञानिकों की बरसों की सिर-तोड़ मेहनत का फल है। पहले इन विज्ञानियों ने अपने अपने ढंग पर कार्य्य आरम्भ किया था। उस समय इनका मंशा एक ही फल की प्राप्ति के लिए कदापि न था। परन्तु आश्चर्य्य की बात है कि उन सबके उद्योग का फल तथा उनकी जाँच का परिणाम एकही निकला।

सन् १८९५ ई० में प्रोफ़ेसर रंजन ने उन अद्भुत किरणों का पता लगाया जिनका नाम उन्होंने "एक्स रेज़" रक्खा। इन किरणों को प्रोफ़ेसर रंजन के नाम से 'रंजन रेज़' भी कहते हैं। ये ज्योतिष्क किरणों की भाँति सीधी चलती हैं; परन्तु इनका आँख पर कोई असर नहीं पड़ता। ये लकड़ी मांस आदि वस्तुओं में होकर गुज़र सकती हैं। प्रोफ़ेसर रंजन की इस तहक़ीक़ात का यह फल हुआ कि खोज करनेवाले विद्वान् इस खोज में लग गये कि शायद वे भी इसी रीति से काम करके "एक्स रेज़" जैसी किरणों की प्राप्ति में सफलता प्राप्त करें। यह बहुत दिनों से मालूम था कि सलफाइड आफ़ ज़िंक (Sulphide of Zinc) कुछ देर सूर्य के प्रकाश में रहने से एक अँधेरे कमरे में कुछ समय तक प्रकाश-प्रदान करने में समर्थ होता है। जिस भाँति स्पंज का एक टुकड़ा पानी लेकर, अभिमत समय पर, उस लिये हुए पानी को लौटा सकता है, उसी भाँति समझा जाता था कि सलफाइड आफ़ ज़िंक भी काम करता है। अर्थात् वह सूर्य से प्रकाश लेकर उसे लौटा देता है। सन् १८९६ में हेनरी साहब ने इस बात का पता लगाया कि उक्त सलफाइड में, अलावा उस रोशनी के जो आँख से देखी जा सकती है, और भी किरणें हैं जो आँखों से नहीं दिखाई देतीं, और जो मोटे काले काग़ज़ को प्रवेश करके फ़ोटो लेनेवाले प्लेट पर असर डाल सकती हैं। इसके बाद प्रोफ़ेसर हेनरी बेकरेल ने पता लगाया कि सलफेट आफ़ यूरेनियम (Sulphate of Uranium) में भी ऐसाही गुण है।

प्रोफ़ेसर बेकरेल ने एक फ़ोटो लेनेवाली प्लेट लेकर उसको बड़ी सावधानी से मोटे काले काग़ज़ से लपेट दिया जिसमें किसी तरह का प्रकाश, विशेषतः सूर्य्य की किरणें, उस तक किसी भाँति न जा सकें। काले काग़ज़ के ऊपर कुछ सलफेट आफ़ यूरेनियम रख दिया। इसको थोड़ी देर धूप में रखे जाने के बाद यह मालूम हुआ कि प्लेट पर किसी चीज़ की तसवीर बन गई। इससे मालूम हुआ कि बिना सूर्य्य की किरणों के प्लेट तक पहुँचे प्लेट पर तसवीर पैदा करना अवश्य युरेनियम की किरणों का काम था। अर्थात् युरेनियम में भी अवश्य किरणें होती हैं। परन्तु इस कृत्य के धूप में किये जाने के कारण लोगों का विचार हुआ कि कदाचित् युरेनियम ने थोड़े काल के लिए यह प्रकाश सूर्य्य से उधार ले लिया हो और प्रकाश की वे अदृश्य किरणें स्वयं उसकी न हों। दैवयोग से एक दिन जब प्रोफ़ेसर साहब ने किसी जांच के लिए अपनी प्लेटें तैयार कीं उस दिन दुर्दिन हो गया। गगनमण्डल मेघों से आच्छादित हो गया। बूँदें पड़ने लगीं। इससे प्रोफ़ेसर साहब ने अपना डंडकमंडल उस समय तक के लिए उठा धरा जब तक कि सूर्य्य भगवान् फिर न कृपा करें। तैयार हुए प्लेट उन्होंने एक बिलकुल अँधेरे कमरे में रख दिये। पर जब ये प्लेट फिर देखे गये तब बड़ा आश्चर्य्य हुआ। शङ्का हुई कि प्लेटों पर अवश्य किसी प्रकाश की किरणें पड़ी हैं। इससे यह विदित हो गया कि युरेनियम किसी अन्य वस्तु से प्रकाश न लेकर निज की रोशनी रखता है। बहुत तजरिबे के बाद प्रोफ़ेसर बेकरेल ने ये सिद्धान्त निकाले (१) युरेनियम को यदि अँधेरे में रख दें तो मुद्दतों तक प्रकाश देने में समर्थ होगा और वज़न में ज़रा भी कम न होगा। (२) ये किरणें लकड़ी और पतली धातुओं में प्रवेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर जायँगी। इन किरणों को "यूरेनियम रेज़' या "बेकरेल रेज़" कहते हैं।

यह देखकर अध्यापक करी ने (जिनकी मृत्यु अभी हाल में हुई है) और उनकी स्त्री ने इस विषय पर विचार करना आरम्भ किया। उनकी खोज का परिणाम समझने के लिए यह बतला देना चाहिए कि जिस चीज़ से युरेनियम निकाला जाता है उसे पिच ब्लेंडी (Pitche blende) कहते हैं। पिच ब्लेंडी में ८१½ फ़ी सैकड़ा युरेनियम, ४ फ़ी सैकड़ा सीसा, ½ फ़ी सैकड़ा लोहा और बिसमिथ इत्यादि मूल-पदार्थ रहते हैं। अध्यापक करी ने पिच ब्लेंडी के दो भाग किये—एक युरेनियम का, दूसरा बाक़ी वस्तुओं का। दोनों भागों की जाँच करने पर मालूम हुआ कि दूसरा भाग यूरेनियमवाले भाग से अधिक शक्तिमान् है। अतः इस भाग के सब पदार्थ अलग अलग करके उनकी जाँच हुई। तब मालूम हुआ कि इस भाग में दो पदार्थ ऐसे हैं जो यूरेनियम के गुणों से भी अधिक गुण रखते हैं। उनके नाम पीलोनियम, एक्टियम और रेडियम हैं। इनमें रेडियम सब से अधिक तेजस्क है।

इस संक्षिप्त इतिहास से पाठकों को विदित हो गया होगा कि रेडियम का पता लगाने के लिए अध्यापक बेकरल और अध्यापक करी सपत्नीक दोनों ही यश और धन्यवाद के पात्र हैं। परन्तु बेकरल ने इस विषय में इतना नाम नहीं पाया जितना करी साहब ने पाया। अतः यह सुन कर आप प्रसन्न होंगे कि फ़्रान्स की एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक सभा ने जब रेडियम का पता लगाने के लिए पारितोषिक दिया तब दोनों महाशयों का आदर करके दोनों को एकही साथ पारितोषिक दिया।

जिस विधि से रेडियम निकाला जाता है वह बड़े झंझट की है। तिस पर भी वह बहुत ही थोड़ा निकलता है। बड़े ख़र्च और बड़े परिश्रम से दो वर्ष में अध्यापक करी और उनकी स्त्री केवल एक ग्राम असल रेडियम निकाल सके। जर्मनी में भी शायद एक ग्राम से अधिक रेडियम नहीं है। और मुल्कों में, जहाँ कहीं वह है, इससे भी थोड़ी है। वर्तमान रीति से आध सेर रेडियम निकालने के लिए ३०,००,००० रुपये की ज़रूरत है। किसीने हिसाब लगाया है कि दो टन अर्थात् ५४ मन रेडियम की क़ीमत से ग्रेट-ब्रिटेन का सारा ऋण अदा किया जा सकता है। रेडियम एक बहुतही क़ीमती और दुर्लभ वस्तु है। फिर क्या कारण है जो मनुष्य रेडियम पर इतना लट्टू हो रहे हैं, और बड़े बड़े विद्वान् इसकी खोज में इतना समय लगाना और परिश्रम करना पसन्द करते हैं? रेडियम में ऐसे ऐसे प्राकृतिक गुण हैं जिससे मनुष्य अब तक बिलकुल ही परिचित नहीं था और जिनका होना कुछ वर्ष पहिले कदापि सम्भव न माना जाता था।

रेडियम सदा एकसा प्रकाश और उष्णता दे सकता है और उसकी बनावट और तौल में कुछ भी कमी नहीं होती। क्या यह आश्चर्यजनक घटना नहीं? जब फ़ासफ़रस से प्रकाश निकलता है तब मालूम होता है कि वह धीरे धीरे जलकर ख़ाक हो रहा है; और थोड़ी देर में जब वह जल चुकेगा तब प्रकाश भी बन्द हो जायगा। कुछ चीज़ें ऐसी होती हैं जो अँधेरे में चमकती हैं। परन्तु उनके चमकने के लिए यह आवश्यक है कि वे कुछ देर तक धूप में धरी जायँ। जब उधार ली हुई रोशनी ख़र्च हो जाती है तब उनका चमकना भी बन्द हो जाता है। इन चीज़ों का इस तरह चमकना अद्भुत अवश्य है; परन्तु रेडियम का चमकना अद्भुततर है। रेडियम का प्रकाश स्वयं उसीका है। वह न किसी से प्रकाश लेता है और न किसी को लौटाता है। उसका प्रकाश चिरस्थायी है। प्रकाश-ज्योति एक प्रकार की शक्ति है। अतः यह कहना कि अमुक वस्तु बिना कहीं से शक्ति प्राप्त किये सदा काम कर सकती है वैसाही असंगत प्रतीत होता है जैसे यह कहना कि बिना आग, पानी प्राप्त किये यंजिन हमेशा चल सकेगा।

यदि हम रेडियम का एक सरसों बराबर टुकड़ा ख़ुर्दबीन से देखें तो हमें एक अद्भुत दृश्य दिखाई देगा। जो लोग खगोल-विद्या जानते हैं उन्होंने देखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा कि यदि कोई तारा आँख से देखा जाता है तो वह बहुतही धुँधला और छोटा देख पड़ता है। पर यदि वही दूरबीन से देखा जाता है तो यह मालूम होता है कि वह बहुत से विशेष प्रकाशमान तारकाओं का एक झुरमुट है। ठीक इसी तरह यदि रेडियम के टुकड़े को भी हम ख़ुर्दबीन से देखें तो मालूम होगा कि वह भी चमकते हुए अगणित परमाणुओं का समूह है। तारों के चमकते हुए परमाणु अचल हैं। किन्तु रेडियम के परमाणु सदा चल रहते हैं। रेडियम हर घड़ी, हर दिशा में, अपने बेहद चमकते हुए कणों को बड़े वेग से फेंका करता है। ये कण रेखागणित के नुक़ते की भाँति बहुतही सूक्ष्म होते हैं। ये कण स्वयं प्रकाशमान होते हैं। इससे जो चीज़ें इनके सन्निकट आती हैं वे भी चमकीली हो जाती हैं। यही कारण है जो रेडियम की परीक्षा करनेवालों के हाथ और कपड़े थोड़ी देर के लिए चमकदार बन जाते हैं। ये कण चमड़े को भी हानि पहुँचा सकते हैं। इनकी बौछार से सम्भव नहीं कि हानि न पहुँचे। यदि एक बड़े कमरे के बीच में मेज़ पर रेडियम का एक सेर भर का टुकड़ा रख दें तो उस कमरे में कोई जीव जीवित न रह सकेगा। इसीसे रेडियम का एक छोटा सा कण शीशे की एक नली में रख कर काम में लाया जाता है। वह नुक़सान नहीं पहुँचा सकता। रेडियम के प्रकाश और अन्य पदार्थों के प्रकाश में बड़ा भारी भेद है। सूर्य्य या दीपक की किरणें कणों से नहीं पैदा होतीं, लहरों से पैदा होती हैं। पर रेडियम की किरणें कणों से पैदा होती हैं। कणों का स्फुरण ही रेडियम के प्रकाश का कारण है। यहां यह सन्देह हो सकता है, कि बिना लहरों के प्रकाश कैसा? इसका उत्तर यह है कि रेडियम के कण इस वेग से स्फुरित होते हैं कि एक विशेष प्रकार का प्रकाश उत्पन्न हो जाता है। यह वेग बन्दूक़ की गोली के वेग से एक लाख गुना अधिक होता है! बस, पाठक, इसीसे आप उस वेग का अनुमान कर सकते हैं।

यदि हम रेडियम की शक्ति पर विचार करते हैं तो हमारा आश्चर्य्य और भी अधिक बढ़ जाता है। जितनी उष्णता हाइड्रोजन (Hydrogen) के जलने से प्राप्त हो सकती है उतनी और किसी चीज़ के जलने से नहीं। परन्तु रेडियम का एक छोटा सा टुकड़ा दो दिन में इतनी उष्णता दे सकता है जितनी हाइड्रोजन का एक पर्वताकार ढेर भी न दे सकेगा। यदि ७ सेर रेडियम की शक्ति किसी तरह एकत्र हो सके, तो वह एक यंजिन को ५०,००० वर्ष तक चला सकेगी, और सम्भव है कि वह सदा चला करे! हाइड्रोजन जब अपनी सब शक्ति ख़र्च कर चुकता है तब नज़रों से ग़ायब होकर दूसरी वस्तु में परिणत हो जाता है। परन्तु रेडियम बिना नज़रों से ग़ायब हुए सदा शक्ति प्रदान करने में समर्थ रहता है। उसकी शक्ति का नाश नहीं होता।

रेडियम के इन अजीब गुणों से दुनिया को क्या लाभ है? रेडियम से दो तरह के लाभ होने की आशा है। एक तो वैज्ञानिक फल, दूसरे आर्थिक फल। भूगर्भ और पदार्थविज्ञान के पण्डितों में अभी तक संसार की उत्पत्ति और नाश आदि के विषय में मतभेद रहा है। परन्तु अब आशा है कि रेडियम उनके झगड़े का तोड़ कर देगा। रेडियम से और वैज्ञानिक लाभ चाहे जो हों, एक बात निर्विवाद है, कि वह कुछ रोगों के दूर करने में एकही है। रेडियम का सबसे बड़ा गुण उसका प्रकाश है। इस प्रकाश को काम में लाने के लिए यह जानना ज़रूरी है कि प्रकाश से मनुष्य को क्या क्या लाभ हो सकता है। १९वीं सदी के आदि में मालूम हुआ था कि पेड़ों का जीवित रहना रोशनीही पर अवलम्बित है। जब वृक्ष ख़ूब रोशनी पाता है तभी बढ़ता है। जब रोशनी का मिलना बन्द हो जाता है तब वह मर जाता है। इसके बादही यह भी मालूम हुआ कि, कुछ वृक्षों को रोशनी लाभकारी है और कुछ को हानिकारी। बहुत से वृक्ष जो अँधेरी जगह में जीवित रह सकते हैं रोशनी में मर जाते हैं। इन कारणों से वैज्ञानिक तुरन्त इस बात की जाँच में लगे कि रोशनी का मनुष्यशरीर पर क्या प्रभाव हो सकता है। वे रोगों को दूर करने के लिए भी रोशनी को काम में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाने लगे। उन्होंने इसकी सहायता से रोगों के दूर करने के कई यत्न निकाले, जिनमें से धूप में बैठना भी एक था। इस विषय में लोग पहले यह समझते थे कि रोशनी में आरोग्यदायक वस्तु गरमी है। परन्तु थोड़ेही दिनों बाद यह मालूम हो गया कि गरमी तो लाभ की जगह हानि पहुँचानेवाली चीज़ है। वास्तव में रोशनी में जो गुणकारी चीज़ है वह किरणें हैं। यदि रोशनी की किरणें किसी तरह बिना गरमी के हम तक पहुँच सकें तो जो लाभ रोशनी से बिचारा गया है वह अवश्य हो। बहुत से मनुष्य इस समय भी ऐसे देखने में आते हैं, जो धूप में बैठना आरोग्य-कारक सुनकर धूप में बैठने लगे। पर इन्होंने यह न जाना कि वे नीरोग होने की जगह अपने रोग को बढ़ा रहे हैं। रेडियम की रोशनी के विषय में यह नहीं कहा जा सकता। इसकी रोशनी बिना किसी भय के रोगों को दूर करने में काम में लाई जासकती है। इसकी रोशनी से मनुष्य ने स्नान किया नहीं कि आरोग्य हुआ। फिर इसमें शक्ति बड़ी भारी है। जिस वेग के साथ यह काम करती है कोई रोशनी नहीं कर सकती। यह रोशनी उस मनुष्य को लाभकारी हो सकती है जिसकी दृष्टि में फ़र्क़ आगया हो, क्योंकि इस रोशनी की किरणों में दृष्टिदान की बड़ी शक्ति है। एक वैज्ञानिक ने परीक्षा से यह सिद्ध कर दिया है कि रेडियम से दीपक का भी काम लिया जा सकता है। यह धातु विस्फोटक और नासूर आदि रोगों में भी बड़ी लाभदायक होती है और वात-शूल और श्लेष्मा में भी उपयोगी समझी जाती है। एक विद्वान् का कथन है कि यदि मनुष्य उस वायु में साँस ले जो ऐसे जल में होकर निकाली जाय जिसमें रेडियम का अंश हो, तो क्षयरोग दूर हो जाय।

सरयूनारायण त्रिपाठी।

प्रार्थना।

हे करुणा-जलधि कर्त्तार।
है यही विनती हमारी, नाथ बारंबार ॥ १ ॥
यह समय अति पोच आयो सोच छायो भार,
देहु तातें पुरुष उत्तम गुणन के आधार ॥ २ ॥
देश-प्रेमी, सत्य-नेमी, धीर, वीर, उदार,
तेजसी, बुध, साहसी, वर, जसी, विद्यागार ॥ ३ ॥
धर्मरत, शुभकर्मकारी, शील-पारावार,
दूर जिनसे उच्च पद के वासना-विस्तार ॥ ४ ॥
लोभ क्षोभ-विहीन, पुलकित करहिं श्रम स्वीकार,
सुमतिरांचे, सदा सांचे, प्रण-निबाहनहार ॥ ५ ॥
लोक-प्रिय, निस्पृह, सुहृदसम समुझि सब संसार,
करहिं निज-पर-कार्य्य में जो तुल्यही व्यवहार ॥ ६ ॥
निडर, निर्म्मल-हृदय, विद्या-बुद्धि के आगार,
करहिं जो सब भाँति राजा-प्रजा को उपकार ॥ ७ ॥
देहु पूरन पुरुष ऐसे देशसेवाकार,
होहिं जिनसों वेगि भारत-भूमि का उद्धार ॥ ८ ॥

राय देवीप्रसाद (पूर्ण)

विनयः।

कारुण्यसागर ! विनाशितसज्जनार्ध !
वन्दे तवेश्वर ! भृशं चरणारविन्दे।
याचे भवन्तमथ किञ्चन दत्तचित्तं
आकर्णितुं कमपि मे विनयं विनीतम् ॥ १ ॥

हे करुणासागर ! हे सज्जनों के आधि-व्याधि-नाशक ! हे ईश्वर ! मैं आपके चरणारविन्दों को बहुत बहुत वन्दना करता हूं। मैं आप से कुछ विनय करना चाहता हूँ। मेरी याचना यह है कि उस विनय को आप ज़रा दत्तचित्त होकर सुनलें।

आनन्दकन्द ! निरुपाधिदयादृगन्तान्
विन्यस्यसि त्वमिति वेदविदो वदन्ति।
हा ! तत्कुतः प्रबलदुःखदवानलेन
दंदह्यते सपदि भारतवर्षमीश ! ॥ २ ॥

हे आनन्दकन्द ! वेदों के वेत्ता विद्वान् यह कहते हैं कि आप सहज ही दयालु हैं—आप की आँखों में दया भरी है—आप उपाधिरहित दया दृष्टि रखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। फिर, हे ईश! यह भारतवर्ष क्यों इस समय इतनी प्रबल दुःखाग्नि से दग्ध हो रहा है? ज़रा बतलाइए तो सही?

तत्किं वृथैव तव कारुणिकत्वमीश
वेदास्तथा मुनिवराः परिघोषयन्ति?
नोचेद्दयासदन! सान्द्रकटाक्षपातैः
श्रीभारतं पतितमुद्धरयं कुतो न? ॥ ३ ॥

हे ईश! तो क्या वेद और मुनिजन आप की कारुणिकता को वृथा ही घोषणा दे रहे हैं? क्या आप करुणामय नहीं? यदि ऐसी बात नहीं है तो हे दयासदन! क्यों नहीं फिर आप अपने कृपाकटाक्षों से इस पतित भारत का उद्धार करते?

जानासि भारतभुवो न दशामितीश!
नैवेत्सहे हृदि विशङ्कितुमप्यनार्याम्।
ज्ञात्वापि यन्न कुरुषे प्रतिकारमत्र
विस्मापयत्यज! तदेव मदीयचेतः ॥ ४ ॥

हे ईश! आप भारतभूमि को दुर्दशा से परिचित नहीं—उसकी आपको कुछ ख़बर ही नहीं—ऐसी अनुचित कल्पना मन में लाने तक को भी जी नहीं चाहता। यथार्थ स्थिति क्या है, सो अच्छी तरह जानकर के भी आप उसका प्रतीकार नहीं करते, यही सोचकर मेरे मन में विकट विस्मय उत्पन्न होता है। क्या कारण है, जो आप जान बूझकर ऐसी आनाकानी कर रहे हैं?

यां भारतीयधरणीं बहुधान्ययुक्तां
सर्वोपि काञ्चनमयीं मनुते स्म लोकः।
तत्राद्य मुष्टिचणकार्तिमपि नाप्नुवन्तो
दुर्भिक्षपीडितजनाः शतशो म्रियन्ते ॥ ५ ॥

जिस भारतीय भूमि को सारा संसार धन, धान्य से परिपूर्ण—नहीं नहीं सुवर्णमय—मानता था, वहीं अब मुट्ठी भर चने तक न मिलने से, देखिए, सैकड़ों हज़ारों दुर्भिक्ष पीड़ित मनुष्य मरते चले जा रहे हैं!

रक्षोपलावलिविनिर्गतसान्द्ररोचिः
स्तोमैरदीपि भवनेन पुरा हि येषाम्।
सद्य स्वमाकलयितुं गलितान्धकारं
हा! अद्य तैलमपि ते न जना लभन्ते ॥ ६ ॥

जिनके घर किसी समय रत्नमय-दीपकों की किरणों से प्रकाशित होते थे, हाय! हाय! उन्हीं को घर का अन्धकार दूर करने के लिए आज धेले भर तेल भी नहीं मिलता!

यैषा कृषिस्सकलकांक्षितकामधेनुः
पूर्वं समादृततरा फलति स्म भूरि।
साप्यद्य वृष्टसलिलप्रभृतेरभावा-
च्छुष्का विशोषयति भारतवासिचेतः ॥ ७ ॥

सारी ईप्सित वस्तुओं को देनेवाली यह कामधेनु कृषि, आदरपूर्वक अच्छी तरह की जाने पर, पहले मनमाना धान्य देती थी। पर, वही, इस समय, वृष्टि और जल आदि के अभाव से शुष्क होकर, भारतवासियों के हृदय को शुष्क कर रही है!

वाणिज्यमस्य सकलं जलधौ निमग्नं
यन्त्रादिकस्य तु कथैव न चालनीया।
आच्छादितुं बत! शरीरमपि स्वकीयं
हा तात! न प्रभवति स्वयमत्र वासी ॥ ८ ॥

यहाँ का सारा वाणिज्य-व्यापार समुद्र में डूब गया। कलों और यंत्रों को तो बातही नहीं—उनका तो लोग नाम तक भूल गये। हे तात! अब तो बदन ढकने के लिए गज़ भर कपड़ा तक लोगों को नहीं मिलता। हाय हाय कैसा अधःपात हुआ है!

दण्डं भवानदित भारतदुष्कृतानां-
मस्माभिरप्यतितरां विपदो विषेढाः।
चेतो दयार्द्रमधुना तु कुरुष्व तात!
क्षिप्रं गृहाण भुजयोर्निजयोस्तथास्मान् ॥ ९ ॥

भारत ने जो दुष्कर्म्म किये थे तदर्थ आप उसे यथेष्ट दण्ड दे चुके। हमने भी अपने ऊपर पड़ी हुई आपदाओं को खूब झेला। हे ईश! अब आप अपने चित्त को दयार्द्र कीजिए और हमें शीघ्र ही करावलम्ब दीजिए। बहुत हो चुका।

ऊरीकृत्य दयां दयामृतनिधे! सञ्जातरोषावधे!
कुर्या भारतवासिनां मृतमनस्त्वेतादृशीं प्रेरणाम्।
भूयो येन महेश! भारतभुवः सञ्जायतामुन्नतिः
किञ्च क्षोणितलं विनिर्मलयशो व्याप्नोत्वमुष्या बहु ॥ १० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके रोष की अवधि हो चुकी। हे दयामृत-सागर! अब आप दया करके भारतवासियों के मुर्दा दिलों में ऐसी प्रेरणा पैदा कीजिए, जिसमें फिर इस भारतभूमि की उन्नति हो और फिर इसका विमल यश भूमण्डल में सब कहीं व्याप्त हो जाय।

एक बाल-ब्रह्मचारी, काँगड़ी।

सम्पत्ति-शास्त्र।

(३)

सम्पत्ति का वितरण।

ज़मीन, पूँजी और परिश्रम के योग से सम्पत्ति उत्पन्न होती है। यह बात पहले कही जा चुकी है। पर ये तीनों चीज़ें सब को मुफ्त नहीं मिलतीं। किसी के पास ज़मीन है तो पूँजी नहीं; पूँजी है तो ज़मीन नहीं; मेहनत करने की ताक़त है तो न ज़मीन ही है, न पूँजी ही है। इससे जिसके पास जो चीज़ नहीं है उसे उसका संग्रह ज़रूर करना पड़ता है। हिन्दुस्तान में प्रायः सभी किसान—काश्तकार—ऐसे हैं जिनके पास न ज़मीन है, न पूँजी। सिर्फ़ मेहनत ही उनके पास है। मेहनत करने के लिए भी उन्हें कभी कभी मज़दूर रखने पड़ते हैं। ज़मीन वे ज़मींदार की जोतते हैं, पूँजी महाजन की लगाते हैं। अतएव जो कुछ उनके खेत में पैदा होता है वह तीन जगह बँट जाता है। यथा—

(१) ज़मीन का लगान देना पड़ता है।

(२) मज़दूरों को मज़दूरी देनी पड़ती है।

(३) महाजन को पूँजी मुनाफ़े (सूद) समेत लौटानी पड़ती है।

इस तरह उनकी सम्पत्ति के लगान, मुनाफ़ा और मज़दूरी ये तीन भाग हो जाते हैं। अथवा यह कहिए कि उन्हें उसका तीन जगह वितरण करना पड़ता है। शेष जो कुछ बचता है वही उनकी मेहनत आदि का फल उन्हें मिलता है। कल-कारख़ानों की मदद से जो चीज़ें तैयार होती हैं उनका भी इसी तरह वितरण होता है।

लगान।

इस देश की ज़मीन पर पहले प्रजा का स्वत्व था। वह प्रजा ही की मिलकियत थी। खेत में जो पैदा होता था उसका सिर्फ़ छठा हिस्सा राजा लेता था। वह लगान के रूप में न लिया जाता था, किन्तु राजा के द्वारा प्रजा के जान-माल की जो रक्षा होती थी उसके बदले प्रजा को वह एक प्रकार के करके रूप में देना पड़ता था। पर अब इस देश की प्रायः सारी ज़मीन अँगरेज़ी गवर्नमेंट ने अपने क़ब्ज़े में कर ली है। गवर्नमेंट ही गोया ज़मींदार है। इससे जो कोई ज़मीन जोतता है उसे उसका लगान गवर्नमेंट को देना पड़ता है।

लगान लगाने में कई बातों का ख़याल करना पड़ता है। कहीं रीति रिवाज के अनुसार लगान लगाया जाता है; कहीं चढ़ा ऊपरी के अनुसार; कहीं कहीं दो दो तीन तीन बातों का साथ ही ख़याल रखकर उनके अनुसार। जहाँ रीति रिवाज के अनुसार पैदावार का तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा या और कोई निश्चित हिस्सा लगान के तौर पर देना पड़ता है वहाँ लगान के कारणों का तारतम्य समझने में कठिनता नहीं पड़ती। पर जहाँ चढ़ा ऊपरी या और कई कारणों के अनुसार लगान लगाया जाता है वहाँ उसका परिमाण ठहराने में कठिनता पड़ती है।

ज़मीन का परिमाण निश्चित है। क़लम, काग़ज़, कपड़ा आदि की तरह उसकी आमदनी नहीं बढ़ सकती। आबादी बढ़ती जाती है। ज़मीन से जो चीज़ें पैदा होती हैं उनकी सब को ज़रूरत रहती है। उसका संग्रह तो बढ़ता नहीं, खप बढ़ता जाता है। इसी से उसकी क़ीमत बढ़ती जाती है। उसकी क़ीमत ही का नाम लगान है। लगान ही के रूप में क़ीमत लेकर, हमारी ही ज़मीन गवर्नमेंट हमें किराये पर देती है। ज़मीन की क़ीमत, अर्थात् लगान, मुक़र्रर करने में गवर्नमेंट प्रायः दो बातों का ख़याल करती है। वह देखती है कि ज़मीन की उर्वरा शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितनी है और उसके जोतने बोने में सुभीता कितना है। ये दो बातें जितनी हीं अधिक होती हैं उतनाही अधिक लगान वह लगातो है। ये दोनों बातें जितनी ही कम होती हैं उतनाहीं कम लगान लगता है। जिस ज़मीन में ये बातें बिलकुल नहीं होतीं उसे कोई नहीं लेता; अतएव उस पर कुछ भी लगान नहीं लगाया जा सकता। बस्ती से दूर किसी जंगल के पास चाहे अच्छी से अच्छी ज़मीन पड़ी हो उसकी क़ीमत कुछ भी नहीं आती; क्योंकि और देशों की तरह हिन्दुस्तान के लोग पुरखों की देहली छोड़ कर दूर नहीं जाना चाहते। फिर सुभीते का ख़याल भी लोगों को बहुत होता है। इसी तरह गाँव के पास चाहे सैकड़ों बीघे भूड़ ज़मीन पड़ी हो उसका कुछ भी लगान लोग देने को राज़ी नहीं होते, क्योंकि उसमें कुछ पैदा ही नहीं हो सकता।

कितना लगान लगाना चाहिए, इस विषय में सम्पत्तिशास्त्र के आचार्य्यों ने एक नियम बनाया है। कल्पना कीजिए कि आपने एक ख़ास क़िस्म की एक बीघे ज़मीन में गेहूँ बोया। बीज इत्यादि में जो कुछ ख़र्च हुआ वह आपने महाजन से लेकर लगाया। उसमें सिर्फ़ दस मन गेहूँ पैदा हुआ। उसे आपने बेचा। जो कुछ मिला उसमें से सूद समेत महाजन की पूँजी लौटा दी। बाक़ी में से आपने अपनी मेहनत और निगरानी आदि का मुआविज़ा निकाल लिया। अब जो आपने देखा तो आपके पास कुछ न बच रहा; यहाँ तक कि भूसे के दाम भी इसी में खप गये। अतएव यदि आपको इस एक बीघे ज़मीन का एक पैसा भी लगान देना पड़ता तो आप उतने के घाटे में रहते। इससे यह सिद्धान्त निकला कि जिस ज़मीन में मज़दूरी और सूद समेत पूँजी आदि से कुछ भी अधिक न मिले उस पर लगान नहीं लगाया जा सकता; क्योंकि यदि लगाया जायगा तो कोई ऐसी ज़मीन जोतेगा क्यों? जान बूझकर कोई घाटा न देगा। अब कल्पना कीजिए कि किसी ज़मीन का सब ख़र्च निकाल कर एक रुपया बचा। तो यही एक रुपया लगान हुआ। ख़र्च वज़ा करके जितनी ही अधिक बचत होगी उतनाही अधिक लगान लगाया जा सकेगा। अथवा यों कहिए कि किसी ज़मीन की आमदनी में से, नीचे दरजे की लगान न लग सकने वाली ज़मीन का ख़र्च आदि घटाने से जो कुछ बचे, वही लगान की दर समझनी चाहिए। यह बहुत पेचीदा विषय है। लगान निश्चय करने में कई बातों का विचार करना पड़ता है। उन सब का जिक्र इस छोटे से लेख में नहीं आ सकता।

ज़मीन से उत्पन्न हुए अन्न की क़ीमत जब तक उत्पत्ति के ख़र्च के बराबर है तब तक लगान न लग सकेगा। पर अन्न की क़ीमत अनेक कारणों से घटा बढ़ा करती है। अन्न सस्ता हो जाने से ख़र्च न निकलेगा। इससे महँगी के समय जो ज़मीन लोग लगान देकर जोतते रहे हैं उसमें से कुछ को, अन्न सस्ता होने पर, छोड़ना पड़ेगा। महँगी होने से नतीजा इसका उलटा होगा, अर्थात् जो ज़मीन पहले न जोती जाती थी वह जोती जायगी।

आबादी बढ़ने से अनाज का खप अधिक होता है। इससे ज़रूरही अनाज महँगा हो जाता है। अतएव धीरे धीरे बुरी से भी बुरी ज़मीन जोती जाने लगती है और साथ ही साथ लगान भी बढ़ता जाता है। हिन्दुस्तान में यही हो रहा है। इधर आबादी बढ़ती है, उधर विदेश को अनाज की रफ्तनी भी अधिक होती जाती है। फल यह हुआ है कि दिनों दिन अन्न महँगा हो रहा है; जोतने के लिए ज़मीन ढूँढ़े नहीं मिलती; लगान बढ़ रहा है; किसानों के घर द्वार, बैल बधिया बिकते जा रहे हैं। देश कृषि-प्रधान ठहरा। और पेशेवाले लोग बहुत कम। फिर भला क्यों न दरिद्रता और दुर्भिक्ष की वृद्धि हो? लोग चढ़ा ऊपरी करके ज़मीन का लगान बढ़ा रहे हैं। जो ३ रुपये बीघे को ज़मीन है उसे दूसरा ४ रुपये पर लेने को तैयार है। ज़मीन की मालिक गवर्नमेंट। उसका ख़जाना बढ़ रहा है। प्रजा का स्वत्व ज़मीन पर नहीं। इस लिए वह उसे अधिक उपजाऊ बनाने की कोशिश नहीं करती? क्यों करे? उसने ख़र्च करके किसी ज़मीन को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक उपजाऊ बनाया और गवर्नमेंट ने उससे छीन लिया तो ? हिन्दुस्तान के जिन प्रान्तों में रैयतवारी और ज़मींदारी नियमों के अनुसार लगान वसूल किया जाता है वहाँ सर्वत्र दुर्दशा देवी का साम्राज्य है। सिर्फ़ बंगालहाता उससे बचा हुआ है। क्योंकि वहाँ इस्तमरारी बन्दोबस्त है। जो लगान गवर्नमेंट ने मुक़र्रर कर दिया है वह न कभी घटता है न बढ़ता है। ज़मीन ख़ूब कमाई जाती है और उपज भी ख़ूब होती है। इसी से रिआया ख़ुश है। प्रजापालक राजा का धर्म्म है कि वह लगान लगाने में सख़्ती न करे। जिसमें रिआया का, देश का और साथ ही अपना भी हित हो वही उसे करना चाहिए।

मज़दूरी।

किसी पहले लेख में लिखा जा चुका है कि पूँजी के दो विभाग होते हैं—चल और अचल। मज़दूरों को जो मज़दूरी दी जाती है वह चल-पूँजी से दी जाती है। अतएव चल पूँजी की जितनी ही अधिक वृद्धि होगी, मज़दूरों को मज़दूरी भी उतनी ही अधिक मिलेगी। जिस देश में चल पूँजी कम है वहाँ के मज़दूरों की दशा अच्छी नहीं हो सकती। हिन्दुस्तान का यही हाल है।

चल पूँजी बढ़ने के साथ साथ यदि मज़दूरों की संख्या भी बढ़ेगी तो मज़दूरी नहीं बढ़ सकती, क्योंकि आदमी अधिक मिलने के कारण काम लेने वाले लोग मज़दूरी की दर क्यों बढ़ाने लगे ? मज़दूरों की संख्या और चल पूँजी का परिमाण इन दोनों बातों के ही तारतम्य पर मज़दूरी अवलम्बित रहती है। हाँ यदि मज़दूरों की संख्या के परिमाण से पूँजी का परिमाण बढ़ जायगा तो ज़रूर मज़दूरी का निर्ख़ बढ़ेगा। पूँजी तभी बढ़ेगी जब सम्पत्ति का सञ्चय अधिक होगा। और सञ्चय अधिक होने के लिए, जीवन-निर्वाह की चीज़ों की बहुलता और उनकी उत्पत्ति में ख़र्च की कमी का होना बहुत ज़रूरी है।

कल्पना कीजिए किसी मज़दूर को पहले किसी कारख़ाने में ६ रुपये महीना मज़दूरी मिलती थी। पर अब ८ रुपये महीना मिलती है। अर्थात् उसकी तनख़्वाह २ रुपये महीने बढ़ गई है। पर रुपया कोई खाने की चीज़ नहीं। अतएव इस बात का विचार कीजिए कि खाने पीने आदि की चीज़ें अब किस भाव बिकती हैं। न वे पहले से सस्ती हैं, न पूर्ववत्; किन्तु महँगी हैं। अतएव व्यावहारिक चीज़ों का मूल्य जिस परिमाण से बढ़ा है उसी परिमाण से यदि मज़दूरी का निर्ख़ भी बढ़ा है तो यह बढ़ती कोई बढ़ती नहीं। हाँ यदि निर्ख़ का परिमाण मूल्य-वृद्धि के परिमाण से अधिक है तो ज़रूर मानना पड़ेगा कि मज़दूरी अधिक मिलने लगी, अन्यथा नहीं।

हिन्दुस्तान के किसी किसी प्रान्त में सुनार, लोहार, बढ़ई, कोली और मोची आदि श्रमजीवी लोगों को विवाह में कुछ ख़र्च करना पड़ता है। जब तक उनके पास काफ़ी धन नहीं होता तब तक वे दारपरिग्रह नहीं कर सकते। इससे यह लाभ होता है कि इन लोगों की वंश-वृद्धि में थोड़ी बहुत रोक होती है। अतएव जीवन-संग्राम की पीड़ा इन लोगों को अपेक्षाकृत कम सहनी पड़ती है। यदि औरों की तरह इनकी भी दिन दूनी वंश-वृद्धि होती तो आजकल इनकी जितनी दुर्गति है उससे कहीं अधिक दुर्गति भोग करनी पड़ती।

इस समय संसार में लोक-संख्या बेतरह बढ़ रही है। जिन देशों की दशा कुछ अच्छी है; जहाँ खाने पीने का कष्ट नहीं; जहाँ मज़दूरी काफ़ी मिलती है; वहाँ ख़ूब वंश-वृद्धि होती है। यदि इसी हिसाब से वंश-वृद्धि जारी रहे तो किसी समय मनुष्य-संख्या इतनी बढ़ जाय कि पृथ्वी पर खड़े रहने को भी जगह न मिले। पर प्लेग, हैज़ा, भूकम्प, दुर्भिक्ष, युद्ध आदि अनेक दैविक कारणों से मनुष्य-संहार हुआ ही करता है। इससे वंश-वृद्धि विशेष नहीं होने पाती। इन प्राकृतिक कारणों के सिवा विशेष सभ्यताशाली देशों ने वंश-वृद्धि को कम करने के अस्वाभाविक कारण भी ढूंढ़ निकाले हैं। परन्तु वैसे यत्नों का अवलम्ब सदाचार और सुनीति के प्रतिकूल है। लोक-संख्या बढ़ने पर आबादी का कुछ अंश यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थानान्तर कर जाय—किसी और जगह, या और देश में जा बसे—तो देश की साम्पत्तिक अवस्था ज़रूर कुछ सुधर जाय। पर हिन्दुस्तान, इस विषय में, ऐसा अभागी है कि उसे घर छोड़कर बाहर जाना बिलकुलही पसन्द नहीं। नटाल, माल्टा, मारिशस, जमाइका, ट्रिनिडाड, ग्रेनाडा, फिजी आदि देशों और टापुओं में जो हिन्दुस्तानी स्थानान्तर कर गये हैं वे इस देशवाले अपने सजातियों से सब तरह अच्छा हालत में हैं। वे लोग हज़ारों रुपया पैदा करते हैं और अपने घर भी भेजते हैं। इन लोगों में नीच जाति के अहीर, गडरिये, कोली, पासी, चमार आदि ही अधिक हैं। यदि और लोग भी स्थानान्तर-गमन करें तो वे ख़ुद भी मज़े में रहें और उनके देशवासियों को भी लाभ पहुँचे। पर गोरों के हाथ से जो कालों का अपमान हो रहा है वह ऐसा न होने देगा।

जनसंख्या बढ़ने से चल पूँजी का जितना अंश प्रत्येक मज़दूर को मिलना चाहिए उतना नहीं मिलता। वह कम हो जाता है; मज़दूरी का निर्ख़ गिर जाता है। उधर आबादी बढ़ जाने से अनाज का ख़र्च बढ़ता है; इसलिए वह महँगा हो जाता है। इसी से बेचारे मज़दूरों और सामान्य तौर पर सभी श्रमजीवियों को पेट भर अन्न नहीं मिलता। इस देश में आजकल यह दृश्य सब कहीं देखने को मिलता है। यद्यपि मज़दूरी कुछ बढ़ गई है, तथापि उसकी बढ़ती का परिमाण अनाज आदि व्यावहारिक चीज़ों की मूल्य-वृद्धि के परिमाण से बहुत कम है। मनुष्य-संख्या बढ़ रही है। पर न उसके प्रतिबन्ध का कोई यत्न है। न लोग देशान्तर करनाही पसन्द करते हैं। अँगरेज़ी राज की कृपा से देशमें सब कहीं अमन चैन है। पहले की तरह मारकाट से भी जन-संख्या का ह्रास नहीं होता। पूँजी का कहीं पता नहीं। मिल जुलकर कल-कारख़ाने खोलना लोग जानते नहीं, जो उसके द्वारा कुछ लोगों का पेट पले। इस अवस्था में यदि हिन्दुस्तानी श्रमजीवी लोगों की दशा दिनों दिन बुरी होती जाय तो कोई आश्चर्य्य नहीं। बानकही वैसा बन रहा है। शिक्षा-वृद्धि से भी वंश-वृद्धि कम हो जाती है। पर यहाँ १०० में ५ आदमी मुशकिल से शिक्षित मिलेंगे। इस दशा में भगवानही भारत की लाज रक्खे तो रहे।

व्यवहार की चीज़ें महँगी हो जाने से, उनको तैयार करने वाले मज़दूरों की मज़दूरी भी महँगी हो जायगी, अर्थात् उन्हें अधिक मज़दूरी मिलने लगेगी, यह समझना भूल है। क्योंकि मज़दूरी का घटना बढ़ना चल पूँजी और मज़दूरों की संख्या पर ही अवलम्बित रहता है। और चीजों का महँगा सस्ता होना उनके उत्पादन ख़र्च पर अवलम्बित रहता है। दोनों कारणों में आकाश-पाताल का भेद है। अगर किसी चीज़ का खप अधिक होने से उसकी क़ीमत बढ़ेगी, तो, सम्भव है, उस चीज़ के बनानेवालों को कुछ दिन तक अधिक मज़दूरी मिले। परन्तु कुछ ही दिनों में चढ़ा ऊपरी होकर और लोग भी वह चीज़ तैयार करने लगेंगे। माल ज़ियादह तैयार करने में अधिक मज़दूर दरकार होंगे; पर उस ख़ास चीज़ के बनानेवाले बहुत तो होंगे नहीं। इसलिए मज़दूरी ज़रूर बढ़ जायगी। पर यह दशा बहुत दिन तक न रहेगी। और लोग अपने अन्यान्य व्यवसाय छोड़कर इस चीज़ के बनाने में लगेंगे और उनकी संख्या बढ़तेही मज़दूरी की दर फिर कम हो जायगी।

मज़दूरी का कम या ज़ियादह मिलना प्रतिस्पर्द्धा या चढ़ा ऊपरी के तत्व पर स्थिर रहता है। इसलिए सम्पत्ति-शास्त्र के आचार्य्यों की राय है कि निरुद्योगी और आलसी आदमियों को मुफ्त दान-दक्षिणा देना मज़दूरों का और तद् द्वारा सारे देश का नुक़सान करना है।

भिन्न भिन्न पेशे के कामों में मज़दूरी का निर्ख़ भी भिन्न भिन्न होता है। जो काम बुरी दृष्टि से देखे जाते हैं अथवा जिनके करने में जी नहीं लगता उनके करने वालों को, तद्विपरीत काम करने वालों की अपेक्षा, अधिक मज़दूरी मिलती है। जो काम सीखने में समय भी अधिक लगता है और ख़र्च भी अधिक, उसमें मज़दूरी अधिक मिलती है। जो काम साल में कुछ ही महीने चलते हैं और जिनके करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ईमानदारी की अधिक अपेक्षा होती है उनमें भी मज़दूरों को कुछ अधिक वेतन मिलता है।

मज़दूरों में और काम लेनेवालों में हमेशा हित-विरोध रहता है। मज़दूर चाहते हैं ज़ियादह मज़दूरी मिले, काम लेनेवाले चाहते हैं कम। इस कारण कभी कभी बड़े बड़े दङ्गे फ़साद हो जाते हैं। जितने हड़ताल होते हैं प्रायः सभी इसी हित-विरोध के फल हैं।

एक बात यहाँ पर यह याद रखना चाहिए कि मज़दूरों से मतलब यहाँ कुलियों से ही नहीं। जितने श्रमजीवी हैं, जितने शिल्पी हैं, जितने मेहनत करने वाले हैं, सभी से है। एक ही आदमी मज़दूर भी हो सकता है और महाजन भी हो सकता है। जो कारीगर अपनी ही पूँजी से कोई चीज़ बनाता है वह पूँजी के लिहाज़ से महाजन और काम करने के लिहाज़ से मज़दूर है।

मुनाफ़ा।

पूँजी सञ्चय का फल है। पूँजी ख़र्च करने ही से सम्पत्ति की उत्पत्ति होती है। जो पूँजी लगावेगा वह उसका बदला ज़रूर कुछ लेगा। उसकी पूँजी से जो सम्पत्ति पैदा होगी उसका जो अंश उसे मिलेगा वही मुनाफ़ा है। इसी को सूद भी कह सकते हैं।

कल्पना कीजिए गोपाल अहीर किसानी करना चाहता है। पर न उसके पास ज़मीन है, न बोने के लिए बीज और खाने के लिए अन्न है। वह ज़मीन के मालिक गवर्नमेंट से ज़मीन लेगा और रामदास महाजन के यहाँ से अनाज। जब खेत की पैदावार तैयार होगी तब उसे बेचकर उसकी आमदनी से वह सरकार का लगान भी देगा और रामदास से उधार लिया हुआ अनाज भी लौटा देगा। पर रामदास को उसे उस अनाज का चौथाई या छठा हिस्सा और भी देना पड़ेगा। यही पिछला अंश मुनाफ़ा है। क्योंकि यदि रामदास को कुछ अधिक मिलने की आशा न होगी तो वह अपना अनाज औरों को क्यों देगा? घर ही में वह उसे क्यों न पड़ा रहने देगा? यही हाल सब तरह की सम्पत्ति का है। कुछ अधिक मिलने ही की आशा से पूँजी लगाई जाती है। जो अधिक मिलता है वही मुनाफ़ा समझा जाता है।

जो लोग अपनी बुद्धिमत्ता और कार्य्यदक्षता से अपनी पूँजी के सद्व्यवहार से मुनाफ़ा उठाते रहते हैं वही देश के सच्चे हितचिन्तक हैं। इससे पूँजी बढ़ती है और व्यवसाय की वृद्धि होने से मज़दूरों की दशा सुधर जाती है। जिसके पास अधिक पूँजी होती है वह कम मुनाफ़े पर उसे औरों को ख़र्च के लिए देता है। फल यह होता है कि जो लोग उसे सम्पत्ति के उत्पादन में लगाते हैं उन्हें महाजन को सूद या मुनाफ़ा कम देने के कारण निज के लिए सम्पत्ति का अधिक अंश बच जाता है। पूँजी बढ़ जाने से जब सूद कम मिलने लगता है तब लोग पूँजी उधार न देकर, ज़रा भी अधिक मुनाफ़ा देखते ही, ख़ुदही व्यापार, व्यवसाय करने लगते हैं अथवा कम्पनियों या बैंकों या और साझे के कारोबार में हिस्से ख़रीदते हैं। इससे देश को बड़ा लाभ होता है। कंगाल कर डाले गये भारत वर्ष में पूँजी बहुत कम है। इसीसे सूद की दर यहाँ बहुत अधिक है। इंगलैंड में लोग जिस व्यवसाय में ६ रुपये सैकड़े सूद बहुत समझते हैं, उसी में यहाँ १२ रुपये सैकड़े सूद कम समझा जाता है। अपनी थोड़ी पूँजी को भारतवासी सरकारी काग़ज़ ख़रीद कर या बड़े बड़े बैंकों में जमा कर सुचित्त सोते हैं। उनको किसी व्यवसाय में रुपया लगाने का साहस ही नहीं होता। अगर पूँजी बढ़ जाय तो ये बातें जाती रहें। फिर बड़े बड़े कामों में लोगों को रुपया लगाने का हौसला हो।

सूद अर्थात् ब्याज और मुनाफ़े में कुछ भेद है। किसी काम में लगाने के लिए जो रुपया उधार दिया जाता है उसके बदले जो कुछ मिलता है वह सूद कहलाता है। सूद खाने वाला आदमी सम्पत्ति की उत्पत्ति नहीं करता। न उस पर किसी तरह का जोखिम रहता है, न उसे कुछ ख़र्च ही करना पड़ता है। पर जो लोग ख़ुद व्यवसाय करते हैं और लगाई हुई पूँजी का बदला लेते हैं वह मुनाफ़ा है। उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निगरानी का ख़र्च, परिश्रम और ज़िम्मेदारी आदि सभी कुछ अपने ऊपर उठाना पड़ता है।

जो व्यवसाय जितनी ही अधिक निगरानी और जोखिम का होता है उसमें उतनाही अधिक मुनाफ़ा देना पड़ता है। सरकारी काग़ज़ ख़रीदने में कुछ भी जोखिम नहीं। इसी से लोग तीन साढ़े तीन रुपये सैकड़ा ब्याज पाने पर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। पर और किसी छोटे मोटे बैंक को वे इतने थोड़े सूद पर कभी रुपया न देंगे; क्योंकि उनमें रुपया डूब जाने का डर रहता है। इससे रुपया जमा करने वालों को अधिक सूद देना पड़ता है। इसी तरह जितने कारोबार, उद्योग और धन्धे हैं सब में जोखिम, ज़िम्मेदारी और निगरानी आदि का ख़याल रखना पड़ता है। जिसमें ये बातें जितनी ही अधिक होंगी उसमें उतनाही अधिक मुनाफ़ा लिया जायगा। अनाज का व्यापारी जितना मुनाफ़ा लेगा, फलों का व्यापारी उससे अधिक लेगा; क्योंकि फलों के व्यवसाय में जोखिम अधिक रहता है। इससे स्पष्ट है कि किसी कारोबार में जो पूँजी लगाई जाती है उस पर सूद के सिवा, निगरानी और जोखिम के बदला भी कुछ देना पड़ता है। इससे यह भी सिद्ध है कि ब्याज की दर हर तरह के कारोबार में प्रायः एक ही हो सकती है, पर मुनाफ़ा सब में एक नहीं हो सकता।

देश में आबादी बढ़ने से जिस तरह मज़दूरी का निर्ख कम हो जाता है उसी तरह पूँजी पर मुनाफ़ा भी कम मिलता है। सम्पत्तिक विचार से देश में जन-संख्या का बढ़ना अच्छा नहीं। उससे ज़मीन का लगान बढ़ जाता है और मुनाफ़े का अंश और मज़दूरी का निर्ख घटे बिना नहीं रहता।

चीज़ों की क़ीमत चढ़ जाने से मुनाफ़ा अधिक नहीं मिलता। क्योंकि किसी चीज़ के तैयार होते ही नफ़े की मात्रा निश्चित हो जाती है। अर्थात् उसके तैयार करने में जो ख़र्च लगता है उतना निकालकर बाक़ी बचा हुआ माल मुनाफ़े में समझा जाता है। वह उस समय चाहे बिके चाहे न बिके। बिकने से पूँजी का सिर्फ़ रूपान्तर मात्र हो जाता है, बस। मुनाफ़े की मात्रा मज़दूरी पर ही सब से अधिक अवलम्बित रहती है। मज़दूरी के योग से जितनी ही अधिक उत्पत्ति होगी उतनाही अधिक मुनाफ़ा होगा। चीज़ों के महँगे सस्ते होने से कुछ नहीं होता। यदि शक्कर रुपये को २ सेर बिकने लगे और साथ ही उतनी शक्कर बनाने में १२ आने ख़र्च पड़े तो बाक़ी ४ आने में पूँजी का ब्याज देकर कितना मुनाफ़ा बचेगा?

महाजनी, वाणिज्य, हड़ताल, सहोद्योग, कर, देशान्तर-वास आदि सम्पत्ति-शास्त्र के कितने ही महत्त्व के अंशों पर लिखना अभी बाक़ी है। ऐसे लेखों में इन सब विषयों का थोड़ा भी प्रतिपादन करना कठिन जान पड़ता है। अतएव, यदि हो सका, तो हम सम्पत्ति शास्त्र पर अलग एक पुस्तक लिखने की चेष्टा करेंगे।

कजली-कलाप।

बोलो बोलो कैसे होगा, ऐसी भूलों का सुधार॥ टेक॥

शुद्ध सच्चिदानन्द विधाता, शङ्कर जगदाधार।
एक बनाया दो प्रकार का, निराकार साकार॥ १

जिस महेश को छोलालेदर, करते फिरें गमार।
मेल मेंट मर गये उसी के, दूत पूत अवतार॥ २

सिद्ध प्रमाणों से सब होगा, हम सब का करतार।
योंहीं अपने आप हुआ है, यह सारा संसार॥ ३

बिरले बड़भागी करते हैं, वैदिकधर्म-प्रचार।
मतवाले बहकाते डोलें, ज्ञानगपोड़े मार॥ ४

रचनेवालों के भावों पर, मारें कुमति कुठार।
अर्थ करें ग्रन्थों के अपनी, इच्छा के अनुसार॥ ५

भिन्न भिन्न मत पन्थ हमारे, भिन्न भिन्न आचार।
भिन्न भिन्न विधि खानपान की, भिन्न भिन्न व्यवहार॥ ६

पति पूजे श्रीपति को पत्नी, पूजे मियाँ मदार।
दो मत घुसे एकही घर में, ठनी रहे तकरार॥ ७

फैली फूट लड़ें आपस में, वैर विरोध पसार।
इन फुटैलों से कब होगा, भारत का उद्धार॥ ८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूखे नंगे भिखमंगे सब, सहें काल की मार।
क्या इनका दुख दूर करेंगे, बकबादी दातार॥ ९

रेंग रेंग सम्पति की सेना, पहुँची सागर पार।
घेर लिया दारुण दरिद्र ने, देशों का सरदार॥ १०

उन्नतिशील विदेशी मिलकर, करते हैं व्यापार।
हम ठाली दिन काटें उनको, और निहार निहार॥ ११

बने कूपमण्डूक न देखा, अवनी का आकार।
हाय हमारी छुआछूत पै, पड़ी न अब लों छार॥ १२

जिनको मङ्गलमूल मिला है, विद्या का भण्डार।
हाय होड़ उनको करते हैं, लम्पट लंठ लबार॥ १३

कर डाला आलस्य-योग ने, कर्मों का संहार।
बन्धन से छुट गये निकम्मे, खुला मुक्ति का द्वार॥ १४

पहले नर नामी करते थे, प्रभुता का विस्तार।
हमको अपने आपे पर भी, नहीं रहा अधिकार॥ १५

विज्ञ ब्रह्मचारी करते हैं, अभिनव आविष्कार।
बच्चों के बच्चे उनके से, माँगें ज्ञानागार॥ १६

देशी शिल्पकार दुख भोगें, बैठ रहे मन मार।
देखो दस्तकार परदेशी, सुख से करें विहार॥ १७

सिंह नामधारी छैलों ने, छोड़ दिये हथियार।
तोड़ें तान बजें तम्बूरे, तबला और सितार॥ १८

सबसे थोड़ा चन्दा लिखना, देने से इनकार।
क्या ऐसेही सूम करेंगे, सबका बेड़ा पार॥ १९

अपने ऊत कपूतों पर भी, पूरा पूरा प्यार।
औरों के मृदुमुख बेटों का, किया न कुछ उपकार॥ २०

हितकारी का वाणी से भी, किया नहीं सत्कार।
नीचों के गुण गाते हैं उन, ऊँचों को धिक्कार॥ २१

पाखण्डी ठग आमिषभोगी, मद्यप ज्वारी जार।
मूढ़ दानभाजन भारत के, साधु वेष बटमार॥ २२

तम्बाकू के दास गँजेड़ी, मदकी चरसी चार।
झाड़ झाड़ चूसें चिलमों को, उगलें धूँआँधार॥ २३

मदिरा ताड़ी भंग कसूमा, पीते हैं ज़रदार।
क्या जाने कंगाल बिचारे, इस न्यामत को सार॥ २४

होली के हुल्लड़ की मारी, लाज लुकी हिय हार।
कौन कहै गोरी रसियों की, महिमा अपरम्पार॥ २५

अबलागण के गीत निचोड़ें, नारिधर्म का सार।
धन्य अविद्यादेवी तेरा, देख लिया दरबार॥ २६

अठबरसी बरनी ने पाये, सठबरसे भरतार।
इस विवाह पै पड़ै न दुर दुर, छी छी की बौछार॥ २७

लाखों घर ऊजड़ कर डाले, घटे घने परिवार।
तौभी हाय महामारी का, हुआ न कुछ प्रतिकार॥ २८

फ़िल्टर वाटर की परदादी, भ्रुवनन्दा की धार।
उसमें गन्देनाले डाले, वैतरणी के यार॥ २९

जीवनचरित महापुरुषों के, पढ़ें मसोसा मार।
मूढ़ न अपनी नीचदशा को, निरखें नयन उघार॥ ३०

स्वामी सम्पादक पत्रों के, संकट सहें अपार।
हाय हाय कर मर जावेंगे, सब देशी अख़बार॥ ३१

खाते खाते कुटिलकाल का, भरे न पेटपिटार।
दैवकोप ने हाय हमारे, लूट लिये घरबार॥ ३२

हा अन्धेर किसी को कोई, सुनता नहीं पुकार।
गाने के मिस क्यों रोता है, शङ्कर धीरज धार॥ ३३

ऐसी भूलों का सुधार।

नाथूरामशङ्कर शर्म्मा।

कीलाक्षरलिपि।

(गत संख्या से आगे)

बरसात का मौसिम है। सय्यद नूर अ़ली रामपुरी अपने बँगले के बरामदे में बैठे अपने मित्र पण्डित शङ्करनाथ आग़ा से बातें कर रहे हैं। गत वर्ष में लखनऊ शहर में प्लेगासुर का प्रकोप विशेष रहा था, आगामी वर्ष उससे बचने के उपाय सोचे जा रहे हैं। शहर के दस पाँच आदमी भी बैठे हैं और तरह तरह के प्रश्न कर रहे हैं। कोई पूछता है कि यह दुष्ट कब दफ़े होगा। कोई दरयाफ़्त करता है कि यह दैत्य आया कहाँ से? ग़रज़ सब अपनी अपनी नाराज़गी ज़ाहिर कर रहे हैं और आयन्दः बचने की तदबीरें सोच रहे हैं। आग़ाजी का इरादा है कि अपनी ज़मींदारी में—जो शहर से तीन चार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोल पर वाक़े है और उसमें कुछ बंजर ज़मीन भी पड़ी हुई है—पुराने वक्तों की सराय के नमूने पर मकान बनवा दें और वाजिबी किराये पर उठा दें। शहरवाले कहते हैं कि जब तक सफ़ाई और पानी का पूरा इन्तिज़ाम न होगा कोई शख़्स उन मकानों में आकर नहीं रहेगा। आख़िरकार एक शख़्स ने कहा, "मीर साहब! आपने बहुत दुनिया देखी है और पुरानी किताबें भी बहुत पढ़ी हैं। आपको तो मालूम होगा, यह बीमारी पहले ज़माने में भी कहीं होती थी या हमारे ही देश के भाग में लिखी थी।"

सय्यद साहिब—"भाई होती क्यों न थी। दूर क्यों जाओ, ख़लीज फ़ारिस के आस पास की आबादियों में अब भी अकसर होती रहती है। बल्कि उस मुल्क के पुराने कत्बों से मालूम होता है कि यह बीमारी उस मुल्क में बहुत पुरानी है।"

शहरवाला—"कहीं यह भी लिखा है कि वह लोग बीमारी के मौसिम में जान माल की क्योंकर हिफ़ाज़त करते थे। और इस बीमारी का कोई इलाज भी था?"

सय्यद साहिब—"हिफ़ाज़त करने का हाल तो अब तक कुछ नहीं मालूम हुआ और न कुछ दवा दारूही का ज़िक्र है। अलबत्ता आजकल की तरह उन दिनों में भी पाखण्डियों की ख़ूब खीर पकती थी। झाड़ा फूँकी गण्डे तावोज़ों की भरमार थी। भला ख़ुदा के क़हर के सामने इनसान—"

आग़ाजी—"दुरुस्त है! क्यों साहब, शास्त्रीजी आगये?"

सय्यद साहिब—"जी हाँ! आपको नहीं मालूम? बस अब यहाँ आनेवाले ही हैं।"

शहरवाले—"तो मीर साहब, अब हम लोग जाते हैं। आप और पण्डितजी मशवरा कर लें। हमसे जो कुछ आप लोग कहेंगे हमको मनज़ूर है।"

* * * * * *

शहरवालों के जाने के बाद शास्त्रीजी भी आगये। कुशलवार्ता होकर बर्बरदेश की कीलाक्षरलिपि का ज़िक्र होने लगा। आग़ा ने शास्त्रीजी से पूछा—

"कहिए उस दिन के इश्तिहार की मदद से आपको अँगरेज़ी हुरूफ़ तहज्जी से कुछ वाक़फ़ियत हासिल हुई?"

शास्त्रीजी—"जी हाँ आपकी कृपा से प्रायः सब अक्षर हमने निकाल लिये—"

सय्यद साहिब—"सच! किसी अँगरेज़ी पढ़े की सहायता तो नहीं ली?"

शास्त्रीजी—"जी नहीं, अँगरेज़ीपढ़े की सहायता ता नहीं लो, परन्तु यह कहना पड़ेगा कि यदि एक विशेष घटना न होती तो हमारा किया यह काम न होता।"

आग़ाजी—"बस तो सारा हाल सुना डालिए!"

शास्त्रीजी—"सुनिए! गत महीने में स्कूल बन्द होने पर हम अपने घर गये। वहाँ पहुँचकर दोचार दिन तक इस वर्णमाला पर विचार किया। परन्तु कुछ समझ में न आया। हमारे ग्राम में एक ब्राह्मण रहते हैं जो गाँववालों के विवाहादिक संस्कार कराते हैं। थोड़ी बहुत संस्कृत भी जानते हैं। एक दिन वह काशी की मित्रगोष्ठीपत्रिका पढ़ते हुए हमारे पास आये और हमसे पूछने लगे कि 'वेबर' शब्द का क्या अर्थ है और 'शर्मण्य' शब्द में क्या प्रत्यय है। हमने कहा आप दिल्लगी करते हैं या इस पुस्तक में यह शब्द कहीं छपे हुए हैं। इस पर उन्होंने पढ़कर सुनाया, "शर्मण्यदेशीयेन वेबरपण्डितेन श्रीमतो लगधमुनेः कृतं ज्योतिषं पूर्वं प्रकाशितं"। हमें हँसी आगई और हम ने कहा कि 'शर्मण्य' किसी देश का नाम है और वेबर कदाचित् किसी मनुष्य का नाम है। यह शब्द तो संस्कृत कदापि नहीं है। हमारे पड़ोसीजी तो सुनकर सन्तुष्ट हो गये, परन्तु हमारे मन में नई शङ्का उत्पन्न हो आई। हमने सोचा कि विभिन्न भाषाओं की शब्दावली चाहे अलग अलग हो परन्तु किसी मनुष्य का नाम जो एक भाषा में है वही सब भाषाओं में होगा। साहब लोग घोड़े को अपनी बोली में चाहे कुछ कहते हों; परन्तु हमारा नाम देवदत्त के अतिरिक्त और कुछ नहीं कह सकते। यही कारण है कि संस्कृत भाषा अलग होने पर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वेबर' का नाम नहीं बदला गया। 'शर्मण्य' शब्द के विषय में हमने विचार किया कि हो न हो यह 'जर्मनी' देश का नाम होगा, भाषान्तर करने में अपभ्रंश हो गया है। परन्तु इतना सोचकर भी हम मूल बात को न पासके। सायङ्काल चिट्ठीरसाँ आया और गतमास की 'सरस्वती' हमें दी। सूर्य का अस्त होजाने के कारण उसका लिफ़ाफ़ा हमने नहीं खोला। परन्तु योंही बैठे बैठे उसके ऊपर डाक बाने की मुहर देखने लगे। टिकट पर जो मुहर छपी थी उसमें और अक्षर तो थे ही परन्तु यह अक्षर (ALLAHABAI) बहुत स्पष्ट दिखाई पड़े। हमने समझ लिया कि यह इलाहाबाद का नाम है। परन्तु जिस इलाहाबाद के नाम को योंही फाड़कर फेंक दिया करते थे उसी ने उस समय हमारे चित्त पर नया असर पैदा किया। हमारे जी में एकदम से यह ध्यान आया कि यह शब्द तो उस अँगरेज़ी के विज्ञापन में भी आया है जिसको हम बीसियों बार ध्यानपूर्वक पढ़ चुके हैं। फिर क्या था! झट लम्प जला विज्ञापन निकालकर अक्षर मिलाने लगे। ज्ञात हुआ कि विज्ञापन में लिखा हुआ शब्द 'इलाहाबाद' ही है। बस सरस्वती को तो अलग रखा और विज्ञापन की दोनों भाषाओं को मिलाकर देखने लगे। वेबर शब्द स्मरण करने से हमें यह दृढ़ निश्चय हो गया कि दोनों भाषाओं में नाम एक ही रीति से लिखे होंगे। पहले हमने ऐसे शब्द ढूँढ़े जो दोनों लेखों में एक ही रूप से लिखे हैं। वह शब्द यह हैं। ALLAHA'BA'D, INDIAN-PRESS, SARASWATI', A'GRA, OUDH, JUHI अस्तु! अब देखना चाहिए कि इनमें से पहला शब्द 'इलाहाबाद' तो अवश्य ही है। इससे मालूम हुआ कि A=इ अथवा अ, L=ल, A'=आ, B=ब और D=द होगा। इस हिसाब से दाहिनी तरफ़ के लेख का ५४वाँ शब्द 'आला' हुआ। फिर ALLAHA'BA'D और INDIAN-PRESS का प्रयोग दो जगह हुआ है और दोनों स्थानों पर यह दोनों शब्द पास पास आये हैं। इससे निश्चय हुआ कि इन दोनों नामों का कुछ दृढ़ सम्बन्ध है। यह तो आप लोगों ने हमसे कह ही दिया था कि यह किसी छापेखाने का विज्ञापन है, हमने सोचा, हो न हो यह दूसरा नाम छापेखाने का होगा। सरस्वती पर हम सर्वदा लिखा देखते थे 'इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छपकर प्रकाशित,' हमने कहा लाओ इसी नाम को मिलाएँ। अक्षर मिलाने से ज्ञात हुआ कि हमारा अनुमान प्रायः ठीक निकला, और I=इ, N=न, DI=डि, A=य, P=प, R=र, E=ए, S=स। अब यह शङ्का हुई कि D=द या ड? और A इ वा अ वा य? बस इन्हीं बातों में चक्कर खाते रहे, कई दिन पीछे निश्चय हुआ कि दाहिने हाथ का ६२वाँ शब्द 'आगरा' है, जिसमें G=ग मिला, और १४वाँ शब्द 'गैर' सिद्ध हुआ। इसी तरह २२वाँ शब्द 'बराबर' होना चाहिए, और २५वाँ 'सहोह्'—अरे! यह तो उर्दू भाषा निकल पड़ी! अच्छा! A=अ, I=इ, E=ए, G=ग, D=ड अथवा द, N=न, P=प, B=ब, A=य(?), R=र, L=ल, S=स, H=ह। बस इतनी वर्णमाला को पहचान कर और यह जानकर कि यह लेख उर्दू भाषा का अँगरेज़ी अक्षरों में है, हम उस लेख के पीछे पड़ गये, और कई दिन परिश्रम, सोच और अनुमान करके इस कार्य में सफल हुए। लीजिए लेख यह है, "अल्लहाबाद का इंडियन-प्रेस हिन्दुस्तान के नामी छापाखानों में से एक है, उस में और मुल्कों के उमदा से उमदा काम की बराबर साफ़ और सहोह् काम होता है' इत्यादि। और दूसरा लेख इस तरह पर है, पर इसका अर्थ हम नहीं जानते, "थे इंडियन प्रेस ओफ अल्लहाबाद इस ओ ओफ थे फोरेमोस्त—"

शास्त्रीजी के मुख से अँगरेज़ी शब्दों का उच्चारण सुनकर हँसी के मारे आग़ाजी और सय्यद साहिब के पेट में बल पड़ गये। शास्त्रीजी खिसियाकर बुरा सा मुँह बनाने लगे। इस पर सय्यद साहिब ने अपनी हँसी को रोककर और आग़ाजी को इशारे से मना करके कहा—

"शास्त्रीजी नाराज़ न हूजिए। हम आप पर नहीं हँस रहे हैं, बल्कि अँगरेज़ी भाषा के टेढ़े वर्णोच्चारण पर! इस वर्णमाला के जानने में जो काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर्बरदेश की कीलाक्षर वर्णमाला

देवनागरी	कीलाक्षर	देवनागरी	कीलाक्षर	देवनागरी	कीलाक्षर	देवनागरी	कीलाक्षर	देवनागरी	कीलाक्षर	देवनागरी	कीलाक्षर
अ		इक्		ज़		बि		नु		बु	
इ		उक्		ज़ि		बु		नँ		बँ	
उ		ख़		ज़ु		लँ		अन्		अब्	
ऍ		ख़ि		अज़्		अल्		इन्		इब्	
क		ख़ु		इज़्		इल्		उन्		उब्	
कि		अख़्		उज़्		उल्		ऍन्		म	
कु		इख़्		त		द		फ़		मि	
अक्		उख़्		ति		दि		फ़ि		मु	
इक्		ज		तु		दु		फ़ु		में	
उक्		जि		तँ		अद्		अफ़्		अम्	
क़		जु		अत्		इद्		इफ़्		इम्	
क़ि		अज़्		इत्		उद्		उफ़्		उम्	
क़ु		इज़्		उत्		न		ब		र	
अक़्		उज़्		त्व		नि		बि		रि	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर्बरदेश की कीलाक्षर वर्णमाला

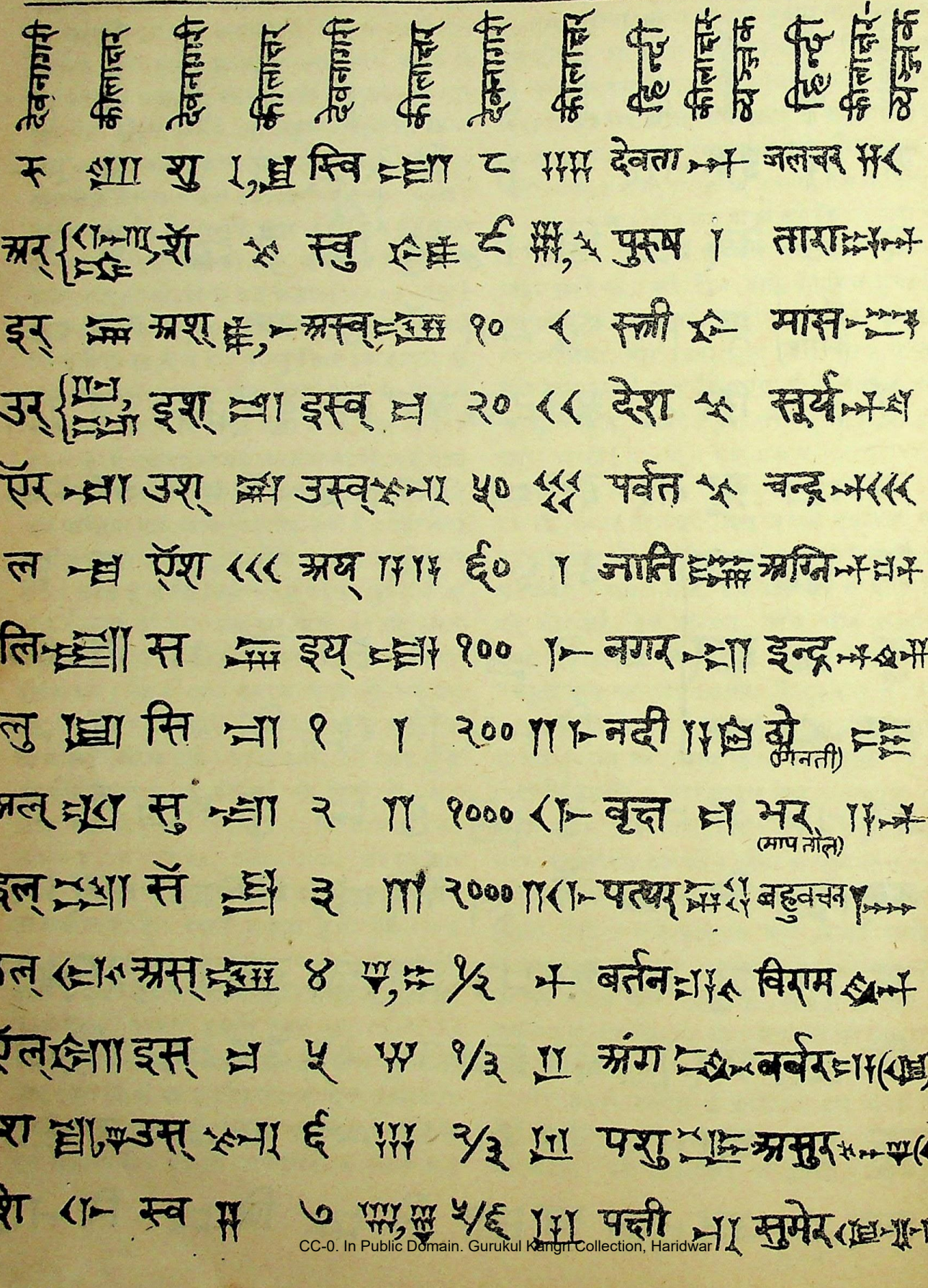

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने किया है वह बहुत ही प्रशंसनीय है। हमें बिलकुल उम्मेद नहीं थी कि आप इस वर्णमाला को समझ जावेंगे।"

आग़ाजी—"शाबाश! ईं कार अज़ तो आयद—"

शास्त्रीजी—"अजी साहब आप तो हमें लजाते हैं। भला हमारी बराबर कौन मूर्ख होगा कि पन्द्रह दिन तक इस वर्णमाला में झूलते रहे, और केवल आकस्मिक घटनाओं के कारण इसको समझ पाये। न हमारा पड़ोसी 'वेबर' का अर्थ हम से पूछता, न हमें नामों के अक्षय होने का ध्यान आता। न सायंकाल को सरस्वती आती, न हम उसको देखकर अलहाबाद शब्द का निरीक्षण करते। बीस वर्ष से हम रेल में आते जाते हैं। परन्तु कभी ध्यानही नहीं आया कि स्टेशनों पर लगी हुई शिलाओं पर खुदे हुए अँगरेज़ी और हिन्दी नामों से भी अँगरेज़ी वर्णमाला का ज्ञान हो सकता है। अब घर से लखनऊ आते हुए इस बात का ध्यान आया। यह मूर्खता नहीं है तो क्या है?"

आग़ाजी—"जो आकस्मात् घटनायें आपको दरपेश आईं वह बड़े आदमियों ही को दरपेश आती हैं। इन्हीं इत्तिफ़ाक़ात की बदौलत दुनिया में बड़ी बड़ी ईजादें और इख़्तराआत हुई हैं। अगर रालिन्सन फ़ारसी न जानता होता और उसको ईरान के शाहान सलफ़ के नाम और शहरों के नाम न मालूम होते तो वह भी हरगिज़ मिस्मारी रस्मुल्ख़त का हाल दर्यफ़्त करने में कामयाब न होता।"

सय्यद साहिब—"अलबत्ता रालिन्सन वग़ैरा को आप पर इस क़दर फ़ौक़ियत हासिल है कि जो बातें आपको—इत्तिफ़ाक़ से ही सही—दूसरों की बदौलत मालूम हुईं वह उन्होंने अपनी आला दरजे की लियाक़त की वजह से अपने दिमाग़ से ही उतारीं। उसको कोई यह बताने नहीं आया कि उसको पढ़ने के वास्ते छापेख़ाने का इश्तिहार दिया गया है, या हर एक भाषा में नामों की एकही शकल रहती है, या 'सरस्वती' इलाहाबाद से निकलती है। वग़ैरा वग़ैरा।"

आग़ाजी—"ख़ैर यह तो सब कुछ हुआ, अब आप उन हुरूफ़ तहज्जी को शकलें और नाम तो बतलाइए। मैं ख़याल करता हूँ कि हर एक मुल्क के क़दीम हुरूफ़ तहज्जी इसी तरह मालूम हुए होंगे।"

सय्यद साहिब—"लीजिए, इस काग़ज़ पर मिस्मारी हुरूफ़ तहज्जी लिखे हैं। यह ख़याल आपका दुरुस्त है कि हर मुल्क में तक़रीबन इसी तरह हुरूफ़ तहज्जी दर्यफ़्त हुए हैं। और यही वजह है कि मैंने इस मज़मून पर इस क़दर तशरीह के साथ बहस की। इन्हीं बातों से नाक़िफ़ होने की वजह से अक्सर जुहला और बाज़ आलिम इस मज़ामीन के बड़े बड़े मुहक़्क़िक़ीन का एतबार न करके उनका तमस्ख़ुर किया करते हैं।"

शास्त्रीजी—"सत्य है, एक समय लखनऊ में आर्यसमाज के एक स्वामी इसी तरह का उपहास कर रहे थे। हमें सुनकर बहुत बुरा मालूम हुआ।"

आग़ाजी—"आर्यसमाज ही पर क्या मौक़ूफ़ है, काशी के पण्डित और मकतबों के मौलवी भी तो ऐसी ही बातें करते हैं।"

कीलाक्षरलिपि की वर्णमाला को देखकर और समझ कर शास्त्रीजी कहने लगे,

"यह वर्णमाला तो बड़ी विलक्षण है। क्या देवनागरी की तरह यह भी लिखी पढ़ी जाती है या कुछ अन्तर है?"

सय्यद साहिब—"शास्त्रीजी, आपके इस प्रश्न का सम्पूर्ण उत्तर देना कठिन है। देखिए मैं कुछ संक्षेप के साथ वर्णन करता हूँ। वहाँ की भाषा और व्याकरण संस्कृत से बिलकुल अलग है। इसलिए आपको जगह जगह अनुमान से काम लेना होगा।"

शास्त्रीजी—"बहुत अच्छा! परन्तु जब आप उस देश के अक्षरों के नाम लें तो 'शीन' 'क़ाफ़' न कहिएगा बल्कि 'श' और 'क़' कहना होगा क्योंकि हमें तो उन अक्षरों के उच्चारण से काम है नाम से क्या प्रयोजन।"

सय्यद साहिब—"बहुत ख़ूब! लेकिन ऐसा करने में भी एक दिक़्क़त पेश आवेगी जैसा कि मैं आगे बयान करूँगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आग़ाजी—"हाँ बस इसी तरह बोलिए। पिर्यो-जन विर्योजन मेरी समझ में नहीं आता।"

सय्यद साहिब—"यह तो आपने देख ही लिया कि कीलाक्षर वर्णमाला में कोई अक्षर बिला एराब नहीं है—"

शास्त्रीजी—"एराब क्या?"

सय्यद साहिब—"एराब अण् को कहते हैं।"

शास्त्रीजी—"संस्कृत में तो यह कायदा है कि बिना एक अच् के शब्द का उच्चारण नहीं हो सकता और कौमुदी में लिखा है कि व्यञ्जनों के उच्चारणार्थ उनमें अ लगा देते हैं। फिर आप एराब को अण् संज्ञा क्यों करते हैं अच् क्यों नहीं करते?"

सय्यद साहिब—"शास्त्रीजी! कीलाक्षरलिपि में दीर्घ, गुण और वृद्धि का अभाव है। वहाँ 'ई' की जगह 'इइ' लिखा जाता है और 'ऊ' की जगह 'उउ', मगर उच्चारण 'ई' और 'ऊ' ही होता है।"

शास्त्रीजी—"क्यों साहिब वहाँ संयुक्त अक्षर होते हैं या नहीं और क्योंकर लिखे जाते हैं?"

सय्यद साहिब—"यह तो आप जानते ही हैं कि यदि किसी शब्द के अन्त में कई संयुक्त हल् हों तो एक को छोड़कर सब का लोप हो जाता है परन्तु यदि शब्द के बीच में ऐसा हो तो इस तरह लोप नहीं होता। बर्बर भाषा में एक यह विशेषता है कि उसमें कहीं दो हल् से ज़ियादा साथ नहीं आते। इससे सिद्ध हुआ कि जहाँ दो हल् साथ होंगे वहाँ आदि और अन्त में एक एक अण् ज़रूर होगा। तो इस हिसाब से उस लिपि में संयुक्त अक्षर का अभाव ही समझिए। लेकिन यह न समझना चाहिए कि उस लिपि में दो व्यञ्जनों का कोई अक्षर ही नहीं होता। क्योंकि ऐसे अक्षर, गुन्, बर्, सिल् इत्यादिक सैंकड़ों हैं, और सब के चिह्न भिन्न भिन्न हैं। स्थान का अभाव होने के कारण मैंने इस काग़ज़ पर नहीं लिखे।"

शास्त्रीजी—"बड़ा विलक्षण व्याकरण है!"

सय्यद साहिब—"अजी व्याकरण समझने को तो बरसों चाहिएँ। देखिए मैं आपको बहुत ही अद्भुत बात सुनाता हूँ! 'अचो रहाभ्यां द्वे' तो आपको मालूम ही है और इसके निषेध का भी एक आध सूत्र आपको याद होगा, लेकिन आपने यह कहीं नहीं सुना होगा कि 'दीर्घात् सर्वत्रैव'। यह कल्पित सूत्र कीलाक्षरलिपि में ही संघटित होता है। उदाहरण, 'मूसल्' = मु-उस्-सल्।"

आग़ाजी—"ख़ूब गुज़रेगी जो मिलबैठेंगे दीवाने दो! लो साहिबो, मैं तो जाता हूँ।"

सय्यद साहिब—"हज़रत, क़ुसूर मुआफ़! बस दो चार मिनिट की बात रह गई है।"

आग़ाजी—"भाई! मेरा सर दर्द करने लगा। तुम तो बातें करते हो और मेरे दिमाग़ में कीलें सी चुभती हैं। मैं ऐसी तहक़ीक़ात से बाज़ आया।"

शास्त्रीजी—"सरकार ज़रा और ठहर जाइए। मीर साहब की बदौलत हमें बहुत सी बातें मालूम हो गईं। यदि आप थोड़ी देर ठहरने का अनुग्रह करें तो हम दो चार बातों पर और विचार कर लें।"

आग़ाजी—"अच्छा आप बिचार कीजिए, मैं बैठा हूँ।"

सय्यद साहिब—"ख़ैर क़िस्सा कोतः, मैं दो चार बातें कहकर मज़मून ख़तम करता हूँ।—कीलाक्षर-लिपि में अच् सन्धि का हाल तो आप समझही गये, हल् सन्धि के लिए यह कहना काफ़ी होगा कि वह प्रायः ऐसी ही है जैसी संस्कृत में। यही कारण है कि इस काग़ज़ पर लिखी हुई वर्णमाला में कई जगह दो दो अक्षर एक ही रूप के पाए जाते हैं। बस अब एक बात महत्त्व की कहनी रह गई है जो सुनने के योग्य है। वह यह कि उस भाषा में एक नई तरह का एकाक्षरी कोश है।"

शास्त्रीजी—"हाँ! परन्तु उसमें विशेष बात क्या होगी, बस यही है न कि एक एक अक्षर के कई कई अर्थ हों, और शब्द के अन्दर यह देखना कठिन हो जाय कि कौन सा अक्षर उस शब्द के अन्तर्गत है और कौन स्वयं ही पद है?"

सय्यद साहिब—"सुनिए शास्त्रीजी! यह मज़मून बहुत बड़ा और मुश्किल है, इसलिए मैं इसका पूरा हाल इस समय नहीं बता सकता। इतना मैं कहूँगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि मेरे अनुमान से यह एकाक्षरकोश बर्बर या असुर भाषा का नहीं है बल्कि उस भाषा का है जिसके बोलनेवालों ने कीलाक्षरलिपि बनाई। इसके उदाहरण देता हूँ। प्राचीन भाषा में एकाक्षर शब्द था 'क', जिसके अर्थ 'मुख', 'दन्त', 'शब्द', 'आज्ञा' होंगे। बर्बर देशवालों ने 'क' को ग्रहण करते समय उस अक्षर को उसके प्राचीन अर्थों का चिह्न भी मान लिया। जैसे संस्कृत में 'प', 'हवा' और 'पत्ते' और 'अंडे' को कहते हैं, अब यदि कोई हिन्दीवाला लिखे तो 'प' और उसे पढ़े 'हवा' तो हम कहेंगे कि वह बर्बर देश के ढंग से पढ़ता है। इसी कारण से बर्बर देश की भाषा का पढ़ना और समझना कठिन है। क्योंकि यदि किसी जगह 'क' का चिह्न बना है तो यह नहीं कह सकते कि उस शब्द को ककार उच्चारण करना चाहिए अथवा 'मुख', 'दन्त', 'शब्द', 'आज्ञा' में से कोई शब्द। याद रखिए कि जब उन लोगों को 'दन्त' लिखना होता था तो वह 'क' लिख देते थे परन्तु उसको 'क' नहीं पढ़ते थे बल्कि 'दन्त'!"

शास्त्रीजी—"बड़ी विचित्र बात है! मीर साहब इस तरह तो उन लोगों के लिखने पढ़ने में बड़ी गड़बड़ पड़ती होगी?"

सय्यद साहिब—"ज़रूर पड़ती थी और इसी वजह से उन लोगों ने इस दिक़्त को दूर करने के लिए एक अजीब तजवीज़ निकाली थी। फ़र्ज़ कीजिए उनको 'शब्द' लिखना था, तो वह 'क' लिखकर संदेह दूर करने के लिए उसके आगे 'शब्द' का अन्तिम अक्षर 'द' लिख देते थे—'कद'। इसी तरह 'मुख' को 'कख' और 'दन्त' को 'कत' लिखते थे।"

शास्त्रीजी—"वाह! बड़े ही मूर्ख थे!"

सय्यद साहिब—"और सुनिए! यह एकाक्षरी शब्द एक और काम में भी आते थे। फ़र्ज़ कीजिए उनको किसी नगर का नाम लिखना हो तो वह उस नाम से पहले 'एर्' का चिह्न लिखेंगे, यदि किसी वृक्ष का नाम लिखना हो तो उसके पहले 'उ' लिख देंगे। ऐसा करने से यह निश्चय हो जाता है कि नाम नगर का है या आदमी का या नदी का या किसी और चीज़ का। अलावा इन बातों के और भी कई तरह से एकाक्षरी शब्दों का प्रयोग होता था। कहाँ तक कहें।"

आग़ाजी—"क्यों साहब, इन अलफ़ाज़ का कोई इस्तिलाही नाम भी है?"

सय्यद साहिब—"यूरोपियन लोग इस क़िस्म के लफ़्ज़ों को Ideograms कहते हैं, जिसको हिन्दी में 'व्यञ्जकाक्षर' कह सकते हैं।"

शास्त्रीजी—"मीर साहब, हम आपको धन्यवाद देते हैं कि आपने इतना परिश्रम करके स्वयं इस विषय का अध्ययन किया और आज हम लोगों को उसका सारांश समझाया। परन्तु यदि आप बुरा न मानें तो हम एक बात कहें? आज की बातों से यह सिद्ध होता है कि बर्बर देश के लोगों ने कीलाक्षरलिपि सुमेरुपर्वत वालों से सीखी, और यह लोग हों न हों वैदिक ऋषि ही होंगे। इससे सिद्ध हुआ कि आपकी अरबी, तुर्की भाषाएँ सब संस्कृत से निकली हैं और कीलाक्षरलिपि वास्तव में संस्कृत की लिपि है।"

सय्यद साहिब—"वाह पण्डितजी ख़ूब नतीजा निकाला! यह तो मैं भी मानता हूँ कि संस्कृत की वर्णमाला अरबी की वर्णमाला से बड़ी है और सौमेर भाषा के बहुत नाम और शब्द ऐसे हैं कि जिनका उच्चारण ठीक तरह से नहीं बनपड़ता, जिससे अनुमान होता है कि सौमेर भाषा की वर्णमाला आसुर और बर्बर भाषा की वर्णमाला से बड़ी होगी, जिस कारण बर्बर लोग प्राचीन सौमेर शब्दों को ठीक ठीक नहीं लिख सके।—दूर क्यों जाओ, हिन्दी के लफ़्ज़ 'झगड़ा' को अरबवाले अदा नहीं कर सकते, जब लिखें या बोलेंगे तो 'जकरा'। मगर यह कहना कि अरबी और तुर्की भाषा संस्कृत से निकली है या यह कि बर्बरवालों ने हिन्दुओं से कीलाक्षरलिपि सीखी है, बिलकुल छछोरेपन की बात है।"

शास्त्रीजी—"मीर साहब, आप तो ख़फ़ा होते हैं। भला देखिए, एक दिन कलकूर साहब हमसे कहते थे कि यवन-भाषा का संस्कृत से घनिष्ठसम्बन्ध है। दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाओं में बहुत से शब्दों के रूप मिलते हैं। अब आपही बताइए कि यदि यह बात ठीक है तो यवन-भाषा में 'ज', 'त', 'द', इत्यादि अक्षर क्यों नहीं हैं। कारण यही है कि देश बदलने के कारण किसी किसी अक्षर के उच्चारण का अभ्यास छूट गया और वह अक्षर वर्णमाला से निकल गया। इसी तरह बर्बर भाषा का भी अनुमान कर लीजिए। जिस भाषा में अक्षर ज़ियादा वही पुरानी। पक्षपात की बात हो और है।"

आग़ाजो—"अरे बाबा, यह भी कुछ उर्दू हिन्दी का क़ज़िया है जो तुम लड़ने लगे! इसमें बहस में 'छछोरेपन' और 'पक्षपात' का क्या ज़िक्र? मुत्ताज़ी माफ़, असल में लिंग्विस्ट (Linguist) लोग मक्खी को मल मल कर भसा करना ख़ूब जानते हैं! आप अपने Ideograms को लिए फिरते हैं, अपनी ज़बान के क़ायदे भूल गये। भला बताइए तो, यह जो लिफ़ाफ़ों पर हिन्दी लिखने वाले c/o लिखते हैं और 'मारफ़त' पढ़ते हैं, और यह जो पैग़म्बरों के नाम के ऊपर 'ऐन' ؑ और महम्मद साहब के नाम के ऊपर 'साद' ؐ लिखा जाता है इसको आपको इस्तलाह में क्या कहते हैं? मज़मून के शुरू में ७८६ और आख़ीर में १२, मुर्दों के नाम के ऊपर 'रह' ؒ कौन से क़ायदे के बमूजिब लिखे जाते हैं? ग़रज़ यह कि जितनी—लो वह मुवज़्ज़िन बोला। बन्दा अब जाता है। ख़ुदा हाफ़िज़! ज़िन्दगी है तो फिर मिलेंगे॥"

"बार्हस्पत्यः"

कोकिल।

प्रातःकाल हुआ मनमोहक शोभा सुखद दिखाती है
मन्द सुगन्ध पवन चलती है मनकी कली खिलाती है।
फूले सुमन-समूह घनेरे शुचि सुवास फैलाते हैं
कानों में कलरव चिड़ियों के अमृत-बूँद बरसाते हैं १

हे कलकंठ कंठरव सुन तव जो जो भाव हृदय आते
किस प्रकार उल्लेख करूं क्यों हाय नहीं तुम बतलाते।
बीते कितने वर्ष बोलते तुम्हें इसी सुर में प्यारे
क्या गाते हो कहो पक्षिवर आमों पर बैठे न्यारे २

राघवेन्द्र तेरी बोली सुन पंचवटी में रोते थे
सीता-विरह-व्यथा से व्याकुल मुँह आसूँ से धोते थे।
लंका-गढ़ में जनक-नन्दनी जब विषाद से रोती थी
तेरा वचन शूल सा लगता चिन्ता सौ गुन होती थी ३

कालिन्दी के तट पर जब शरदिन्दु-ज्योत्स्ना छाई थी
वृन्दा-वन की सुन्दर शोभा तब अतिही अधिकाई थी।
श्याम सलोने ने कुंजों में वंशी मधुर बजाई थी
तेरे सुर में सुर भर भर कर गोपी-व्यथा बढ़ाई थी ४

अर्जुन लिये सुभद्रा को जब अपने घर को जाते थे
देख प्रेयसी का मुख-मण्डल मनहीं मन सुख पाते थे।
तेरा सरस मधुर रव सुनकर रह रह हृदय उछलता था
प्रीति-प्रेरणा से रथ उनका अधिक वेग से चलता था ५

जब शकुंतला कुञ्ज-भवन में प्रेम-पत्रिका लिखती थी
अपने प्यारे के वियोग में काम-ताप से तपती थी।
तेरी कूक अलौकिक सुनकर वह अतिशय अकुलाई थी
उफ़ "जले पर नमक छोटना" उसे याद हो आई थी ६

कलशी लिये रोहिणी रमणी पुष्करणी जब जाती थी
दुःसह-विरह-जलधि में व्याकुल सौ सौ गोते खाती थी।
उसी समय में कूक सुनाकर तूने उसे अधीर किया
नारि धर्म से विचलित करके, सब सुख उसका छीन लिया ७

गई पुरानी बातें सारी नये समय अब आये हैं
भाषा, भेष, भाव, भोजन, इन सबने पलटे खाये हैं।
नहीं ठाठ तेरे में अबतक उलट फेर कुछ भी आया
भाषा वही, भाव वैसे ही, भोजन वही, वही काया ८

नहीं राम कृष्णार्जुन अब हैं शकुन्तला भी चली गई
कायर, क्रूर, कुटिल बाक़ी हैं सकल सम्पदा क्षीण हुई।
तोभी कूक मधुर भरते हो ज़रा न चिन्ता करते हो
जन्म-भूमि-विपदा के डर से ज़रा नहीं तुम डरते हो ९

प्रबल-वेग से पावस आकर अपना अमल जमावेगा
घन-मण्डल अतिघोर रोर कर वज्र प्रताप दिखावेगा।
होंगे भय से भीत सभी, पर तुम न ज़रा डर पावोगे
अति रसाल जम्बू फल खाकर मधुमय कूक सुनावोगे १०

ब्रजनन्दन सहाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परागमिश्रण।

कृषि पर ही हमारे अधिकांश देशवासियों का गुज़ारा है। इसलिए कृषि-सम्बन्धी नई नई खोज और आज़माइशों के परिणाम यदि बताये जाँय तो किसान तथा ज़मींदार अपनी पुरानी परिपाटी में समयानुसार कुछ परिवर्तन करें। इस से सब को लाभ हो सकता है और किसानों की दरिद्रता कम हो सकती है। यही सोच कर गुजरात के एक अत्युपयोगी, 'खेडुत' नाम के, पत्र के एक लेख का मतलब मैं यहाँ पर लिखता हूँ।

अमेरिका और योरप-निवासी कृषी-विद्या के विद्वानों ने, एक उत्तम जाति से आम का पैवन्द दूसरी जाति के आम पर लगा कर, एक नई जाति का, दोनों से अच्छा, फल उत्पन्न कर दिया है। इसी प्रकार अमेरिका और योरप के बुद्धिमानों ने कपास और गेहूं पर पैवंद चढ़ाकर नई जाति की कपास और गेहूं उत्पन्न किया है, जो अपनी पूर्व जाति से कहीं बढ़कर है। इस नई रीति का संक्षिप्त हाल सुनिए—

फूलनेवाले हर एक जाति के वृक्ष के फूलों में दो तरह का पराग होता है—एक पुंकेसर दूसरा स्त्रीकेसर। पुंकेसर का पराग हलदी की तरह पीले रँग का दानेदार होता है और स्त्रीकेसर-पराग उसके नीचे रहता है। वृक्षों का मिश्रण उत्पन्न करने में इन्हीं दो प्रकार के केसरों का मेल करना पड़ता है। जिस वृक्ष में हमको मिश्र-जाति उत्पन्न करनी है उसके [illegible] ये देखना

[illegible]स प्रस बाँकीपुर से प्राप्य। इसका विषय च—"धर्म्मविषयणी उपेक्षा अथच आवश्यकता की ओर सनातनधर्म्मावलम्बियों का दृष्टि-आकर्षण"। यह निबन्ध प्रयाग की सनातनधर्म्म-सभा में पढ़ने

* यह पर्वत उत्तराखंड में हिमालय पहाड़ पर बदरीनाथ से क़रीब सात आठ कोस है। यहां महाकाल का एक मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर में एक मूर्ति है, जिसे हलुआ भोग लगता है। इसी पर्वत पर अर्जुन ने महाकाल से वरदान में धनुष पाकर जयद्रथ को मारा था।

को बड़ी होशियारी से निकाल ले। पराग निकालते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि पुंकेसर-पराग का एक भी दाना फूल में न रहने पावे, और न उसमें भूल से गिरने पावे। केवल स्त्रीकेसर का पराग उसमें रह जाय। जिस अन्य वृक्ष से संयोग करना है उसके पुंकेसर के पराग को भी पूर्वरीति से निकाल ले। फिर पहिले वृक्ष के फूल में, जिसका पुंकेसरपराग प्रथम निकाला था, उसको स्त्रीकेसर पर, इस दूसरे वृक्ष के पुंकेसर-पराग को बड़ी सावधानी से छिड़के। इसके बाद, उस संयोग किये हुए फूल के चारों ओर कपड़े की एक कोथली चार पाँच दिन तक बँधी रक्खे। इस प्रकार एक जाति के कपास या गेहूं का दूसरी जाति के कपास या गेहूं से संयोग करके, दोग़ली, पर अच्छी जाति, उत्पन्न करते हैं। यह संयोग-क्रिया करने के पहले यह ज़रूर देखना चाहिए कि जिस फूल में संयोग करना है उसका स्त्रीकेसर ख़ूब चिकना है और उसमें पुंकेसर भी तैयार हो गया है। अन्यथा संयोग नहीं हो सकता। यदि स्त्रीकेसर तैयार नहीं है, पर पुंकेसर संयोगोपयोगी हो गया है, तो पुंकेसरवाले फूलों को तोड़ कर काच के एक जलपूर्ण पात्र में तैरता हुआ रखते हैं, और ऊपर से काच का ग्लास या ढक्कन ढक देते हैं। जब स्त्रीकेसर तैयार हो जाता है तब पात्र के फूलों को निकाल कर उनके पुंकेसर को ब्रुश से धीरे धीरे उठाकर स्त्रीकेसर पर लगा देते हैं। इस प्रकार संयोग से जो फल, फूल, बीज उत्पन्न होंगे वे असल वृक्षों से जुदीही जाति के होंगे। पुंकेसर हमेशा अच्छे वृक्ष के फूलों से लेना चाहिए। इस संयोग-क्रिया की परीक्षायें कई जगह हुई हैं और उनका परिणाम भी अच्छा हुआ है। गुजरात में भरूँच की रुई प्रसिद्ध है; परन्तु उसकी फ़सल देर में तैयार होती है। बराड़ो कपास हलकी तो होती है; परन्तु उसकी फ़सल बहुत शीघ्र तैयार हो जाती है। इन दोनों प्रकार की कपास के संयोग से एक जुदीही जाति की कपास उत्पन्न हुई है जिसमें भरूँची रुई के सब गुणों के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ उसकी फ़सल के शीघ्र होने का गुण भी उत्पन्न हो गया है। जिस प्रकार कपास के मेल से जुदी जुदी जातियाँ उत्पन्न हुई हैं उसी प्रकार गेहूँ भी अनेक प्रकार के उत्पन्न करने में आये हैं।

मेरी इच्छा है कि यदि अवकाश मिले तो मैं इस तरह के लेख कभी कभी सरस्वती में दिया करूँ।

गंगाशंकर पंचौली।

वर्षा-ऋतु।

१—कृषकों के मन मोद बढ़ाने;
विरही जन के हृदय दुखाने।
देखो वर्षा ऋतु आई है;
काली घटा साथ लाई है।

२—गर्मी बड़ी कड़ी पड़ती थी;
सब जग को व्याकुल करती थी।
इसने उसको तुरत हटाया;
अपना पूरा दख़ल जमाया।

३—जब बादल के दल घिर आते;
रह रह बार बार घहराते।
तब अति-अन्धकार छा जाता;
सूर-दरस दुर्लभ हो जाता।

४—ज्यों कुसंग के हो जाने से;
दुर्व्यसनों के लग जाने से।
वर-विवेक विस्मृत हो जाता;
पंथ नहीं अब त्यों दिखलाता।

५—दिनकर-कर से बन कर भाप;
बरस मिटाता जग-सन्ताप।
नदियों में फिर वही समाता;
लौट जलधि में ही जल जाता।

६—यही हाल जीवों का प्यारे;
नभचर, जलचर, थलचर सारे।
खेलें, कूदें, मौज उड़ावें;
लौटें वहीं जहाँ से आवें।

७—जलद-वृन्द नभ-नाद सुनाते;
मोर शोर करते सुख पाते।
बिजली चमक चमक छिप जाती;
जग की अनित्यता दिखलाती।

८—इंद्र-धनुष की छटा निराली;
काली पीली नीली लाली।
सुन्दर तरु कदम्ब के फूले;
कुल-कामिनी झूलतीं झूले।

९—भू-देवी की शोभा न्यारी;
पहने हरे रंग की सारी।
जिसपर बीर बहूटी प्यारी;
मनहुँ रक्तमणि की जरतारी।

१०—पक्की सड़कें बनी हुई हैं;
कीचड़ से सब सनी हुई हैं।
बाबू दफ़्तर से जब आते;
कपड़े साफ़, छीट बन जाते।

११—जलसे सर, सरिता भर आये;
नव जल पाय मीन अकुलाये।
यद्यपि ये जल से ही जीते;
"समय पाय रिपु होहिँ पिरीते।"

१२—निशि में जहाँ उजेला पाते;
दौड़ पतंग वहीं सब आते।
आकर फटक फटक मर जाते;
"सब दिन नहीं बराबर जाते"

श्यामलाल—सारंगगढ़।

[illegible] कूक मधुर भरते हो ज़रा न चिन्ता
जन्म-भूमि-विपदा के डर से ज़रा नहीं तुम डरते हो
प्रबल-वेग से पावस आकर अपना अमल जमावेगा
घन-मण्डल अतिघोर रोर कर वज्र प्रताप दिखावेगा।
होंगे भय से भीत सभी, पर तुम न ज़रा डर पावोगे
अति रसाल जम्बू फल खाकर मधुमय कूक सुनावोगे १०

व्रजनन्दन सहाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर दया, शरणागतों की रक्षा, और कुटिलों से शठता इनका मूल-मन्त्र था। यदि इनका वैरी मुग़ल बादशाह डाल डाल चलता तो यह पात पात चलते। यहाँ तक कि इन्होंने बादशाह औरंगज़ेब को वह नाकों चने चबवाया कि उसे विवश होकर इनकी ओर से हाथ खींच कर चुप चाप बैठे रहना पड़ा। उस समय के सिक्ख लोग बड़े भोले थे और दैवी बातों पर उनका बहुत जल्दी विश्वास हो जाता था। इस लिए हमारे चरितनायक ने उन्हें इच्छानुसार वीरता के सांचे में ढालने और अपने पर दृढ़ विश्वास जमाने के लिए "विचित्रनाटक" नाम की एक पुस्तक लिखी और उसमें अपने पूर्व जन्म का हाल यों लिखा कि—"पहिले जन्म में मैं दुष्टदमन नाम का राजा था और धर्म्मपूर्वक राज्य करता था। जब मैं बूढ़ा हो गया तब मंडन ऋषि के उपदेश से अपने पुत्र विजयराय को गद्दी दे हेमकूट* नामक पर्वत पर, जहाँ अर्जुन ने तपस्या की थी, पद्मासन बैठ महाकाल के ध्यान में समाधिमग्न हो गया। उस समय महाकाल ने दर्शन दे मुझे अपने ख़ास पुत्र की पदवी दी और कहा कि मेरे अन्य अवतार सब ख़ुद ईश्वर कहलाये हैं, पर तुम अपने को ईश्वर का दास प्रसिद्ध करना। इसके बाद गुरु तेग़बहादुर जी के यहाँ मेरा जन्म हुआ।" [असमाप्त]

वेणीप्रसाद।

पुस्तक-परीक्षा।

उद्बोधन। पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत। खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर से प्राप्य। इसका विषय है—"धर्म्मविषयणी उपेक्षा अथच आवश्यकता की ओर सनातनधर्म्मावलम्बियों का दृष्टि-आकर्षण"। यह निबन्ध प्रयाग की सनातनधर्म्म-सभा में पढ़ने के लिए लिखा गया था। पर किसी कारण से पण्डित अयोध्यासिंहजी सभा में नहीं जासके। इससे वहां नहीं पढ़ा गया। अब यह अलग पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ है। उत्तम है। लेखप्रणाली ख़ूब ओजस्विनी है। सनातनधर्म्म की अवनति का अच्छा वर्णन है। भाषा ज़रा क्लिष्ट है।

❋

अमरसिंह। बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त ने इस नाम का एक उपन्यास बँगला में लिखा है। उसीका यह हिन्दी-अनुवाद है। इसे पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा था। पर उस समय पूरा छप नहीं सका। अब बाबू रामरणविजयसिंह ने अपने खड्गविलास प्रेस में छाप कर प्रकाशित किया है। दाम आठ आने रक्खा है। यह १८५७ ईसवी के ग़दर की कुछ ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर लिखा गया है। जगदीशपुर (बिहार) के बाबू कुँवरसिंह और उनके भाई अमरसिंह की बग़ावत की सच्ची ऐतिहासिक बातें इसमें हैं। कथानायक अमरसिंह ही हैं। इस उपन्यास के पात्रों के चरित का चित्रण उपन्यासकार ने बड़ी योग्यता से किया है। विशुद्ध प्रेम, पातिव्रत धर्म्म, उदारभाव, बन्धुस्नेह के साथ साथ एक कृतघ्न की कृतघ्नता का भी अच्छा ख़ाका खींचा गया है। फूलशाह और बँसुलियाबाबा के चरित बड़ेही अद्भुत और अलौकिक हैं। पुस्तक मनोरञ्जक और सर्वजनपाठ्य है। उपन्यास होकर उपदेशपूर्ण है। उपन्यास हों तो ऐसे हों।

❋

हास्यरत्नाकर। पण्डित सूर्य्यनारायण शर्म्मा (सदर बाज़ार, जबलपुर) ढूँढ़ ढूँढ़ कर चुटकुले लिखने में बड़े प्रवीण हैं। हास्यमञ्जरी नाम की एक पुस्तक आपने चार भागों में लिखी है। उसे छपे बहुत दिन हुए। अब आपने हास्यरत्नाकर नाम की एक बड़ी पुस्तक लिखकर वेङ्कटेश्वर प्रेस से प्रकाशित की है। छोटे साँचे के कोई ४०० पृष्ठ इस पुस्तक में हैं। जिल्द बँधी हुई है। एक रुपये को मिलती है। हास्यमञ्जरी की तरह इसमें भी हँसी मज़ाक़ की बातें हैं। प्रायः सब लतीफ़ेही लतीफ़े हैं। कोई कोई लतीफ़े

---

* यह पर्वत उत्तराखंड में हिमालय पहाड़ पर बदरीनाथ से क़रीब सात आठ कोस है। यहां महाकाल का एक मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर में एक मूर्ति है, जिसे हलुआ भोग लगता है। इसी पर्वत पर अर्जुन ने महाकाल से वरदान में धनुष पाकर जयद्रथ को मारा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ेही हास्योत्पादक हैं। पर कोई कोई अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गये हैं।

❋

भारतविजय नाटक। कर्ता पण्डित जीवानन्द शर्म्मा काव्यतीर्थ, १५३ हैरिसन रोड, कलकत्ता। मूल्य ५ आने। पृष्ठ-संख्या ४८। छपाई, काग़ज़, टाइटिल पेज उत्तम। नाटक का कथानक समयानुकूल है। पात्र-कल्पना समुचित है। भारत की दशा का चित्र खींचकर अधर्म्म, अहङ्कार, दुराचार, लोभ, कपट आदि का पराजय ख़ूब वर्णन किया गया है।

❋

सुनारी। काशीनिवासी बाबू ठाकुरप्रसाद खत्री लिखित। मूल्य ४ आने। इस पुस्तक में सुनारी काम का थोड़े में बहुत अच्छा वर्णन है। इसमें सोने का धर्म्म, सोने का रंग, सोने को गलाना, सोने को रंगना, सोने पर जिलो देना, टाँका, नक्काशी, मीना, तारकशी, आदि का जो वर्णन है बहुत उपयोगी है। वह सुनारों के सिवा और लोगों के भी जानने लायक़ है।

❋

एक माह में शर्तिया हिन्दी। लेखक, मुन्शी मुख़्तार-सिंह, हेड मास्टर, डी० ए० वी० स्कूल, मेरठ। मूल्य १ रुपया। लीथो में छपी ८० पृष्ठ की किताब है। उर्दू जाननेवालों को हिन्दी सिखलाने के अभिप्राय से लिखी गई है। पढ़ने से लेखक का उद्देश्य बहुत कुछ सिद्ध हो सकता है। ❋

शाकटायन-व्याकरणम्। शाकटायन, पाणिनि से पुराने हैं। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में शाकटायन का मत उद्धृत किया है। शाकटायन का व्याकरण अब तक प्रायः अलभ्य नहीं तो दुष्प्राप्य ज़रूर था। उसे बंबई के श्रीयुक्त पन्नालाल जैन और पण्डित ज्येष्ठाराम मुकुन्दजी ने सुलभ कर दिया। इस व्याकरण पर अनेक टीका-टिप्पणियाँ हैं। उनमें से अभयचन्द्र-सूरि-कृत "प्रक्रिया" सहित यह व्याकरण बहुत अच्छे टाइप में प्रकाशित किया गया है। पुस्तक कोई ४०० पृष्ठ की है और उत्तम जिल्द बँधा हुई है। दाम सिर्फ़ सवा तीन रुपये हैं। कुछ दिनों से बाबू पन्नालाल, जैन-विद्वानों के बनाये हुए उत्तमोत्तम ग्रन्थ प्रकाशित करने पर उतारू हैं। यह बड़ी अच्छी बात है। जैनों में अनेक उद्भट विद्वान् हो गये हैं। उनके ग्रन्थों का प्रकाशित होना बहुत ज़रूरी है।

❋

मोक्षशास्त्र। यह भी श्रीयुक्त पन्नालालजी की कृपा का फल है। इसका विषय नाम ही से प्रकट है। पुस्तक में सब दस अध्याय हैं। ऊपर संस्कृत-सूत्र हैं, नीचे हिन्दी में उनका अर्थ। पुस्तक निर्णयसागर की छपी हुई है। जैनियों के लिए तो यह परमोपयोगी है हो, अन्य धर्म्मवाले भी इसे पढ़कर जैन लोगों के मोक्ष-निरूपण की बातें जान सकते हैं। मूल्य इसका १२ आने है। यह और शाकटायन-व्याकरण, दोनों, जैनग्रन्थरत्नाकर-कार्य्यालय, गिरगाँव, बंबई से मिल सकते हैं। ❋

श्रीकालीशतकम्। पिपरपाती (गया) निवासी पण्डित गङ्गाधर शर्म्मा काव्यतीर्थ कृत। मूल्य २ आने। ब्राह्मणों को मुफ़्त। काली का स्तवन है। संस्कृत में है। कविता मज़े की है। पर सावधानी से छापने का काम नहीं हुआ। ❋

हैरत की हैरानी। मुसलमानों के नये पैग़ंबर, मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद क़ादियानी के अनुयायी मुंशी अब्दुल अज़ीज़ ने इसे उर्दू में लिखा है। देहली के मिर्ज़ा हैरत ने क़ादियानी के ख़िलाफ़ क़र्ज़नगज़ट में बहुत से मज़मून प्रकाशित किये थे। उन्हीं का जवाब मुंशीजी ने इसमें दिया है और क़ादियानी पर किये गये आक्षेपों का अनौचित्य सिद्ध करने की चेष्टा की है।

❋

लघुरामायणचरित्रम्। पण्डित वैजनाथ-कृत। कमांडर-इन-चीफ़, काश्मीर, के मुसाहब पण्डित विश्वनाथ उपाध्याय (जम्बू) इसे मुफ़्त बाँटते हैं। पुस्तक का विषय नाम सेही स्पष्ट है। सातों काण्ड रामायण की कथा थोड़े में कही गई है। ऊपर संस्कृत श्लोक हैं, नीचे हिन्दी-भावार्थ। श्लोकों में छन्दःशास्त्रीय दोष मालूम होते हैं। संस्कृत भी कहीं कहीं चिन्त्य है।

❋

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो मित्र । बालपुर, डाकघर चन्द्रपुर, ज़िला सम्बलपुर निवासी पाण्डेय लोचनप्रसाद ने इस उपन्यास की रचना की है। पुस्तक पाण्डेयजी की पहिली रचना होने पर भी शिक्षापूर्ण है। पाण्डेय जी हिन्दी से बड़ा अनुराग रखते हैं।

❋

आर्य्य-समाज की रिपोर्ट। यह गणेशगंज, लखनऊ के आर्य्य-समाज की २६वीं वार्षिक रिपोर्ट है। रिपोर्ट से मालूम होता है कि समाज अच्छी दशा में है और अपना काम अच्छी तरह करता है।

❋

भङ्गनिषेधः। रामगढ़निवासी पण्डित बालचन्द्र शास्त्री ने इसकी रचना की है। २१ श्लोकों में आपने भंग के दोष दिखाये हैं। श्लोकों का भावार्थ भी हिन्दी में लिख दिया है। श्लोक उत्तम हैं; सदुपदेशपूर्ण हैं।

❋

वृत्तालङ्कार। नेपाल-निवासी पण्डित छविलाल की यह रचना है। काशी की प्राभाकरी कम्पनी ने इसे अपने प्रेस में छापा है। छपाई और काग़ज़ उत्तम है। इसमें मुख्य मुख्य वृत्तों और अलङ्कारों के लक्षण और उदाहरण साथ ही दिये गये हैं। पुस्तक संस्कृत में है। व्याख्या भी है। इस ३१ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ८ आना अधिक जान पड़ता है।

❋

वाल्मीकीय रामायण का अनुवाद। मासिक पुस्तक के रूप में यह ग्रन्थ मकरसंक्रान्ति सं० १९६३ से निकलने लगा है। मुरादाबाद-निवासी पण्डित ज्वालादत्त शर्म्मा इसे निकालते हैं। वार्षिक मूल्य ३।) है। ऊपर मूल संस्कृत है, नीचे हिन्दी-अनुवाद। अनुवाद की भाषा सीधी सादी सबके समझने लायक़ है।

❋

सनातनधर्म्म-कल्पद्रुम। पण्डित शिवशङ्कर शर्म्मा (गाँव भिटहा, डाकघर कौड़ीराम, ज़िला गोरखपुर) कृत। इसमें मूर्ति-मण्डन का विषय है। पुस्तक ५८ पृष्ठ की है। विषय-विवेचन योग्यता से किया गया है।

❋

खुर्जा शास्त्रार्थ का पूर्वरंग। बाबू जयनारायण, उपमन्त्री, जैन-सभा, खुर्जा, ने इसे प्रकाशित किया है। खुर्जा में जैनियों और आर्य्य-समाज के अनुयायियों में शास्त्रार्थ हुआ था। उसी का यह "पूर्व-रङ्ग" है। इसमें जैनियों के पक्ष का समर्थन किया गया है। पुस्तक बिना मूल्य मिलती है।

❋

गृहिणी-दुर्गति। श्रीमती—पुष्पकुमारी-रचित। मूल्य २ आने। इसमें बाल-वृद्ध-विवाह की कुरीतियाँ, स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता, और अच्छी सन्तति की उत्पति के उपाय आदि विषयों का संक्षिप्त वर्णन है।

❋

स्त्री-शिक्षा। खँडवा-निवासी बाबू माणिक्यचन्द्र जैन, बी० ए० कृत। मूल्य २ आने। स्त्री-शिक्षा पर यह एक छोटा सा अच्छा निबन्ध है।

❋

अद्भुत-मित्र। मासिक पुस्तक है। वार्षिक मूल्य ११ आने। सम्पादक रामचन्द्र गणेश व्यास, कसराबाद। दूसरे वर्ष का पाँचवाँ अङ्क समालोचना के लिए आया है। लड़कों का खेल सा मालूम होताहै। ऐसी पुस्तकों के निकालने से न निकालनाही अच्छा।

❋

कवीन्द्र-चाटिका। कविता-सम्बन्धी मासिक पुस्तक। पण्डित विश्वेश्वर-शर्म्मा-सम्पादित। प्रयाग से प्रकाशित। मूल्य, वार्षिक, डेढ़ रुपया। विशेष करके इसमें समस्या-पूर्तियाँही रहती हैं। इसमें दिखाये गये औरों की कविता के दोष भी दो एक दफ़े हमने देखे हैं। सरस्वती में प्रकाशित कविता पर भी एक आध दफ़े कृपा हुई है। कभी कभी अच्छी अच्छी समस्यापूर्तियाँ इसमें निकल जाती हैं।

❋

सेमीरामिस। सद्धर्म्म-प्रचारक प्रेस, जालन्धर, से प्रकाशित। दाम ढाई आने। यह जालन्धर के कन्या-महाविद्यालय की पाठ्य पुस्तक है। सीरिया की प्रतापशालिनी रानी सेमीरामिस का संक्षिप्त जीवन-चरित इसमें है। लिखा है कि आज से ४ हज़ार वर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले इसी रानी ने पहले पहल हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की थी। उस समय पंजाब में सत्यव्रत नामक एक राजा था। उसने इसे बड़ी भारी शिकस्त दी। पुस्तक कन्याओं के लिए उपयोगी है। भाषा में कुछ क्लिष्टता है। कहीं कहीं अशुद्धता भी है।

❋

ऋग्वेद-संहिता। यह संहिता मासिक पुस्तक के रूप में कुछ दिन से लाहौर से निकलने लगी है। इसके सम्पादक पण्डित शिवनाथ जी हैं। इसमें पद, पाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और हिन्दी-अनुवाद, टिप्पणी और मंत्रों के आशय की व्याख्या—इतनी बातें रहती हैं। वार्षिक-मूल्य २॥) है। हर अँक में ४० पृष्ठ रहते हैं। मंत्रों का मतलब अच्छी तरह इसमें समझाया जाता है।

❋

वासुदेव-नारायणी-पञ्चाङ्ग। यह १९६४ का पञ्चाङ्ग है। रामगढ़, पोस्ट बलुआ, ज़िला बनारस के रहने वाले पं० वासुदेव-नारायण शर्म्मा ने बनाया है। बनारस के चन्द्रप्रभा प्रेस में ख़ूब अच्छे टाइप में छपा है। टाइटिल पेज बेल-बूटेदार, बहुत ख़ूबसूरत है। पञ्चाङ्ग योग्यता से बनाया गया जान पड़ता है। कई विद्वानों ने इसके अच्छे होने के सरटिफ़िकेट दिये हैं। दाम ५ आने। पञ्चाङ्ग यदि अब छोटे आकार में किताब-नुमा बने तो लोग अधिक पसन्द करें।

❋

गोभिलगृह्यसूत्रम्। मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले में एक जगह मधुरापुर है। वहाँ के बाबू उदयनारायण वर्म्मा बड़े ही विद्याप्रेमी जान पड़ते हैं। आपने शास्त्र-प्रकाश नामक एक कार्य्यालय खोला है और संस्कृत के अच्छे अच्छे ग्रन्थ, हिन्दी-अनुवाद सहित, प्रकाशित करने का काम जारी किया है। कई ग्रन्थ आजतक छपकर प्रकाशित भी हो चुके हैं। यह गोभिलगृह्य-सूत्र सामवेद की कौथुमि शाखा का गृह्यसूत्र है। इसमें गोभिल मुनि ने गर्भाधान से मरण तक के संस्कारों का वैदिक विधान लिखा है। श्रीपण्डित सत्यव्रत सामश्रमी ने उसकी व्याख्या संस्कृत में की है और बाबू उदयनारायण ने उसी की हिन्दी। हिन्दी कुछ पुराने ढंग की है। पर अनुवाद ख़ासा है। भूमिका बहुत उत्तम है। दाम २॥ रुपये। ऐसे ऐसे ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवादित होना बहुत अच्छा है।

❋

न्यायदर्शनम्। यह पुस्तक भी बाबू उदयनारायण वर्म्मा जी की कृपा का फल है और उन्हीं से जिला मुज़फ़्फ़रपुर, डाकख़ाना बिट्पुर, गाँव मधुरापुर के पते से—३॥ रुपये में मिल सकती है। यह प्रसिद्ध गौतमीय न्यायदर्शन ग्रन्थ है। ऊपर सूत्र हैं, नीचे वात्स्यायन का संस्कृत भाष्य, उसके नीचे हिन्दी-व्याख्या। इस पुस्तक की भूमिका बड़ी योग्यता से लिखी गई है। वह बहुत काम की है। न्याय-सम्बन्धी कितनीहीं बातें उससे मालूम हो जाती हैं। जिनको अपने पुराने साहित्य और शास्त्रग्रन्थों से प्रेम है उन्हें ऐसी पुस्तकों का ज़रूर संग्रह करना चाहिए। बाबू उदयनारायण जी से हमारी प्रार्थना है कि इस तरह के गहन ग्रन्थों की टीका हिन्दी में करते में भाषा की सरलता का विशेष ख़याल रक्खें। जहाँ तक हो बहुत सीधी सादी भाषा लिखी जाय जिसमें मूल का मतलब सब की समझ में आजाय।

❋

बालाबोधनी। भाग १, २, ३—बाबू सन्नूलाल गुप्त (बुलन्दशहर) कृत। वैश्य-महासभा के प्रबन्ध से, पं० शङ्करदत्त शर्म्मा, वैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद द्वारा प्रकाशित। ये लड़कियों के पढ़ने की क्रमिक पुस्तकें हैं। अच्छे अच्छे पाठ रक्खे गये हैं। लड़कियों के लिए उपयोगी हैं। परन्तु भाषा में संशोधन दरकार है। दूसरी आवृत्ति में पुस्तकों के क्रम-काठिन्य का ख़याल रक्खा जाय और भाषा विशुद्ध बना दी जाय तो पुस्तकें और भी उपयोगी हो जायँ। "दो बिल्ली कई दिन की भूखी प्यासी थीं। अनाश्रित एक रोटी पर दोनों की दृष्टि एकही समय में पड़ी"। भाग २ पृष्ठ ६४। इस तरह की भाषा ठीक नहीं। बिल्ली की जगह "बिल्लियाँ" और "अनाश्रित" की जगह "अचानक" होना चाहिए। पुस्तक का नाम भी बालाबोधिनी होना चाहिए, बालाबोधनी नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों के संक्षिप्त वृत्तान्त। पुस्तक का पूरा नाम है, "भारत की प्रसिद्ध तथा विदुषी स्त्रियों के संक्षिप्त वृत्तान्त"। बाबू शिवबर्तलाल की एक उर्दू पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है। अनुवादकर्त्ता हैं पं० ज्वालादत्त शर्म्मा और प्रकाशकर्त्ता पं० शङ्करदत्त शर्म्मा, मुरादाबाद। पुस्तक चार भागों में समाप्त हुई है। अच्छा अच्छी स्त्रियों के चरित संग्रह किये गये हैं। लड़कियों और स्त्रियों के सिवा औरों के भी पढ़ने लायक़ हैं। इसके दो भाग उपन्यास के ढँग पर लिखे गये हैं।

❋

कबीर संगीत रत्नमाला। महन्त श्रीमल्लाल साहिब (कबीर पन्थी) सङ्कलित। हरिप्रसाद भगीरथ जी, मुम्बई, द्वारा प्रकाशित। इसमें कबीर जी के पदों आदि का संग्रह है। गुरु-महिमा भी है। पदों की भाषा कहीं कहीं पर कबीर जी के समय की नहीं मालूम होती। उसमें कुछ नवीनता की भी झलक देख पड़ती है। पुस्तक अच्छे कागज़ और टाइप में छपी है। जिसे कबीर जी के वचनामृत का स्वाद लेना हो महन्त शंभुदास कबीर पन्थी, मल्हारगंज, इन्दौर, से इसे मंगाले।

❋

प्रतापसिंह। खुलना (बंगाल) ज़िले में एक जगह दौलतपुर है। वहाँ "हिन्दू एकाडमी" नाम का एक विद्यालय है। बाबू सतोशचन्द्र मित्र, बी० ए०, उसमें एक अध्यापक हैं। आपने भारत के प्रसिद्ध पुरुषों के जीवन-चरित प्रकाशित करने का क्रम जारी किया है। इस चरितमाला का नाम है "भारत-प्रतिभा-ग्रन्थावली"। मेवाड़ के प्रतापी राना प्रतापसिंह का यह चरित इसी अवली का पहला पुष्प है। पुस्तक छोटी है पर अच्छी है। पुस्तक हिन्दी में है। यह इसके सम्बन्ध में सबसे बड़े महत्त्व की बात है। बंगाली सज्जनों के प्रयत्न से हिन्दी में पुस्तकें निकलने लगीं, यह सौभाग्य को बात है। दाम पुस्तक का छ आने है।

❋

धर्म्म-सोपान। यह "स्वामी आलाराम सागर सन्यासी का जीव रक्षा-विषयक व्याख्यान" है। पद्य में है। लाला गणेशप्रसाद, झूंसी, प्रयाग ने इसे प्रकाशित किया है और कटनी मुड़वारा के हेड मास्टर पं० शिवप्रसाद शर्म्मा ने संशोधित। दाम आध आना।

❋

सुरसुन्दरी। लेखक सोंधीटोला, लखनऊ, निवासी पं० मुरलीधर शर्म्मा। प्रकाशक प्रोप्राइटर, लहरी प्रेस, बनारस। पृष्ठ-संख्या २३०। मूल्य १ रुपया। बाबू ज्योतिरिन्द्रनाथ मजूमदार ने "सुन्दरी" नाम का एक उपन्यास बंगला में लिखा है। उसी का यह अनुवाद है उपन्यास की बातें मेवार के राना अमरसिंह के समय की हैं। कथा कुछ ऐतिहासिक है कुछ काल्पनिक। पुस्तक मनोरञ्जक और शिक्षाप्रदायक है। सब के पढ़ने लायक़ है। खेद है इसके अनुवादक, कुछ समय हुआ, परलोक-वासी हो गये। एक दिन शाम को कानपुर में ये हमसे मिलने आये। उसके तीन चार दिन बाद सुना उनका शरीरपात हो गया!

❋

प्रेमपीयूषधारा। श्रीकिशोरीलाल-गोस्वामी-प्रेषित, बाबू मोहिनीदास-प्रणीत। "दाम प्रेम"। बाबू गदाधरदास की कोठी, कचौरी गली, बनारस से प्राप्य। १६१ पृष्ठ की उत्तम जिल्द बंधी हुई पुस्तक है। काग़ज़ और छपाई इंडियन प्रेस की है; बहुतही उत्तम है। आरम्भ में सीताराम का एक मनोहर चित्र है। पुस्तक में "श्री मिथिलेशकिशोरी और श्री अवध-किशोर जू के प्रणयमय विलासामृत का पवित्र प्रवाह" बहाने वाले पद हैं। नमूना—

मोमन-मृग को फाँसि लियो है,
हाय अलक के जालन सोंरी।
घायल कोन्हों अवध-लाड़िलो,
मारि नैन के भालन सोंरी॥
लगी प्रीति छूटै नहिँ अब तो,
कीन्हें ऐसी चालन सोंरी।
मोहनिदास कहो जाके अलि,
यह सँदेस मेरो लालन सोंरी॥ १२८॥

* * * * * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करमें लिये पिचुकारी खड़ा कुंज की गली।
घूंघट उघारि मारता लखि के नई लली॥
मो दिस निहारि मोहनी फेको कमल कली।
मनसिज के ताप तें सखी तेहि छिन गली गली॥

❋

श्री खटकीरा युद्ध। माधवगढ़ (रीवां) निवासी बाबू महादेवप्रसाद कृत। विषय, नाम ही से स्पष्ट है। कर्त्ता को (नागौद रियासत के पते से) पत्र लिखने से बिना मूल्य मिलता है।

❋

शरीररक्षा। श्रीहेमचन्द्र-मित्र-द्वारा-सङ्कलित। मूल्य २ आने। बृहत्-आयुर्वेदीय-भाण्डार, ६७।४ नं० स्ट्राण्ड रोड, बड़ा बाजार, कलकत्ता, से औषध मगानेवालों को मुफ्त मिलती है। शरीर-रक्षा सम्बन्धी जो बातें इसमें हैं, अच्छी हैं।

❋

आरोग्य-रक्षा। डाक्टर नबीबख़्श-कृत। दाम चार आने। आरमी प्रेस, जुही, कानपुर से प्राप्य। डाक्टर नबीबख़्श ने बहुत दिन डाक्टरी करके, ४३ साल के तजरिबे से, यह पुस्तक लिखी है। इसके नुसख़े प्रायः सभी आज़मूदा हैं। शरीरारोग्य-सम्बन्धी अनेक उत्तमोत्तम बातें इस में हैं। बहुत सी जड़ी बूटी और दवाइयों का वर्णन है। डाक्टर साहब की बतलाई हुई दवाइयाँ सब कहीं मिल सकती हैं। पुस्तक प्रत्येक गृहस्थ के लेने योग्य है। छपाई उत्तम है।

❋

देवता का यथार्थ रूप। लेखक, बाबू कन्हैयालाल अग्रवाल, बादशाही मंडी, इलाहाबाद। पृष्ठ-संख्या १७, दाम २ आने। इसमें यह बतलाने की चेष्टा की गई है कि "देवता भी मनुष्य थे"। "वह सब पोलिटिकल वर्कर्स् थे"!

❋

कुमारी चन्द्रकिरण। उपन्यास है। रचयिता बाबू चतुर्भुजसहाय, प्रकाशक श्रीकिशोरीलाल गोस्वामी काशी। पृष्ठ ६६। मूल्य ४ आने। नहीं मालूम किसने इसे हमारे पास "समालोचनार्थ" भेजा है। इसमें १३-२० पृष्ठही नहीं। उनकी जगह अगला फ़ार्म, २१-२८, भूल से दुबारा लग गया है। अतएव समालोचना नहीं हो सकती। न मालूम १३-२० पृष्ठों में क्या हो।

❋

स्वदेशोद्धार शतक। लेखक ठाकुर हरिद्वारसिंह। मूल्य ।।। भारत के भूत तथा वर्त्तमान दृश्य का पद्यबद्ध वर्णन और सामाजिक तथा राजकीय विषयों के सम्बन्ध में सदुपदेश।

मनोरञ्जक श्लोक।

जब श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मणसहित सीताजी को ढूँढ़ते हुए पंपा सरोवर पर पहुँचे तब एक बगुले की ध्यानस्थ मुद्रा देख रामचन्द्र-जी कहते हैं:—

रामः—पश्य लक्ष्मण पंपायां बकः परमधार्मिकः।
शनैर्मुंचति पादाग्रं प्राणिनां वधशंकया॥

अर्थ—हे लक्ष्मण! इस पंपा सरोवर के बगुले भी परमधार्मिक हैं। देखो वह बगुला कैसे धीरे धीरे पैर उठाकर रखता है। जानते हो किस लिए? उसे डर लगता है कि पैर के नीचे कोई जीव जन्तु दब कर न मर जायँ।

यह सुन कर एक मत्स्य ने कहा—

मत्स्यः—सहवासी विजानाति सहवासिविचेष्टितम्।
बकं किं वर्ण्यसे राम! येनाहं निष्कुलीकृतः॥

किसी के चरित के विषय में पूँछना हो तो उसके पड़ोसी से पूछिए। क्योंकि सहवासी ही सहवासी के गुणावगुण भली भाँति जान सकता है। हे राम! आप बक की क्या बड़ाई कर रहे हैं? इसने तो मेरे सारे कुल का नाश कर दिया।

गणपत जानकीराम दुबे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

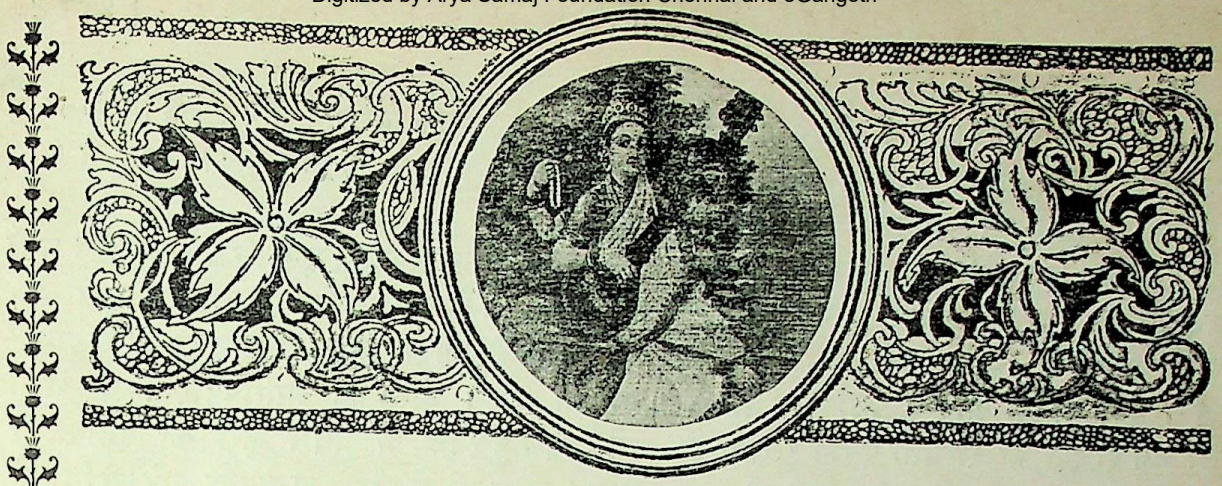

सरस्वती ।

भाग ८] सेप्टम्बर, १९०७ [संख्या ९

विविध विषय ।

मनुष्य के जितने आन्तरिक विकार हैं सब चित्र में भी दिखलाये जासकते हैं । जितनाहीं अच्छा चित्रकार होगा उतनाहीं स्पष्ट भाव उसके चित्रों से प्रकट होगा । हर्ष, शोक, भय, करुणा, चिन्ता आदि मनोविकार जैसे कविता द्वारा प्रकट किये जा सकते हैं वैसेही चित्रद्वारा भी । आज हम जर्मनी के एक चित्रकार का एक चित्र प्रकाशित करते हैं । उससे चिन्ता या सोच प्रकट होता है । अथवा यों कहिए कि वह चिन्तना का ही चित्र है । चित्र देखतेही साफ़ मालूम होता है कि यह स्त्री किसी सोच में डूबी हुई है । उसका नाम हमने रख दिया है "ध्यानशीला" । राजा रवि-वर्म्मा का बनाया हुआ भी इसी भाव का व्यञ्जक एक चित्र है । यह भी एक स्त्री ही का है । इसका नाम है "मनोरमा" । इसे भी हम इस संख्या में प्रकाशित करते हैं । पाठक पूर्वी और पश्चिमी देशों के चित्रकारों की चित्रचातुरी देखें ।

***

अमेरिका के पुरातत्त्वदर्शी, ईजिप्ट (मिस्र) में पुराने पदार्थों का पता लगाने की बहुत दिन से कोशिश कर रहे थे । इस काम में अब उन्हें विलक्षण सफलता हुई है । केरो से ३०० मील दक्षिण-पूर्व एक जगह नागा-यड-देर है । वहाँ इस समय रेगिस्तान है । पर ९,००० वर्ष पहले वहाँ अच्छी बस्ती थी । खेती होती थी । फल-फूल, घास-पात से यह प्रान्त ख़ूब सरसब्ज़ था । यहाँ ईसा के सात हज़ार वर्ष पहले की सैकड़ों क़ब्रें मिली हैं । उनसे मृत मनुष्यों के शरीर चटाइयों में लिपटे हुए ज्यों के त्यों निकले हैं । शरीर पर ऐसा मसाला पुता हुआ है कि हड्डियाँ हीं नहीं, अँतड़ियाँ और मेदा तक साबित है । मेदे के भीतर ख़ूराक भरी हुई मिली है । उस ख़ूराक में वे दवाइयाँ भी हैं जो मरने के पहले बीमार को दी गई थीं । उनकी परीक्षा से यह भी मालूम होता है कि वे कौन दवाइयाँ हैं और किन किन रोगों पर दी गई थीं । अर्थात् किन रोगों से बीमार मरे थे । जिनके शरीर क़ब्रों में पाये गये हैं वे उसी तरह के मनुष्य थे जिस तरह के एशियाई मनुष्य होते हैं । इससे साबित है कि एशिया से ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके पूर्वज वहाँ गये होंगे। क़ब्रों के भीतर पत्थर के हथियार, मिट्टी के बर्तन तथा और भी कितनी हीं चीज़ें मिली हैं। मोटे और महीन दोनों तरह के कपड़े भी मिले हैं। ये इस बात के सूचक हैं कि आठ नौ हज़ार वर्ष हुए जब ईजिप्ट वाले कपड़ा बनाना और पहनना जानते थे। स्त्रियों की क़बरों में बाज़ू-बन्द, कई तरह के मनके और कंघियाँ तक मिली हैं। भला जब ईजिप्ट की सभ्यता इतनी पुरानी है तब हिन्दुस्तान को न मालूम कितनी पुरानी हो।

*
* *

बाबू बनारसीदास ने फ़र्रुख़ाबाद में एक "वैश्य फरमेसी" क़ायम की है। उसी का बनाया हुआ मोहिनी-विलास तेल और थोड़ा सा नयनामृत सुरमा हमारे पास समालोचना के लिए आये हैं। सुरमा की परीक्षा तो हम नहीं कर सके; तेल की की है। वह लगाते वक्त ख़ुशबूदार ज़रूर मालूम होता है। उसकी एक छोटी शीशी का दाम आठ आने है।

*
* *

जो तारे सिर्फ़ दूरबीन से देख पड़ते हैं वे इतनी दूर हैं कि किसी किसी की रोशनी के ज़मीन तक पहुँचने में ५,७६० वर्ष लग जाते हैं। कोई कोई तो इतनी दूर हैं कि पाँच लाख वर्ष में उनकी रोशनी यहाँ तक आती है! अर्थात् रोशनी को चलते लाखों वर्ष लग जाते हैं। जिन तारों से यह रोशनी आती है वे नाश हो जाते हैं, टूट फूट जाते हैं, उनका कहीं पता नहीं रह जाता; पर उनसे निकली हुई रोशनी आती रहती है। उसके पृथ्वी पर पहुँचने के हज़ारों वर्ष पहलेही उसके जन्मदाता तारों का अस्तित्व नष्ट हो जाता है। पृथ्वी पर कितनी हीं प्रकाश-किरणें उस समय की चली पहुँचती हैं जिस समय बेचारी पृथ्वी उस दशा में थी ही नहीं जिसमें हम उसे देखते हैं। शायद उस समय इसका कुछ ठौर ठिकाना हीं न रहा हो। कितनेहीं तारे लाखों वर्ष तक चमकने के बाद जलकर ख़ाक हो गये। पर उनसे निकली हुई किरणें न मालूम कब पृथ्वी पर पहुँचेंगी! जिस ब्रह्माण्ड में ऐसे ऐसे अचिन्तनीय खेल होते हैं उसके विस्तार और उसके निर्म्माता के महत्त्व का ख़याल करके बुद्धि चकरा जाती है।

*
* *

पेरिस नगर फ़्रान्स देश की राजधानी है। वहाँ विज्ञान-शास्त्र के एक सुप्रसिद्ध अध्यापक कुरी नाम के थे। उन्हींने अपनी स्त्री की सहायता से "रेडियम" नामकी नूतन धातु का आविष्कार किया था। थोड़े दिन हुए कि, अध्यापक कुरी का देहान्त हो गया। फ़्रांस की सर्कार ने अध्यापक कुरी की विदुषी पत्नी को अब कुरी के पद पर नियुक्त किया है। फ़्रांस देश में मडम कुरी के समान अध्यापन का काम करने वाली स्त्रियाँ हैं, यह बात उस देश की स्त्री-शिक्षा की उन्नति का प्रबल प्रमाण है। ख़ुद अँगरेज़ लोग भी इस बात पर आश्चर्य मान रहे हैं कि, फ़्रांस देश की एक स्त्री ने वैज्ञानिक आविष्कार में अपना नाम अजर अमर कर दिया! और अब वही स्त्री-विश्वविद्यालय में अध्यापक का काम करती है। खेद और शोक की बात है कि, जिस भारत में मैत्रेयी और गार्गी जैसी अध्यात्म-विद्या में विख्यात स्त्रियाँ हो गईं, उसी देश में, इस समय, स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता और उपयोगिता पर, शिक्षित लोगों में भी सन्देह-वाद हा रहा है! *

*
* *

चीन में बड़े झपाटे से सुधार हो रहा है। हर सूबे में विज्ञान और इंजिनियरी का एक एक कालेज बन रहा है। २०,००० हज़ार विद्यार्थी जापान में अनेक प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। ९,००० मील लंबी रेल बन रही है। कुछ बन भी गई है। डेढ़ लाख फ़ौज नई क़वायद परेड सीखकर तैयार हो चुकी है। पुराने क़ानून रद होकर नये बन रहे हैं। प्रजा को पारलियामेंट देने का विचार दृढ़ हो गया है। सब से बड़ी बात यह हुई है कि १० वर्ष के अन्दर चीन से अफ़ीम निकाल बाहर की जायगी। एक भी अफ़ीमची तब तक चीन में न रह जायगा।

* यह नोट पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०, का भेजा हुआ है। स० सं०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस विशाल देशमें इतनी बड़ी तैयारियाँ हो रही हैं उसे, सब काम ठीक हो जाने पर, किसका डर रह जायगा? घोर निद्रा में सोये हुए प्राच्य देशों को जगते देख पाश्चात्य देश घबरा रहे हैं कि अब हम किसपर अपना आतङ्क जमावेंगे?

***

गत वर्ष जर्मनी के पत्र-सम्पादक निमंत्रित होकर इँगलैंड गये थे। इस वर्ष, जून में, इँगलैंड के कोई ५० के लगभग सम्पादक जर्मनी गये। वहाँ उनकी ऐसी मेहमानदारी हुई जैसे बड़े बड़े बादशाहों की होती है। ख़ातिर तवाज़ो करने में जर्मनीवालों ने जो उत्साह दिखलाया उसके सामने गत वर्ष इँगलैंडवालों का उत्साह कोई चीज़ ही न था। इँगलैंड के सम्पादकों ने जर्मनी के कितने ही बड़े बड़े शहरों की सैर की। जहाँ गये लोगों ने ऐसा हर्ष प्रकट किया, इतनी फूलों की वृष्टि की, इतने प्रेम से अगवानी की जैसे किसी बहुत बड़ी जीत के बाद राजधानी को लौटने पर किसी विजयी राजा की होती है। सम्पादकों के नगर-प्रवेश करने पर कहीं कहीं तोपों की सलामी तक हुई। नाना प्रकार के सुस्वादु भोजन कराये गये। नाना प्रकार के खेल तमाशे दिखाये गये। नाना प्रकार के अद्भुत अद्भुत स्थान, इमारतें, कारख़ाने आदि दिखाये गये। नदियों की सैर हुई; बाग़ों की सैर हुई; शहरों की सैर हुई; गावों तक की सैर हुई। स्त्रियों और बच्चों तक ने हार्दिक हर्ष प्रकट कर के सम्पादकों का स्वागत किया। देहात में देहातियों के सीधे सादे, पर सच्चे प्रेम और उत्साह से किये गये, पाहुनचार से सम्पादक-वर्ग बहुत ही प्रसन्न हुआ। जर्मन-नरेश के बड़े बड़े अधिकारियों तक ने सम्पादकों की ख़ातिरदारी की और उन्हें सब तरह का आराम पहुँचाने में जर्मनी के सम्पादकों ने मदद की। जर्मनी के सम्पादकों ही के आमन्त्रण पर इँगलैंड के सम्पादक जर्मनी पधारे थे। वेही उनको अभ्यर्थनापूर्वक इँगलैंड की सरहद से ले गये और वेही—उनके प्रतिनिधि—उन्हें उनके देश पहुँचा गये। सम्पादकों का यह आमन्त्रण प्रात्यामन्त्रण जर्मनी और ग्रेटब्रिटन में पारस्परिक सहानुभूति उत्पन्न करने के लिए हुआ है। क्योंकि पश्चिमी देशों में सम्पादक प्रजा के प्रतिनिधि माने जाते हैं। हमारी गवर्नमेंट भी, इस देश में यदि सम्पादकों को प्रजा का प्रतिनिधि मान कर उनका हितोपदेश सुना करे तो दोनों पक्षों का मंगल हो।

***

दादू दयाल की वाणी वेदान्त का उत्तम ग्रन्थ है। इसे दादूपन्थी महात्मा गुप्त रखने की चेष्टा करते आये हैं। इसी से इसका यथेष्ट प्रचार नहीं हुआ। अब इस पुस्तक को पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी, जोन्सगञ्ज, अजमेर ने टिप्पणीसहित प्रकाशित करके बड़ा उपकार किया है। कई पुस्तकों का परस्पर मिलान करके आपने इसका सम्पादन किया है। बहुत वर्षों के परिश्रम से आपने यह कार्य्य सिद्ध कर पाया है। दादू जी की भाषा पुरानी है। इससे उसका ठीक ठीक भाव सब की समझ में नहीं आता। पण्डित चन्द्रिकाप्रसादजी ने दादूपन्थी महात्माओं की कृपा से दादूजी के गूढ़ भावों को अच्छी तरह जान कर बड़ी ही योग्यता से इस पुस्तक का सम्पादन किया है। क्लिष्ट स्थलों में टिप्पणियाँ दे दी हैं। जगह जगह पर भावार्थ भी समझाया है और दृष्टान्त भी दिये हैं। "वाणी" के अन्त में अपने दादूजी के "सबद" अर्थात् पद भी दिये हैं। पुस्तक बड़े टाइप में अच्छे काग़ज़ पर छपी है। टीका-टिप्पणी नीचे छोटे टाइप में है। पुस्तक के अन्त में विषयों की सूची और कठिन शब्दों का कोश लगा कर पुस्तक सर्वाङ्गसुन्दर कर दी गई है। आदि में आपने जो लम्बी चौड़ी भूमिका लिखी है वह बहुत ही उपयोगी है। उससे दादूजी की भाषा समझने में बड़ी सहायता मिलती है और साथ ही पुरानी हिन्दी से सम्बन्ध रखनेवाली कितनीहीं बातें भी मालूम होती हैं। यह पुस्तक कोई ६ सौ पृष्ठों में समाप्त हुई है और सर्वथा दिव्य हुई है। मूल्य, बिना जिल्द की, ५ रुपये, जिल्द की, ५॥) और दो जिल्दों में उत्तम काग़ज़ पर ७॥) है। हिन्दी में इसे एक रत्न समझना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीयुत चिन्तामणिराव वैद्य, एम० ए०, एल० एल० बी०, संस्कृत के उत्कृष्ट विद्वान् हैं। कुछ समय हुआ, आप ग्वालियर में चीफ़ जस्टिस थे। शायद अब भी वहीं हैं। मराठी में आपने कई एक उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखी हैं। हाल में आपने रामायण और महाभारत की आलोचनायें लिखी हैं। ये आलोचनायें ख़ूब विद्वत्तापूर्ण हैं। उनमें आपने अनेक नई नई बातें कही हैं। रामायण की किसी किसी पुस्तक में एक श्लोक है—

हृष्टाः खलु भविष्यन्ति रामस्य परमाः स्त्रियः।
अप्रहृष्टा भविष्यन्ति स्नुषास्ते भरतक्षये॥

इसके आधार पर आपने तर्कना की है कि रामचन्द्र के एक से अधिक स्त्रियाँ थीं—अर्थात् वे एक पत्नी-व्रत न थे। इस पर बहुत लोगों को आश्चर्य्य और सन्ताप हुआ। जिन रामचन्द्रजी ने सीताजी के निर्वासन के बाद यज्ञादि में सीता की सुवर्णजात मूर्ति बना कर सब धर्म्मकार्य किये उनकी बहुपत्नीप्रीति सुन कर किसे न आश्चर्य्य होगा? वैद्य महाशय की इस तर्कना का खण्डन, जून १९०७ के "इंडियन रिव्यू" में, जी० जे० अगाशे नाम के एक पण्डित ने बड़ी ख़ूबी से किया है। उन्होंने इस बात को सप्रमाण सिद्ध कर दिखाया है कि रामचन्द्र के सीता ही एक मात्र पत्नी थीं और "परमाः स्त्रियः" का अर्थ पत्नियाँ नहीं, किन्तु परिचारिकायें या दासियाँ हैं।

* * *

योरप में स्त्रियों का प्रभुत्व बढ़ता जाता है। अँगरेज़ों के इंगलैंड में स्त्रियाँ पारलियामेंट में घुसने की कोशिश बहुत दिन से कर रही हैं। इस कारण कितने ही दंगे फ़िसाद भी हो गये हैं। कितनी ही स्त्रियाँ जेल की हवा भी खा चुकी हैं। पर वे अब तक इस लायक़ नहीं समझी गईं कि पुरुषों की तरह वे भी पारलियामेंट में बैठ सकें और राजनैतिक बातों में योग दे सकें। यह परम सभ्य, शिक्षित, पराक्रमी और सम्पत्तिशाली इँगलैंड की बात हुई। इँगलैंड के सामने फ़िनलैंड कोई चीज़ ही नहीं। वह और और बातों में इँगलैंड की बराबरी नहीं कर सकता। पर एक बात में उसने इँगलैंड को ही नहीं, अन्यान्य देशों को भी मात कर दिया। वहाँ एक छोटी सी पारलियामेंट है। उसमें कुल २०० मेम्बर हैं। इस साल उसमें १९ स्त्रियों ने भी प्रवेश किया है! इस बात को देख कर शिक्षा और सभ्यता का घमण्ड रखनेवाले और देशों को आश्चर्य्य हुआ है। मालूम नहीं, लज्जा भी आई या नहीं!

* * *

कुछ समय हुआ एक वेलमेन साहब पवन-यान में सवार होकर उत्तरी ध्रुव की सैर करने गये थे। उन्हें बीचही से लौटना पड़ा। अब आप पेरिस में एक नया पवन-यान बनवा रहे हैं। यह एक प्रकार का ग़ुब्बारा है। आज तक इससे बड़ा ग़ुब्बारा नहीं बना। यह १८३ फ़ीट लम्बा है। व्यास इसका ५२ फ़ीट है। २७० मन बोझ लेकर यह उड़ेगा। स्पिट्ज़बर्जन से यह रवाना होगा। वहाँ से उत्तरी ध्रुव ६१८ मील है। कोई ३ हज़ार मील आने जाने के लिए इस पर सामान रह सकेगा। वेलमेन साहब कहते हैं कि हमारा यह यान कोई १५ मील फ़ी घन्टे के हिसाब से उड़ेगा। आपको पूरी आशा है कि इस दफ़े आप ठेठ ध्रुव तक पहुँच जायँगे। अभी प्रस्थान का मुहूर्त नहीं निश्चित हुआ। "सिद्धिरस्तु"!

* * *

फ़्रांसवालों को आकाशी जहाज़ चलाने में पूरी कामयाबी हो गई। पाल पीरी लैबाड़ी नाम की एक कम्पनी ने फ़्रांस के फ़ौजी महकमे के लिए दो पवनयान ऐसे बनाये हैं जो मज़े में आकाश में उड़ते हैं। जितनी दूर ऊँचे चाहो इन्हें ले जाओ, जिस तरफ़ चाहो ले जाओ, जहाँ चाहो मोड़ दो, जहाँ चाहो उतर पड़ो। बस और क्या चाहिए? ये एक प्रकार के ग़ुब्बारे हैं। इनकी शकल "सिगार" (चुरुट) की सी है। इनके भीतर मोटर का यंजिन रहता है। उसी के बल से ये चलते हैं। ८ जुलाई १९०७ को चार फ़ौजी अफ़सर इनमें से एक पवन-यान पर चढ़ कर आकाश में उड़े। सामने की हवा में वे १८ मील फ़ी घंटे के हिसाब से और पीछे की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठहरे, तुम में वे गुण कहाँ ? तुम्हारे विचार ही कंगराले हैं। तुमने अपनी जीविका का अपनी इच्छानुकूल प्रबन्ध करना चाहा, उसमें भी मैंने हस्तक्षेप नहीं किया। मुझे हर्ष है, कि तुमने अपने काम में सफलता प्राप्त की है। इससे तुम्हारे विचारों की श्रेष्ठता प्रमाणित होती है। तुम्हारे विषय में न्यूयार्क से जितने पत्र मेरे पास आये हैं, सब तुम्हारी प्रशंसा से भरे हुए हैं। परन्तु अब जो तुमने शीघ्र ही धनवान् होने, और एक अमीर की कन्या ब्याहने, की लालसा से स्वजाति और स्वदेश को त्यागकर विजाति में मिलने का विचार प्रकट किया है, उसका मैं विरोध करता हूँ। तुम्हारे इस विचार ने मेरे हृदय पर कड़ी चोट पहुँचाई है।

"इसमें सन्देह नहीं, कि यहाँ आने में तुम्हें कष्ट होगा। क्योंकि, तीन वर्ष तुम्हें सेना में बिताने पड़ेंगे; जो प्रत्येक फ़रासीसी के लिए ज़रूरी बात है। परन्तु कर्त्तव्य का ख़याल सब से पहले रखना चाहिए। कर्त्तव्य यही आज्ञा देता है कि तुम स्वदेश चले आओ।

"प्यारे अंड्रे ! स्वदेश वह नहीं कहलाता जहाँ जीविका हो। यह उस प्यारी भूमि का नाम है जहाँ तुमने जन्म लिया; जो तुम्हारे पूर्वजों का निवास-स्थान है; और जिसके अन्न, जल और वायु से पलकर तुम इस योग्य हुए कि अपना पालन-पोषण स्वयं करने लगे। क्या उस उपकारिणी जननी-जन्मभूमि का तुम पर कुछ भी स्वत्त्व नहीं है ? क्या तुम्हारा यह कर्त्तव्य नहीं, कि अपना तन, मन, धन उसी की सेवा में अर्पण कर दो ? हाय, यह जानकर हृदय विदीर्ण हुआ जाता है कि तुम स्वदेश, स्वदेशानुराग, स्वदेशीपन, सदा के लिए त्याग कर विदेशी (अमेरिकन) बनना चाहते हो। कैसी कृतघ्नता है ! अफ़सोस ! ! हज़ार अफ़सोस ! ! ! क्या तुम यह नहीं जानते कि इसी जन्मभूमि के लिए तुम्हारा दादा शत्रुओं के हाथ से मारा गया ? इसी स्वदेश के लिए मुझे 'लवार' के युद्ध में घायल होने की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। आओ, और उस प्यारे झंडे के नीचे रहो जो तुम्हारे बुज़ुर्गों के ख़ून से सराबोर हुआ है।

"मैं यथाशक्ति स्वदेशोन्नति में अब भी लगा हूँ। यद्यपि मैं किसी बड़ी लड़ाई में नहीं भेजा गया; तथापि मैंने अपने जीवन का उत्तम भाग अपने देश को दान कर दिया है, और आपत्काल में उसके काम आया हूँ। इस समय भी मैं जो कुछ हूँ फ़्राँस का हूँ, और फ़्राँस मेरा है।

"जब तुम घर से निकले और मैंने गले लगाकर तुम्हारा माथा चूमा और आशीर्वाद दिया, तब मैंने सोचा था कि तुम मेरे बाद अपने देश की सेवा करोगे। तुम्हारी सन्तान मुझसे बढ़कर यशस्विनी और भाग्यशालिनी होगी। प्यारे पुत्र ! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ, नहीं नहीं आज्ञा देता हूँ, कि तुम फ़रासीसी बने रहो और अपने प्यारे देश को न छोड़ो।"

कमांडर डोरियर।

अंड्रे ने इस पत्र को कई दफ़े पढ़ा। और उठकर काँपते हुए हाथ से उत्तर लिखना आरम्भ किया—

"मेरे माननीय पिता,

"आपने जो यह लिखा है कि "स्वदेश वह नहीं कहलाता जहाँ जीविका हो", सो मुझे स्वीकार है। परन्तु क्या उस स्थान को भी स्वदेश नहीं कहते जहाँ किसी का प्रायः सर्वस्व हो ? मेरा मन यहाँ है। मेरा कारोबार यहाँ है। मुझे फ़्राँस, जिसे मैंने विद्यालय की खिड़कियों ही से देखा है, अब अच्छी तरह याद भी नहीं आता। मुझे इस समय उसका कुछ भी ख़याल नहीं है। आपके लिए उसने क्या किया है ? आपने अपना सारा जीवन उसकी सेवा में व्यतीत कर दिया; और उसके लिए अपना ख़ून बहाया। उसके प्रत्युपकार में आपके कंधे पर एक रँगदार फ़ीता लगाने, और वृद्धावस्था में केवल निर्वाह मात्र के लिए सहायता देने, के सिवा उसने और क्या किया ? अमेरिका मुझे धनवान् और प्रतिष्ठित बना देगा।

"पिता ! मैं इस विषय में आपकी आज्ञा न पालने के लिए बाध्य हूँ। इसका मुझे खेद भी है। परन्तु मैं अपनी जवानी के तीन बहुमूल्य वर्ष सैनिक काम सीखने में नष्ट नहीं करना चाहता। जितना जल्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भव होगा मैं संयुक्त राज्य, अमेरिका, के निवासियों में शामिल हो जाऊंगा"।

युवक अंड्रे यहीं तक लिख पाया था, कि टाइमपीस घड़ी ने "टन टन टन" घंटी बजाई। उसे मालूम हुआ कि अराबला और उसकी माँ से मिलने का समय आगया। उसने क़लम रखदी और पत्र को असमाप्त छोड़कर उनसे मिलने के लिए घर से निकला।

(२)

वह फ़रासीसी युवा उन दो रमणियों के साथ प्रदर्शिनी में पहुँचा। बड़ी भीड़ होने पर भी लोगों ने उन तीनों को देख लिया। कई दृष्टियाँ उनपर बड़ी तेज़ी से पड़ीं। लम्बा क़द, छरेरा बदन, बाँकपन से ऊपर चढ़ी हुई काली मूछें। फ़्रेंच जाति का अंड्रे एक अच्छा नमूना था। और उसकी प्रणय-पात्र अराबला के हृदयाकर्षक रसीले नयन, पतली कमर, सुनहले केश उन हूरों की याद दिलाते थे जिनकी कहानियाँ सारे संसार में प्रसिद्ध हैं। जहाँ बाजा बजता था उसके पास की कुर्सियाँ ठसाठस भरी हुईं थीं। परन्तु इन लोगों को बैठने के लिए कुछ अधिक कष्ट नहीं उठाना पड़ा; क्योंकि इनके लिए पहिले ही से कुरसियां लेली गई थीं। सब कहीं बड़ी भीड़ थी, विशेषकर उस स्थान पर जहाँ उभरे हुए चेहरे वाले मनुष्यों का एक समूह बैठा था। ये लोग जर्मनी के निवासी थे।

अंड्रे अपनी प्रेमिका को कनखियों से देखता जाता था। वह उसकी प्यारी प्यारी बातों पर ऐसा लट्टू हो रहा था कि उसे उसके सिवा और कुछ देखही न पड़ता था। इतने में एक घटना हुई। उसने उसके विचारों को बलात् अपनी ओर खींच लिया। वह एक टक उसी ओर देखने लगा। देखता क्या है, कि पेरिस के प्रजातंत्र राज्य का सैनिक बैंड बज रहा है। वह वर्दी, जिसे उसने बालपन में हज़ारों दफ़े देखा था, उसके सामने मौजूद है। और वह तीन रंग का झंडा, जो सारे भूमंडलपर फ़्राँस की स्वतंत्रता का डंका बजा चुका है, उसकी आँखों के आगे है। इनके देखते ही वे सब बातें, जिनको वह अपने चित्त से भुला चुका था, बड़े वेग से उसके दिमाग़ में फिर घुस आईं।

सब लोग बैंड सुनने के लिए एकाग्र चित्त हो गये। चारों ओर सन्नाटा छा गया। केवल एक मनुष्य का कंठ-स्वर सुनाई दिया। वह एक जर्मन था, जो अपने मित्रों के साथ बातें करते हुए व्यंग्य-स्वर से हँस रहा था। अंड्रे ने समझा कि वह फ़रासीसियों के जातीय झंडे की हँसी उड़ा रहा है। इस पर उसके मुँह से सहसा "हुश हुश" निकल गया! अंड्रे ने उसे चुप रहने को कहा! बैंड के अफ़सर ने अपनी छड़ी उठाई। नक़ारे पर चोट पड़ी। ज़ंगोले बजने लगे। और 'मरसी' का संसार-प्रसिद्ध राग गूंज उठा। सारा संसार इस लय को जानता है। फ़्राँस के प्रसिद्ध राज्यपरिवर्त्तन के समय इसी युद्ध-गीत ने लोगों के हृदय हिला दिये थे। जब बाजा समाप्त हुआ तब श्रोताओं ने उसकी बड़ी प्रशंसा की; और तालियों पर तालियां बजने लगीं। परन्तु एक ओर से एक निन्दा-सूचक सीटी सुनी गई।

यह उसी जर्मन ने बजाई थी जिसे अंड्रे चुप रहने को कह चुका था। इस पर फ़रासीसी युवा अंड्रे अधीर हो उठा। वह पिछली बातें सब भूल गया। उसे न यह विचार रहा कि उसकी इच्छायें क्या हैं, न यह कि वह किसके साथ है, या कहाँ है। मतलब यह कि उसके सब विचार, जो अभी कुछही देर पहले उसके दिमाग़ में समा रहे थे, हवा हो गये। उसे याद न रहा कि पिता के पत्र का उत्तर अभी वह क्या लिख रहा था। स्वदेश-प्रेम की कैसी निन्दा की थी। और अमेरिका-निवासियों में शामिल होने की कैसी दृढ़ प्रतिज्ञा की थी। ये सब बातें उस समय उसकी दृष्टि से तिरोहित हो गईं। केवल एक ही बात का उसे ध्यान रहा। वह यह कि उस जर्मन ने फ़्राँस का अपमान किया। जैसे कोई अपनी माता के अपमान का बदला लेने के लिए झुँझला उठता है वैसे ही वह बड़ी तेज़ी के साथ उस धृष्ट जर्मन की ओर लपका, और जाकर उसका गला पकड़ लिया। थोड़ी देर बाद जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके होश-हवास कुछ दुरुस्त हुए, तब उसने अपनी जेब से अपने नाम का एक कार्ड निकाला। उसे अपने शत्रु को उसने देना चाहा। परन्तु उस जर्मन का हाथ उसे लेने को न बढ़ा। गला घोटने से वह पत्थर की तरह हो गया था। वह बेहोश सा होकर अंड्रे का मुँह ताक रहा था। अतएव अपमानसूचक ढँग से उसके ऊपर अपने नाम का कार्ड फेंककर, फ़रासीसी अंड्रे उधर को मुड़ा जहाँ उसने उन दोनों स्त्रियों को छोड़ा था, ताकि उनसे क्षमा माँगे कि जोश ने उसे इस काम के करने पर मजबूर किया। परन्तु वहाँ पर वे न थीं। वे इस बखेड़े को देख और उसके इस काम से असन्तुष्ट होकर चल दी थीं।

(३)

इन दो अमेरिकन-ललनाओं ने जो व्यवहार उसके साथ किया उसे देखकर अंड्रे को प्रसिद्ध जल-सेनापति लार्ड नेलसन की एक बात याद आई। जब नेलसन नेपल्स गया था तब उसके किसी अन्तरङ्ग मित्र ने लिख भेजा था—"माई लार्ड! इँग लैंड लौट आइए; अपने देश की महिलाओं की बराबरी कोई चीज़ नहीं कर सकती"। वे दोनों स्त्रियाँ बिना किसी प्रकार की सहानुभूति प्रकट किये उठ गईं। जिस बात ने अंड्रे को इस क़दर दुख पहुँचाया था उसका उनपर कुछ भी असर न हुआ। इससे अंड्रे को मालूम हो गया कि फ़्राँस और अमेरिका केवल भौगोलिक दृष्टि ही से अलग नहीं हैं, किन्तु दोनों के विचारों और स्वभावों में भी बड़ा अन्तर है जो किसी प्रकार मिट नहीं सकता।

जैसे प्रचंड मार्तण्ड के सम्मुख धुंद और गुबार के बादल क्षण भर में फटकर बिखर जाते हैं, और दिन निर्मल और दिशायें स्वच्छ हो जाती हैं, उसी प्रकार उसके विचारों के बादल चटपट बिखर गये; और फ़्राँस का चित्र उसकी आँखों में फिर गया। किसी किसी प्रेम में यह विलक्षणता होती है कि मनुष्य उसे कभी कभी मुर्दा समझ बैठता है, परन्तु उसकी चिनगारी हृदय के भीतर छिपी पड़ी रहती है। उसे प्रज्वलित करने के लिए एक फूँक काफ़ी होती है।

जो अपने को केवल धनवान् बनाने का उत्सुक था, और जिसकी दृष्टि में, थोड़ी देर पहिले, धन-देव के सिवा और कोई उपास्य देव ही न था; वही अब अपने सच्चे स्वरूप को पहचान गया। उसने जान लिया कि जिस झँडे से वह अपना कुछ भी सम्बन्ध न समझता था उसके लिए वह अभी मल्ल-युद्ध करके अपना जीवन संकट में डालने को तैयार था। 'मरसी' के राग की ध्वनि ने उसमें फ़्राँस के प्रसिद्ध 'राज्यपरिवर्तन' के समय के सिपाहियों का सा जोश उत्पन्न कर दिया था। और स्वदेशानुराग का ख़ून उसके सारे शरीर में बड़ी शीघ्रता से दौड़ने लगा था। कहाँ तो वह अपने पिता के गाँव को तुच्छ समझता था और उसके जोश की हँसी उड़ाता था और कहाँ एक जर्मन की छोटी सी बातपर, इस ख़याल से कि वह सीटी बजाकर फ़्राँस के बाजेवालों का अपमान करता है, उस पर आक्रमण कर बैठा। क्योंकि उसने इस अपमान को प्यारी जन्म-भूमि का अपमान समझा।

प्रदर्शिनी से लौटकर अंड्रे अपने घर आया। आते ही उसने वह पत्र देखा जिसे वह अपूर्ण छोड़ गया था। उसे उसने फाड़ डाला और कहने लगा—"प्यारे पिता! फ़्रांस के अनन्य भक्त! तू सच्चा है। तेरे पत्र के उत्तर में मैं अगले जहाज़ से ख़ुदही तेरी सेवा में उपस्थित होता हूँ। मैं आज से अपने को तेरे अर्पण करता हूँ और स्वदेशसेवकों में स्थान पाने की प्रार्थना करता हूँ"।*

उदयनारायण वाजपेयी।

विष्णु भगवान का वामनावतार।

(एक बावाँरूपी चम्पू)

भूमिका।

इन्द्र की सवारी जा रही थी। दुर्वासा ऋषि ने अपने गले की प्रसूनमाला उनको दी। उन्होंने दुर्वासा के परोक्ष में वह माला अपने हाथी को पहना दी। इस अवज्ञा का वृत्तान्त जान कर ऋषि ने इन्द्र को शाप दिया कि तुम पदभ्रष्ट होगे।

* एक फ्रेंच कहानी का ममानुवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्रमथन से प्राप्त हुए अमृत से असुरगण जब से विमुख रक्खे गये थे तभी से वे लोग देवताओं से बदला लेने को व्याकुल थे। अवसर पाकर उन्होंने इन्द्रलोक पर चढ़ाई की और विजय पाई। देवता अत्यन्त दुःखित हुए।

दैत्यगुरु शुक्राचार्य्य ने बलि से (जो ९९ यज्ञ कर चुका था) सवाँ यज्ञ आरम्भ कराया। तब विष्णु ने देवों का कष्ट दूर करने, और इन्द्र-पद के अनधिकारी बलि को छलने के लिए 'वामन' रूप धारण किया।

भेददर्शी शुक्र के बहुत रोकने पर भी बलि ने प्रतिज्ञानुसार वामन जी को तीन पग पृथ्वी दी। नापने के समय भगवान् ऐसे ऊंचे हुए कि दो पग पृथ्वी, आकाश नापकर तीसरे के बदले बलि का शरीर नाप लिया और उसे पातालवास दिया। इसी विषय पर रविवर्मा ने एक चित्र अङ्कित किया है। उसी पर मेरा बावँरूपी (अत्यन्त लघु) यह चम्पू भी है।

* * * * * *

दई दुर्वासा ने निज सुमन-माला सुरप को ;
न धारो सो, डारी अमरपति ऐरावत-गले ;
अवज्ञा जानी सो, रिस बस दियो शाप मुनि ने—
तुम्हारो जावेगो विभव सब थोरे दिनन में (१)

सुरापी, संतापी, सुधि करि सुधा की, कुपित ह्वैं,
सुरद्रोही, मोही असुर मिलि धाये समर को ;
चढ़े उत्साही ह्वै, नृपति बलि को अग्रसर कै ;
करी आशा पूरो विजय करि रूरी सुरपुरी (२)

दुखारी ह्वै भागे सुरगन अभागे इत उतै ;
विथा चिन्ता भारी सहत बहु दीन्हें दिन बितै ;
तबै कीन्हीं दाया हरि सबल-मायाधर कह्यो—
हरूंगो मैं सारो सुरगन तुम्हारी विपति को (३)

उतै सौ संख्या में इक मख कमी शुक्र समुझे ;
किनारे रेवा के बलि सँग पधारे विपिन में ;
तहाँ ठानी ज्ञानी सुमख मनमानी विधि भली ,
बनै जासों भारी सुपद-अधिकारी बलि बली (४)

अदेवन की उर आनि अनीति ,
निबाहन को सुर-पालन-रीति ,
सुधारन को जनको अधिकार ,
धरयो हरि वामन को अवतार (५)

बड़े जनको नहिं माँगन जोग ,
फबै छल-साधन में लघु लोग ;
असङ्ग रमापति विष्णु अनूप ,
धरयो एहि कारन वामन-रूप (६)

भले सजि साज, चले मख-भूमि ;
पगै पग लेति धरातल चूमि ;
प्रसून घने बरखैं सुर गोत ;
दिवाकर तेज निछावर होत (७)

जबै पहुँचे बलि-भूपति-द्वार ,
गये सब मोहि रहे मनवार ;
कह्यो कोउ चन्द, कह्यो कोउ भान ,
कोऊ समुझ्यो तप मूरतिमान (८)

(द्वारपाल-वचन, बलि-प्रति)

मृगचर्म विराजत है तनपै ,
सिर पै सुठ छत्र सुहावन है।
कर दण्ड कमण्डल सोहैं विशाल ,
कुपीन लसै कटि पावन है।
उपवीत पुनीतहु भावत है ,
अति तेज सों ताप-नसावन है।
द्विज आयो तो आपको जांचन को ,
पर नाप में अँगुल बावन है (९)

(बलि-वामन-समागम, भूमिदान की प्रतिज्ञा,
शुक्र की विकलता)

शुक्र-वचन बलिप्रति।

धर्म, जस, अर्थ, काम, जन, इन पाँच ही के
हेतु दान होत, यह नीति उर आनिये ;
नाहीं सो उचित दान जासों जाय सर बस ,
करके बिचार तासों बात मेरी मानिये।
औगुन भरो है यह बटु सो चेताये देहुँ ,
याके तनही सों मन याको पहचानिये ;
देहै तोहि टोटो यह रखिहै लँगोटो नाहिँ ,
खोटो है बड़ोई याहि छोटो मत जानिये (१०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याही ने कपट करि मोहिनी सरूपधरि ,
देवन को दीन्हों सुधा, कीन्हों बड़ी हानिये ;
याही ने बराह बलि मारो तो कनक-नैन ,
नाहर ह्वै हन्यो तेरे पुरखै सुजानिये ।
याको हरि जानौ, सदा देवकाज साधे याने ,
कौतुक महान याके कहँ लौ बखानिये ;
टोटो यह दैहै तोहिँ, रखि है लँगोटो नाहिँ ,
खोटो है बड़ोई याहि छोटो मत जानिये (११)

दीनता के बैन, पर नैन हैं कुटिलता के ,
सैन झूठी साधुता के ऐन पहचानिये ;
मन्द मन्द हाँसो है सुधा सो कहिबे को, भूप ,
बातन की घातन में बिखही प्रमानिये ।
करत उतावली है बावली सभा को करि ,
भूलि कै भलाई कत भोलो याहि मानिये ;
टोटो यह दैहै तोहिँ, रखिहै लँगोटो नाहिँ ,
खोटो है बड़ोई याहि छोटो मत जानिये (१२)

(सत्य-प्रतिज्ञ राजा ने शुक्र की एक न मानी,
उसके उत्तर को बानगी लीजिये)

सुख के अभाव को न मानि हौं कछूक दुख ,
दुख के प्रभाव को न रञ्चकहू डरिहौं ;
धन अनुरागिहौं न, त्यागिहौं न दानी-धर्म ,
पन्थ में अनीति के न भूलि पाँव धरि हौं ।
राज अरु संपति की चरचा चलाई कहा ,
वचन के आगे प्रान और ना निहरिहौं ;
याचक की याचना पै हाँ करी सो हाँ करी मैं ,
तीनों काल माँहि अब "नाहीं" नाहिँ करिहौं (१३)

(शुक्र की कुछ न चली । पृथ्वी नापने का समय आया
तो वामनजी ऐसे बढ़े कि बलि को शुक्र यों
ताना देने लगे)

बावन अँगुल को जो हुतो ,
सोइ बाढ़ि अकास लग्यो बटु दम्भा ;
मानौ तमाल को वृक्ष विशाल ,
कियो सुर लोक प्रवेश अरम्भा ।
होत है ऊंचा छिनै छिन सो ,
सुधि आवत होलिका धूम को खम्भा ,
बात गुरून की मानी नहीं ,
अब देखु रे भूपति देखु अचम्भा (१४)

(दानवीर बलि ने तीसरे पग में अपनी देह नपवा दी
भगवान ने उसे पातालवास की आज्ञा दी ।
इसी पर लोग कहते हैं—)

" मन चेती नहिँ होत है प्रभु चेती सब काल ।
बलि चाह्यो आकाश को, हरि पठयो पाताल " (१५)

(बलि की धीरता से संतुष्ट होकर भगवान ने वर
माँगने की आज्ञा की । बलि ने यह वर माँग
लिया कि आप मुझे नित्यप्रति मेरे द्वार पर
दर्शन दिया कीजिये ! धन्य बलि !)

बावन ह्वै हरि माँगो धरा ,
अरु नापन में तनु भारी कियो है ;
द्वै पग में नभ भूमि लई ,
तिसरे तेहि नापि पताल दियो है ।
द्वार के दर्शन की ठहराय ,
भर्‌यो नृप पूरन मोद हियो है ;
नाहीं छल्यो बलि को हरि ने ,
हरि को बलिने छलि आज लियो है (१६)

कहो—" भावी इन्द्र की जय " !

राय देवीप्रसाद [पूर्ण]

नयादी अर्थात् श्वानभक्षी मनुष्य ।

भारतवर्ष के पश्चिमीप्रान्त में, अरब-समुद्र के किनारे, मलावार नाम का चिर विख्यात पुरातन प्रदेश है । योरप का वास्को डिगामा, भारत का पता लगाते लगाते, इसी के आस पास पहले जहाज़ से उतरा था । और तारीख़ फ़रिश्ता के अनुसार इस-लाम का धार्मिक झण्डा भारत में पहले यहीं फह-राया था । इसी देश की एक विचित्र जाति का विवरण आज हम पाठकों को सुनाते हैं ।

मलावार में कितनी ही छोटी बड़ी नदियाँ हैं । अनेक स्थान, नदियों के किनारे किनारे, जंगल और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झाड़ियों के बीच में, हैं। इन्हीं जंगली स्थानों में नदियों के किनारे एक विशेष जाति के लोग रहते हैं जिनको नयादी अथवा श्वानभक्षी कहते हैं। इनका आचार व्यवहार साधारणतः लोगों को कम मालूम है। क्योंकि ये लोग जन-समूह से इतना अलग रहते हैं कि इनका पूरा पूरा पता लगना अब तक भी मुश्किल सा हो रहा है। बहुत से नयादी मुसल्मान हो गये हैं। उनसे जो कुछ मालूम हुआ है उसको मिस्टर दामोदरन नायर ने "Men and Women of India" नाम की एक अँगरेज़ी सामयिक पुस्तक में जैसा लिखा है उसका सारांश हम यहाँ पर देते हैं।

हिन्दू लोग नयादी को इतना निकृष्ट और इतना अपवित्र मानते हैं कि वह नयादी भी, जो कि मुसल्मान हो गया है, उस जातिवालों को अत्यन्त घृणित समझता है और अपने पुराने साथियों के विषय में बात भी करना नहीं चाहता। यदि कोई नयादी दो सौ क़दम के अन्तर पर आजाय तो ब्राह्मण तथा और और उच्च जाति के हिन्दुओं को प्रायश्चित्त करना पड़ता है। नीच से भी नीच पहाड़ी और जंगली जाति के लोग इनको महा अन्त्यज मानते हैं और इनका स्पर्श महापाप समझते हैं।

नयादी जाति के विषय में यह कहा जाता है कि, ये लोग नमबद्री ब्राह्मण से उत्पन्न हुए हैं। सैकड़ों वर्ष पूर्व एक ब्राह्मण किसी नीच पहाड़ी जाति की स्त्री पर आसक्त हो गया। उसी के प्रेम में उसने धन, धर्म्म आदि को तिलाञ्जलि दे दी। उसी स्त्री के साथ उसने अपने जीवन को जंगल में ही शेष कर दिया। उससे जो सन्तति उत्पन्न हुई वह नयादी कहलाई। क्रमशः वंश की वृद्धि हुई और नयादियों का एक अलग ही फ़िरक़ा हो गया।

हिन्दू लोग इनको यहाँ तक त्याज्य समझते हैं कि बस्ती में आने तक नहीं देते। ये लोग जंगल से रस्सियाँ, शहद, मोम, इत्यादि जंगली पदार्थ जब बेचने को आते हैं तब बस्ती के बाहर खड़े होकर विचित्र स्वर से चिल्लाते हैं जिसमें बस्तीवालों का ध्यान उनकी ओर आकार्षत हो। ये प्रायः नंगे रहते हैं; केवल कुछ पत्ते या एक आध कपड़े का टुकड़ा कमर में लपेटे रहते हैं। फटे पुराने कपड़े या चावल, तेल, इत्यादि जो कुछ उनको दयाशील लोग दे देते हैं उसे लेकर वे घर लौट जाते हैं। नयादी को खिलाना बड़ा पुण्य-कार्य्य समझा जाता है। एक नयादी को खिलाना हज़ार ब्राह्मणों को भोजन कराने से बढ़कर है। विवाहादि उत्सवों में उदारचित्त लोग उनको ख़ासकर खिलाते हैं।

नयादियों का कोई धर्म्म नहीं है और न ये लोग कोई देवी-देवता ही पूजते हैं। ये विली (Villi) नामक एक जंगली देवता को मानते हैं। विली की एक पिण्डी पेड़ के नीचे बनी रहती है। विवाहादि होने, या किसी के मरने, या बीमार पड़ने, पर विली काम आता है। जब कोई बीमार होता है तब उसको सब मिल कर पिण्डी के पास ले जाते हैं और वहीं पर बिठा देते हैं। इनका सरदार भी बीमार के साथ रहता है। वह मंत्र पढ़ता जाता है और एक पक्षी को पिण्डी के सामने मार कर उसका ख़ून रोगी को पीने को देता है। विली के पास जाने से रोगी आराम हो जाता है। इन लोगों का ऐसा ही विश्वास है।

नयादियों को खाने के लिए काफ़ी अनाज नहीं मिलता। अतएव उन्हें जंगल के कन्द, मूल, फल, फूल से जीवन-निर्वाह करना पड़ता है। परन्तु इन्हें कुत्ते का मांस अवश्य होना चाहिए। वह इन्हें इतना प्रिय है कि ये लोग रात को चुपके से बस्ती में घुस जाते हैं और कुत्ते को पकड़ कर ले आते हैं। कुत्ते का मांस न मिलने से ये बड़ी आफ़त जोतते हैं। उत्सवादि में तो कुत्ते का मांस होना ही चाहिए। उसके बिना किसी तरह काम ही नहीं चल सकता।

नयादी लोग झाड़ फूंक बहुत जानते हैं। जब बस्ती के किसी आदमी को बुख़ार आता है तब नयादी बुलाया जाता है, क्योंकि लोगों का विश्वास है कि ज्वर "विली" का बाण है।

नयादियों के सामाजिक नियम बड़े विचित्र हैं। लड़की को जिस दिन पहले पहिल रजोदर्शन होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है उस दिन घर वाले चार दिन के खाने पीने की चीज़ें देकर उसे घर में अकेली छोड़ देते हैं और स्वयं अपने पड़ोसियों के यहाँ चले जाते हैं। लड़की चार दिन तक नापाक समझी जाती है। पाँचवें दिन बहुत से रसूम होते हैं। उस दिन लड़की ख़ूब सवेरे अकेली नदी में स्नान करने को जाती है और स्नान करने के बाद विली के मन्दिर में जाती है। वहाँ उसके घरवाले तथा भाईबन्द पहले ही से इकट्ठे रहते हैं। लड़की विली के सामने साष्टाङ्ग दण्डवत् करती है और आशीर्वाद माँगती है। तदन्तर एक जोड़ा जंगली पक्षियों का बलिदान दिया जाता है। तब सब लोग लड़की के घर जाते हैं। वहाँ उन लोगों को भोज दिया जाता है जिसमें कुत्ते और घड़ियाल का मांस ज़रूर रहता है।

लड़की सोलह सत्रह वर्ष की होने पर ब्याहने योग्य समझी जाती है। उस समय लड़की का बाप अपने सरदार से सलाह करके ब्याह का दिन नियत करता है और जाति के कुल कुँवारे लड़के बुलाये जाते हैं। लड़के लोग जब आ जाते हैं तब लड़की को एक घर में बन्द कर देते हैं। उस घर की दीवार में बहुत से छेद बने रहते हैं जिनसे कुँवारे लड़के अपनी अपनी छड़ी एक ही साथ घर के भीतर डालते हैं। बाहर से सरदार लड़की से एक छड़ी चुन लेने के लिए कहता है। जिस लड़के की छड़ी चुनी जाती है वही उसका पति होता है। तत्पश्चात् निमन्त्रित आदमियों और शेष युवकों को खाना खिलाया जाता है। सन्ध्या समय दुलहा दुलहिन को लेकर अपने घर चला जाता है। बहुत सी चिड़ियाँ, शहद, मोम इत्यादि पदार्थ लड़की के बाप को मिलते हैं।

मरने पर लाश को घर से बाहर करके आँगन में रख देते हैं और सब लोग आसपास इकट्ठ हो जाते हैं। औरतों के रोने धोने के पश्चात् गाँव का सरदार और नज़दीकी नातेदार लोग लाश को धोते हैं और गाड़ने के लिए ले जाते हैं। लड़के और औरतें रोती हुई साथ जाती हैं। लाश को क़ब्र में रखने के समय सरदार विली से प्रार्थना करता है कि मृत प्राणी को वह अपनी शरण में ले ले। एक चिड़िया मार कर उसका ख़ून लाश पर छिड़का जाता है। तब नातेदार लोग उस पर मिट्टी डालते हैं। चौदह दिन तक अपने पराये सब लोग रोज़ रात को आकर क़ब्र पर राते हैं। चौदहवें दिन भाज होता है और मृत प्राणी के नाम पिण्ड दिया जाता है।

नयादियों में पंचायत का यह नियम है कि गाँव का सब से बूढ़ा आदमी सरदार माना जाता है। उसके मरने पर दूसरा बूढ़ा उसके स्थान में चुना जाता है। सरदार बहुत माननीय समझा जाता है। विवाह में, बीमारी में, शोक में, मृत्यु होने पर उसी की आज्ञानुसार सब काम होते हैं। चोरी बड़ा भारी अपराध गिना जाता है। चोर को जाति से बाहर निकालने का दण्ड मिलता है। नयादियों में कई वर्ग होते हैं। वर्ग के भीतर आपस में विवाह नहीं होता।

नयादी बड़े आलसी होते हैं। ये कोई काम नहीं करना चाहते। विशेषतः रस्सी बेचकर अथवा भीख माँगकर ये अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। अँगरेज़ी सरकार तथा पादरी लोग इनकी दशा सुधारने की बहुत कोशिश कर रहे हैं। परन्तु अभी तक यथेच्छ सफलता नहीं प्राप्त हुई।

मुरलीधर।

विद्या।

इस चमकते हुए दिवाकर से।
रस बरसते हुए निशाकर से॥ १॥
जो अलौकिक प्रकाशवाली है।
औ सरसता में जो निराली है॥ २॥
वह जगद्वंदनीय विद्या है।
अति अनूठा प्रभाव जिसका है॥ ३॥
जोति सूरज जहाँ नहीं जाती।
यह वहाँ भी है रंग दिखलाती॥ ४॥
जो शशी को सरस नहीं कहते।
इसके रस से हैं मोद वह लहते॥ ५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सुधा है अमर बनाती है।
यह सुयश बेलि को उगाती है॥ ६॥
हो गये व्यास बालमीक अमर।
आज भी है सुकीर्ति भूतल पर॥ ७॥
कामदा यह सुकल्पलतिका है।
शान्तिदात्री विचित्र वटिका है॥ ८॥
कालिदासादि कविवरों का दल।
पाचुका है अनन्त इच्छित फल॥ ९॥
शान्ति इससे शुकादि ने पाई।
दीप्ति जिनकी दिगन्त में छाई॥ १०॥
गंग की यह पवित्र धारा है।
जिसने जाबालि को उधारा है॥ ११॥
नीच को ऊँच यह बनाती है।
काठ में भी सुफल फलाती है॥ १२॥
था विदुर का कहाँ नहीं आदर।
कौन कहता उन्हें न नयनागर॥ १३॥
सद्गुणों का प्रदीप्तपूषण* था।
वह विबुध-मंडली-विभूषण था॥ १४॥
शक्ति है अति अपूर्व विद्या की।
धूम सी है विचित्र क्षमता की॥ १५॥
विश्व के बीच वस्तु हैं जितनी।
एक में भी न शक्ति है इतनी॥ १६॥
स्वच्छ नीले अनन्त नभतल का।
सूर्य्य, बुध, सोम, शुक्र, मंगल का॥ १७॥
इन चमकते हुए सितारों का।
पूँछ वाले अनन्त तारों का॥ १८॥
भेद सब यह हमें बताती है।
मंजु दिल की कली खिलाती है॥ १९॥
सैकड़ों कोस एक कोस बना।
रेल की है अजब हुई रचना॥ २०॥
जो समाचार साल में आता।
है उसे पल में तार पहुँचाता॥ २१॥

* पूषण = सूर्य।

है रसायन की ऐसी चारु क्रिया।
सब धरागर्भ जिसने छान लिया॥ २२॥
बन गई हैं विचित्र नौकायें।
जो जलधिगर्भ में चली जायें॥ २३॥
था असंभव अनन्त में उड़ना।
युक्ति से दिव्य व्योमयान बना॥ २४॥
अब नये फूल फल हैं उपजाते।
हैं मृतक भी सजीव बन जाते॥ २५॥
देखने भालने लगे अंधे।
पुतलियाँ कर रही हैं सब धंधे॥ २६॥
बात बहरे समस्त सुनते हैं।
कपड़े बन्दर भी अच्छे बुनते हैं॥ २७॥
बोलने चालने लगे गूंगे।
बन गये रंग रंग के मूंगे॥ २८॥
दूरबीनें कलें बनीं ऐसी।
हैं न देखी सुनी गईं जैसी॥ २९॥
किन्तु यह सब कमाल है किसका।
गुणमयी एक दिव्य विद्या का॥ ३०॥
वेद-मंत्रों के जो हुए द्रष्टा।
हो गये उपनिषद् के जो स्रष्टा॥ ३१॥
आज भी उन महर्षि की वाणी।
है जगत बीच शुद्ध कल्याणी॥ ३२॥
तर्क गौतम कणाद जैमिनि का।
कृत्य पाण्डित्य-पूर्ण पाणिनि का॥ ३३॥
शंकराचार्य्य का स्वमतमंडन।
सूरि श्रीहर्ष का प्रबल खंडन॥ ३४॥
आज भी है अजस्र काम आता।
है जगत में प्रकाश फैलाता॥ ३५॥
यह सभी है विभूति विद्या की।
है उसी की सुकीर्ति यह बाँकी॥ ३६॥
माघ, भवभूति का सुधावर्षण।
भारवी का अपूर्व संभाषण॥ ३७॥
यह सदा ही श्रवण कराती है।
दिव्य कलकंठता दिखाती है॥ ३८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जननि के समान यह धरती।
है पिता के समान हित करती ॥ ३९ ॥
है तरुणि केलि काज बन जाती।
कीर्ति को है दिगन्त फैलाती ॥ ४० ॥
यह निर्धनों का महाधन है।
दुष्टजन के लिए सुशासन है ॥ ४१ ॥
है निबल के लिए अनूपम बल।
है समुद्योग का समुत्तम फल ॥ ४२ ॥
है विमल तेज तेजहीनों को।
रत्न की मञ्जु खानि दीनों को ॥ ४३ ॥
है जराग्रस्त के लिए लकुटी।
व्यग्र उद्विग्न की सुशान्ति कुटी ॥ ४४ ॥
यह बिपत में विरामदायिनि है।
क्लान्ति में मोद की विधायिनि है ॥ ४५ ॥
सहचरी है अनिन्द्य कर्म्मों में।
है व्यवस्था विशुद्ध धर्म्मों में ॥ ४६ ॥
यह निरवलम्ब का सहारा है।
तप्त हिय की सुवारि-धारा है ॥ ४७ ॥
कालिमा की कलिन्द-नन्दिनि है।
पाप के पुंज की निकन्दिनि है ॥ ४८ ॥
है सुकोकिल समान कल बैनी।
हंस की भाँति मंजु गुन ऐनी ॥ ४९ ॥
मोर के पक्ष लौं सुचित्रित है।
यन्त्र की भाँति यह नियंत्रित है ॥ ५० ॥
मल्लिका है प्रफुल्ल मोदमई।
पल्लवित बेलि है प्रमोद छई ॥ ५१ ॥
है हृदय-तम-विनाशिनी सुप्रभा।
सद्विचारों को है विचित्र सभा ॥ ५२ ॥
है कला उक्ति युक्ति में ढाली।
है तुला बुद्धि तौलने वाली ॥ ५३ ॥
स्वर्ग की सैर यह कराती है।
मंजु अलकापुरी लखाती है ॥ ५४ ॥
है सजाती नवल जलद-माला।
है पिलाती पियूष का प्याला ॥ ५५ ॥
है सुनाती मधुर भ्रमर गूँजन।
पक्षिकुल का अलाप कलकूजन ॥ ५६ ॥
है दिखाती हरी भरी डाली।
फूल फल से लदी सुछबिवाली ॥ ५७ ॥
है जहाँ पर त्रिविध पवन बहती।
है जहाँ मत्त कोकिला रहती ॥ ५८ ॥
जो सदा सौरभित सुपुष्पित है।
जो सुक्रीड़ित वो मंजु मुखरित है ॥ ५९ ॥
इस तरह के अनेक उपवन में।
बाग़ में, वाटिकान में, बन में ॥ ६० ॥
है हमें यह विहार करवाती।
है छटा का रहस्य बतलाती ॥ ६१ ॥
स्वच्छ-जल-राशि-मय सरोवर पर।
हिमधवल-कर-प्रदीप्त गिरवर पर ॥ ६२ ॥
यह हमें है सप्रेम ले जाती।
है सुछबि का विकाश दिखलाती ॥ ६३ ॥
बुद्धि जाती जहाँ न मन जाता।
जो सदा है अचिन्त्य कहलाता ॥ ६४ ॥
जो न मिलता हमें विचारों से।
हैं न पाते जिसे सहारों से ॥ ६५ ॥
है उसे भी यही लखा देती।
थाह उसका है कुछ यही लेती ॥ ६६ ॥
विश्वविद्याकरों विशेष पला।
है इसी से हुआ अशेष भला ॥ ६७ ॥
है अकथ वो असीम गुणमाला।
है उसे कौन भाखनेवाला ॥ ६८ ॥
है यहाँ पर कहा गया जितना।
वह अखिल के समीप है कितना ॥ ६९ ॥
कुछ नहीं है, महा अकिंचितकर।
जिस तरह बूँद और रतनाकर ॥ ७० ॥
इसलिए नेति नेति कहते हैं।
मुग्ध होते हैं, मौन गहते हैं ॥ ७१ ॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना-शतक।

(क्रमप्राप्त)

घूमत हैं दिन रैन चन्द अविरत नभ माँही।
घटत बढ़त ग्रसि जात तासु चिन्ता कछु नाँही॥
अगनित नखत समाज बीच निज छवि दरसावत।
प्रभु तेरो आदेश मानि जगताप नसावत॥ ८०॥

जो प्रभु सब के ईश अहै त्रिभुवन-परिचालक।
ब्रह्मादिक सुर सकल जीवगन को प्रतिपालक॥
जाके अमित प्रभाव सबन पै छाय रहे हैं।
जाके भजन-प्रताप सकल तन-ताप दहे हैं॥ ८१॥

जाके चरण-ललाम भक्त जन के मन मोहैं।
शिव-मन-मानस माहिँ जासु पद-पङ्कज सोहैं॥
जाके चरित अशेष शेष कहि पार न पाये।
जाके भक्ति प्रभाव पुराणन में बहु गाये॥ ८२॥

वालमीकि, शुक, व्यास, सूत, शौनक, वसिष्ठ पुनि।
भरद्वाज, शाण्डिल्य, गर्ग, गौतम, अगस्त्य मुनि॥
नारदादि ब्रह्मर्षि भक्ति भावुक हैं जाके।
रचि रचि ग्रन्थ अनेक जासु महिमा कहि थाके॥८३॥

जाके करि गुनगान वेद हू पार न पावत।
करि इन्द्रिय मन स्ववश योगिजन जाकौं ध्यावत॥
जाकौं पूरण ब्रह्म जानि तन्मय होते यति।
ताके गुन केहि भाँति सकै यह बरनि मन्दमति॥८४॥

हौं निर्गुन केहि भाँति सगुन प्रभु के गुन गाऊ।
विषय-मलिन-मन माहिँ चरण कैसे करि ध्याऊँ॥
बिन उपजे तुअ भक्ति मलिनता मिटै न मन की।
बिना मलिनता मिटे प्रीति उपजै न चरन की॥८५॥

बिन पद-पङ्कज प्रीति लहे यह जन्म वृथा है।
कहौं सत्य कर जोरि नाहिँ यह असत कथा है॥
अहङ्कार महँ भूलि जात सब भूलि आपकौं।
यातें सत-सुख-रहित लहत अति त्रिविध तापकौं॥८६॥

कोउ निज बल को गर्व अबल जन ढिग प्रगटावै।
नहिँ तेरो बल सुमिरि आपनो दर्प दुरावै॥
करै न कबहूँ भूलि रावरी शक्ति बड़ाई।
जनु आपहि अवतरयो पाय तेरी प्रभुताई॥ ८७॥

कोउ प्रभुत्व कछु काल हेतु लहि परम अनस्थिर।
थिर न रहत पल एक लेत अविवेक बोझ सिर॥
निज प्रभुता के निकट कौन प्रभुवर कों मानै।
भक्ति-तिलाञ्जलि देइ धन्य अपने कों जाने॥ ८८॥

कोउ विद्यामद मति भ्रष्ट आचार प्रचारै।
अनाचार करि आप धर्म की राह बिगारै॥
श्रुति-सदर्थ को व्यर्थ कदर्थन करत स्वार्थमति।
असद्ग्रन्थ निरमाय हाथ ठानत अनर्थ अति॥८९॥

बिन पूरब तप किये कोउ धन पावत नाहीं।
सब गुन सों मर्याद बाढ़ि धन की जग माहीं॥
वह जानत हू किते लोग धनमद प्रमादवश।
बिसरि सेइबो जात रावरो चरण-तामरस॥ ९०॥

कोउ निज रूप अनूप हेरि यौवन मदमाते।
रहत आरसी लिए खरे सब सोँ अठिलाते॥
तुअ पद-पङ्कज-दरस-चाह उनके चित नाहीं।
कस उपजै पुनि भजन-भाव उनके मन माहीं॥ ९१॥

कोउ संसारिक वस्तु माहिँ करि प्रेम घनेरे।
पावत अति आनन्द मन्द ताके बनि चेरे॥
सपनेहु तुअ पद-भजन चित्त सोँ नाहिं चहत हैं।
अन्तकाल तेहि सुमिरि फेरि भवबन्ध लहत हैं॥९२॥

बार बार लहि जन्म गर्भ की सहत यन्त्रणा।
या दुख सोँ उद्धार हेतु नहिँ करत मन्त्रणा॥
सब सोँ सुगम उपाय एक तुअ पद उपासना।
बिना भजे प्रभु तोहिँ मिटै नहिँ अशुभ वासना॥९३॥

गर्भ माहिँ जब जन्तु लहै बहु कष्ट मर्म कों।
तब अतिशय पछितात सोचि निजकृत कुकर्म कों॥
बार बार धिक्कार देत अपने कोँ दुख सहि।
बिनवत दुहुँ कर जोरि तुमहि नित उर धीरज गहि॥९४॥

छमहु नाथ अपराध चूक जो भई हमारी।
तुम अगतिन गति नाथ दीन जन के हितकारी॥
मैं पामर मतिमन्द रावरो भजन कियो ना।
गुरुजन औ शुभ शास्त्र वाक्य पर ध्यान दियो ना॥९५॥

विषयन में नित भूलि भजन तेरो नहि कीन्हो।
करि अनीति बहु भाँति वृथा पातक सिर लीन्हो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षणभंगुर यहि अस्थिचर्ममय अधम देह को।
निजकर मानत रह्यौ भूलि तुअ पद-सनेह को ॥९६॥
फँसि इन्द्रिय-सुख माहिँ वृथा मैं जन्म गमायो।
सपनेहु में छन एक नाहिँ तेरो गुन गायो ॥
अब पछिताये होत कहा भवबन्धन पाये।
नहि उद्धार उपाय बिना तेरे पद ध्याये ॥ ९७ ॥
लीजै नाथ उबारि मेटि झट गर्भ-यातना।
अब मोंसों कोउ भाँति दुःख यह सह्यौ जातना ॥
यों बिनती बहु भाँति रावरी करत जीव जब।
तुअ करुणा तें जन्म पाय पुनि बिसरि जात सब ॥९८॥
मेरी हू गति नाथ यहै निश्चय कर जानहु।
हौं यद्यपि अति नीच तदपि अपनो करि मानहु ॥
गयो बालपन बीति बीति है पुनि तरुनाई।
कबहुँ भज्यौ नहिं तोहिँ रहति चिन्ता चित छाई ॥९९॥
हौं अनाथ सब भाँति बाँह मेरी गहि लीजै।
निज पद-पङ्कज-प्रीति अचल मों को प्रभु दीजै ॥
करी दया जो नाथ अजामिल, गज, गणिका पै।
मों हित दीजै दीठि बेर इक वाहि दया पै ॥ १०० ॥
मैथिल-द्विज-कुल माहिँ जन्म लै कहा कियो मैं।
जौं नहिँ तेरी शरण सौंपि यह चित्त दियो मैं ॥
बीतै तुअ पद सेवि समय नित बिन कदर्थना।
जनसीदन कर जोरि करै प्रभु यही प्रार्थना ॥ १०१ ॥

जनार्दन झा।

जादू का खेल।

रस्वती के पाठक सरस्वती के फ़रवरी ०७ के अङ्क में "परचित्त-विज्ञान-विद्या" नामक लेख में जिस विषय को पढ़ चुके हैं, उसी विषय की मैं प्रायः सब अपनी आँखों देखी घटनाओं का उल्लेख संक्षेप से यहाँ करता हूँ।

गोरे प्रोफ़ेसर ग्रोसी एक बार लाहौर में आये थे। उन्होंने नार्थ वेस्टर्न रेलवे, लाहौर, की नाटकशाला में १४, १५ और १६ दिसम्बर १९०६ को, रात के समय, अपनी करामातों के आश्चर्य्यपूर्ण खेल दिखलाये। सैकड़ों लोग टिकट ख़रीद कर उनका खेल देखने के लिए वहाँ पहुँचे। देखनेवालों में योरोपियन लोगों की भीड़ अधिक थी। प्रोफ़ेसर साहेब ने (१) पदार्थ घटना (Material phenomena), (२) अपने विचार किसी और के भीतर सञ्चार कर देना (Thought transferance), (३) औरों के विचारों को जान लेना (Thought reading), और (४) सम्बन्धसूत्र अथवा संस्कार (Association of objects) के विषय में कई विलक्षण खेल दिखाये।

[१]

खेलने के कार्डों (ताशों) के कई खेल उन्होंने दिखलाये। पहले ताश के कुछ कार्ड दर्शकों में वितरण कर दिये। जब उनसे वे कार्ड माँगे, तब उनके पास से वे लुप्त हो गये, और जिन लोगों को नहीं दिये गये थे, उनमें से कई लोगों से माँगे, तो उनकी जेब से वे निकल आये। प्रोफ़ेसर साहब कार्डों को हाथ में पकड़ कर जब लोगों को दिखला रहे थे, तब देखते देखते अपने आप उन कार्डों का आकार छोटा हो गया। उपस्थितजनों में से कुछ को भिन्न भिन्न कार्ड दिये, और उनमें से एक एक से पूछा, कि आपके पास कौन सा कार्ड है? उसने जिसका नाम बतलाया, वह कार्ड दूसरे के हाथ में दिखाई दिया, और उसके हाथ में कोई और ही कार्ड देख पड़ा। इस प्रकार कार्डों के और भी कई विचित्र खेल दिखलाये।

एक दर्शक से रूमाल माँगा। उसने अपना जेबी-रूमाल दिया। प्रोफ़ेसर साहब ने उस रूमाल में लिखने की दो पत्थर की स्लेटें बाँधना चाहा। परन्तु रूमाल बहुत छोटा था। इसलिए उन्होंने उसको खींचते खींचते इतना बड़ा कर दिया, कि स्लेटें अच्छी तरह बँध सकें। फिर दोनों तरफ़ से साफ़ स्लेटें और बढ़ाया हुआ रूमाल, रूमाल के मालिक को देकर कहा, कि वह उसमें स्लेटों को बाँध कर उन्हें ऊँचा उठाये रहे। थोड़ी ही देर में उन स्लेटों पर मोटे मोटे अक्षर लिख गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर एक ताज़ी नारंगी लाकर, उसके सब तरफ़ से अखण्डित होने की कई दर्शकों से परीक्षा करवाई। तब उसे एक आदमी को इसलिए दी, कि वह उसे अपने रूमाल में मज़बूत बाँध ले। उस नारंगी के बँधजाने पर प्रोफ़ेसर ने एक वृद्धदर्शक से रूमाल माँगा, और उसे इकट्ठा करके अपने दोनों हाथों की हथेलियों से दबाते दबाते बहुत छोटी सी गोली बना दी। जब धीरे धीरे वह गोली भी हाथों से बिलकुल ग़ायब हो गई, तब पहले आदमी से नारंगी लेली, और सबके सामने उसको तोड़ कर, उसमें से वही ग़ायब हुआ रूमाल निकाल कर, जिसका था उसे वापिस कर दिया।

एक छोटे से गोले को अपने सिर पर रक्खा, तो वह मुँह से निकल आया। छाती पर रक्खा, तो पीठ पर निकल आया। ऊपर फेंका तो नीचे उतरते हुए एक के वैसे ही दो गोले बन गये। इसी तरह उस गोले को प्रोफ़ेसर साहब एक हाथ से अपने शरीर के एक भाग पर रखते, और किसी और भाग में से निकलते हुए को दूसरे हाथ से पकड़ लेते।

एक आदमी से आपने जेब-घड़ी माँग ली। उसे एक काग़ज़ में लपेट कर इस तरह नीचे गिरादी, मानों लपेटते लपेटते असावधानी से गिर गई हो। उसे उठाकर देखा तो वह बहुत क़ीमती घड़ी लोहे का एक टुकड़ा बन गई थी। फिर दर्शकों में से एक को रंगभूमि (Stage) पर खड़ा करके उसके हाथों में, छाती की उँचाई पर, एक चीनी की रकाबी दी। उससे प्रायः तीस फुट दूर दर्शकों के बीच खड़े होकर, प्रोफ़ेसर ने पूर्वोक्त लोहे के टुकड़े को तश्तरी की ओर दिखाकर एक, दो, तीन कहा। तीन कहते ही एक ओर प्रोफ़ेसर के हाथ की वह लोहे के टुकड़े के रूपवाली घड़ी ग़ायब हो गई, और दूसरी ओर रंग-मंच पर खड़े हुए आदमी के हाथ से रकाबी गिरकर टुकड़े टुकड़े हो गई। फिर देखने से मालूम हुआ, कि वह घड़ी रंगभूमि पर खड़े हुए मनुष्य की पीठपर, उसके कोट के साथ चिपकी हुई अपने प्रकट रूप में विद्यमान है।

उपस्थित जनों से रुपये माँग लिये और उनके डालर (अमेरिकन सिक्के) कर दिखाये। एक योरोपियन लेडी से रेशमी दस्ताने लिए, तो थोड़ी देर में वे चमड़े के टुकड़े बन गये। लोगों से सोने की अंगूठियाँ और रूमाल लेकर उन्हें छाते का कपड़ा बना दिया। एक गज़ कोरे काग़ज़ के देखते देखते अँगरेज़ों के जातीय झंडे (Union Flags) बन गये। लोगों के हाथों के रुपए दूर से खड़े खड़े ग़ायब कर दिये। एक दर्शक की नाक से रुपए निकाल दिये।

फिर प्रोफ़ेसर साहब ने एक बक्स और एक थैला रंगमँच पर दर्शकों के सामने लाकर रक्खा और कहा, कि कुछ आदमी आकर इसकी परीक्षा करलें, कि इसमें कोई छेद या और कोई खुल जाने का मार्ग तो नहीं है? कुछ लोगों ने जाकर अच्छी तरह उन दोनों चीज़ों को देखा, और प्रोफ़ेसर साहब के पास ही उनकी चालाकी पकड़ने के लिए खड़े रहे। तब प्रोफ़ेसर ने अपने एक जवान नौकर को बुलाकर उसे उस थैले में डाल दिया, और थैले के मुँह को बाँधने के लिए समीपवर्ती दर्शकों से प्रार्थना की। उन्होंने अपनी अपनी जेब से रूमाल निकाल कर उस थैले के मुँह को ख़ूब मज़बूती से बाँधा। फिर उस मनुष्य को सन्दूक़ के भीतर रख कर सन्दूक़ तालों से बन्द कर दिया गया और तालियाँ दर्शकों ने अपने ही पास रक्खीं। सन्दूक़ सब तरफ़ से मोटी मोटी रस्सियों से ख़ूब कस कर बाँधा गया। तब दर्शकों ने उस बक्स को अच्छी तरह हिला हिला कर उसमें बंद किये गये आदमी के वर्तमान होने की परीक्षा की। इसके बाद उस बक्स के इर्द गिर्द प्रोफ़ेसर ने एक छोटा सा पर्दा खड़ा किया। यह करके ज्योंही प्रोफ़ेसर साहब एक, दो, तीन, चार, गिनते हुए पर्दे में प्रविष्ट हुए त्योंही बक्स में बंद किये गये आदमी ने झट पर्दे से बाहर छलांग मारी, और पर्दा हटा दिया। परन्तु प्रोफ़ेसर साहब अदृश्य हो गये। यह सन्दूक़ पर्दे के भीतर अधिक से अधिक आध मिनट रहा होगा। परन्तु इतने में ही उस आदमी के बाहर निकल आने का आश्चर्य्यमय कार्य्य हो गया। दर्शकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने बक्स के ताले और रस्सी की गाँठें अच्छी तरह देखीं, और सब पूर्ववत् पाया । बहुत देर में बड़े परिश्रम से उन रस्सियों और तालों को जो खोला, और सन्दूक़ का ढकना उठाकर देखा, तो उसमें उन्हीं रूमालों से ठीक उसी तरह बँधे हुए मुँह वाला वही बोरा पाया । उसको सन्दूक़ से बाहर निकाल कर जब उसका मुँह खोला, तो भीतर से हज़रत प्रोफ़ेसर साहब निकल आये । उस समय दर्शकों को जो हैरत हुई उसका अनुमान पाठक स्वयं ही कर लेंगे।

ये सब खेल और आगे लिखे हुए कर्तब प्रोफ़ेसर साहब ने चुपचाप नहीं किये; किन्तु साथ साथ लोगों को विलक्षण प्रकार की बात चीत से हँसा हँसा कर अपनी अद्भुत योग्यता का परिचय भी देते रहे।

(२)

फिर प्रोफ़ेसर साहब ने अपनी एक सहचरी 'मिस' (कुमारिका) को रंग-मंच पर ला खड़ी किया । काले रंग की एक पट्टी की दर्शकों से इस लिए परीक्षा कराई कि उसमें से कुछ दिखाई तो नहीं देता । तब उससे उक्त स्त्री की आँखें बाँध दीं और उपस्थित जनों की ओर पीठ करके उसे खड़ा किया । प्रोफ़ेसर साहब स्वयं दर्शकों के पास जाकर पूछने लगे कि वे उस लेडी से क्या क्या कार्य्य करवाना चाहते हैं । कई आदमी मिलकर उन्हें चुप चाप अपनी इच्छा बारी बारी से बताते रहे । उनमें से एक एक की इच्छा जान कर प्रोफ़ेसर साहब रंग-मंच पर चढ़ आते, और मुँह से कुछ न कह कर दूर से उस लेडी पर अपना हाथ झाड़ते, अर्थात् पाश करते । तब वह परविचारवशीभूत (Hypnotised) लेडी आँखों पर पट्टी बाँधे हुए दर्शकों की ओर मुँह करके चलती । उससे कुछ दूर पीछे पीछे प्रोफ़ेसर साहब चुपचाप चलते और मुँह से कुछ कहे बिनाही अपने विचारों को उसमें पहुँचाते जाते । वह स्त्री उन विचारों के अनुसार धीरे धीरे नियत स्थान पर पहुँच कर बुलाने वालों की इच्छानुसार ठीक ठीक कार्य्य कर दिखाती । कोई कहता, मेरी उँगुली से अँगूठी निकालकर अमुक आदमी को पहना दो । कोई कहता मेरी घड़ी मेरी जेब से निकालकर अमुक को दे दो । कोई कहता मेरी टोपी अमुक के सिर पर रख दो या मेरे बटुवे के कई सिक्कों में से अमुक सिक्का निकालकर दिखला दो । किसी ने अपने सिर के एक भाग से बाल तोड़ लिया और उसे रूमाल में लपेट कर किसी को दे दिया और कहा, कि उससे बाल लेकर मेरे सिर के उसी स्थान पर रक्खो जहाँ से मैंने तोड़ा है । मेरी जेब के सिगरेट बाक्स का एक सिगरेट दियासलाई से जलाकर अमुक को दे आवो । मेरी जेब का रूमाल अमुक की जेब में डाल आवो । मेरी जेब से रुपया निकालकर अमुक स्थान में पहुँचा दो । मेरे हाथ को पकड़कर मुझे रंग-मंच पर लेजाओ और वहाँ रक्खी हुई घंटी मेरे हाथ से बजवावो । मेरी घड़ी की सूई घुमाकर इतने बजे पर कर दो । इत्यादि इत्यादि लोगों ने उसकी परीक्षा में कोई बात बाक़ी न रहने दी । यहाँ तक कि एक योरोपियन सिपाही ने अपने कोट का बटन अपने पास बैठे हुए सिपाही के कोट में लगा दिया, और कहा, कि यह बटन मेरे कोट में लगा दिया जाय । जब प्रोफ़ेसर उस लेडी पर अपने हाथ का पाश देने के लिए स्टेज पर गये, तब वह आदमी भगकर नाटकशाला से बाहर चला गया; और जब आँखें बाँधे हुए वह स्त्री टटोल टटोल कर उसकी बैठने की जगह पर पहुँची, तब वह किसी और दरवाज़े से रंग-मंच के पास जा पहुँचा । पहले उस स्त्री ने उस दूसरे आदमी के कोट से बटन निकाला । फिर ठीक उसी मार्ग से घूमती घूमती, जिससे पहला आदमी मँच पर गया था, वहीं जा पहुँची जहाँ वह खड़ा था और उसके कोट में वह बटन उसने लगा दिया ।

(३)

इसी तरह प्रोफ़ेसर साहेब ने भी अपनी आँखों पर काग़ज़ के मोटे मोटे टुकड़े रखकर उन पर दर्शकों से पट्टी बँधवाई, जिससे किसी को भी यह सन्देह न हो, कि उन्हें कुछ दिखाई देता है । फिर जिस जिसने जो जो काम करवाना चाहा, उसे बिना किसी के बताये या बिना किसी इशारे के जाने केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके विचारों को दूर से ही अध्ययन करके उन्होंने ठीक ठीक कर दिखाये। कई दर्शकों ने कुछ काम तो प्रोफ़ेसर से ऐसे करवाये, कि देखने वालों के पेट हँसते हँसते फूल गये। उनकी हँसी किसी तरह रुकती ही न थी।

(४)

दर्शकों में से कुछ लोगों ने प्रोफ़ेसर की आँखों पर पट्टी बाँध, उन्हें रंगस्थल से बहुत दूर लेजाकर, रंग-मंच की ओर पीठ करके खड़ा किया। फिर एक दर्शक ने खड़िया के टुकड़े से रंग-मंच पर बहुत ही पेचदार टेढ़ी मेढ़ी रेखायें खींचीं। इसके बाद प्रोफ़ेसर को रंग-मंच पर पहुँचाया। आँखें बँधी होने पर भी प्रोफ़ेसर साहेब उन्हीं रेखाओं के ऊपर टेढ़े तिरछे हो हो कर घूमते फिरे।

फिर प्रोफ़ेसर ने कुछ आलपीनें कुछ दर्शकों को दीं, कि वे उन आलपीनों को छिपा दें। ऐसा किये जाने पर आँखों पर पट्टी बाँधे हुए और बिना किसी के कुछ बताये प्रोफ़ेसर साहेब ने उन आलपीनों को ढूढ़ लाने का बीड़ा उठाया। तब प्रोफ़ेसर की आँखों पर पट्टी बाँधकर उन्हें दर्शकों की ओर पीठ करके लोगों ने खड़ा किया। आलपीनें तरह तरह से छिपाई गईं। किसी ने बच्चे के पहने हुए कपड़ों के भीतरी भाग में चुभो कर उसे कमरे के एक कोने में ऊँची जगह पर खड़ा कर दिया। किसी ने रूमाल के कोने में लगा कर उसे दीवार के ऊपर किसी ऊँची जगह टाँग दिया। किसी ने कहीं छिपाया, किसी ने कहीं; परन्तु प्रोफ़ेसर साहब आँखें बाँधे ही हुए वे सब आलपीने, जहाँ जहाँ रक्खी गई थीं, वहाँ वहाँ से ढूंढ़ लाये। औरों के विचार पढ़ने, उन्हें दिमाग़ी शक्ति के द्वारा किसी और के भीतर पहुँचाने, "मैगनेटाईज़्ड" (Magnetised) चीज़ें जिधर से गई हैं उधर से उनके जाने का मार्ग मालूम करने, और पदार्थों का सम्बन्ध अनुभव करने के विषय में और भी कितनेही विचित्र विचित्र खेल प्रोफ़ेसर साहब ने दिखलाये।

प्रोफ़ेसर साहेब ने अपनी वक्तृता में बताया, कि पदार्थघटना (Material Phenomena) विषयक काम तो थोड़े ही परिश्रम से साध्य हो सकते हैं; परन्तु अन्य कार्य्य कुछ विशेष शक्तियों को लाभ किये बिना नहीं किये जा सकते। इसलिए उनको कर दिखाना कठिन काम है। परमेश्वरदत्त।

वर्षा-वर्णन।

१—गगन में घन हैं घिरने लगे,
मुदित चातक भी फिरने लगे।
घट गया रवि-तेज कराल है,
अब मनोहर पावस-काल है॥

२—अनल सी जलती महि थी जहाँ,
अब भरा जल ही जल है वहाँ।
द्रवित भूमि हुई सब कर्कशा,
स्थिर सदा रहती किसकी दशा?

३—झुलस जो तरु थे तप से गये,
लहलहे अब वे सब हैं भये।
न अब आतप-ताप रही कहीं,
दुख बिना सुख है मिलता नहीं॥

४—भर गये सलिलाशय रम्य हैं,
विपुल पङ्किल मार्ग अगम्य हैं।
अवनि-आर्त्ति हुई सब दूर है,
सुख हुआ सब को भरपूर है॥

५—नव तृणों पर इन्द्रबधू-गण,
कर रहे अब यों छवि-धारण।
हरित वस्त्र मनों पहने मही,
अरुण बूँद भली जिस पै रही॥

६—गरजते नभ में घन घोर हैं,
कर रहे रव दादुर मोर हैं।
चमकती चपला डरता हिया,
फिर न क्यों कर मान तजें प्रिया?

७—काली घटा में उड़ती बकाली,
छटा दिखाती अपनी निराली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानों खुले केश नभस्थली के,
प्रसून हैं ये खिसके उसी के॥

८—मतङ्ग से, शैल-तुरङ्ग से, कहीं,
विहङ्ग से, वृक्ष-कुरङ्ग से, कहीं।
कहीं कहीं दुर्गम दुर्ग से बने,
विराजते हैं घन व्योम में घने॥

९—देते दिवाकर न दर्शन हैं सदैव,
तारे शशी-युत छिपे रहते तथैव।
मानों हुए अब पयोद नभोवितान,
होता न ज्ञात सहसा समय-प्रमाण॥

१०—मन्दानिलाकुलित पत्र-समूह-धारी,
गाते जहाँ भ्रमर सुन्दर-शब्द-कारी।
उत्फुल्ल-पुष्प-परिपूर्ण कदम्ब-वंश,
है हास्य सा कर रहा प्रकट-प्रशंस॥

११—हैं रात्रि में निज-प्रकाश-छटा दिखाते,
अङ्गार से तिमिर के तनु में लगाते।
मानों लता-द्रुम-विभूषण हैं सुहाते,
खद्योत-वृन्द कहिये न किसे लुभाते?

१२—जलद कर रहे हैं नम्र हो नीर-दान,
सतत बढ़ रहे हैं धान शोभा-निधान।
सुख-युत करते हैं कोकिला मोर गान,
प्रमुदित निज जी में हो रहे हैं किसान॥

१३—पुलकित करते हैं स्पर्श से अङ्ग अङ्ग,
स्व-सुमन-शर मानों मारता है अनङ्ग।
श्रम सब हरते हैं, स्वेद-सन्ताप-वृन्द,
जल-कण गिरते हैं व्योम से मन्द मन्द॥

१४—हुई शोभाशाली प्रकट हरियाली क्षिति पर,
निराली शोभा है गिरि-वर वनों की सुखकर।
दिखाती वर्षा में प्रकृति नित जो दृश्य अपने,
नहीं होते वैसे, अपर ऋतु में प्राप्त सपने॥

१५—है मेघ-ध्वनि ही मृदङ्ग जिसमें केकी-कला नृत्य है,
केका-कोकिलकूक-गान जिसमें होता तथा नित्य है।
झिल्ली की झनकार-तार जिसमें है मञ्जुवीणा-ध्वनि,
देती पावस है न मोद किसको यों नाट्यशाला बनी?

मैथिलीशरण गुप्त।

बिजली का बाजा।

बिजली मनुष्य के लिए गाड़ी चलाती है, ख़बर ले जाती है, रोगों को दूर करती है और न मालूम कितने और काम करती है। अब बिजली ने बाजा बजाकर मनुष्य के चित्त को मोहित करना भी सीख लिया है। यह वृत्तान्त अमेरिका के एक अख़बार में छपा है।

डाक्टर थेडूस केहिल अमेरिका के हालयोक नाम नगर के रहनेवाले हैं। उन्होंने एक तरकीब निकाली है। उससे एक जगह बिजली के कम्पन के रूप में बाजे की ध्वनि उत्पन्न की जाती है और बिजली ही के तारों के द्वारा वहाँ से हज़ारों होटलों, क्लबों और मकानों में पहुँचाई जाती है। इन होटल आदि स्थानों में ऐसा मालूम होता है मानों वहीं पर कोई बाजा बजा रहा हो। केवल एक बिजली की कल ही के द्वारा यह वाद्य-ध्वनि पैदा की जाती है। तारवाले या बाँसुरी की तरह के किसी और बाजे की आवश्यकता नहीं होती। इस बाजे को तार के द्वारा जहाँ चाहें ले जा सकते हैं। दूर के होटलों या क्लबों में तार द्वारा लेजाकर जो बाजा सुनाया जाता है उसकी ध्वनि टेलीफ़ोन की फुसफुसाहट या फ़ोनोग्राफ या ग्रामोफोन की दोषपूर्ण ध्वनि की भाँति नहीं होती। किन्तु उसकी तान और लय ऐसे साफ़ और तेज़ होते हैं मानों बजानेवाले सामने ही बैठे बाजा बजा रहे हों।

वास्तव में शब्द केवल वायु-कम्पन है। बोलने वाले के ओंठों के हिलने से, और कण्ठ और मुख से निकली हुई शक्तिविशेष से, वायुमण्डल में कम्पन पैदा होते हैं। वही कम्पन सुनने वाले की कर्णेन्द्रिय पर टकराकर उसके मन में शब्द-ज्ञान उत्पन्न करते हैं। इस शब्द-ज्ञान की तेज़ी और धीमापन वायु-कम्पनों की संख्या और तेज़ी पर अवलम्बित हैं। अर्थात् वायु-कम्पनों के घटाने बढ़ाने से उनसे उत्पन्न हुआ स्वर घट बढ़ सकता है—तेज़ और मध्यम हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है। इसी प्रकार एक दिये हुए स्वर को उत्पन्न करने के योग्य संख्या और वेग वाले विद्युत्कम्पनों का पैदा करना भी सम्भव है।

मालूम होता है कि इस बिजली के बाजे के आविष्कर्त्ता डाक्टर केहिल ने ध्वनिशास्त्र और विद्युद्-विज्ञान के मूल तत्त्वों को मिलाकर इस प्रकार से उनका व्यवहार किया है जिससे यह बाजा उत्पन्न हो गया। जिस रीति से उन्होंने यह बाजा बनाया है उससे और दूसरी रीतियों से केवल इतनाही फ़र्क़ है कि यह रीति बिलकुल विद्युन्मयी है। अर्थात् अब तक तार, नरकुल, बाँसुरी आदि मुँह से बजाई जानेवाली चीज़ों या और ऐसे ही यन्त्रों द्वारा वायु में जो कम्पन उत्पन्न होता है उसी से वाद्य की सृष्टि की जाती थी। परन्तु केहिल की रीति के अनुसार वाद्य केवल वैद्युतिक कम्पनों द्वारा भी उत्पन्न किया जा सकता है। वायु-कम्पन के पैदा करने की ज़रूरत नहीं होती। बिजली ही के रूप में यह वाद्य सब कहीं पहुँचाया जाता है। निर्दिष्ट स्थानों पर पहुँचने पर इस वाद्य की बिजली वायु के कम्पनों में परिणत हो जाती है। ये कम्पन अनेक चन्दा देने वालों के घरों में, चाहे वे घर एक दूसरे से मीलों ही क्यों न दूर हों, वाद्य सुनाते हैं।

डाक्टर केहिल वर्षों से इस तजरिबे में लगे थे। अब जाकर उन्होंने उसमें इतनी सफलता पाई है कि वे बिजली के बाजे का पेशा कर सकते हैं। अर्थात् अब वह क़ीमत लेकर एक ही जगह बैठे हुए सैकड़ों स्थानों में बाजा सुना सकते हैं। हालयोक में उनकी एक बड़ी भारी प्रयोगशाला है। उसमें एक बड़ा भारी बिजली उत्पन्न करनेवाला यन्त्र है। उसमें सिर्फ़ विद्युत्तरङ्ग पैदा करने के लिए एक सौ पैंतालीस छोटे छोटे यन्त्र लगे हुए हैं। यह यन्त्र-समूह ईंटों के बने हुए पीलपायों पर रक्खा हुआ है। उसका आधार-स्थल कोई साठ फ़ीट से भी ज़ियादह लम्बा है। इस यन्त्र में कोई दो हज़ार ऐसे पुर्ज़े लगे हुए हैं जिनके द्वारा विद्युत्तरङ्ग एक वृत्त से दूसरे वृत्त में ले जाये जाते हैं।

यह समस्त यन्त्रसमूह तौल में कोई पाँच हज़ार छः सौ मन से भी अधिक है और कुल लागत इसमें क़रीब छः लाख रुपये के लगी है। इसके पास ही एक और बड़ा भारी यन्त्र बन रहा है। वह भी थोड़े दिनों में तैयार हो जायगा।

इस छोटे से लेख में इतना स्थान नहीं है कि इस यन्त्र की प्रणाली का कुछ विशेष वर्णन किया जाय। इसलिए उसके सम्बन्ध में कुछ साधारण बातों का कह देना ही काफ़ी होगा। ध्वनि-उत्पादक विभाग में एक वृत्त से दूसरे वृत्त में जानेवाली विद्युत्तरङ्ग के उत्पन्न करनेवाले अनेक उत्पादक यंत्र लगे हुए हैं। हर एक उत्पादक, वाद्य के एक स्वरविशेष के लिए है। इनमें का हर एक उत्पादक हर सेकण्ड में उतने ही विद्युत्कम्पन उत्पन्न करता है जितने वायुकम्पन वाद्य के स्वरविशेष के उत्पन्न करने के लिए प्रति सेकण्ड दरकार होते हैं। वैज्ञानिक रीति से स्वरों की शक्ति का नापना पहिले बहुत मुश्किल था। परन्तु इन उत्पादकों की शक्ति का नापना कुछ मुश्किल नहीं है। किसी मामूली विद्युन्मापक यन्त्र द्वारा उनकी शक्ति का अन्दाज़ा किया जा सकता है। केवल एक ही स्वर को उत्पन्न करनेवाले कई उत्पादकों की शक्ति १५ से १९ घोड़ों की शक्ति के बराबर है। जब एक आदमी अँगरेज़ी बाजे की एक मामूली तुरही को, जिस में कई एक और छोटी छोटी नलियाँ लगी होती हैं, आसानी के साथ मुँह से बजा सकता है तब यह ख़याल करने की बात है कि एक ऐसा बाजा, जिसके केवल एक ही स्वर को उत्पन्न करने में इतने घोड़ों का बल लगता है, कितने स्थानों में वाद्य-ध्वनि पहुँचाने के लायक़ होगा।

इन उत्पादकों की घटमाला (ब्याटरी) जिस कमरे में रक्खी हुई है उसीसे लगा हुआ एक दूसरा कमरा है। उसमें बाजे की कुञ्जियों के पटिये रक्खे हुए हैं। पृथक् कमरे में पटियों के रखने का यह प्रयोजन है कि बजानेवाले का ध्यान उत्पादक इत्यादि चलते रहनेवाले यन्त्रों की गड़गड़ाहट और भनभनाहट के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी ओर न बँट जाय। इन पट्टियों पर लगी हुई कुञ्जियों के दबाने से बाजा बजने लगता है। बाजे की ध्वनि बड़ी मधुर और मनोहर होती है।

डाक्टर केहिल की वाद्यशाला में न तो तारों-वाला यंत्र है और न मुँह से ही बजानेवाला। न वहाँ ढोल है, न सितार, न बाँसुरी, न सारङ्गी। इन बाजों से वायु-कम्पन उत्पन्न होते हैं; परन्तु डाक्टर केहिल के बाजे के बजाने से केवल विद्युत्-कम्पन उत्पन्न होते हैं। जब तक ये कम्पन एक नली तक नहीं पहुँच लेते तब तक हमको कुछ नहीं सुनाई देता। उस नली में जाकर ये विद्युत्-कम्पन वायु-कम्पन में बदल जाते हैं, तब हमको बाजा सुनाई देता है। क्योंकि ईश्वर ने हमारे कान ऐसे बनाये हैं कि वे केवल वायु-कम्पनों ही को ग्रहण कर सकते हैं, विद्युत्-कम्पनों को नहीं। हाँ यदि किसी का ऐसा कान हो कि वह विद्युत्-कम्पनों को भी ग्रहण कर सकता हो तो बात दूसरी है।

हालीयोक में डाक्टर केहिल की प्रयोगशाला एक महल्ले में है और होटल हैमिल्टन उसी नगर के दूसरे मुहल्ले में। प्रयोगशाला से उस होटल तक कई बार वैद्युत-वाद्य मामूली टेलीफ़ोन के तारों द्वारा भेजा गया और इसमें पूरी सफलता हुई। सिर्फ़ दो टेलीफ़ोनों द्वारा वैद्युत कम्पन वायु-कम्पनों में परिणत हो जाते हैं और सुननेवालों को ऐसा मालूम होता है मानों बजाने वाला उनके सामने बैठा हुआ तबले पर थाप लगा रहा है या सारङ्गी पर बालों की कमान फेर रहा है। प्रयोगशाला में बैठे हुए वादक को वैद्युत वाद्य के सिवाय और कुछ नहीं सुनाई देता। उसके पासही टेलीफ़ोन की नली लगी रहती है। वह ध्वनि को सुनता जाता है और सुन सुन कर अपनी मरज़ी के अनुसार ध्वनि को घटाता बढ़ाता रहता है। इस बिजली के बाजे के सिवा और किसी बाजे के द्वारा बजानेवाले को स्वरों पर इतना अधिक अधिकार नहीं होता। इसके द्वारा वह सहजही में सातों स्वरों को उत्पन्न कर सकता है और सहज ही में स्वेच्छानुसार उनका एक दूसरे के साथ मिश्रण भी कर सकता है।

एक और विशेशता इसमें यह है कि बाजा सुनने के लिए टेलीफ़ोन को कान में लगाना नहीं पड़ता। यदि कहीं सुननेवाले को टेलीफ़ोन कान में लगाकर सुनना पड़ता तो उसके कान के पर्दे फट जाते, क्योंकि इस बाजे की ध्वनि का प्रवाह मामूली शब्द-प्रवाह से कहीं बढ़ कर है। वह कमरा जिसमें टेलीफ़ोन ध्वनि को लेजाता है ध्वनि से भर जाता है। ध्वनि खूब गूँज उठती है और वहाँ पर बैठे हुए सब लोग उसे आनन्द से सुनते हैं। टेलीफ़ोन कान में न लगाने से एक और फ़ायदा होता है। आम तौर पर जब हम टेलीफ़ोन को कान में लगाकर कुछ सुनते हैं तब उसकी ध्वनि में कुछ फुस-फुसाहट सी मालूम पड़ती है। लेकिन जब टेलीफ़ोन से लेजाये गये वाद्य द्वारा सारा कमरा गूँज उठता है तब यह सारी फुसफुसाहट ध्वनिप्रवाह में डूब जाती है और वाद्यध्वनि निर्दोष सुनाई देती है।

इन सब बातों के देखने से मालूम होता है कि बिजली के वाद्य में इतने गुणविशेष होते हैं। यथा—एक तो उसका स्वर अति उच्च और मधुर होता है। दूसरे वादक जिस प्रकार के वाद्य का चाहे अनुकरण कर सकता है। यदि वह ढोल का अनुकरण करेगा तो आप को मालूम होगा कि मानों ढोल पर चोट पड़ रही है। यदि उसकी इच्छा हो कि आप सितार सुनें तो आप को मालूम होगा कि मानों सितार पर अँगुलियाँ चल रही हों। परन्तु वास्तव में न तो वादक के पास ढोल है न सितार। सब से बढ़कर विशेशता इस वाद्य में यह है कि वह एकही समय में एकही साथ अनेक स्थानों में बराबर सुनाई पड़ता है।

सूर्य्यनारायण दीक्षित।

नवीन कोकिलाष्टक।

(कोकिला की उक्ति)

१—मातु मेरी अविवेकिनि मोहिँ
कुसंग में छोड़िकै अन्त सिधाई।
क्रूर कवेलन के संग खेलन में
मम बीति गई लरिकाई॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य विवेकिनि मातु प्रकृत्ति ने
यौवन में मोहिँ राह बताई।
काक-कुकंठ को छोड़ि कियौ
कलकंठ सुकोकिल संग सगाई॥
२—बाल सँघाती ये वायस घाती
हमैं छलिबे कहँ घात लगावैं।
देखत ही ढिग आइ के मो मुख
चूमन को निज चोंच चलावैं।
औगुन आपने देखत नाहिँ
ये मों कहँ छेड़त नाहिँ लजावैं।
नारद सों विकृतानन लै
मोहिँ विश्वविमोहिनि ब्याहन धावैं॥
३—अन्त हेमन्त औ सीसिर को भयो
सोभा अनन्त दिगन्त में छाई।
संग लगी निज कन्त के मैं हूँ
वसन्त को आनँद लेन को आई।
हन्त हा हन्त! न बीतन पाये
इकन्त में मासहु द्वै सुखदाई।
ग्रीसम काल ज्वलन्त ने आइ
वसन्त के राज में आगि लगाई॥
४—ग्रीसम पापी परो मम पीछे
जहाँ जहाँ जाउँ तहाँ तहाँ जावै।
लेन न देइ रसालन को रस
मो रस में विष आइ मिलावै।
मो तन जारि के कारो कियो
अब मो मन हूँ निसि द्योस जरावै।
प्रान को प्यासो भयो यह यासो
कोऊ मोहिँ कोउ कोऊ तो बचावै॥
५—सूखि के कंठ भयो जब ठंठ तौ
वारिद बारि का लेइ जरौंगी?
दूर गयो जब रम्य वसंत तो
का हरे रूखन बैठि करौंगी?
नागन के ठनकार औ दादुर के
दुदुकार से दूर टरौंगी।
मोर के सोर पपीहा के नाद
बुरी बकवाद में मौन धरौंगी॥

(कवि की उक्ति)

६—बचहु कुसंग कुदृष्टि से बोलहु मीठे बैन।
पिक प्रवीन सिख देति यह सुमुखिन को सुखदैन॥
७—यद्यपि मीठो बोल तव कुसमय तदपि न बोल।
पिक-बैनिन को देति पिक यह शिक्षा अनमोल॥
८—रंग रूप कुल दोष को देत दुराइ सुबैन।
पिक प्रमाण है याहि को जानत हैं मतिऐन॥

भगवानदास।

पंजाब में हिंदी के प्रचार की ज़रूरत।

पंजाब में हिंदी के प्रचार की बड़ी ज़रूरत है। भारतवर्ष का यह भाग प्राचीन समय में वेद-विद्या का अधिष्ठान था। धर्म्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र इसी भूमि में है। मंत्रद्रष्टा ऋषि इसी की नदियों के तट पर समाधि लगाये ध्यान में मग्न रहते थे। यहीं हिन्दू-जाति ने पहले पहल भारत को देखा और उससे सम्बन्ध बाँधा। पंजाब भारतवर्ष की ढाल है जिसने यवनों को अनेक चोटों से इस देश की रक्षा की। पंजाबही में बली होकर हिन्दुओं ने सारे मुल्क पर अपना अधिकार जमाया। यह वही प्रान्त है जहाँ के शूर वीरों ने पुराने ज़माने में, और सोलहवीं और सत्रहवीं सदियों में, हिन्दू-जाति के मलिनमुख को विजयामृत के सेचन से विमल करके उसपर राज्याभिषेक का टीका लगाया।

हाय! इसी पंजाब की दशा इस समय शोचनीय हो रही है। विदेशियों के सम्पर्क से बहुत बातों में इसका हिंदुत्व शिथिल होगया है। बंगाल और महाराष्ट्र की अपेक्षा पंजाब का हिंदुत्व ऐसा ही है जैसे सच्ची लैस के आगे झूठी लैस, या खिले हुए कमल के सामने मुरझाई हुई पंखड़ियों का ढेर। जिधर देखो हिंदू जाति की हीनता का सबूत मिलता है। सब तरफ़ घर में, बाज़ार में, साहित्य में, बोलचाल में, रूप-रंग में, आचार-विचार में, हम हिंदू जाति की असलियत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को मिटा हुआ देखते हैं। हम पर विदेशी रोग़न चढ़ा हुआ है। हम अपने आपको भूल गये हैं। महात्मा मनु के अनुसार जैसे काठ का हाथी अथवा चमड़े का मृग केवल नाम ही के होते हैं, उसी तरह पंजाब के हिन्दू अपनी भाषा के लिहाज़ से नाम मात्र के हिन्दू हैं। वे भारतवर्ष में रहते हुए भी विदेशी कहलाने योग्य हैं। मैं इस अवसर पर और बातों का ज़िक्र न करूँगा। मैं केवल भाषा के विषय में यह कहना चाहता हूँ कि अब समय आ गया है कि हम श्रीगणेश की प्रशंसा तुरकों के अक्षरों में न करें और अपनी पिछली गिरी हुई अवस्था के कलङ्क को सदैव तिलक समझ कर अपने माथे पर ख़ुशी से न लगावें। जो मलिनता हमारे शरीरों पर आपत्काल में आ गई थी उसको हिन्दुत्व के पवित्र सरोवर में नहा कर धो डालें। जैसे शराबी नशे में तरह तरह की लज्जाजनक बातें करता है, पर नशा उतर जाने पर उनसे शरमाता है, उसी तरह कमज़ोरी और आत्मविस्मृति के समय में जो अनुचित बातें हमने की थीं उनसे अब लज्जा आनी चाहिए। क्या ज़रूरत है कि दास आज़ाद होकर भी कान में ग़ुलामी का छल्ला पहने रहे, या पहलवान, ज़मीन पर चित हो जाने पर, कभी पीठ की मिट्टी साफ़ न करे। हिन्दू जाति को धिक् है, जो दैव-दुर्विपाक से प्राप्त हुई लज्जाजनक बातों को मौक़ा पाकर भी न छोड़े।

पंजाब अपनी भाषा को बहुत समय से भूल गया है। हिन्दुत्व के ज्ञान का दीपक उसे किसी ने नहीं दिखाया। पर-जातियों की आँखों के जादू ने इसे अन्धा बना दिया। विजित होने से इस पर आत्मविस्मृति का ऐसा नशा चढ़ा कि वह बहँक सा गया; अपने आपको कुछ का कुछ बतलाने लगा; बहरूपियों का सा खेल खेलने लगा। जैसे मालिक के उतरे हुए कपड़े पहन कर नौकर मटकते फिरते हैं, उसी तरह मुसलमान क़ौम के फटे पुराने साहित्य के चीथड़े चुन कर हिन्दुओं ने भी अपनी भाषा को अलंकृत (!) करना आरम्भ किया। यह नहीं समझा कि दुनिया हमें क्या कहेगी। तुलसी और सूर के काव्य न पढ़ कर सौदा और मीर की तुच्छ ग़ज़लों पर ऐसे गिरे जैसे बच्चा माँ का पथ्य दूध छोड़ कर मिट्टी खाने दौड़ता है। फ़ारसी-साहित्य की हम नक़ल उतारने लगे और अपनी पुरानी करी कराई सब भूल गये। उर्दू के गद्य-पद्य में फ़ारसी शाइरों से माँग माँग कर विदेशी अलंकार भरने लगे। नाटक का नाम तक बाक़ी न रहा। क़सीदों, मसनवियों, ग़ज़लों ने दोहों, चौपाइयों की जगह ली। हिन्दुओं की सारी लियाक़त, झूठे सिक्कों की तरह, उर्दू के रद्दी सिक्के हिन्द की टकसाल से निकालने में चली गई और कुछ फल न मिला। झूठा सिक्का जो बनाया, साहित्य के परखनेवाले साहूकारों ने उसे परे फेंक दिया। विदेशी चीज़ें कूट कूटकर अपने साहित्य में भरीं। नतीजा यह हुआ कि अपनी रीति तो याद न रही, मुफ़्त में नक़लची और ख़ुशामदी कहाये। न क़ाआनी ही बन सके न तुलसी। न फ़ारसी ही लिखी न हिन्दी। एक मिश्रित भाषा, जिसमें दोनों का मेल था, निकाली। मगर जैसे मनुष्यों में दोग़ले से सब नफ़रत करते हैं इसी तरह इस नये भूत से जिसका धड़ हिन्दी का, और कपड़े और आवाज़ फ़ारसी के थे, सब समझदार आदमियों ने नफ़रत की। नमक और बूरा मिलाने से सिर्फ़ उलटी ही हो सकती है। मछली पानी के बाहर मर जाती है। अंगूर सर्दी में नहीं उगता। हर क़ौम अपने मुआफ़िक़ साहित्य की आबोहवा में ही तरक्की कर सकती है। जब साहित्य हमारे मुल्क और क़ौम के अनुरूप न रहा तब वह हमारा न रहा। वह हमारी जाति का अंश नहीं। वह हमारे आदर का पात्र नहीं। वह हमारी दुर्गति की निशानी है और हमारी जातीय उन्नति के रोकने के लिए बलवान विघ्न है। वह गृह-सर्प है कि दग़ा करता है। वह वेश्या है जो झूठे आभूषण पहन कर हमें अपनी कुल-स्त्रियों से अलग कराती है। विदेशी रस से भरे हुए साहित्य को जो हिन्दू अपना समझते हैं वे हलाहल को अमृत मानते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इससे बढ़कर हमारी अधोगति का और क्या चिन्ह हो सकता है कि आज हिन्दी भाषा, जब हिन्दुओं के आगे आकर अपनी पैत्रिक पदवी माँगती है, तब हिन्दू हिन्दी-शकुन्तला के दुष्यन्त बनकर कहते हैं, हम तुझे नहीं जानते, हमने कभी तुझे नहीं देखा।

पंजाब में रोज़ की बोलचाल और लिखने पढ़ने में फ़ारसीमिश्रित उर्दू ही का दौर दौरा है। यहाँ हिन्दू लड़के फ़ारसी पढ़ते हैं। मदरसे में मौलवी साहब की जमाअत ऐसी भरी होती है जैसे थियेटर की रङ्गभूमि। पर बेचारे संस्कृत के अध्यापक का कमरा खँडहर की तरह सूना रहता है। यदि कोई भूले भटके वहाँ जाते हैं तो सिर्फ़ दो चार। शोक है कि जिन लड़कों की क़ौम में वाल्मीकि और तुलसी हुए वे गुलिस्ताँ बोस्ताँ के पढ़ने में इतना परिश्रम करें; और हितोपदेश का नाम भी न सुनें! किस क़ैदी को अपनी बेड़ियों से प्रेम हो सकता है? किस मनस्वी को अपनी मातृभाषा से घृणा हो सकती है? पर भारतवर्ष में सब बातें उलटी हैं। पंजाब के हिन्दुओं के नाम तक अनोखे होते हैं। "बलन्द-इक़बाल" हिन्दू कुल में उत्पन्न होते हैं। और "तेग़-बहादुर" तो हमारे माननीय गुरुजी ही का नाम था। पत्र में "जनाब क़िबलेगाह साहब" से आरम्भ किया जाता है। गोया यमुना के तट पर अरब की गरम आँधी का झोंका आ गया। विवाह के बुलावे कई ज़ातों में फ़ारसी में भेजे जाते हैं—गोया निकाह पढ़वाना है। कई हिन्दू सज्जनों के यहाँ मुसल्मान उस्ताद फ़ारसी पढ़ाने के लिए रक्खे जाते हैं और पण्डितजी महाराज! उनको सिर्फ़ गुरु-पूजा ही पर कुछ दक्षिणा मिल जाती है। जवान लड़के ग़ज़ल लिखते हैं और कमल को भूल कर गुल पर मरते हैं। भीम की जगह रुस्तम की प्रशंसा होती है और काबा, मसोहा, वग़ैरा विदेशी शब्दों से गद्य पद्य अलंकृत होता है। कहावतें भी कितनी ही ऐसी हैं कि सुनकर हँसी आती है और रोना भी। "ढाई ईंट की अलग मसजिद बनाना," "न ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम" वग़ैरा फ़िक़रे सब की ज़बान पर हैं। यदि रामचन्द्र आज फिर दिल्ली में आवें तो हिन्दुओं को न पहचान सकें। वे आश्चर्य्य करें कि मैं भारतवर्ष में हूँ या कहीं और। उर्दू का हर घर में रिवाज है। लड़कियाँ भी हिन्दी पढ़ कर फिर उर्दू सीखना बहुत बड़ा काम समझती हैं। जैसे मीठी चीज़ खाकर खट्टी को जी चाहता है वैसे ही इनका हाल है। घर के हिसाब तक में घी, रौग़न ज़र्द लिखा जाता है। और चिट्ठियों के ऊपर पते में "बख़िदमत.....बिरसद" आदि शब्द सारी दुनिया में हमारे अज्ञान की डौंडी पीटते हैं। राम राम और नमस्कार की जगह "बन्दगी" सुन सुनकर कान बंद करने को जी चाहता है।

स्त्रियों ने अपना जाति-धर्म्म हाथ से जाने नहीं दिया है। स्त्रियाँ, सदा अपनी जाति के प्राणों की रक्षा करती हैं। क्यों न हो, प्राण देती भी तो वही हैं। हिन्दू स्त्रियाँ हिन्दी पढ़ना अपना मुख्योद्देश्य समझती हैं। उनके लिए अच्छी अच्छी पुस्तकें हिन्दी में लिखी जानी चाहिएँ जिसमें उनको उरदू पढ़ने की ज़रूरत न रहे। भाइयो, इस त्रुटि को पूरा करो। स्त्रियों ही से हिन्दी के प्रेम की वृद्धि करो। कई समाजें पंजाब में ऐसी हैं जो हिन्दी-प्रचार का कुछ काम कर रही हैं। आर्य्य-समाज इनमें मुख्य है। देव-समाज के अनुयायी भी हिन्दी में ही व्याख्यान देते हैं। राधास्वामी वाले भी अपने मत के ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखते हैं। इन सब समाजों और संप्रदायों से हिन्दी की कुछ कुछ उन्नति हो रही है। आर्य्य-समाज ने फ़ारसी अक्षरों में बहुत से हिन्दी के शब्दों को स्थान दिया। इससे जो हिन्दू हिन्दी नहीं जानते उन तक हिन्दुत्व की कुछ सुगन्ध पहुँच सकती है। इस हिन्दी-मिश्रित उर्दू को ग़ालिब और ज़ौक के कलाम के चाहने वाले निरादर की निगाह से देखते हैं। परन्तु यह उनकी भूल है।

आजकल युवक विद्यार्थी दूर दूर कालिजों में पढ़ने जाते हैं। परन्तु अपनी स्त्रियों को घर पर छोड़ जाते हैं। उन्हें पत्र लिखना पड़ता है। हमारी स्त्रियाँ प्रायः हिन्दी ही जानती हैं। उन्होंने तो नौकरी के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना जाति-धर्म्म बेचा नहीं । वे अब तक अपनी जाति-भाषा को रत्न की तरह छिपाये अन्तःपुर में बैठी हैं कि कब पुरुषों को बुद्धि ठिकाने आवे और कब उनको वह अनमोल मोती फिर प्राप्त हो । क्यों न हो, वैसे भी तो घर की सम्पत्ति उत्तम सोने चांदी के रूप में स्त्रियों ही के शरीर पर रहती है । इस कारण नवयुवक बाबू साहबों को हिन्दी पढ़नी पड़ती है । जो काम वे गुरु के कहने से न करते वह स्मरशासन करवा लेता है । सच है सब तो त्रिलोचन नहीं हैं जो फूल के धनुष वाले को भस्म कर दें । अतएव जितने विद्यार्थी दूर देश में जायँगे उतना ही हिन्दी का प्रचार अधिक होगा ।

इस प्रकार हिन्दी धीरे धीरे फैल रही है । पर इस जनवासे का चाल से विशेष लाभ न होगा । जब तक कचहरियों और दफ़्तरों में उर्दू अधिकार के सिंहासन पर बैठी है और हिन्दू लोग संस्कृत पढ़ना अपना धर्म्म नहीं समझते, तब तक हिन्दी की यथार्थ उन्नति न होगी । एक और बात भी विचार-योग्य है । बहुत से आदमी मुँह से तो हिन्दी के प्रेमी बनते हैं, पर कोई किताब या लेख लिखने के समय उससे मुँह छिपाते हैं । यह दोष हिन्दी के बड़े बड़े भक्तों तक में पाया जाता है । जब हिन्दी के पक्षपाती ही ऐसा करेंगे तब औरों से क्या आशा की जाय ? ज़बानी बातों से कहीं काम चलता है ? पंजाब में है उर्दू का प्रचार । इससे उर्दू ही की पुस्तकों के गाहक अधिक हैं । जब लेखक साहित्य के मैदान में आते हैं तब देश-प्रेम तो हिन्दी की ओर घसोटता है और द्रव्य-प्रेम उर्दू की ओर । इस दुबिधा में महामाया लक्ष्मी ही की जीत होती है । फिर यह भी विचार होता है कि अपने सिद्धांत उर्दू में अधिक लोगों के पास पहुँचेंगे । इससे वे अपनी विचार-सुगन्धि को तांबे के पात्र में रखते हैं, क्योंकि सोने का पात्र लोगों को पसंद नहीं । इससे बेचारी हिन्दी के गले में छुरी फिरती है । लाला लाजपत-राय जी ने उर्दू में कई महापुरुषों के जीवन-चरित लिखे हैं । और आर्य्य-समाज-कालिज के एक महाशय ने आनन्दमठ का बंगाली से उर्दू में अनुवाद किया है । यदि इसी तरह हमारे हाथ और क़लम उर्दू की सेवा में तत्पर रहे तो पंजाब में हिन्दी का प्रचार होना दुःसाध्य होगा । हम को दूरदर्शी होना चाहिए । और हर प्रयत्न से, सब विघ्न-बाधाओं का उल्लंघन करके हिन्दी लिखना-पढ़ना सीखना चाहिए, हिन्दी बोलना चाहिए और हिन्दी ही में पुस्तक-रचना करना चाहिए । ऐसा न करना अपनी जाति को दुर्बल करना है; अपने हाथ से अपनी जड़ें खोदना है; अपने हिन्दुत्व पर धब्बा लगाना है !

हरदयाल (आक्सफ़र्ड-विश्वविद्यालय)

बेटी को बिदा* ।

(Kamla's letters की कविता की छाया)

प्यारी बहिन ! सौंपती हूँ मैं अपना तुम्हें ख़ज़ाना ;
है इस पर अधिकार तुम्हारे बेटे का मनमाना ।
रक्त, मांस औ हाड़ हमारा है यह बेटी प्यारी ;
करो इसे स्वीकार हुई यह अब सब भाँति तुम्हारी १

पूजे कई देवता हमने तब इसको है पाया ;
प्राण-समान पालकर इसको इतना बड़ा बनाया ।
यही आतमा आज हमारी हम से बिछुड़ रही है ;
समझाती हूँ जी को तो भी धरता धीर नहीं है २

बहिन ! ढिठाई माता की तुम मन में नेक न धरियो ;
इस कोमल बिरवा की रक्षा बड़े चाव से करियो ।
है यह नम्र मेमने से भी, भोरु मृगी से बढ़कर ;
कड़ी बात या चितवन से यह कँप जाती है थरथर ३

है गँवार यह भोली भाली, नहीं शिष्टता जानै ;
तो भी यह गुरु-जन की आज्ञा बड़े प्रेम से मानै ।
साँचे में तुम इसे ढालियो ; कभी न यह तड़केगी ;
बहिन ! सिखाने से चतुराई, बेटी सीख सकेगी ४

यह गुड़िया, यह लक्ष्मी अपनी, जीवन-मूल, दुलारी
हृदय थामकर करती हूँ मैं अब आँखों से न्यारी ।

---

* विवाह हो जाने पर लड़की की माँ, लड़के की माँ को अपनी लड़की सौंप रही है । मूल अँगरेज़ी कविता दाक्षिण की है । वहाँ यह चाल है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता-नेह सोच तुम मन में दुख मेरा अनुमानो ;
छुपै नहीं है प्रीति छुपाए, बहिन ! सत्य यह जानो ५

इसका रूप निहार दिव्य मैं पल पल सुख पाती थी ;
गान-समान सुरीली बोली इसकी मन भाती थी।
बहिन ! तुम्हैं भी ये सब बातें जान पड़ेंगी आगे ,
अपने नैन रखोगी इस पर जब तुम नित अनुरागे ६

इसकी मन्द हँसी से मेरा सुख अति बढ़ जाता था ;
कठिन घाव भी उससे दुखका अच्छा हो जाता था।
इसे उदास देख आँखों में भर आता था पानी ;
छुपी नहीं है बहिन ! किसी से माता-प्रेम-कहानी ७

बड़ी लालसा भी निज मन की इसने नहीं बताई ;
कर संकोच कठिन पीड़ा भी अपनी सदा छुपाई।
तो भी मैं सब लख लेती थी इसके बिना कहेही ;
योंही तुम इसकी सब बातें, लखियो, बहिन सनेही ! ८

अपना मांस-पिंड देती हूँ मैं तन से कर न्यारा ;
है यह जीवन मेरे जी का आँखों का है तारा।
इस अनाथ बच्चे का पालन माता-सम तुम कीजो ;
मेरी इस बलहीन दशा में बहिन ! बाँह गह लीजो ९

करो बहिन ! स्वीकार दया कर मेरी इतनी बिनती ;
बच्चों में अपने तुम करियो इस बेटी की गिनती।
दीजै बहिन ! भरोसा मुझको हाथ हाथ में देकर ,
बेटी-सम पालेंगी इसको हम माता-सम होकर १०

मेरी ये आँखें पीती थीं नित जो रूप मनोहर ,
क्या उसके दर्शन का मुझको फिर न मिलेगा अवसर !
जिस बोली से धीरे धीरे इसे बुलाती थी मैं ,
क्या वह भी अब मूक रहेगी, रख जी की जीही में ! ११

हा मेरी अनमोल लाड़ली ! प्राणाधार ! दुलारी !
क्या तू मुझे नहीं समझेगी अब अपनी महतारी !
तुझे नई माता मिलती है ; मैं तुझको खोती हूँ ;
यही सोच सुख में भी तेरे बेटी ! मैं रोती हूँ १२

हाय ! आज से हुआ हमारा यह घर भरा अँधेरा ;
होकर निपट निरास न क्यों अब हृदय फटैगा मेरा !
अब मेरे इस सूने घर को उजला कौन करैगी !
कौन मधुर बातों से मेरा रीता हृदय भरैगी ! १३

कौन सुरीली बीन बजा कर, मधुर गीत गावेगी !
घर में कौन लड़कियाँ छोटी न्योत न्योत लावेगी !
सखियों के सँग कौन खायगी, खेलैगी, झूलैगी !
किसको सुन रामायण पढ़ते यह छाती फूलैगी ! १४

हा बेटी ! हा गुड़िया मेरी ! हा मेरी सुकुमारी !
तेरे बिना हृदय यह मेरा पावैगा दुख भारी।
केवल दैव दयामय जो दुख जान सके है जन का ,
वही धीर दे दूर करेगा संकट मेरे मन का १५

जाकर वहाँ दूर हे बेटी ! मुझे भूल मत जाना ;
कभी कभी इस दुखिया की भी सुध निज मन में लाना।
रो मत, बेटी ! जा अपने घर, संग नई माता के ;
लीजै बहिन ! इसे अब मुझसे, देती हूँ सिर नाके १६

कामताप्रसाद गुरु।

श्रीगुरुगोविन्दसिंहजी।

(२)

गुरु तेग़बहादुर जब अपनी स्त्री को पटने में छोड़ कर आसाम चले गये थे उन्हीं दिनों, संवत् १७२३ पूस बदी १३ को, पटने में इनका जन्म हुआ था। पाँच वर्ष की उम्र तक यह बड़े लाड़ चाव से पले। लड़कपन के हर एक खिलवाड़ में यह राजाओं की लड़ाई, दर्बार इत्यादि की नक़ल किया करते थे, जिससे साफ़ झलकता है कि इनकी आत्मा पर शूर वीर होने का संस्कार जमा हुआ था। यह अपने साथी बालकों से भी बड़ा स्नेह रखते और हर काम में उन्हें उत्साह दिया करते थे। संवत् १७३० जेठ बदी १५ को, हरजस नामक एक खत्री की लड़की से इनका विवाह बड़ी धूम धाम से हुआ। इसी के दो वर्ष पीछे, जब इनकी उम्र केवल ९ वर्ष की थी, गुरु तेग़बहादुर सब काम काज इनके सिपुर्द कर दिल्ली चले गये और वहाँ जिस तरह धर्मवीर ने अपने सच्चे मित्र धर्म पर अपने प्राण न्योछावर किये, वह कौन नहीं जानता ? जब हमारे चरित्रनायक को पिता की इस मृत्यु का समाचार मालूम हुआ तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुखी होने के बदले उन्हें जोश आगया और खड़े हो कर उन्होंने बड़े ज़ोर से गरज कर यह पद्य पढ़ा—

"साधन हेतु अत्त जिन करी,
सीस दिआ पर सी न उचरी।
धर्म हेतु शाका जिन किआ,
सीस दिआ पर धर्म न दिआ॥"

साथही उनके नेत्र लाल होगये और उसी समय उन्होंने प्रतिज्ञा की कि "यदि मैं गुरु तेग़बहादुर के वीर्य से पैदा हुआ हूँगा तो औरंगज़ेब से ज़रूर इस अत्याचार का बदला लूँगा"। इसके बाद अपने पिता का शास्त्रोक्त संस्कार करके यह गद्दी पर बैठे और लड़ाई का सामान इकट्ठा करने लगे। सब जगह अपने शिष्यों को अच्छे अच्छे घोड़े और अस्त्र शस्त्र संग्रह करने की आज्ञा लिख भेजी। साथही आप भी नित्य शिकार खेलने जाने लगे और अपने सिक्खों से प्रति दिन नियमपूर्वक क़वायद लेने और उन्हें नित्य नया उत्साह देने लगे। गोविन्दसिंह जी आप भी शरीर से बड़े बलवान् थे, और तलवार, बरछा इत्यादि चलाने और तीर तथा गोली का निशाना मारने में भी बड़े निपुण थे। साथही ख़ूब दिल लगा कर अपने सिक्खों को भी उन्होंने इन कामों में निपुण करना आरम्भ किया। इन्हीं दिनों, संवत् १७३३ की अगहन सुदी ३ को, आसाम के राजा का लड़का, जो गुरु तेग़बहादुर के वरदान से पैदा हुआ था और पिता के मरने पर अब आप राजा होगया था, इनके दर्शन को आया और बहुत सा धन, रत्न इन्हें भेंट दिया। साथही कई अद्भुत अद्भुत चीज़ें भी इनको भेंट कीं, जिनमें एक पंचकला हथियार भी था जिसमें बन्दूक़, बरछी, गुर्ज, पेशक़ब्ज, और कुल्हाड़ा, गुत्थी की तरह एक साथही थे। और चन्दन की एक चौकी भी दी, जिस के चारों पावों में यह गुण था कि जब गुरु साहब उस पर बैठ कर स्नान करते तो उन पावों में से चार पुतले निकल आते थे। पाँच अरबी घोड़े और एक हाथी भी दिया। हाथी ऐसा सिखाया हुआ था कि रात को सूंड में पकड़ कर मशाल दिखाता, चँवर करता, तलवार चलाता, जूता झाड़ देता, तीर उठा लाता, और सूंड से झारी पकड़ कर जल देता था। जब वह इनसे विदा होने लगा तब गुरु गोविन्दसिंह ने उसे एकान्त में बुला कर कहा कि "देखो तुमने उसी पवित्र आर्य-कुल में जन्म लिया है जिस कुल में श्रीरामचन्द्र और प्रतापी युधिष्ठिर ऐसे धर्मात्मा और भीष्म ऐसे बाल ब्रह्मचारी शूर वीर हो गये हैं। तुम्हारा कर्तव्य क्या है, यह तुम जानते ही होगे। देखो भाई इन दुराचारी यवनों की ग़ुलामी कर अपने माथे कलंक का टीका मत लगाना। तुम यदि अपने क्षत्रिय-धर्म पर क़ायम रहोगे और अकाल पुरुष की कृपा होगी तो हम लोग मिलकर क्या इन धर्मवैरी दुराचारी मुसल्मानों को देश से नहीं निकाल सकते? इत्यादि बहुत कुछ जोशीली बातों से उत्साहित कर हमारे शूर वीर चरित्र-नायक ने उसे बिदा किया।

इसके बाद बैशाखी के मेले पर, संवत् १७३८ में, पूनीचन्द नाम का एक सिख, जो काबुल में रहता था, इनके दर्शन को आया और कई एक पश्मीने के तम्बू, क़नात और बहुत सा धन, रत्न इनको भेंट किया। उसे भी उन्हों ने धर्मोपदेश के साथ शूर वीर बनने का बहुत कुछ जोश दिलाया। यहाँ तक कि जो कोई इनके पास आता उसे यह अपनी जोशीली बातों से उत्साहित कर देते थे, और वह धर्म के नाम पर प्राण न्याछावर करने की प्रतिज्ञा कर लेता था।

इसके बाद एक शिकारपुरी खत्री ने उन्हें १०,००० अशरफ़ियाँ भेंट दीं और उसके साथियों ने भी बहुत कुछ धन, रत्न और घोड़े हाथी भेंट किये। चूंकि इनके सब धनवान शिष्यों ने लाखों रुपये की अशरफ़ियाँ और रत्न इत्यादि इनके भेंट किये, इस लिए थोड़े ही दिनों में इनका ख़ज़ाना धन-रत्नों से परिपूर्ण हो गया। इसी मौक़े पर बिलासपुर का राजा भीमचन्द इनके दर्शन को आया और हमारे चरित्रनायक को आसाम के राजा ने जो हाथी भेंट दिया था उसके अद्भुत गुणों पर लट्टू होगया। उसने गुरु साहब से वह हाथी माँगा। गुरु गोविन्दसिंह ने उत्तर दिया कि "यह हमारे शौक़ की चीज़ है, इसे हम तुम्हें नहीं दे सकते।" इस पर उसने हाथी के बदले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक लाख की अशरफ़ियाँ देनी चाहीं, पर हमारे चरित्रनायक ने उसकी प्रार्थना बिलकुल नामंज़ूर की। तब तो भीमचन्द बड़ा क्रोधित हुआ और बड़-बड़ाता हुआ घर चला गया, और गुरु गोविन्दसिंह से ज़ाहिरी छेड़ छाड़ करने का मौक़ा न देख कर उसने छल से काम साधना चाहा। पुत्र के विवाह के मौक़े पर उसने गुरु साहब से यह हाथी मँगनी माँगा। चूंकि हमारे चरित्रनायक उसका छल जानते थे इसलिए उन्होंने बारात में हाथी मँगनी देने से साफ़ इनकार कर दिया। इस पर भीमचन्द ख़ुद गुरु साहब के पास आया। हमारे चरित्र-नायक ने राजा भोमचन्द की बड़ी ख़ातिरदारी की। वे उसे अपने साथ सैर शिकार को लेगये। पर जब उसने हाथी की चर्चा छेड़ी तब उन्होंने साफ़ नाहीं कर दी। तब तो राजा लाल लाल आँख कर गरज के बोला कि "अरे शठ, तू मुझसे कुछ भी नहीं डरता। देख, मैं ज़बरदस्ती तुझसे छीन लूंगा और तुझे मेरे इलाक़े में रहना कठिन हो जायगा।" इस पर हमारे चरित्रनायक ने जवाब दिया कि "क्यों वृथा अभिमान करते हो। तुम्हारे किये क्या हो सकता है। जो अकाल पुरुष को मरज़ी होगी वही होगा।" अस्तु, राजा भीमचन्द क्रोधित होकर संवत् १७४७ के माघ महीने में इनपर अपनी सेना चढ़ा लाया, पर हमारे वीर सिक्खों ने थोड़ीही देर में उन्हें हरा कर भगा दिया। इसके बाद नाहन का राजा, जो भीमचन्द का वैरी था, इनके दर्शन को आया और इन्हें बहुत कुछ धन रत्न भेंट देकर इन्हें अपने साथ लेगया। इस राजा का नाम मेदिनीप्रकाश था। इसे शिकार का बड़ा शौक़ था और हमारे चरित्रनायक भी शिकार के समय सदा राजा के साथ रहते थे। शिकार में इनकी बहादुरी देख कर राजा चकित हो जाता था। यह ज़मीन पर खड़े होकर बड़े से बड़े शेर का शिकार कर लेते थे।

इसके बाद संवत् १७४१ में राजा मेदिनीप्रकाश के इलाक़े में इन्होंने पाँवटा नाम का एक गाँव बसाया, और आनन्दपुर से अपनी घर गृहस्थी बुला कर वहीं रहने लगे। यहीं बुद्धूशाह नाम का एक फ़क़ीर इनसे मिलने आया और इनसे ज्ञान-चर्चा कर बड़ा ख़ुश हुआ। इसी समय आसाम का राजा इनसे दुबारा मिलने आया और संवत् १७४१ की भादों बदी १४ को नाव पर सवार होकर जमुना के बीच में इन्होंने उससे मुलाक़ात की और समय पर उससे सहायता देने की प्रतिज्ञा करवा ली। इसी समय बुद्धूशाह की सिफ़ारिश से इन्होंने बादशाही बाग़ी, पाँच मोग़ल सरदारों को अपने यहाँ नौकर रख लिया। फिर कार्तिक महीने में मोचनकपाल के मेले में जा कर ख़ूबही धर्मोपदेश दिया, जो जातीय उत्साह से ख़ाली न था। इन्होंने वहाँ बहुत से ज्ञानी महात्माओं से भी भेंट की। इसके बाद जब मेला समाप्त होने पर यह घर आये तब देहरादून के एक रईस की स्त्री ने इनके पास संदेसा भेजा कि आपके सिक्खों ने मेरे पति को जीतेही मुर्दा प्रसिद्ध कर उसे जला दिया। दुःखिनी अबला का संदेसा सुनतेही हमारे दयालु चरित्रनायक पाँच सौ सवारों के साथ देहरादून पहुँचे और जिन ४१ सिक्खों ने यह अत्याचार किया था उन सब का अंग भंग कर दिया और उस विधवा की जायदाद का उचित प्रबन्ध कर घर लौट आये।

गुरु गोविन्दसिंह जी को विद्या से बड़ा प्रेम था। चूँकि उनके शिष्य सब बड़े उजड्ड और मूर्ख थे, इसलिए उनमें विद्याप्रचार करने के लिए उन्होंने अपने पाँच शिष्यों को रघुनाथ पण्डित के पास संस्कृत सीखने भेजा। पण्डित जी ने गुरु साहब से कहला भेजा कि आपके ये पाँचों शिष्य शूद्र हैं। हम इन्हें वेद-शास्त्र नहीं पढ़ावेंगे। इस पर हमारे चरित्रनायक ने उत्तर दिया कि "—वेद ईश्वर-कृत है। ईश्वर की बनाई जितनी अलौकिक चीज़ें हैं उन्हें प्राणि-मात्र भोग सकते हैं। सूर्य-चन्द्र की रोशनी, ब्राह्मण और चांडाल के आँगन में एकसी पड़ती है। तुम बड़े लोभी हो; तुम चाहते हो कि इसी बहाने मुझसे बहुत सा धन लेकर मेरे शिष्यों को पढ़ाओ। मैं जानता हूँ कि तुमने कई ऐसे लोगों को पढ़ाया है। पर तुम्हारा लोभीपना देख कर मैं तुम्हें एक कौड़ी भी न दूंगा, और याद रखना कि एक दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्यही ऐसा आवेगा जब तुम्हारी सन्तानों को इन्हीं सिक्खों से पढ़ना पड़ेगा"। यह कह कर उन्होंने अपने पाँचों शिष्यों को ब्रह्मचारी बना कर काशी भेज दिया, जो वहाँ चैतन्य मठ में रह कर संवत् १७५२ में संस्कृत के अच्छे विद्वान् होकर लौट आये। गोविन्द-सिंहजी ने इन लोगों से भागवत, भोजप्रबन्ध और उपनिषदों का भाषा में अनुवाद करवाया।

इसी समय गुरु साहब के शत्रु भीमचन्द के लड़के का विवाह श्रीनगर के राजा की लड़की से होने वाला था। श्रीनगर का राजा हमारे चरित्र-नायक का मित्र था, इस लिए उन्होंने पाँच सौ सवारों के साथ दीवान नन्दचन्द की मारफ़त उसके पास टीका भेजा। जब भीमचन्द ने देखा कि यह गुरु गोविन्दसिंह का टीका है तो वह बोल उठा कि "अगर गोविन्दसिंह का टीका आप लीजिएगा तो हम आप की लड़की का डोला यहाँ छोड़ कर चले जायँगे।" अतएव समधी के भय से श्रीनगर के राजा ने गुरु साहब का टीका फेर दिया। इस पर दीवान नन्दचन्द जो टीका लेकर गया था बड़ा क्रोधित हुआ और सिपाहियों को आज्ञा दी कि "विवाह का सब साज़ सामान लूट लो।" बस फिर क्या देर थी। उजड्ड सिक्ख लोग थोड़ीही देर में सब साज़ सामान लूट पाट कर चलते बने। यह बात श्रीनगर के राजा को बहुत बुरी लगी और भीमचन्द तो आग बबूला हो गया। सब बराती राजाओं के साथ, दस हज़ार सेना लेकर, उसने हमारे चरित्रनायक पर चढ़ाई करदी। संवत् १७४२ की वैशाख बदी १२ को गोविन्दसिंह जी भी अपनी दो हज़ार सिक्ख सेना के साथ भिनगानी गाँव में आ डटे। जमुना और गिरी नदी के किनारे खेत पड़ा और थोड़ी देर तक ख़ूब घमासान युद्ध हुआ। अभी युद्ध होही रहा था कि गुरु साहब के एक हज़ार सिपाही विद्रोही हो गये, पर सौभाग्यवश इसी समय बुद्धूशाह दो हज़ार फ़ौज के साथ अपने मित्र गुरु साहब की सहायता को आ पहुँचा। तब तो गुरु साहब की सेना का उत्साह और भी बढ़ गया और वह बड़े ज़ोरो शोर से शत्रुओं पर टूट पड़ी। हमारे शूर वीर चरित्रनायक ने भी अपनी तलवार की चोटों से कई बड़े बड़े अफ़सरों को यम-लोक भेज दिया। अस्तु, थोड़ी ही देर में शत्रुओं का पैर उखड़ गया और हमारे सिक्ख बहादुरों ने बहुत दूर तक उनका पीछा कर बहुत सा माल असबाब लूट लिया। हमारे चरित्र-नायक विजय का डंका बजाते हुए पाँवटा ग्राम में अपने घर लौट आये। जिन सिक्खों ने वीरता दिखाई थी उन्हें ख़िलत और इनाम इत्यादि देकर उनका उत्साह ख़ूब बढ़ाया। इसके बाद उनकी माता ने पाँवटा नामक ग्राम में रहना नामंजूर किया। इसलिए अपनी घर गृहस्थी के साथ गोविन्दसिंह जी आनन्दपुर नामक ग्राम में जा बसे। वहीं पर एक सिक्ख खत्री ने अपनी पुत्री सुन्दरी जी का डोला इनके नज़र किया, जिसके साथ संवत् १७४२ की आषाढ़ बदी ७ को इनका दूसरा विवाह बड़े समारोह से हुआ। इस बार के युद्ध में जयलाभ करने से इनका उत्साह ख़ूब ही बढ़ गया। इन्होंने लोहगढ़, फ़तहगढ़, फूलगढ़ और आनन्दगढ़ नाम के बड़े बड़े मज़बूत क़िले बनवाना आरम्भ कर दिया और अपना ठाठ पूरा पूरा राजसाही बना लिया। जो सिक्ख युद्ध के समय विद्रोही हो गये थे, उन्हें इन्होंने ख़ूब कड़ा दंड दिया।

संवत् १७४७ की माघ सुदी ४ को धीरसिंह नाम का एक पुत्र गुरु साहब की पत्नी सुन्दरी जी के गर्भ से पैदा हुआ। इसके बाद भीमचन्द ने हमारे चरित्र-नायक से डर कर सन्धि करली।

थोड़ेही दिनों के बाद जब सम्राट औरंगज़ेब को गोलकुंडे की लड़ाई से फ़ुरसत मिली तब विद्रोही पहाड़ी राजाओं को दमन करने और उनसे कर वसूल करने के लिए अपने अफ़सरों को थोड़ी सी सेना देकर भेजा। इन पहाड़ी राजाओं ने गुरु गोविन्दसिंह को पाँच हज़ार रुपया देकर उनसे सहायता माँगी। अस्तु हमारे चरित्रनायक ने पाँच सौ सिक्ख सवार इनके साथ कर दिये। इन सिक्खों ने जो मुसल्मानों के ख़ून के प्यासे हो रहे थे, बड़ी वीरता से शत्रुओं का सामना किया और एक एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिक्ख जवान दस दस मोग़ल सवारों को यमलोक भेजने लगा। यहाँ तक कि मोग़ल सेना ने हार कर पीठ दिखाई, पर राजाओं का एक अफ़सर मोग़लों से मिल कर उन्हें फिर से लौटा लाया और ख़ूब घनघोर युद्ध छिड़ गया। इस बार हमारे शूर वीर चरित्रनायक ने ख़ुद घोड़े पर सवार होकर मोग़लों से युद्ध किया और अपनी तलवार से सैकड़ों को यमलोक भेजा। सिक्ख लोग भी अपने गुरु की अधीनता में ख़ूब जी खोल कर लड़े। अन्त को सिक्खोंहीं की जीत हुई और मोग़लों ने भाग कर जान बचाई। गोविन्दसिंहजी विजयलक्ष्मी लाभ कर अपने घर आनन्दपुर लौट आये। [असमाप्त]

वेणीप्रसाद।

वर्षा।

१—आया यह अब वर्षा-काल,
जग का हुआ और ही हाल।
नहीं कहीं अब हाहाकार,
गर्मी से न व्यथित संसार॥

२—नहीं लूह अब सन् सन् चलती,
भूमि आग सी अब नहिँ जलती,
"प्यास प्यास पानी पानी" नर,
चिल्लाते अब नहीं कहीं पर॥

३—अब न कहीं पर उड़ती धूल,
मुरझाते न लता तरु फूल।
रहा न रवि-किरणों का त्रास,
घिरा बादलों से आकाश॥

४—बरस रहा जल चारों ओर,
मेंडक सुख से करते शोर।
कहीं पपीहा करता रोर,
कहीं नाचते प्रमुदित मोर॥

५—पृथ्वी, खेत, बाग़, बन, तरुवर,
हरे हरे दिखलाते सुन्दर।
बीरबहूटी की छवि न्यारी,
आँखों को लगती अति प्यारी॥

६—झँझा वायु ज़ोर से बहता,
छिपा बादलों में रवि रहता।
झड़ी रात दिन की लग जाती,
दिन की रजनी हो हो जाती॥

७—बिजली चमक चमक रह जाती,
झिल्ली है झङ्कार मचाती।
सब्ज़ परी सम मही सुहाती,
प्रकृति दृश्य अद्भुत दिखलाती॥

८—कदम, केतकी, फूल फूल अब,
सौरभ-युत कर देते बन सब।
जामुन, निम्बू, पनस, आदि सब,
धीरे धीरे पकते हैं अब॥

९—चला रहे हल कहीं किसान,
कहीं मगन हो बोते धान।
कहीं प्रेम से मेंड़ बनाते,
बैल गाय हैं कहीं चराते॥

१०—झूले गड़े हुए हैं घर घर,
अति प्रफुल्ल मन हैं नारी नर।
ललना झूल झूल सुख पातीं,
कजरी औ मलार सब गातीं॥

११—मोदप्रद अतिशय सुखकारी,
वर्षा ऋतु सब को है प्यारी।
कृषिप्रधान है देश हमारा,
हमें इसी से पावस प्यारा॥

पाण्डेय लोचनप्रसाद।

एक नई किताब की भूमिका।

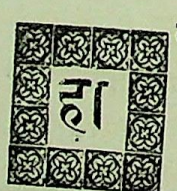

ल मैं हमने एक छोटी सी पुस्तक लिखी है। उसका नाम है—"हिन्दी भाषा की उत्पत्ति"। वह छपकर जल्द प्रकाशित होगी। नीचे जो कुछ लिखा जाता है, उसी की भूमिका है।

कुछ समय से विचारशील जनों के मन में यह बात आने लगी है कि देश में एक भाषा और एक लिपि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने की बड़ी ज़रूरत है, और हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि ही इस योग्य है। हमारे मुसलमान भाई इसकी प्रतिकूलता करते हैं। वे विदेशी फ़ारसी लिपि, और विदेशी भाषा के शब्दों से लबालब भरी हुई उर्दू, को ही इस योग्य बतलाते हैं। परन्तु वे हमसे प्रतिकूलता करते किस बात में नहीं? सामाजिक, धार्म्मिक, यहाँ तक कि राजनैतिक विषयों में भी, उनका हिन्दुओं से ३६ का सम्बन्ध है। भाषा और लिपि के विषय में उनकी दलीलें ऐसी कुतर्कपूर्ण, ऐसी निर्बल, ऐसी सदोष और ऐसी हानिकारिणी हैं कि कोई भी न्यायनिष्ठ और स्वदेशप्रेमी मनुष्य उनसे सहमत नहीं हो सकता। बंगाली, गुजराती, महाराष्ट्र और मदरासी तक जिस देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा को देशव्यापी होने योग्य समझते हैं वह अकेले मुट्ठी भर मुसलमानों के कहने से अयोग्य नहीं हो सकती। आबादी के हिसाब से मुसलमान इस देश में हैं ही कितने? फिर थोड़े होकर भी जब वे निर्जीव दलीलों से फ़ारसी लिपि और उर्दू भाषा की उत्तमता की घोषणा देंगे तब कौन उनकी बात सुनेगा? अतएव इस विषय में और कुछ कहने की ज़रूरत नहीं—पहले ही बहुत कहा जा चुका है। अनेक विद्वानों ने प्रबल प्रमाणों से हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि की योग्यता प्रमाणित कर दी है।

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति कहाँ से है? किन पूर्ववर्ती भाषाओं से वह निकली है? वे कब और कहाँ बोली जाती थीं? हिन्दी को उसका वर्तमान रूप कब मिला? उर्दू में और उसमें क्या भेद है? इस समय इस देश में जो और भाषायें बोली जाती हैं उनका हिन्दी से क्या सम्बन्ध है? उसके भेद कितने हैं? उसकी प्रान्तिक बोलियाँ या उपशाखायें कितनी और कौन कौन हैं? कितने आदमी इस समय उसे बोलते हैं? हिन्दी के हितैषियों को इन सब बातों का जानना बहुत ही ज़रूरी है। और प्रान्तवालों को तो इन बातों से अभिज्ञ करना हम लोगों का सब से बड़ा कर्तव्य है। क्योंकि जब हम उनसे कहते हैं कि आप अपनी भाषा को प्रधानता न देकर हमारी भाषा को दीजिए—उसी को देश-व्यापक भाषा बनाइए—तब उनसे अपनी भाषा का कुछ हाल भी तो बताना चाहिए। अपनी भाषा की उत्पत्ति, विकास और वर्त्तमान स्थिति का थोड़ा सा भी हाल न बतला कर अन्य प्रान्तवालों से उसे क़बूल कर लेने को प्रार्थना करना भी तो अच्छा नहीं लगता।

इन्हीं बातों का विचार करके हमने यह छोटी सी पुस्तक लिखी है। इसमें वर्तमान हिन्दी की बातों की अपेक्षा उसकी पूर्ववर्तिनी भाषाओं हीं की बातें अधिक हैं। हिन्दी की उत्पत्ति वर्णन करने में इस बात की ज़रूरत थी। बंगाले में भागीरथी के किनारे रहनेवालों से यह कह देना काफ़ी नहीं कि गङ्गा, हरद्वार से आई हैं या वहाँ उत्पन्न हुई हैं। नहीं, ठेठ गङ्गोतरी तक जाना होगा। और वहाँ से गङ्गा की उत्पत्ति का वर्णन करके क्रम क्रम से हरद्वार, कानपुर, प्रयाग, काशी, पटना होते हुए बंगाले के आखात में पहुँचना होगा। इसी से हिन्दी की उत्पत्ति लिखने में आदिम आर्य्यों की पुरानी से पुरानी भाषाओं का उल्लेख करके उनके क्रमविकास का हाल लिखना पड़ा है। ऐसा करने में पुरानी संस्कृत, वैदिक संस्कृत, परिमार्जित संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का संक्षिप्त वर्णन देना पड़ा है। प्रसङ्गवश मराठी, गुजराती, बँगला, आसामी, पहाड़ी, पंजाबी आदि भाषाओं का भी उल्लेख करना पड़ा है और यह भी लिखना पड़ा है कि इन भाषाओं और उपभाषाओं के बोलनेवालों की संख्या भारत में कितनी हैं।

इस पुस्तक के लिखने में हमने १९०१ ईसवी की मर्दुमशुमारी की रिपोर्टों से, भारत की भाषाओं की जांच की रिपोर्टों से, नये "इम्पीरियल गज़ेटियर्स" से, और दो एक और किताबों से मदद ली है। पर इसके लिए हम डाक्टर ग्रियर्सन के सब से अधिक ऋणी हैं। इस देश की भाषाओं की जाँच का काम जो गवर्नमेंट ने आपको सौंपा था वह बहुत कुछ हो चुका है। इस जाँच से कितनी ही नई नई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातें मालूम हुई हैं। उनमें से मुख्य मुख्य बातों का समावेश हमने इस निबन्ध में कर दिया है।

अब तक बहुत लोगों का ख़याल था कि हिन्दी की जननी संस्कृत है। यह ठीक नहीं। हिन्दी की उत्पत्ति अपभ्रंश भाषाओं से है और अपभ्रंश भाषाओं की उत्पत्ति प्राकृत से है। प्राकृत अपने पहले की पुरानी बोल चाल की संस्कृत से निकली है और परिमार्जित संस्कृत भी (जिसे हम आज कल केवल "संस्कृत" कहते हैं) किसी पुरानी बोल चाल की संस्कृत से निकली है। आज तक की जाँच से यही सिद्ध हुआ है कि वर्तमान हिन्दी की उत्पत्ति ठेठ संस्कृत से नहीं।

एक नई बात और जो मालूम हुई है वह यह है कि जो हिन्दी बिहार में बोली जाती है उसका जन्मसम्बन्ध बँगला से अधिक है, हम लोगों की हिन्दी से कम। बँगला और उड़िया भाषाओं की तरह बिहारी हिन्दी का निकट सम्बन्ध मागध अपभ्रंश से है, पर हमारी पूर्वी हिन्दी का अर्द्ध-मागध अपभ्रंश से। बिहारी हिन्दी से पश्चिमी हिन्दी का सम्बन्ध तो और भी दूर का है।

जिसे हम लोग उर्दू कहते हैं वह बाग़ोबहार की भूमिका के आधार पर देहली के बाज़ार में उत्पन्न हुई भाषा बतलाई जाती है। पर डाक्टर ग्रियर्सन ने भाषाओं की जाँच से यह निश्चय किया है कि वह पहले भी विद्यमान थी और उसकी सन्तति मेरठ के आस पास अब तक विद्यमान है। देहली के बाज़ार में मुसल्मानों के सम्पर्क से अरबी, फ़ारसी और कुछ तुर्की के शब्द मात्र उसमें आ मिले। बस इतनाहीं परिवर्तन उस समय उस में हुआ। तब से मुसल्मान लोग जहाँ जहाँ इस देश में गये उसी विदेशी-शब्द-मिश्रित भाषा को साथ लेते गये। उन्हीं के संयोग से हिन्दुओं ने भी उसके प्रचार को बढ़ाया। किंबहुना यह कहना चाहिए कि हिन्दुओं ने उसके प्रचार की विशेष वृद्धि की।

भाषाओं की जाँच से इसी तरह बहुत सी नई नई बातें मालूम हुई हैं। यदि वे सब हिन्दी जाननेवालों के लिए सुलभ कर कर दी जायँ तो बड़ा उपकार हो। आशा है एक आध हिन्दी-प्रेमी इस विषय में एक बड़ी सी पुस्तक लिखकर इस अभाव की पूर्ति कर देंगे।

गेंहू से रबर।

आजकल रबर का बड़ा प्रचार है। मालूम होता है मानो यह पदार्थ, पृथ्वी की उत्पत्ति के साथ ही साथ, सब लोगों को मालूम हो गया हो। पर यह बात नहीं हैं। जब कोलंबस पहले पहल अमेरिका पहुँचा, तब वहाँ उसने कुछ लड़कों को एक अजीब चीज़ से बने हुये गेंद खेलते देखा। ये गेंद देखने में सुन्दर थे और उछलते भी ख़ूब थे। पता लगाने पर उसे मालूम हुआ कि वे एक वृक्षविशेष के गोंद से बनाये जाते हैं। यद्यपि इस बात का उसे पता लग गया तथापि उसने उन वृक्षों को अपने देश में लगाने इत्यादि की कुछ भी फ़िक्र न की। इसी से उस समय इसका प्रचार न हुआ। १९ वीं सदी के शुरू शुरू में इसका प्रचार बढ़ा। कितनेही रोज़गार चल निकले; कितने ही कामों में इसका उपयोग होने लगा।

आजकल इसका इतना उपयोग बढ़ गया है कि यदि यह वस्तु न मिले तो कितनोंहीं के रोज़गार बन्द हो जाँय। इस समय रबर के पेड़ों की दशा ख़राब है। सम्भव है कुछ साल में हमें काफ़ी रबर उनसे न मिल सकेगी। इस भय को दूर करने के लिए सिर्फ़ एक ही मार्ग है। वह यह कि किसी और पदार्थ को रबर के समान बनाकर उसके एवज़ में इसका उपयोग किया जाय। इसकी कोशिश भी बहुत हुई। कितने ही पदार्थ आज़माये गये। कितनेही पदार्थ रबर के गुणवाले निकले। पर सब में किसी न किसी प्रकार का दोष निकला।

कुछ दिन हुए एक साहब ने एक बिलकुलही अनमेल वस्तु से रबर बनाने की युक्ति ढूंढ़ निकाली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाजारों में इसका बहुत शीघ्र प्रचार होने वाला है। कहीं कहीं हो भी गया है। इस आविष्कार से जो नुक़सान हमें रबर के न मिलने से होता, अब उसका कुछ भी डर न रहा।

"ब्रिटिश एसोसिएशन" नामक एक वैज्ञानिक सभा अमेरिका में है। उसी सभा के एक मेम्बर ने कृत्रिम रबर बनाने की युक्ति ढूंढ़ निकाली है।

यह कृत्रिम रबर गेंहू और Ptylian नामक एक रासायनिक द्रव पदार्थ के मेल से बनता है। Ptylian हम लोगों के—क्या प्राणिमात्र के—शरीर के प्रवाही पदार्थों में सूक्ष्म परिमाण में रहता है। अगर गेंहू के कुछ दाने मुँह में रखकर चबाये जायँ तो कुछ देर बाद उनका एक छोटा सा फसफसा लोंदा बन जायगा। इस फसफसे पदार्थ का गीले रबर के समान चाहे जैसा आकार बना सकते हैं। उसका उपयोग गोंद के रबर के समान प्रायः सभी कामों में हो सकता है। इस कृत्रिम रबर से नाना प्रकार के काम होने लगे हैं। पर वह मुँह में डालकर नहीं बनाया जाता। कलों से बनता है। गेहूँ का रबर बनाने में पके हुए, पर गीले गेहूँ काम में लाये जाते हैं। उनके लोंदे बनते हैं; उनमें गन्धक डालना पड़ता है। कई तरह की क्रियाओं के बाद वह तैयार होता है। इस रबर पर न अधिक गरमी ही असर करती है न अधिक सरदी ही। गंधक अधिक डालकर वह सींग के बराबर सख़्त किया जा सकता है। जितना कम गंधक डाला जाता है रबर उतना ही पतला और नाज़ुक होता है। इससे कंघी, डब्बी, छड़ी की मूठ इत्यादि सुन्दर सुन्दर पदार्थ बनाये जा सकते हैं। कोई भी नया आविष्कार बिना आधार के नहीं होता। "भाफ से एंजिन चल सकता है" यह वाट्स साहब ने, चाय के बर्तन के ढकने को भाफ से उछलते देख, निश्चय किया। न्यूटन साहब ने पेड़ से फल गिरते देख गुरुत्वाकर्षण को खोज निकाला। इसी तरह इस नये आविष्कर्त्ता ने पहिले कुछ गेहूँ खाये। उनकी रबर के समान चिपचिपी वस्तु मुँह में बन गई। इसे देख उसको रबर की बात याद आई। और उसने कृत्रिम रबर बनाने की तरकीब खोज निकाली।

इस नये रबर के आविष्कर्त्ता का नाम कार साहब है। आपके पिता लंकाशायर में रेशम का व्यापार करते थे। इसी से इन्हें ऐसी बातों की खोज करने में बहुत सुभीता था। कृत्रिम रबर की युक्ति ढूंढ़ निकालने के लिए आपने कई यंत्रों और नाना प्रकार के औज़ारों से काम लिया था।

जो रबर बाज़ार में मिलता है उससे कार साहब के रबर में कई विशेष गुण हैं। एक तो यह कम ख़र्च में बनता है। परन्तु उपयोग में मामूली रबर के बराबर है। दूसरे मामूली रबर में नाना प्रकार के पदार्थ मिलाने पर भी वह ठीक तौर से शुद्ध नहीं होता। पर कार साहब का गेहूँ का रबर शुरू से ही शुद्ध रहता है। क्या कभी भारत में भी इस तरह के आविष्कर्त्ता पैदा होंगे? *

लक्ष्मण गोविन्द आठले।

पुस्तक-परीक्षा।

वैदिक-सर्वस्व। धर्म्म-सम्बन्धी मासिक पुस्तक। वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपया। सुदर्शन यंत्रालय, कंजीवरम, से प्रकाशित। इसकी पहली जिल्द के ८ अङ्क हमारे पास आये हैं। मदरास से हिन्दी में एक मासिक पुस्तक का निकलना सचमुच हिन्दी के सौभाग्य की बात है। अतएव इस पुस्तक को ज़रूर आश्रय देना चाहिए। इसके विषय अच्छे जान पड़ते हैं। भाषा भी बुरी नहीं। छपाई और काग़ज दोनों चीज़ें अच्छी हैं। ❋

जीवदया। खँडवा-निवासी बाबू माणिक्यचन्द्र जैन कृत। मूल्य ६ आने। यह एक अँगरेज़ी-पुस्तक के आधार पर लिखी गई है। असल पुस्तक के कर्त्ता ट्राइन नामक, अमेरिका-निवासी एक साहब, हैं। अमेरिका के मुँह से जीवदया पर उपदेश सुनना सचमुच आश्चर्य्य की बात है। पर पुस्तक को पढ़ने से आश्चर्य्य के साथ करुणा का उद्रेक भी उत्पन्न होता है। जीवों का प्राणसंहार करके अमेरिका और

* प्रसिद्ध मराठीपत्र करमणूक के एक लेख का आशय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योरप में जो सैकड़ों व्यवसाय-व्यापार होते हैं उनके वर्णन को इस पुस्तक में पढ़ कर कहीं कहीं पर तो रोमाञ्च होने लगता है।

❋

बेळेंचे महत्व आणि व्यय। यह एक निबन्ध है। बीस निबन्धों में उत्तम ठहराया गया है। लेखक, दत्तात्रेय मोरेश्वर लोहोकरे को बम्बई और पूने की जी० बी० नाइक एँड कम्पनी ने, इसके लिए इनाम दिया है। भाषा मराठी है। समय के महत्त्व और व्यय के विषय की इसमें अच्छी विवेचना है। दाम ६ आने। पुस्तक की बिक्री से इनाम का ख़र्च पूरा हो सकता है। कम्पनी के जो विज्ञापन पुस्तक में हैं वे घाते में समझने चाहिएँ। व्यापार का यह अच्छा ढँग है। पर साथ ही इससे साहित्य की उन्नति होती है और लेखकों को उत्साह भी मिलता है।

❋

मोत्यां की कंठी। श्रीयुक्त शिवचन्द्र भरतियाजी ने इसे रचा है। दूसरा संस्करण है। काग़ज़ स्वदेशी है; स्याही भी स्वदेशी है। पुस्तक मारवाड़ी भाषा के पद्य में हैं। कविता अच्छी और उपदेशजनक है। इसकी पहली आवृत्ति की आलोचना सरस्वती में हो चुकी है।

❋

शास्त्रोक्तोपासना। कर्त्ता रायबहादुर, लाला बैजनाथ, बी० ए०। पृष्ठ संख्या २८०। मूल्य आठ आने। मैनेजर, वैश्य-हितकारी, मेरठ, से प्राप्य। छपाई, काग़ज़, साँचा सब उत्तम। विषय नाम से ही व्यक्त है। शुरू में, परमा-गति-प्राप्त स्वामी रामतीर्थ की लिखी हुई ६०–७० पृष्ठ की एक प्रस्तावना है। उसकी उत्तमता का तो कहना ही क्या है। ग्रन्थकर्त्ता ने भी उपासना के विषय को बहुत अच्छी तरह प्रतिपादन किया है। पहले भाग में वैदिक साहित्य की सहायता से उपासना का उपक्रम प्रारम्भ करके उपनिषदों के आधार पर प्रणवोपासना, ईश्वरोपासना और शुद्धोपासना की चर्चा है। दूसरे भाग में स्मृतियों और पुराणों के आश्रय पर विराट्, प्रतीक और सगुणोपासना का विवेचन है। तीसरे भाग में ब्रह्मोपासाना के विषय का विचार है। पुस्तक बहुत उपयोगी है और बड़े परिश्रम से लिखी गई है। संस्कृत श्लोकों के पद-विच्छेद आदि में कहीं कहीं पर गड़बड़ हो गया है, सो दूसरे संस्करण में सुधार देना चाहिए।

❋

भारतभूमि। नई मासिक पुस्तक मुरादाबाद से प्रकाशित। वार्षिक मूल्य ढ़ाई रुपये। इसे पण्डित ऋषिरामजी शास्त्री आदि पाँच सज्जन मिल कर कार्तिक, संवत् १९६३, से निकालने लगे हैं। इसका मुख्य अभिप्राय इस देश का एक उत्तम इतिहास प्रकाशित करना है। पहले ही अङ्क से इतिहास-प्रकाशन का काम शुरू भी हो गया है। "भाषा-व्याकरण" और "भारतवर्ष का भूगोल" भी इस में निकलना शुरू हुआ है। इनके सिवा और भी दो एक लेख इस में हैं। लेख सब अच्छे हैं। हम आशा करते हैं कि यदि यह पुस्तक निकलती रही और हिन्दी के हितचिन्तकों ने इसे आश्रय दिया, तो इससे बहुत कुछ लाभ होने की सम्भावना है।

यह नोट लिखे बहुत दिन हुए। तब से पुस्तक का दूसरा अङ्क देखने में नहीं आया। शायद निकलाही नहीं!

❋

तिलस्मी बुर्ज़। १८ पृष्ठ का उपन्यास। लेखक बाबू गुलाबदास। प्रकाशक, बाबू जयरामदास, राजघाट बनारस। दाम १ आना। एक तिलिस्मी कहानी है। भाषा गड़बड़ है।

मनोरञ्जक श्लोक।

कामिनीनयनकज्जलपंकादुत्थितो मदन-मत्तवराहः।
कामि-मानस-वनान्तरचारी कन्दमुत्खनति मानलतायाः॥

कामिनी के नयनों में लगे हुए कज्जलरूपी पंक से कामरूपी मत्तवराह उठा। कामियों के मानस रूपी वन में विचरण करता हुआ, देखिए, वह मानरूपी लता को जड़ से उखाड़ रहा है।

ज्वालादत्त शर्म्मा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती।

भाग ८] आक्टोबर, १९०७ [संख्या १०

प्रार्थना-पञ्चदशी।

(स्रग्धरा)

१—सद्यः* काटा लिया है सिर, निज कर में,
कण्ठ में मुण्ड-माला।
जिह्वा लम्बायमाना अतिशय मुख से,
है जटाजूट काला॥
दिग्वस्त्रा, खड्गहस्ता, अरुणिततिलका,
चौभुजी मूर्तिवाली।
भीमा भीतार्तिहारी सुविमल-वरदा
जै शवारूढ़ काली॥

२—थोड़ी सी भी छिपी है यदपि न उनसे
बात कोई हमारी।
हैं अन्तर्यामिनी वे अविदित उनकी
है किसे शक्ति भारी?
तोभी माता पिता से निज दुख कहना
पुत्र-कर्त्तव्य जान।
आत्मावस्था सुनावें सविनय उनको,
माँग कल्याण-दान॥

३—हे दुर्गे, विश्वधात्री, जननि, भगवती,
हे शिवे, हे भवानी।
आर्ये, कल्याणि, वाणी, भव-भय-हरणी,
चण्डि, त्रैलोक्य-रानी!
पाके भी हाय! माता हम सब तुम सी
ईश्वरी, शक्तिशाली।
होंगे संसार में क्या न अब फिर सुखी
तोड़ दुःखार्ति-जाली?

४—उद्योग, स्वावलम्ब, प्रणय-बल, तथा
एकता, देश-भक्ति।
होंगे हा! प्राप्त क्या ये सुगुण न हमको
हे शिवे, आदि शक्ति?
अज्ञान, द्वेष, ईर्ष्या, कपट, मद, तथा
स्वार्थ, आलस्य, फूट।
क्या यों ही ये रहेंगे अवगुण हम में
जो भरे कूट कूट?

* सद्यः = हाल का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—हे शर्वाणी, पड़ा है जब जब हम पै
घोर आपत्ति-काल।
की है रक्षा हमारी तब तब तुमने
काट के क्लेश-जाल॥
की बारम्बार यों ही हम पर करुणा
धार नानावतार।
देरी की किन्तु हे मा, अतिशय अब की
बार क्यों यों बिसार?

६—हैं जो आघात होते हम पर इतने
क्या तुम्हें वे न ज्ञात?
तोभी रक्षा हमारी अब तक उनसे
क्यों हुई है न मात?
हा! हा! ऐसा हुआ है अनुचित हम से
दोष क्या दुर्निवार?
पाते हे ईश्वरी हैं अब तक हम हा!
जो नहीं स्वाधिकार॥

७—देखो तो हो गई है त्रिभुवन-जननी,
दुर्दशा क्या हमारी।
हा! हा! पूरी हुई क्या तदपि न अब भी
मातु निद्रा तुम्हारी?
हा! प्यारी स्वर्ग से भी भरत-वसुमती
हो रही है श्मशान।
दीना, क्षीणा, मलीना, धन-जन-रहिता,
शक्ति-हीना महान॥

८—वर्षा-वैषम्य से है विधि-वश पड़ता
नित्य दुर्भिक्ष घोर।
हे कल्याणी, सदाही तिसपर रहता
रोग का ज़ोर शोर॥
हैं लाखों लोग देखो प्रतिदिन मरते
क्लेश पाके विशेष।
जीते हैं जो अहो वे अधिकतर सभी
अस्थि-चर्मावशेष॥

९—होता वीणादिकों का मधुर-रव जहाँ
था सदा मोद-पूर्ण।
देखो, मा, हो रहा है रुदन अब,
नहीं पेट के अर्थ चूर्ण॥
तोभी पूरा हुआ है पतन न अब भी
क्या हमारा भवानी?
हा! हा! इच्छा तुम्हारी, अति-दृढ़-हृदये,
देवि जाती न जानी॥

१०—हर्म्यों* में मोद-पूर्ण प्रतिदिन करते
थे सदा जो विहार।
होके वे हो भिखारी अब हम फिरते हैं
अहो द्वार द्वार!
हारे सारे गुणों में भगवति, जिन से
सर्वदा सर्व देश।
लज्जा-रक्षार्थ पाते न अब हम वही
वस्त्र भी हाय क्लेश!

११—हा! हा! हा! दुर्दशा यों जननि, तुम सदा
देखके भी हमारी।
होती हो क्यों ज़रा भी द्रवित न मन में
पाय सन्ताप भारी॥
पुत्रों को भूल जाना तज कर उनसे
प्रीति को रीति सारी।
हे माता! हो गई है अब यह कब से
नीति न्यारी तुम्हारी॥

१२—सोचो तो हे भवानी! बहुत दिन हुए,
कष्ट पाते कठोर।
हा! हा! जाती सही हैं हम पर अब तो
यातनायें न घोर॥
वर्षों से हो रहा है, अब बहुत हुआ,
कोप माता तुम्हारा।
कीजे रक्षा हमारी भगवति, अब तो
भूलके दोष सारा॥

१३—होता है हा! न जौलों प्रबल जलधिसा
एकही दुःख दूर।
हो जाता प्राप्त तौलों गुरु-तर गिरिसा
दूसरा और क्रूर॥

---

* हर्म्यों में = महलों में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलो ऐसा किया है भगवति, हमने
क्या महाघोर पाप ?
थोड़ी भी जो हमारे ज्वलित हृदय की
दूर होती न ताप ॥

१४—लाखों आँखें हमारी अविरल दुख से
वारि-धारा बहातीं।
दे के हा ध्यान तोभी तरस न हम पै
आप हैं नेक खाती ॥
देता है काट हे मा, पृथुल उपल भी,
सूक्ष्म-नीर-प्रवाह।
किन्तु क्रूरे! तुम्हारा हृदय न पिघला
हा मरे आह! आह!

१५—अम्बे! काली कराले! बस अब यह है
प्रार्थना हाथ जोड़।
कीजे रक्षा हमारी सदय-हृदय हो
निष्ठुरा वृत्ति छोड़ ॥
होके सन्तुष्ट कीजे जननि अब क्षमा
दोष अज्ञात ज्ञात।
हो चाहे पुत्र खोटा, तदपि भगवती
दुःख देती न मात ॥

मैथिलीशरण गुप्त।

विविध विषय।

अब तक टेलीफ़ोन से ख़बर भेजनेही का काम लिया जाता था। अब अख़बार का काम भी लिया जाने लगा। टेलीफ़ोन वह यन्त्र है जिसमें एक आदमी मुँह से ख़बर भेजता है, दूसरी तरफ़ दूसरा आदमी कान में एक चोंगे को लगाकर सुनता है। आस्ट्रिया में वीना एक प्रसिद्ध नगर है। वहाँ टेलीफ़ोन का एक अजीब कारख़ाना खोला गया है। उसमें सैकड़ों आदमी काम करते हैं। शहर भर में उसके तार लगे हुए हैं। जो चाहे लगवा सकता है। उनसे अख़बारों की सी ख़बरें आया करती हैं। देश की ख़बरें, विदेश की ख़बरें, खेल तमाशे की ख़बरें, पारलियामेंट के मेम्बरों की वक्तृतायें, अन्यान्य वक्ताओं की वक्तृतायें, बाज़ारभाव, आदि कोई बात ऐसी नहीं जो इस टेलीफ़ोन के द्वारा न भेजी जाती हो। यहाँ तक कि थियेटर के गाने तक ज्यों के त्यों ग्राहकों के घर पहुँचा दिये जाते हैं। प्रतिदिन किस समय किस विषय की ख़बरें सुनाई जायँगी, इसकी एक सूची प्रकाशित कर दी जाती है। ठीक उसी समय, ख़बरें आती हैं। दो आदमी एकही साथ दो चोंगे कान में लगाकर घर बैठे सब बातें सुन सकते हैं। आवाज़ ख़ूब साफ़ आती है। और ख़र्च कितना? सिर्फ़ एक आना रोज़! जब तक चाहो इसका सम्बन्ध अपने घर से रक्खो। जब न चाहो, कह दो, तार और यन्त्र उखाड़ लिये जायँगे। जिस कम्पनी ने यह काम जारी किया है उसे बेहद लाभ हो रहा है। घर घर में इस टेलीफ़ोन का प्रचार होता जाता है। लोग अख़बार मोल लेकर पढ़ने का झंझट अब कम पसन्द करते हैं। जिस तरह की अख़बारी ख़बरें या लेख उन्हें सुनने की इच्छा होती है उन्हीं को वे, नियत समय पर, कान में चोंगा लगा कर सुन लेते हैं। जिनको वे नहीं सुनना चाहते, उनके भेजे जाने के वक्त, यन्त्र के पास नहीं आते। वे बिनासुनी ही रह जाती हैं। और देशवाले भी अब इस तरह के टेलीफ़ोन जारी करना चाहते हैं। मरे अख़बारवाले!

***

प्रसिद्ध धन-कुवेर कारनेगी साहब का नाम पाठकों ने अवश्यही सुना होगा। आपने करोड़ों रुपया स्कूल खोलने, पुस्तकालय स्थापित करने और विद्यार्थियों को वज़ीफ़े देने में ख़र्च किया है और अब तक बराबर कर रहे हैं। कुछ दिन हुए आपने अमेरिका के पिट्सबर्ग नगर में एक बहुतही बड़ा विश्वविद्यालय अकेले अपने रुपये से बनवाकर उस नगरवालों को समर्पित किया है। इस विद्यालय में साहित्य, विज्ञान और कला-कौशल की सब तरह की शिक्षा दी जायगी। कितनेहीं कारख़ाने और प्रयोगशालायें इसके साथ रहेंगी। इस विद्यालय का बाहरी भाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईस्पात का है और भीतरी संगमरमर आदि क़ीमती पत्थरों का। इसके पुस्तकालय में कोई १५ लाख जिल्द पुस्तकें हैं। इसकी इमारतों के बनाने और इसका सालाना ख़र्च अच्छी तरह चलाने के लिए कारनेगी साहब ने ६ करोड़ रुपया दिया है! इस दान को पाठक शायद बहुत समझें। पर अमेरिका में एक से एक बढ़कर दानी पड़े हुए हैं। शिकागो के करोड़पति जे० डी० राकफेलर साहब ने अभी हाल ही में अमेरिका के शिक्षाविभाग को ९ करोड़ रुपया शिक्षा-विस्तार के लिए दे डाला !!! द्रव्य का सदुपयोग इसे कहते हैं। जिस देश में शिक्षा और ज्ञान-वृद्धि के लिए वहाँ के धनवान करोड़ों रुपये देते हैं वह देश क्यों न सब बातों में इतनी उन्नति करे। विद्याही सारी उन्नतियों की जड़ है। उसी की हमारे देश, भारत, में इतनी कमी है। यहाँ यद्यपि बहुत से ऐसे धनी हैं जो लाख लाख रुपया अनुपयोगी कामों के लिए दे डालते हैं। पर विद्यावृद्धि के लिए एक कौड़ी भी नहीं देते। और देते भी हैं तो मुशकिल से हज़ार दो हज़ार। कहीं किसी ने लाख दो लाख दे डाले तो मानों उसने कर्ण का आसन छीन लिया। बिना विद्यावृद्धि के देशोन्नति नहीं हो सकती। अतएव इस देश के लक्ष्मीवान् लोगों को शिक्षा-प्रचार के लिए यथेष्ट धन देकर अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करना चाहिए।

* * *

अँगरेज़ी में "ग्रैंड मैगेज़ीन" नाम की एक मासिक पुस्तक है। उसमें हमारे राजेश्वर एडवर्ड और रानी अलेग्ज़ांडरा के गृह-प्रबन्ध पर एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें लिखा है कि चिट्ठियों से भरे हुए कोई चार बड़े बड़े थैले रोज़ महाराज के नाम आते हैं। वे सब खोले जाते हैं; चिट्ठियाँ सब पढ़ी जाती हैं; और जिनका उत्तर देना होता है उनका उत्तर लिखा जाता है। कुछ का उत्तर महाराज ख़ुद अपने हाथ से लिखते हैं; कुछ का अपने निज के सेक्रेटरी लोगों से लिखवाते हैं और अपने हस्ताक्षर करते हैं; और कुछ पर सेक्रेटरी ही अपने हस्ताक्षर करते हैं। महारानी साहबा भी कोई ५० चिट्ठियाँ रोज़ लिखती और लिखाती हैं। इस काम में कुमारी नालीज़ उन की मदद करती हैं। चिट्ठियाँ लिखने और उत्तर देने में इतने बड़े राजा और रानी का यह हाल है। पर हमारी हिन्दी के कुछ उद्धारक, बड़ों बड़ों तक की चिट्ठी का उत्तर देने, या उनकी चिट्ठी की पहुँच लिखने को शिष्टता नहीं दिखाते। उनका मिज़ाज शाहन्शाहों के मिज़ाज से भी बढ़ा चढ़ा मालूम होता है।

* * *

कुछ दिनों से विलायती पारलियामेंट के लार्ड लोगों और साधारण सदस्यों में अनबन हो गई है। इस सम्बन्ध में तरह तरह के चित्र, लेख और दिल्लगी से भरी हुई कवितायें विलायत में प्रकाशित हो रही हैं। अख़बारवालों को यह एक अच्छा विषय मिल गया है। वहाँ की "ग्रैंड मैगेज़ीन" के सम्पादक को एक नई बात सूझी। उसने लार्डों और साधारण सदस्यों (Commons) से उनका वज़न और उँचाई पूछी। पर ६१८ लार्डों और ६७० साधारण सभ्यों में से सिर्फ़ २७० आदमियों ने जवाब दिया। उससे मालूम हुआ कि जिन लोगों ने जवाब दिया उनमें से लार्डों का वज़न १२८१ और साधारण सदस्यों का १४१७ मन है। इस हिसाब से फ़ी लार्ड का औसत वज़न २ मन ५ सेर और फ़ी साधारण सदस्य का २ मन ४ सेर पड़ा। उँचाई में लार्डों का औसत फ़ी लार्ड ५ फ़ीट १०$\frac{3}{4}$ इंच और फ़ी साधारण सदस्य का ५ फ़ीट १० इंच निकला। अर्थात् लार्ड लोग मोटे और वज़नी भी ज़ियादह निकले और ऊँचे भी। साधारण सदस्य चाहते हैं कि लार्ड लोगों की पारलियामेंटही तोड़ दी जाय। अब देखना है अपने से अधिक मोटे और ऊँचे लार्डों पर साधारण जन विजय पाते हैं या नहीं। इँगलैंड के अख़बारवाले अब साधारण सदस्यों के भिन्न भिन्न दलों (उदार, अनुदार आदि) की भी उँचाई और वज़न जानने की चेष्टा कर रहे हैं। यहाँ तक कि उनके मोज़े और दस्ताने नापकर उनके हाथ-पैरों की लंबाई भी जानना चाहते हैं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़्रांस में बीमार पेड़ों के इलाज की तरकीब निकाली गई है। अगर कोई पेड़, या पौधा, किसी कारण से अपनी जड़ों से ख़ूराक नहीं इकट्ठा कर सकता तो वह कमज़ोर हो जाता है और कुछ दिन में सूख जाता है। इस रोग को दूर करने के लिए फ़्रांस के वैज्ञानिक ऐसे पेड़ों के तने में चाक़ू से एक शिगाफ़ कर देते हैं, और, नीचे, ज़मीन पर, पेड़ों की आवश्यक ख़ूराक (प्रवाही पदार्थ) रख देते हैं। फिर उस ख़ूराक और शिगाफ़ के बीच एक नली लगा देते हैं। इस तरह पेड़ अपनी अपेक्षित ख़ूराक खींच लेता है और फिर हरा भरा होकर पूर्ववत् बढ़ने लगता है। जब बीमार आदमी किसी कारण से खाना नहीं खा सकता तब चतुर सर्जन आँतों के या किसी और रास्ते उसके पेट में ख़राक पहुँचा कर उसे ज़िन्दा रखने की कोशिश करता है। पेड़ों को बनावटी ख़ूराक खिला कर हरा रखने की तरकीब भी कुछ कुछ ऐसी ही है।

* * *

इस समय (अगस्त में) उधर हेग में सब राज्यों के प्रतिनिधि एकत्र होकर संसार में शान्ति-भङ्ग न होने देने का तरकीबें सोच रहे हैं। इधर जनसंहारकारी जहाज़ों और पवनयानों की सृष्टि हो रही है। जो शक्तियाँ हेग में कहती हैं कि व्यर्थ युद्ध न हुआ करें, वही घर में बैठे बैठे लड़ाई के भीषण सामान तैयार कर रही है। हेग की सभा में यह प्रस्ताव पेश हुआ कि लड़ाई के समय आसमान में ग़ुब्बारों और पवनयानों पर सवार होकर कोई अस्त्र-शस्त्र, गोला-बारूद, आदि न छोड़े। इस पर जर्मनी और फ़्रांस ने फ़ौरन प्रतिवाद किया। कहा, यह नहीं हो सकता। ये दोनों शक्तियाँ बड़े बड़े पवनयान बना रही हैं न। उन्हें वे क्यों व्यर्थ करें? डे्डनाट नाम का महा-प्रलयङ्कर लड़ाकू जहाज़ बनाकर अँगरेज़-राज यह प्रस्ताव कर रहे हैं कि भाई अब जहाज़ी शक्ति और न बढ़ाई जाय। प्रजा का धन इस तरह फूँक देना अच्छा नहीं। उसे और किसी अच्छे काम में लगाना चाहिए। पर इस प्रस्ताव को कोई क्यों मानने लगा। "डे्डनाट" के दादा दो जहाज़ जापान बनवाही रहा है। इसका उल्लेख सरस्वती में होही चुका है। अब शान्ति का प्रबल पक्षपाती अमेरिका डे्डनाट से भी भयङ्कर दो जहाज़ बनवावेगा। इनके नाम होंगे "दिलावर" और "न्यूयार्क"। ये कोई तीन वर्ष में पानी पर तैरने लगेंगे। शान्ति-सभा का आचार्य्य रूस बेचारा रहा जाता था, सो वह ऐसे लड़ाकू जहाज़ बनवाने का उपक्रम कर रहा है जो इँगलैंड, जापान और अमेरिका के इन नये डे्डनाटों के दिल में भी डे्ड (ख़ौफ़) पैदा करेंगे! शान्ति की रक्षा भी तभी होगी। बिना डर के भला कहीं शान्ति होती है!

* * *

विलायत में एक लड़का ११ ही वर्ष की उम्र में कालेज में भरती हुआ है। इसका नाम है नोर्बर्ट वीनर। इसका पिता हारवर्ड कालेज में अध्यापक है। यदि यह बराबर परीक्षाओं में उत्तीर्ण होता गया तो १४वर्ष की उम्र में ही 'ग्राजुएट' हो जायगा। जिस उम्र में और लड़के खेल कूद में मग्न रहते हैं उस उम्र में ग्राजुएट होना साधारण बात नहीं। यह लड़का विलक्षण बुद्धिमान् है। डेढ़ ही वर्ष की उम्र में यह अँगरेज़ी की वर्णमाला सीख गया था और तीन वर्ष की उम्र में अच्छी तरह लिखने पढ़ने लगा था। आठ वर्ष की उम्र में इसने कई एक अच्छे अच्छे ग्रन्थकारों के ग्रन्थ देख डाले थे। डारविन, हक्सले और हेकल आदि विख्यात वैज्ञानिकों के ग्रन्थों का अवलोकन भी इसने इसी उम्र में कर डाला था। इन वैज्ञानिकों के ग्रन्थ ऐसे गहन हैं कि इस देश के एम० ए०, बी० ए० भी मुश्किल से समझ सकते हैं। इसका पिता रशियन और हिब्रू आदि भाषाओं का अध्यापक है। इसलिए यह भी इन भाषाओं को जानता है। पढ़ने में इतना प्रवीण होने पर भी यह खेलता कूदता भी है। तैरने से इसे बड़ा प्रेम है। इसके माता-पिता मांस नहीं छूते। वे शाकाहारी हैं। अतएव इस लड़के का पालन केवल अनाज, फल और वनस्पतियों ही से हुआ है। मांसाहार के प्रेमियों को जानना चाहिए कि मांसद्वेषी मनुष्यों की बुद्धि कितनी तीव्र हो सकती है।*

* यह नोट श्रीयुक्त शिवप्रसाद दलपतराम पण्डित का भेजा हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यप्रदेश में रायगढ़ एक रियासत है। वहाँ के रहनेवाले पण्डित अनन्तराम पाँडे का, ६ अगस्त ०७ को, हैज़े से शरीरपात हो गया। इनको हिन्दी से बहुत अनुराग था। अख़बारों और मासिक पुस्तकों में ये कभी कभी लेख भी दिया करते थे। "सरस्वती" का इन्होंने बहुत उपकार किया है। यदि इनको "सरस्वती" में कोई बात इनकी समझ के अनुसार अनुचित या भ्रमपूर्ण देख पड़ती थी तो ये उसका प्रतिवाद किये बिना न रहते थे। इनके इस तरह के कई प्रतिवाद भारतमित्र और हिन्दीप्रदीप आदि में निकले हैं। उनसे हमने शिक्षा प्राप्त की है। सेप्टम्बर ०६ की "सरस्वती" में कलकत्ते के प्रसिद्ध चित्रकार बाबू अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का "विरही यक्ष" चित्र निकला। वह आपको पसन्द न आया। आपने हमें लिख भेजा कि यह चित्र इतनी प्रशंसा के योग्य नहीं। साथ ही आपने इस चित्र के विषय में कई बातों को कैफ़ियत भी हमसे तलब की। हमने आप के प्रश्नों का उत्तर थोड़े में लिख भेजा। उसे आपने मान लिया। पांडे जी पहले रायगढ़ के स्कूल में अध्यापक थे। पीछे से रियासत के अँगरेज़ी दफ़्तर में बदल गये थे। आपकी अकाल-मृत्यु से हमें बहुत दुःख हुआ है। इन्होंने कुल ३४ वर्ष की उम्र पाई!

* * *

बिहार से "बिहारी" नामक एक अँगरेज़ी पत्र हफ़्ते में दो दफ़े निकलता है। पहले उसका नाम था "बिहार टाइम्स"। १ अगस्त ०७ को, इसके सम्पादक बाबू महेशनारायण का शरीरान्त हो गया। ये बड़े विद्याव्यसनी और स्वदेशभक्त थे। राजनैतिक बातों को ख़ूब समझते थे। बिहारवालों के सुख-दुःख को ये अपनाही सुख दुःख समझते थे। गवर्नमेंट यदि कोई ऐसा काम करती जिससे प्रजा को कष्ट हो तो उसका ये कठोर प्रतिवाद करते थे। ये चाहते थे कि बंगाल के दो टुकड़े न होकर बिहार अलग कर दिया जाय और उसमें छोटा नागपुर जोड़ कर उसके शासन के लिए एक अलग लफ़्टिनेंट गवर्नर नियत किया जाय। इसके लिए इन्होंने बहुत कुछ प्रयत्न भी किया था। ये बिहार की लैंड होल्डर्स एसोसियेशन के मंत्री भी थे। इस पद पर रहकर इन्होंने बड़ी योग्यता से काम किया। सुनते हैं पहले कभी कभी ये हिन्दी में भी राजनैतिक विषयों पर लेख लिखा करते थे। हिन्दी-कविता का भी इन्हें शौक़ था। पण्डित पुरुषोत्तमप्रसाद शर्म्मा ने कृपा करके इनका एक चित्र भेजा है। उसे हम इस संख्या में प्रकाशित करते हैं।

गायनाचार्य्य पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुसकर।

गायन वह कला है जिससे मनुष्य की तो बात ही नहीं, पशु, पक्षी और सरीसृप भी मोहित हो जाते हैं। मधुर गान सुन कर हरिण स्तब्ध रह जाते हैं और सर्प अपनी फणा को, आनन्दमग्न होकर, इतस्ततः सञ्चालन करने लगते हैं। किसी किसी देशवालों ने तो नटखट गाय भैंसों को गाना सुना कर, उनका दूध दुह लेने की भी रीति निकाली है। जब अज्ञानी पशुओं का यह हाल है तब ताल-लय-युक्त मञ्जुल गीत सुन कर सज्ञान मनुष्यों का आनन्दातिरेक से मत्त हो उठना कौन बड़ी बात है? किसी किसी की राय तो यह है कि "नाद" से वही आनन्द मिलता है जो आत्मसाक्षात्कार से मिलता है। यह बात ज़रूर सही होगी, क्योंकि जिस समय इस देश में आध्यात्मिक विद्योन्नति की पराकाष्ठा थी उस समय गाने-बजाने की कला की भी चढ़ती कला थी। इस कला के आचार्य्य भरत मुनि माने जाते हैं। सङ्गीत-शास्त्र के बचे खुचे दो चार प्राचीन ग्रन्थों को देखने से मालूम होता है कि इस कला के पारदर्शी अनेक पण्डित हो गये हैं। पूना के "आनन्दाश्रम" ने सङ्गीत के जो दो एक ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं उनसे जान पड़ता है कि यह कला इस देश में किसी समय पूर्णता को पहुँच गई थी। इस विषय के राग-रत्नाकर और सङ्गीत-पारिजात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि ग्रन्थों को देख कर, ग्रन्थकारों के अगाध सङ्गीत-ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। यद्यपि इस विद्या के ग्रन्थ बहुत कम पाये जाते हैं, तथापि एशियाटिक सोसाइटी की तरफ़ से संस्कृत-पुस्तकों की जो खोज होती है, उसकी रिपोर्टों में अब तक नये नये ग्रन्थों के नाम देखने को मिलते हैं।

बात यह है कि जब जिस गुण, या जिस कला, की क़दर होती है तभी उसकी उन्नति होती है। मुसलमान बादशाहों और नवाबों में भी किसी किसी को सङ्गीत से बड़ा शौक़ था। इस कारण उनके समय में भी बहुत लोग इस कला में कुशल हो गये। प्रसिद्ध-गायक तानसेन इन्हीं में से थे।

इस देश में और प्रान्तों की अपेक्षा दक्षिण में इस ललित कला का अधिक आदर है। वहाँ अब भी कई एक उत्तम गायक हैं। पुराने समय में तो पुरुषों को ही नहीं, कुलीन स्त्रियों को भी इस ललित कला की शिक्षा दी जाती थी। राजाओं की रानियाँ भी गाना, बजाना सीखती थीं। इन्दुमती का प्राणान्त होने पर राजा अज ने विलाप करते हुए कहा है—

गृहिणी सचिवो मिथः सखी प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किन्न मे हृतम्?
रघुवंश।

इस से सिद्ध है कि अज की रानी इन्दुमती ललित कलाओं में ख़ूब प्रवीण थी। जो बातें यहाँ हज़ारों वर्ष पहिले थीं, वे लोप होकर अब यूरोप को चली गई हैं। यहाँ निराश्रित हो जाने पर उन्हें अन्यत्र आश्रय ढूँढ़ना हो पड़ा। यूरोप में स्त्रियों को सङ्गीत से शौक़ है। सुगृहिणी होने के लिए उनको इसकी सब से अधिक आवश्यकता होती है। जो तरुणी इस कला में प्रवीण नहीं, उसके लिए पति का मिलना मुश्किल हो जाता है। पर हमारे देश की ललित कलाओं का यहाँ तक अधःपतन हुआ है कि गाना बजाना अब वेश्याओं का रोज़गार मान लिया गया है। अफ़सोस! जिस कला की बदौलत आदमी कैसा ही दुखी और कैसा ही आफ़त का मारा क्यों न हो, ज़रा देर के लिए अपने सारे दुःख-क्लेश को भूल जाता है वह वेश्याओं का रोज़गार ठहराया गया! परन्तु समय के पलटा खाने के कहीं कहीं लक्षण देख पड़ने लगे हैं। लड़कियों, की बड़ी बड़ी पाठशालाओं में, कहीं कहीं, अब सङ्गीत की शिक्षा देने का भी प्रबन्ध हुआ है। हमें याद पड़ता है, हमने कहीं पढ़ा है, कि महाराज बरौदा ने अपनी राजधानी में सङ्गीत-शिक्षा के लिए एक उत्तम पाठ-शाला खोली है। माइसोर में जो महारानी की कन्या-पाठशाला है उसमें भी सङ्गीत की अच्छी शिक्षा दी जाती है। सुनते हैं वहाँ वीणा बजाने की शिक्षा का बहुतही उत्तम प्रबन्ध है।

जैसा हमने ऊपर लिखा, दक्षिण में सङ्गीत का अधिक प्रचार है। वहाँ अण्णा किलोसकर नाम के एक सज्जन हो गये हैं। मालूम नहीं अब वे हैं या नहीं। उन्होंने पहले पहल मराठी के मुख्य मुख्य नाटकों को सङ्गीत का रूप दिया। उनके सङ्गीत-नाटकों का बड़ा आदर हुआ। थोड़े ही समय में सब तरफ़ उनकी धूम मच गई। गली गली उनके रचित पदों को गाते हुए लड़के देख पड़ने लगे। धीरे धीरे सङ्गीत की विशेष उन्नति हो उठी। जिधर देखो उधर सङ्गीत-शाकुन्तल, सङ्गीत-सौभद्र आदि की ध्वनि आने लगी। यह तो नाट्य-सङ्गीत की बात हुई। साधारण सङ्गीत-विद्या में भी दाक्षिणात्योंही का नम्बर इस समय सब से ऊपर है। आजकल पूना-निवासी अण्णा घारपुरे का सङ्गीत में बड़ा नाम है। हाल में एक और सङ्गीत शास्त्री प्रकट हुए हैं। आप का नाम है मीनप्पा वेङ्कप्पा केलवाड़। ये महाशय मस्तिष्क-विद्या में भी ख़ूब दक्ष हैं और सङ्गीत-विद्या में भी। आपने सङ्गीतशास्त्र पर एक पुस्तक लिखी है और उसमें सङ्गीत-विषयक नई नई बातों का प्रतिपादन किया है। सङ्गीत के ज्ञाताओं ने आपकी नई सङ्गीत-पद्धति की बड़ी प्रशंसा की है।

आज हम एक ऐसे सङ्गीत-कला-कुशल गायक का संक्षिप्त चरित पाठकों को सुनाते हैं जो दक्षि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णात्य होकर भी पाश्चात्य हो रहे हैं। आपने कारण-वश अपना प्रान्त छोड़ कर सुदूरवर्ती लाहौर में रहना स्वीकार किया है। आपका नाम है गायनाचार्य्य पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुसकर।

जब से पण्डित विष्णु दिगम्बरजी ने लाहौर में गान्धर्व-महाविद्यालय खोला तब से आप इस तरफ़ बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं। बम्बई हाते में एक ज़िला बेलगाँव है। उसके अन्तर्गत कुरुन्दवाड़ नाम की एक रियासत है। वहीं पण्डितजी का जन्म हुआ। पण्डितजीके एक मित्र ने आपका जन्म-काल शक १८७१ लिखा है। पर इसमें कोई ग़लती मालूम होती है। क्योंकि आज कल शक १८२८ है। यदि आपका जन्माब्द १७७१ शक मानते हैं तो भी ठीक नहीं जान पड़ता। क्योंकि आपके चित्र से आपकी उम्र ५७ वर्ष की नहीं मालूम होती। दाक्षिणात्य ब्राह्मणों के मुख्य तीन भेद हैं—देशस्थ, कोकणस्थ और कराड़े। कोकण प्रदेश के रहनेवाले कोकणस्थों में चित्पावन नाम का एक अन्तर्भेद है। इस भेद से सम्बन्ध रखनेवाली एक विचित्र आख्यायिका है। पर यहाँ पर उसके देने की ज़रूरत नहीं। पण्डितजी चित्पावन कोकणस्थ ब्राह्मण हैं। आपके कुल का नाम गाड़गील है। पलुस नाम के गाँव में रहने के कारण आपका उपनाम पलुसकर हो गया है।

पण्डित विष्णु दिगम्बर के घर में सङ्गीत-विद्या परम्परा से चली आती है। आपके पितामह का नाम गोपालराव था। वे तासगाँव नामक प्रान्त में पूर्वोक्त पलुस नाम के गाँव के अधिकारी थे। उनकी बहिन का विवाह तासगाँव के रईस से हुआ था। १८५७ ईसवी में तासगाँव की रियासत ख़ालसा होकर गवर्नमेंट के अधिकार में आई। अतएव गोपालराव को अपने अधिकार के साथ ही साथ पलुस भी छोड़ना पड़ा।

दक्षिण में मीरज एक रियासत है। उसके पास नरसिंहवाड़ी नाम का एक स्थान है। इसे लोग बहुधा नरसोबा की वाड़ी कहते हैं। यहाँ दत्तात्रेय का देवालय है। लोग दूर दूर से इस देवस्थान को आते हैं। कहते हैं जिन लोगों को प्रेत-बाधा होती है वे वहाँ पहुँचते पहुँचते अच्छे हो जाते हैं। वहाँ जाने से प्रेत आप ही आप अपनी हक़ीक़त बयान करने लगते हैं। इसी नरसिंहवाड़ी में आकर गोपालराव रहने लगे। उस समय वहाँ पर नारायण स्वामी नाम के एक साधु पुरुष रहते थे। उन्होंने गोपालराव की सच्चरित्रता और साधु-वृत्ति देख कर उन्हें सकुटुम्ब आश्रय दिया। वहाँ उनके चार पुत्र हुए—चिन्तामणि, धोंडू, केशव और दिगम्बर।

जैसे अपने यहाँ रामलीला इत्यादि की प्रथा है वैसे ही दक्षिण में हरिकीर्तन की प्रथा है। हरिकीर्तन करनेवालों को सैकड़ों पौराणिक कथायें और हज़ारों सामयिक श्लोक याद रहते हैं। तबला और पखावज आदि के साथ वे बड़े लय से कीर्तन करते हैं। नारायण स्वामी की आज्ञा से गोपालराव के बड़े लड़के चिन्तामणि ने हरिकीर्तन करना सीखा और बाक़ी के तीनों लड़कों ने गाने बजाने का अभ्यास किया। हरिकीर्तन में पण्डित चिन्तामणि ने, और गाने में पण्डित दिगम्बर ने अच्छा नाम पैदा किया।

दिगम्बरराव के दो पुत्र हुए—गोपाल और विष्णु। गोपाल ने सांगली नामक रियासत में न्यायशास्त्र का अभ्यास किया और गुरु के आज्ञानुसार अपने चचा चिन्तामणिराव का अनुकरण किया। वे हरिकीर्तन करने लगे। उसमें उन्होंने अच्छी प्रवीणता प्राप्त की। अब तक वे इसी व्यवसाय में लगे हुए हैं।

गोपालराव के छोटे भाई विष्णु, अर्थात् इस लेख के आधार विष्णु दिगम्बर पलुसकर, जब चार वर्ष के थे तभी से इनकी शिक्षा का आरम्भ हुआ। मराठी की यथेष्ट शिक्षा प्राप्त करने के अनन्तर इन्होंने अँगरेज़ी का अभ्यास शुरू किया। कुरुन्दवाड़ के रईस श्रीमान् दाजी साहब के चिरञ्जीव नाना साहब के साथ ये विद्याध्ययन करने लगे। इनके पिता एक प्रसिद्ध गायक थे। इस कारण सहज ही इनकी प्रवृत्ति गाने की तरफ़ हो गई। इनकी आवाज़ भी बहुत ही मधुर थी। और दाजी साहब से गाने में इन्हें प्रोत्साहन भी मिलता रहा। अतएव स्कूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शिक्षा के साथ साथ गाने में भी ये प्रतिदिन अधिकाधिक उन्नति करने लगे। दैवयोग से इनकी आँखें कुछ बिगड़ गईं। अतएव स्कूल की शिक्षा में व्याघात होने लगा। यद्यपि अनेक प्रकार के औषधोपचार हुए—डाक्टर और वैद्य सब ने यथाशक्ति कोशिश की—तथापि इन्हें विशेष फ़ायदा न हुआ। आँखें बिगड़ती चलीं। अतएव सब की सलाह से इनकी शिक्षा बन्द हुई और सिर्फ़ गायन-कला का अभ्यास बढ़ाने के लिए इनको उत्तेजन दिया जाने लगा। विष्णुपन्त पर पूर्वोक्त दाजी साहब की विशेष कृपा थी। अतएव गाने का अभ्यास पूरा करने के लिए उन्होंने मीरज के अधिपति सर गङ्गाधरराव बाला साहब, के० सी० आ० ई०, के सिपुर्द किया। मीरज में गङ्गाधररावजी के आश्रय में पण्डित बालकृष्ण इचलकरञ्जीकर नाम के एक सज्जन थे। ये महाशय गान-विद्या में अत्यन्त प्रवीण थे। दस वर्ष तक इनके पास रह कर पण्डित विष्णु दिगम्बर ने गाने का अभ्यास किया। इस समय, जब, दिन पर दिन, शास्त्रीय गायन-कला का ह्रास हो रहा है, तब, विष्णुपन्त के नेत्र जो कमज़ोर हो गये, सो एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। यदि ऐसा न होता तो शायद ये अँगरेज़ी पढ़ने के झंझट में पड़ जाते और इस कला का जो इस समय में पुनरुज्जीवन कर रहे हैं सो न कर सकते।

पण्डित बालकृष्णजी के पास १० वर्ष तक गाना सीख कर विष्णु महाशय ने एक और महात्मा का शिष्यत्व स्वीकार किया और उनसे गायन-कला के शास्त्रीय सिद्धान्त (Theory of Music) सीखे। जब इस कला में ये पूरे तौर पर पारगामी हो गये तब इस महात्मा की आज्ञा हुई कि लाहौर में एक विद्यालय की स्थापना करके ये इस विद्या का पुनरुज्जीवन करें। लाहौर का गान्धर्व-महाविद्यालय इसी का फल है। विष्णुपन्त के गुरु-महोदय ने लाहौर में विद्यालय स्थापन करने की आज्ञा शायद इस विचार से दी कि दक्षिण भारतवर्ष में तो सङ्गीत की थोड़ी बहुत चर्चा है भी, पर उत्तर-भारतवर्ष में बिलकुल नहीं। अतएव लाहौर में सङ्गीत-शास्त्र सिखाने का प्रबन्ध होने से इन प्रान्तों के रहनेवालों को विशेष सुभीता होगा।

लाहौर में गान्धर्व-विद्यालय खोलने के पहिले पण्डित विष्णुपन्त ने, सङ्गीत-शास्त्र के प्रचारार्थ, अनेक रियासतों में भ्रमण किया है। आपको कई एक पदक भी मिले हैं। एक सुवर्ण-पदक आपको भरतपुर से और दूसरा जोधपुर से मिला है। एक रजत पदक, सिक्ख लोगों के गुरु बाबा खेमसिंह बेदी, के० सी० आई० ई० ने, गुरु नानक के जन्मदिनोत्सव पर, रावलपिण्डी में दिया है।

पण्डितजी के उद्योग से ५ मई १९०१ को लाहौर में गान्धर्व-महाविद्यालय की स्थापना हुई। उस समय एक बहुत बड़ा जलसा हुआ। माननीय विचारपति पृथुलचन्द्र चैटर्जी सभापति थे। इस विद्यालय में ६ दरजे हैं। पण्डितजी ने गाना लिखने की एक पद्धति निकाली है। जैसे अँगरेज़ी में सङ्गीत के अङ्कन की रीति है, वैसीही आपने हिन्दी में भी अङ्कन-रीति निकाली है। उसी के अनुसार इस विद्यालय में शिक्षा दी जाती है। परन्तु जो लोग रागरत्नाकर और पारिजात आदि सङ्गीत के प्राचीन ग्रन्थ पढ़ना चाहें उनके लिए भी प्रबन्ध किया जासकता है। वादन-कला की भी शिक्षा इसमें दी जाती है। इस कला के भी कई दरजे हैं। सितार, हारमोनियम, मृदङ्ग, और तबला बजाना विधिपूर्वक सिखलाया जाता है। सब मिला कर आठ अध्यापक हैं। जाड़ों में शाम के ५ बजे से लेकर रात के ८ बजे तक, और गरमियों में ६ बजे से लेकर रात के ९ बजे तक शिक्षा दी जाती है।

इस विद्यालय में शिक्षा पाने के लिए दूर दूर से विद्यार्थी आते हैं। कितने ही विद्यार्थी राजा महाराजाओं के भेजे हुए हैं। वे वज़ीफ़ा पाते हैं और विद्यालय के बोर्डिंग-हाउस में रहते हैं। बोर्डिंग-हाउस का यहाँ उत्तम प्रबन्ध है।

विद्यालय के साथ एक "उपदेशक क्लास" भी है। इसमें इस समय तेरह चौदह विद्यार्थी हैं। इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थियों के खाने-पीने और वस्त्रप्रावरण आदि का प्रबन्ध विद्यालयही की तरफ़ से होता है। इस क्लास में केवल वही विद्यार्थी रक्खे जाते हैं जो गायन में प्रवीण होकर विद्यालय में अध्यापक का काम करने, और देश में पर्य्यटन करके सङ्गीत-विद्या का प्रचार करने, का प्रण करते हैं। यह बहुत ही उत्तम बात है।

इस विद्यालय से आज तक कोई चार पाँच सौ विद्यार्थी सङ्गीत-शास्त्र का अभ्यास कर के निकल चुके हैं। इस समय इसमें कोई पचास विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं।

इस विद्यालय के योग में पण्डितजी ने सितार, तँबूरा और हारमोनियम आदि बनाने और उनकी मरम्मत करने का एक कारख़ाना भी खोल रक्खा है।

पण्डितजी ने एक और बहुत अच्छा काम किया है। आपने "सङ्गीतामृत-प्रवाह" नाम का एक मासिक पत्र हिन्दी में निकाला है। उसका वार्षिक मूल्य सिर्फ़ १ रुपया है। इस पत्र में सङ्गीत-शास्त्र विषयक छोटे छोटे, पर बड़े ही उपयोगी, लेख निकलते हैं। पण्डितजी की निकाली हुई सङ्गीत-अङ्कन-पद्धति पर भी इसमें लेख रहते हैं। अतएव जो लोग सङ्गीत में कुछ गति रखते हैं, और लाहौर नहीं जा सकते, वे इस पत्र की सहायताही से बहुत कुछ सीख सकते हैं। "सङ्गीतामृतप्रवाह" तथा सङ्गीत-विषयक, पण्डितजी की बनाई हुई, अन्यान्य पुस्तकें छापने के लिए इस विद्यालय के साथ एक छापाखाना भी है। मतलब यह कि विद्यालय को पूरे तौर पर उपयोगी बनाने में कोई कसर पण्डितजी ने नहीं की।

गान्धर्व-महाविद्यालय का मासिक ख़र्च कोई ५०० रुपये हैं। उसमें से १५० रुपये मासिक महाराजा काश्मीर देते हैं और २५ रुपये मासिक दीवान दयाकृष्ण कौल। फ़ीस की आमदनी कोई ५० रुपये है। इस प्रकार २२५ महीने की आमदनी है। दक्षिण में एक रियासत मीरज है। वहाँ के तअल्लुक़ेदार भी शायद इस विद्यालय की कुछ मदद करते हैं। बाक़ी का ख़र्च पूरा करने के लिए पण्डितजी को देशाटन करना पड़ता है। गरमियों में तीन महीने के लिए विद्यालय बन्द रहता है। तब पण्डितजी विद्यालय के अध्यापकों और कुछ योग्य विद्यार्थियों को साथ लेकर चन्द के लिए बाहर निकलते हैं। यह भ्रमण पण्डितजी को हर साल करना पड़ता है। गत वर्ष आप कलकत्ते पधारे थे। वहाँ के अख़बारों ने आपके सङ्गीत-कौशल की ख़ूब प्रशंसा की थी। इस साल आप बम्बई की तरफ़ गये हैं। जहाँ जहाँ आप जाते हैं, लोग आपका गाना सुन कर मुग्ध हो जाते हैं। आप इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि भारतवर्ष में सङ्गीत-विद्या ने कितनी उन्नति की थी और जो लोग इसमें श्रम करते हैं वे कहाँ तक पारदर्शिता लाभ कर सकते हैं।

एक उदार सज्जन ने गान्धर्व-महाविद्यालय के लिए ज़मीन दान की है। आशा है, सर्वसाधारण जन विद्यालय को इमारत बनाने में पण्डितजी की मदद करेंगे। ऐसे उपयोगी विद्यालय के लिए दान देना, द्रव्य का सदुपयोग करना है।

इस विद्यालय की शाखायें भी खुलती जाती हैं। आज तक बनारस, मीरज, जालन्धर और काश्मीर में इसकी शाखायें खुल चुकी हैं।

बाहर के जो विद्यार्थी इस विद्यालय में पढ़ने आते हैं और इसके बोर्डिंग-हाउस में रहते हैं उनको कम से कम १२ रुपये मासिक ख़र्च पड़ता है। यह बहुत नहीं। अतएव सङ्गीत-विद्या के प्रेमियों को ज़रूर इस विद्यालय से लाभ उठाना चाहिए।

इस पाठशाला के अध्यापक और उत्तीर्ण विद्यार्थी शादी-विवाह आदि उत्सवों में सङ्गीत सुनाने के लिए बाहर भी जा सकते हैं।

हम इस पाठशाला का हृदय से उत्कर्ष चाहते हैं और आशा रखते हैं कि सङ्गीत-शास्त्र के पुनरुज्जीवन में सङ्गीत-प्रेमीजन पण्डित विष्णु दिगम्बरजी की उचित सहायता करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीक्ष्ण छुरी ।

राजपूताने के रण-दुर्दम राठौर-राज-वंश की कीर्ति अब निःशेष हो गई है। परन्तु ईसवी सन् १६३४ में वह ख़ूब देदीप्यमान थी। प्रत्यक्ष दिल्लीश्वर के सामने राठौर-वीरों के अतुल बाहुबल का परिचय मिलता था।

वैशाख का महीना लग चुका है। वसन्त ऋतु का शीतल, मन्द, सुगन्धित मलयानिल अभी तक चल रहा है। इसी मास में एक दिन सम्पूर्ण मारवाड़ देश एकाएक शोकसागर में मग्न हो गया। जो मारवाड़ अब तक आनन्द-सागर में ग़ोते लगा रहा था; रण-धुरंधर योद्धाओं की हुंकार-ध्वनि से जो दिग्दिगन्त प्रकम्पित कर रहा था; वही आज बिलकुल स्तब्ध, निरानन्दमय हो रहा है! प्रलयकाल के पहले जिस प्रकार प्रकृति निर्वात, निष्कम्प हो जाती है, मारवाड़ की अवस्था भी आज ठीक वैसी ही हो रही है! आज कोई न कोई हृदय-विदारक दृश्य देख पड़ने वाला है। इसी भय से सब के अन्तःकरण व्यग्र हो रहे हैं। जहाँ तहाँ हाहाकार मच रहा है। थोड़ी ही देर में इस दुःखदायक समाचार की चर्चा बात की बात में फैल गई कि कुमार उमरावसिंह को उनके पिता ने त्याज्य पुत्र ठहराकर मारवाड़ की गद्दी के अयोग्य निश्चित कर दिया।

इस समय मारवाड़ के सिंहासन पर राजा गजसिंह विराजमान था। उसका ज्येष्ठ कुमार उमरावसिंह अपने अतुल शौर्य-वीर्य से सब को प्यारा हो रहा था। इतनाही नहीं, किन्तु जिस समय राजा गज ने बादशाह से विलक्षण पराक्रम के साथ युद्ध किया था उस समय पितृ-सेवक उमरावसिंह के असाधारण वीरत्व को देखकर बादशाह भी कुमार उमरावसिंह की शूरता पर मोहित हो गया था। सम्पूर्ण मारवाड़ में उस समय उसकी बराबरी करनेवाला कोई न था। परन्तु क्षात्र तेज से गर्भित इस असामान्य वीर के अंग में एक बड़ा दोष था। उसका स्वभाव पराकाष्ठा का तीव्र और गर्वपूर्ण था। उसे कभी इस बात का स्वप्न में भी ख़याल न आया था कि विनय क्या चीज़ है। नम्रता से, और इस अलौकिक साहस-प्रिय शूर से, ज़रा भी जान पहचान न थी। अन्त में यही उसके दुर्दैव का कारण हुआ। कुमार उमरावसिंह का यह तीक्ष्ण स्वभाव उसके पिता को पसन्द न था। राजा गजसिंह सदैव इसी चिन्ता में रहा करता था कि कुमार के हाथ में राज्य-सूत्र जाने पर राज्य की क्या गति होगी? अपने पुत्र के इसी स्वभाव के कारण आज राजा ने कुमार की बड़ी निर्भर्त्सना की थी। उमरावसिंह को अपने पिता के भी कटुवाक्य सहन नहीं हो सके। क्रोध के आवेश में उसने पिता को कुछ अनुचित कह डाला। पुत्र का यह बर्ताव देखकर गजसिंह सख़्त नाराज़ हुआ। उसने उसी समय उमरावसिंह को युवराजत्व पद से अलग कर दिया।

इस पर उमरावसिंह आपे से बाहर हो गया। उसने प्रतिज्ञा की, कि अब मारवाड़ की सीमा के भीतर रहकर मैं जलपान न करूँगा! जनक-जननी के अन्तिम दर्शन करके, राज्य-लाभ की आशा पर पानी फेर कर, मारवाड़ का ज्येष्ठ राजकुमार अपनी जन्म-भूमि को अन्तिम प्रणाम करने के लिए उद्यत हुआ!

कृष्ण वस्त्र परिधान करके, कृष्ण वर्ण के ही अश्व पर आरूढ़ होकर, कुमार उमरावसिंह नगर-द्वार के पास आकर उपस्थित हुआ। चारों ओर मनुष्यों की भीड़ लग रही थी। सब के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। सब के मुख पर शोकावतार झलक रहा था। मस्तक पर तलवार का घाव लगने, अथवा प्रत्यक्ष मृत्यु के भी सम्मुख आजाने पर जिन राठौर-वीरों के मन में ज़रा भी म्लानता नहीं आती, वही आज अज्ञान बालक की तरह फूट फूट कर रो रहे हैं! इतने में गजसिंह की नई आज्ञा निर्घोषित हुई कि उमराव के मारवाड़ में लौट आने की ज़रूरत नहीं। वह हमेशा के लिए निर्वासित किया गया। इस राजाज्ञा ने प्रजा के हृदयों पर वज्रा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घात का काम किया। पर पिता की इस कठोर आज्ञा से उमरावसिंह का मन तिलमात्र भी विचलित नहीं हुआ। घोड़े को एड़ मारकर क्षणार्ध में वह अदृश्य हो गया!

इस प्रकार अपने ज्येष्ठ पुत्र को राठौरराज गजसिंह ने देश से निकाल दिया!

(२)

उमरावसिंह मारवाड़ से निकलकर मार्ग के सुख-दुःख भोगता आगरा पहुँचा। उसके इस देश निकाले का हाल, बादशाह शाहजहाँ सुन चुका था। बल्कि यह कहना चाहिए कि बादशाह की भी इसमें कुछ कारस्तानी थी। वह यही चाहता था। उसने उमरावसिंह का बड़ा आदर किया और उसे अपने दरबार में रख लिया। उमरावसिंह की योग्यता बादशाह ख़ूब अच्छी तरह जानता था। उमराव अपने विलक्षण साहस और अलौकिक शौर्य के कारण, शीघ्रही, बादशाह का पूर्ण कृपा-पात्र बन गया। बादशाह ने उसे तीन हज़ार सैन्य का आधिपत्य प्रदान किया। धीरे धीरे नागौर का राज्य भी उसे मिल गया।

यद्यपि वह बादशाह का इतना कृपापात्र हो गया था, तथापि चापलूसी करके बादशाह के सामने सदैव हाथ जोड़े खड़े रहना उसे पसन्द न था। बादशाह के नितान्त अधीन होकर चलना भी उस वीराग्रगण्य उमरावसिंह को अच्छा नहीं लगता था। उसने अपने पूर्ण स्वातंत्र्य-व्यवहार में कभी न्यूनता नहीं की। अवकाश मिलने पर वह मृगया आदि आमोद-प्रमोद के कामों में अपना कालातिक्रमण करता था। एक दिन वह बिना बादशाह से पूंछे शिकार के लिए किसी जंगल में निकल गया। वहाँ से लौटने पर शाहजहाँ ने, बिना अनुमति दर्बार से चले जाने के अपराध में, उसे कछ कटुवाक्य कहे। दड देने क धमक भ बादशाह न दी। उस तेजस्वी राठौर-वीर से यह अपमान सहन न हो सका। उसके शरीर में, एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक, एक अजीब विद्युच्छक्ति सी दौड़ गई! वदन आरक्त हो गया! नेत्रों से अग्नि की ज्वाला सी निकलने लगी! तलवार के दस्ते पर हाथ रखकर उमरावसिंह त्वेष में आकर बोल उठा—"राजपूत-वीर को और कोई अन्य दंड नहीं ज्ञात! उसका दंड उसकी तलवार!! जब जब उसको दंड देने की वेला आवेगी तब तब वह यही दंड देनेवाला है"!!!

जो शाहजहाँ सार्वभौम बादशाह है, जिसकी इच्छा मात्र ही से उस समय सम्पूर्ण भरतखंड के सूत्र हिलते थे, उसे अपने ही मातहत एक राठौर की यह दर्पोक्ति भला कैसे सहन हो? शाहजहाँ क्रोध से जल उठा। उसने मन में कहा, जो मेरा अधीन सेवक है—फिर वह राठौर हो अथवा और कोई हो—वही मुझ से इतने औद्धत्य से पेश आवे, यह नहीं हो सकता। बादशाह मन ही मन क्रोध की आग से सुलगने लगा। परन्तु उस राठौर-वीर के सामने, उस समय, उसके मुख से एक शब्द भी न निकला। मन ही मन में उसने दृढ़ प्रतिज्ञा की, कि इस राठौर का दर्प ज़रूर दमन करना चाहिए।

दूसरे दिन सलाबतजंग नामके अपने सरदार को बुलाकर बादशाह ने कहा—उमरावसिंह के लिए क्या तजवीज़ करनी चाहिए। उसे दण्ड तो ज़रूर देना चाहिए। दण्ड (जुरमाने) के रूप में उससे कुछ ज़रूर वसूल करना चाहिए। सलाबतजंग बड़ा चालाक आदमी था। उसने सोचा कि बादशाह का और अधिक कृपापात्र बनने का यह अच्छा अवसर है। सलाबतजंग बोला कि हुज़ूर का हुक्म ज़रूर बजा लाया जावेगा। फिर इसमें बंदे की जान चाहे भलेही चली जाय! बादशाह यह सुनकर बहुत ख़ुश हुआ।

(३)

दरबार लगा है। इतिहास-प्रसिद्ध रत्नखचित मयूर-सिंहासन पर बादशाह शाहजहाँ विराजमान है। बड़े बड़े अमीर उमरा, सरदार, सिपहसालार, अपने अपने स्थान पर हैं। दरबार में आज उमरावसिंह का मामला पेश होने वाला है। सलाबतजंग उमरावसिंह से दण्ड वसूल करने गया था। उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीर राठौर को कुछ कटुवाक्य कह डाले थे। इसी से उसने सलाबतजंग को अपने यहाँ से ख़ाली हाथ निकलवा दिया था। इस समय दरबार में सलाबतजंग ने ख़ूब नमक मिर्च मिलाकर बादशाह से बातें कीं। वह बोला—"जहाँपनाह! उस मग़रूर राजपूत ने मेरी बेइज़्ज़ती की, इसका मुझे कुछ भी अफ़सोस नहीं; पर बन्दे की बेइज़्ज़ती करने से हुज़ूर ही की बेइज़्ज़ती है; क्योंकि बन्दा हुज़ूर का ही ग़ुलाम है"।

इतने में उमरावसिंह भी दरबार में आ उपस्थित हुआ। बादशाह क्रोधाविष्ट होकर उसकी ओर घूरने लगा। सलाबतजंग ने यह अवसर अच्छा समझकर और भी अनेक झूठी सच्ची बातें कहीं। बादशाह का क्रोधानल घृताहुति सी पाकर और भी अधिक प्रज्वलित हुआ।

सलाबतख़ाँ एक प्रधान सरदार था। वह बादशाह का पूर्ण अनुग्रह-पात्र था। ऐसे बड़े सरदार का उमरावसिंह के समान एक राजपूत ने—एक हिन्दू ने—अपमान किया। बादशाह को यह बात कैसे सहन हो सकती थी। और सलाबतख़ाँ को भी उस राजपूत को दण्ड दिलाये बिना भला क्यों चैन पड़ने लगी? अतएव अनेक मिथ्यारोप करके उमरावसिंह का तीव्र दंड दिलाने के लिए सलाबतख़ाँ ने अपनी ओर से कोई बात उठा नहीं रक्खी।

उमरावसिंह दूर खड़ा था। अपने अपने दरजे के मुताबिक सब अमीर उमरा और अधिकारी बैठे थे। दरबार के नियमानुसार अनेक सरदारों को, उमरावसिंह की अपेक्षा, बादशाह के निकट बैठने का सौभाग्य प्राप्त था। जब सलाबतख़ाँ, भरे दरबार में, अनेक मिथ्या दोषारोप करने लगा, तब उमरावसिंह की क्रोधाग्नि एकाएक भड़क उठी। वह जामे से बाहर हो गया। तड़ाक से तलवार कोश से निकालकर, आगे बैठे हुए अनेक बड़े बड़े सरदारों को पार करके, वह क्षणार्ध में सलाबतख़ाँ के निकट पहुँच गया! क्रोधातिरेक से वह बिलकुल बदहवास हो गया था। सलाबतख़ाँ यह देखते ही बादशाह के निकट सरकने लगा। परन्तु एक पल में उमरावसिंह की कराल कृपाण उस असत्यवादी दुष्ट के हृदय में घुस ही तो गई! मिथ्यारोप करने के पातक से सलाबतख़ाँ आज हमेशा के लिए मुक्त हो गया!

इतने ही से उमरावसिंह की क्रोधाग्नि शान्त नहीं हुई। झूठी सच्ची बातों पर विश्वास करके, अन्याय के वशवर्ती होकर, जो उसे दंड देने के लिए प्रवृत्त हुआ था, उसको—उस शाहजहाँ बादशाह को—उसके अन्यायी बर्ताव के लिए—राजपूत का अपमान करने के घोर पातक से मुक्त करने के लिए—प्रायश्चित्त दिये बिना उसकी वह प्रचंड क्रोधाग्नि क्यों शान्त होने लगी? सलाबतख़ाँ के रक्त से स्नान की हुई, वही तलवार, लिये हुए उमरावसिंह बादशाह की ओर लपका! उसके दोनों नेत्र प्रखर सूर्य के समान प्रज्वलित हो रहे थे। वह साक्षात् कृतान्तही हो रहा था। बादशाह यह देख घबरा सा गया। सिंहासन से शीघ्रही उठकर पिछले दरवाज़े से वह महलों में भाग गया। इस प्रकार उसने अपने प्राण बचाये।

(४)

उमरावसिंह की नृसिंहलीला देखकर अनेक सरदारों को क्रोध आ गया। देखते ही देखते सब के हाथों में नग्न तलवारें चमकने लगीं। घमासान युद्ध शुरू हो गया। थोड़ेही समय पूर्व जो दरबार अपने अपूर्व ठाठ से—अनुपम सौन्दर्य से—साक्षात् इन्द्रसभा की स्पर्धा करता था वही अब शोणित-प्रवाह से, छिन्न-भिन्न-मृत-कलेवरों से, भयानक देख पड़ने लगा!

युद्ध में एक ओर उमरावसिंह और उसके कुछ अनुयायी, और विपक्षियों में अनेक सरदार और अङ्गरक्षक थे। हाँ, हाँ, कहते उमरावसिंह ने अपनी तलवार से पाँच अमीरों को कंठ-स्नान कराया! हाहाकार मच गया। मुसलमान एक दूसरे के पीछे छिपने लगे। उस वीर-शिरोमणि राठौरसिंह के सम्मुख जाने की किसी की हिम्मत न होती थी। सब के मुख सूख रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराक्रम से जो कार्य नहीं हो सकता वह विश्वासघात से किया जाता है। उमरावसिंह का साला अर्जुनगोर, मित्रभाव से सान्त्वना देने के लिए, उसके पास पहुँचा। उस अधमाधम पर विश्वास करके उमरावसिंह ज्योंही कुछ असावधान हुआ त्योंहीं उस नरपिशाच, विश्वासघाती अर्जुन ने एक तीक्ष्ण छुरी से उमरावसिंह की छाती में वार किया! इस प्रकार अपनी मातृभूमि से, अपने जनकजननी से, अपने इष्ट-मित्रों से बिछुड़ा हुआ वह शूर-राठौर अपने ही साले के हाथ से मारा गया! उसके शेष अनुयायियों की भी उसी की सी दशा हुई!

लक्ष्मीधर वाजपेयी।

शरद *।

घनाक्षरी।

ये री सुख देखु इन्द्रधनुष विलानो दुख
वारिद उदर बीच नेकु न जनाई देत।
तड़ित पताका ताका लगत पता का कहूँ
श्रीशिव सुकवि हँस वदत वधाई देत॥
ऊचे मुख गगन विलोकत न मोर गन
बक पाँति पंख पौन नभ न हलाई देत।
फूले कास वरषा बुढ़ाई दरसाई अब
सरद सुहाई की अवाई सी दिखाई देत॥१॥

कुण्डलिया।

सोभा तजि निज नचन की, भये सिथिल से मोर।
मोरन तजि ताते मदन, किय हंसन प्रति दोर॥
किय हंसन प्रति दोर मधुर सुर गावत लै से।
सरजनीय अर्जुन कदंब कुटजादिक तैसे॥
कह शिवकवि कविराय त्यागि इन सब को लोभा।
सप्त छदन प्रति गई कुसुम विकसन की सोभा॥२॥

सवैया।

उछरैं मछरी कटि किंकिनि लों
चलि मंद मनोज्ञ अधोगति हैं।
चकवा कुच जे सित अंडज हार-
धरे नलिनी चखु जोहति हैं॥
दोउ कूल बिसाल बिसाल नितंब
न बिंबन कै मन मोहति हैं।
सरदागम ते सरिता सिगरी
समदा प्रमदा सम सोहति हैं॥ ३॥

घनाक्षरी।

खंजन दृगन धारे सारस सरस हंस
राजवंश बैन मिस कलरव कै रहीं।
गोकुल सी सोहति सुगोकुल कै जो कुल कै
लोक गो समान सब सुधरम जै रहीं॥
श्रीशिव सुकवि साँच्यो भूतल अकूतल मैं
सालि-तरु-जाल माल बिसद बिछै रहीं।
सरद समै मा सब जीवन के जी मा आजु
खेतन की सीमा ये असीमा सुख दै रहीं॥४॥

दोहा।

रसा अरुन बरसा विगत, जपा कुसुम रज पूर।
भई विवाहित कास सँग, सोभित सिर सिंदूर॥ ५॥

श्रीशिवप्रसाद कवीश्वर, दरभंगा।

* ऋतुसंहार की छाया।

चीन-जापान में संस्कृत-ग्रन्थ।

ईसाई सन के आरम्भ के पहले ही चीन में बौद्ध-धर्म का प्रचार हो चला था। चीन के इतिहासों से जाना जाता है कि सम्राट मिंगी ने ५८-७५ ईसवी में भारत से प्रसिद्ध श्रमण मातंग, काश्यप और भारण धर्मरक्ष को अपने दरबार में निमंत्रित किया था। काश्यप के पहुँचने का समय ६७ ई० है।

६०० ईसवी के लगभग जापान ने चीन से बौद्ध धर्म में दीक्षा ली। इस धर्मग्रहण के साथ बहुत से बौद्धधर्म-सम्बन्धी संस्कृत-ग्रन्थ चीन से जापान पहुँचे। १८७३ ईसवी में अध्यापक मोक्षमूलर को जापान का छपा हुआ एक कोश मिला। इस कोश में संस्कृत-शब्द पुरानी बौद्ध-लिपि में, ऊपर से नीचे को,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छपे हुए थे और चीनी-भाषा में उनका अर्थ तथा चीनी-जापानी अक्षरों में उनका उच्चारण दिया हुआ था। इसे देखकर मोक्षमूलर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि जापान में संस्कृत-ग्रन्थ भी ज़रूर होंगे।

जब किसी जाति की उन्नति होने लगती है तब सब तरफ़ से होती है। १८७९ में "शिंशु" (सुखावती) नामक जापान के एक बौद्ध सम्प्रदाय ने अपने दो पुरोहित आक्सफर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत सीखने भेजे। एक का नाम बनयोयु नञ्जिओ और दूसरे का कासावारा था। मिस्टर कासावारा की तो मृत्यु हो गई, पर मिस्टर बनयीयु नञ्जिओ जापान में वर्तमान हैं। इनके बाद एक महाशय मिस्टर ताकाकूसू भी आक्सफर्ड आये थे, जो कुछ काल हुआ संस्कृत में बी० ए० की "डिगरी" लेकर गये हैं और जापान में संस्कृत-शिक्षा के डिरेक्टर हैं।

ईत्-सिंग नामक चीनी यात्री भारतवर्ष के नालंद (राजगृह) आदि विद्या-पीठों में संस्कृत-व्याकरण की पूर्ण शिक्षा पाकर वापस गया था। उसके भारत-विषयक ग्रन्थ का मिस्टर ताकाकूसू ने अँगरेज़ी में अनुवाद किया है। अब इस समय आक्सफ़र्ड-विद्यापीठ में कोई जापानी संस्कृत सीखनेवाला नहीं है। जान पड़ता है कि ताकाकूसू और नञ्जिओ ने जापान में संस्कृतज्ञ बना लिये।

आक्सफ़र्ड में संस्कृत का एक अध्यापक होता है। उसे "बोडेन-संस्कृत-प्रोफ़ेसर" कहते हैं। बोडेन साहब ईस्ट इंडिया कम्पनी में कर्नल थे। संस्कृत से उन्हें बड़ा प्रेम था। उन्होंने बहुत सा रुपया जमा करके इस अध्यापकता का प्रबन्ध किया था। वह अब तक चला जाता है। पहले अध्यापक मोनियर विलियम्स थे। उनके बाद मोक्षमूलर और मोक्षमूलर के बाद अब मुग्धानल (प्रोफ़ेसर मेकडानल) हैं। अस्तु, अध्यापक मोक्षमूलर ने इन जापानी पुरोहितों से संस्कृत-पुस्तकों के लिए जापान को लिखवाया। इस पर संस्कृत की एक पुस्तक आई। वह ऊपर से नीचे को, अंकों की तरह, बौद्ध-लिपि में लिखी हुई थी और चीनी भाषा में उसका अनुवाद और जापानी अक्षरों में उच्चारण दिया हुआ था। इसका नाम था "सुखावती व्यूह"।

इसके अनन्तर और भी अनेक ग्रन्थों का पता लगा। इनमें से कितनेहीं अनमोल रत्नों की तरह रक्षापूर्वक मठों में रक्खे थे। काठ और तालपत्रों पर स्याही से लिखे हुए प्राकृत और संस्कृत के कुछ ग्रन्थों के नमूने आक्सफ़र्ड आये। कहते हैं संस्कृत में लिखा हुआ इनसे अधिक पुराना अब तक और कोई ग्रन्थ नहीं मिला। कुछ सिंहाली अक्षरों में और कुछ वर्मी अक्षरों में पाली के ग्रन्थों के नमूने भी आये। ये सब पुस्तकें अथवा उनके नमूने आक्सफ़र्ड के "बोडलियन पुस्तकालय" में रक्खे हैं। इनमें से मुख्य मुख्य ये हैं—

(१) शब्दकोश जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है। पूर्वी तुर्किस्तान के खरचर नामक नगर के रहनेवाले शमन नामक एक भिक्षु ने, जो चीन के कानतिंग मठ में रहता था, इसे निर्मित किया था। ७१३–८७४ ई० के मध्य यह चीन में विद्यमान था। हनलिन नामक चीनसाम्राज्य के राज-कालेज से यह सम्बन्ध रखता था। यह पुस्तक जापान में सन् १७३२ में प्रकाशित हुई थी।

(२) चीन के ईत्सिंग नामक प्रसिद्ध भारत-प्रवासी द्वारा रचित शब्दकोश। यह कियाटो नगर में, १७७३ ईसवी में, छपा था। इसमें १००० संस्कृत-शब्द हैं। उनका अर्थ चीनी भाषा में है। ६७१ ई० में इसे ईत्सिंग ने बनाया। नवीं सदी में यह जापान में आया और १७२७ ईसवी में ज़कुमियो नामक एक मनुष्य ने इसे प्रकाशित किया। एक मठ में रक्खे हुए कुछ तालपत्रों का उल्लेख इसमें देखकर मोक्ष-मूलर ने उनकी भी खोज कराई। वे जाकर महाराज मिकाडो के पास निकले!

(३) सुखावती-व्यूह-महायान-सूत्र। इसे ज़ियो-मियो नामक एक जापानी ने, १७७३ में, प्रकाशित किया। यह १८८० में रायल एशियाटिक सोसाइटी के पत्र में छापा गया। जापान में इसका एक और संस्करण छपा है, जिसमें चीनी भाषा में इसका अनु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाद दिया हुआ है। इसका व्याकरण समझाने के लिए इसकी टीका भी चार भागों में छपी है।

(४) वज्रच्छेदिका-प्रज्ञापारमिता। यह हस्त-लिखित है। इसके तीन चीनी भाषान्तर हैं और चीनाक्षरों में उच्चारण भी दिया हुआ है।

(५) समन्तभद्रचरी-स्तोत्र। हस्तलिखित।

(६) प्रज्ञापारमिता-हृदयसूत्र।

(७) उष्णीषधारिणी।

ये तो आक्सफ़र्ड में आये हुए ग्रन्थों की बात हुई। ख़ुद जापान में संस्कृत के अनेक ग्रन्थ हैं। जिनका पता लगा है उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है।

(१) प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र। यह महाराज मिकाडो के पास है। ज़ियागों नामक पण्डित का नक़ल किया हुआ है। असल ६०९ ईसवी में चीन से आया था। ५२० ईसवी में, एक बोधिधर्म-संन्यासी भारत से चीन गया था। उसी की मूल प्रति से यह जापान की प्रति लिखी गई मालूम होती है। कहते हैं कि यह ग्रन्थ भारतीय श्रमण काश्यप कृत है। इसके साथ उष्णीषधारिणी नामक पुस्तक भी है।

(२) तालपत्रों पर लिखे हुए कुछ ग्रन्थ। ये कैरीववोज़ी (नरा, यमाटो) के एक विहार में रक्खे हैं।

(३) ८५८ ई० में किशिओ दैशी के द्वारा चीन से लाये गये तालपत्र-पुस्तक। ये किंगेज़ी (ओसाका) के विहार में हैं।

(४) रैकोज़ी (सकामोता) विहार के तालपत्र। इनमें शाक्यमुनि के शिष्य आर्य आनन्द कृत एक "धारिणी" पुस्तक भी है। इस पुस्तक को त्रिपीठक पढ़ानेवाले नालंद के प्रज्ञतर नामक भारतीय संन्यासी ने, जब वह चीन में था, किशिओ दैशी को दिया था।

(५) तालपत्रों पर पाली भाषा का, वेसनतर-सुत्त। यह कांबोज* लिपि में है और होनसेंज़ी (ओसाका) के विहार में विद्यमान है।

(६) गहरे नीले काग़ज़ पर, चाँदी के अक्षरों में "धारिणी" की पुस्तक। इसे कनशिन नामक एक मनुष्य ने लिखा था। ७५३ ईसवी में कनशिन जापान आया और वहाँ नरा नगर में उसने एक विहार बनाया। उसी विहार में यह पुस्तक है। कुछ तन्त्र-ग्रन्थ भी यहाँ हैं।

(७) महाप्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र*। नवीं सदी में चीन से लाई गई एक प्रति की यह नक़ल है। हसेदेर (हेस) के विहार में है।

(८) प्रज्ञतर भिक्षु के लेख, जो उसके शिष्य किशियो दैशी के द्वारा, ८५८ ईसवी में, जापान आये।

(९) तालपत्र पर लिखे हुए पाली भाषा के ग्रन्थ, जो कियानइन (कियातो) के विहार में रक्खे हैं।

(१०) समन्तभद्रचरी-स्तोत्र। यह न्योगवज़ी में है।

(११) कुछ ग्रन्थ नञ्जिओ और कासावारा के विहारों में भी हैं। इनमें से एक ग्रन्थ में लिखा है कि ६०९ ईसवी में मिकाडो का राजदूत चीन से कुछ अलभ्य पदार्थ लाया था। उनमें से बोधिधर्म का "कश" (कषायवस्त्र), तालपत्र पर लिखा हुआ प्रज्ञसूत्र, बोधिधर्म का भिक्षापात्र आदि थे।

नीचे लिखे हुए ग्रन्थ १८८० ईसवी में मोक्षमूलर साहब के पास जापान से आये थे।

(१) अवलोकितेश्वरसूत्र।

(२) अपरिमितव्यूहसूत्र।

(३) बहुत सी धारिणियाँ।

ईत्सिंग नामक चीनी प्रवासी, ६७३ ईसवी में, कुछ ग्रन्थ अपने साथ ले गया था। उनमें से इतने ग्रन्थ इस समय लन्दन के इंडिया आफ़िस के पुस्तकालय में हैं। नहीं कह सकते, ये ईत्सिंग के लेगये हुए असल ग्रन्थ हैं या उनकी नक़ल।

(१) विनयसूत्र की ५० जिल्दें।

(२) संयुक्तवस्तु की २ प्रतियाँ।

(३) संगभेदकवस्तु।

(४) भिक्षुणीविनय।

* सुमात्रा और जावा की तरह कम्बोज (कम्बोडिया) भी हिन्दुओं की कालोनी (उपवसती) थी।

* महाप्रज्ञापारमिता का अनुवाद, भारत-प्रवासी हुएन-सांग ने किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

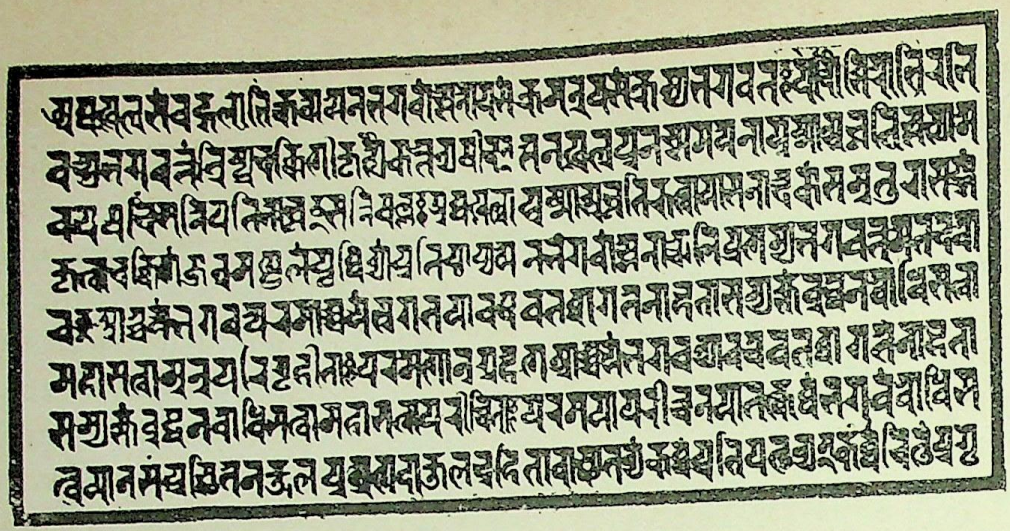

चीन की वज्रच्छेदिका।

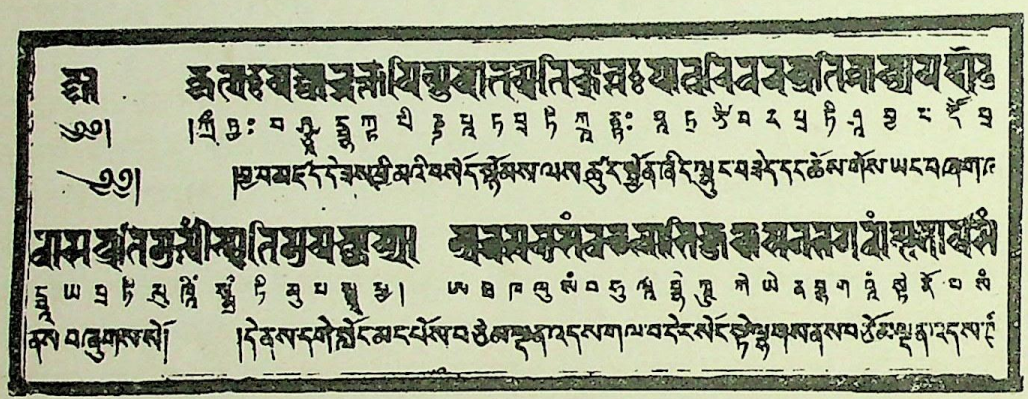

सेंट पिटर्सबर्ग से प्राप्त हुई तिब्बत की वज्रच्छेदिका।

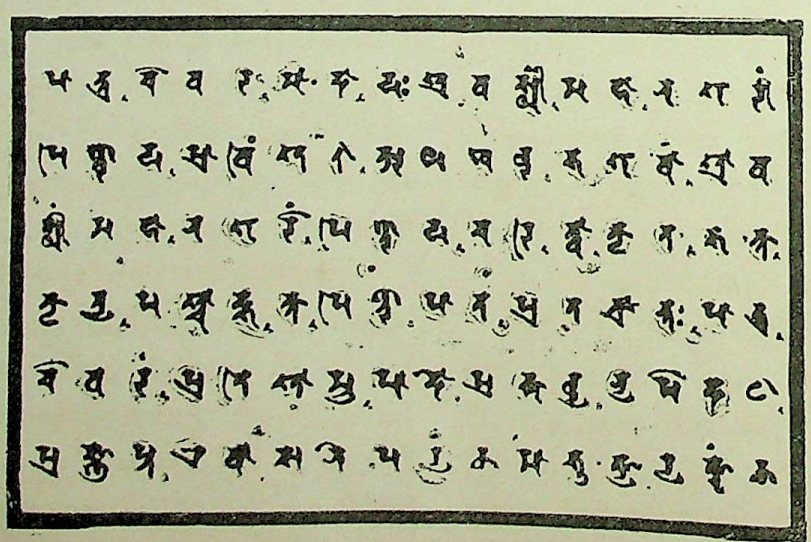

जापान की वज्रच्छेदिका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) विनयसंग्रह।
(६) एकशतकर्म।
(७) निदान।
(८) मात्रिका।
(९) विनय-निदान-गाथा।
(१०) विनय गाथा।

चीन को लौटते समय ईत्सिंग ने सुमात्रा के श्रीभोजनगर में कुछ समय तक ठहर कर संस्कृत का कुछ और अध्ययन किया था। इससे जान पड़ता है कि सातवीं सदी में वहाँ भी संस्कृत का अच्छा दौर-दौरा था। स्याम देश का एक छात्र यहाँ आक्सफ़र्ड में है। वह संस्कृत सीख रहा है। वह कहता है कि स्याम में बहुत से संस्कृत-ग्रन्थ हैं और शिला-लेख भी अनेक हैं।

ईत्सिंग के प्राप्त किये हुए ग्रन्थों में से (१) प्रवज्यावस्तु (२) वर्षावसवस्तु (३) प्रवारणवस्तु (४) भैषज्यवस्तु और (५) कंठनचीवरवस्तु की कापियाँ आक्सफ़र्ड के बोडलियन पुस्तकालय में भी हैं।

ईत्सिंग ४०० संस्कृत-पुस्तकें चीन ले गया था। संस्कृत-व्याकरण में इसने बड़ी दक्षता प्राप्त की था। शायद महाभाष्य तक इसने पढ़ा था। संस्कृत के ५६ ग्रन्थों का इसने चीनी भाषा में अनुवाद किया। ९ भारतीय भिक्षु, ईश्वर, शिक्षानन्द, आदि इसे अनुवाद में मदद देते थे।

वज्रच्छेदिका।

जापान से प्राप्त हुए ग्रन्थों म यह ग्रन्थ बड़े महत्त्व का है। महायान शाखा के बौद्धों का यह मुख्य ग्रन्थ है। चीनी, तिब्बती, मंगोली आदि भाषाओं में इसके अनुवाद पहले हो प्राप्त होचुके थे। मंगोली भाषान्तर का उल्लेख प्रसिद्ध विद्वान् बर्नफ़ ने किया है और तिब्बती अनुवाद जर्मनी में छपा है।

वज्रच्छेदिका के ६ चीनी अनुवाद हैं। उनमें से ४ भारतीय बौद्धों के किये हुए हैं। एक वह दिन भी था जब हम चीन में जाकर चीनी भाषा पढ़ते थे और उसमें दक्ष होकर बौद्ध-धर्म का प्रचार करते हुए अपने दार्शनिक ग्रन्थों का चीनी जैसी कठिन भाषा में अनुवाद किया करते थे। शेष दो अनुवाद भारत से लौटे हुए दो चीनी बौद्धों के किये हुए हैं।

पहला अनुवाद—४०१ ईसवी के लगभग कुमार-जीव ने किया। इस अनुवाद की प्रस्तावना चीन के राजेश्वर छंग-सू ने लिखी है। दो बौद्ध भिक्षुओं ने कुमार-जीव के भाषान्तर पर तिलक भी किया है।

दूसरा अनुवाद—बोधिरुचिकृत। ३८६-५३४ ई० के बीच में किया गया। बोधिरुचि, शिंशु (सुखावती) सम्प्रदाय के तीसरे गुरु दोनरन का विद्यागुरु था।

तीसरा अनुवाद—परमार्थ नामक भिक्षु ने ५६२ ईसवी में किया।

चौथा अनुवाद—६०५ ईसवी में धर्मगुप्त ने शब्द की जगह शब्द रखकर किया। इससे यह कुछ जटिल है।

पाँचवाँ अनुवाद—हुएनसांग ने; और

छठा अनुवाद—ईत्सिंग ने सातवीं सदी में किया।

वज्रच्छेदिका ईसाई चौथी सदी में चीन में धार्मिक पुस्तक हो गई। यह मूल-पुस्तक, आक्सफ़र्ड के युनिवर्सिटी प्रेस में, अनेकडोटा आक्सोनियनशिया नामक ग्रन्थमाला के प्रथम भाग की प्रथम संख्या स्वरूप, १८८१ ईसवी में, छापी गई। उसके सम्पादक मोक्षमूलर जी थे। मोक्षमूलर ने तीन प्रतियों से मिलाकर इसे सम्पादित किया है। वे प्रतियां ये थीं—

(१) जापान में, कोकिज़ी के बौद्ध मठ में, एक पुस्तकालय संस्कृत-पुस्तकों का है जिसे जापानी लोग "संस्कृताध्ययन के लिए नाव" कहते हैं। वहाँ जो वज्रच्छेदिका है उसमें संस्कृत मूल, चीनी-अक्षरान्तर, चीनी शाब्दिक अनुवाद तथा कुमारजीव और धर्मगुप्त के भी अनुवाद हैं। इसी पुस्तक की नक़ल जापान से आक्सफ़र्ड आई थी।

(२) रूस की राजधानी सेंटपिटर्सवर्ग में "इंपीरियल अकाडमी" नामक जो राजकीय विश्वविद्यालय है उसमें इस पुस्तक की एक "ब्लाक प्रिंटेड" कापी है। वह तिब्बत से लाई गई एक प्रति का प्रतिबिम्ब है। इसमें मूल संस्कृत, तिब्बती अक्षरान्तर, और तिब्बती भाषान्तर है। चीन की छपी हुई जान पड़ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। इसे अकाडमी ने आक्सफ़र्ड को कुछ दिन के लिए दिया था।

(३) चीन की छपी हुई एक प्रति जिसके साथ अवलोकितेश्वरसूत्र, प्रज्ञापारमितासूत्र, अपारिमिता-व्यूह सूत्र और बहुत सी धारिणियाँ भी हैं। यह भी ब्लाक प्रिंटिंग् प्रणाली से लाल स्याही में छपी है। जो बात पृष्ठ की एक ओर है वही दूसरी ओर भी है। * इन तीनों प्रतियों में प्रायः एक ही पाठ पाया गया। सिर्फ़ कुमारजीव ने पाठ को कहीं कहीं पर कुछ संकुचित कर दिया है।

अपने दो जापानी छात्रों की सहायता से, जिनके नाम ऊपर आचुके हैं, मोक्षमूलर साहब ने वज्रच्छेदिका प्रकाशित की थी। अनुवाद देखकर मोक्ष-मूलर को कुमार जीव आदि की विलक्षण बुद्धि पर बड़ा आश्चर्य हुआ था।

वज्रच्छेदिका छोटी पुस्तक है। † गद्य में है। ३२ पाराग्राफ़्स में बँटी हुई है। संस्कृत इसकी सीधी सादी है। श्रावस्ती में, बुद्ध भगवान् से सुभूति स्थविर प्रश्न करता है और भगवान् उत्तर देते हैं। कुछ नमूना लीजिए।

नमः सर्वज्ञाय। एवं मया श्रुतं। एकस्मिन्समये भगवाञ्श्रावस्त्याँ विहरति स्म। जेतवनेऽनाथपिंड-दस्या। रामे महता भिक्षुसंघेन सार्धमर्धत्रयोदश-भिर्भिक्षुशतैः संबहुलैश्च बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैः। अथ खलु भगवान् पूर्वाह्नसमये निवस्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्तीं महानगरीं पिंडाय प्रविशत्। * * *

॥ १ ॥

तेन खलु पुनः समयेनायुष्मान्सुभूतिस्तस्यामेव पर्षदि संनिपतितोऽभूत्संनिषण्णः। * * *

भगवानाह। तत्किं मन्यसे सुभूते यावत्त्रिसा-हस्रमहासाहस्रे लोकधातौ पृथिवीरजः कच्चित्तद्बहु भवेत्। सुभूतिराह। बहु भगवन् बहु सुगत पृथिवी-रजो भवेत्। तत्कस्य हेतोः। यत्तद्भगवन् पृथिवी-रजस्तथागतेन भाषितमरजस्तद्भगवंस्तथागतेन भा-षितं। तेन उच्यते पृथिवीरज इति॥ योऽप्यसौ लोक-धातुस्तथागतेन भाषितोऽधतुः स तथागतेन भाषितः। तेनोच्यते लोकधातुरिति॥

१८८३ ईसवी में, अनेकडोटा आकोनियनशिया में "सुखावती-व्यूह" का सम्पादन निंजिओ ने किया। सुखावती भी छोटा ग्रन्थ है। गद्य में है। "एवं मया श्रूयते" से शुरू होता है। भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों का संवाद है।

१८८४ ईसवी में प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र (लघु और महत्) और उष्णीषविजयधारिणी पूर्वोक्त ग्रन्थ-मालिका में प्रकाशित हुई। प्रज्ञापारमिता गद्यपद्य में छोटी पुस्तक है। उष्णीष अजब पुस्तक है। गद्य सरल और शुद्ध, पर पद्य में छन्दोभंग और संधि-हीनता है।

१८८५ ईसवी में मिस्टर कसवारा ने उसी ग्रन्थ-माला में ४४ धर्मसंग्रह जापान से मंगाकर छापे। ये सब बौद्ध धर्म की पुस्तकें हैं और संस्कृत-गद्यपद्य में हैं।

अध्यापक जाइल्स ने चीनी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि ईसाई सन से २१७ और विक्रम से १६० वर्ष पहले हमारे कई बौद्ध भिक्षु भारत से चीन में गये। उन पर कुछ सन्देह किया गया और वे कारा-गार में बंद किये गये। इनमें से एक का नाम प्रमुख भिक्षु था। ईसाई सन की दूसरी सदी में किसी भारतीय भिक्षु ने सद्धर्म-सूत्र का चीनी भाषा में

* जान पड़ता है, संस्कृत के अनेक ग्रन्थ चीन में छपे होंगे। मिस्टर लोचांग जो यहां आक्सफर्ड में हमारे साथ पढ़ रहे हैं अपने पुराने इतिहास से भारतवर्ष का प्राचीनतम वर्णन सुनाते थे। उसमें लिखा है कि सिन्तु (सिन्धु चीनी में भारतवर्ष को सिन्तु लिखते थे और निवासियों को इंदू) से कपड़े बलख में आते हैं। वहां हाथियों पर सवार होकर लड़ाई लड़ी जाती है। बस्ती स्थिर है। ख़ानाबदोश नहीं, जैसे चीन की तरफ़ बहुतेरी जातियां थीं। जल-वायु गर्म है। वहां हाथी एक बहुत बड़ा जीव होता है जिसकी नाक दांतों के बीच नीचे लटका करती है।

मिस्टर लोचांग कहते हैं कि चीन में प्राचीन काल से भारतवर्ष का नक़शा है, जिसके सहारे यात्री लोग भारत में बौद्धतीर्थों को स्वयं पहुँच जाते रहे हैं।

† यदि स्वदेश में इसे कोई छापना चाहें तो पुस्तक मुझसे मँगा सकते हैं। लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवाद किया और बहुत से मंदिर भी चीन में बनवाये! चीन के चार बौद्ध धर्मादित्यों में से एक का नाम कुमारजीव था। सन ४०५ से ४१२ के बीच ८०० भिक्षुओं से चीनी भाषा में इसने कितनेहीं धार्मिक ग्रन्थ लिखवाये। अध्यापक जाइल्स कहते हैं कि कुमारजीव ने सत्य और मिथ्याभास पर चीनी में अलग एक शास्त्रही लिख डाला। उसके किये हुए वज्रच्छेदिका के चीनी अनुवाद का शिक्षित चीनियों पर इतना असर हुआ, जितना बौद्ध धर्म की और सारी बातों का मिलकर भी नहीं हुआ था। उसे पढ़कर कवियों और दार्शनिकों को कविता लिखने और मनन करने में प्रेरणा मिली। उस ग्रन्थ को अब चीन के जातीय महाग्रन्थों में गिनना चाहिए। *

मिस्टर ताकाकूसू के लेख से मालूम हुआ कि कुमारजीव ने अश्वघोष, नागार्जुन, और आर्यदेव के जीवनचरित का अनुवाद भी चीनी भाषा में, सन ४०५ में, किया। कुमारजीव सन् ३८३ में भारत से रवाना हुए थे।

बोधिधर्म, जिनकी चर्चा ऊपर हो चुकी है, दक्षिण भारत के एक महाराज के बेटे थे। ५२० ईसवी में वे चीन पहुँचे। इनके समय में १७५ संस्कृत-ग्रन्थ गांधार देश से चीन में मँगाये गये।

जाइल्स साहब ने अपनी किताब में धर्मनन्दि नामक एक भिक्षु का भी उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि वह भारत से चीन गया और लियंग-वंश के सम्राट् को बौद्ध बनाना चाहा। पर सफलता न हुई।

मिस्टर नंजिओ ने जापान में संस्कृत-पुस्तकों की एक सूची बनाई है। उसमें सार्द्धशतक बुद्धस्तोत्र का उल्लेख है। इत्सिंग ने लिखा है कि इस स्तोत्र का बनाने वाला मातृचैता था। चन्द्रगुप्त के बेटे बिन्दुसार के समय में मातृचेता वर्तमान था। बनारस के मृगाजिन के शाक्यदेव ने शार्द्धशतक-स्तोत्र में कुछ बढ़ाया था। जब ६७५–६८५ ईसवी में ईत्सिंग नालन्द-विद्यापीठ में था तब उसने इस स्तोत्र का अनुवाद चीनी-भाषा में किया। इससे जान पड़ता है कि यह ग्रन्थ भी इनके यहाँ महत्त्व का है। इसमें १५० श्लोक हैं।

ईत्सिंग लिखता है कि अश्वघोष ने संस्कृत में सूत्रालंकार-शास्त्र (जिसका चीनी अनुवाद ४०५ ईसवी में कुमारजीव के समय में हुआ) और बुद्धचरित-काव्य जिसका (चीनी अनुवाद ४१४–२१ ईसवी में हुआ) लिखे हैं। अश्वघोष कनिष्क के समय में हुआ।

जिन ग्रन्थों के अनुवाद चीनी भाषा में हुए हैं उनके मूल चीन में अवश्य गये होंगे।

जातकमाला बौद्धों में बहुत प्रसिद्ध पुस्तक है। ईत्सिंग कहता है कि शीलादित्य ने, जो धर्मपाल के बाद नालंद-विद्यापीठ का आचार्य हुआ था, जातकों का संग्रह किया था और जोमूतवाहन नाटक लिखा था। शीलादित्य ६५५ ईसवी में मरा। इसी के समय में संस्कृत पढ़ने के लिए हुएनसांग नालंद आया था। उस समय शीलादित्य बहुत वृद्ध हो गया था। उसने जयसेन को हुएनसांग को पढ़ाने के लिए नियुक्त किया था। इससे जान पड़ता है कि शीलादित्य, जयसेन आदि चीनी भाषा जानते थे। गुणप्रभ का शिष्य मित्रसेन ९० वर्ष का वृद्ध था। हुएनसांग को उसने भी एक आध शास्त्र पढ़ाया था।

ईत्सिंग ने हुएनसांग के सहपाठियों से पढ़ा। उसके समय में नालंद में जो विद्वान् थे पीछे से उनकी बड़ी ख्याति हुई। ऐसा जान पड़ता है कि वैद्यक ग्रन्थ चरक पढ़ने की इनमें प्रथा थी। चरक-संहिता ग्रन्थ भी ज़रूर चीन गया होगा।

वसुबन्धु और असंग के ग्रन्थों के अनुवाद ५०८ और ५३१ ईसवी में हुए।

* "(He) translated the Diamond Sutra which has done more to popularise Buddhism with the educated classes then all the material parts of this religion put together. Chinese poets and philosophers have drawn inspiration and instruction from it pages, and the work might now almost be classed as a national classic."—*Chinese Literature*, p. 114.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईत्सिंग ने संस्कृत व्याकरण के अध्यापक का जो वर्णन लिखा है उसका उल्लेख किसी और लेख में किया जायगा।

जान पड़ता है कि चीन और जापान में पहले संस्कृत सीखते थे, क्योंकि अकेले चीनी अनुवादों से संस्कृत-ग्रंथों का आशय चीन और जापानवालों को भी समझ में नहीं आता। मालूम होता है कि संस्कृत के वाक्यों को वे कण्ठाग्र कर लेते थे और उनका पाठ करते थे।

क्याही अच्छा हो यदि भारतवासी अपने पास से धन की सहायता देकर चीन और जापान से कुछ विद्यार्थी अपने देश में लावें और उन्हें संस्कृत पढ़ाने का प्रबन्ध कर दें। वे लोग अब संस्कृत प्रायः बिलकुल ही भूल से गये हैं। संस्कृत सीखने से उनके हृदय में हमारी पुरानी सभ्यता का ज़रूर आदर-भाव उत्पन्न होगा। आज कल तो विदेशियों से सुन सुन कर वे भी हमें जंगली समझने लगे हैं। संस्कृत यद्यपि मृतप्राय है, तथापि जो उसमें डूबता है वह हमारी तरफ़ झुके बिना नहीं रहता।

तीसरी चौथी शताब्दी में एक तरफ़ हमारे दर्शन-शास्त्र ग्रीस और रोम में आदरपात्र हो रहे थे, दूसरी तरफ़ सांख्य-सम्भूत बौद्धमत मंगोल-जाति को सभ्य और शान्त बना रहा था। धन्य थे कुमारजीव आदि, जिन्होंने घोर कष्ट सहकर एक बहुत बड़े भूभाग पर भारतीय धार्मिक और दार्शनिक भावों के बीज वपन किये। आज कल के पादरियों की तरह धर्मोपदेश के बहाने औरों की राजनैतिक स्वाधीनता पर दाँत लगाना कुमारजीव जैसे सात्विक साधुओं को स्वप्न में भी नहीं ख़याल हुआ था।

काश्यप, धर्मरक्ष, धर्मपाल, बोधिरुचि, बोधिधर्म, कुमारजीव, परमार्थ, प्रज्ञतर आदि इसी भारत के सुपुत्र थे। उन्होंने हिमालय का उल्लंघन करके विदेशियों की भाषाओं में इतनी पारदर्शिता प्राप्त की जितनी आज तक एक भी योरप-निवासी नहीं प्राप्त कर सका, क्योंकि आज तक किसी योरपवासी ने चीनी भाषा में कोई दार्शनिक ग्रन्थ नहीं लिखा। भारतीय परिव्राजक अपना धर्म अन्यान्य देशों में फैलाते थे। पर आज कल ख़ुद भारतवासियों को अन्य धर्म्म में ले जाने की चेष्टा हो रही है। अहा कष्टम्!

काशीप्रसाद जायसवाल (आक्सफ़र्ड)

जापानियों की ईमानदारी।

जापान में जो अँगरेज़ सैर करने गये हैं उन्होंने अपनी लिखी हुई किताबों में जापानियों को अक्सर बेईमान झूठे और वादे-खिलाफ़ कहा है। अँगरेज़ों में यह गुण, अथवा अवगुण—जो कुछ समझिए—है कि ये लोग अपने सामने किसी को कुछ समझतेही नहीं। पर जापानियों ने अपनी ईमानदारी का एक ऐसा भारी प्रमाण दिया है, जिससे इन निन्दकों का मुँह धुआँ हो गया।

लण्डन से टाइम्स नाम का एक मशहूर अख़बार निकलता है। उसके छापेख़ाने से, कुछ समय हुआ, अँगरेज़ी में, यनसाइक्लोपीडिया नाम का एक प्रचण्ड कोश क्या, सब विद्याओं का भाण्डार, प्रकाशित हुआ था। उसकी लाखों कापियाँ छापी गईं थीं और उसका विज्ञापन सारी दुनिया में बाँटा गया था। कुल कोश कोई हज़ार हज़ार सफ़े की ३५ जिल्दों में है और तीन चार सौ रुपये में मिलता है। इस कारण साधारण आमदनी के आदमियों के सुभीते के लिए उसके दाम कई क़िस्तों में वसूल करने का नियम किया गया था।

इस कोश की बिक्री के लिए टाइम्सवालों ने अपना एजेन्ट जापान को भी भेजा। वहाँ रहनेवाले अँगरेज़ों से उसने पूछा कि कोश की बिक्री की वहाँ कुछ आशा है या नहीं। सबने उससे यही कहा कि वहाँ के बहुत से अँगरेज़ और अमेरिकावाले तो उसे सीधे इँगलैंड से ही मँगा चुके हैं; रहे जापानी, सो वे बहुत करके लेंगेही नहीं। और जो लेंगे भी तो उनसे दाम वसूल होने की उम्मेद बिलकुल न रखना चाहिए। क्योंकि जापानी लेकर देना जानते ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं! ख़ैर, बहुत सोच विचार के बाद टाइम्स के मालिकों ने जापानियों को भी क़िस्त के आसान तरीक़े से ऐसे अमूल्य ग्रन्थ के पाने का मौक़ा दिया। इस व्यवहार में जापानियों ने जो ईमानदारी दिखलाई उस से टाइम्सवाले हैरत में आ गये। लेन देन में जापानियों के खरेपन ने टाइम्सवालों को इतना मोह लिया कि इस बात को उन्होंने अपने अख़बार में छापकर अँगरेज़ों के अनुचित अभिमान को चूर कर दिया।

जापान में इस कोश की जितनी कापियाँ बिकी उसमें ९५ फ़ी सदी जापानियों ने लीं। फ़्राँस और जर्मनी की कुल आबादी कोई आठ करोड़ है और जापान की सिर्फ़ चार करोड़। फ़्रांस और जर्मनी की अपेक्षा जापान ग़रीब भी बहुत अधिक है। पर इस कोश की जितनी कापियाँ फ़्रांस और जर्मनी में बिकीं उनकी पँचगुनी अकेले जापान ने लीं! जापानियों ने यह परिचय तो अपने विद्यानुराग का दिया। अब उनकी ईमानदारी का परिचय लीजिए।

हर ख़रीदार से यह लिखा लिया जाता था कि अमुक तारीख़ तक उसका माहवारी चंदा पहुँच जायगा। जापानियों में एक फ़ी सदी से भी कम लोग ऐसे निकले जिनका चंदा नियत तारीख़ पर न पहुँचा। पचास फ़ी सदी से ज़्यादह लोगों का चंदा नियत तारीख़ से एक दिन पहिले ही पहुँच गया और शेष लोगों का ठीक वादे के दिन। एक दिन पहलेही पचास फ़ी सदी के चन्दे के पहुँचने का कारण यह था कि जापानियों ने इस बात का भी ध्यान रक्खा कि कहीं अनायास कोई ऐसा इत्तिफ़ाक़ न आ पड़े कि उनका चंदा एक दिन भी देर से पहुँचे। वादा पूरा करने के विषय में जापानियों की यह नाज़ुक ख़याली ग़ौर करने लायक़ है; परन्तु अभिमानी इंग्लैंडवालों में से पचास फ़ी सदी से भी कम लोगों ने अपना चंदा वादे पर भेजा! याद रखिए जापान से इंग्लैण्ड दस गुना ज़ियादह अमीर है! तिस पर यह हाल!

जापानियों से चंदा वसूल करने में बहुत कम ख़र्च पड़ा। क्योंकि चंदा देने के लिए उन्हें कभी याद दिलाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। इससे यह फ़ायदा हुआ कि तक़ाज़े की चिट्ठियाँ लिखने के लिए कोशवालों को लेखक न रखने पड़े और डाक महसूल भी बहुत कुछ बच गया। धन्य है जापान को ईमानदारी को। तभी तो आज सारी दुनिया उसे आदर की दृष्टि से देख रही है!

चन्द्रमाधव मिश्र।

शिवाजी।

१—जीती जाती हुई जिन्होंने भारत-बाजी;
निज बल से मल-मेट विधर्मी मुग़ल कुराजी;
जिसके आगे ठहर सके जंगी न जहाजी;
जग में वही प्रसिद्ध छत्रपति भूप शिवाजी।

२—वीर-वंश में स्वयं जन्म था जिस माता का,
वीर-कोख से वीर उसीने जाया बाँका;
वीरोचित कर्त्तव्य उसीने सुत का ताका;
अग्र-सोच से गिरी उसीके मुग़ल-पताका।

३—राजपूत का रक्त भिदा था जिसकी नस में,
क्यों न शक्ति फिर आकर होती उसके बस में?
थे जिसके सब चरित अलौकिक बाल-बयस में;
करता सम्भव क्यों न असम्भव वह साहस में!

४—दादोजी से वीर विप्र ने जिसे पढ़ाया;
रामदास ने जिसे धर्म-उपदेश सुनाया;
वही शिवाजी वीर वीर-माता का जाया
रहने देता भला कहीं निज देश पराया!

५—देश, नाम, कुल, धर्म, हिन्दुओं का मिट जाता;
'अपना' शब्द पुनीत न कोई कहने पाता;
आर्य-गुणों का गान कहाँ से कोई गाता;
यह अवतारी वीर न जो भारत में आता?

६—करके इसका स्मरण चित्त हो जाता चंचल,
इसके कारण बँधा हिन्दुओं का बिखरा बल।
इसे अश्व पर देख फूल उठता था रन-थल;
विकट मरहटे वीर जूझते थे दल के दल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७—दूर दूर तक जय-ध्वजा इसने फहराई ;
निज स्वतंत्रता गई हिन्दुओं ने फिर पाई।
एक बार फिर जन्म-भूमि यह 'निज' कहलाई ;
राम-राज्य की छटा दृष्टि में फिर भी आई।

८—तिल तिल भारत-भूमि जीत यवनों के कर से ;
रच राई का मेरु बसाया ऊजड़ फिर से।
अष्ट प्रधान प्रबन्ध अनोखा कर जग भर से ;
पाली पुत्र-समान प्रजा अपनी आदर से।

९—सहे देश के लिए इन्होंने नाना संकट ;
लखी न ऊबट बाट पाँव के गिने न कंटक।
पग पग छिन छिन यदपि खड़े थे सिर पर घातक,
तो भी इनका झुका न रिपु के आगे मस्तक।

१०—कठिन विपद में भी न इन्होंने त्यागा धीरज ;
गूढ़ अनूठी युक्ति सोच साधा निज कारज।
आपस का विश्वास दूसरे देशों को तज
सिर धरता था आय मरहटे के पद की रज।

११—निज भुज-बल से शीघ्र राष्ट्र को 'महा' बनाया ;
हरद्वार, गुजरात, सेतु, जगदीश, जगाया ;
वैश्यों को भी युद्ध-खेत का खेल दिखाया ;
पल में करदी दूर परालम्बन की माया।

१२—करने को उद्धार देश का कुटिल मुग़ल से ;
देश-भक्ति थी भरी झोपड़ी तलक महल से।
वीर मरहटे हटे न मरकर भी निज थल से ;
ग्रीक-फ़ौज सम कटे खड़े घाटी में बल से।

१३—राजनीति से भरी शिवाजी की चतुराई,
जिसके आगे चली न मुग़लों की मुग़लाई ;
थी इनकी निर्दोष बुराई सदा भलाई ;
वैरी ने भी छुपे बड़ाई इनकी गाई।

१४—शूर, साधु, कवि, गुणी, इन्हें थे जी से प्यारे ;
दया, भक्ति, नय, शील, रहे ये नित हिय धारे ;
गुरु, गो, द्विज के चरण प्रेम से सदा पखारे ;
किया न कोई काम बिना नृप-धर्म बिचारे।

१५—क्या सेना, क्या सदन, बनिज क्या, खेती, खाता ;
क्या शिक्षा, क्या धर्म, प्रजा राजा का नाता ;
क्या स्वराज्य, क्या सभा, पक्ष सीरा, क्या ताता ;
रहा सभी में विद्यमान यह भारत-त्राता।

१६—पर विधि ने करतूत यहाँ भी अपनी साजी ;
वीर-वंश में लाय हाय ! उपजाया पाजी।
कहाँ छत्रपति भूप आर्य-कुल-मुकुट शिवाजी !
कहाँ कलंकी, क्रूर, कुटिल, कायर संभाजी !

१७—भरत-खंड में आज शिवाजी यदपि नहीं हैं,
तोभी इनके चिन्ह यहाँ पर सभी कहीं हैं।
उनसे इनकी स्मरण-लता नूतन उलही है ;
नये जोश से भक्तिभाव की नदी बही है।

१८—उचित यही है करें वीर-पूजा मिल हम सब,
यही धर्म है सत्य ; यही है सच्चा करतब ;
भारत पर अतिकठिन विपद आती है जब जब,
ऐसा ही अवतार शम्भु लेते हैं तब तब।

कामताप्रसाद गुरु।

जनवा झील की सैर।

प्रातःकालीन कामों से फारिग़ हो, कपड़े पहन, मैं तैयार ही हुआ था कि मेरे साथी ने दरवाज़ा खटखटाया। "आप आ गये"—यह कहकर मैंने झट से दरवाज़ा खोल दिया।

मेरे साथी ने मुसकराकर पूछा—"कहिए, आप तैयार हैं?"

मैं—"बस तैयार ही हुआ था कि आप आगये।"

साथी—"अच्छा अब चलिए।"

मेरे साथी का नाम मार्कस है। वह बहुत ही हँसमुख, ख़ुश-मिज़ाज, नौ जवान है। लंबा, चौड़ा, हाथ पैर गठीले, चेहरा साफ़, दाढ़ी मूछ सफ़ाचट, उम्र कोई चौबीस बरस। आप जब उसे देखेंगे उसके चेहरे पर मुसकराहट पायेंगे। यों तो अमरीका-निवासी स्वभाव ही से हँसमुख होते हैं, और हँसी दिल्लगी बहुत पसन्द करते हैं; परन्तु मार्कस में यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष गुण है कि उससे मिलते ही आपका चेहरा खिल उठेगा। आप कैसे ही उदास क्यों न हों सब उदासी भूल जायँगे। मार्कस के पूर्वज स्वीडन से अमरीका आये थे। इसीलिए शरीर से आप बलिष्ठ हैं।

शिकागो-विश्वविद्यालय से आध मील दूर, जेक्सन बाग़ के दूसरी ओर, "एलिवेटर" नामक गाड़ियों की सड़क है। बातचीत करते हुए हम उसके स्टेशन पर पहुँचे। इन गाड़ियों पर चढ़ने वाले चाहे आध मील जायँ, चाहे बीस मील, किराया ढाई आने ही देना पड़ता है। अपना किराया देकर हम ऊपर प्लेटफ़ार्म पर चले गये। प्लेटफ़ार्म पर कई तरह की छोटी छोटी कलें रखी हुई थीं, जो सौदा बेच रही थीं। यदि आपको तम्बाकू की ज़रूरत है तो एक पैसा कल के मुँह में डाल दो और नीचे वाले लोहे के डंडे को दबा दो। आपको तम्बाकू मिल जायगी। उसी तरह बहुत सी चीज़ों के लिए जुदा जुदा छेद थे, जहाँ पैसा डालने से वह चीज़ मिलती थी। बिना पैसा डाले नहीं मिल सकती थी। भारत-वासियों के लिए यह एक अचंभे की बात होगी।

गड़ गड़ करती हुई गाड़ी आ पहुँची। हम लोगों को जगह न मिलने के कारण खड़े रहना पड़ा। इस समय भीड़ होने का कारण यह था कि लोग सबेरे, आठ बजे, दुकानों पर जाते हैं और गाड़ियाँ केवल दो ही होती हैं। एक में तंबाकू पीनेवाले, दूसरी में हमारे जैसे बैठते हैं। मगर यह दिक़्क़त कुछही मिनटों के लिए होती है। ज्यों ज्यों शहर निकट आता जाता है, डिब्बा ख़ाली होता जाता है।

मैं—"आप तो गरम कोट लेते आये; मैं तो लाया नहीं। पर आज कुछ ऐसी सरदी भी तो नहीं है"।

मार्कस—"सर्द हवा चलते देर नहीं लगती। और फिर हम लोगों को झील के उस पार जाना है। वापस आने तक ठंढ पड़ने लगेगी"।

मैं—"तो क्या सरदी में ठिठुरना होगा"?

मा०—"ठिठुरना क्यों होगा? इसी कोट में गट पट हो रहेंगे"।

"क्लार्क-गली" में पहुँचकर हमने जनवा झील को जाने वाली रेल गाड़ी का स्टेशन तलाश किया। पता लगा कि गाड़ी के जाने में अभी एक घंटे की देरी है।

फ़ैशन के मुताबिक़ यहाँ हर दूसरे, तीसरे, दिन हजामत ज़रूरी है; और यदि नाई से हजामत कराओ तो १२½ आने के पैसे लगते हैं। इसलिए रोज़ के और ज़रूरी कामों में हजामत भी शामिल है। मार्कस आज सुबह शीघ्रता के कारण हजामत नहीं कर सके थे।

मा०—"मैं तो नाई की दुकान पर जाता हूँ; आप यहाँ पर तमाशा देखें"

मैं—"बहुत अच्छा"।

तमाशा क्या था, वही जो बड़े बड़े शहरों में स्टेशनों पर होता है। मुसाफ़िरख़ाने में बहुत सी बेंचें रखी हुई थीं, जिनपर स्त्री-पुरुष बैठे थे। भाँति भाँति की बातें कर रहे थे। कोई कोई अख़बार पढ़ रहा था।

एक बेंच पर चार पाँच आदमी ख़ूब हँस हस बातें कर रहे थे। मैं उनके पीछे वाली बेंच पर बैठ कर उनकी बातें सुनने लगा। एक ने कहा—

"हम रास्ते में बिजली की गाड़ी से आरहे थे। एक आयरिश (Irish) हमारे कमरे में जगह न मिलने के कारण दरवाज़े ही पर खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद किराया लेने वाला कांडक्टर "Conductor" आया। उसने कहा—"आगे बढ़िए, साहब"। आयरिश बोला "ग़ज़ब खुदा का! ढाई आने के पैसे भी दिये और घर तक पैदल भी चले"! इस आगे बढ़ने में उसका पैर दूसरे आदमी के पैर पर पड़ गया। वह आदमी बोला—"तुम्हारी आखें कहाँ है?" आयरिश बोला—"सिर में"। उस आदमी ने कहा—"तो क्या मेरा पैर नहीं देख पड़ता?" आयरिश बोला—"नहीं, तुम जूता जो पहने हो?"

दूसरा आदमी बोला—"हम तुमको एक दिल्लगी सुनावें।

रात को हम तमाशा देखने थियेटर में गये। एक यहूदी अपने लड़के को साथ लेकर तमाशा देखने आया। सिर्फ़ अपने लिए एक टिकट ख़रीदकर लड़के के साथ वह झट अन्दर घुसने लगा। दरवाज़े पर जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिकट देखने वाला था उसने रोका और कहा कि एक टिकट इस लड़के के लिए भी ख़रीदना होगा। यहूदी बोला, आप यक़ीन कीजिए, लड़का आँखें बन्द किये बैठा रहेगा!" यह सुन सब लोग खिलखिला कर हँस दिये।

फिर तीसरा कहने लगा—"मैं कल दोपहर को एक गली से जा रहा था। एक बड़ा सा कुत्ता भौंकता हुआ मेरे पीछे लगा। मैंने पहले तो समझा कि शायद हाथ मिलाना चाहता है; मगर जब वह उछल कर काटखाने को बढ़ा तब मैं भागा। कुत्ता भी मेरे पीछे पीछे चला। मैं एक अस्तबल में घुस गया। वहाँ मेरी नज़र एक लम्बी लकड़ी पर पड़ी जिसके एक तरफ़ लोहे की नोकदार एक कील थी। मैंने आव देखा न ताव, झट लकड़ी उठाली और नोकदार छोर से कुत्ते के चुभो दिया। इतने में कुत्ते का मालिक भागता हुआ आया और कुत्ते को ज़मख़ी देख झल्लाकर बोला—"किस लिए तुमने कुत्ते को ज़ख़मी किया?" मैंने कहा"—यह मेरे पीछे भागता हुआ आया था"। वह बोला—"क्यों तुमने लकड़ी के दूसरे सिरे से नहीं हटाया?" मैंने कहा "क्यों नहीं यह मेरी तरफ दूसरे सिरे से (पीछा करके) आया?"

इस टोली का एक एक आदमी इसी तरह हँसी दिल्लगी की बातें सुनाता और सब लोग खिलखिला कर हँसते। रेल का समय आ गया। मुसाफ़िर अपना अपना बेग लेकर तैयार हुए। मेरे साथी मार्कस भी आ पहुँचे।

रेल के प्लेटफ़ार्म पर जाकर पता लगा कि विश्वविद्यालय के २०० से अधिक विद्यार्थी आज जनवा झील की सैर को निकले हैं। इनमें से आधे के क़रीब लड़कियाँ थीं। हर एक के पास ब्यालू करने के लिए सामान था। मगर हम लोगों ने कुछ नहीं लिया था। सोचा था कि जनवा झील के पास जो गाँव हैं वहाँ कुछ लेलेंगे।

टिकट काटने वाले से मालूम हुआ कि यह स्पेशल ट्रेन (ख़ास गाड़ी) है जो विश्वविद्यालय के छात्रों हीं के लिए रेलवे कर्मचारियों ने चलाई है। इसलिए केवल तीन बड़े बड़े डिब्बे हम लोगों के लिए काफ़ी थे। एक डिब्बे में सौ के क़रीब आदमी बैठ सकते हैं। यहाँ हिन्दुस्तान की तरह स्त्रियों के लिए जुदा, मरदों के लिए जुदा, कमरा नहीं था। सब जने मिल जुलकर साथ ही बैठ गये।

साढ़े नौ बजे के क़रीब गाड़ी खुली। शिकागो शहर की धुवाँ मिश्रित वायु तथा शोरो ग़ुल से बाहर हुए। मैदान की शुद्ध पवन का संचार हुआ। गाड़ी के दोनों ओर हरियालीही हरियाली थी। सब्ज़ पत्तों से सुसज्जित वृक्ष अपने पूरे सौन्दर्य्य में दृष्टि पड़ते थे। प्रकृति-माता की शोभा अनुपम थी। मार्च में जहाँ हिम ही हिम दृष्टि पड़ती थी वहाँ आज मई में हरी मख़मल का बिछौना बिछा हुआ है। गाड़ी में बैठे हम लोग उस सुन्दर दृश्य को देख देखकर आनन्दित हो रहे थे। प्रसन्नचित्त विद्यार्थियों ने शिकागो का राग अलापना आरंभ किया—

शिका-गो-गो, गो-शिका-गो
गो-शिका-गो, गो-शिका-गो
गो-शिका-गो, गो-शिका-गो
शिकागो-गो

ऊँचे स्वर से एक ध्वनि में जब सब लोगों ने "शिकागो-गो" कहा, तब मुझे बड़ा ही आनन्द आया। कहाँ यह जीवन और कहाँ हमारे देश के लोगों का! स्वतन्त्र और स्वच्छन्द; एकही प्रकार के अधिकार; सब लड़के लड़कियों का इकट्ठे विद्याध्ययन; इकट्ठे ही खेल कूद!

मार्कस के पास उनके एक और साथी आ बैठे; इससे हम लोग तीन आदमी हो गये। कुछ देर तक हम लोग भिन्न भिन्न विषयों पर बातचीत करते रहे। फिर मैंने मार्कस से कहा कि मैं ज़रा गाड़ियों में घूमकर देख आऊ कि और सब लोग क्या कर रहे हैं।

रेल गाड़ियों के डिब्बे यहाँ हिन्दुस्तान की तरह कबूतर ख़ानों जैसे नहीं होते। बहुत लम्बे चौड़े होते हैं, जिनमें पचास साठ आदमी बा आसानी बैठ सकें। उनके बीच में जाने आने का रास्ता रहता है, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक गाड़ी दूसरी से इस प्रकार जुड़ी रहती है कि एक आदमी सब गाड़ियों में आजा सकता है।

अधिकांश विद्यार्थियों को मैंने ताश खेलते हुए पाया। चार चार आदमी बीच में मेज़ रखकर तुरब (Whist) खेल रहे थे। कोई कोई मासिक पुस्तकें पढ़ रहे थे। एक जगह तीन लड़कियाँ बैठी बातचीत कर रही थीं। उनमें से एक, जिसका नाम "मिस" (कुमारी) स्काट था, मुझसे परिचित थी। जिस समय उसने मुझे देखा, बड़े प्रेम से हाथ मिलाये और अपनी एक सहेली से कहा—

"मिस नैना, मिस्टर देव से परिचित हो लीजिए"।

मिस नैना ने मेरे साथ हाथ मिलाया। मैंने कहा—"आपका परिचय पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ"। इस प्रकार दूसरी मिस एडम्स के साथ मिस स्काट ने मेरा परिचय करवाया। फिर मिस स्काट ने अपनी सहेलियों से कहा—"मिस्टर देव हिन्दुस्तान से यहाँ विद्याऽभ्यास के लिए आये हैं। आप और मैं दोनों पिछली गरमियों में एकही प्रोफ़ेसर (अध्यापक) से वक्तृता का अभ्यास करते थे। मिस्टर देव ने बहुत अच्छे अच्छे विषयों पर व्याख्यान देकर हम लोगों को अनुगृहीत किया है। इनकी और मेरी पहचान तभी से है"।

नैना—"अच्छा, तो आप हिन्दुस्तान के रहनेवाले हैं! मैंने समझा था आप इटली के निवासी हैं"।

मैं (मुसकराकर)—"बहुधा लोगों ने यहाँ मुझे इटली ही का निवासी समझा है"।

मिस स्काट—"मिस्टर देव, मैंने आपको अपनी सहेली नैना के विषय में कुछ नहीं कहा। आप जानकर प्रसन्न होंगे कि यह रूस की रहने वाली हैं और रूस में स्वतन्त्रता के लिए जो जदो जहद हो रही है उसमें ये भी शामिल थीं। अभी एक ही महीना इनको यहाँ आये हुआ है"।

भला ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसे ऐसी देवी के दर्शन कर आह्लाद न हो। स्वतन्त्रता—देश को स्वतन्त्रता—जैसे पुण्य के काम में जिसने अपने आपको बलिदान कर दिया हो; मातृभूमि की दुःख-निवृत्ति के लिए जिन्होंने अपने आपको ख़तरे में डाला हो; हम ऐसे वीरों को नमस्कार करते हैं। मिस स्काट के इस कथन पर उस देवी में मेरी श्रद्धा और भक्ति बढ़ गई। मैंने ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखा। बीस वर्ष की युवा लड़की, हाथ पैर से मज़बूत, गोल चेहरा, बड़ी बड़ी आँखें, क़द कोई साढ़े पाँच फ़ीट से कुछ अधिक, साधारण वस्त्र पहने हुए, मुझे मानों देशभक्ति का उपदेश दे रही थी।

मैं—"आपने अँगरेज़ी भाषा का अभ्यास कहाँ किया था?"

नैना (ज़रा लजाकर)—"मुझे अँगरेज़ी बोलने का अभ्यास बहुत कम है। स्कूल में थोड़ा सा अभ्यास किया था"।

मिस एडम्स ने जो अभी तक चुप थी, मुझसे कहा—

"मिस्टर देव, हम लोग यहाँ हिन्दुस्तान के हालात जानने के बहुत उत्सुक हैं। प्रायः मिशनरियों (पादरियों) से ही समाचार मिलते रहते हैं। आज हमें बहुत अच्छा अवसर मिला है कि आप से ठीक ठीक हालात दरियाफ़्त करें। आप बताइए कि क्या सचमुच आप लोग स्त्रियों को क़ैदियों की तरह रखते हैं"।

मैं—"आप अपने प्रश्न को ज़रा स्पष्ट कर दीजिए तो मैं उत्तर दूँ"

एडम्स—"मैंने लेक्चरों (व्याख्यानों) में सुना है और किताबों में पढ़ा है, कि हिन्दू लोग अपनी औरतों को घर में क़ैदी की तरह रखते हैं। यदि बाहर जायँ तो मुँह पर परदा डालकर। यदि किसी के घर में लड़की पैदा हो तो घर में मातम सा छा जाता है; पुरुष, स्त्री से बात चीत करना छोड़ देता है; और कहता है कि क्यों इसने लड़की पैदा की? बहुतेरे तो लड़कियों को मार तक डालते हैं"।

यह विषय रोचक था और मिस एडम्स ने ज़रा ऊँची आवाज़ से बात चीत की थी, इससे इधर उधर की लड़कियाँ लड़के पास आकर बैठ गये और उत्तर की आकांक्षा में मेरे मुँह की ओर देखने लगे।

मैं—"इसमें सन्देह नहीं कि हमारे देश में स्त्रियों को ऐसी स्वतन्त्रता नहीं है जैसी इस देश में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम लोग उन अबलाओं के अधिकारों की तरफ़ बहुत कम ध्यान देते हैं। तिस पर भी हम स्त्रियों को क़ैदियों की तरह नहीं रखते। हम उनकी इज़्ज़त करते हैं और घरों में हमारी मातायें पूरे अधिकार रखती हैं। यह सच है कि बहुत से अनपढ़ मूर्ख लोग स्त्रियों को कष्ट देते और लड़की का पैदा होना बुरा समझते हैं, मगर यह दशा उच्च और शिक्षित लोगों में नहीं है। परदे के कारण भी कई हैं। परदे का रिवाज हिन्दुस्तान में विदेशियों के आने से पहले प्रचलित न था। और अब भी कई एक प्रान्तों में नहीं है"।

एक लड़की—"हिन्दुओं का धर्म ही ऐसा है जिससे मर्दों की अपेक्षा स्त्रियाँ नीच समझी जाती हैं। स्त्रियाँ पति के जूठे टुकड़े खाकर रहती हैं। मातायें लड़कियों को गंगा में फेंक देती हैं; और यहाँ तक कि पति के मर जाने पर स्त्री का सिर मूंड़ उसे सारी उम्र मातमी लिबास पहनाये रखते हैं"।

ऐसी बातें सुनकर एक लड़की ने धीरे से कहा—"परमात्मा का शुक्र है कि मैं ऐसे मुल्क में पैदा नहीं हुई"।

मैं—"असल में बात यह है कि हिन्दुओं के धर्म के मुताबिक़ स्त्री-पुरुष की अर्द्धांगिनी है। जो धर्म और शास्त्र की मर्य्यादा समझते हैं वे स्त्रियों को वैसे ही अधिकार देते हैं। परन्तु हमारे देश में मूर्खता अधिक है। इसीलिए ऐसी ऐसी बातें आप लोगों के सुनने और पढ़ने में आती हैं। हम लोग ऐसी स्वतन्त्रता भी देना नहीं चाहते जैसी इस देश में है। आप लोग एक सीमान्त पर हैं और अधिकांश लोग हिन्दुस्तान में दूसरे सीमान्त पर। हम उस रास्ते जाना चाहते हैं जिस पर हमारे ऋषि चलते थे"।

एउम्स—"वह कौन सा?"

मैं—"स्त्री और पुरुष के अधिकार बराबर हैं। स्त्री घर की स्वामिनी है; मनुष्य का अधिकार और स्वातन्त्र्य बाहर है। स्त्रियों को विद्याऽध्ययन वैसाही आवश्यक है जैसे पुरुषों को। स्त्री का मान, सत्कार, पूजा करना पुरुष का धर्म है"।

इतने में टिकट काटनेवाले ने आकर कहा—यहाँ गाड़ी बदलेगी। सब लोग उठ खड़े हुए। मैंने मिस स्काट से कहा कि स्टीमर में आप लोगों से फिर भेंट होगी। शीघ्र उनसे जुदा होकर मैं अपने मित्र के पास आया।

दूसरी गाड़ी में बैठकर दो तीन स्टेशन ही गये थे कि जनवा झील दिखाई पड़ने लगी। इस झील का नाम जनवाझील (जो स्वीटज़रलैंड में है) इस लिए रखा गया है कि यह उसी की तरह रमणीक है। दृश्य भी इसमें वैसे ही हैं। शिकागो से उत्तर-पश्चिम, ७० मील की दूरी पर, यह झील है। इसकी लंबाई ९ मील और चौड़ाई सवा मील से तीन मील तक है।

रेलगाड़ी ठीक झील के किनारे जाकर खड़ी हुई। गाड़ी से उतर कर हम लोग हारवर्ड नामी अग्निबोट में जा बिराजे। पवन मन्द मन्द गति से चल रहा था। अग्निबोट में एक आदमी, जिसका काम यही था कि यात्रियों को झील के इर्द गिर्द के घरों, फुलवाड़ियों और दृश्यों का हाल बयान करे, सब लोगों को वहाँ का वृत्तान्त बताता जाता था। झील के चारों ओर बहुत अच्छे अच्छे घर बने हुए हैं। वहाँ शिकागो के धनाढ्य आदमी गरमियों में आकर रहते हैं। छोटी छोटी पहाड़ियाँ वृक्षों और घास से लदी हुई झील की शोभा को दुगुना करती हैं।

हँसते, खेलते विद्यार्थी लोग विश्वविद्यालय की प्रशंसा के गीत गा रहे थे और अपनी इस यात्रा का पूरा आनन्द उठा रहे थे। आज ज़रा बदली थी। जब पवन ज़ोर से चलने लगता था तब शीत मालूम होता था। मैंने मार्कस का कोट ओढ़ लिया और अच्छी तरह आराम से बैठ गया। एक विद्यार्थी अपने साथ फ़ोटोग्राफ़ी का केमरा लाया था। उसने उसी समय सब की तसवीर ले ली।

बारह बजे के बाद हम लोग झील के उस पार, झील जनवा नामी गाँव में, पहुँचे। अधिकांश लोग वहाँ होटल में खाना खाने चले गये। मैं, मार्कस और एक तीसरा साथी गाँव के बाहर एक वृक्ष के तले बैठ गये। हमारा तीसरा साथी जो सामान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाया था हम तीनों के लिए काफ़ी था। सो हम लोगों ने आनन्द से भोजन किया। लौटते समय रात को खाने के लिए फल और रोटी मोल ले ली।

हमारे देश के गाँवों की तरह यहाँ के गाँव नहीं हैं। यहाँ के गाँवों के मकान बहुत फ़ासले पर सुन्दर और हवादार होते हैं। मकानों के बनाने में अधिकतर लकड़ी से काम लेते हैं। ओलतीनुमा छतें रहती हैं। एक, दो छतों के मकान बनाते हैं। यहाँ, चाहे गरमी हो, चाहे जाड़ा, अन्दर कमरों में लोग सोते हैं। प्रत्येक गाँव में स्कूल होता है; टेलीफ़ोन होता है; बिजली की रोशनी का प्रबन्ध भी बहुत जगह है। परन्तु ग़रीब लोग प्रायः मिट्टी का तेल जलाते हैं। ज़मीन से पाँच सात फ़ीट ऊंचे मकान होते हैं। मकानों में मच्छर मक्खी न घुसें, इसलिए हर एक खिड़की और दरवाज़े के आगे बारीक जालियाँ लगी रहती हैं। खिड़कियों के दरवाज़ों में शीशे लगे रहते हैं।

अग्निबोट में सीटी बजी। हम लोगों ने समझा कि वापस जाने का समय हो गया। क्योंकि रास्ते में झील के एक किनारे शिकागोविश्वविद्यालय की प्रकाण्ड यन्त्रशाला (Observatory), जो पर्कस साहब के नाम से मशहूर है, देखनी थी। असल मतलब इस यात्रा का यही था। इसलिए सब लोग झटझट अग्निबोट में आगये।

ढाई बजे के क़रीब अग्निबोट पर्कस यन्त्रशाला के सामने पहुँच गया। विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने लाखों रुपये इमारत तथा दूसरे सामान के लिए इसलिए ख़र्च किये हैं, जिसमें ज्योतिष विद्या के प्रेमी छात्र और आचार्य्य अपनी रुचि के अनुसार इस विद्या से लाभ उठा सकें। एक ऊँची पहाड़ी के ऊपर इस शाला की बहुत विशाल इमारत बनाई गई है। उसके तीन ओर तीन गुम्बज़ हैं। एक आर के बड़े गुम्बज़ में संसार में शायद सबसे बड़ी दूरबीन रक्खी है। दूसरे दो गुम्बज़ों पर छोटी छोटी दूरबीन हैं।

जब और विद्यार्थियों के साथ मैं उस बड़े गुम्बज़ में पहुँचा जहाँ वह दीर्घकाय दूरबीन रखी थी, आश्चर्य्य से आँखें फाड़ फाड़ कर उसे देखने लगा। उनके बड़े बड़े चक्र और भाप के बल से उस गुम्बज़ का घूमना, और दूरबीन का भी तारों की गति के अनुसार साथ साथ घूमते जाना, हैरानी में डालता था। जब सब विद्यार्थी गुम्बज़ में इकट्ठे हो गये तब एक आचार्य्य ने हम लोगों को सब घुमा फिरा कर दिखाया। हमें समझाया कि किस तरह तारों की गति तथा अन्यान्य ज्योतिष-सम्बन्धी बातें इस यन्त्र से जानी जाती हैं। सूर्य्य के ऊपर जो धब्बे दिखाई देते हैं उनके कई फ़ोटो हमें दिखाये। पाठक समझ सकते हैं कि ४० इंच के शीशे (Lens) से कैसी अच्छी तरह आचार्य्य लोग यहाँ आकाश का वेध करते होंगे और जो फ़ोटो उस शीशे के द्वारा ली गई होंगी वे कैसी होंगी। फाटोग्राफ़ी और ज्योतिषविद्या का जो सम्बन्ध है उसका महत्त्व आचार्य्य ने हम लोगों को बहुत ही अच्छी तरह बतलाया।

इसी प्रकार चारों गुम्बज़ों में विद्यार्थी गये और आचार्य्यों ने सब के यथायोग्य प्रयोगों का वृत्तान्त संक्षेप से समझा दिया।

पाठक हम आपसे क्या कहें। जब जब इस देश में हमको ऐसे ऐसे उपयोगी और लाभदायक वैज्ञानिक यन्त्रों के देखने का अवसर आता है तब तब हमारे मुँह से बेइख़तियार यही निकलता है—"स्वतन्त्र देश क्या नहीं कर सकता?" यहाँ अमराका में लोगों को अपनी मानसिक शक्तियों की उन्नति करने का कैसा अच्छा अवसर मिलता है। इस वेधालय में करोड़ों रुपये लगा कर ज्योतिष का सामान केवल अमरीकन बच्चों के उपकारार्थ रक्खा गया है। जिस किसी को ज्योतिष में रुचि है वह यहाँ आकर सारी आयु व्यतीत कर सकता है। उसको वज़ीफ़े और हर तरह की सहायता मिलती है, जिसमें वह विज्ञान की वृद्धि करे। एक हमारा देश है जहाँ करोड़ों आदमी पशुओं की तरह पैदा होते हैं और जन्मभर अविद्यान्धकार में पड़े पड़े मर जाते हैं। उनको मनुष्य-जीवन मिलना और न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलना बराबर है। जो चाहते हैं कि उन्नति करें; विद्या पढ़ें; उनको कोई उत्साह देनेवाला नहीं; सामान नहीं; कोई स्थान ऐसा नहीं जहाँ अपनी शक्तियों का यथायोग्य उपयोग कर सकें।

आचार्य्य की इच्छा थी कि वह उस बड़ी दूरबीन से सूर्य्य के धब्बे दिखावे। मगर बदली के कारण हम लोग अपनी यात्रा से पूरा लाभ न उठा सके। इसलिए उसने केवल भिन्न भिन्न यन्त्रों के उपयोग बतलाये। जिन तारागणों को दूरबीन की सहायता से भी अच्छे प्रकार नहीं देख सकते, उनकी धीमी रोशनी के सामने फ़ोटोग्राफ़ की प्लेट बहुत देर रखने से जो तबदीलियाँ उस पर होती हैं उनसे उन तारागणों का बहुत कुछ हाल मालूम हो जाता है। ज्योतिषविद्यासम्बन्धी जो जो प्रश्न विद्यार्थियों ने किये उन सबका आचार्य्य ने सन्तोषजनक उत्तर दिया। इस देखने भालने में हमारे तीन घंटे ख़र्च हो गये।

भोजन का समय हो जाने के कारण सब लोगों ने व्यालू की। हमने भी केले और रोटी से पेट भरा। इसके बाद यहाँ के ज्योतिष-पुस्तकालय को देखा। वहाँ तारागणों के कितनेही नक़शे हैं। सूर्य्यग्रहण के बहुत बड़े बड़े फ़ोटोग्राफ़ हैं। अनेक प्रकार के फ़ोटोग्राफ़ यहाँ देखने में आये।

अग्निबोट ने सीटी दी और हम लोगों ने समझा कि वापस जाने का समय हो गया। सब लोग समय पर अग्निबोट में आगये। ठीक सन्ध्या होजाने पर हम लोग रेल के स्टेशन पर पहुँचे। शिकागो की गाड़ी खुली और दस बजे रात के हम लोग शिकागो पहुँच गये। स्टेशन पर विद्यार्थियों ने फिर "शिकागो—गो" की ध्वनि की। मार्कस और मैं विश्वविद्यालय की ओर चले।

मार्कस ने मेरा हाथ अपने हाथ में दबाकर कहा "क्यों, सैर का आनन्द आया?"

"आनन्द तो आया, मगर एक कसर रह गई"।

"वह क्या?"

"उस बड़ी दूरबीन से सूर्य्य के धब्बे न देख सके। बदली ने काम ख़राब कर दिया"।

"ख़ैर, फिर कभी सही। झील जनवा दूर तो है ही नहीं"।

"फिर, क्या रोज़ रोज़ आना थोड़े ही होगा"।

"यह क्यों? दो ही डालर ख़र्च हुए हैं न। आधा डालर भोजन का समझ लो।"

"हर वक़्त थोड़े ही प्रोफ़ेसर इस प्रकार बतलाने को तैयार होगा।"

"नहीं, गरमियों में एक दिन फिर बहुत से विद्यार्थी आवेंगे। हर तीसरे महीने एक बार प्रोफ़ेसर मोलटन अपने विद्यार्थियों को वहाँ भेजते हैं।"

"अच्छा, देखो यदि मैं गरमियों में शिकागो में रहा तो अवश्य ही एक दफ़े फिर आऊँगा।"

"मैं तो इस बार गरमियों में बाहर स्टीरियास्कोप के चित्र बेचने मिनोसोटा जाऊँगा।"

"सच मुच?"

"ज़रूर।"

"तीन महीने में कितना कमाने की आशा रखते हो?"

"कह नहीं सकता। मगर कम से कम सात आठ सौ रुपये से कम क्या कमाऊँगा।"

"आप अमरीकन लोग रुपया कमाने में बड़े चतुर हैं।"

"यह पहली बात है जो हमारे मा बाप लड़कों लड़कियों को सिखाते हैं। अमरीकन कहीं चला जाय, भूखा नहीं मरेगा। कोई न कोई काम कर ही लेगा।"

"हमारे देश में तो तेली का बेटा तेली और बाबू का बेटा बाबू बनने की कोशिश करता है।"

मार्कस हँसे।

"तभी वहाँ के लोग भूखों मरते हैं। यहाँ शिकागो के एक करोड़पति का लड़का एक कारख़ाने में काम करता है और १५० रुपये महीना कमाता है। सिर्फ़ इसलिए कि बाप के रुपये के ऊपर अवलम्ब करना ठीक नहीं। मुमकिन है बाप कंगाल हो जाय या कोई और आपत्ति आजाय।"

"इसमें शक नहीं। मैं इन बातों का मूल्य अब अच्छी तरह समझता हूँ। हमारे देश में दस दस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीस बीस बरस हज़ारों रुपये ख़र्च करके हम लोग स्कूल में पढ़ते और परीक्षा पास करते हैं। और बाद में जगह जगह जूतियाँ चटख़ानी पड़ती हैं।"

"यहाँ हमारे ही विश्वविद्यालय में आप लड़कों को देखें। उनके हाथ देखने से साफ़ मालूम हो जायगा कि इन लोगों ने मेहनत मज़दूरी की है। क्यों? इसलिए कि हर अमरीकन लड़के का सिद्धान्त है—"To lead an independent life"–(स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना)। यदि कोई और काम न मिले, तो मज़दूरी ही करके ९ रुपये रोज़ कमा लेगा।"

"एक हमारा देश है जहाँ मज़दूरी करनेवाले नीच जाति में गिने जाते हैं, और उनके साथ उठना बैठना, मिलना जुलना लोग बुरा समझते हैं।"

"आप लोगों की नस नस में "Aristocracy" (महापुरुषता) भरी है।"

मैं चुप हो गया। हमारी नस नस में Aristocracy (महापुरुषता) भरी है, क्या यह सच नहीं है? सच है। किस घृणा की दृष्टि से तेली, चमार, लोहार, धोबी, मोची, आदि लोग देखे जाते हैं। किसी के बाप-दादे ने कलाल का काम किया तो उसका सारा वंश निन्दित हो गया और उनकी भिन्न बिरादरी करदी गई। इसी प्रकार सबके जुदा जुदा पेशे हो गये। नीच ऊँच का भाव सिर से पैर तक हमारे देश में है। अफ़सोस!

बिजली की गाड़ी में बैठकर आधे घंटे में हम विश्वविद्यालय के पास पहुँच गये। मार्कस "गुड नाइट" कहकर अपने घर चला गया और मैं अपने कमरे में पहुँचा। कपड़े उतार बिछौने पर लेट गया। आध घंटा उसी Aristocracy (महापुरुषता) वाली बात की उधेड़बुन में लगा रहा। इसके बाद सो गया।

सत्यदेव, (शिकागो-विश्वविद्यालय, अमरीका)

श्यामनरेश चूड़ालङ्करण।

श्यामनरेश चूड़ालङ्करण का जन्म २१ सितम्बर १८५३ को हुआ था। १८६८ में जब आप सिर्फ़ १५ वर्ष के थे, आप श्याम के राजा हुए। आपका पूरा नाम बहुत लम्बा चौड़ा है। उसमें कई एक 'महा' और 'प्र' आदि संस्कृत-शब्द हैं। आप सूर्य्य और चंद्रमा के भाई कहलाते हैं। सफ़ेद हाथी बौद्ध की बराबर पूज्य माना जाता है और श्याम के सिवा और कहीं नहीं होता। उसके आप स्वामी कहे जाते हैं। एक दो नहीं, चौबीस सुवर्ण-छत्रों के आप अधीश्वर हैं। प्रताप आपका वैसाही प्रखर प्रसिद्ध है जैसा कि मध्यान्ह-कालीन सूर्य्य का। ये सब बातें आपके नाम, उपनाम और उपाधियों के साथ लगी रहती हैं।

१८९३ ईसवी के पहले श्यामनरेश की सत्ता बहुत विस्तृत थी। उत्तर में वह स्वाधीन शान-जाति के देश तक और दक्षिण में मलय प्रायद्वीप के जोहोर संस्थान तक थी। पर महाराज चूड़ालङ्करण का राज्य अब बहुत संकुचित हो गया है। यद्यपि आप को अँगरेज़ी शिक्षा प्राप्त हुई है और यद्यपि आप पश्चिमी सभ्यता के ख़ासे पण्डित हैं तथापि पहले आप आराम-तलब ज़ियादह थे। आपने अपने नये तारुण्य का बहुतसा भाग महलों मेंही बिताया। राजधानी से दूर आपने एक रंग-महल बनवाया था। वहीं आप अधिक रहते थे। फ़्रांस ने अनाम, कंबोडिया और कोचीन चाइना को अपने पाणिपल्लव की छाया में पहिले ही से कर लिया था। धीरे धीरे श्याम की सरहद में पहुँच कर उसने सरहद्दी झगड़ा खड़ा कर दिया। श्यामनरेश ने इसकी कुछ परवा न की। फ़्रांस की बातों को अवहेलना ही होती गई। एक आध लड़ाई भी हुई। कुछ फ़रासीसी सिपाही मारे भी गये। फल यह हुआ कि फ़्रांस के लड़ाकू जहाज़ बैंकाक आ पहुँचे। मेनम नदी का मुहाना बंद कर दिया गया। तब श्याम को होश आया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब महाप्रतापी श्यामराज ने अपना आराम-गाह छोड़ा। परन्तु तब तक फ़्रांस की प्रतिहिंसा वृत्ति को मात्रा बहुत बढ़ चुकी थी। उसने श्याम से बहुत सा देश लेकर पिण्ड छोड़ा। तब से आज तक फ़्रांस का पैर श्याम में बढ़ताही जाता है। इक़रारनामे लिखे जाते हैं, फिर रद होते हैं; फिर लिखे जाते हैं, फिर रद होते हैं। आज फ़्रांस ने श्याम का अमुक प्रान्त, नगर या भाग लिया; कल उसे छोड़ दिया, और उसके बदले और ही कुछ लिया। यही लगा रहता है।

श्याम चक्की के दो पत्थरों के बीच में पड़े हुए गेहूँ के दाने के समान है। एक तरफ़ उसके अँगरेज़ी राज्य, दूसरी तरफ़ फ़्रांस वालों का। बीच में पड़ा हुआ श्याम पिसा करता है। परन्तु अँगरेज़ों की श्याम पर कृपा है। फ़्रांस के संघर्ष से बचने के लिए, अँगरेज़ी और फ़रासीसी राज्य के बीच में श्याम को बना रखना अँगरेज़ों के लिए बहुत अच्छी बात है। इसीसे अँगरेज़ी-राजनीति-विशारदों की श्याम पर कड़ी दृष्टि नहीं रहती।

जब फ़्रांस ने पहले पहल श्यामनरेश को विभीषिका दिखाई, तब उन्होंने अँगरेज़-राज के दरबार में "पाहि" की पुकार की। परन्तु अँगरेज़ों ने बीच में पड़ना उचित न समझा। तब से श्यामेश्वर के ध्यान में अपनी शक्ति और स्थिति का अन्दाज़ अच्छी तरह आगया। तब से आपने राज-काज की तरफ़ अच्छी तरह ध्यान देना शुरू किया। अब आपके देश की दशा बहुत कुछ सुधर गई है। आपने क़ायदे-क़ानून बनाने के लिए एक कौंसिल स्थापित की है। और नये सिरे से कितनेहीं महकमों का प्रबन्ध किया है। आपके अनेक भाई और अनेक बेटे हैं। राज्य के बड़े बड़े अधिकार उन्हीं के हाथ में हैं।

चूड़ालङ्करण महाराज ने कितने ही विदेशी विद्वानों और राजनीति-विशारदों को अपने आश्रय में रक्खा है। उन्हीं की मदद और सलाह से बड़े बड़े काम होते हैं। प्रजापोडक क़ानून मंसूख़ हो गये हैं; ग़ुलामी की प्रथा बन्द करदी गई है; कई एक नहर खोदी गई हैं; सागौन के जंगलों से लट्ठे काटकर बेचने का प्रबन्ध किया गया है; व्यापार की ख़ूब उन्नति की गई है। रेल, तार और डाकघर खुल गये हैं; और बिजली की रोशनी भी बंकाक में होने लगी है। इस सुप्रबन्ध के कारण कोई १० वर्ष में राज्य की आमदनी चौगुनी हो गई है। और व्यापार-व्यवसाय भी ख़ूब चमक उठा है। दिनों दिन शिक्षा का प्रचार हो रहा है; प्रजा पहले की अपेक्षा अधिक सुखी है। जापान की उन्नति के कारणों को ध्यान में रखकर चूड़ालङ्करणजी अपने देश के सुधार में जी जान से लगे हुए हैं।

श्यामनरेश हर साल कितनेही नव युवकों को वज़ीफ़े दे कर योरप भेजते हैं। वहाँ वे सब तरह की उपयोगी शिक्षा प्राप्त करते हैं और स्वदेश को लौटकर बड़े बड़े पदों पर नियत किये जाते हैं। श्यामराज ने अपने कितनेहीं बेटों को इँगलैंड में शिक्षा दी है। वे सब बहुत योग्य निकले हैं और इस समय श्याम में देशोन्नति के काम में लगे हुए हैं। इन सब बातों को देखकर श्याम के शत्रु भी श्यामनरेश के जागरण की प्रशंसा कर रहे हैं।

श्यामनरेश ने दूर दूर तक का सफ़र किया है। आप कई बार योरप की सैर कर चुके हैं। जब जब आप बाहर गये हैं, प्रजा के हित का आपने हमेशा ख़याल रखा है। कुछ न कुछ आप बाहर से ज़रूर सीख आये हैं और वही बात आपने अपने देश में जारी की है। १८७२ ईसवी में वे हिन्दुस्तान भी आये थे। जावा में रहकर आपने डच लोगों की राज्यप्रणाली का ज्ञान प्राप्त किया है। फ़्राँस, जरमनी, अमेरिका, रूस आदि जितने बड़े बड़े राज्य हैं सब की राजधानियों में आप पधारे हैं और वहाँ से आपने अनेक प्रकार की शिक्षा प्राप्त की है। आजकल फिर आप दौरे पर हैं। रोम, वीना, पेरिस और लंदन देख चुके हैं। अब डेनमार्क, स्वीडन और रूस आदि की सैर करके आप बैंकाक वापस जायँगे। लौटते समय शायद आप लङ्का की भी सैर करें। श्याम का धर्म्म बौद्ध है। चूड़ालङ्करण भी पक्के बौद्ध हैं। लङ्का में आपका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्धधर्मावलम्बियों के मठ, स्तूप, विहार आदि के दर्शनों का अच्छा अवसर मिलेगा।

श्यामनरेश के दो प्रधान रानियाँ हैं और ४१ अप्रधान। इनके सिवा कुछ और भी हैं। सब मिलाकर आपके कोई १०० बेटे हैं। भाई भी बहुत हैं। आपके अन्तःपुर के भीतर बाहर पुरुष-प्रवेश की आज्ञा नहीं। सब काम स्त्रियाँ हीं करती हैं। श्यामनरेश की पहली प्रधान रानी का नाम है सवाई पोंगशी। वह ख़ूब शिक्षिता हैं। पश्चिमी रीतिरवाजों को पसन्द करती हैं। पर्दे का कम ख़याल रखती हैं। बाहर बाइसिकल पर घूमने निकलती हैं। उनकी सलाह से श्यामनरेश ने कितनेहीं बुरे बुरे रीति-रस्म बन्द कर दिये हैं। पहले जो कोई उनके दरबार में उनके सामने जाता था उसे हाथ पैर के बल रेंगकर जाना पड़ता था। कभी कभी दो दो चार चार आदमी साथही रेंगते थे। कोई इधर रेंग रहा है, कोई उधर। यह एक अजीब दृश्य था। इसे महारानी ने बन्द करा दिया। अब महल की रानियों और उपरानियों का परदा भी कुछ शिथिल हो गया है। पहले यदि कोई स्त्री या रानी किसी अन्य पुरुष की तरफ़ देख लेती थी तो उसका सिर काट दिया जाता था। अब यह बात नहीं है। श्याम के युवराज इन्हीं प्रधान महिषी के पुत्र हैं, और शिक्षित हैं। विदेश में भी इन्होंने शिक्षा पाई है। राज्यकार्य्य में विशेष पटु हैं। पश्चिमी सभ्यता के पृष्ठपोषक हैं।

श्याम की सर्वप्रधान रानी के पास अनन्त धन है। इतने अनमोल रत्न और आभूषण शायदही और किसी राजा की रानी के पास हों। कोई सवा दो लाख रुपये क़ीमत का तो एक छोटा सा रत्न खचित सुवर्णमय कमल पुष्प ही है जिसे श्यामनरेश ने विवाहोपलक्ष्य में उन्हें दिया था।

श्यामनरेश कई भाषायें जानते हैं। अँगरेज़ी और फ़्रेंच ख़ूब बोल लेते हैं। आपको विदेशी पोशाक अधिक पसन्द है।

हिन्दुस्तान का व्यापार।

हिन्दुस्तान से जो चीज़ें और और देशों को जाती हैं और वहाँ से जो इस देश को आती हैं उनका एक लेखा हर साल गवर्नमेंट पुस्तकाकार प्रकाशित करती है। एप्रिल ०५ से मार्च ०६ का लेखा प्रकाशित हुए बहुत समय हुआ। वाणिज्य-विषयक सब बातों की ख़बर रखने के लिए गवर्नमेंट ने एक महकमा बना रक्खा है। एफ़० नोयल-पेटन साहब उसके डाइरेक्टर हैं। आपने १९०५-०६ और १९०६-०७ के व्यापार के लेखे की समालोचनायें लिखी हैं। उन्हें पढ़ने से हिन्दुस्तान के व्यापार से सम्बन्ध रखनेवाली अनेक ज्ञातव्य बातें मालूम होती हैं।

व्यापार का लेखा "इंडियन ट्रेड जर्नल" नामक सरकारी अख़बार में भी छपा है। उसे, और नोयल-पेटन साहब की वार्षिकी समालोचनाओं को पढ़ने से जान पड़ता है कि उद्योगधन्धा करने और अपने देश की चीज़ों को लेने की तरफ़ हम लोगों का ध्यान अब कुछ कुछ जाने लगा है।

इस समय बंगाल में स्वदेशीयता का ज़ोर ज़ियादह है। इससे दो चार उदाहरण देकर हम यह दिखलाना चाहते हैं कि वहाँ वालों ने अपने देश की चीज़ों का कितना आदर किया है और इस आदर के कारण विदेशी व्यापार को कितना धक्का पहुँचा है। सरकारी लेखे में बंगाल के व्यापार का हिसाब अलग नहीं दिया गया। इससे हम वहाँ के व्यापार के परिमाणसूचक अंक गत श्रावण के "प्रवासी" से लेते हैं।

१९०५-०६ में कोई ३१ लाख रुपये का चमड़ा और चमड़े का सामान इस देश में आया था। और ११ लाख रुपये की क़ीमत के बूट बंगाल में ख़र्च हुए थे। परन्तु इस साल बंगाल में बूटों की आमदनी बहुत कम हुई है। वह गिर कर ६½ लाख रुपये रह गई है। इससे सूचित होता है कि इस देश के बने बूट बंगालियों को पसन्द आने लगे हैं। कानपुर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमड़े का जैसा कारोबार होता है, अन्यत्र वैसा नहीं होता। चीज़ें भी विलायती चीज़ों की टक्कर की बनती हैं। फिर भी यदि यहाँ के बने बूट लोग न लें तो अफ़सोस की बात है।

१० वर्ष पहले हिन्दुस्तानी आदमी विलायती सिगरेटों को हाथ तक न लगाते थे। परन्तु धीरे धीरे इनका इतना प्रचार बढ़ा कि १९०५-०६ में ४५ लाख रुपये के सिगरेट इँगलैंड, अमेरिका और जापान वग़ैरह से हिन्दुस्तान में आये! परन्तु गत वर्ष अर्थात् १९०६-०७ में ३½ लाख रुपये के सिगरेट बंगालवालों ने कम लिए। मानों सिगरेट के शौकीनों ने इतना रुपया अपने ही देश में रहने देने की कृपा की। यदि हिन्दुस्तान भर विदेशी सिगरेट व्यवहार करना छोड़ दे तो न मालूम कितना रुपया विदेश जाने से बचे।

ऊनी कपड़ा विदेश से बहुत आता है। काश्मीर और काबुल के पश्मीने की अब तक कम चाह थी, जरमनी और इँगलैंड के पश्मीने की अधिक। इन्हीं दो देशों से यहाँ ऊन का कपड़ा अधिक आता है। परन्तु कई साल से यह विदेशी व्यापार घट रहा है। १९०४-०५ में ३०७ लाख रुपये का कपड़ा आया था, १९०५-०६ में सिर्फ़ २४२ लाख का। अर्थात् गत वर्ष विदेशी व्यापारियों का ६५ लाख का माल न बिका। इसमें केवल शालों में ३३ लाख की कमी हुई! यह इस बात का दृढ़ प्रमाण है कि हम लोग अब अपने देश की ऊनी चादरें अधिक लेने लगे हैं। यह सारे हिन्दुस्तान का हिसाब हमने बताया। अब बंगाल का सुनिए। वहाँ गत वर्ष, अर्थात् १९०६-०७ में, कोई २० लाख रुपये का माल कम खपा। अकेले एक प्रान्त ने इतना रुपया बाहर जाने से बचाया। अच्छी बात है न?

विदेशी शराब की आमदनी कई साल से कम हो रही थी। परन्तु १९०५-०६ में कोई ३० लाख की शराब आई, अर्थात् १९०४-०५ की अपेक्षा फ़ी सदी १३ अधिक आई। यह समग्र हिन्दुस्तान का लेखा है। राज़ा और सहारनपुर वग़ैरह में यहाँ बहुत शराब बनती है। पर पियक्कड़ों को उससे तृप्ति नहीं होती। उन्हें विलायती ब्रांडी चाहिए। थोड़ी भी नहीं। तीस तीस लाख की! इसमें साहब लोग भी शामिल हैं। ख़ैर इस साल, १९०६-०७ में, फिर कमी हुई है। अकेले बंगालियों ने ४ लाख रुपये की बिक्री मार दी है! ग़नीमत है!

कपड़े का हाल सुनिए। १९०५-०६ में कोई साढ़े २१ करोड़ का विदेशी कपड़ा बंगाल ने ख़र्च किया था अथवा लिया था। पर गत वर्ष, १९०६-०७ में, सिर्फ़ १८ करोड़ ६२ लाख का लिया। अकेले बंगालियों ने कोई ३ करोड़ रुपये के कपड़े की बिक्री में बाधा डाली! और सूत की बिक्री में? १९ लाख रुपये की उसमें भी कमी की!

कोई २२ हज़ार रुपये की क़ीमत के विलायती खिलौने भी बंगालियों ने, १९०६-०७ में, कम लिये।

विदेशी शक्कर की आमदनी अभी तक कम नहीं हुई। इँगलैंड और जर्मनी से तो उसकी आमदनी कुछ कम हुई है। पर जावा से बढ़ गई है। जावा द्वीप तो अब गुड़ तक भेजने लगा है।

लखनऊ से एक दैनिक पत्र अँगरेज़ी में निकलता है। नाम है "इंडियन डेली टेलीग्राफ़"। इसके मालिक हैं मुसलमान और सम्पादक अँगरेज़। इस लिहाज़ से इसकी पालिसी भी जैसी होनी चाहिए वैसी ही है। इसके १५ अगस्ट ०७ के अङ्क में एक और पत्र का हवाला देकर इस बात पर स्वदेशी वस्तु व्यवहार करनेवालों की दिल्लगी उड़ाई गई है कि १९०५-०६ में विदेशी माल की और भी अधिक कटती इस देश में हुई। परन्तु इस पत्र में जो अङ्क दिये हुए हैं सब ग़लत मालूम होते हैं। लिखा है—"१९०५-०६ में कुल ११२ करोड़ का माल विदेश से हिन्दुस्तान में आया, जब कि १९०४-०५ में सिर्फ़ १०४ करोड़ का आया था। इस तरह ८ करोड़ का माल १९०५-०६ में अधिक आया"। नहीं मालूम यह हिसाब इन लोगों का कहाँ से मिला है। नोयल-पेटन साहब तो १९०५-०६ के व्यापार की समालोचना के दूसरे पृष्ठ पर लिखते हैं कि १९०४-०५ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२९ करोड़ का माल आया था; पर १९०५-०६ में १२३ ही करोड़ का आया। इस हिसाब से ६ करोड़ का कम आया! यही नहीं किन्तु नोयल-पेटन साहब यह भी कहते हैं कि आयात और यात दोनों प्रकार के माल को मिलाकर देखने से भी पहले साल से ३ करोड़ की कमी हुई। आप कहते हैं—

"It will be observed that the grand total of imports and exports declined by one per cent. or by 3 crores compared with the trade of 1904-05. The decline was confined to imports which fell by 6 crores."

देखा आपने अँगरेज़ी दैनिक पत्रों का हिसाब! हाँ यह जो ६ करोड़ की कमी हुई है वह सोने और चाँदी के मद में बतलाई गई है, मामूली व्यापार की चीज़ों के मद में नहीं। ख़ैर, कुछ भी हो, ८ करोड़ की बढ़ती तो नहीं हुई।

सरकारी रिपोर्ट में लिखा है कि १९०४-०५ में ३६ करोड़ का सूत और कपड़ा विदेश से आया और १९०५-०६ में ४० करोड़ का। अर्थात् ४ करोड़ का अधिक आया। "डेली टेलिग्राफ़" साहब ३८ और ४३ करोड़ का हिसाब लगाते हैं! सरकारी हिसाब से भी आप १ करोड़ की आमदनी अधिक किये देते हैं। यह जो ४ करोड़ का कपड़ा और सूत १९०५-०६ में अधिक आया सो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। उस समय स्वदेश-वस्तु-व्यवहार का प्रेम लोगों के दिल में पैदा होना शुरूही हुआ था। गत वर्ष अर्थात् १९०६-०७ में आये हुए कपड़े का हिसाब देखिए तो हाल मालूम हो। १९०५-०६ की अपेक्षा १९०६-०७ में १ करोड़ ३२ लाख ३४ हज़ार रुपये का कपड़ा कम आया! यह अकेले बंगाल की बात नहीं, सारे हिन्दुस्तान की बात है। इसका यह अर्थ हुआ कि इतना रुपया इस देश में बननेवाले कपड़े के व्यवसायियों को मिला। यही क्यों इससे भी अधिक मिला होगा। क्योंकि विदेशी कपड़े की आमदनी पहले हर साल अधिक होती थी। इस साल भी अधिक होनी चाहिए थी। पर नहीं हुई। इससे उस अधिक होनेवाली आमदनी की क़ीमत भी तो इसी देश में रही। १९०६-०७ में कोरे कपड़े की आमदनी सैकड़े पीछे ३ कम हुई है, धुले की १३ और रंगीन की ३। कुछ ख़ास क़िस्म का कपड़ा १९०६-०७ में अधिक भी आया है। पर क्या हुआ, स्वदेशीपन धीरे धीरे जड़ पकड़ेगा, एकदम नहीं।

अगर कुछ क़िस्म का कपड़ा अधिक आया है तो कुछ का कम भी आया है। चद्दर, धोती, साड़ी आदि की बहुत ही कम आमदनी हुई है। "इंडियन ट्रेड गज़ट" में प्रकाशित सरकारी रिपोर्ट में लिखा है—"All the others show a decline which in the case of grey *chadars*, *dhuties*, *saris* and scarves is very marked"—"इंडियन डेली टेलीग्राफ़" साहब न मालूम इस पर क्या फ़रमावें।

१९०६-०७ में कलें और यन्त्र आदि की आमदनी अधिक हुई। यह अच्छा है। इनसे नये नये कारख़ाने खुलेंगे।

गत वर्ष यहाँ से धान्य अधिक गया। ऐसा न होता तो अच्छा होता।

इन प्रान्तों के छोटे लाट स्वदेशी शिल्प और कला-कौशल को उन्नति के लिए बहुत प्रयत्न कर रहे हैं। एतदर्थ हम लोग आपके बहुत कृतज्ञ हैं।

---

* कर्म्म।

किसी समय एक धनवान व्यापारी बहुत से रत्नादिक लिये रथ पर सवार बनारस व्यापार करने जा रहा था। मार्ग में उसे एक संन्यासी मिला। व्यापारी ने सोचा कि सत्संग से बड़ा लाभ होता है, और यह संन्यासी आकृति से

* इस असार संसार में मनुष्य का नेता धर्म्म ही है। यद्यपि सर्व्वव्यापी परमात्मा के आकार असंख्य हैं तथापि जैसे वह एक ही है उसी तरह हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, ईसाई, पारसी इत्यादि जितने धर्म्म हैं वास्तव में सब एक हैं; क्योंकि वे सभी ईश्वरप्राप्ति या मोक्ष के साधन हैं। अतएव किसी धर्म्म से विरोध करना अपने परमात्मा से और स्वयं अपनी आत्मा से विरोध करना है। हमें खेद है कि बहुत से हिन्दू बौद्धमत के सिद्धान्तों से अपरिचित हैं। उन्हें चाहिए कि वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा सज्जन मालूम होता है। अतः यदि यह भी बनारस ही जाता हो तो इसे भी अपने साथ इसी रथ में ले चलना उत्तम होगा। यह बात वह सोच ही रहा था कि रथ संन्यासी के बिलकुल पास आ पहुँचा। तब उस व्यापारी ने अपने सारथी से रथ रुकवाकर संन्यासी से कहा—"महाराज! यदि आप भी बनारसही जाते हों, तो कृपाकर इस रथ में बैठ लीजिए। मैं आपको सहर्ष वहाँ पहुँचा दूँगा"।

संन्यासी ने उत्तर दिया—"भाई! मैं भी बनारस ही जा रहा हूँ। चलते चलते थक गया था। अतः तुम्हारी इस कृपा का बड़ा कृतज्ञ हूँ। मैं तुमको इस अनुग्रह के बदले कुछ धन तो दे नहीं सकता, क्योंकि मेरे पास देने योग्य कोई सांसारिक चीज़ नहीं है। परन्तु यदि तुम्हारी इच्छा होगी तो शाक्यमुनि से पाई हुई अलौकिक सम्पत्ति से कुछ थोड़ासा अंश तुम्हें भी अर्पण करूँगा"। यह कह कर संन्यासी बाबा भी रथ में बैठ उस व्यापारी के साथ बनारस पधारे। मार्ग में संन्यासी जी के लाभदायक उपदेशों से व्यापारी मुग्ध हो गया। दोनों में परस्पर वार्तालाप हो ही रहा था कि इतने में रथ सड़क की एक मोड़ पर रुक गया।

मार्ग छोटा था और चावल से भरी हुई एक गाड़ी, जिसका एक पहिया निकल गया था, बीच में खड़ी थी। गाड़ी का मालिक उस निकले हुए पहिये को ठीक करने में लगा था। कुछ देर रुकने के बाद उस धनवान व्यापारी को बड़ा क्रोध आया और उसने अपने सारथी को उस गाड़ी को मार्ग से हटा देने की आज्ञा दी। इस पर संन्यासी जी कुछ कहने न पाये थे कि बलवान सारथी ने, अपने स्वामी के आज्ञानुसार, तत्कालही उस बैलगाड़ी को खींचकर मार्ग के नीचे डाल दिया। ऐसा करने से उस पर से बहुत सी चावल की बोरियाँ नीचे गिर पड़ीं। यह देखकर संन्यासी जी तुरत रथ से उतर पड़े और उस धनिक व्यापारी से कहा—"इतनी देर आपके रथ में बैठने से मेरी थकावट जाती रही। आपकी कृपा का मैं बड़ा अनुगृहीत हूँ। परन्तु क्षमा कीजिए, अब मैं आपके साथ नहीं चल सकता। क्योंकि मैं अब इस दीन गाड़ीवाले की, जिसमें कि आपके पूर्व पुरुषों की कुछ झलक मुझे देख पड़ती है, मुझे सहायता करना आवश्यक है"।

संन्यासी के इन वचनों को सुनकर व्यापारी चकित हुआ और कहने लगा कि "इस मनुष्य में मेरे पूर्व पुरुषों की झलक का प्रतीत होना असम्भव है"। संन्यासी ने उत्तर दिया "तुमको अविद्या के कारण उन संस्कारों का, जो कि तुम्हारे और इस पुरुष के प्रारब्ध को एक ही में पाशबद्ध किये हुए हैं, कदापि ज्ञान नहीं है। यह सब तुम्हारा ही अपराध है। तुम्हीं अपने को स्वयं हानि पहुँचा रहे हो। जहाँ तक होगा मैं तुमको उससे बचाने का प्रयत्न करूँगा"।

यह सुनकर व्यापारी तो आगे चला और संन्यासी उस दीन बनिये को बोरी लादने में और गाड़ी का पहिया ठीक करने में सहायता देने लगा। वह दीन मनुष्य भी एक व्यापारी था। वह भी बनारस अपने चावल बेचने जा रहा था। उसने इस उदार संन्यासी

विरोध को छोड़ें और बौद्ध धर्म्म से परिचित होने का उद्योग करें। अभी परसाल हमको लङ्का जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। तब कलम्बो पहुँचने के पहले बहुत सी पुस्तकें बौद्ध धर्म्म के ऊपर हमने पढ़ीं। उनसे हमें लङ्का में बौद्ध धर्म्म और बुद्ध के स्मारक चिह्नों की जिज्ञासा में बड़ी सहायता मिली। हमने देखा कि लङ्कापुरी में अभी बौद्धधर्म्म की प्राचीन छटा वर्तमान है। लङ्का में भ्रमण करते हुए कांडी नामक स्थान में हम बौद्धों के एक प्रधान मन्दिर में गये। पंडित बटवन्तदाओ नामक एक सज्जन हमें अनेक स्मारक चिह्नों के दिखलाने के अनन्तर एक बड़े प्राचीन पुस्तकालय में ले गये, जहाँ हमने बहुत सी पुस्तकें कपड़े पर लिखी पाईं, जिनमें से कुछ संस्कृत में भी थीं। पुस्तकालय से हम बौद्ध-महन्तमण्डली में गये और बहुत से महन्तों से मिलकर पंडित बटवन्तदाओ के द्वारा कुछ बात चीत भी की। एक आध महन्त हमें ऐसे भी मिले जो अँगरेज़ी और संस्कृत जानते थे। उनसे हमने स्वयं बातें कीं। बिदा होते समय एक महन्त महाशय ने कपड़े पर जापान की छपी हुई अँगरेज़ी भाषा में एक अतिमनोहर पुस्तक भेंट की। इस पुस्तक में बौद्ध धर्म्म के अनुकूल ग्रंथ-कर्ता ने, दृष्टान्त रूप में, कर्म्म विषय पर बहुत अच्छा लिखा है। हम इस लेख को इसी पुस्तक के आधार पर सरस्वती के पाठकों को यह दिखाने के लिए भेंट करते हैं कि बौद्ध-मतानुयायी लोग कर्म्म को क्या समझते हैं। लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को महापुरुष समझ कर पूछा—"महाराज! इसका क्या कारण है कि जिस मनुष्य को मैंने कभी कुछ कष्ट नहीं पहुँचाया था वह मेरे साथ ऐसा अनुचित बर्ताव करे?" संन्यासी ने उत्तर दिया—"यह कोई आश्चर्य्यजनक बात नहीं है। जैसा तुमने उस धनिक व्यापारी के साथ पूर्व जन्म में किया था वैसाही उसने आज तुम्हारे साथ किया। जो तुमने बोया था उसी का फल तुमें मिल रहा है। तुम्हारा प्रारब्ध तुम्हारेही कर्म्मों का फल है। तुम्हारा यह जन्म और यह दशा तुम्हारेही कर्म्मों से प्राप्त हुई है"।

तब उस चावलवाले व्यापारी ने पूछा—"मेरे कर्म्म क्या हैं?" संन्यासी ने उत्तर दिया—"मनुष्य के किसी जन्म के किये हुए कार्य्यों को कर्म्म कहते हैं। तुम्हारा यह जन्म तुम्हारे पूर्वजन्म के कर्म्मों का फल है। मनुष्य के कर्म्म जन्म जन्मान्तर उसके साथ रहते हैं और अपना फल दिखाते हैं। अतः हम अपने प्रारब्ध के स्वयं कर्ता हैं"। यह सुन उस व्यापारी ने कहा—"आपका कहना सत्य है। परन्तु मैंने उस धनिक व्यापारी के साथ कैसा व्यवहार किया था जो उसने ऐसा बर्ताव मुझ से किया?" संन्यासी ने उत्तर दिया—"तुम्हारे और उस व्यापारी के कर्म्मों में बहुतही थोड़ा अन्तर है। मैं अनुमान करता हूँ कि यदि इस समय तुम में भी उसकी सी शक्ति होती तो प्रायः तुम भी वैसाही बर्ताव उसके साथ करते जैसा कि उसने तुम्हारे साथ किया"।

इस पर व्यापारी ने कहा—"महाराज! आप यथार्थ कहते हैं। अब मैं आज से समस्त प्राणियों को समभाव और उदारता से देखने की चेष्टा करूँगा"।

इतनी बातों के अनन्तर गाड़ी में चावल भरकर और पहिया ठीक करके वह चावलवाला व्यापारी, संन्यासी जी को उसी गाड़ी में बिठाकर, बनारस की ओर चला। थोड़ी दूर जाने पर मार्ग में अशरफ़ियों से भरी हुई एक थैली पड़ी मिली। उसे संन्यासी ने यह समझकर कि, वह उसी धनिक व्यापारी की होगी और असावधानता के कारण मार्ग में गिर पड़ी होगी, उठाकर अपने साथी व्यापारी को दिया और कहा कि "इस थैली को लो और बनारस पहुँचने पर अमुक अमुक जगह जाकर, उस धनाढ्य व्यापारी को इसे दे देना, और कहना कि मैं तुम्हारे व्यापार की उन्नति का आकांक्षी हूँ। इस बात का ध्यान रखो कि उसकी उन्नति से तुम्हारी उन्नति होगी। यदि वह तुमसे और कुछ प्रश्न करे तो उसको अमुक स्थान पर मेरे पास भेज देना"।

जब वह धनी व्यापारी बनारस पहुँचा तब उसने देखा कि उसका मित्र, जिसके द्वारा वह व्यापार करना चाहता था, बड़े दुःख में है। धनी व्यापारी के मित्र ने कहा—"मित्र! मैं बड़े कष्ट में हूँ। यहाँ के एक दूसरे व्यापारी ने यह जानकर कि मैंने काशीनरेश के यहाँ कल उत्तम चावल पहुँचाने का ठेका लिया है, नगर भरके चावल ख़रीद लिये हैं। अतः यदि कल, नियत समय तक, मैं चावल न पहुँचा सका तो मैं सदा के लिए बिगड़ जाऊँगा और वह बन जायगा। जब तक एक गाड़ी चावल मुझे न मिले तब तक मेरा चित्त शान्त न होगा"। अपने मित्र के ऐसे वचन सुनकर उस धनी व्यापारी को भी बड़ी चिन्ता हुई। धीरे धीरे वह अपना असबाब रथ से उतारने लगा। असबाब सँभालते समय उसको अशरफ़ियोंवाली थैली न मिली। इस पर उसे बड़ा क्रोध आया। उसने यह निश्चय किया कि उसके सारथी ने उसे चुरा लिया है। इससे उस बेचारे को पकड़कर उसने कोतवाल के हवाले किया। कोतवाल ने उससे पूछा—"तूने थैली ली है?" उसने कहा—"नहीं"। इस पर वह ख़ूब पीटा गया। पीटते समय वह बड़े आर्त्त-स्वर से चिल्लाया—"मैं निर्दोष हूँ, मुझे छोड़ दो"। कोतवालीवाले भला काहे को सुनते हैं। वह तो जानते हैं कि मारे सिद्ध है। इसी तरह वे नित्य चोरों को साह और साहों को चोर बनाया करते हैं। दुःख पड़ने पर किसे नहीं बोध होता? ताड़ना होने से उस सारथी ने सोचा—"यह दण्ड मेरेही दुष्कर्म्मों का फल है। मैंने उस व्यापारी की चावलों से लदी हुई गाड़ी व्यर्थ नीचे उलट दी थी। यह बड़ा अनुचित हुआ। फिर उससे क्षमा भी न माँगी"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने ही में वह चावल वाला व्यापारी भी बनारस पहुँचा, और उस धनवान व्यापारी को खोजकर उसकी अशरफ़ियों वाली थैली उसके हवाले की। जब यह समाचार कोतवाली पहुँचा तब वह निरपराध सारथी छोड़ दिया गया। परन्तु अपने स्वामी से अप्रसन्न होकर उसने उसकी नौकरी छोड़ दी। वह चोरों के एक दलमें मिल गया। चोरों ने उसे ख़ूब मोटा तगड़ा देखकर अपना प्रधान नेता बनाया।

इधर उस चावल के ठेकेदार ने बड़ा अच्छा अवसर पाकर चावलों की पूरी गाड़ी इस चावलवाले व्यापारी से ले लो और उसको ख़ासा मोल दिया। वह धनी व्यापारी अपनी थैली पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उस चावल वाले व्यापारी से संन्यासी का खोज लगाकर शीघ्रही उसके पास दौड़ा आया। संन्यासी ने उस धनिक व्यापारी से मिलने पर कहा—"बच्चा! अपने ही समान सब प्राणियों को समझो। अन्य प्राणियों की सेवा उसी तरह करो जैसे कि तुम अपनी सेवा उनसे कराना चाहते हो। अच्छे अच्छे बीज बोओ, जिनसे तुमको इस लोक और परलोक में सदैव अच्छे अच्छे फल मिलें। इस बात का ध्यान रक्खो कि 'अहं' शब्द माया और अविद्या का मूल है और मनुष्य को अन्धा बना देता है। अविद्या पापों का मूल है। इस संसार में ऐसे बहुत कम मनुष्य हैं जिनको यथार्थ ज्ञान है। यदि नरक से बचना चाहते हो तो 'अहं' का परित्याग करो और इसका ध्यान रखो कि जो दूसरे प्राणी को कष्ट पहुँचाता है वह स्वयं अपनी ही हानि करता है। जो दूसरे प्राणियों की सहायता करता है वह अपनी ही उन्नति का बीज बोता है। जो अविद्या के कारण माया के पाश में बद्ध है वह संसार का सच्चा ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। ऐसे मनुष्य की समझ में आवागमन के तत्त्व नहीं आते और वह मोक्षपद से रहित रह कर नाना प्रकार के जन्म धारण करके कष्ट भोगता है"।

संन्यासी के ऐसे वचन सुनकर उस धनिक व्यापारी ने कहा—"महाराज! आप सच कहते हैं। इस समय से मैं आपके इन अमृत रूपी वाक्यों का प्रतिपालन करने का उद्योग करूँगा। देखिए मैंने आपके साथ थोड़ी सी ही कृपा की कि आपको अपने रथ में बिठाला। उसका परिणाम यह हुआ कि मेरी थैली मिल गई। मेरे मित्रका ठेका भी पूरा हो गया। नहीं तो ये दोनों बातें कैसे होतीं? हम और हमारे मित्र दोनों बरबाद हो जाते। यदि संसार के सब मनुष्य आपके वाक्यों का समर्थन करें तो पाप निर्मूल हो जाय और बहुतों का भला हो। मैं अब अपनी जन्मभूमि कौशाम्बी में एक *विहार स्थापित करूँगा, जिसके द्वारा मैं आशा करता हूँ कि श्री सिद्धार्थ जी के परम लाभदायक उपदेश समस्त संसार में व्याप्त होकर प्राणियों का उद्धार करेंगे"।

बनारस से लौटने पर उस व्यापारी ने अपने वचन का प्रतिपाल किया। उसका स्थापित किया हुआ विहार मनुष्यों को बहुत लाभदायक हुआ।

कुछ समय के उपरान्त गांधार देश के राजा ने इस व्यापारी के रत्नों की प्रशंसा सुनकर इसे एक बहुमूल्य रत्नजड़ित स्वर्णमुकुट निर्माण करने की आज्ञा दी। नियत समय में राजा की आज्ञा पालन करके मुकुट और नाना प्रकार की अन्यान्य वस्तु लेकर वह व्यापारी राजा की भेंट करने चला। मार्ग में उसे चोरों ने घेरा। उनका नेता इसी व्यापारी का भूत-पूर्व सारथी था। चोरों ने उसपर आक्रमण किया और घोर युद्ध के उपरान्त व्यापारी का सारा धन लूट लिया। इस घटना से व्यापारी बहुत दुःखित हुआ। परन्तु बड़ी धीरता से उसने उसे सहन किया। मनही मन वह सोचने लगा—"मैं अपने पूर्व जन्म के कर्म्मों के कारण इस दुर्भाग्य का भोक्ता हुआ हूँ। मैं अपनी युवावस्था में अन्य प्राणियों पर अत्याचार किया करता था। अतः मुझे किसी बात का गिला न करना चाहिए। जो कर्म्म मैंने किये हैं उन्हीं का फल भोग रहा हूँ। मुझे यदि किसी बात को शङ्का है तो वह यही है कि अब मैं अपने स्थापित विहार को वाञ्छित सहायता कैसे करूँगा?" वह व्यापारी, इस प्रकार सोचता हुआ अपने घर वापस आया।

* विहार वह स्थान है जहाँ बौद्ध मत के महन्त रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस घटना के कुछ दिन बाद कौशाम्बी-विहार का एक बौद्ध संन्यासी दैवात् उसी स्थान पर पहुँचा जहाँ यह व्यापारी लूटा गया था। वहाँ चोरों ने जब देखा कि इसके पास कुछ नहीं है, तब इसे बहुत मारा और छोड़ दिया। दूसरे दिन वही संन्यासी उसी मार्ग से होता हुआ विहार को लौटा। वन में बड़ा कोलाहल सुनकर वह एक जगह रुक गया। दूर से देखने से उसे मालूम हुआ कि बहुत से चोर आपस में लड़ रहे हैं। जब चोर वहाँ से चले गये तब धीरे धीरे वह वहाँ आया और देखा कि कई चोर रुधिर में सने हुए भूमि पर विह्वल पड़े हैं। उनमें से एक मरने पर था; और सब मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे। संन्यासी ने उस एक के प्राण बचाने की इच्छा से निकटवर्ती जलाशय से थोड़ा सा जल लाकर उसे दिया। पानी पाते ही उसे कुछ होश आया और वह क्रोधित होकर बोल उठा—"जिन दुष्टों का मैंने पोषण किया, और जिन्होंने मेरे अनुग्रह का ऐसा नीच बदला दिया वे कहाँ हैं?" संन्यासी ने कहा—"अब तुम अपने अन्तिम समय में ऐसी बातें न कहो। किन्तु अपनी आत्मा को शान्ति मार्ग पर ले जाने की चेष्टा करो। मैं तब तक तुम्हारे प्राणों की रक्षा करने का प्रयत्न करता हूँ। चोर ने कहा—"अरे क्या आप वही महानुभाव हैं जिनको कल मैंने मारा था? आज जब मैं अपने परिपालित और परिपोषित दुष्ट साथियों के द्वारा इस दुर्दशा को प्राप्त हुआ हूँ तब आप मेरे ऊपर कृपा करके मेरी सहायता करने आये हैं! महाराज! आपका परिश्रम व्यर्थ है। मैं भली भाँति जानता हूँ, मेरा समय अब आगया है"। संन्यासी ने कहा—"मित्र! यह सब तुम्हारेही कर्म्मों का फल है। यदि तुम अपने साथियों को अच्छी शिक्षा देते तो वे ज़रूर तुम्हारे साथ अच्छा बरताव करते। तुमने जैसा उनको मारना खसोटना सिखलाया वैसाही उन्होंने भी तुम्हारे साथ किया"। चोर बोला—"महाराज! बहुत सत्य है। किन्तु अब मुझे कोई ऐसा उपाय बतलाइए जिसमें मैं अगले जन्म में इन पापों का फलभोक्ता न बनू। मैं अपना इस अन्तिम दशा में देख रहा हूँ कि मेरे दुष्कर्म्म मेरे सम्मुख उपस्थित होकर मुझे दुस्सह वेदना दे रहे हैं"। संन्यासी ने उत्तर दिया—"तुम अपने दुष्कृत कर्म्मों पर ध्यान न दो। उनको भूल जाओ और अपनी आत्मा को निर्मल करके सब प्राणियों को दया का पात्र बनाओ। इससे तुम्हारा कल्याण होगा"।

कुछ काल के उपरान्त जब उस चोर को फिर होश आया तब उसने कहा—"स्वामी! मैंने इस जन्म में नाना प्रकार के अत्याचार किये हैं। भले कर्म्म मैं ने बहुत ही कम किये हैं। तब मैं किस प्रकार अपने दुष्कर्म्मों से उद्धार पा सकता हूँ? मैं अवश्य नरक में जाऊँगा और वहाँ से निकलना असम्भव होगा"। संन्यासी ने कहा—"हाँ, जो कर्म्म तुमने किये हैं उनका फल अवश्य तुमको दूसरे जन्म में भोगना पड़ेगा। उस से तो कदापि छुटकारा नहीं हा सकता। परन्तु डर की कोई बात नहीं है। यदि तुम अब अपने चित्त को सावधान करके अच्छे कर्म्म करने का प्रण करो तो दूसरे जन्म में अवश्य तुमको सुख मिलेगा। मैं अब तुम्हें एक दृष्टान्त सुनाता हूँ, सुनो—

किसी समय तुम्हाराही सा एक कृतघ्न चोर, जिसने बहुतही कम अच्छे कर्म्म किये थे, अपनी अन्तिम दशा को प्राप्त होकर, यह संसार छोड़ अपने कर्म्मों का फल भोगने नरक गया। वहाँ उसे नाना प्रकार के कष्ट सहने पड़े। वे उसके कर्म्मों के फल थे। उनसे वह अति पीड़ित हुआ। उसी समय समस्त संसार के उद्धार के लिए सर्व शक्तिमान् ईश्वर ने शाक्यमुनि गौतम बुद्ध को भेजा। अविद्यातिमिर-नाशक बुद्ध ने आते ही आते अपनी ज्ञान-कौमुदी के निर्मल प्रकाश से उस समस्त अन्धकार को अर्धचन्द्र देकर संसार को सन्मार्ग का दीपक अवलोकन कराया। इस अलौकिक दीपक के तेज ने नरक में भी अपना प्रकाश फैलाया। तब वह व्यथित चोर एक-बारगी चिल्ला उठा और शाक्यमुनि से प्रार्थना करने लगा कि—"महाराज! सब प्राणियों को निर्वाण देने वाले आप मुझपर दया करो। मैं महान् कष्टसागर में निमग्न हूँ। मुझे किसी प्रकार बचाओ। यद्यपि मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई सत्कर्म्म नहीं किये हैं, परन्तु अब मैं दूसरे जन्म में करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। पर यहाँ से निकल नहीं सकता"। मित्र; देखो, कुत्सित कर्म्म सदैव दुखदायी होते हैं। और सत्कर्म्म प्राणियों को मोक्ष-दायक होते हैं। मनुष्य के बोये हुए बीज जन्म जन्मान्तर तक फल देते हैं। सो हे मित्र! जब उस चोर के ऐसे वचन बुद्ध महाराज के कर्णगोचर हुए तब वे शीघ्र उसके पास गये और जाकर उस पापिष्ठ से कहा—"भला तुमने अपने पूर्वजन्म में कभी कोई उपकार किया है, जो इस दशा में तुम्हारी सहा-यता कर सके? जब तक तुम अपने पूर्व कर्म्मों का फल भोगकर अपनी आत्मा को अमल न कर लोगे तब तक तुम्हारा उद्धार न होगा"। यह सुनकर वह चोर विचार करने लगा कि उसने कौन अच्छा कर्म्म किया है। परन्तु उसको एक भी ऐसा कर्म्म स्मरण न आया। तब सर्वज्ञ बुद्ध ने कहा—"तुमने अपने पूर्व जन्म में बस इतनाही सत्कर्म्म किया है कि एक समय तुम्हारे मार्ग में एक मकड़ी पड़ी थी। उस पर तुम्हें दैवात् दया आ गई और तुमने उसको बचा दिया। उस पर पैर नहीं रखा। यही एक तुम्हारा सत्कर्म्म अब इस समय तुम्हारी सहायता कर सकता है"।

इतना कह कर बुद्ध ने कहा—"देखो मुझे तुम पर बड़ी दया आती है। इस कारण मैं तुमको यहाँ से निकालने का प्रयत्न करता हूँ। अच्छा उस लटके हुए मकड़ी के धागे के जाले को पकड़ो और उसकी सहायता से निकल आने का परिश्रम करो"। उसने वैसाही किया। कुछ दूर ऊपर चढ़ने के अनन्तर जो उसने नीचे दृष्टि डाली तो उसने देखा कि और भी बहुत से नरकवासी उसी के पीछे चढ़ते आरहे हैं। इससे वह अति भयभीत होकर चिल्ला उठा—"अरे यह धागा बहुत पतला है। तुम सब इसे छोड़ दो, नहीं यह टूट जायगा। यह मेरे ही निकलने के लिए है। तुम सब इसमें क्यों लटके हुए चले आते हो?" इतना कहना था कि वह धागा तुरंत टूट गया और वह चोर पुनः नरक की कन्दरा में गिर पड़ा"।

यह दृष्टान्त सुनाकर संन्यासी ने कहा—"देखो! 'अहं' का परित्याग न करने के कारण इस प्रकार वह चोर पुनः नरकगामी हुआ। उसको उच्च मार्ग की प्रणाली का बोध नहीं रहा। उच्च मार्ग उसी धागे की तरह है जिसके द्वारा सहस्रों मनुष्य एकबारगी निर्वाण के शिखर पर जा सकते हैं। परन्तु जहाँ 'अहं' भाव उत्पन्न हुआ वहाँ मनुष्य तत्कालही उस से पतित हो जाता है"। यह सुनकर चोर बोला—"योगिराज, आपकी इन शिक्षाओं ने मुझे मेरी इस अन्तिम अवस्था में बहुत लाभ पहुँचाया। मैं अब आप से एक भेद प्रकट करता हूँ। सुनिए। मैं कौशाम्बी में रहने वाले एक धनिक व्यापारी का सारथी था। उसने बनारस में मेरे ऊपर चोरी का व्यर्थ कलंक लगाकर कोतवाल के हवाले कर दिया। कोतवाली से मुक्त होने के बाद मैं यहाँ आकर चोरों के दल में सम्मिलित हुआ। चोरों ने मुझे अपना नेता बनाया। कुछ समय हुआ कि वही मेरा भूत पूर्व-स्वामी इधर से बहुमूल्य पदार्थ लिये जा रहा था। मैंने उस पर बलात् आक्रमण कर सब द्रव्य लूट लिया। अब आप कृपापूर्वक उस धनिक व्यापारी से जाकर यह कहिए कि मैंने उसके अनुचित बर्ताव को क्षमा किया और उसके ऊपर किये गये आक्रमण का उससे क्षमा-काङ्क्षी हूँ। यह भी उसको सूचित कर दीजिएगा कि उसका सब माल अमुक स्थान पर रखा है। वह आकर उसे ले जाय"।

इतना कहकर उसने संन्यासी की गोद में अपना शरीर त्याग दिया। तत्पश्चात् संन्यासी ने कौशाम्बी आकर उस व्यापारी से सब समाचार कह सुनाये। वह अपना सब लुटा हुआ धन उस स्थान से उठा लाया और उसे उपयोगी कार्य्यों में लगाकर संसार को उसने लाभ पहुँचाया। कुछ काल के अनन्तर जब उसका अन्तिम समय उपस्थित हुआ तब उसने अपने पुत्रादिकों को अपने पास बुलाकर यह उपदेश दिया—"मेरे प्यारे पुत्रो! यदि तुम किसी कार्य्य में फलीभूत न हो तो दूसरों को दोष न देना, किन्तु अपनी निष्फलता का कारण अपने ही कर्म्म को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चित करना। यदि तुम अविद्या से मदान्ध न हो जाओगे तो तुमको तुम्हारी निष्फलता का कारण मालूम हो जायगा। कारण विदित होने पर उसके निवारण करने का तुम उद्योग करना, जिसमें तुम्हारे मनोरथ फलीभूत हों। माया के पाशों से सदैव बचे रहना और ध्यान रखना कि मनुष्य ही अपने कर्म्मों का कर्त्ता है, ईश्वर नहीं। मनुष्यही अपने दुष्कर्म्मों के फलों को अपने सुकर्म्मों से अच्छा कर सकता है। यदि तुम मेरे इन वचनों को मानोगे तो अवश्य तुमको मोक्ष मिलेगा"।

पृथ्वीपालसिंह।

श्रीगुरुगोविन्दसिंहजो।

(३)

संवत् १७४५ में दिलहीर (?) ख़ाँ के पुत्र रुशीम (?) ख़ाँ ने हमारे चरित्रनायक पर चढ़ाई की। पर वर्षा ऋतु के कारण उसे हार कर भागना पड़ा। इसके बाद दो हज़ार फ़ौज के साथ दिलहीर ख़ाँ ने अपने पुत्र को पहाड़ी राजाओं से युद्ध करने के लिए भेजा। चूकि हर एक लड़ाई में बारी बारी से हमारे चरित्रनायक ने पहाड़ी राजाओं की सहायता की, इसलिए सब जगह मोग़ल लोगों ही की हार हुई।

औरंगज़ेब ने पंजाब में अधिक गोलमाल देख कर अपने पुत्र मुअज़्ज़म को बहुत सी सेना के साथ, पहाड़ी राजाओं को मटिआमेट करने की आज्ञा देकर, भेजा। इसने पहाड़ी राजाओं को युद्ध में हरा कर उनकी बड़ी दुर्दशा की और सिक्खों को भी उसके सामने सिर नीचा करना पड़ा। जब हमारे चतुर चरित्रनायक ने देखा कि इतनी भारी सेना से सम्मुख युद्ध करके जयलाभ करना कठिन है तब उन्होंने रात के समय एकाएकी सोते हुए मोग़लों पर ऐसा छापा मारा कि वे सब बड़े विकल होगये, और इस एकाएकी आफ़त के आजाने के कारण उनसे कुछ करते धरते न बन पड़ा, और हज़ारों मोग़ल सिक्खों की ज़ालिम तलवार से मारे गये, और शाहज़ादे मुअज़्ज़म ने अपने बचे बचाये साथियों के साथ भाग कर बीस कोस की दूरी पर ख़ेमा गाड़ा। इसी बीच में मुंशी नन्दलाल की मार्फ़त मुअज़्ज़म ने गुरु साहब से सन्धि करली। इन्होंने अपने बनाये हुए "विचित्र नाटक" में यह वृत्तान्त ब्योरेवार लिखा है।

पहले लिखा जा चुका है कि गोविन्दसिंह जी जैसे शूर वीर थे वैसेही विद्या के भी प्रेमी थे। इन्होंने भिन्न भिन्न विद्या के ग्रन्थों का अनुवाद करने के लिए बहुत से पंडितों को नौकर रक्खा था। संवत् १७४७ में इनकी पहिली स्त्री जीतोजी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम ज़ोरावरसिंह रक्खा गया। इसके बाद इसी स्त्री से उन्हें दो पुत्र और भी हुए। इसी की ख़ुशी में गुरु साहब ने एक बड़ा भारी यज्ञ रचा। इन्होंने सब ब्राह्मणों को बुलाकर कहा कि "आप लोगों में से जो कोई इस यज्ञ में मांस भोजन करेगा उसे एक एक अशरफ़ी दक्षिणा दीजायगी।" यह सुन कर बहुत से लालची ब्राह्मणों ने मांस भोजन कर लिया, पर पाँच ब्राह्मण, जो अपने धर्म पर दृढ़ थे, तुरन्त वहाँ से उठ कर चले गये। हमारे धर्मात्मा चरित्रनायक ने उन पाँचों को बुलाकर उन का अच्छा सत्कार किया और उन्हें अपने पास रक्खा, तथा मांस खानेवाले ब्राह्मणों को एक एक अशरफ़ी दे दे कर बिदा किया। इन पाँचों में से एक ने इन्हें दुर्गा की उपासना से वर प्राप्त कर शत्रुओं को दमन करने की सलाह दी। इस पर गुरु गोविन्दसिंह जी बोले कि "मैं तो एक निराकार परमात्मा की उपासना करता हूँ, पर ख़ैर तुम कहते हो तो हिन्दुओं को ख़ुश करने के लिए मैं देवी की पूजा करने को तैयार हूँ। पूजा के सामान में क्या ख़र्च पड़ेगा?" इस पर पण्डितजी ने एक बड़ी भारी फ़िहरिस्त दी जिसमें सब सामान एक लाख रुपये से कम का न था। गोविन्दसिंहजी ने जब ख़ज़ानची को बुलाकर पूछा कि ख़ज़ाने में कितना रुपया है तो वह बोला कि "महाराज सात लाख।" इस पर पण्डितजी महाराज को लालच आगई। उन्होंने कहा कि एक लाख तो केवल पूजा में ख़र्च पड़ेगा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाक़ी एक लाख यज्ञ में भी ख़र्च पड़ेगा जिसके बिना पूजा अधूरीही रहेगी। अस्तु, गुरु साहब ने यह ख़र्चा मंज़ूर कर पूजा करने की आज्ञा दी और तदनुसार पण्डित कालीदासजी ने नयना देवीजी की पूजा और यज्ञ आरम्भ कर दिया। जब वर्ष भर पूजा होते बीत गया, तब हमारे चरित्रनायक ने पण्डितजी से पूछा कि "देवी की पूजा को एक वर्ष होगया, तुम्हारी प्रतिज्ञानुसार अब तक देवी प्रकट क्यों न हुई?" इस पर पण्डितजी बोले कि "देवी किसी कुलीन ब्राह्मण की बलि चाहती है। जब तक उसे बलि से सन्तुष्ट न किया जायगा, तब तक वह प्रसन्न न होगी।" गुरु साहब ने इसके उत्तर में कहा कि "ठीक है, मैं बलि देने को तैयार हूँ। आपसे बढ़कर कुलीन ब्राह्मण देवी के बलि के योग्य कहाँ मिलेगा। अस्तु, अब आप तैयार हो जाइए।" जब इस छली पण्डित ने हमारे चतुर चरित्रनायक की बातें सुनीं तब तो उसके होश उड़ गये और शौच का बहाना कर वहाँ से चलता बना, और फिर भाग कर किसी कन्दरा में जा छिपा कि बहुत कुछ खोज करने पर भी गुरु साहब को उसका कुछ पता न लगा। अस्तु, गोविन्दसिंह जी ने यज्ञ-पूजा समाप्त करने की इच्छा से, जो कुछ सामग्री बच गई थी, सब एकही बार यज्ञकुण्ड में छोड़ दी, जिससे बड़ी ऊँची लाट निकली और बहुत दूर दूर तक उसकी रोशनी फैल गई। भोले भाले लोगों ने इस रोशनी को देखा तो समझे कि यही देवी प्रकट हुई और हमारे चरित्रनायक भी एक नंगी तलवार लेकर घर चले आये। जब लोगों ने उनसे पूछा कि "महाराज, दुर्गा कहाँ है?" तब गोविन्दसिंह ने वही तलवार दिखाकर कहा कि "यही दुर्गा सर्वसंहारिणी है।" गुरु साहब के इस उत्तर से लोगों ने समझा कि दुर्गा ने प्रकट होकर गुरु गोविन्दसिंह को यह तलवार दी है। अस्तु, लोगों में यह बात प्रसिद्ध होगई कि गुरु साहब को सिद्धि प्राप्त हुई और दुर्गा ने प्रकट होकर ख़ुद अपने हाथ से उन्हें एक सर्वसंहारिणी तलवार दी है। इस ख़बर के फैलते ही बहुत से ब्राह्मणों ने इन्हें आ घेरा। अस्तु, इन्होंने उन सबों के साथ चारों वर्णों को नेवता देकर भोजन करवाया। इस पर ब्राह्मणों को बहुत बुरा लगा, पर हमारे चरित्रनायक ने उन्हें बड़ी झिड़की सुनाई और उसी समय उठकर एक कोठरी में चले गये। ऐसा कहते हैं कि उसी कोठरी में गुरु साहब एक वर्ष तक समाधिमग्न रहे और किसी को अपने पास नहीं आने दिया। इस बीच में गुरु साहब को जो भेंट आती थी, उसे कई लोभी चेले हज़म कर जाते थे। जब एक वर्ष बाद हमारे चरित्रनायक समाधि से जागे और अपना सब काम काज सँभाला तब उन्हें विदित हुआ कि कई शिष्यों ने उनकी भेंट हज़म कर ली है। उन्होंने उन सब को निकाल दिया और इसके बाद अपने सिक्खों की दृढ़ता की परीक्षा करने के लिए, एक दर्बार किया। चूँकि अपने सब शिष्यों को उस दर्बार में हाज़िर होने की आज्ञा उन्होंने पहिलेही दे रक्खी थी, इसलिए दूर दूर तक के बहुत से सिक्ख दरबार में हाज़िर हुए। जब पूरा दरबार लग गया तब हमारे चरित्रनायक ने खड़े होकर कहा कि "मेरे प्यारे भाइयो, दुर्गा नित्य मुझसे नर-बलि माँगती है। क्या तुम में से कोई ऐसा भक्त है जो गुरु के लिए अपना सिर दे!" गुरु साहब की यह बात सुनतेही दरबार भर में सन्नाटा छा गया। किसी की हिम्मत न पड़ी कि आगे आकर गुरु के सवाल का जवाब देता। अन्त को लाहोर का रहनेवाला दयासिंह नाम का खत्री उठकर गुरु के सामने आया और कहा कि महाराज, मेरा सिर हाज़िर है। मैं ख़ुशी से दुर्गा के आगे बलि चढ़ने को तैयार हूँ। गुरु साहब इस शिष्य के वचन सुनकर अति सन्तुष्ट हुए और उसे अपने साथ एक ख़ेमे के भीतर लेगये। यह ख़ेमा दर्बार के पिछवाड़े सटा हुआ था। गोविन्दसिंहजी ने उसके भीतर से दरबार के बाहर तक एक पक्की नाली बनवा रक्खी थी, और ख़ेमे के भीतर पाँच बकरे बाँध रक्खे थे। ख़ेमे के भीतर जाकर गुरु साहब ने उस शिष्य को पासही के एक दूसरे ख़ेमे में बिठा दिया और पहले ख़ेमे में आकर नाली पर एक बकरे को खड़ा कर उसका सिर अपनी तलवार से काट दिया और दो तीन चोटें उसके पेट पर भी मारीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे ख़ून की धारा नाली से बह कर बाहर चल निकली। फिर आप भी ख़ून से भरी हुई तलवार लेकर बाहर दरबार में जा खड़े हुए। नाली में ख़ून की धारा और गोविन्दसिंह जी की यह भयंकर मूर्ति देख कर सब लोग काँप गये, पर हमारे चरित्रनायक ने फिर दूसरी बार उसी ख़ूनी तलवार को आगे बढ़ा कर कहा कि "दुर्गा एक बलि से सन्तुष्ट नहीं हुई। अब वह मेरा, अथवा मेरे बदले किसी दूसरे का बलि चाहती है। क्या तुम में से कोई और ऐसा वीर है जो अपने गुरु की प्राणरक्षा के लिए इस फौलादी तलवार के सामने गरदन झुकावे?" इस पर कुछ देर तक तो सन्नाटा रहा, पर फिर एक जाट आगे बढ़ा और पहले की तरह बलिदान चढ़ना स्वीकार किया। उसे भी गुरु साहब ख़ेमे के भीतर लेगये और पहले की तरह दूसरे ख़ेमे में बिठा कर दूसरे बकरे का सिर काट डाला, और फिर नंगी तलवार ले बाहर जा खड़े हुए। इस बार फिर इन्होंने वैसीही बलि की बात कही। इस बार एक कहार इनके साथ भीतर गया। उसके साथ भी पहले की तरह बर्ताव किया गया। फिर बाहर आने पर एक गूजर ने और पाँचवीं बार एक हज्जाम ने सिर देना अंगीकार किया। दोनों भीतर ले जाकर बिठा दिये गये, और अन्तिम बकरे का सिर काट दिया गया। बाहर के सिक्ख लोग गुरु की यह कारवाई देखकर बड़े चकित हुए और बहुतों ने यह समझ कर कि गुरु पागल हो गये हैं अपनी राह नापी।

इसके बाद गोविन्दसिंहजी ने तलवार को धो कर म्यान में रखा। आपने स्नान कर राजसी पोशाक पहिनी तथा उन पाँचों वीरों को भी स्नान कराकर अच्छी अच्छी पोशाक पहिनाई। उन्हें साथ लेकर आप बाहर दरबार में आये। यह देखकर सब लोग दंग रह गये और मन में पछताने लगे कि हाय हमने गुरु के लिए सिर क्यों न दिया। पर "अब पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।" अस्तु उन पाँचों को अपने पीछे खड़ा कर गुरु साहब ने खड़े होकर कहा कि "प्यारे भाइयो, महात्मा श्रीगुरु नानकजी की परीक्षा में लहना नाम का एकही शिष्य पक्का निकला था, परन्तु अकाल पुरुष की कृपा से हमारी कठिन परीक्षा में पाँच वीर उत्तीर्ण हुए हैं। अस्तु, आशा है कि दुष्टों का शीघ्र नाश होगा और सिक्ख धर्म का डंका देश भर में बज जायगा।" इतना कहकर इन्होंने दरबार विसर्जन किया और दूसरे दिन एक आम दरबार लगा कर एक बर्तन में शर्बत भर कर उसे आप प्रसादी करके उसी बर्तन का शर्बत उन पाँचों शिष्यों को पिलाया और उनसे "वाह गुरु की फ़तह" कहलवाया और बोले कि "आज से तुम पाँचों सोढी खत्री हुए। अस्तु तुम अब परस्पर भाई भाई हो। कच्छ (जंघिया) केश, कड़ा (लोहे का हाथ में) और कटार इन चीज़ों को अपने से कभी अलग न करना, स्त्री से संगम न करना, बाल न मुड़वाना, तमाकू न पीना, और सब बुरे कामों से बच कर एक ईश्वर की पूजा उपासना करना। धर्म के नाम पर प्राण देने को सदा तैयार रहना" इत्यादि। हमारे पाठक देखेंगे कि गुरु गोविन्दसिंह समय को कैसा परख कर चलते थे। इनका ऊपर लिखा हुआ उपदेश युद्ध और वीरता के लिए कैसा उपयोगी था। अस्तु इसी समय से सिक्खों में अमृत* चखने की चाल निकली। गुरु गोविन्दसिंह ऐसे चतुर और बुद्धिमान् पुरुष की अधीनता में उनकी दिन पर दिन उन्नति होने लगी। [असमाप्त।

वेणीप्रसाद।

गूँगों और बहरों के स्कूल।

सरस्वती की किसी संख्या में अन्धों के स्कूलों, पुस्तकालयों और उनकी एक विशेष प्रकार की लिपि का हाल प्रकाशित हो चुका है। वह अन्धों की बात हुई। आज गूँगों और बहरों का कुछ हाल सुनिए।

* सिक्खों में जब कोई नया शिष्य होता है तब उसे सात बार शर्बत की अँजली पिलाई जाती है, जिसे अमृत कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो लोग जन्म से ही बज़बहरे होते हैं वे गूँगे भी होते हैं। पर उनके गूँगेपन का यह कारण नहीं कि उनके बोलने की इन्द्रिय नहीं है अथवा उसकी शक्ति जाती रही है। नहीं। बोलने की शक्ति प्रायः उन सब में रहती है। पर उन्हें बोलने का अभ्यास नहीं रहता। जब से वे पैदा होते हैं मनुष्य की वाणी उनके कानों में नहीं जाती और जाती भी है तो कदाचित् कभी कोई बहुतही ऊँची बात। इसीसे वे लोग बोलना नहीं जानते। जो वाणी उनकी कर्णेन्द्रिय में कभी गईही नहीं उसका अभ्यास और ज्ञान उन्हें कैसे हो सकता है? बहरों की बात जाने दीजिए, यदि सुनने की शक्तियुक्त कोई बच्चा पैदा होते ही या महीने दो महीने बाद, किसी ऐसी जगह रख दिया जाय जहाँ उसका पालन-पोषण करनेवालों के मुँह से कभी कोई बात न निकले तो, बड़ा होने पर भी, न वह बोल सकेगा, न औरों की बात समझ सकेगा। हाँ कुछ समय बाद पीछे से चाहे वह भलेही बोलने लगे।

यही बात बहरों की है। उनके कान में मनुष्य की बात न जाने से उन्हें बोलने का अभ्यास नहीं होता। इससे वे बेचारे जन्मभर बहरे तो रहतेही हैं, बहरेपन के कारण गूँगे भी रहते हैं। इस दोष को दूर करने के लिए अमेरिका के विद्वानों ने अजीब तरकीबें निकाली हैं। उन्होंने ऐसे स्कूल खोले हैं जिनमें विशेष करके स्त्रियाँहीं अध्यापिका हैं। वहाँ बच्चों को अध्यापिकाओं की जीभों और होंठों की तरफ़ ध्यान दिलाया जाता है। किसी वर्ण या शब्द का उच्चारण करने में अध्यापिकाओं के होंठ जिस तरह खुलते और बन्द होते हैं और जीभ जिस तरह हिलती डुलती है बच्चों को भी वैसा ही करने की शिक्षा दी जाती है। 'क' 'ख' 'ग' आदि वर्णों की जगह पर अँगरेज़ी के 'A' 'B' 'C' आदि वर्ण इसी तरह सिखलाये जाते हैं। जो आवाज़ ठीक ठीक बच्चों के मुँह से नहीं निकलती उसे निकालने के लिए एक सीधा सादा यन्त्र भी है। जीभ को ठीक ठीक हरकत न होनेहीं से अपेक्षित आवाज़ नहीं निकलती। पर उस यन्त्र से जीभ को यथास्थान कर देने से वह निकलने लगती है। इसी तरह कुछ दिन तक वर्ण-माला और अङ्क उच्चारण करना सिखलाया जाता है।

यह शिक्षा बड़े बड़े आईनों की सहायता से दी जाती है। बच्चे क्लासों में बँटे रहते हैं। कोई 'क' क्लास में, कोई 'ख' क्लास में, कोई 'ग' क्लास में। एक एक क्लास को अलग अलग शिक्षा दी जाती है। अध्यापिका एक आईने के सामने जाती है और एक बच्चे को अपने साथ लेती है। वहाँ वह 'क' उच्चारण करती है। उस समय उसके मुँह की जो आकृति होती है उसे बच्चा आईने में ध्यान से देखता है और उसकी नक़ल करता है। नक़ल करने में यदि उससे भूल होती है तो अध्यापिका उसे दुरुस्त करती जाती है और आवश्यकता होने से यन्त्र को भी जीभ में लगाती है। इस तरह क्रम क्रम से "क" क्लास के सब बच्चों को शिक्षा दी जाती है। जब वे "क" उच्चारण में दक्ष हो जाते हैं तब "ख" क्लास में चढ़ाये जाते हैं। इसी तरह उनकी तरक्क़ी होती जाती है और वर्णों और अङ्कों का उच्चारण सिखलाया जाता है।

गूँगे-बहरों के स्कूल में जाने से, सुनते हैं, बड़ा आनन्द आता है। मालूम होता है कोई तमाशा हो रहा है। अध्यापिका बड़े धीर गंभीर भाव से बातें करती है और बच्चे उसकी बातें समझते हैं और जो कुछ वह कहती वही करते हैं। जहाँ ज़रूरत होती है, वे बोलते भी जाते हैं। उनकी आवाज़ में सिर्फ़ इतनाहीं भेद होता है कि वह कुछ फैली सी होती है। इन स्कूलों के शिक्षाक्रम को देखकर देखनेवालों को बड़ा आश्चर्य्य होता है।

सैकड़ों तरह के खिलौने इन स्कूलों में जमा रहते हैं। जिन चीज़ों और जिन जानवरों को हम लोग रोज़ देखते हैं खिलौनों के रूप में वे स्कूल में रक्खे रहते हैं। उनसे बच्चों को शिक्षा दी जाती है। जब वे वर्णमाला सीख चुकते हैं तब वस्तु-परिज्ञान कराया जाता है। अध्यापिका कुत्ते के आकार का खिलौना हाथ में लेती है और मुँह से कहती है "कु—त्ता"। बहरे लड़के लड़कियाँ उसके मुँह के आकार को देखकर उसकी नक़ल करते हैं और धीरे धीरे "कुत्ता"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना सीख जाते हैं। तब उन्हें बोर्ड पर शिक्षा दी जाती है। उन्हें अक्षर लिखना पहलेही सिखलाया जाता है। अर्थात् जैसे जैसे वे मुँह से वर्णोच्चारण करना सीखते जाते हैं वैसे ही वैसे बोर्ड पर उन्हें वे वे वर्ण लिखना भी सिखला दिया जाता है। वस्तु-परिज्ञान करने में भी उन्हें लिखना सीखना पड़ता है। खिलौने के रूप में जब वे किसी चीज़ को पहचान जाते हैं और उसका नाम उच्चारण करलेने लगते हैं तब उस नाम में जो वर्ण होते हैं वे उनसे बोर्ड पर लिखाये जाते हैं। इस तरह धीरे धीरे उन्हें प्रायः सभी व्यावहारिक चीज़ों का ज्ञान हो जाता है और उनके नाम भी वे लिख लेने लगते हैं।

इसके बाद वाक्य लिखाने की बारी आती है। छोटे छोटे जुमले लिखना उन्हें सिखलाया जाता है। कल्पना कीजिए, एक रूमाल बच्चे के हाथ में दिया गया। अब तक उसे मालूम हो गया है कि कपड़े के इस तरह के छोटे छोटे टुकड़े "रूमाल" कहलाते हैं। फिर एक और बच्चा बुलाया गया। तब पहले से इशारे से कहा गया कि इस रूमाल को दूसरे बच्चे के हाथ में डाल दो। जब उसने डाल दिया तब पहले के हाथ से दूसरे के हाथ पर रूमाल जाने को क्रिया का नाम बतलाया गया "देना"। इसके बाद अध्यापिका ने बतलाया कि इस सारे क्रिया-कलाप का मतलब हुआ—"मैंने रूमाल दिया"। यह वाक्य बच्चों से बोड पर लिखाया गया और सारी क्लास से वह उच्चारण भी कराया गया और बोर्ड पर लिखाया भी गया।

वाक्य लिखना और उच्चारण करना आजाने पर नित्य के व्यवहार की और भी बातें उन्हें धीरे धीरे सिखलाई जाती हैं और साथ ही व्याकरण का भी बोध कराया जाता है। इस तरह चित्रों से, खिलौनों से, रंगों से, क्रियाओं से, बड़ी युक्ति और धीरज के साथ पहले तीन चार वर्ष गूँगे और बहरे लड़कों को बोलना, और साथही साथ लिखना पढ़ना भी सिखलाया जाता है। पहले पहल शिक्षा का क्रम बहुतही सीधा सादा होता है। ऐसी ही बातें बच्चों को सिखलाई जाती हैं जो हर वक्त उनके देखने में आती हैं। जितने वाक्य उन्हें सिखलाये जाते हैं सब सरल होते हैं। उन्हें बच्चे लिखना भी सीखते हैं और उच्चारण करना भी। इस तरह चारही पाँच वर्ष की शिक्षा से वे मतलब भर को बोल भी लेने लगते हैं और दूसरों को बोलते देख उनकी मुखाकृति से उनकी बातों का मतलब भी समझ लेते हैं। वे चुने हुए सैकड़ों वाक्य लिख भी लेते हैं और सहल सहल किताबें भी पढ़ लेते हैं। जो किताबें गूँगे बच्चों के लिए तैयार की जाती हैं उनमें उलट पुलटकर प्रायः वही शब्द और वही वाक्य होते हैं जिन्हें वे पहले याद कर चुकते हैं।

इसके बाद वह समय आता है जब बच्चों को इतिहास, भूगोल, अङ्कगणित और वैज्ञानिक विषय सिखलाये जाते हैं। इन सब विषयों के सिखलाने की ऐसी अच्छी तरकीबें निकाली गई हैं कि गूँगे और बहरे लड़के आसानी से उन्हें समझ सकते हैं। बच्चों के बोलने और पढ़ने की तरफ़ अधिक ध्यान दिया जाता है। क्योंकि इसकी सब से अधिक ज़रूरत समझी जाती है। इस तरह कुछ समय तक और अभ्यास जारी रहने से लड़के आपही आप अपने मनोभाव प्रकट कर लेने लगते हैं और दूसरों की बातें समझ लेने में उन्हें कुछ भी कठिनता नहीं होती। जब वे इस अवस्था को पहुँच जाते हैं तब उनकी शिक्षा सफल समझी जाती है।

गूँगे और बहरे लड़कों को लिखना, पढ़ना और बोलना ही नहीं सिखलाया जाता, किन्तु जीविकोपार्जन के पेशे भी सिखलाये जाते हैं। लड़कियों को लकड़ी पर नक्काशी के काम करना, चित्र बनाना, सीना-पिरोना और खाना पकाना सिखलाया जाता है। लड़कों को दरज़ी का काम, बेल बूटे बनाने का काम, किताबें छापने का काम, तसवीर खींचने का काम—ऐसे ही और भी कितनेहीं उपयोगी काम सिखलाये जाते हैं।

गूँगे और बहरे लड़कों की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त होने पर वे प्रायः उसी तरह लिख, पढ़ और बोल सकते हैं जैसे और आदमी। उनको और साधारण आदमियों की बोली में बहुतही कम अन्तर मालूम होता है। इस तरह शिक्षाप्राप्त लड़के ऊँचे दरजे के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कूलों और कालेजों में भरती होकर उच्च शिक्षा भी प्राप्त कर सकते हैं। शिक्षा-समाप्ति के बाद वे बड़े बड़े काम करते हैं। समाज में उनका बड़ा आदर होता है।

देखिए, प्रकृति जिन बातों से गूँगों और बहरों को वञ्चित करना चाहती है उन्हीं को मनुष्य अपनी विद्या, बुद्धि और मेहनत से उन्हें प्राप्त करा देता है।

पुस्तक-परीक्षा।

बृहद्वंशावली। लेखक पण्डित नारायणप्रसाद मिश्र। प्रकाशक, हरिप्रसाद भगीरथजी, बम्बई। यह कान्य-कुब्जों की वंशावली है। उत्तम है। बहुत खोज से लिखी गई है। मर्य्यादा और सहभोज्यता के विषयों का शास्त्रोक्त विचार किया गया है। लेखक प्राचीन प्रथाओं के अन्ध-भक्त नहीं मालूम होते। आपने जो कुछ लिखा है खूब सोच समझ कर, जाँच पड़ताल के बाद, लिखा है। संस्कृत के जिन ग्रन्थों से प्रमाण उद्धृत किये गये हैं उनके नाम भी यदि दिये गये होते तो अच्छा होता। वंशावलीकार ने पुस्तक के अन्त में हमारे "कान्यकुब्ज-लीलामृत" और "मांसाहारी को हंटर" को भी स्थान दिया है; पर पिछली कविता लिखते समय आप लेखक का नाम देना भूल गये हैं।

⁂

जम्भदेव-चरित्रभानु। विष्णोई मत के आचार्य्य श्रीजम्भ-देवजी का जीवन-चरित है। स्वामी ब्रह्मानन्दजी, काँट, मुरादाबाद, ने लिखा है। वही १४ आने को बेचते हैं। विष्णोई मतवाले कर्म्म और ज्ञान ही को मोक्षदाता समझते हैं। मूर्त्तिपूजा के विरोधी, पर अग्निपूजा के पक्षपाती, होते हैं। इसी मत के प्रवर्तक जम्भदेवजी का यह चरित है। इसमें उनकी अनेक अलौकिक बातों का भी वर्णन है। ये बहलोल और सिकन्दर लोधी के समय में हुए हैं। ⁂

बुन्देलखण्ड-केसरी। श्रीयुक्त कुँवर कन्हैयाजू लिखित। बाबू माधवप्रसाद, पुस्तक-कार्य्यालय, धर्म-कूप बनारस से प्राप्य। दाम ६ आने। यह महाराज छत्रसाल के जीवन-चरित का पहला भाग है। अच्छी पुस्तक है। हिन्दी में जीवन-चरितों की बहुत कमी है। इससे इस विषय की जितनी ही पुस्तकें निकलें उतना ही अच्छा। इसमें छत्रसाल के जीवन की अनेक घटनाओं का वर्णन है। चरित अभी अपूर्ण है। भाषा और लिपि में कहीं कहीं त्रुटियाँ रह गई हैं। चरित का प्रत्येक अंश एक एक अध्याय में अलग अलग लिखा जाता तो अच्छा होता।

⁂

प्लेग का संक्षिप्त वर्णन। श्रीयुक्त परशुराम कृष्णाजी वैद्य, असिस्टण्ट मास्टर, माधव-कालेज, उज्जैन ने इस छोटी सी पुस्तक में प्लेग की उत्पत्ति, लक्षण और चिकित्सा का थोड़े में अच्छा वर्णन किया है। महाराजा सेंधिया ने इसे अपनी रियासत में, एक "हिदायात" के साथ, मुफ़्त बाँटा है।

⁂

पञ्चाङ्ग, जंत्री आदि। पण्डित चम्मनलाल, ज्योतिषी, रम्माल देहली ने सं० १९६४ के पञ्चाङ्ग, जंत्री, नौरोज़ आदि भेजे हैं। पञ्चाङ्ग स्वदेशी काग़ज़ पर बड़े बड़े अक्षरों में है और जंत्री इत्यादि उर्दू में। सब चीज़ें काम की हैं। ⁂

पञ्चाङ्ग। इस संवत् १९६४ के पञ्चाङ्ग को बापूदेव शास्त्री के शिष्यों ने बनाया और पण्डित चन्द्रदेव ने प्रकाशित किया है। बाबू माताप्रसाद, काग़ज़ी, काशी, के यहाँ मिलता है। टाइप में छपा है। उत्तम है।

मनोरञ्जक श्लोक।

धूर्तेषु मायाविषु दुर्जनेषु स्वार्थैकनिष्ठेषु विमानितेषु।
वर्तेत यः साधुतया स लोके प्रातार्य्यते मुग्धमतिर्न केन?

जो धूर्त है, जो मायावी है, जो दुर्जन है, जो स्वार्थरत है, जो विमानित है, उसके साथ जो आदमी भलमंसी का व्यवहार करता है उस मूढ़ की इस संसार में कौन नहीं प्रतारणा करता? कौन नहीं उसे धोखा देता? कहाँ नहीं उसका छल होता? धूर्तों से सद् व्यवहार! कभी नहीं। उनके साथ तो "शाठ्यं सदा दुर्जने" का व्यवहार ही मुनासिब है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

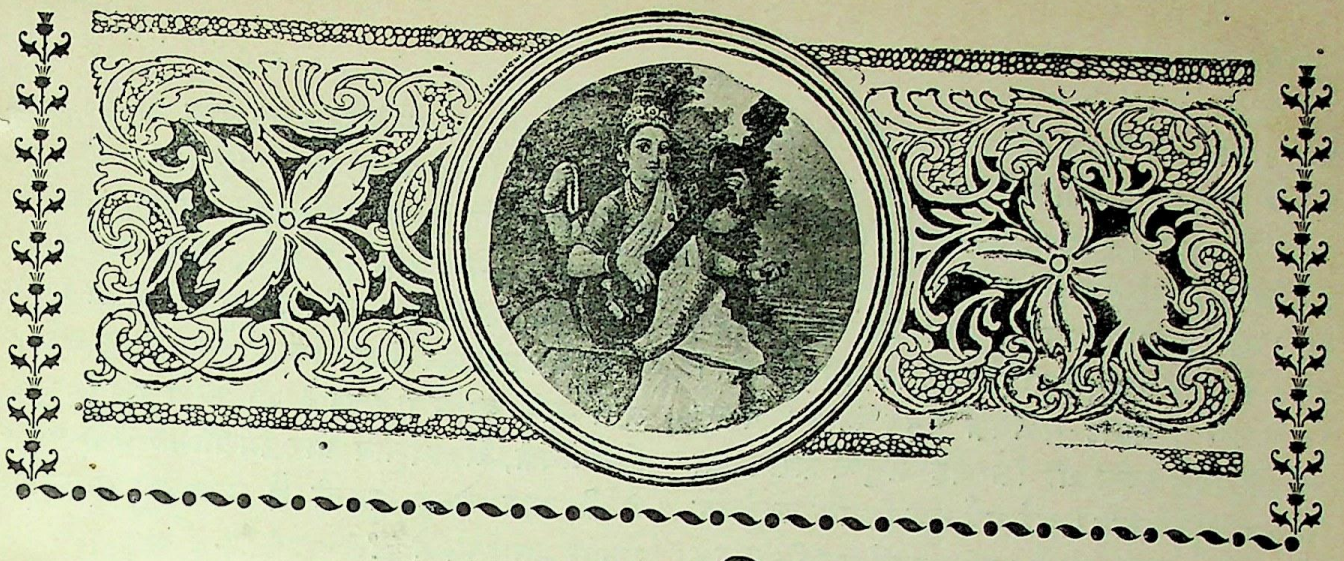

सरस्वती।

भाग ८] नवम्बर, १९०७ [संख्या ११

विविध विषय।

हिन्दुस्तान के कर्ता, धर्ता, विधाता "सेक्रेटरी आव स्टेट" कहलाते हैं। इस पद पर आजकल मार्ले साहब हैं। आपका एक कौंसिल लन्दन में है। उसा की सलाह से आप सब काम किया करते हैं। अब आपने कृपा करके इस कौंसिल में दो हिन्दुस्तानी भी रखने का क़ानून बनवा दिया है। इन दो में से एक मिस्टर के० जी० गुप्त हुए हैं, दूसरे मिस्टर बिलग्रामी। अर्थात् एक हिन्दू, एक मुसलमान। के० जी० गुप्त महाशय बंगाली हैं। बहुत पुराने सिविलियन हैं। बंगाल के आबकारी महकमे के कमिश्नर रह चुके हैं। सुनते हैं यदि आप हिन्दुस्तानी न होते तो अब तक लफ़्टिनेंट गवर्नर होगये होते। मिस्टर बिलग्रामी का पूरा नाम है नवाब सैयद हुसैन बिलग्रामी, बी० ए०, ख़ान बहादुर, इमादुलमुल्क। आप निज़ाम हैदराबाद के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर थे। अब शायद आपने पेंशन ले ली है। आपकी विद्वत्ता की बड़ी तारीफ़ हो रही है। पर आज तक आपके भाई साहब की तारीफ़ तो बहुत सुनी गई थी, आपकी नहीं। जब मार्ले साहब ने आपको अपना सलाहकार बनाया है तब आप ज़रूर उस पद की यथेष्ट योग्यता रखते होंगे। आज हम इन दोनों हिन्दुस्तानी सलाहकारों के चित्र पाठकों को भेंट करते हैं।

* * *

नये नियमों के अनुसार इन दो भारतवर्षीय सज्जनों के सिवा सर जेम्स लटूश भी सेक्रेटरी आव स्टेट को कौंसिल के सभासद बनाये गये हैं। आपको भारत से विलायत गये अभी कुछही दिन हुए। आप इन प्रान्तों के छोटे लाट थे, सो पाठक जानतेही होंगे। सुनते हैं आप फ़ारसी अच्छी जानते हैं। अतएव मुसलमान भाइयों को ख़ुश होना चाहिए। आपका भी चित्र इस संख्या में दिया जाता है।

* * *

इन दिनों श्रीमती कमलाकर नाम की एक सुशिक्षिता हिन्दु स्त्री ने बड़ी नामवरी हासिल की है। जब वह केवल ११ वर्ष की थी तब उसने मराठी की सबसे बड़ी परीक्षा पास कर ली थी। ९ वर्ष की अवस्था से उसको थोड़ी थोड़ी अँगरेज़ी पढ़ाई जाने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब उसके माता पिता ने देखा कि लड़की बुद्धिमती है तब उन्होंने उसे पूना में हिन्दुबालिकाओं के हाई-स्कूल में पढ़ने भेज दिया, जहाँ से उसने मैट्रिक्युलेशन अर्थात् एन्ट्रेन्स की परीक्षा पास की। इससे पहले ही उसका विवाह हो चुका था। परीक्षा पास करने के थोड़े ही दिन बाद उसके एक लड़का हुआ। इससे उसकी पढ़ाई में विघ्न पड़ने लगा। परन्तु उसको प्रबल इच्छा थी कि वह मनुष्य-शरीर का सविस्तर हाल जाने। कई वर्ष तक विचार करने पर भी वह कुछ स्थिर न कर सकी। यहाँ तक कि उसके दूसरा बच्चा हुआ और गृहस्थी का झंझट बढ़ गया। पर जब किसी न किसी प्रकार बम्बई के मेडिकल कालेज में दाख़िल होकर उसने प्रथम परीक्षा पास भी की तब वह इतनी बीमार हो गई कि डाक्टरों ने उसको किसी गरम जगह जाने की सलाह दी। उसने मद्रास में रहने का इरादा किया और अपने पति की तबदीली मद्रास में कराने के लिए बम्बई की गवर्नमेंट को लिखा जो बहुत मुश्किल से मंज़ूर हुई। तब वह मद्रास के मेडिकल कालेज में दाख़िल होने की फ़िक्र करने लगी। पर यहाँ एक और कठिनाई पेश हुई। मद्रास के विश्वविद्यालय ने यह नियम कर दिया कि मेडिकल कालेज में वही दाख़िल हो सकता है जो एफ़० ए० पास हो। इस पर उस बेचारी को बड़ा ही दुःख हुआ; पर उसने अपना हौसला कमज़ोर न होने दिया। दो बच्चों की माँ होने पर भी दो ही वर्ष में उसने एफ़० ए० पास कर लिया तब मेडिकल कालेज में पढ़ने के लिए उसे वज़ीफ़ा मिलने लगा। पाँच वर्ष में उसने एल० एम० एस० की पदवी (Diploma) पाई और केमिस्ट्री (रसायनशास्त्र) इत्यादि कठिन विषयों में उसे सब छात्रों से अधिक नम्बर मिले। जितने दिनों तक वह पढ़ती रही घर-गृहस्थी का काम एक दिन भी नहीं छोड़ा। पति और बच्चों की सेवा करना, भोजन इत्यादि का प्रबन्ध करना और जब सब लोग सो जायँ तब एकान्त में बैठकर पढ़ना। स्त्री-अध्यवसाय का यह एक अद्भुत उदाहरण है। एल० एम० एस० की परीक्षा उसने इसी वर्ष पास की है। अब वह इँगलैंड (विलायत) इस निमित्त जा रही है कि वहाँ स्त्रियों और बच्चों के रोगों का विशेष अध्ययन करके अपनी मातृभूमि की सेवा करने लायक़ हो जाय। पाठक विचार करें कि क्या ऐसे प्रान्त में भी श्रीमती कमलाकर ऐसी स्त्रियाँ पैदा हो सकती हैं जहाँ परदे का रवाज हो? जो स्त्रियाँ दृढ़-निश्चय, दीर्घ-प्रयत्न, अध्यवसाय और विद्याभिरुचि में पुरुषों के भी कान कतर सकती हैं उन्हें क्या अशिक्षित रखना मुनासिब है*?

* * *

हमारे देश में एक तो लिखने पढ़ने का शौक़ लोगों को कम है। यदि किसी को है भी तो अपनी भाषा में उपयोगी लेख और पुस्तकें लिखने की तरफ़ लोगों की बहुत ही कम प्रवृत्ति होती है। यदि कोई भूला भटका इस रास्ते लग भी जाता है तो बेचारे को अर्थ-कृच्छ्रता हमेशाही सताया करती है। गवर्नमेंट यदि उनकी मदद न करे तो कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं। हमारे राजे, महाराजे, तअल्लुक़ेदार, ज़मींदार, राय बहादुर, सरदार बहादुर भी उनकी ख़बर नहीं रखते, यह अवश्य आश्चर्य्य की बात है। इँगलैंड के साहित्यसेवियों की स्थिति यहाँवालों की अपेक्षा हज़ार गुना अधिक अच्छी है। तिस पर भी वहाँ की गवर्नमेंट उनको पेंशन देती है। गत जुलाई में कितने ही सम्पादकों, ग्रन्थकारों और कवियों को पेंशन का हुक्म हुआ है। दर्शनशास्त्र, प्राणिशास्त्र, इतिहास, चित्रविद्या, पुरातत्त्वविद्या आदि पर ही ग्रन्थ लिखनेवालों पर गवर्नमेंट ने कृपा नहीं की। ओइदा नाम की एक वृद्धा उपन्यास-लेखिका और दो स्त्री-कवियों को भी पेन्शन दी है। लन्दन के प्रसिद्ध अख़बार "पञ्च" के भूतपूर्व सम्पादक सर एफ़० सी० बरनंड को भी गवर्नमेंट नहीं भूली। उन्हें ३००० रुपये साल की पेन्शिन मिली है। फिर भला इँगलैंड में क्यों न विद्या-वृद्धि हो? क्यों न उत्त-

* यह नोट पण्डित रामनारायण मिश्र, बी० ए०, का भेजा हुआ है। सं० स०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रोत्तम ग्रन्थ बनें ? हमारे देश की गवर्नमेंट का इस तरफ़ कम ध्यान है। रहे और लोग सो उनका अजब हाल है। सरस्वती में प्रसिद्ध पुरुषों के जीवन-चरित हमेशा ही छपते हैं। एक दफ़े हमने एक पृथ्वीपति महाशय का चरित छापा। सुनते हैं आपने उसे बहुत ही नापसन्द किया। कहने लगे, इसमें हमारी ख़ुशामद है! आपको ख़याल हुआ होगा कि ख़ुशामद करके यह हमसे कुछ पाने की इच्छा रखता है। मुराको के सुलतान अब्दुल अज़ीज़, फ़ारस के शाह, लार्ड मिंटो, सर कैम्बल बैनरमैन, मिस्टर मार्ले, जनरल कुरोपाटकिन, मारकुइस ईटो आदि के चरित जो हमने लिखे हैं, कुछ पाने ही के इरादे से लिखे हैं! कविवर लछीराम, सुखदेव मिश्र, पण्डित मथुराप्रसाद मिश्र, विष्णु कृष्ण शास्त्री चिपलूनकर, वामन शिवराम आपटे, हर्बर्ट स्पेन्सर, न्यूटन, महारानी लक्ष्मीबाई, महाराज मानसिंह, महात्मा रामकृष्ण परमहंस आदि के चरित जो हमने लिखे हैं सो इनकी आत्मायें परलोक से हमारे नाम दर्शनी हुंडी भेज देंगी!!! इस संख्या में जो एक बाल-ब्रह्मचारी का चरित हमने प्रकाशित किया है उसके बदले ब्रह्मचारी जी शायद हमें अपना "दण्ड-कमण्डलु" भेजने की कृपा करें! बड़ी मुश्किल है, जो हम गुणवानों के सद्गुणों की प्रशंसा करें तो ख़ुशामद ठहरे, और जो कहीं इनके एक आध भीतरी रहस्य खोल कर लिख दिये जायँ तो क्या आप जानते हैं ये चुप बैठें ? ख़ुशी की बात है, इस तरह की समझ रखनेवाले कुछ ही कमला-कान्त पुरुष हैं, सब नहीं।

एक दफ़े एक कवि कर्नाटक के किसी राजा के पास गया। राजा वज्र लोभी था। उसने कवि की कविता सुनने में कुछ विरक्तता दिखाई, इस पर वह कवि कहता है—

मा गाः प्रत्युपकारकातरधिया वैमुख्यमाकर्णय
हे कर्णाटवसुन्धराधिप सुधासिक्तानि सूक्तानि मे।
वर्ण्यन्ते कति नाम नार्णवनदीभूगोलविन्ध्याटवी-
झंझामारुतचन्द्रमाः प्रभृतयस्तेभ्यः किमाप्तं मया ?

हे कर्नाट-नरेश! इसे कुछ देना पड़ेगा, इस बात से घबरा कर आप मुझसे विमुख न हूजिए। सुधा से सींची हुई मेरी उक्तियाँ आप सुन भर लीजिए। आप दीजिएगा कुछ नहीं। मैं जो समुद्र, नदी, भूगोल, विन्ध्याचल, आँधी, चन्द्रमा, आदि का वर्णन किया करता हूँ, सो क्या इनसे भी मुझे कुछ मिला है ?

हमारी भी इन उदाराशय महात्माओंसे यही प्रार्थना है। ३ रुपये साल ख़र्च करके जो सरस्वती मोल लेने तक की कृपा नहीं करते उनसे कोई कुछ पाने की क्या उम्मेद कर सकता है ? हमारी तो आन्तरिक इच्छा यह है कि यदि वे सरस्वती पढ़ना चाहें तो हम योंहीं उन्हें भेजा करें। किसी तरह उसे पढ़ लेने की तो कृपा करें। हम इसी को ग़नीमत समझेंगे—

वसु यच्छतु वा न वा नरेशो,
यदि कर्णेऽपि च भारतीं करोति।

* * *

फ़्रांस ने जो लड़ाकू-व्योमयान (ग़ुब्बारे) बनाये हैं उनका हाल सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। अब ख़बर आई है कि जर्मनी ने भी वैसे ही यान बना लिये। इन ख़बरों ने दुनिया के राजमंडल में तहलका सा डाल दिया है। जब ये व्योमयान आकाश में उड़ते हुए, गोले बरसावेंगे तब उनकी आग से किसी का भी परित्राण न हो सकेगा। लड़ाई के समय अब फ़ौजों का छिपना असम्भव हो जायगा। कोई फ़ौज अपनी जगह पर स्थिर होकर न लड़ सकेगी। बड़े बड़े शहर और जहाज़ी बेड़े पल में विध्वस्त हो सकेंगे। हर देश के राजाधिकारी अपनी अपनी सरहदों की निगरानी करते रहते हैं। यह निगरानी अब व्यर्थ हो जायगी। ग़ैर मुल्क में जाने के लिए पास लेनी पड़ती है। अब ऐसी पासें रद्दी समझी जायँगी। मकानों, महलों और क़िलों की दीवारें ऊँची होने ही से आजकल उनके भीतर की चीज़ें रक्षित समझी जाती हैं। परन्तु जब ये व्योमयान उड़ने लगेंगे तब ऊँची से भी ऊँची दीवारें उनका अन्दर उतरना रोक न सकेंगी!

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमेरिका में एक और भी बहुत पुराने जीव की ठठरी ज़मीन में गड़ी हुई मिली है। कोई ८० लाख वर्ष हुए जब यह प्राणी अमेरिका की बड़ी बड़ी नदियों और झीलों में रहता था!!! यह जलचर था। उस समय जल की बहुत अधिकता थी। इससे जल-जन्तुओं ही की विशेषता थी। १८९९ ईसवी में डाक्टर मैथ्यू ने इसकी ठठरी एक खान के भीतर से खोद निकाली। कुछ हड्डियाँ टूटी फूटी दशा में निकलीं, कुल अच्छी दशा में। ये सब हड्डियाँ यथास्थान जड़ दी गई हैं और प्राणिविद्या-विशारदों ने इसका एक नमूना भी तैयार कर लिया है। इसका नाम रक्खा गया है डिपलोडोकस! यह अपनी जीवित दशा में ६० से ७० फ़ीट तक लम्बा था! उँचाई में यह हाथी से भी बड़ा था। इसकी गरदन २० फ़ीट और पूँछ ३० फ़ीट लम्बी थी। पूँछ बड़ीही भयङ्कर थी। तैरने में वह पतवार का काम देती थी और ज़मीन पर शत्रुओं पर प्रहार करने का। उस पर ऐसे तेज़ काँटे थे कि उसके एकही प्रहार से बड़े से भी बड़े जानवर ज़ख्मी होकर ज़मीन पर गिर जाते रहे होंगे। पूँछ के सहारे यह प्राणी अपने चारों पैरों के बल, गरदन उठाकर, खड़ा हो जाता था और पानी के किनारे उगे हुए ऊचे से भी ऊचे पेड़ों की पत्ती खाता था। यह मांसभक्षी न था। पानी में और किनारे पर जो घास-पात और फूल-पत्ती मिलती थी उसी पर यह अपना गुज़ारा करता था। और अंगों को देखते इसका सिर बहुतही छोटा, अर्थात् केवल २ फ़ीट, लंबा था। पैर भी बहुत लंबे न थे—कोई १० फ़ीट से अधिक न रहे होंगे। इसके सारे शरीर का वज़न कोई ३७५ मन था! इसकी ठठरी जर्मनी ने ले ली है। वहाँ के फ़्रैंकफ़र्ट नगर के अजायब घर में वह रक्खी जायगी। शीघ्रही उसे सर्वसाधारण को दिखाने की रस्म अदा की जायगी। उस समय जर्मन-नरेश भी उपस्थित रहेंगे।

* * *

सरस्वती में कलकत्ते की कालकोठरी (Black Hole) की कहानी प्रकाशित हो चुकी है। कितने ही लेखकों ने इस कहानी को कोरी कहानीही सिद्ध किया है। उनकी राय है कि यह बिलकुलही मिथ्या है। "सिराजुद्दौला" नाम की बँगला पुस्तक के लेखक ने इसके मिथ्यात्व के प्रमाण भी ख़ूब दिये हैं। पर एच० ई० ए० काटन साहब ने "स्टेट्स्मैन" अख़बार में इस मिथ्यात्व का प्रतिवाद किया है। उन्होंने विलायत के एक गिरिजाघर में लूशिङ्गटन नाम के एक साहब की यादगार देखी है। उस पर एक शिलालेख है, जिसमें लिखा है कि लूशिङ्गटन कालकोठरी से ज़िंदा निकले हुए २३ आदमियों में से एक थे। १७६३ में यह साहब पटना में फिर क़ैद किये गये और नवाब "क़ासिम अली कॉन" के हुक्म से मारे गये। इसी के आधार पर काटन साहब कहते हैं कि कालकोठरी की बात सच है। यदि सच न होती तो लूशिङ्गटन साहब की यादगार पर उसका ज़िक्र न आता। इस "कालकोठरी" वाली बात के प्रधान प्रचारक हालवेल साहब हैं। उनके चरित की आलोचना "सिराजुद्दौला" के लेखक ने बड़ी योग्यता से की है। यदि वे सब बातें मान ली जायँ तो कालकोठरी का मिथ्यात्व भी मानने में कोई बाधा नहीं आसकती। क्या लूशिङ्गटन या और किसी के हाथ का लिखा कोई प्रमाण विलायत में मिला है कि हम कालकोठरी में क़ैद किये गये थे? अथवा, जब लूशिङ्गटन साहब के मारे जाने की ख़बर विलायत पहुँची तब हालवेल साहब के लेख से ही इसका पता मिला कि यह साहब कालकोठरी में भी क़ैद किये गये थे? कालकोठरी के मिथ्यात्व के पक्षपाती इस तरह के अनेक प्रश्न कर सकते हैं।

* * *

कुमारी कोल्टन के नाम से शायद हमारे अँगरेज़ी जाननेवाले पाठक परिचित होंगे। आप अमेरिका-निवासिनी हैं। आपकी गणना वहाँ की ६ प्रसिद्ध स्त्रियों में है। आपका पूरा नाम कुमारी एलीज़ावेथ एस० कोल्टन (Elizabeth S. Colton) है। आप चालीस भाषायें जानती हैं जिनमें "पाली" भी है। कुछ समय हुआ कि आपने बर्लिन नगर में कई विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिये थे जिनके कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपका वहाँ पर बहुत नाम हुआ है। आज कल आप भारतवर्ष में पधारी हैं। आपका विचार है कि यहाँ के मतमतान्तरों को भली भाँति खोज करें और साथ ही पूर्वीय भाषाओं का अध्ययन भी करें। आपने भारत में पधारने के पहले यहाँ की भाषाओं का बहुत कुछ ज्ञान स्वदेश में प्राप्त कर लिया है। आपने येल-विश्वविद्यालय के अध्यापक सेण्डरस से बहुत सी पुरानी भाषायें सीखीं और वहीं पर हेब्यू, अरबी और आसीरिया की भाषाओं की पाठ्य-पुस्तकें समाप्त कर डालीं। फिर आपने रैडक्लिफ़ कालेज में प्रवेश किया और वहाँ अध्यापक लाँगमैन से संस्कृत अध्ययन किया। आप ११ वर्ष तक लन्दन की पुरातत्त्वसम्बन्धी (Biblical) सभा की मेम्बर रह चुकी हैं और अमेरिका की प्राच्य (Oriental) सोसायटी की भी मेम्बर हैं। कुमारी कोल्टन का विचार है कि स्वदेश को लौट जाने पर वहाँ के सर्वसाधारण के सम्मुख भारतवासिओं के मतमतान्तर पर, जिनके गूढ़ तत्त्वों ने आजकल दुनिया के सब निवासियों को चकित कर दिया है, अपनी राय प्रकट करें। आजकल (सितम्बर ०७ में) आप ज्वर से पीड़ित हैं। अमेरिका लौटने के पूर्व आपकी इच्छा भारतवासियों को विद्वत्तापूर्ण कुछ व्याख्यान सुनाने की है। चालीस भाषाओं का जानना कठिन काम है। हमारे देश में यदि किसी पुरुष ने तीन चार भाषायें भी सीख लीं, तो समझते हैं कि मानों हमने कोई लोक जीत लिया। स्त्रियों का तो कहनाही क्या है। यदि सहस्रों में एक या दो पढ़ गईं तो बड़ी बात है। विद्वानों का मत है कि मनुष्य बारह या तेरह भाषायें तो सीख सकता है, किन्तु ४० भाषाओं का जानना दुष्कर काम है*।

* * *

अवध के तअल्लुक़ेदार राजा पृथ्वीपालसिंह के लेख सरस्वती में छप चुके हैं। राजा रामपालसिंहजी की तरह आपको भी हिन्दी से बड़ा प्रेम है। "ईस्ट ऐण्ड वेस्ट" और "हिन्दुस्तान रिव्यू" आदि में आप अँगरेज़ी में भी कभी कभी लिखा करते हैं। आपने अपने राज्य का सारा काम हिन्दी भाषा और देवनागरी अक्षरों में कर दिया है। उर्दू को उठा दिया है। आपका मातृभाषाप्रेम प्रशंसनीय है। पाठकों को सुनकर शायद आश्चर्य्य होगा, पर बात सच है, कि महाराजा सेन्धिया अब अपने परिचित राजे महाराजों से बहुधा हिन्दी ही में पत्रव्यवहार करते हैं। ये सब शुभ लक्षण हैं। औरों को भी इन बातों का अनुकरण करना चाहिए। परन्तु, हिन्दी के लेखक और उन्नायक कहलानेवाले कुछ सज्जनों की विचित्र गति है। वे घरेलू चिट्ठियाँ लिखने में भी अँगरेज़ी का पिण्ड नहीं छोड़ते। अँगरेज़ी जाननेवाले इनके मित्रों में से यदि कोई इन्हें हिन्दी में चिट्ठी लिख देता है तो भी आप उसका उत्तर अँगरेज़ी ही में फटकारते हैं। जिनको अपनी माँ की भाषा से प्रेम नहीं, उन्हें अपनी अपढ़ माँ, अपने कंगाल देश, अपनी बेढँगी देशवस्तुओं पर कितना प्रेम होसकता है, इसका अनुमान करना कठिन नहीं।

* * *

गत सितम्बर में इंडियन प्रेस, प्रयाग, ने एक अच्छी उपयोगी पुस्तक प्रकाशित की है। उसका नाम है—

"अर्थशास्त्र-प्रवेशिका"।

इसे पं० गणेशदत्त पाठक ने लिखा है। इसका मूल्य चार आने है। इसमें "अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त" बतलाये गये हैं। सम्पत्तिशास्त्र पर हिन्दी में यह पहली पुस्तक है। इस शास्त्र के सिद्धान्तों को पाठक महाशय ने बड़ी उत्तमता से समझाया है। यह विषय हिन्दी-वालों के लिए बिलकुल नया है। अतएव हिन्दी के प्रेमियों को चाहिए कि इसे अवश्य पढ़ें। इस शास्त्र के विचार को इस समय बड़ी ज़रूरत है। इस सम्बन्ध के कुछ लेख सरस्वती में निकल भी चुके हैं। पाठकजी की पुस्तक प्रकाशित होने के कई महीने पहलेही से हम भी एक पुस्तक इस विषय की लिख रहे हैं। नाम उसका होगा "सम्पत्तिशास्त्र"। पुस्तक बड़ी होगी। यथासम्भव हम उसे शीघ्र ही समाप्त करने की चेष्टा में हैं। समाप्त होने पर देखें वह कब छपकर प्रकाशित होती है।

* * *

* यह नोट श्रीयुक्त बाबूलाल पण्डित का भेजा हुआ है। स०सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे किसी समय इन प्रान्तों में अनेक दोषों से दूषित हिन्दी की "रीडर्स" प्रचलित थीं, वैसी ही आजकल मध्यप्रदेश की दशा है। वहाँ की वर्तमान रीडर्स की आलोचना गत सितम्बर की "इंडियन एजुकेशन" नामक अँगरेज़ी मासिक पुस्तक में "नागर" नामक किसी सज्जन ने बड़ी ही योग्यता और मार्मिकता से की है। समालोचना में यह सिद्ध किया गया है कि न इन पुस्तकों का विषय ही अच्छा है, न भाषा ही अच्छी है। चित्र और छपाई आदि भी अच्छी नहीं। ऐसी बुरी पुस्तकों का प्रचार जितना शीघ्र बन्द कर दिया जाय उतना ही अच्छा।

शोक-संवाद।

२० सितम्बर ०७ के श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार में पढ़ा कि १८ सितम्बर को "भारतमित्र" के सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त का देहली में शरीरान्त होगया। इस हृदयदाही समाचार को सुनकर बड़ा दुःख हुआ। बाबू बालमुकुन्दजी हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखकों में थे। उनके न रहने से हिन्दी की बहुत बड़ी हानि हुई। हम बाबू साहब के शोकसन्तप्त कुटुम्बियों से हार्दिक समवेदना प्रकाशित करते हैं। ईश्वर उन्हें यह दुःसहनीय दुःख सहने की शक्ति दे। यदि गुप्तजी के मित्रों में से कोई सज्जन उनका चरित भेजने की कृपा करें तो हम उसे कृतज्ञता-ज्ञापन-पूर्वक प्रकाशित करें।

बाल-ब्रह्मचारी शङ्करानन्द शास्त्री।

भारत वर्ष में बौद्ध-मत के उच्छेदकर्ता शङ्कराचार्य्य के चरितावलम्बी ग्रन्थों में लिखा है कि जब वे दो वर्ष के थे तभी लिख पढ़ लेने लगे थे। तीन वर्ष की उम्र में तो काव्य, कोश और पुराण आदि में उनकी गति हो गई थी, और बिना बतलाये ही उनका अर्थ वे समझ जाते थे। इतनी छोटी उम्र में जो श्लोक या शास्त्रीय बात वे एक दफ़े सुन लेते थे, उन्हें कण्ठाग्र हो जाती थी। पाँच वर्ष की उम्र में उनका उपनयन हुआ। इसके अनन्तर वर्ष ही छ महीने में शङ्कराचार्य्य वेद, वेदाङ्ग और सब शास्त्रों का पूर्णज्ञान सम्पादन करके व्यास अथवा वाचस्पति के समान विद्वान् हो गये।

६ वर्ष के बालक की ऐसी विद्वत्ता का वृत्तान्त सुनकर किसी किसी को आश्चर्य्य नहीं, अविश्वास तक हो सकता है। ऐसे लोगों के अविश्वास को दूर करनेहीं के लिए मानों ग्वालियर में एक नये शङ्कर का प्रादुर्भाव हुआ है।

ज़िला बदायूं के रहने वाले बाबू तोताराम ग्वालियर के न्याय-विभाग में एक कर्म्मचारी हैं। कोई १८ वष से आप इस महकमे में काम करते हैं। आप कायस्थ हैं। परन्तु सुनते हैं आप अपने वंशजों से कुछ भी सम्पर्क नहीं रखते। आपका आचरण बहुत ही पवित्र है। पूजनपाठ में आपकी बड़ी रुचि है। आप आर्य्यसमाज के नियमानुयायी हैं। ईश्वर में अनन्य भक्ति-भाव रखते हैं। कोई तीन वर्ष से अन्नातिरिक्त पदार्थ सेवन करके ही आप शरीर-रक्षा कर रहे हैं।

कार्तिक शुक्ल द्वितीया गुरुवार, संवत् १९५० को ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत नरवर नगर में आप के एक पुत्र हुआ। उस दिन नवम्बर, १८९३ ईसवी, की ९ तारीख़ थी। उसका नाम रक्खा गया शङ्कर। माँ के दूध न निकलने के कारण बच्चे का पालन बकरी और गाय के दूध से ही हुआ। बालक शङ्कर दो ही वर्ष का था कि उसकी माता का शरीर छूट गया। तब से वह पिता ही के निरीक्षण में रहा। पिताही ने उसका लालन-पालन किया। पिताही ने माता के भी फ़र्ज़ अदा किये। जब तक माता जीती रही, रामायण की चौपाइयाँ सुना सुनाकर बच्चे को खेलाती, सुलाती और हँसाती रही।

तीसरे ही वर्ष बालक-शङ्कर की रुचि विद्याभ्यास की तरफ़ हुई। कुछ श्लोक कंठ हो गये। कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्माओं की कथायें कंठ हो गईं। गिनती भी याद हो गई। यह सब शङ्कर के पिता की कृपा का फल था। इतनी छोटी उम्र में ही बालक को अपने पिता से पुस्तकें और अख़बार सुनने का शौक़ पैदा हो गया।

पाँच वर्ष की उम्र में शङ्कर को अक्षराभ्यास कराया गया। कोई वर्ष ही डेढ़ वर्ष में चाणक्य-नीतिदर्पण, आर्य्योद्देश्यरत्नमाला और प्रश्नोत्तरमणि-रत्नमाला आदि संस्कृत की छोटी छोटी पुस्तकें मुखस्थ हो गईं, और हिन्दी लिखने पढ़ने में भी अभ्यास हो गया। पिता को सन्ध्या करते देख, सन्ध्या भी बालक-शङ्कर नियमपूर्वक करने लगा।

उस समय लाला मुंशीराम का गुरुकुल कांगड़ी में स्थापित न हुआ था। वे उसकी स्थापना की फ़िक्र में थे—चन्दा इकट्ठा कर रहे थे। इसी समय शङ्कर के पिता ने एक व्याख्यान हिन्दी में लिखा। व्याख्यान क्या, एक ख़ासी पुस्तक है। उसे शङ्कर ने साद्यन्त कण्ठ कर लिया। तब पिता-पुत्र लाहौर गये। वहाँ लाला मुंशीरामजी का गुरुकुल के चन्दे के बारे में व्याख्यान हुआ। उनके व्याख्यान के पहले शङ्कर ने अपने पिता द्वारा विरचित व्याख्यान को अपनी मधु-मयी वाणी से मुखाग्र सुनाया। व्याख्यान का शेषांश सुनने लायक़ है—

"अस्तु मैं अत्यन्त दीनता के साथ अपने पूर्वोक्त परिश्रम और सच्चे उत्साह की भेंट लिये हुए आप सब धर्म्मज्ञ महात्माओं से ब्रह्मचर्य्य-भिक्षा माँगता हूँ। कृपया संसार को सुखधाम बना सकनेवाले गुरुकुल-प्रबन्धार्थ यथाशक्ति भिक्षा-प्रदान कीजिए। कृपया सर्वसुख-मूल सनातन-शिक्षा के प्रचारार्थ यथाशक्ति भिक्षा-प्रदान कीजिए। कृपया परमपराक्रमों के मूल ब्रह्मचर्य्य-प्रबन्धार्थ यथाशक्ति भिक्षा-प्रदान कीजिए। कृपया सत्यधर्म्मप्रतिपादक ऋषि-महर्षियों के ऐसे शुभाचरण सीखने के अर्थ यथाशक्ति भिक्षा-प्रदान कीजिए। जिसमें मुझ धर्म्मप्रार्थी का मानभंग न हो, और जिसमें हम सब दयापात्र बालकों का जन्म सफल हो, एतदर्थ कृपया यथाशक्ति भिक्षा-प्रदान कीजिए। और इस सत्य वाक्य पर पूर्ण विश्वास रखिए—

परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम्।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदस्तु पदे पदे॥"

बालक की इस भिक्षाप्रार्थना का श्रोताओं पर बड़ा असर हुआ। शङ्कर की ललित, कोमल और स्पष्टवक्तृता ने सब को मुग्ध कर दिया। इतनी छोटी उम्र में ऐसा शुद्ध उच्चारण सुनकर लोग स्तम्भित हो गये।

कांगड़ी-गुरुकुल की स्थापना में देरी देख शङ्कर के पिता ने शङ्कर को सिकन्दराबाद के गुरुकुल में भरती करा दिया। तब से ब्रह्मचर्य्य-पालन-पूर्वक शङ्कर का विद्याभ्यास नियमानुसार शुरू हुआ। बहुत जल्द अष्टाध्यायी और धातुपाठ आदि कण्ठ करके शङ्कर ने, काँगड़ी में गुरुकुल खुलतेही, वहाँ की प्रवेशिका परीक्षा पास की और वहीं विद्याभ्यास का क्रम शुरू किया। डेढ़ वर्ष तक शङ्कर की स्थिति वहाँ रही। तदनन्तर किसी कारण से गुरुकुल छोड़ना पड़ा। वहाँ से शङ्कर-ब्रह्मचारी गुजराँवाला पधारे और कोई वर्ष डेढ़ वर्ष अँगरेज़ी का अभ्यास करके बहुत कुछ योग्यता प्राप्त कर ली। परन्तु वहाँ संस्कृत-शिक्षा का ठीक प्रबन्ध न होने के कारण शङ्कर को फिर अपने पिता के पास ग्वालियर लौट आना पड़ा। ग्वालियर में शङ्कर ने फिर संस्कृताध्ययन आरंभ किया और काशिका आदि ग्रन्थ पढ़ डाले। इसके बाद कई एक सज्जनों के अनुरोध से शङ्कर के पिता ने पुत्र को फिर सिकन्दराबाद के गुरुकुल में भेज दिया। वहाँ शङ्कर ने नवाह्निक भाष्य अच्छी तरह पढ़ा। परन्तु सिकन्दराबाद के गुरु-कुल की दशा अच्छी न होने के कारण शङ्कर को उसे छोड़ आना पड़ा। फिर आप पिता के पास ग्वालियर आये।

इस समय पंजाब को शास्त्री-परीक्षा के सिर्फ़ चार महीने रह गये थे। शङ्कर ने सुना कि अगले साल से पंजाब ही के विद्यार्थी वहाँ की शास्त्री परीक्षा दे सकेंगे, और कहीं के नहीं। इससे शङ्करजी ग्वालियर के लश्कर कालेज में भरती हो गये और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर में भी एक शास्त्री से परीक्षा की पुस्तकें पढ़ते रहे। फल यह हुआ कि आपने १३ वर्ष और कुछ महीनेहीं की उम्र में पंजाब की शास्त्री-परीक्षा पास कर ली! सब ३४ विद्यार्थी इस परीक्षा में पास हुए। उनमें शङ्कर का इक्कीसवाँ नम्बर आया। परीक्षा में पास हो जाने पर आपने सरस्वती में प्रकाशित किये जाने के लिए एक नोट, दिवाकर शर्म्मा के नाम से लिखकर, हमारे पास भेजा। इस लेख का कुछ अंश सुनिए—"आपने गत वर्ष नवम्बर में सुना कि अब शास्त्री-परीक्षा पंजाब प्रान्तों को छोड़कर और किसी स्थान से न हुआ करेगी। यह सुनते ही आप में अग्निरूपी तेज उत्पन्न हो गया। उस समय तक आपने थोड़े से महाभाष्य के देखने के सिवाय और एक भी ग्रन्थ शास्त्री-परीक्षा का न देखा था। परन्तु तब भी आपने दृढ़ प्रण किया कि मैं इस वर्ष ही शास्त्री-परीक्षा दूँगा। आपने अनियत विषयों में से भी कठिनतर विषय न्याय ले डाला। परन्तु देखिए तो सही इस ब्रह्मचारी की हिम्मत कि ४-५ मास के ही भीतर न्याय विषय को लेते हुए भी, इतनी छोटी आयु में, आपने शास्त्री-परीक्षा पास की"।

देखिए इस बालक-शास्त्री ने कैसी अच्छी हिन्दी लिखी है। ग्वालियर में सरस्वती के कितनेही प्रेमी विद्यमान, हैं पर अफ़सोस की बात है, किसी ने एक सतर भी लिखकर हमें न भेजी कि इस बालक ने एक ऐसा काम किया है जो आजतक किसी ने न किया था। यदि कोई और लिख भेजता तो क्यों शङ्करानन्द को ख़ुद ही शास्त्री-परीक्षा पास करने के समाचार भेजने पड़ते? बड़े बड़े दिग्गज पण्डित अपनी तारीफ़ के भूखे घूमा करते हैं। बड़े बड़े विद्वान् बहुधा इसी फ़िक्र में रहते हैं कि किस तरह उनका नाम हो। जब बूढ़ों का यह हाल है तब बच्चों की यथार्थ प्रशंसा करके उन्हें उत्तेजना देने की कितनी ज़रूरत है, यह पाठक स्वयं ही समझ देखें। अतएव हमें अपने विषय की सूचना देने के लिए, हम बालक-शास्त्री शङ्करानन्द को बहुत बहुत धन्यवाद देते हैं और उनकी इस कृति का हृदय से अभिनन्दन करते हैं। यदि वे सङ्कोच में आकर, अपना हाल हमें न लिखते तो बड़ी हानि होती। कैसे सरस्वती के पाठकों को मालूम होता कि अपने देश के बालक भी वेद, वेदाङ्ग और न्याय शास्त्र ऐसे क्लिष्ट विषयों में पारदर्शिता प्राप्त कर सकते हैं? कैसे मालूम होता कि योग्य शिक्षा और ईश्वरी कृपा के प्रभाव से यहाँ अब भी प्रति-शङ्कराचार्य्य पैदा हो सकते हैं? कैसे मालूम होता कि संस्कृत-विद्या किसी जाति-विशेष के इजारे में नहीं?

शास्त्री-परीक्षा के प्रश्नों को देखकर आश्चर्य्य होता है कि किस तरह इस बालक ने उसे पास किया। वेद, वेदान्त, व्याकरण, धर्म्मशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र, न्याय, वैशेषिक आदि विषयों के परचे इस परीक्षा में आते हैं। संस्कृत का अनुवाद हिन्दी में और हिन्दी का संस्कृत में कराया जाता है। मज़मून भी संस्कृत में लिखाया जाता है। शङ्करानन्द में तो एक और विशेषता यह है कि आप अँगरेज़ी भी जानते हैं—अँगरेज़ी बोल भी सकते हैं, लिख भी सकते हैं। हमें दो एक पत्र आपने अँगरेज़ी में लिखे हैं और कई एक संस्कृत में। संस्कृत का तो कहनाही क्या है, अँगरेज़ी भी आपकी बुरी नहीं। प्रवेशिका परीक्षा में पास हुए इस समय के कितने ही लड़कों की अँगरेज़ी से आप की अँगरेज़ी अच्छी है। यदि उम्र की क़ैद न होती तो आप अब तक अँगरेज़ी की प्रवेशिका-परीक्षा भी दे चुके होते। इस समय आप कलकत्ता-विश्वविद्यालय की काव्यतीर्थ-परीक्षा देने की तैयारी में हैं। आपके विषय में विक्टोरिया कालेज, ग्वालियर, के अध्यक्ष (प्रिंसिपल) ने हमें लिखा है—

"Shankaranand is the son of Munshi Tota Ram, a clerk in the Judicial Department of the Gwalior State. He is a Kayastha and an Arya Samajist. From the beginning Munshi Tota Ram has taken cares to educate his son properly. His age, at present, is 13 years and 9 months, being born in November, 1893. * * * In the recent Shastri Examination of the Punjab University he stood 21st in the list of successful candidates. He knows English

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

too and can express himself in that language. His father has enjoined him to live as a Bramhachari and he obeys his father to the very letter."

यह चिट्ठी १९ अगस्त ०७ की है। इसमें प्रिंसिपल साहब कहते हैं कि शङ्करानन्द की उम्र इस समय १३ वर्ष ९ महीने की है। शास्त्री-परीक्षा में पास हुए विद्यार्थियों में शङ्करानन्द का इक्कीसवाँ नम्बर रहा। वे अँगरेज़ी में भी बातचीत कर सकते हैं और पिता के आज्ञानुसार ब्रह्मचारी की तरह रहते हैं। इसमें एक बिन्दु-विसर्ग का भी फ़र्क़ नहीं पड़ने पाता!

शङ्करानन्द की दिनचर्य्या जो हमारे पास आई है उसमें लिखा है कि आप रोज़ यथासमय सन्ध्या, हवन, ओंकारध्यान, गायत्रीजप, प्राणायाम का अभ्यास और वेदपाठ भी करते हैं। कोई अभक्ष्य वस्तु नहीं खाते। व्यायाम करते हैं और घूमने भी जाते हैं। सुबह तीन चार बजे के क़रीब उठते हैं। सात आठ घंटे रोज़ अध्ययन करते हैं। और रात को १० बजे के क़रीब सो जाते हैं।

सरस्वती की पिछली संख्या में एक नोट छपा है। उसमें लिखा है कि एन० वीनर नाम का एक विद्यार्थी ११ वर्ष की उम्र में कालेज में भरती हुआ है और १४ वर्ष में उसके बी० ए० पास कर लेने की आशा है। पर यहाँ हमारे शङ्कर शास्त्री १३ ही वर्ष में संस्कृत के एम० ए० हो गये! सच तो यह है कि यदि शिक्षा का उचित प्रबन्ध हो तो विद्योपार्जन में कोई देश भारत वर्ष की बराबरी नहीं कर सकता। रायबरेली ज़िले में हमारे जन्मग्राम के पास एक गाँव चहोतर है। उसमें पण्डित शिवसेवक जी का चार-पाँच वर्ष का एक लड़का श्रीमद्भागवत आदि के न मालूम कितने श्लोक कण्ठ सुनाता है। "तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं" आदि श्लोकों को उसके मुँह से सुनकर तबीयत ख़ुश हो जाती है। परन्तु अभी तक वह यह नहीं जानता कि 'क' कैसा होता है। एक ही दो दफ़े सुन लेने से उसे बड़े बड़े श्लोक याद हो जाते हैं। इसे ईश्वरी विभूति समझना चाहिए।

हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह इस बाल-ब्रह्मचारी शङ्करानन्द को दीर्घायु करे और वयस्क होने पर विशेष कीर्तिकारी कार्य्यों के करने की शक्ति प्रदान करे।

रामलीला।

शिवशङ्कर को सिरनाय समाज सुधारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ टेक॥

कौशल्या ने घनश्याम राम जन्माये।
केकय-तनया ने भरत भागवत जाये॥
सौमित्र युगल शत्रुघ्न लखन कहलाये।
सुत वेदचतुष्टयरूप भूप ने पाये॥
ऐसे बेटों को क्यों न कहैं फल चारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ १॥

रघुराज-रजायसु पाय बाण धनु धारे।
मुनि साथ राम अभिराम सबन्धु सिधारे॥
गुरु कौशिक से गुण सीख सामरिक सारे।
मख मङ्गल-मूल रखाय असुर संहारे॥
यों बाल वीर बलवान खलों को मारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ २॥

मुनि साथ चले रघुनाथ लखन धनुधारी।
पहुँचे मिथिलापुर-तीर अहल्या तारी॥
ब्याही अजगव को तोड़ विदेह-कुमारी।
कर भृगुपति का परितोष बने भट भारी॥
करिये विवाह इस भाँति कुलीन कुमारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ३॥

सीता रघुवर घर रहे प्रेमरस पीते।
सब के निशिदिन सानन्द समङ्गल बीते॥
सोचा नृप ने यदि मिटें न मन के चीते।
तो राम होय युवराज हमारे जीते॥
यों प्रिय सुत का कल्याण प्रवीण बिचारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ४॥

अभिषेक विषय सुन सचिव सुमिन्न उदासी।
सब की सम्मति मिल फली कल्पलतिकासी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोली कैकेयी सुमिर करकसा दासी।
पिय भरत होय युवराज राम वनवासी॥
कुटिला तरुणी पर प्रेम न रसिक पसारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ५॥

नागिन बन कर डस गई कठोर कहानी।
समझाई हाहा खाय न मानी रानी॥
निज प्राणहारिणी व्याधि राउ ने जानी।
वर देकर डूबे शोक-सिन्धु में दानी॥
यों घेर घनी घरनी न धनी घर जारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ६॥

सुन राम पिता के बोध विरुद्ध वचन को।
कर हर्ष-विषाद-विहीन अचञ्चल मन को॥
सब से मिल धर मुनिवेष धर्मपालन को।
वैदेही-बन्धु-समेत सिधारे वन को॥
यों मात पिता पर धाम धरा धन वारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ७॥

राते तमसा तक अवध-निवासी आये।
साते सब को तज राम सुजान सिधाये॥
गुह से मिल रात बिताय न्हाय फल खाये।
रथ-सहित पिता के पास सुमन्त पठाये॥
यों अविचल मन को मोह-सिन्धु से तारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ८॥

सुर-सरिता-तीर नवीन विरक्त पधारे।
पग धोय धनुक* ने पार तुरन्त उतारे॥
पहुँचे प्रयाग व्रतशील सुरों के प्यारे।
मुनि भरद्वाज ने प्रेमसहित सत्कारे॥
इस भाँति अतिथि पर साधु सनेह पसारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ९॥

मुनि के शिष्यों ने सुगम गैल बतलाई।
रवितनया को तर सीय-सहित दोऊ भाई॥
कविकुलगुरु से मिल रात समोद बिताई।
चल चित्रकूट पर जाय रहे रघुराई॥
इस भाँति सहो सब कष्ट न हिम्मत हारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ १०॥

* धनुक = केवट।

रीता रथ लाये लौट सुमन्त नगर में।
सुनते ही हाहाकार मचा घर घर में॥
राजा दशरथ का राग रहा रघुवर में।
उड़ गया जीव-खग टिका न तन-पंजर में॥
यों मरना नहीं गुरुत्व गमाय गमारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ११॥

रविकुलगुरु ने शत्रुघ्न-भरत बुलवाये।
नरमेधस मन्त्र कराय बहुत समझाये।
सुन सकल कथा सिर पीट पीट पछताये।
पर धन-धरणी का लोभ न मन में लाये॥
यों अनधिकार की ओर न वीर निहारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ १२॥

पुर देख भरत, रिपुदमन अधीर दुखारी।
महतारी पर कर कोप मन्थरा मारी॥
सिय राम लखन की लगन ध्यान में धारी।
चल दिये विपिन को संग भीर ले भारी॥
यों वैर फूट को बार बार फटकारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ १३॥

टिक शृङ्गवेरपुर जाय त्रिवेणी न्हाये।
कालिन्दी को तर चित्रकूट पर आये॥
प्रभु पाहि पाहि यों वचन विनीत सुनाये।
सुन जानकीश उठ उभय बन्धु उर लाये॥
भाई इस भाँति मिलो न विलास बिसारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ १४॥

मिल भेट यथोचित बैठ गये भज हर को।
पितु-मरण-कथा सुन शोक हुआ रघुवर को॥
समझाये सब ने राम न लौटे घर को।
ले गये पादुका भरत निरास नगर को॥
यों धीर वीर प्रण तजो न, पूरा पारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ १५॥

फोड़ी जयन्त की आँख चले फिर आगे।
लड़कर विराध ने प्राण गर्त में त्यागे॥
मग में मुनि मिले अनेक प्रेम-रस पागे।
सुख पञ्चवटी पर पाय अधिक अनुरागे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यों असुरों को वध, काज सुरों के सारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ॥ १६ ॥

फल शूर्पणखा ने कुटिल प्रेम का पाया।
खल-दल खरदूषण-सहित समस्त कटाया ॥
उस नकटी का मुख देख दशानन आया।
मारीच नीच को कपट-कुरङ्ग बनाया ॥
यों कुलटा के कापट्य-कपाट उघारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ॥ १७ ॥

ले गया राम को दूर थका मृग अति का।
'हा लखन' कहा पर काल न रुका कुमति का ॥
सिय ने भेजे सौमित्र ध्यान धर पति का।
रह गई अकेली द्वार खोल दुरगति का ॥
यों होनहार का हाय कुदृश्य निहारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ॥ १८ ॥

रावण छलबल का पाय अमोघ सहारा।
सीता को रथ में डाल निशङ्क सिधारा ॥
मारग में प्रतिभट गृद्धराज को मारा।
रखलो लङ्का में लाय राम की दारा ॥
ऐसे अधर्मों को धीर-वीर धिक्कारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ॥ १९ ॥

चिन्तातुर सानुज राम विरह के मारे।
चहुँ ओर कुटी के धीर विसार पुकारे ॥
गिरि-गह्वर, कानन-कुंज, कछार निहारे।
पर मिली न सीता खोज खोज कर हारे ॥
इस भाँति वियोग-समुद्र सराग मझारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ॥ २० ॥

मग में मिलाप कर मृतक जटायु जलाया।
दण्डक बन छोड़ा काट कबन्ध गिराया ॥
शबरी से मिलकर चले वसन्त न भाया।
पम्पा सर देखा ऋष्यमूक गिरि पाया ॥
यों उपकारी पर करुण कृतज्ञ बगारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ॥ २१ ॥

रघुनाथ लखन को देख कीश घबराये।
बोला सुकण्ठ क्या सुभट बालि के आये ॥
वन विप्र मिले हनुमान पीठ धर लाये।
वानर-वर ने नर परख सुमित्र बनाये ॥
छल छोड़ करो इस भाँति मित्रता यारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ॥ २२ ॥

लड़ते लड़ते सुग्रीव बालि से हारा।
शर मार राम ने शत्रु मित्र का मारा ॥
फिर अङ्गद को अपनाय मनाई तारा।
हरि-पुङ्गव किया कपीश मिला दी दारा ॥
जब तब ऐसा भी गूढ़ महत्त्व बगारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ॥ २३ ॥

कपिनायक ने सब कीश भालु बुलवाये।
सीता की सुधि को देश विदेश पठाये ॥
दलबल समेत हनुमान समोद सिधाये।
दक्षिण-सागर लों खोज लगाते आये ॥
यों राज-भक्ति के साथ स्वयश विस्तारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ॥ २४ ॥

सब कहैं जानकी का न खोज कुछ पाया।
सम्पाती ने पर पाय पता बतलाया ॥
उछला समुद्र को लाँघ प्रभञ्जन-जाया।
लङ्कागढ़ में घुस गया क्षुद्र कर काया ॥
यों योग-सिद्धि लघिमादि प्रयोग प्रचारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ॥ २५ ॥

सीता का राम-वियोग-विषाद घटाया।
लङ्का में आग लगाय दर्प दिखलाया ॥
मुदरी को देकर माँग शिरोमणि लाया ॥
मर्कट-दल-सहित सुकण्ठ नगर में आया।
यों राज-दण्ड के चरण-सरोज पखारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ॥ २६ ॥

कपि ने मणि देकर सकल कथा समझाई।
सुधि सीता की इस भाँति रामने पाई ॥
सेना लङ्का की ओर तुरन्त बढ़ाई।
उतरे सागर के तीर देव रघुराई ॥
यों दुखिया को कर कोटि उपाय उबारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ॥ २७ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावण ने मारी लात सुमन्त्र न माना।
चल दिया विभीषण बन्धु कालवश जाना॥
तज धाम धरा धन मान बढ़ाय बिराना।
आमिला राम से पाय पुनीत ठिकाना॥
इस विधि सिर से भयभार न भीरु उतारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ २८॥

पुल बाँध सिन्धु का पार गये दल सारे।
उतरे सुवेल पर राम सबन्धु सुखारे॥
अङ्गद ने जाकर कहा दशानन प्यारे।
अब तो सीता को छोड़ दैव के मारे॥
यों अरि को भी उपदेश करो सरदारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ २९॥

सुन बालि-तनय की बात न ठग ने मानी।
छलबल-पावक पर पड़ा न परहित-पानी॥
रिपु रावण की अनरीति राम ने जानी।
तत्काल उठे कर कोप लड़ाई ठानी॥
यों कुटिल भटों को घेर घेर संहारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ३०॥

चेती रणचण्डी चले काल के गोले।
क्या प्रलय कोपकर नयन रुद्र ने खोले॥
गरजे जय के हरि, स्यार हारके बोले।
दोनों दिस हर्ष विषाद थिरकते डोले॥
ऐसा भीषण रणरोपहुमक हुँकारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ३१॥

लड़ने को आया कुम्भकरण मतवाला।
समझे कपि भालु सजीव महीधर काला॥
मारे रघुवर ने बाण विकल कर डाला।
तन खण्ड खण्ड कर प्राण प्रपञ्च निकाला॥
यों प्रतिभट के सब अङ्ग अवश्य विदारो॥
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ३२॥

मच गया घोर घमसान हुआ अँधियारा।
गरजें भट घायल बहें रुधिर की धारा॥
रामानुज ने घननाद घेर कर मारा।
बरछी खाने का वैर लेलिया सारा॥
यों ब्रह्मचर्य व्रत धार विपत्ति बिड़ारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ३३॥

सेना सुत बन्धु समेत कुटुम्ब कटाया।
रण में सीता का चोर अन्त को आया॥
रच रच माया उत्पात प्रचण्ड उठाया।
पर बचा न रावण राम-रोष ने खाया॥
यों सबल शत्रु को सर्वनाश कर मारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ३४॥

हो गये हेमप्रासाद पुरी के रीते।
हारे रजनीचर वीर भालु कपि जीते॥
बोले रघुवर दिन आज विरह के बीते।
अब तो दर्शन दे प्राणवल्लभा सीते॥
यों एक-नारि-व्रतशील सुरुचि संचारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ३५॥

विधवादल का सन्ताप विलाप मिटाया।
लङ्केश विभीषण वंश-वरिष्ठ बनाया॥
सीता रघुनायक मिले महासुख पाया।
दिन फिरे अवध के ध्यान भरत का आया॥
यों न्याय-नीति पर प्रीति पसारो प्यारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ३६॥

चढ़ पुष्पक पै दल-सहित राम घर आये।
गुरु मात बन्धु नर नारि मिले हरषाये॥
कपि भालु वीर सानन्द समस्त टिकाये।
सब ने असीम सुख पाय शम्भु-गुण गाये॥
यों बिछुड़ों से मिल भेट विराग बिसारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ३७॥

मिल भरत लखन सिय राम सरस अनुरागे।
सुन्दर पट भूषण धार वन्य व्रत त्यागे॥
सो गये शोक सन्ताप, भोग सुख जागे।
आये आनन्द-विलास, अमङ्गल भागे॥
यों चमको छार छुड़ाय छुपे अङ्गारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ३८॥

अभिमन्त्रित मङ्गल मूल साज सब साजे।
सिंहासन पै श्रीराम सशक्ति विराजे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर घर आनन्द विनोद बधाये बाजे।
सुन सुनकर जय जयकार राजगज गाजे॥
इस भाँति करो शुभकर्म धर्म-अवतारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ३९॥

कवि को आदर उपहार न जो नर देगा।
कविता के सिर पर दोष-भार धर देगा॥
सद्भावों में भरपूर भूल भर देगा।
वह राम-कथा पर भी कुतर्क कर देगा॥
इस दुर्मति का सब सार निचोड़ निथारो।
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥ ४०॥

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा।

यवनानी लिपि।

सरस्वती के पाठक लखनऊ के रईस सय्यद नूर अ़ली रामपुरी, पण्डित शंकरनाथ आग़ा और पण्डित देवदत्त शास्त्री से भली भाँति परिचित हैं। सय्यद नूर-अ़ली साहिब पंडित देवदत्तजी की सहायता से संस्कृत के अध्ययन में रोज़ बरोज़ उन्नति करते जाते हैं, और जितनी उनकी लियाक़त बढ़ती है उतनाही उनका शौक़ बढ़ता जाता है। गत वर्षा ऋतु में कीलाक्षर-लिपि के विषय में जो चर्चा हुई थी उसको सुन कर आग़ाजी को भी इस मज़्मून का शौक़ हुआ और एक रोज़ यह बात ठहरी कि ये बातें केवल उसी वक़्त छेड़ी जायँ जब तीनों महाशय एकत्रित हों। यही कारण है कि यद्यपि शास्त्री जी सय्यद साहिब के पास प्रतिदिन आते हैं तो भी आग़ाजी के उपस्थित न होने के कारण इन दोनों विद्वानों में प्राचीन लिपि के सम्बन्ध में तीन महीने से कोई बातचीत नहीं हुई। पाठक पूछेंगे कि आग़ाजी तीन महीने तक कहाँ रहे? सो बतलाते हैं। गत अगस्त महीने की १९ तारीख़ को युक्तप्रान्त के प्रजाप्रिय लेफ़्टिनेंट गवर्नर साहिब ने नैनीताल में एक सभा की थी, जिसका उद्देश्य यह था कि इस प्रान्त की देशी कारीगरी को उन्नति देने के उपाय सोचे जायँ और उनको अ़मल में लाने के ढंग निकाले जायँ। साथ ही बड़े बड़े विचारशील लोगों ने यह सम्मति दी कि देशी कारीगरी का सुधार पुराने ढंग पर चलने से न होगा, किन्तु नये ढंग की विलायती कलों में अपने मतलब के मुवाफ़िक़ अदल बदल करके कल-कारख़ाने खोलने पड़ेंगे। आग़ाजी, जो अपने प्रान्त के प्रधान न्यायालय के प्रसिद्ध एड्वोकेट् (Advocate) हैं, और देश-हितैषी भी हैं, इन विचारशील लोगों से सहमत होकर इस बात पर उद्यत हुए, कि आगामी दसहरे की तातील में विलायत की सैर करें, और इँग्लैंड, जर्मनी और अन्य देशों में जाकर बड़े बड़े कारख़ानों की कलों का अवलोकन करें, और वहाँ के कारख़ानों के ढंग पर लखनऊ में भी एक देशी कारख़ाना खोलें। ख़ैर, यह विचार कर आग़ाजी अगस्त मास के अन्तिम सप्ताह में विलायत को रवाना हो गये और वहाँ के कई देशों की अच्छी तरह सैर की। बहुत से कारख़ाने देखने के अ़लावा वह संस्कृतज्ञ विलायती पण्डितों से भी मिले, और भारतवर्ष के साहित्य के विषय में उन से बहुत कुछ बात चीत की। यद्यपि आग़ाजी संस्कृत भाषा से अपरिचित थे, लेकिन उन्होंने कालेज में अँगरेज़ी भाषा की अच्छी तालीम पाई थी, और विलायती और देशी साहित्यसम्बन्धी विषयों पर आपने बहुत सी अँगरेज़ी पुस्तकों का अध्ययन किया था। इस कारण उनको सब विषयों का साधारण परिचय भली भाँति हो गया था। मैक्समूलर वग़ैरा विलायती पण्डितों के बनाये हुए निबन्ध उन्होंने अच्छी तरह पढ़े थे। ख़ैर, विलायती पण्डितों से मिलकर इनको मालूम हुआ कि इनमें से बहुत लोग ऐसे हैं जो वास्तव में लैटिन और ग्रीक भाषा के निपुण पण्डित हैं और संस्कृत भाषा केवल कम्पॅरेटिव फिलॉलोजी (Comparative Philology) अर्थात् भाषा-विज्ञान में सहायता मिलने के अभिप्राय से सीखते हैं। इन लोगों का यह मत है कि दुनिया में जो कुछ उत्तम है, सब ग्रीस और रोम से निकला है और यदि किसी और देश में भी कोई वैसीही चीज़ मिल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय तो वह भी अवश्य ग्रीस वा रोमवालों ने ही वहाँ पहुँचाई होगी। यह लोग रोज़ सवेरे उठकर वेबर (Weber) और ह्विट्नी (Whitney) महाशयों के नाम का जप करते हैं और अपनी धुन में मग्न रहते हैं। संस्कृत-साहित्य का कोई विषय ऐसा नहीं जिसमें इन्होंने हस्तक्षेप न किया हो, और कोई प्रश्न ऐसा नहीं जिसका उत्तर यह लोग बेधड़क न देते हों। इनके सिवा कई पण्डित ऐसे भी मिले जिन्होंने संस्कृत-शास्त्रों का अच्छी तरह अध्ययन किया है, और जो यथाशक्य भारतवर्ष के ग्रन्थों को न्यायदृष्टि से देखना चाहते हैं और देखते हैं। इनमें से कुछ तो ऐसे मिले जो भारतवर्ष में रह गये हैं, और यहाँ के पण्डितों को आदर की दृष्टि से देखना सीख गये हैं। ये लोग बहुत सोच समझकर बात करते हैं और सहसा कोई बात मुँह से नहीं निकालते और कुछ ऐसे भी मिले जो भारतवर्ष तो नहीं आये, परन्तु उनको वहाँ के साहित्य का महत्त्व स्वीकार करने में शरम नहीं आती। ख़ैर, इन सब लोगों से आग़ाजी ने मुलाक़ात की और कभी कभी अपना जी बहलाने के लिए नामी नामी पुस्तकालय भी देखने गये। इस तरह एक महीने तक सैर करके आक्टोबर मास के आख़री सप्ताह में लखनऊ आगये।

आग़ाजी के विलायत से लौटने के दो तीन दिन पीछे सय्यद साहिब के बंगले पर प्राचीन लिपि के विषय में फिर बात छिड़ गई। शास्त्रीजी बोले—

"मीर साहब, उस दिन जो आपने कीलाक्षर-लिपि के विषय में व्याख्यान दिया था उस पर विचार करके हमारे जी में दो तीन शंकायें उत्पन्न हुई हैं। आशा है कि आप दूर कर देंगे।"

सय्यद साहिब—"बहुत अच्छा, आप अपनी शंकायें बतलाइए मैं यथाशक्य उनका जवाब देने का यत्न करूँगा।"

आग़ाजी—"मगर बराहे मिहरबानी 'पक्षपात' और 'छछोरेपन' वग़ैरा अल्फ़ाज़ का इस्तेमाल न हो!"

शास्त्रीजी—"सरकार, आप कुछ चिन्ता न करें! मीर साहब बड़े सज्जन पुरुष हैं और हम भी फूँस के छप्पर नहीं हैं। अस्तु! मीर साहब! बर्बर देश जिसको आप इराक़ अजम कहते हैं—"

सय्यद साहिब—"शास्त्री जी, इराक़ अजम नहीं, बल्कि इराक़ अरब—"

आग़ाजी—"साहब, उस रोज़ तो आपने इराक़ अजम ही कहा था! मुझको अच्छी तरह याद है।"

सय्यद साहिब—"ख़ैर, मेरी ही ग़लती होगी। लेकिन अब चूंकि इसका ज़िक्र छिड़ा है इसलिए शायद इस लफ़्ज़ की तशरीह कर देना भी बेजा न होगा। * * * * शास्त्री जी! यह एशिया का नक़शा देखिए। हिन्दुस्तान से शुमाल-मग़्रिब की जानिब अफ़ग़ानिस्तान और बलूचिस्तान हैं। इनसे मग़्रिब की तरफ़ फ़ारिस और शुमाल की तरफ़ तुर्किस्तान है। फ़ारिस से पश्चिम की तरफ़ पहाड़ों के पीछे एशियाई रूम और जनूब-मग़्रिब की तरफ़ खाड़ी के पार अरब है। फ़ारिस और एशियाई रूम के बीच में जो पहाड़ हैं इन से पूर्व की ज़मीन को इराक़ अजम और पश्चिम की ज़मीन को इराक़ अरब कहते हैं। याद रखिए कि ये सब नाम ज़मानए-हाल के हैं और यह सब हदबन्दियां भी इसी ज़माने की हैं। पहले ज़माने में न इस क़िस्म की हदबन्दियाँ थीं और न ये नाम ही थे। एक क़दीम ज़माने का ज़िक्र है कि अफ़ग़ानिस्तान और पंजाब की सर ज़मीन में वे लोग आबाद थे जिनकी भाषा प्राचीन संस्कृत थी, और फ़ारिस की सरज़मीन में वे लोग आबाद थे जिनकी ज़बान उस वक़्त की संस्कृत से बहुत कुछ मिलती थी। इस से पहले कोई वक़्त ज़रूर हुआ होगा जब इन सब लोगों की ज़बान एक ही होगी। आजकल के विलायती मुहक़्क़िक़ों ने इन सब लोगों का नाम 'आर्य' रखा है। केवल भाषा भिन्न होने के कारण एक और समूह का नाम 'शेमिटिक' रख दिया है। इसी तरह किसी का नाम 'तूरानी' किसी का 'अटलंटिक' इत्यादि रख दिये हैं। नाम रखते तो रख लिये; पर उनका निबाहना मुश्किल हो गया, नतीजा यह कि अब बनी आदम की कई तरह से तक़्साम की जाती है, और कोई तक़्सीम ठीक नहीं बैठती।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रीजी—"इस मुहक्किकी की बलिहारी! यह नहीं जानते कि सारा संसार मनुजी से उत्पन्न हुआ है। देश और काल के भेद से रहन सहन के ढंग और भाषा में अन्तर पड़ गया। एक ही परदादे की सन्तान के स्वभाव और रूप रंग में बहुत कुछ फ़रक़ हो जाता है। हज़ारों पीढ़ियाँ गुज़रने पर भाषा और आचार में अन्तर पड़जाना कौन आश्चर्य की बात है? केवल ठीक ठीक पता देने के लिए लोगों ने व्यक्तियों, कुलों, और जातियों के भिन्न भिन्न नाम रख दिये हैं। और अपने को अपने भाई से, अपने कुल को दूसरे कुल से, अपनी जाति को दूसरी जाति से अच्छा समझना तो मनुष्यमात्र का स्वभाव ही है।"

आग़ाजा—"अपना नाम लक्ष्मण, दूसरे का कुम्भकर्ण; अपना कुल शुक्ल दूसरे का धाकर; अपनी जाति आर्य दूसरे की म्लेच्छ—यह सब भी तो मनुष्य का स्वभाव ही है। क्यों, शास्त्री जी?"

शास्त्रीजी—"सरकार, आप तो हँसते हैं। परन्तु यह देखकर हमें बड़ा आनन्द हुआ कि अब आप संस्कृत शब्दों का उच्चारण प्रायः अच्छा करने लगे हैं!"

सय्यद साहिब—"ख़ैर, आमदम बर सरे मतलब! जिस तरह फ़ारिस, अफ़ग़ानिस्तान, तुर्किस्तान और पंजाब की सरज़मीन के बाशिन्दों की ज़बान "आर्य-भाषा" थी उसी तरह एशियाई रूम, अरब, मिस्र और हबश के रहनेवालों की बोली 'शेमिटिक' कहलाती थी। और आजकल के उलमा ने उस ज़बान के बोलनेवालों का भी नाम 'शेमिटिक' ही रख दिया है। आर्य भाषा की तरह शेमिटिक भाषा में भी देश और काल के कारण परिवर्तन हुए हैं। कोई वक्त था जब एशियाई रूम का बड़ा हिस्सा 'आराम' कहलाता था, और उसके दो विभाग किये गये थे। पूर्वी भाग का 'कालिडया' देश और पश्चिमी भाग को 'सिरिया' कहते थे; और उन दोनों विभागों की भाषाओं के 'कालिडक' और 'सिरियक' नाम थे। इसके बाद कुछ जनूब-मग़रिब की तरफ़ 'इबरानी' क़ौम और उसकी 'इबरानी' ज़बान का दौर दौरा रहा। फिर कुछ अर्से बाद इससे भी जनूब की तरफ़ 'अरब' और उसकी 'अरबी' ज़बान ने पैर जमा लिया। इस वक्त इस बात से कुछ बहस नहीं है कि आरामी, इबरानी अरब क़ौम किस तरफ़ से और कब आई। यहाँ इतनाही कहना काफ़ी होगा कि 'कालिडया' वही देश है जिसको मैं 'बर्बर' देश कहता हूँ। यही लफ़्ज़ बिगड़कर 'बावेरु' हो गया और फिर उसके बाद 'बाबिलोनिया'। और 'सिरिया' ही का दूसरा नाम 'फ़िनोशिया' समझ लीजिए। इस बात का काफ़ी सबूत मौजूद है कि कम अज़ कम दो हज़ार वर्ष तक 'आर्य' और 'शेमिटिक' लोग विषयानन्तर-भाव से रहे।"

आग़ाजी—"शाबाश! यह आपने इराक़ अरब की तो ख़ूब तशरीह की! आप शास्त्रीजी को जुग़राफ़िया पढ़ा रहे हैं या बनी इसराईल की तारीख़?"

सय्यद साहिब—"हज़रत, क़ुसूर मुआफ़! शास्त्रीजी की शङ्काओं का जवाब देने में, और आयन्दा, यह सब बातें काम आवेंगी।"

शास्त्रीजी—"मीर साहब बड़े सावधान हैं। पहले ही से सब बात ठाक ठाक कर रखते हैं। अच्छा, मीर साहब, पहले तो आप यह बतलाइए, कि बर्बर भाषा में वर्णमाला के अतिरिक्त व्यंजकाक्षर और विविध प्रकार के एकाक्षर कोश का प्रयोग परम्परा से योंही चला आया था अथवा उसमें भी कुछ परिवर्तन हुए हैं। हमारी समझ में नहीं आता कि जब बर्बर लोगों ने वर्णमाला बना ली तब एकाक्षर कोश की उनको क्या आवश्यकता थी।"

सय्यद साहिब—"भाषा-शास्त्र के ज्ञाता लोगों को तीन तरह की भाषाओं का अच्छी तरह पता लगा है। (१) 'तूरानी' भाषा जिसमें हर एक शब्द एकाक्षरी और अव्यय है। बात का मतलब केवल पदों के क्रम और उदात्तादि स्वरों से ज्ञात होता है। एक एक पद के कई कई अर्थ होने के कारण प्रायः अनुमान से भी काम लेना होता है। ऐसी भाषा चीन देश में बोली जाती है और बर्बर देश में भी बर्बर लोगों के आने से पहले इसी तरह की एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तूरानी' भाषा बोली जाती थी। (२) 'शेमिटिक' भाषा जिसमें धातु पर प्रत्यय लगाकर शब्द बनते हैं—"

शास्त्रीजी—"यहाँ तो संस्कृत में भी होता है!"

सय्यद साहिब—"सुन तो लीजिए!—'शेमिटिक' भाषा में प्रत्यय लगाकर शब्द तो बनते हैं, परन्तु उस भाषा में सब धातु त्र्यक्षरी होते हैं। चाहे आप कितने ही प्रत्यय लगावें, धातु के तीनों व्यंजन सदा उपस्थित रहेंगे; उनमें से कभी किसीका लोप न होगा। (३) 'आर्य भाषा' में धातु पर प्रत्यय लगाकर शब्द तो बनते हैं, परन्तु धातु के आकार का कोई नियम नहीं है॥ अच्छा, फ़र्ज़ कीजिए आप कोई तूरानी बोली बोलते हैं। आपके यहाँ हर एक वस्तु का एक एक नाम है। यदि आप हर एक नाम के वास्ते कोई चिह्न मुक़र्रर कर लें तो आपको वर्णमाला की कुछ ज़रूरत नहीं है। आप आँख की शक्ल बनाकर उसके नीचे दो तीन बिन्दु बना दीजिए। देखनेवाला समझ लेगा कि आपका मतलब 'अश्रु' या 'रोना' है। बस इसी तरह से सब नामों और क्रियाओं के चिह्न मुक़र्रर थे और यही चिह्न बिगड़ते बिगड़ते अक्षर हो गये। हाँ जब कभी किसी चिह्न के समझने में दिक़्क़त होती थी तब व्यञ्जनाक्षर काम में लाये जाते थे। ख़ैर, पिसे को क्या पीसना, जब 'तूरानी' लोगों को पराजित करके बर्बर लोग आये, तब उनको तूरानी लिपि पसन्द आगई। परन्तु 'शेमिटिक' भाषा के शब्द यौगिक होने के कारण उन लोगों से प्राचीन अव्यय-चिह्नों का प्रयोग ठीक ठीक न बन पड़ा, जिससे उनको नाना प्रकार के झमेले करने पड़े। आदि में जो 'मछली' का चिह्न था वह कई शताब्दियों में बदलते बदलते कुछ का कुछ हो गया। केवल यही नहीं, बल्कि बर्बर लोगों के आस पास वालों ने भी उन्हीं की तरह प्राचीन चिह्न तो लिये, परन्तु उनके रूप और अर्थ अपनी अपनी मति के अनुसार बदल डाले। नतीजा यह हुआ कि 'निनवा' नगर की कीलाक्षर लिपि में जिस चिह्न का अर्थ 'घोड़ा' था वह चिह्न या तो 'बाबिलन' नगर की लिपि में है ही नहीं, या अगर है, तो उसका अर्थ कुछ और ही है। मैंने जो उस दिन कीलाक्षर लिपि का नमूना आपको दिखाया था वह 'असुर' लोगों के राज्य के समय बर्बर देश की वर्णमाला का नमूना था। जो लिपि 'तूरानी' भाषा का काम अच्छी तरह देती थी वही लिपि 'शेमिटिक' भाषा का काम देने में असमर्थ रही। यही कारण है कि 'शेमिटिक' लोगों ने अपने यौगिक शब्द लिखने के लिए प्राचीन चिह्नों से अक्षरों का काम भी लेना आरंभ किया। यह बर्बर देश में अक्षरों की उत्पत्ति की कथा है। परन्तु प्राचीन लोगों के देश में उनके साथ बसने के कारण उनकी भाषा के भी बहुत शब्द बर्बर लोगों ने ग्रहण कर लिये। इसीसे उनकी लिपि में प्राचीन चिह्नों का बर्ताव जारी रहा। परन्तु समय के फेर से उन चिह्नों का रूप बिल्कुल अपरिछिन्न हो गया॥ बर्बर देश का तो यह हाल था। अब देखिए कि उनके पड़ोसी फ़ारिस वालों ने क्या किया? फ़ारिस वालों को तूरानी भाषा तो बोलनी थी ही नहीं, फिर उनको तूरानी व्यंजकों से क्या प्रयोजन? उन्होंने केवल कीलाक्षर-वर्णमाला ग्रहण कर ली। बल्कि यह कहना चाहिए कि बर्बर लोगों की देखादेखी फ़ारिस वालों ने अपनी अलग ही कीलाक्षर-वर्णमाला बनाली। रॉलिन्सन साहिब ने एक जगह पर एक शिलालेख देखा जो तीन भाषाओं में लिखा हुआ था। मज़्मून तीनों में एक ही था, मगर फ़र्क़ देखिए! 'शेमिटिक' लेख में ५०० व्यंजकाक्षरादि काम में लाये गये; 'तूरानी' लेख में ९६ अक्षरों और ७ व्यंजकों से काम लिया गया; और 'आर्य' भाषा में कुल ३६ व्यंजनों का प्रयोग हुआ। इस सब का सारांश यह निकला कि 'तूरानी' लोगों ने अपनी भाषा की आवश्यकता के अनुसार कई हज़ार चिह्न बनाये। 'शेमिटिक' लोगों ने उन चिह्नों की सहायता से वर्णमाला निकाली; परन्तु चिह्न भी बर्तते रहे। आस पास के लोगों ने चिह्नों को छोड़कर वर्णमाला ग्रहण करली और आर्य लोगों ने स्वर और व्यंजनों को अलग करके उस वर्णमाला को उत्तम कर दिया।"

शास्त्रीजी—"तो इस हिसाब से आर्यों ने सब से बड़ा काम किया!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सय्यद साहिब—"क्यों ? सब ने अपनी अपनी ज़रूरत की वजह से अपने मतलब का काम किया। तूरानियों को एकाक्षरी अव्ययों की ज़रूरत थी। उन्होंने वे बना लिये। 'शेमिटिक' लोगों को अपने यौगिक शब्दों के वास्ते सस्वर व्यंजनों की ज़रूरत हुई। उन्होंने वह ईजाद कर लिये। आर्य लोगों में 'सन्धि' और 'संयुक्तव्यंजन' वग़ैरा का झगड़ा था। इस वजह से उनको व्यंजन बनाने पड़े। अगर इन्साफ़ से देखा जाय तो असली काम 'शेमिटिक' लोगों ने किया; 'आर्य' लोग तो हमेशा से लपक भागने वाले ही रहे !"

शास्त्रीजी—"अब देखिए, मीर साहब, आप फिर ख़फ़ा होने लगे ! यदि आपकी बात ठीक है तो बतलाइए कि आर्य्यों ने देवनागरी लिपि कहाँ से उड़ाई ?"

सय्यद साहिब—"शास्त्रीजी ! ख़फ़ा होने की क्या बात है ? देवनागरी की अस्लियत पर मैं फिर किसी रोज़ बहस करूँगा; अब आप दूसरी शंका कीजिए।"

शास्त्रीजी—"देवनागरी का ही ध्यान आकर हमें शंका उत्पन्न हुई थी। ख़ैर, अब आप पूछते हैं तो हम कहते हैं। प्रश्न यह है—"जिस समय की ये बातें हैं उस समय कीलाक्षरलिपि के अतिरिक्त संसार में कोई और भी लिपि प्रचलित थी या नहीं ?"

सय्यद साहिब—"थी क्यों नहीं ? ख़ास बर्बर देश में ही दूसरी लिपि प्रचलित थी।"

आग़ाजी—"सच ! यह किस तरह ?"

सय्यद साहिब—"बस इसी तरह समझिए जिस तरह सौदागर की दूकान पर उर्दू और हिन्दी। दूकान का हिसाब किताब हिन्दी में, ख़त पुर्ज़े और कचहरी अदालत के काम उर्दू में। अहलक़लम मिस्मारी रस्मुलख़त का इस्तेमाल करते थे, और बनिये लोग—बस अब फिर बतलावेंगे॥"

शास्त्रीजी और आग़ाजी ने कुछ आग्रह किया; मगर मज़्मून बड़ा होने की वजह से उस रोज़ उनको निराश होना पड़ा। सय्यद साहिब वुज़ू में मश्ग़ूल हुए और आग़ाजी और शास्त्रीजी ने अपने अपने घर की राह ली। [असमाप्त]

"बार्हस्पत्यः"।

दीपकदेव का आत्मचरित।

पाठक महाशय, मेरे शत्रु मुझ पर निशाचरवंशी होने का कलंक लगाते हैं; किन्तु मैं इसको कलंक नहीं मानता। क्योंकि मैंने स्वयं अपने प्रकाश में देखा है, कि कई एक ब्राह्मणों की जन्मकुण्डलियों में भी राक्षस या वानरवर्ण लिखा हुआ है। और लङ्काधिपति रावण ब्राह्मण होकर भी निशाचर था।

मेरे मित्रगण मुझको सूर्यवंशी क्षत्री बतलाते हैं, और वास्तव में मैं सूर्य का छोटा भाई हूँ भी, क्योंकि मैं भी उनके सदृश दीप्तिमान् और तेजस्वी हूँ। वे दिन के राजा हैं, मैं रात का। स्वभाव भी मेरा उन्हीं के सदृश प्रचण्ड और उद्धत है। और अग्निदेव मेरे पिता हैं।

अड़ोस पड़ोस के नाते से, कुम्भज ऋषि के जन्मदाता—कुम्भ के निर्माता—कुम्भकार मेरे चचा लगते हैं। किन्तु गधों से इनका प्रेम होने के कारण मनुष्य इनकी गणना शूद्रों में करते हैं। पाश्चात्य देशों में ये इतने नीच नहीं समझे जाते। क्योंकि वहाँ गधों और सुअरों से कोई नफ़रत नहीं करता। तथापि वहाँ पर मैं मिस्टर "पॉटर" से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। वहाँ मेरे सम्बन्धी हैं, मिस्टर "टिनस्मिथ," अथवा मिस्टर "कापरस्मिथ"। हमारे मित्र वर्गों में मिस्टर कपासराम, अर्थात् मिस्टर "काटन," और तिलवंशी मिस्टर "ऑयल," अर्थात् तेल, या स्नेह, महोदय हैं। ये सब महाशय मुझसे बड़ा स्नेह रखते हैं। यहाँ तक कि मेरे लिए ये लोग अपने जीवन का भी कुछ नहीं समझते।

यूरपवासी मुझे मिस्टर "लैम्प" कहकर पुकारते हैं। मुसलमानों ने मुझे मीर रोशनअ़ली, मियाँ चिराग़ अ़ली, सय्यद मशालअ़ली आदि उपनाम दे रक्खे हैं। किन्तु राशि का असली नाम जो मेरा है वह हिन्दुओं का 'दिया' है। मैं अपने मुँह अपना राशि का नाम नहीं बतला सकता। इस कारण आप उसे स्वतः समझ जाइए। यदि आपकी बुद्धि बहुत ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माटी हो तो निम्नलिखित पद्य का अर्थ कर लीजिए और मेरा नाम जान जाइए।

"मैं कह दीया अपना नाम, अर्थ करो की छोड़ो ग्राम"।

मेरे पुत्र का राशि का नाम काजल है। किन्तु यूरपवासी उसको मिस्टर "लैम्प-ब्लैक" कहकर पुकारते हैं। "ब्लैक" कहे जाने के कारण यह उनसे अप्रसन्न हो गया है। उन हिन्दुस्तानियों से भी वह प्रसन्न नहीं जो अँगरेज़ी पढ़कर या अँगरेज़ों की देखा देखी अपने निवासस्थानों तथा देवालयों में भी मिट्टी का तेल जलाते हैं। इन तेल महोदय का असली नाम मिस्टर "पेट्रोलियम" या "केरोसिन ऑयल" है। इनके शरीर से महा दुर्गंधि निकला करती है। जब से मेरा संसर्ग इनसे हुआ है तभी से लोग मुझको अपवित्र समझ, मुझे छूने तक में हिचकते हैं। जो मनुष्य इनका संसर्ग मुझसे ज़बरन कराते हैं उनको मेरा पुत्र काजल अत्यन्त ही क्लेश देता है। वह उनकी आँख, कान, नाक, मुँह आदि में प्रविष्ट होकर उनको दुःख देता है, विवर्ण कर देता है, तथा खाँसी आदि कठिन रोगों से पीड़ित भी कर देता है। वस्त्र और घर के सब समान को वह मैला और अपवित्र कर देता है, और एक पैसे की बचत के लिए चार पैसे ख़र्च करवाता है। शरीर का स्वास्थ्य तो वह कभी ठीक नहीं रहने देता। विद्यार्थियों को वह मन्ददृष्टि करके ऐनकबाज़ बना देता है और कोल्हू के बैलवाले दृष्टान्त का चित्र सबके सम्मुख खड़ा कर देता है। मनुष्यों को वह कभी कभी धोखा देकर "पेट्रोलियम" का पान कराता है, अथवा स्वयं मुँह में पैठ, गला घोंट, उनके प्राण हरण करता है। तुम मेरे लड़के को दोषी ठहरा कर उसके लिए दुष्ट, पामर, पापी आदि शब्दों का उपयोग करोगे; किन्तु मैं इसमें उसका कोई दोष नहीं देखता। जो लोग मेरा संसर्ग इन दुर्गन्धियुक्त "पेट्रोलियम" महाशय से कराकर मुझे अपवित्र करते हैं उनके लिए गला घोंटने आदि का दण्ड मैं बहुत उचित समझता हूँ। इससे मेरे पुत्र के बदले स्वयं वही अपराधी हैं। जब हिन्दुस्तानी ऐसा काम नहीं करते थे तब मेरा पुत्र उनकी प्यारी रमणियों की आँखों में रंजित होकर उनकी शोभा को बढ़ाता और उनके प्रिय पुत्रों के मुख का दिठौना बन उनको दीठ से बचाता था। और लिखने की स्याही में मिलाया जाकर उनके हस्तलेखों को सदा के लिए जीवित रखता था। किन्तु मैं अपने पुत्र के गुणदोष वर्णन करने में बहुत दूर निकल आया। अब फिर मैं अपने चरित गाने में निमग्न होता हूँ। सुनिए—

हिन्दुस्तानियों में मेरा बहुत मान है। वे मुझको देवता मानकर दीपावली के दिन मेरी पूजा करते हैं; मेरे हृदय को घी या मीठे तेल से भरते हैं; और कपासरूपी बत्ती डाल कर, मेरे सुहृद्-वृन्द से मुझे मिलाकर, उनके गाढ़ालिङ्गन का परमानन्द मुझे देते हैं। मैं भी परमोज्ज्वल प्रकाश से उनके घरों को जगमगा देता हूँ और वर्षभर का मैली कुचैली वायु को उनके घरों से निकालकर बाहर कर देता हूँ। कार्तिक के महीने में सुन्दर सुसज्जित काग़ज़ के बने हुए आवरण से मुझे आच्छादित कर, वे मुझे ऊँचे से ऊँचे बाँस पर चढ़ाकर आकाश को पहुँचाते हैं। मैं भी आकाश-दिया के नाम से उनके देवी-देवताओं का पथप्रदर्शक बनता हूँ। मेरा राज्य सारी पृथ्वी पर फैला हुआ है। ग्रीन-लैंड के इसक्विमो नामधारी असभ्यों से लगाकर यूरपवासी परम सभ्य कहलाने वाले पुरुषों और राजाओं के घर तक में भी मेरा प्रवेश है। जहाँ जहाँ मैं रहता हूँ, सदैव-सम्मान-सूचक उच्चासन बैठने को पाता हूँ। यदि कोई कुर्सी पर बैठता है, तो मैं मेज़ पर आसन पाता हूँ। यदि मनुष्य पृथ्वी पर बैठते हैं तो मैं ऊपर छत से जाकर टँग जाता हूँ; अथवा दीवार के किसी आले में स्थान पाता हूँ। हिन्दुस्तानियों ने मेरी मर्यादानुकूल दीवट अथवा शमादानरूपी आसन बना रक्खे हैं। पवन-देव से बचाने के लिए महाजनों ने मेरे लिए फानूस नामधारी कपड़े के डेरे बना रक्खे हैं। इससे मुझे एक और भी लाभ हुआ है। वह यह कि मच्छड़, पतङ्गे आदि न तो मुझे दुख देने पाते हैं और न स्वयं भी दुःखित होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरप-वासियों ने मेरे मित्र-वर्गों को बहुत दुःख दिया है। इस कारण मैं उनसे प्रायः अप्रसन्न रहता हूँ। पहले तो वे मिस्टर "पॉट" के पेट में पेट्रोलियम महाशय का प्रवेश कराके उन्हें दुर्गंधि का पिटारा बनाते हैं। फिर उनके मुँह को मैशीनरूपी यन्त्र में कुचल कर छिद्रयुक्त कर देते हैं और भीतर ऐसा काँटेदार चक्र लगाते हैं जो "काटन" महाशय को बहुत पीड़ा पहुँचाता है। क्योंकि नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे आने जाने में वे उन्हें छिदते हैं। "काटन" महाशय भी मैशीन की कड़ी पीड़ा को सहकर सूत के रूप में आते हैं और फिर बुने जाने की कठिन पीड़ा से पीड़ित होकर निवार के टुकड़े के रूप में होकर क़ैंची द्वारा अङ्ग भङ्ग किये जाते हैं। फिर उनके मुँह में मैशीन ही के द्वारा बनी हुई मैच अर्थात् दिया-सलाई से आग लगाई जाती है। हिन्दुस्तानी लोग इसके बदले "काटन" साहब को अपनी प्रियतमाओं के करकमलों द्वारा दबवाते हैं और फिर उन्हें स्नेह-युक्त करके उनके मुँह में अग्निसंस्कार कराते हैं। पीछे की क्रिया में कुछ दुःख तो अवश्य होता है, किन्तु उसके पहले का सुख अनुभव कर वे इस दुःख को भूल जाते हैं। हाँड़ी, फ़ानूस और झाड़रूपी दुर्ग पवनदेव से निष्कृति पाने के हेतु मेरे लिए आविष्कृत हुए हैं; किन्तु "पाट" साहिब को इसमें भी वही दुःख प्राप्त होते हैं। "काटन" साहब को तो घी के बदले फ़ैट (चर्बी) साहब से मेलकर "कैंडल" नामधारी बनकर आना पड़ता है। ये रूप-परिवर्तन बड़ी ही कष्टकर क्रियाओं के द्वारा होते हैं। इस कारण मैं कभी कभी इन हाँड़ी, फ़ानूसरूपी दुर्गों को तोड़ कर मनुष्यों को हज़ारों की हानि पहुँचाता हूँ।

मेरा स्वभाव ही क्रोधी है। रामारि रावण ने एक बार मेरा अपमान किया था। अर्थात् मशाल-अ़ली के रूप में मुझको हनूमान नामधारी बन्दर की पूँछ से बाँधा था। इस अपमान को सह्य न कर मैंने उसकी सारी लंकापुरी को जला कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया। तत्त्ववेत्ता न्यूटन महाशय को भी मैंने उनके किये का स्वाद चखाया। उन्होंने अपने कुत्ते द्वारा मेरा अपमान किया था। इस कारण मैंने उनके बहुत वर्षों का परिश्रम नष्ट कर दिया। अर्थात् उनकी हस्तलिखित एक अनमोल पुस्तक जलाकर भस्म कर दी। अब भी मैं कभी कभी घर, शहर और खानों आदि को जला दिया करता हूँ। लन्दन नगरी का मैं एक बार सर्वनाश करही चुका हूँ। मिस्टर हिन्क्स (Hinks) महोदय ने मुझसे रक्षा पाने के लिए चमकते हुए हीरे के सदृश काँच तथा धातु का एक दुर्ग बनाया है। पर ये दुर्ग भी अवसर पाकर मैं मिट्टी में मिला देता हूँ। इसी से मैं कहता हूँ कि, प्रिय पाठक, सचेत हूजिए और मेरे पूर्वसम्मान को बनाये रखिए। क्योंकि कहा है—

"जग में दिया अनूप है, दिया करो सब कोय।
कर का धरा न पाइये, जो पै दिया न होय॥"

गैस-लाइट और इलेक्ट्रिक-लाइट भी मेरे ही रूप हैं जिनका ब्योरा फिर कभी सुनाऊँगा।

शिवप्रसाद शर्म्मा।

कविवर नागरीदास।

तद्देशीय भाषारसिकों की साधारण धारणा है कि व्रज में नागरीदास नाम के चार कवि हुए हैं। उनमें प्रथम तो श्रीवल्लभाचार्य्य-सम्प्रदायी, द्वितीय स्वामी हरिदासजी के उत्तराधिकारी, तृतीय गोस्वामी हितहरिवंशजी के मतावलम्बी कहे जाते हैं। और चौथे वे हैं जिनका वर्णन डाक्टर ग्रियर्सन ने अपने "मौडर्न वरनेक्युलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान" (Modern Vernacular Literature of Hindustan) में, शिवसिंहजी ने अपने "सरोज" में, तथा बनारसवाले बाबू राधाकृष्णदासजी ने अपने "नागरीदास के जीवनचरित्र" में किया है।

यहाँ मैं इन्हीं सुविख्यात चौथे कविजी का जन्म-समय निरूपण तथा कुछ चरित पाठकों के मनोरञ्जनार्थ वर्णन करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर ग्रियर्सन और शिवसिंह ने अपनी पुस्तकों में इनका नाम "नागर कवि" बताया है और बाबू राधाकृष्णदास इन्हें "नागरीदास" कहते हैं। ये दोनों एकही कवि के नाम हैं अथवा दो के? मेरे विचारानुसार ये एकही कवि के नाम प्रतीत होते हैं। कारण यह है कि शिवसिंह ने अपने "सरोज" में उक्त कवि के तीन कवित्त नमूने के तौर पर दिये हैं। उनमें प्रथम कवित्त नागरीदासकृत "वर्षा के कवित्त" नामक ग्रन्थ में, द्वितीय "होरी के कवित्त" में, और तृतीय "फाग-विहार" में पाया जाता है। नमूने के कवित्त ये हैं—

१—भादौं की कारी अंध्यारी निशा
लखि बादर मन्द फुही बरसावै।
श्यामाजी आपने ऊँचे अटा पै
छकी रस रीति मलार है गावै॥
ता समै नागर के दृग दूरि ते
चातक स्वाति की मौज में पावै।
पौन मया करि घूँघुट टारै
दया करि दामिनि दीप दिखावै॥

२—गाँस गसीली ये बातैं छिपाइये
इश्क न गाइये गाइये होलियाँ।
गेंद बहाने न वीरा चलाइये
सूधै गुलाल उड़ाइये झोलियाँ॥
लोग बुरे चतुरे लखि पावैंगे
दावै रहो दिल प्रीति कलोलियाँ।
पाँइ परौं जु डरौ टुक नागर
हाइ करौ जिन बोलियाँ ठोलियाँ॥

३—देवन की औ रमापति की
दोउ धाम की देवन कीन बड़ाई।
शङ्ख चक्र गदा पुनि पद्म
स्वरूप चतुर्भुज की अधिकाई॥
अमृत पान विमानन बैठिबो
नागर के जिय नेकु न भाई।
स्वर्ग बैकुंठ में होरी जो नाहिँ
तौ कोरी कहा लै करी ठकुराई॥

इनका जन्मकाल डाक्टर ग्रियर्सन और शिवसिंह जी ने सं० १६४८ (सन् १५९१ ई०) निश्चय किया है। पर बाबू राधाकृष्णदास कहते हैं कि "सब से पहिला ग्रन्थ जो इनका मिला उसका नाम विहार-चन्द्रिका है। यह सं० १७८८ (सन् १७३१ ई०) में बना था। तथापि यदि इसे प्रथम भी मान लीजिए तो इसमें तो सन्देह नहीं कि इस समय इनकी अवस्था २० वर्ष से कम न रही होगी, अतएव इनके जन्म का समय सं० १७६८ (सन् १७११ ई०) के लगभग मानिए"। किन्तु प्रतापगढ़ राज्य के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री, पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या, ने ख़ुद कृष्णगढ़ राज्य में खोज करके इनका जन्म-समय पौष कृष्ण द्वादशी सं० १७५६ (सन् १६९९ ई०) निश्चय किया है। और मैं इसी समय को ठीक मानता हूँ; क्योंकि ये कवि महाशय कृष्णगढ़ के ही महाराज थे। इससे इनके वंशजों द्वारा जो समय निश्चित हुआ है वही विशेष विश्वसनीय है।

कृष्णगढ़, जयपुर रेज़िडेन्सी के अधीन राजपुताना का एक छोटा सा राज्य है। यहाँ राठौर जाति के क्षत्रिय राज्य करते हैं। यह राज्य जोधपुर के महाराज उदयसिंहजी के द्वितीय पुत्र महाराज कृष्णसिंह द्वारा स्थापित हुआ था। कविवर नागरीदास इस गद्दी के आठवें राजा थे। इनका नाम साँवतसिंह था। ये अपनी कविताओं में "नागर", "नागरिया", "नागरी", "नागरीदास" इत्यादि नाम दिया करते थे। बाबू राधाकृष्णदास ने अपनी पुस्तक में भूल से इनका नाम जसवन्तसिंह लिखा है। ये राजपूताना भर में "महाराजा साँवतसिंह" के नाम से विख्यात हैं। मैं यहाँ पर इनकी वंशावली लिखे देता हूँ, जिसके अवलोकन से पाठकों को ज्ञात हो जायगा कि जसवन्तसिंह नाम के कोई भी महाराज अब तक कृष्णगढ़ के राजवंश में नहीं हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) महाराज कृष्णसिंह

(२) महाराज सहसमल — भारमल

(३) महाराज जगमालसिंह (४) महाराज हरिसिंह

(५) महाराज रूपसिंह (कृत्रिमपुत्र)

(६) महाराज मानसिंह

(७) महाराज राजसिंह

(८) महाराज साँवतसिंह (नागरीदासजी)

बहादुरसिंह (बलात् राज्यग्राही)

विरदसिंह (महाराज सरदारसिंह के उत्तराधिकारी) — बाघसिंह

(९) महाराज सरदारसिंह

(१०) महाराज विरदसिंह

(११) महाराज प्रतापसिंह

(१२) महाराज कल्याणसिंह

(१३) महाराज मोखमसिंह

(१४) महाराज पृथ्वीसिंह

(१५) महाराज शार्दूलसिंह

नागरीदासजी का थोड़ा सा चरित, जो मालूम हुआ है, यह है—

सं० १७६६ में, केवल दस ही वर्ष की अवस्था में, वे एक बार दिल्ली-दरबार में गये थे। वहाँ से लौटते समय, राह में, उन्हें एक महा उन्मत्त विशाल हाथी मिला। महावत लोगों के अनेक यत्न करने पर भी वह क़ाबू में नहीं आता था। इस कारण वे राह चलनेवालों को पुकार पुकार कर राह से हट जाने को कहते थे। किन्तु महाराजकुमार नागरीदास इससे तनिक भी भयभीत नहीं हुए। उन्होंने राह न छोड़ी। जब वह हाथी इनके पास आया तब इन्होंने उसकी सूंड पर अपनी तलवार की ऐसी वार की कि वह तुरन्त ही लौट गया।

तेरह वर्ष की उम्र में इन्होंने बूँदी के हाड़ा जैतसिंह का वध किया। इस लड़ाई में इनके घाव भी लगा था।

संवत् १७७१ में एक बार बड़े समारोह के साथ नृत्य-गीत हो रहा था। उस समय इनके पिता महाराज राजसिंह, कोटा के महाराज भीमसिंह, शिवपुर के महाराज गजसिंह, भादोरिया के महाराज गोपालसिंह इत्यादि उपस्थित थे। वहीं पर एक विषधर सर्प इनके जामा में किसी तरह घुस गया। ये इससे ज़रा भी न घबराये, और न किसी पर यह बात प्रकट होने दी। चुपचाप उस विषधर को दाब कर वहीं उसके प्राण इन्होंने ले लिये। कुछ देर में किसी बहाने से बाहर निकलकर उसे इन्होंने फेंक दिया। यह बात पीछे इनके नौकरों द्वारा विदित हुई थी। इस समय ये केवल १५ वर्ष के थे।

संवत् १७७४ में बादशाह के आज्ञानुसार जयपुर तथा कोटा के महाराजों ने थूण के सरदार पर आक्रमण किया। किन्तु बहुत दिनों तक लड़कर भी उसे पराजित न कर सके। अन्त में नागरीदास जी ही वहाँ भेजे गये। इन्होंने जाते ही अपने हाथी से क़िले के फाटक को तोड़ कर उस पर अधिकार कर लिया। इन्होंने बीस वर्ष की उम्र में अकेलेही एक सिंह को मारा था।

सं० १७९२ में दखनी मलार गुजरात से मारवार गया तो कविजी ने घोर संग्राम होने पर भी उसे कर नहीं दिया। इस पर बाजीराव ने मलार को यह दोहा लिख भेजा—

बाजीराव मलार सूँ, कहतो गयो कथाह।
और राव सब राव हैं, साँवत बात अथाह॥

सुनते हैं इनके पिता महाराज राजसिंह ने अपनी मृत्यु के कुछ दिन पहले ही सब राज्यशासन का भार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनको दे दिया था और ये भी इस कार्य्य को बड़ी योग्यता से सम्पादन करते थे। सं० १८०४ में जब ये दिल्ली में बादशाही दर्बार में उपस्थित थे, उसी समय अकस्मात् इनके पिता का कृष्णगढ़ में शरीरपात हुआ। अतएव वहीं अहमदशाह ने वैशाख शुक्ल पंचमी, सं० १८०५ को इन्हें कृष्णगढ़ का राजा बनाया। इस प्रकार अभिषिक्त होकर ये अपनी राजधानी को लौटना चाहते थे कि संवाद मिला कि इनके छोटे भाई बहादुर सिंह ने राज्यापहरण कर लिया। इस पर ये बादशाह से कुछ फ़ौज की मदद लेकर वहाँ पहुँचे। किन्तु बहादुरसिंह को जीत न सके। पश्चात् इन्होंने फिर बादशाह से सहायता माँगी। इतने में बहादुरसिंह ने जोधपुर के महाराज से मेल कर लिया। तब बादशाह ने सहायता देने से इनकार कर दिया। निदान ये निराश होकर श्रीवृन्दावन चले गये। वहीं से इन्होंने मरहटों को प्रसन्न किया और अपने पुत्र सरदारसिंह को मरहटा-सैन्य के साथ कृष्णगढ़ भेजा और राज्य प्राप्त किया। सं० १८१४ में, राजधानी में आकर, अपने पुत्र सरदारसिंह को आश्विन शुक्ल दशमी को राजगद्दी दी और स्वयं श्रीवृन्दावन में जाकर हरिभजन करने लगे। वहाँ भाद्रपद शुक्ल ३ सं० १८२१ (सन् १७६४) को, ६४ वर्ष ८ महीने ६ दिनों की आयु भोगकर, ये स्वर्गलोकवासी हुए। खेद की बात है कि इनका सारा जीवन दुःख ही में बीता।

इन्होंने छोटे बड़े सब ७५ ग्रन्थ लिखे हैं। उनमें से मुख्य मुख्य ग्रन्थों के नाम और उनकी रचना का समय नीचे लिखा जाता है—

(१) मनोरथमंजरी (आश्विनकृष्ण १४ सं०१७८०)
(२) रसिकरत्नावली (भाद्रशुक्ल १, भृगुवार, सं० १७८२)
(३) विहारचन्द्रिका (श्रावण, सं० १७८८)
(४) निकुंजविलास (सं० १७९४)
(५) भक्तिसार (श्रावणकृष्ण २, भृगुवार, सं० १७९९)
(६) व्रजवैकुंठतुला (वसन्त पंचमी, सं० १८०१)
(७) भक्ति-मगदीपक (क्वार कृष्ण ३, गुरुवार, सं० १८०२)
(८) युगल-भक्ति-विनोद (माघ, सं० १८०८)
(९) वनजनप्रशंसक (माघ, सं० १८१९)

नागरीदासजी वल्लभाचार्य्य-सम्प्रदाय के दृढ़ उपासक थे। इनकी सम्पूर्ण ग्रन्थमाला से श्रीराधाकृष्ण जी की ही भक्ति का पवित्र परिमल निकलता है। "पदप्रसंगमाला" और "तीर्थानन्द" इन दो ग्रन्थों में कुछ कुछ ऐतिहासिक विषयों का भी प्रसङ्ग है।

नागरीदास जी की एक उपपत्नी भी थी, जिसका नाम उनके वंशज "वणी-ठणी जी" कहते हैं। किन्तु यह नाम मुझे यथार्थ नहीं प्रतीत होता। क्योंकि यह विशेषण पद है और ऐसा नाम कहीं सुना भी नहीं गया। जो हो। यह वणी-ठणी कवित्त-रचना भी करती थी। और इसके कवित्त नागरीदास जी की पुस्तकों में किसी किसी जगह मिलते भी हैं। यह वणी-ठणी जी अपने कवित्तों में अपना उपनाम "रसिक-विहारी" लिखती थीं। भाषा के कितनेही रसिकजन "रसिकविहारी" को पुरुष-कवि मानते हैं। यह भूल है। "रसिकविहारी" के स्त्री कवि और श्रीनागरीदास जी की उपस्त्री होने के अनेक प्रमाण कृष्णगढ़ से मिले हैं। कहा जाता है कि वणी ठणी ने नागरीदास जी का साथ विपत्ति के समय में भी नहीं छोड़ा। श्रीवृन्दावन में भी यह उनके साथ थी। यह बात तीर्थानन्द के निम्नलिखित दोहे से प्रमाणित होती है—

वनी विहारनि रस सनी, निकट विहारीलाल।
पान कियौ इन दृगन ते, अनुपम रूप रसाल॥

श्रीनरेन्द्रनारायणसिंह।

श्रीरामतीर्थाष्टक।

जय जय ब्रह्मानन्द-मगन जन-मन-हरसावन
जय अमन्द सुन्दर सनेह रस सुठि सरसावन
जय विशुद्ध वेदान्त 'व्यास' नय मग दरसावन
जय सिद्धान्त उजास 'रामबरसा' बरसावन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जय पुलकित तन पावन परम प्रफुलित प्रिय प्रेमायतन
जय जग दुरलभ आचार्यवर आर्य रत्नगर्भा-रतन १

जय तपचर्या-उदाहरण मनहरन जु अनुपम
जय नित नवल उमङ्ग भरन युवकन-हिय उत्तम
जय उदार परहित सुधार रत भारत प्रियतम
जय जिय जाननहार राउ अरु रङ्क एक सम
जय वर विराग अनुराग प्रद गद गद हिय सत् सुहृदवर
जय पद पद पर स्वातन्त्र्य-प्रिय विसद प्रेमपङ्कज भ्रमर२

जय पञ्जाब-मरालबाल गुन मञ्जु मालधर
जयति स्वप्रन प्रतिपाल सुमति-गति-रुचि-रसालवर
जय विनोद-व्रत-विमल सुधाकर-कर उज्जलतर
जय स्वजन्म वसुधा-सेवारत निरत निरन्तर
जय भव-भय-दारुन-दुखहरन भेदहरन तारन तरन
जय पूरन मृदु स्वरसों 'प्रणव' उच्चारन धारन करन ३

जय कुभाव-कुल-कदन सरलता-सदन सुहावन
चारु-वदन मन मदन मदन मोहन मनभावन
जय अगाध रस रङ्गी गङ्गी* सङ्गी पावन
व्रज-व्रजभाषा-भक्त भक्ति-रस रुचिर रसावन
जय जग कलोलकरलोल अति गोल†चन्द प्रियतम परम
धृति धरम प्रभाकर नरम हिय हारन भवभय भरमतम४

जय प्रन-प्रनय दृढ़ावन दृढ़तर छोह छुड़ावन
आरज-सुयस बढ़ावन वैदिक ध्वजा उड़ावन
जय विदेश-विद्वान-चकित-चञ्चल-चितचोरन
नित अशेष उपदेश प्रचुर-पीयूषनिचोरन
भुवि विश्रुत विविध प्रमानजुत दै दै श्रुतिपरिचय प्रबल
जय जय कुमार‡जयपान जिय भारतरति राची नवल५

विशद उपनिषद पदम 'अलिफ़'§ षटपद गुञ्जारन
सुघर स्वच्छ स्वच्छन्द साधु उद्देश सँवारन
सुलभ सुजान अमान मनोविज्ञान उधारन
भारत-दशा सुधारन सब तन मन धन वारन
जय मन्द मन्द आनन्द-रस-पारायण पपिया अमद
जपनिरत आत्मरत सतत सतसत नारायणहिय सुखद६

यह आतम अज अगम अमर अनुपम अरु अक्षय
तजि यासों सम्बन्ध प्रकृति में प्रकृति होति लय
यों बिचारि उर परम प्रबल प्रगटत इमि निश्चय
रामतीर्थ भारतमय भारत रामतीर्थमय
कहा मिलन विछुरन जबै तुम हममें हम तुममें वसत
बस विमल ब्रह्म वैभव विपुल विश्व व्याप्त केवल लसत७

जबलौं देशहितैषिनको भारत में आदर
जबलौं भुवि अखण्ड शङ्कर वेदान्त उजागर
जबलौं सुभग स्वदेशभक्ति निश्शेष बसति मन
जबलौं जग मग जगत जगत जगमगत प्रेम प्रन
तबलौं निस्संशय रहहि रामतीर्थ कीरति अमल
नितअङ्कितप्रतिउरपटलपर अजरअमरअविचलअटल८

सत्यनारायण ।

आत्मा का अमरत्व ।

मनोविज्ञान में नये आविष्कार* ।

मनोविज्ञान बहुत पुराना शास्त्र है—इतना पुराना है जितना कि विचारशील मनुष्य का मन है। नेत्र ज्योंही बाह्यसृष्टि का निरीक्षण करके भौतिक शास्त्र के कुछ रहस्यों का दर्शन करने लगते हैं, त्योंही मन पूर्वस्थिति पर आकर आत्म-निरीक्षण करने लगता है। मन की इसी क्रिया से मनोविज्ञान और तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति होती है। मन की यह प्रवृत्ति यहीं नहीं रुक जाती। कुछ समय के बाद भौतिक शास्त्रों के रहस्य जानने की उत्कण्ठा शिथिल होजाती है और मानवी मन के यथार्थ रूप का ज्ञान प्राप्त करने की प्रवृत्ति अधिक बलवान हो जाती है। जहाँ जहाँ ज्ञान की वृद्धि हुई है वहाँ वहाँ यही बात, थोड़ी बहुत, पाई जाती है। ग्रीस देश में पहले पहल

---

* गङ्गाजी ।
† सालग्रामस्वरूप कृष्ण का प्यारा नाम ।
‡ अमेरिका । § उर्दू गिसाला ।

* पूना के फर्ग्युसन कालेज के प्रोफ़ेसर भाटे ने, विल्सन कालेज में, डाक्टर स्काट के सभापतित्व में, इस विषय पर अँगरेज़ी में एक व्याख्यान दिया था। उसी का यह सारांश है। माधवराव सप्रे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भौतिक शास्त्र में कुछ आविष्कार हुए; ज्योंहीं उस शास्त्र में कुछ उन्नति होने लगी त्योंहीं ज्ञानी लोगों में इस विषय की चर्चा छिड़ गई कि "मनुष्य क्या है? उसके मन का यथार्थ रूप क्या है?" साक्रेटीस का यह वाक्य—"Know Thyself"—तुम अपने को पहचानो—सब लोगों को विदित है। बेकन ने लिखा है कि—"तत्त्वज्ञान को साक्रेटीस स्वर्ग से भूलोक में लाया।" प्राचीन भारत में भी ऐसाही हुआ था। भौतिक शास्त्रों की थोड़ी सी उन्नति होतेही प्राचीन आर्यों का ध्यान—"मनुष्य और मानवी मन" की ओर आकर्षित हुआ था। मनोविज्ञान और तत्त्वज्ञान हमारे पूर्वज आर्यों के प्रधान विषय थे। जिस समय भारतीय आर्य-जाति सभ्यता के शिखर पर थी उस समय यहाँ मुख्य करके इसी शास्त्र के रहस्यों की खोज की जारही थी। इसी लिए प्राचीन आर्यों और यूनानियों के विचारों में बहुत समता देख पड़ती है। साक्रेटीस का वाक्य—"Know Thyself"—और श्रीशङ्कराचार्य का उपदेश—"आत्मानं बिद्धि" एकही अर्थ के सूचक हैं।

मनोविज्ञान की उन्नति के साद्यन्त इतिहास का वर्णन, और भारतीय तथा यूरोपियन तत्त्वज्ञान की तुलना, मैं नहीं करना चाहता। मैं केवल यही बतलाना चाहता हूँ कि मनोविज्ञान की उन्नति करते करते पश्चिमी लोगों ने आजकल किन बातों की खोज शुरू की है। इसमें सन्देह नहीं कि आजकल मनोविज्ञान की अध्ययनप्रणाली में, और विशेष करके इस प्रश्न का विचार करने में, कि "मानवी मन का यथार्थरूप क्या है?" बहुत सी उन्नति हुई है। अध्ययन-प्रणाली में जो परिवर्तन हुआ है उसके सम्बन्ध में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। पहले से जो प्रणाली अब तक चली आई है उसको अन्तर्दृष्टि (Introspection) कहते हैं। यही प्रणाली शिष्टसम्मत समझी जाती है। प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता लॉक का मत है कि यह प्रणाली "सरल, सहज, और व्यवहार के अनुसार" है। मनोविज्ञान के सब आविष्कार अन्त में इसी प्रणाली की कसौटी पर लगाये जाने चाहिए। इस समय मनोविज्ञान की इस शाखा में बहुत उन्नति हुई है। प्राचीन प्रणाली के साथ "निरीक्षा", "अनुभव" और "तुलना" का भी योग हुआ है और मनोविज्ञान के आविष्कारों के लिए तो मानस-शास्त्रीय परीक्षालय (Psychological Laboratories) वर्तमान समय में अत्यन्त आवश्यक समझे जाते हैं। अब यह देखना चाहिए कि आधुनिक मनोविज्ञान के आविष्कारों से मानवी मन सम्बन्धी प्रचलित मत में क्या क्या परिवर्त्तन हो रहे हैं और जो नूतन मत इस समय स्थिर हो रहा है वह हमारे पूर्वजों के मत के समीप कैसे चला आ रहा है। इस विषय का बोध होने के लिए यह बात जानना आवश्यक है कि यूरोप में कौन सा मत प्रचलित है।

हम यह कह सकते हैं कि अर्थशास्त्र की तरह प्रचलित मनोविज्ञान का उदय इँगलैंड ही में हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि यूरोप के और और देशों ने भी इस विषय में थोड़ी बहुत सहायता की है। जैसे आदम स्मिथ अर्थशास्त्र का उत्पादक कहा जाता है, वैसे ही लॉक को मनोविज्ञान का उत्पादक समझना चाहिए। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में सारे यूरोप में लॉक ही के मतों का दौर-दौरा था; और इस समय मनोविज्ञान के विषय में जो विचार या कल्पनायें प्रचलित हैं वे लॉक ही के मत के अनुलाप हैं।

मानवी मन के सम्बन्ध में लॉक की मुख्य कल्पनायें दो थीं। पहली यह कि, मन अक्रिय है; उस पर बाहर से होनेवाली संवेदनाओं के कारण मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति होती है। लॉक के "Tabula Rasa" शब्द ही में उसकी सब कल्पनायें भरी हैं। इस शब्द का अर्थ "कोरी तख़्ती" है। लॉक के मतानुसार मन एक "कोरी तख़्ती" या कोरे काग़ज़ के समान है। वह बाह्य सृष्टि की संवेदनाओं से भरा जाता है। सब ज्ञान संवेदनाजन्य है। इस लिए लॉक के मत को संवेदनात्मक तत्त्वविचार (Sensational Philosophy) कहते हैं। मानवी मन के सम्बन्ध में लॉक की दूसरी कल्पना यह थी कि, मन में ऐसी कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात नहीं रहती जिसकी चेतना (Consciousness) मन को न हो। मन में किसी कल्पना या विचार का आना, और उसके अस्तित्व की चेतना होना, ये दो बातें भिन्न नहीं हैं; किन्तु एक ही हैं—एकही बात ऐसे शब्दों में कही गई है जिसका अर्थ समान होता है। लॉक ऊपर लिखे हुए अपने मतों को स्वयं-सिद्ध समझता था। उनकी स्वयंसिद्धि को आधुनिक मनोविज्ञानवेत्ताओं ने भी अस्वीकार नहीं किया है। इन मतों को वैज्ञानिक निर्देश (Scientific Dogmas) का अटल पद प्राप्त हो गया है। जैसे किसी धर्म से सम्बन्ध रखनेवाले मतों का बदलना कठिन है वैसे ही उक्त मतों का बदलना कठिन प्रतीत होता है।

लॉक के बाद, इस विषय में, दो तरह के खोज होने लगे। पहले लॉक के—"मन निष्क्रिय है"—इस सिद्धान्त से तत्त्वज्ञ लोग इस बात का विचार करने लगे कि मन मूर्त है या अमूर्त। जब एक बार यह बात स्वीकार कर ली गई कि मन निष्क्रिय है और सब प्रकार का ज्ञान केवल संवेदनाओं ही से होता है तब यह बात माननी ही पड़ेगी कि मन का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है; अथवा मस्तिष्क ही ज्ञान का कारण है। "जैसे पित्ताशय में पित्त रहता है वैसे मस्तिष्क में विचार भरे रहते हैं" इस एक ही वाक्य में मनोविज्ञान का देहात्मवाद (Materialism) कूट कूट कर भरा है। यद्यपि यह मत सर्वमान्य नहीं है, तथापि मनोविज्ञान के प्रायः सब आविष्कार इसी के अनुसार होते हुए देख पड़ते हैं। इसी मत के कारण देहसम्बन्धी मनोविज्ञान (Physiological Psychology) नामक मनोविज्ञान की एक बहुत बड़ी और उपयोगी शाखा उत्पन्न हुई है। इसी मत के कारण मनोविज्ञान में परीक्षापद्धति (Experimental Methods) स्वीकार की गई है। इन प्रयत्नों का परिणाम बहुत हितकारक हुआ है; क्यों कि यद्यपि इन प्रयत्नों से देहात्मवाद सिद्ध नहीं हुआ, तथापि इस बात का पता लग गया है कि मनुष्य के मन के नित्य-व्यवहार मस्तिष्क के द्वारा होते हैं। और यह बात भी सिद्ध हो चुकी है कि मस्तिष्क मन की एक अति अद्भुत यान्त्रिक रचना (Mechanism) है।

लॉक के बाद के खोजों से जो दूसरा सिद्धान्त निश्चित हुआ वह ऊपर लिखे हुए मत के बिलकुल ही विरुद्ध है। इस मत का तात्पर्य यह है—जैसे भौतिक सृष्टि, आदि में, परमाणु रूप है और विकासतत्त्व के अनुसार जैसे उसका विस्तार हुआ है, वैसे ही मन भी परमाणुरूप है और विकासतत्त्व के अनुसार वह परिणत हुआ है। इस मत के अनुसार मनःपरमाणुवादियों ने मनोविज्ञान के बड़े बड़े कठिन और विकट प्रश्नों को हल किया है। वे लोग इस मत पर इतना दृढ़ विश्वास करते हैं कि मनोविज्ञान के गूढ़ और संदिग्ध विषयों का निर्णय करने के लिए इस मत को वे मानों एक अच्छी कुंजी समझते हैं।

ऊपर लिखे हुए दोनों मतवाले यह स्वीकार नहीं करते कि मन चैतन्ययुक्त कोई अद्भुत दैवी शक्ति है। इस कल्पना को वे शास्त्रविहित (वैज्ञानिक-Scientific) नहीं मानते और इसी लिए वे इस पर विश्वास भी नहीं करते। इससे मानवी मन के यथार्थ और श्रेष्ठ स्वरूप की पहचान होने में कुछ बाधा सी आ गई है।

लॉक के इस मत से कि—"जब मन में कोई कल्पना आती है तब उसे उसकी चेतना भी होनी चाहिए,"—मनोविज्ञान के गूढ़ प्रश्नों का आविष्कार करने में बहुत बाधा पड़ती थी। इसमें सन्देह नहीं कि मन में उठनेवाली नित्य और साधारण वृत्तियों की खोज इस मत के अनुसार हो जाया करती थी; परन्तु जब कोई यह कहता था कि मन में असाधारण और नित्य न होनेवाली वृत्तियाँ उठती हैं तब बड़े बड़े मनोविज्ञानी भी यह कहकर टाल दिया करते थे कि, "यदि ये संवेदनायें सत्य होतीं तो हमको भी उनका अनुभव होता। ऐसा नहीं हुआ, इसलिए उन्हें अनियत विकार (Abnormal or Exceptional Phenomena) अथवा मूढ़विश्वास (Superstition) समझना चाहिए"। समय समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर मन पर होनेवाले अपूर्व और अनियत विकारों को मूढ़ विश्वास समझ लेने के कारण मनोविज्ञान के आविष्कारों का एक बहुत बड़ा मार्ग कुछ दिनों तक बन्द सा होगया था। भौतिक शास्त्रों का यह नियम है कि अपूर्व, अद्भुत और अपवादक बातों की ओर विशेष ध्यान दिया जाय और उनकी ख़ूब जाँच की जाय; क्योंकि संसार में कभी कभी होनेवाली अपूर्व, अद्भुत और अपवादक बातों ही से बड़े बड़े महत्त्व के सिद्धान्त प्राप्त होते हैं। भौतिक शास्त्रज्ञों ने इन बातों की ओर जैसा ध्यान दिया है वैसा मनोविज्ञानियों ने नहीं दिया। इसका फल यह हुआ कि मनोविज्ञान की उन्नति कुछ समय तक रुक गई और उसकी बहुत हानि हुई। परन्तु कैंट नामक तत्त्वज्ञ के तत्त्वज्ञान से जर्मनी में मनोविज्ञान की वृद्धि होने लगी। और लॉक के मत की न्यूनता सब लोगों पर विदित हो गई। कैंट ने यह सिद्ध कर दिया कि "मनुष्य और उसका मन कैसे परिणत हुआ"। यह बात जानने के लिए लॉक के सिद्धान्त बिलकुल ही निरुपयोगी हैं। उसके परीक्षात्मक (Critical) तत्त्वज्ञान से मानवी मन के सम्बन्ध में नये विचार उन्नत हुए। ऐसी कल्पना करने से कि मन परमाणु-रूप है, संसार के ज्ञान की उचित मीमांसा नहीं की जा सकती। मन ज्ञान का विषय नहीं है। स्वयं मन ही विषयी है और ज्ञान उसका विषय है। कैंट के मत के अनुसार मन चेतनात्मक है। सारांश, कैंट के चेतनात्मकवाद ने लॉक के अचेतन, निष्क्रिय या देहात्मवाद को मार भगाया! परन्तु मानवी मन-सम्बन्धी ये नये विचार केवल आध्यात्मिक परिभाषा में रहने के कारण मनोविज्ञान पर उनका कोई प्रत्यक्ष असर नहीं हुआ। कैंट के बाद जेम्स आदि मनोविज्ञानियों ने कैंट के सिद्धान्तों के आधार पर खोज करना आरम्भ किया है। उन लोगों ने कैंट की आध्यात्मिक कल्पनाओं को मनोविज्ञान में शामिल न करके, केवल उसके सिद्धान्तों के अनुसार इस विषय में बहुत उन्नति की है। इसी लिए हम, इस समय, पश्चिमी मनोविज्ञान में एक नया आविष्कार देख रहे हैं, जो हमारे पूर्वजों के मत से बहुत कुछ मेल रखता है।

ऊपर कह आये हैं कि लॉक के मतों से मनोविज्ञान की उन्नति में बहुत दिनों तक बाधा पड़ती रही। आजकल मनोविज्ञान की खोज का दायरा बढ़ गया है; पर यह मनोविज्ञानवेत्ताओं के यत्न का फल नहीं है। प्रसंगवशात् दृग्गोचर होने वाली अपूर्व मनोवृत्तियों की चिकित्सा करनेवाले कुछ आयुर्वेदविदों (Medical men) के यत्न का फल है। बुद्धिभ्रंश (Insanity), उन्माद (Hysteria), निद्राभ्रमण (Somnambulism) और स्वप्न आदि विलक्षण पीड़ाजनक मनोवृत्तियों की चिकित्सा करने के समय आयुर्वेदविशारद लोग उन मनोवृत्तियों की सूक्ष्म-निरीक्षा और अध्ययन करने लगे। ऐसा करते करते उन लोगों ने मनोविज्ञान में कई नये आविष्कार किये। उन्होंने यह बात देखी कि मनुष्य की सुषुप्ति-अवस्था में कभी कभी मन के व्यापार बहुत ज़ोर से होते रहते हैं। उस अवस्था में मन पर बहुत आसानी से संवेदना होती है। इसका प्रमाण यह है कि, जो बातें मनुष्य की जागृतावस्था में नहीं हो सकतीं वे उसके निद्राभ्रमण* (Somnambulism) में सहज में हो-जाया करती हैं। इसी तरह उन्माद की अवस्था में भी ऐसे विलक्षण मानसिक व्यापार देख पड़ते हैं जिनकी चेतना मन को कुछ भी नहीं होती। इस विषय पर अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। ऊपर लिखे हुए नये आविष्कारों से लॉक का यह मत भूल का ठहरा कि मन में ऐसी कोई बात नहीं रह सकती जिसकी चेतना मन को न हो। और यह बात तो अनेक प्रत्यक्ष प्रमाणों से सिद्ध हो गई है कि, जिन विषयों का ज्ञान मन को जागृतावस्था में नहीं होता, उनके विलक्षण मानसिक व्यापार उस समय देख पड़ते हैं जब अपवादक मनोवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। इस तरह अपवादक मनोवृत्तियों की चिकित्सा करते करते द्विविध-चेतना (Double consciousness)

* निद्राभ्रमण एक रोग है जिसमें निद्रित आदमी पड़ा नहीं रहता किन्तु इधर उधर घूमा घामा करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पता लगा। यह नया आविष्कार मनोविज्ञानियों को भी स्वीकार करना पड़ा। इससे मनोविज्ञान का दायरा और भी बढ़ गया और खोज करने वाले लोगों को उसकी उन्नति करने में उत्साह हुआ। देखिए, जब कोई मनुष्य उन्माद-अवस्था में रहता है तब उसकी नित्य और पूर्व की यह चेतना, कि मैं अमुक मनुष्य हूँ, कुछ समय के लिए नष्ट हो जाती है; और उस चेतना के स्थान में एक दूसरी ही नई चेतना उत्पन्न हो जाती है। उन्माद-अवस्था में वह अपने पहले अनुभव भूल जाता है और नये तथा अपूर्व अनुभव व्यक्त करता है। तात्पर्य्य यह कि, एक ही मनुष्य के शरीर में भिन्न भिन्न और कदाचित् परस्पर अपरिचित दो व्यक्तियाँ भिन्न भिन्न अनुभव व्यक्त करती हुई देख पड़ती हैं।

ऊपर लिखी हुई अपूर्व बातों के विषय में खोज करते करते मेस्मरिज़्म की भी कुछ नई बातें प्रकट हुई हैं। इन बातों से तत्त्वज्ञों का ध्यान मनुष्य के मन के सम्बन्ध में खोज करने की ओर अधिक आकर्षित हुआ। सन् १८८२ ई० में शारीर और मानस शास्त्रों में पारंगत लोगों का एक समाज स्थापित हुआ। इस समाज ने पहले पहल आत्मा के स्वतंत्र अस्तित्व के सम्बन्ध में विचार करना आरम्भ किया। उसने यह सम्मति दी कि, इन्द्रिय द्वारा प्राप्त होने वाले ज्ञान के अतिरिक्त, स्वयं मन के संकल्प से भी कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। आत्मा के स्वतंत्र अस्तित्व के सुबूत इकट्ठा करने के लिए समाज ने सब सभ्य और सुधरे हुए देशों के विद्वान् और तत्त्वज्ञानी लोगों को पत्र भेजे। उन लोगों से यह कहा गया कि जब आपको सच्चे स्वप्न और मृत मनुष्य अथवा अन्य देश में रहने वाले मनुष्यों की आत्मा के दर्शन की कोई बातें मालूम हों तब उनको ख़ूब जाँच करो और विश्वास करने योग्य सुबूत इकट्ठा करके समाज के पास भेज दो। इससे विश्वास करने योग्य बहुत सी बातें प्रकट हुईं। जब अनेक स्वप्नों की बातें सच्ची निकलीं तब यह शंका उत्पन्न हुई कि स्वप्न और उसके अनुसार होनेवाली बातों में कुछ तो भी कार्य्यकारणभाव अवश्य होगा। इसी तरह मृत मनुष्य अथवा अन्य देश में रहने वाले मनुष्य की आत्मा के दर्शन की भी बहुत सी बातें यथार्थ पाई गईं; परन्तु देहात्मवादियों (Materialists) ने कहा कि यह केवल भ्रम या आभास था। यद्यपि देहात्मवादियों के आक्षेप का अकाट्य खंडन नहीं किया गया; तथापि इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य की सब इन्द्रियों और विचारशक्ति के पूर्ण जागृत रहने पर भी आत्मा का दर्शन हो सकता है।

भूत या पिशाच से पीड़ित आदमियों की बातों का भी सुबूत इकट्ठा किया गया है। जब पाइपर नामक स्त्री के शरीर में भूतसञ्चार होता था तब वह अपने सम्मुख आने वाले सब लोगों का पूरा पूरा हाल बयान करती थी। बेहोश रहने पर भी वह पूछे हुए सब प्रश्नों के उत्तर काग़ज़ पर लिख देती थी। डाक्टरों ने परीक्षा करके यह सिद्ध कर दिया था कि भूत-सञ्चार के समय वह होश में न थी। अमेरिका और यूरोप के बड़े बड़े मनोविज्ञानियों ने उसकी परीक्षा की। जो देहात्मवादी थे वे कहते थे कि भूत-सञ्चार के समय मनुष्य और भी अनेक अद्भुत बातें बतला सकता है, जो भाषा वह नहीं जानता उसमें वह कविता कर सकता है और बहुत से चमत्कारिक काम कर सकता है। इसका कारण वे लोग यह बतलाते थे कि, भूत-सञ्चार की अवस्था के पहले, उस व्यक्ति ने उन बातों का कुछ अनुभव किया होगा, या उसने वे बातें कभी सुनी या देखी होंगी। वही बातें भूत-सञ्चार की अवस्था में उसके मुँह से निकलती होंगी। इसमें सन्देह नहीं कि यह कारण कितनेहीं भूत-सञ्चारों के सम्बन्ध में ठीक हो सकता है; पर पूर्वोक्त स्त्री के विषय में यह कारण ठीक नहीं, क्योंकि जो बातें वह बतलाती थी उनमें से किसी का भी कभी उसने अनुभव नहीं किया था।

सारांश यह कि, आत्मा के समान कोई स्वतन्त्र तत्त्व मनुष्य के शरीर में है। वह तत्त्व मनुष्य की मृत्यु के साथ नष्ट नहीं होता और उसको पूर्व जन्म की कुछ बातों का ज्ञान रहता है। ये सिद्धान्त स्वीकार करने के लिए, ऊपर लिखे हुए आविष्कारों से बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता मिली। हम यह नहीं कह सकते कि ये बातें शास्त्रीय दृष्टि से निर्विवाद सिद्ध हो गई हैं; तोभी यह बात सिद्ध है कि मनुष्य की प्राचीन और प्रचलित कल्पनायें सर्वथा निरर्थक नहीं हैं। चाहे इन कल्पनाओं में असत्य, मूर्खता और चालाकी का बहुत अंश हो, तोभी उनमें सत्य का भी कुछ अंश ज़रूर है। इसके सिवा भौतिक शास्त्रों में जो इस समय उन्नति हुई है उससे भी आत्मा का अमरत्व सिद्ध होता है। जिस समाज का उल्लेख ऊपर किया गया है उसने इस विषय के बहुत से सुबूत इकट्ठे किये हैं।

इस तरह यूरोप के लोग आधुनिक मनोविज्ञान में विलक्षण आविष्कार कर रहे हैं। हम अनुमान से कह सकते हैं कि इन नये आविष्कारों से हमारे पूर्वज आर्यों का तत्त्वज्ञान इस समय की पश्चिमी दुनिया को अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। हमारे प्राचीन तत्त्वज्ञान के अनुसार यह जगत् देखने भर को है। वह एकही परमतत्त्व का आवर्त्त है। जीवात्मा, परमात्मा का एक विशेष रूप मात्र है। परमात्मा सर्वव्यापी और अविनाशी है। जीवात्मा शरीर से भिन्न है। शरीर का नाश होने से जीवात्मा का नाश नहीं होता; क्योंकि वह परमात्मा का अंश होने के कारण अमर है। पूर्ण ज्ञान होते ही हम यह अनुभव कर सकते हैं कि जीवात्मा और परमात्मा एक हैं—भिन्न नहीं हैं। हमारे पूर्वज आर्यों ने मनोविज्ञान का खूब अभ्यास किया था। उन्होंने योगमार्ग से उसकी उन्नति की थी। हमारे तत्त्वज्ञान का यह सिद्धान्त है कि आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमको अपने मन के भीतर ही खोज करना चाहिए—उसके बाहर जाने की ज़रूरत नहीं है। जब हम अपनी सब इन्द्रियों को अन्तर्मुख करके और मन के सब व्यापारों को निश्चल करके एकाग्र अन्तःकरण से परमात्मा के ध्यान में मग्न होंगे तब हमको आत्मस्वरूप का साक्षात्कार होगा। यह सिद्धान्त अनुभवजन्य है—अनुमेय नहीं है। यूरोप के तत्त्वज्ञ अवलोक, प्रयोग आदि बाहरी मार्गों से आत्मा का स्वरूप जानने का यत्न करते हैं। यह आनन्द और सन्तोष की बात है कि इन दो भिन्न भिन्न मार्गों से यत्न करने वाले तत्त्वज्ञों के अन्तिम सिद्धान्त एकही देख पड़ते हैं। जैसे दो विरुद्ध दिशाओं में बहनेवाली नदियों का किसी एक स्थान में संगम होता है, वैसे ही मनोविज्ञान के दो भिन्न मार्गों के योग का समय आया है। आशा है कि इस संगम का प्रवाह एक होकर शीघ्रगति से आगे बढ़ता जायगा और अन्त में अपने उद्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर मनुष्य मात्र को सुख और सन्तोष देगा।

पहले पहल ज्ञान पूर्व से पश्चिम की ओर गया। वहाँ जाने पर भूमितिश्रेणी से उसको वृद्धि हुई। वह ज्ञान अब फिर पूर्व की ओर लौट कर आने लगा है। ऐसे समय में हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम इस विषय का पूरा अभ्यास करके ज्ञान की वृद्धि करें। अब तक हम लोग अपने पूर्वजों की कमाई हुई पूंजी पर ही अपना निर्वाह करते रहे हैं। पर यह न भूलना चाहिए कि प्राचीन सञ्चय पर ही हम लोग सदा अपना निर्वाह न कर सकेंगे। इस समय पश्चिमी देशों में ज्ञान की प्राप्ति, वृद्धि और उन्नति के लिए अनेक यत्न किये जा रहे हैं। यदि हम लोगों को इस दुनिया में अपना भी नाम क़ायम रखना है तो केवल प्राचीन पूँजी की कीर्ति पर ही सन्तोष न करके हमें भी कुछ काम कर दिखाना चाहिए। प्राचीन ज्ञान के कोरे अभिमान से काम न चलेगा। ज्ञान-प्राप्ति का हमारा यत्न ऐसा होना चाहिए जिससे हमारे पूर्वज आर्यों की कीर्ति दिन दिन और भी बढ़े।

माधवराव सप्रे।

सोऽहम्।

१—करके हम भी बी० ए० पास,
हैं अब ज़िलाधीश के दास।
पाते हैं दो बार पचास;
बढ़ने की रखते हैं आस।

२—खुश हैं मेरे साहिब मुझपर;
मैं जाता हूँ नित उनके घर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुफ़्त कई सरकारी नौकर
रहते हैं अपने घर हाज़िर ।

३—पढ़कर गोरों के अख़बार
हुए हमारे अटल विचार;
अंग्रेज़ी में इनका सार
करते हैं हम सदा प्रचार ।

४—वतन हमारा है दो-आब
जिसका जग में नहीं जवाब;
बनते बनते जहाँ अज़ाब
बन जाता है असल सवाब

५—ऐसा ठाठ अजूबा पाकर
करें किसी का क्यों मन में डर !
खाते पीते हैं हम जी-भर;
बिछा हुआ रखते हैं बिस्तर ।

६—हमे जाति की ज़रा न चाह;
नहीं देश की भी परवाह ।
हो जावे सब भले तबाह;
हम जावेंगे अपनी राह ।

७—खोना रोज़ी लगी लगाई;
किसने ऐसी बुद्धि सिखाई !
जादूमय सरकारी पाई*
कर देती है पर्वत राई !

८—पड़े एक दिन पाँव पसार
पढ़कर हम अपने अख़बार
करते थे यह सोच-विचार—
कब होते हैं तहसिलदार !

९—इतने में लेखक हिन्दी का
आया एक काल सा जी का,
लगा पँवारा गाने फीका
मानो नया तेल अंडी का !

१०—बाबू साहिब ! तुम हो ज्ञानी;
छोड़ो कहना गिटपिट बानी ।
हिन्दी की कुछ सुनो कहानी—
हिन्दू मत की असल निशानी ।

११—अपनी भाषा का उद्धार
है सब उद्धारों का सार;
अँगरेज़ी के उच्च विचार
हिन्दी में तुम करो प्रचार

१२—खुशामदी तुम से भी बढ़कर
शिव-प्रसाद अँगरेज़ी पढ़कर
थे हिन्दी के लेखक आगर,
जिससे था उनका अति आदर ।

१३—सुनते ही जल उठा कलेजा;
बोला मैं नालायक़ रे ! जा !
क्यों बकता है बातें बेजा ?
नाहक़ क्यों खाता है भेजा ?

१४—उसने कहा जोड़कर हाथ,
हिन्दी के हुज़ूर ही नाथ ।
जो इसका छोड़ेंगे साथ,
तो यह सचमुच हुई अनाथ ।

१५—इस पर मुझे दया कुछ आई;
लेखक को फिर हुई ढिठाई ।
उसने फिर निज कथा सुनाई;
फिर हिन्दी की गाथा गाई ।

१६—हरिश्चंद्र अँगरेज़ी-ज्ञाता,
होकर हरिश्चंद्र से दाता,
बने मातृ-भाषा के त्राता;
भूले कभी न हिन्दी-नाता ।

१७—थे आचार्य अम्बिकादत्त;
हो सकते थे तुम से मत्त ।
कभी न उनका भड़का पित्त;
रहा सदा हिन्दी में चित्त ।

१८—बंकिमचंद्र सिशन के थे जज
तुम से हैं जिनके पद की रज ।
बंगाली की है जो सज धज
वह है उसी वीर का कारज ।

* पाई = आने का बारहवाँ हिस्सा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९—इस पर हुआ मुझे फिर क्रोध;
लेखक ने फिर किया प्रबोध।
देख सत्य उसका अनुरोध
काट न कुछ कर सका विरोध।

२०—फिर उसने निज धुन आलापी;
ख़बर पुरानी फिर से छापी।
जिसे न भाषा-माया व्यापी
है जग में वह पूरा पापी।

२१—विष्णु कृष्ण और आगर कर
अँगरेज़ी के पूर्ण प्रोफ़ेसर
भरते रहे मरहटी का घर
लिख लिख लाखों लेख मनोहर।

२२—अच्छे अच्छे हिन्दुस्तानी
अब भी लिखते हैं निज बानी।
केवल तुम से कुछ अभिमानी
किया करें हैं आनाकानी।

२३—हुआ बोलना हिन्दी सही
मानो पीना खट्टा मही;
लोक-लाज भी जब सब बही
तब बी० ए० महिमा क्या रही।

२४—कड़वी ये बातें लेखक की
सुनकर मेरी छाती धड़की;
गर्मा भी भेजे से सरकी;
भाषा-रुचि मन में कुछ खरकी।

२५—लेखक ने तब किया प्रणाम;
जाने लगा बताकर नाम;
मैंने उससे कहा सलाम!
सोचूँगा अब मैं यह काम।

२६—गया एक दिन साहिब के घर;
बोला मैं निज शीश झुकाकर;
हे हुज़ूर! हे गुर्बा-परवर!
क्या हिन्दी लिखने में है डर?

२७—साहिब हँसकर बोले, वाह!
पूँछी तुमने ख़ूब सलाह!
अजी, जहाँ होती है चाह
वहाँ निकल आती है राह।

२८—सब लिखते हैं अपनी बोली—
राजा, बाबू और तँबोली।
लिखना गुण है, नहीं ठठोली।
क़लम देख डरती है गोली।

२९—पर लिखना निर्दोष निबंध
जिनमें हो न जोश की गंध।
सब से अच्छा छंद-प्रबंध,
या नटवर का दशम-स्कंध।

३०—सरस्वती जो मासिक पुस्तक
उसमें लिखते हैं एम० ए० तक।
राजनीति की उसे नहीं झक;
लिखो उसीमें तुम भी निधड़क।

३१—सुनकर हुई साहबी सम्मति
सांप-छछूंदर की भाई गति;
स्वारथ यहाँ वहाँ भाषा-रति,
हाय दिशा दोनों में दुर्गति!

३२—घर में आकर किया विचार,
कैसे हो यह बेड़ा पार!
इधर कुआ सा निज-संसार;
खाई उधर देश-उपकार!

३३—सरस्वती का अंक मँगाकर
बाँचा उसका अक्षर अक्षर;
जज, वकील, व्यापारी, टीचर*,
सब के पाये लेख मनोहर।

३४—दुबिधा दुर्गम देख हमारी
बोली आकर मेरी प्यारी,
किस निमित्त है यह तैयारी?
हुई कौनसी चिंता भारी?

३५—उसे सुनाया सब वृत्तांत
जिससे हुआ चित्त कुछ शांत।

* टीचर = अध्यापक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोली वह प्रिय वचन नितांत,
इसकी क्या चिंता है, कांत !

३६—लेकर आप चार छः लेख
देवैं खींच बाहरी रेख
मैं रच दूंगी पूरा भेष
पीछे आप लीजियो देख।

३७—सुन प्यारी के प्यारे बैन
भींजे प्रेम-वारि से नैन;
मन अधीर ने पाया चैन।
हुआ शान्ति-सुषमा का ऐन।

३८—फैली मन में जोत नवीन;
विकस उठा झट हृदय मलीन।
दुष्ट विचार दुरे प्राचीन;
रही ज़रा भी मेख न मीन।

३९—"गुण-कृत सन्निपात नहिँ केही।
को न मान मद व्यापेउ जेही॥
यौवन-ज्वर केहि नहिँ बलकावा।
ममता केहिकर यश न नसावा॥"

४०—सरस्वती के प्रिय संपादक !
वाणी के अनन्य आराधक !
मुझे समझिए अपना भाई;
अब है बुद्धि ठिकाने आई।

'बी० ए०'।

ढाके की मलमल।

"कालः करोति पुरुषं दातारं याचितारञ्च।"

काल की भी क्या ही विचित्र लीला है। कल जो मालामाल था, सर्वशिरोमणि था, आज वही अकिञ्चन और सब का तिरस्कार-भाजन बन रहा है। कल जो पराया मुँह ताकते थे, जंगली कहलाते थे, बदन पर जिनके वस्त्र का नाम न था, आज वही मालामाल हो रहे हैं; आज वही सभ्य-शिरोमणि समझे जाते हैं। काल ! धन्य तेरी माया !

पाठक, इस समय हमारे देश की कैसी दुर्दशा हो रही है ! क्या आप समझते हैं हमारा देश सदा से ऐसा ही दुर्दशाग्रस्त रहा है ? क्या आप समझते हैं आपका भारत सदा इसी प्रकार विदेश का मुँह ताकता रहा है ? नहीं, कभी नहीं। सौ सवा सौ वर्ष पहले हमारे देश की यह दशा न थी जो आप अब देख रहे हैं। पहले यह भारत सब देशों में समुन्नत समझा जाता था। पहले यह व्यापार-धन्धे में सब से बढ़ा चढ़ा था। पहले यह हर चीज़ के लिए दूसरे देशों का मुहताज न था, बल्कि पहले यह और और देशों की ज़रूरतों को रफ़ा करता था।

और बातों को जाने दीजिए। एक कपड़े ही को लीजिए। पहले इस देश में ऐसे ऐसे कपड़े तैयार होते थे, जिनकी बराबरी आज तक कोई देश भी नहीं कर सका। पहले हमारे देश में ऐसे ऐसे कपड़े तैयार होते थे, जिन्हें विलायत वाले भी देखकर दंग रह जाते थे। यों लिखने को तो बहुत सी बातें हैं; पर आज, हम, ढाके की मलमल के सम्बन्ध में ही कुछ लिखते हैं। सुनिए।

जिन दिनों ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत में पदार्पण किया और विदेशी बनियों ने व्यापार करने के लिए ढाके में पहली कोठी बनाई, उन दिनों कपड़े के कारोबार में ढाका बहुत बढ़ा चढ़ा था। उन दिनों ढाके में रुई भी बहुत बढ़िया तैयार होती थी, सूत भी बहुत बढ़िया काता जाता था और कपड़े की बुनाई का तो कहना ही क्या था। उन दिनों ढाके का कपड़ा ऐसा सर्वप्रिय था कि सारा भारत ही नहीं फ़ारस, मिस्र और यूरप तक में जाता था। बात यह थी कि उस समय वैसा कपड़ा और कहीं बनता ही न था। बनता ही न था क्या माने, कोई बना ही न सकता था और आजतक कोई बना भी नहीं सका। इस बात का ढाकेवालों ही को नहीं, बल्कि सारे भारत को अभिमान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेन्स साहब की लिखी हुई रुई-सम्बन्धी एक किताब है। उसमें उन्होंने ढाके के कपड़ों की बड़ी तारीफ़ की है। उसमें लिखा है कि "ढाके का बना हुआ कपड़ा—विशेष कर मसलिन नामक कपड़ा—देखने से ऐसा मालूम होता है जैसा देवताओं ने बनाया हो। उसको देखकर यह मालूम ही नहीं होता कि यह मनुष्यों का बनाया हुआ है।"

उस समय ढाका ज़िले के गाँव गाँव में सूत कातने और कपड़े बुनने के कारख़ाने जारी थे। पाठक, सूत कौन कातता था, आप जानते हैं? उस समय हमारे देश में सूत कातने को कोई कल न थी। यह काम बड़े बड़े घराने की स्त्रियाँ करती थीं। उन हिन्दू-रमणियों के कर-सरोरुहों की करामात सुनिए।

पहले दिल्ली-दर्बार में ढाके से कुछ सूत भेजा गया था। उस १५० हाथ लंबे सूत का वज़न सिर्फ़ एक रत्ती था! पर ढाका ज़िले के एक सुनारगाँव नामक गाँव में १७५ हाथ लंबे सूत का वज़न एक रत्ती पाया गया था! यह सब हमारे देश की हिन्दूललनाओं के हाथों की करामात थी!

ढाका के रेज़ीडेंट साहब ने १८४६ ईसवी में एक किताब लिखी। उसमें लिखा है कि एक बार सिर्फ़ आध सेर रुई में २५० मील लंबा सूत तैयार किया गया था!

ढाके की मलमल का एक थान प्रायः २० गज़ लंबा और एक गज़ चौड़ा होता था। और जो ख़ास मलमल बनती थी, उसका थान कोई १० गज़ लंबा और एक हाथ चौड़ा होता था। इस दस गज़ वाले थान का वज़न आप जानते हैं कितना होता था? सिर्फ़ ८ तोला ४½ माशे! सुनते हैं इसका लिपटा हुआ एक थान अँगूठी के सूराख़ में से आरपार हो जाता था।

ढाके में मलमल से भी बढ़िया एक और कपड़ा होता था। वह तंज़ेब से भी बहुत बारीक होता था। वह बहुत ही हलका होता था। उसका नाम था मसलिन। कहते हैं, उसके पाँच सात थान तो योंही फूँक से उड़ जाते थे।

पूर्वोक्त किताब में लिखा है कि एक स्त्री ऐसा बारीक सूत, दिन भर में, एक तोला कात लेती थी। उस सूत की बारीकी का वर्णन करते हुए एक साहब लिखते हैं कि वह इतना बारीक होता था कि उसका मोटा या पतलापन ख़ाली आँखों से नहीं देख पड़ता था। उसे ख़ुर्दबीन से देखने पर यह बात मालूम हो सकती थी।

एक दफ़े औरंगज़ेब की लड़की ने ढाके के मसलिन का कोई वस्त्र बनवाकर पहना। पर जब उसके बाप ने उसे देखा तब वह उस पर बहुत नाराज़ हुआ। बात यह थी कि उस वस्त्र से उसके सारे अङ्ग दिखलाई देते थे। बाप को नाराज़ होते देख लड़की ने कहा—कई तह करके तो मैंने इसे पहना है। इस पर भी यदि इसका बारीकपन न दूर हो तो मेरा क्या क़ुसूर? नवाब अलीवर्दीख़ाँ के ज़माने में भी बड़ेही बारीक कपड़े पहने जाते थे। सुनते हैं अलीवर्दीख़ाँ के नौकर ने कुछ कपड़े धोकर हरी हरी घास पर सूखने के लिए डाल दिये थे। वह कपड़ा उस घास पर पड़ा हुआ मालूम ही नहीं होता है। घास साफ़ दिखाई देती थी। उस घास के पास ही कोई पशु चर रहा था। वह चरता चरता उस घास को भी चर गया जिस पर कपड़ा पड़ा था। घास के साथ ही वह कपड़े को भी खा गया!

ढाके का ऐसा बढ़िया कपड़ा होने पर भी उसका दाम बहुत कम था। वह बहुत सस्ता था। इतना सस्ता होने का कारण यह था कि मज़दूर सस्ते थे। उन दिनों, अर्थात् १७६० ईसवी में, ॥) से लेकर १॥) मन तक चावलों का भाव था। एक पैसे में दो आदमियों का पेट भर जाता था। इसीलिए मज़दूरी सस्ती थी। पर जब से हमारे पवित्र देश में विदेशी बनियों के चरण पड़े तब से वह बात जाती रही। उनके आने से, या यों कहिए कि हमारे दौर्भाग्य से, दिन दिन खाने पीने की चीज़ें महँगी होती गईं। उसका ब्यौरा सुनिए—

१७६० ईसवी में चावलों का भाव आठ आने मन से डेढ़ रुपया मन तक था, पर वही चावल १८३७ में डेढ़ रुपया मन से दो रुपये मन तक हो गया!

१७६० में जो नमक १) मन के भाव से बिकता था वही १८०० ईसवी में ५) मन तक हो गया!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरसों के तेल को लीजिए। १७६० ईसवी में उसका भाव ३।) मन था; १७८० में ५) मन हो गया और १८३७ में वह इतना महँगा हो गया कि ७) मन तक बिकने लगा!

इसके सिवा पहले एक और बात यह थी कि भूमिकर बहुत कम था।

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने ढाके में आकर सब कपड़े के व्यवसायियों से थोक कपड़ा ख़रीदना शुरू किया। यहाँ तक कि सारा माल उसी की मुट्ठी में आगया। फिर उसने उसे मनमाने दामों पर बेचना शुरू किया। इससे उसने उस कपड़े पर बहुत नफ़ा खाया।

उन दिनों भारत का कपड़ा विलायत में बहुत पसन्द किया जाता था। इसी लिए यहाँ के कपड़े की रफ़्तनी ज़्यादा होती थी। पर भारत के अभ्युदय को विलायतवाले न देख सके। उन्होंने १७०० ईसवी में एक क़ानून बना डाला। उस क़ानून में नियम किया गया कि भारत से कपड़ा न मँगाया जाय। मलमल, आबेरवाँ, तंज़ेब, जामदानी और डोरिया कपड़ों का तो उन्होंने बिलकुल ही 'बायकाट' (बहिष्कार) कर दिया था। ढाके का मसलिन भी विलायत में बहुत जाता था। उसको उन्होंने बिलकुल तो बन्द नहीं किया; परन्तु उस पर १५) सैकड़ा महसूल लगा दिया!

विलायत में, पहले पहल, सन् १७९३ में, कपड़ा बुनने की कल जारी हुई। तब विलायत वाले अपने लिए अपने ही देश में कपड़ा तैयार करने लगे। तब से उन्होंने भारत से कपड़ा लेना प्रायः बंद कर दिया।

जब ढाके का माल बाहर जाना बंद हो गया तब धीरे धीरे उसका व्यवसाय कम हो गया। १८०० ईसवी में ढाका में जन-संख्या दो लाख थी, पर ३७ ही वर्ष बाद, अर्थात् १८३७ में, सिर्फ़ ६८ हज़ार ही रह गई! बात यह हुई कि कारबार मंदा पड़जाने से वहाँ के कुछ जुलाहे खेती करने लगे। कुछ भाग गये। बेचारे करते ही क्या?

अपने देश के गिरे हुए व्यापार-धन्धे को फिर से जगाने के लिए हमें तन, मन, धन से प्रयत्न करना चाहिए। वाकशूरता में हम पास हो गये। अब क्या पास होने पर भी, प्रशंसापत्र मिलने पर भी, फिर उसी क्लास में पड़े रहेंगे? नहीं, अब कर्मशूरता की क्लास में भरती होना चाहिए।

रामजीलाल शर्मा।

चारुमाला।

१—जग में पाकर नर-अवतार,
करो सदा शुभ काज विचार।
जिससे पाओ सुख अभिराम;
जग में रहे तुम्हारा नाम॥

२—सत्य बात और सत्याचार
करो सदा सब का उपकार।
छोड़ो मन के सभी विकार;
जिससे तुम पाओ सुखसार॥

३—क्षमा-खड्ग नित रक्खो पास;
होता उससे शत्रु-विनाश।
क्रोध सभी पापों का मूल;
करो सदा उसको निर्मूल॥

४—दया, धर्म, सब में सिरमौर;
देते यही स्वर्ग में ठौर।
सब जीवों को एक समान
जान, करो सब का कल्याण॥

५—विद्या-धन सम धन नहिँ और,
रहता पास सदा सब ठौर।
विद्यादिक गुण-गण का दान
देता है शुचि पुण्य महान॥

६—पर-दारा, निज माता जान,
पर-धन को तृण-सम अनुमान।
छूते जो न कदापि सुजान,
वे ही पण्डित विज्ञ महान॥

७—सुन्दर मधुर वचन दिन रात,
ईश-वन्दना सायं-प्रात।
करते हैं यह व्रत जो धीर;
जग में उनका सफल शरीर॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८—आलस छोड़ करो पुरुषार्थ ;
जिससे सधे सुखद परमार्थ।
करो सदा इसका उद्योग ;
तजो दुखद विषयों का भोग॥

९—पैदा करके सभी पदार्थ ;
रक्षण उनका करो यथार्थ।
रक्षित वस्तु बढ़ाओ नित्य ;
करो सदा उपकारी कृत्य॥

१०—निस दिन करो सत्य उपदेश ;
जिससे रहे न दुख का लेश।
ज्ञान-भानु का होय प्रकाश ;
अंधकार-अज्ञान विनाश॥

११—निज संतति को कर विद्वान ,
शोभित उनसे करो जहान।
अपनी उचित-आय-अनुसार ,
सदा ख़र्च का करो विचार॥

१२—"सत्संगति मुद-मंगल-मूल";
दुर्जन-संग करो मत भूल।
बिना पुण्य मिलते नहिँ सन्त ;
उनसे होते लाभ अनन्त॥

१३—भूत काल पर दृष्टि न डाल ;
वर्त्तमान के काज सम्हाल।
करके विविध-उपाय-विचार ,
करो मातृ-भाषा-उद्धार॥

१४—दशा देश की देखो मित्र !
क्या से क्या है हुई विचित्र।
इसका भी कर ख़ूब विचार ;
भारत का तुम करो सुधार॥

१५—देशी चीज़ों का अनुराग ,
वस्तु विदेशी का कर त्याग।
करो सभी इसका उद्धार ;
विनती यही पुकार पुकार॥

लक्ष्मीधर वाजपेयी।

अकबर के राजत्वकाल में हिन्दी।

यह ८८ पृष्ठ का एक निबन्ध है। सरस्वती के पाठकों के चिर-परिचित पण्डित सूर्य्यनारायण दीक्षित, बी० ए०, ने इसे लिखा है। उन्होंने इसे "सरस्वती में समालोचना के लिए" भेजा है। आपने हमें आज्ञा दी है कि हम इस पुस्तक पर अपनी सच्ची राय दें। प्रणयानुरोध से हमें ऐसा ही करना पड़ेगा। दीक्षित जी हम पर, और सरस्वती पर भी, बड़ी कृपा करते हैं। अतएव मानव-स्वभाव के वशीभूत होकर, सम्भव था, कि हम उनकी पुस्तक को स्नेहसिञ्चित दृष्टि से देखते, क्योंकि—

"वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा, न वस्तुनि"

स्नेही को स्नेही की बुरी से भी बुरी चीज़ में भी गुणही गुण देख पड़ते हैं। अथवा यों कहिए कि प्रेमही में गुणों का वास रहता है। परन्तु दीक्षितजी "अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः" इस उक्ति के श्रोतृसम्बन्धी स्वयंही उदाहरण बनना चाहते हैं। आपका यह उदार भाव अन्यान्य ग्रन्थ-कर्त्ताओं के अनुसरण करने योग्य है। हिन्दी के लिए यह सौभाग्य की बात है कि उसके प्रेमियों में ऐसे भी उच्चाशय सज्जन हैं जो प्रशंसा के भूखे नहीं, किन्तु अपने गुण-दोषों की सच्ची समालोचना के भूखे हैं। वर्द्धस्व दीक्षितोत्तंस !

अकबर ने ५० वर्ष राज्य किया। इस अर्द्ध-शताब्दी में हिन्दी के कौन कौन कवि हुए, कौन कौन पुस्तकें बनीं, कौन कौन विषयों में परिवर्तन हुआ, किस किस विषय के ग्रन्थ लिखे गये, हिन्दी की उन्नति हुई या अवनति। इन, तथा और भी कितनी हीं बातों का इस पुस्तक में विचार किया गया है। इन सबके विचार करने के लिए समय और अध्ययन चाहिए। हिन्दी के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवि अकबर ही के समय में हुए हैं। उनकी रचनाओं को ध्यान से पढ़ना और उनसे अनेक प्रकार के निष्कर्ष निकाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर उनकी आलोचना करना परिश्रम-साध्य काम है। हर्ष की बात है, पण्डित सूर्य्यनारायण ने इस काम का बहुत अच्छी तरह किया है। आपने इस निबन्ध में अकबर के समय के प्रत्येक हिन्दी-कवि का थोड़ा बहुत हाल लिखा है। उनकी कविता के गुण-दोषों का विचार किया है; और उनकी कविता के नमूने भी दिये हैं। इसके सिवा अकबर के समय में हिन्दी से सम्बन्ध रखनेवाली जितनी घटनायें हुई हैं, सब का उल्लेख किया है। आपका मत है कि अकबर के राजत्वकाल में हिन्दी की बड़ी उन्नति हुई। अपनी इस सम्मति की पोषकता में आपने अनेक प्रमाण भी दिये हैं। उन्नति से सम्बन्ध रखने वाले भौगोलिक, धार्मिक, सामाजिक और भाषा-सम्बन्धी सभी कारणों का आपने विचार किया है। यह सब सहज काम नहीं। बड़े परिश्रम, बड़े खोज और बड़े अध्ययन का काम है। इसलिए पण्डित सूर्य्यनारायण को जितनी प्रशंसा की जाय कम है।

अकबर के समय में हिन्दी-कविता की उन्नति ज़रूर हुई। इसमें कोई सन्देह नहीं। पर इस उन्नति के जो कारण पण्डित सूर्य्यनारायण ने बतलाये हैं वे हमारी समझ में ठीक नहीं। आपकी राय है कि अकबर के राज्य-काल में—

(१) देश में शान्ति होने,

(२) "अकबर और उसके दरबारियों का हिन्दी के कवियों का आदर-सत्कार" करने,

(३) अकबर की राजधानी, आगरा, व्रजमण्डल में होने,

(४) सोलहवीं शताब्दी के मध्य में हिन्दी को प्रौढ़ता प्राप्त होने,

(५) वैष्णवधर्म्म के ज़ोर पकड़ने,

से हिन्दी-कविता उन्नत अवस्था को पहुचो। ये बातें विचार करने से ठीक नहीं मालूम होतीं।

अकबर के समय के हिन्दी के पद्य-साहित्य में नाम लेने लायक़ सौ पचास काव्य तो हैं नहीं। हैं सिर्फ़ दो—अर्थात् रामायण और सूरसागर। रामचन्द्रिका, कवि-प्रिया और रसिकप्रिया आदि भी हैं। पर उनका उतना प्रचार नहीं। हाँ, रामचन्द्रिका का कुछ अधिक प्रचार है; तथापि रामायण, विनयपत्रिका और सूरसागर के बराबर नहीं।

सूर और तुलसी के कविता-विकास का कारण देश में शान्ति का होना नहीं। ये दोनों महात्मा विरागी थे। न इनके पास कुछ धन था, न कोई बड़ी जायदाद जो अशान्ति के कारण लुट जाने का डर होता। इनके लिए शान्ति और अशान्ति प्रायः तुल्य थीं। अशान्ति के समय में धन-सम्पदावाले आदमी भी चोरों और डकैतों के डर से साधु-संन्यासी के भेष में निर्विघ्न विचरण कर सकते हैं। फिर जो सच्चे साधु—सच्चे त्यागी—हैं उन्हें अशान्ति का समय कैसे विघ्नकारक हो सकता है? यदि सूर और तुलसी के समय में घोर राजविप्लव होता तो भी उनके कमण्डलु और गुदड़ी का कोई गाहक न होता। दुराचारी आदमियों को भी साधु के भेष में देखकर उन्हें सताने का किसी को साहस नहीं होता। फिर भला ऐसे सच्चे महात्माओं और ऐसे भक्तशिरोमणियों को कौन बाधा-व्यथा पहुँचाने का साहस करता? अतएव अकबर के समय में चाहे जितनी अशान्ति होती, सूर और तुलसी वैसे ही निर्भय विचरण करते और वैसी ही स्वच्छन्दता से भक्ति-रसपूर्ण कविता बनाते जैसे कि शान्ति के समय में उन्होंने किया। इससे देश में शान्ति का होना उनके कविता-विकास का कारण नहीं।

केशवदास अलबत्ते गृहस्थ थे। वे संसार-त्यागी न थे। पर उनके समय में बुँदेलखण्ड में यथेष्ट शान्ति कहाँ थी? दंगे, फ़साद, लड़ाइयाँ होती ही रहीं और वे अपने रसिक-समाज में मधुप बन कर, कविता-कलिकाओं का रस लेते ही रहे। उन्हें काम था अपनी कविता, अपने इन्द्रजीत और अपने इन्द्रजीत की प्रवीणराय से। समग्र भारत में क़त्ल होता रहे उन्हें क्या परवा? अगर देश में अशान्ति होने से कविता बन्द हो सकती तो मुसलमानों के मुल्क पर चढ़ाई पर चढ़ाई करने, और मारने-काटने, लूटने-पाटने में हमेशा लगे रहनेवाले शिवाजी के दरबार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रह कर भूषण कवि कभी अच्छी कविता न बना सकते। कवियों को कविता की जिस समय स्फूर्ति होती है उस समय देश की अशान्ति का उन पर कुछ भी असर नहीं होता। देश की तो कोई बात ही नहीं, यदि उनके कुटुम्ब पर, नहीं, ख़ुद उन पर भी कोई संकट पड़े, तो भी उनकी कविता का विकास रुक नहीं सकता। जो कवि अपनी सौतेली माँ से पीड़ित होकर घर से निकल भगा और निकलते ही एक तेली को सामने आते देख यह कह उठा कि—

इक तेलो कहा करिहै तिहि को
सौ-तेली बसें जिहिके घर माँही।

उसे उस समय थोड़ा दुःख न था। देश में अशान्ति होने से कवियों की प्रतिभा पर जितना असर पड़ सकता है ख़ुद अपनेही ऊपर आपत्ति आने से उससे तो अधिक ही असर पड़ता है। पर स्फूर्ति होने से आपदा विपदा का सामना कविता को नहीं बन्द कर सकता। शेख़ सादी के समय में फ़ारस में कौन बड़ी शान्ति थी। फिर वे किस तरह गुलिस्ताँ और बोस्ताँ ऐसी अनमोल पुस्तकें बना सके? अरब में कितने ही कवि ऐसे हो गये हैं जिनको बहुत कम शान्ति-सुख नसीब हुआ। पर, इससे उनके कविता-कलाप में कुछ भी बाधा नहीं आई।

रहे रहीम, गंग, नरहरि, क़ादिर, मुबारक, रसखानि और नरोत्तमदास आदि अकबर के समय के अन्यान्य कवि, सो उनके कोई ऐसे ग्रन्थ प्रसिद्ध नहीं जिनसे हिन्दी की विशेष उन्नति मानी जासके। इस तरह के कवि शान्ति के समय में भी कितने ही हुए और अशान्ति के समय में भी। उनकी कविता का कारण शान्ति का होना कदापि नहीं कहा जा सकता। शान्ति के ही समय में यदि कविता हो सकती तो पुराने ज़माने में भाट, चारण आदि अपने आश्रयदाता राजाओं के साथ चढ़ाइयों पर न जाते और वहाँ समयानुकूल कविता बना कर योद्धाओं को उत्साहित न करते।

आश्रय मिलने से कविजन आराम से रह सकते हैं। उन्हें कविता करने में सुभीता ज़रूर होता है। पर आश्रय-प्राप्ति कविता का कारण नहीं। स्मरण रहे हम अकबर के समय की बात कर रहे हैं, आजकल की नहीं। राजाश्रय यदि कविता-निर्म्माण का कारण या सहायक होता तो सूर, तुलसी, होमर और सादी कदापि ऐसे उत्तमोत्तम काव्य न लिख सकते। बाबू हरिश्चन्द्र को किसका आश्रय था? माइकेल मधुसूदन को किसको मदद थी? अकबर के ज़माने में जो हिन्दी की इतनी उन्नति हुई वह विशेष करके तुलसी और सूरदास की रचनाओं से। इन कवियों को किसी का आश्रय न था—न अकबर का, न उसके दरबारियों का। केशवदास को आश्रय ज़रूर था। पर कौन कह सकता है कि यदि उन्हें आश्रय न होता तो वे रामचन्द्रिका आदि ग्रन्थ न बना सकते? पुराने ज़माने में जो अच्छे विद्वान् अथवा अच्छे कवि थे वे रूखा-सूखा खाकर और मोटा कपड़ा पहन करही ख़ुश रहते थे। साधारण अवस्था में रहने से उन्हें कोई कष्ट न होता था—अथवा यों कहिए कि उसे वे कष्ट समझतेही न थे। उस स्थिति में रह कर भी वे विद्याव्यासङ्ग में लगे रहते थे और नये नये काव्य और नये नये ग्रन्थ बनाया करते थे। ख़ुद हमारे जन्मग्राम के पास कई विद्वान् ऐसे हो गये हैं जो सदा अपने घर ही पर रहे और पूजा-पाठ करके बसर करते रहे। पर कई ग्रन्थ वे ऐसे छोड़ गये हैं जो राजाश्रय में रहनेवाले विद्वानों से नहीं बने। अतएव यह कहना कि राजाश्रय के कारण अकबर के समय में हिन्दी की उन्नति हुई, ठीक नहीं। हाँ यदि उस समय के राजे, महाराजे और धनवान् आदमी कवियों और पण्डितों को अपने यहाँ रख कर ग्रन्थ निर्म्माण कराते और उन ग्रन्थों के कारण हिन्दी की उन्नति होती तो राजाश्रय का कारण ठीक माना जाता। हाँ अकबर के समय में केशवदास को ज़रूर राजाश्रय था। पर उनकी पुस्तकें, सूरसागर और तुलसीदास की पुस्तकावली के मुक़ाबले में महत्त्व में भी कम हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिमाण में भी कम। अतएव केशवदास के सम्बन्ध में, राजाश्रयही के कारण, यदि हिन्दी की उन्नति मानी जाय तो भी यह उन्नति, कुल उन्नति के सामने कोई $\frac{1}{8}$ से अधिक न होगी। पर, याद रहे, केशव का आदर न अकबर ही ने किया, न उसके दरबारियों ही ने।

रहे क़ादिर, रसखानि और नरहरि आदि कवि सो उनके ग्रन्थ प्रसिद्ध नहीं। अतएव यदि उनका राजाश्रित होना मान भी लिया जाय तो उसके कारण हिन्दी की उन्नति नहीं मानी जासकती। इन कवियों के पहले और पीछे जो कवि हुए हैं उन्होंने आश्रय न होने पर भी क्या इनसे कम कविता की है?

अगर अकबर की राजधानी आगरे में न होती तो क्या तुलसीदास रामायण, विनयपत्रिका और दोहावली आदि काव्य न बनाते? क्या केशवदास अपनी पुस्तकों की रचना न करते? क्या सूरदास का सूर-सागर न बनता? इन लोगों ने न अकबर से कोई सम्बन्ध रक्खा, न उसकी राजधानी से। इनको छोड़कर औरों में से कुछ ने यदि अकबर और आगरे से सम्बन्ध रक्खा भी तो उनका सम्बन्ध रखना न रखने के बराबर है; क्योंकि अकबर के ज़माने में हिन्दी को उन्नत करने योग्य उन्होंने कोई ग्रन्थ नहीं बनाये। अतएव इस कारण के विषय में विशेष कहने सुनने की ज़रूरत नहीं।

पण्डित सूर्य्यनारायण का राय है कि सोलहवीं शताब्दी के मध्य में हिन्दी प्रौढावस्था को पहुँच गई थी, इससे उसकी उन्नति हुई। अच्छा अब इस बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में वह और भी अधिक प्रौढ़ हो गई है न? तो उस समय जो हिन्दी-काव्य बन गये उनसे उत्कृष्ट काव्य अब बनने चाहिए थे। पर तब से लेकर आज तक रामायण, रामचन्द्रिका और सूरसागर से भी बढ़िया और कितने ग्रन्थ बने? बढ़िया की तो बात ही नहीं, घटिया भी नहीं बने। फिर भला भाषा की प्रौढ़ता उस समय की हिन्दी की उन्नति का कारण कैसे मानी जासकती है? मलिक महम्मद जायसी के समय में भाषा क्या कम प्रौढ़ थी?

हाँ, वैष्णव-धर्म्म उस समय ज़रूर ज़ोर पर था। उसके कारण हिन्दी की उन्नति मानी जाय तो मानी जासकती है। परन्तु थोड़ी। क्योंकि तुलसी और केशव के ग्रन्थ इस धर्म्म के ज़ोर पकड़ने के कारण नहीं बने।

हमारी समझ में अकबर के ज़माने में जो हिन्दी के अच्छे अच्छे ग्रन्थ बने, और उनके द्वारा जो हिन्दी की उन्नति हुई, वह एक आकस्मिक घटना है। दैव-योग ही कुछ ऐसा आगया कि दो तीन अच्छे अच्छे कवि उस समय उत्पन्न हो गये। उनके ग्रन्थों के निर्म्माण का कारण न अकबर का आश्रय था, न देश में शान्ति की स्थापना, न राजधानी का आगरे में होना, न हिन्दी का प्रौढ़ता को पहुँच जाना। राजा विद्याव्यसनी होने से उसको आश्रयदत्त भाषा की उन्नति होती है। विक्रमादित्य, हर्षवर्द्धन, भोज, जयचन्द आदि राजे इसके उदाहरण हैं। कवियों और पण्डितों ने इनके आश्रय में रह कर संस्कृत के अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ बनाये। पर अकबर के दरबार के कवियों ने कोई ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ नहीं बनाये जिनके कारण हिन्दी की उन्नति मानी जाय। जो उन्नति हुई है वह और ही कवियों की, की हुई है।

आशा है, पण्डित सूर्य्यनारायण हमें अपनी इस स्वतन्त्र सम्मति के लिए क्षमा करेंगे। आपकी आज्ञा ही को मान्य करके हमने स्पष्टतापूर्वक सम्मति देने का साहस किया है।

श्रीगुरु गोविन्दसिंहजी।

(४)

एक दिन गुरु गोविन्दसिंह ने अपने सब शिष्य पहाड़ी राजाओं को इकट्ठा कर एक बड़ा भारी दर्बार किया और जब सब लोग इकट्ठे हो गये तब एक ऊँचे चबूतरे पर खड़े होकर वे बड़े ज़ोर से बोले कि "भाइयो, देखो आज सैकड़ों वर्ष हुए हम म्लेच्छों के गुलाम बने हुए हैं, जो हम लोगों पर मनमाना ज़ुल्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने से ज़रा भी नहीं हिचकते । इसका कारण क्या है ? केवल यही कि हमलोग नाम मात्र को क्षत्रिय कहलाते हैं । हम में क्षत्रियों के असली गुण नहीं हैं । भाइयो, उठो और अपने क्षत्रियोचित कर्म्मों को सिद्ध कर दिखाओ कि तुम दोग़ले नहीं ! वरन असल क्षत्रियों के वीर्य से पैदा हुए हो और तुमने क्षत्रानी माता का दूध पिया है । हे वीरो ! हे आर्य ऋषियों और भीष्म अर्जुन ऐसे शूर वीरों की सन्तानो ! ज़रा आँख खोल कर देखो तो तुम्हारी क्या दशा होरही है । विदेशी मुसल्मान लोग तुम लोगों पर क्या क्या ज़ुल्म कर रहे हैं ; कितनी गौ माताओं को नित्य अपने ख़ूनी ख़ंजरों का शिकार बनाते हैं ; तुम्हारी सती स्त्रियों और सुकुमारी कन्याओं का धर्मभ्रष्ट कर रहे हैं ; बहुत सी भगनियों ने इन दुराचारों से अपना सतीत्व बचाने के लिए अग्नि में कूद और ज़हर का प्याला पीकर अपना प्राण दे दिया है ! देखो, इनके कारण महात्मा अर्जुनजी ने रावी नदी में डूब कर प्राण त्यागा । इन के दर्पचूर्ण करने की चेष्टा में महात्मा हरगोविन्द जी ने अपने जीवन को न्योछावर कर दिया और अन्त में इन्हीं अत्याचारियों से तंग आकर हमारे परम पूज्य पिता गुरु तेग़बहादुरजी ने, धर्म के नाम पर, बिना हिचके, अपना सिर जल्लाद के फ़ौलादी ख़ंजर के नीचे रख दिया ; पर कलंक के टीके से अपने को बचा लिया । क्या उन्हीं गुरुओं की सन्तान और शिष्य होकर हमलोग चुपचाप बैठे रहेंगे ? उठो, चित्त में उत्साह को धारण करो और हाथ में अस्त्र लेकर यह सिद्ध कर दिखाओ कि हम शूर-वीर हरगोविन्द और महात्मा तेग़बहादुर के सिक्ख, निर्बल हाथ से तलवार धारण नहीं करते ।"

इस जोशीली वक्तृता को सुन कर सब सिक्ख फड़क उठे और सबों ने बड़े ज़ोर से चिल्ला कर, "वाह गुरु की फ़तह" की ध्वनि की और साथही तलवार निकाल कर प्रतिज्ञा की कि, "आज से हम सब लोग एक दिल होकर धर्म के नाम पर अपने प्राण देने से ज़रा न हिचकेंगे, और जब तक दुराचारी यवनों को देश से निकाल नहीं देंगे तब तक दम न मारेंगे ।" इस पर हमारे शूर-वीर चरितनायक ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और बहुत से जोशीले वचनों से उन्हें और भी उत्साहित कर दिया ।

इसके बाद, चतुर गुरु साहब ने एक गधे को शेर की खाल उढ़ा कर गाँव में घूमने को छोड़ दिया, जिसे देखतेही सब लोग भागने लगे । अन्त को एक शूर-वीर सिक्ख तलवार निकाल कर उस पर झपटा । तलवार की चमक और उस सिक्ख का झपटना देख कर वह गधा बड़े ज़ोर से रेंकता हुआ पूँछ उठा कर भागा । जब उस सिक्ख ने इसकी आवाज़ सुनकर पहिचाना कि यह गधा है तब फ़ौरन निर्भय होकर हाथ का डंडा खींच कर उसे ऐसा मारा कि वह वहीं गिर पड़ा । तब तो गाँव में बड़ा हौरा मचा और जब गुरु गोविन्दसिंह के पास यह समाचार पहुँचा तब उन्होंने कहा कि यह गधा हमी ने छोड़ा था । जब सिक्खों ने गुरु के ऐसा करने का कारण पूछा तब वह बोले कि "तुम लोग भी गधे के समान हो । हमने शेर की खाल उढ़ाने की तरह तुम लोगों को सिक्ख बना दिया है, पर जैसे अपनी असली बोली बोलने से गधा मारा गया, वैसे ही तुम लोग भी यदि अपनी क़ौमी रीति, नीति, जाति, पाँति और बोल चाल पहले की तरह क़ायम रक्खोगे तो ब्राह्मण लोग तुम पर बोझा लादने लग जायँगे, और तअ़ज्जुब नहीं कि तुम्हारे शत्रु तुम्हारी असलियत पहिचान कर तुम्हें हरा दें । तुम लोगों को समय के अनुसार एक बार ही अपना रहन सहन बदल कर युद्धोपयोगी बन जाना चाहिए । जब तक तुम लोग जाति पाँति और खाने पीने के परहेज़गार बने रहोगे तब तक क्या हर काम में मुस्तैद मुसल्मानों को तुम कभी स्वप्न में भी जीत सकोगे" ?

इस तरह युद्धोपयोगी बहुत सा उपदेश देकर गोविन्दसिंह जी ने उन लोगों को बिदा किया । कुछ पहाड़ी राजा लोग हमारे चरितनायक की आज्ञा नहीं मानते थे । अस्तु, गोविन्दसिंह जी ने अपने सिक्खों को आज्ञा दी कि "इन राजाओं पर तुम लोग चढ़ाई कर लूट लो ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु साहब को आज्ञा की देरी थी कि सब सिक्ख लोग एकाएकी उन पहाड़ी राजाओं पर चढ़ धाये और मनमानी लूटपाट मचाने लगे। इससे चिढ़ कर सब राजाओं ने मिलकर बीस हज़ार सेना के साथ गुरु गोविन्दसिंह पर चढ़ाई की। हमारे चरितनायक ने भी आनन्दपुर का क़िला बन्द कर बुर्जों पर तोपें चढ़ा दीं और मौक़े मौक़े पर अपने आठ हज़ार सिक्ख जवानों को बाँट दिया। दिन को यह क़िले के भीतर से लड़ते और रात को निकलकर सोये हुए शत्रुओं पर एकाएकी टूट पड़ते और उन्हें मार काटकर किनारे लगाते। इससे पहाड़ी राजाओं की बड़ी हानि हुई। उन्होंने बादशाह के सूबा, सरहिन्द के नवाब, को बीस हज़ार रुपया देकर, उससे मोग़ल सिपाहियों की सहायता लेकर गुरु साहब का क़िला चारों ओर से घेर लिया। इस बार शूर-वीर सिक्ख लोग क़िले के भीतर न बैठ सके और अपने शूर-वीर सेनापति, गुरु गोविन्दसिंहजी, की अधीनता में बाहर निकलकर शत्रुओं पर टूट पड़े। चूंकि इस बार के शत्रुओं में मोग़ल लोग भी सम्मिलित थे इससे सिक्खों का ख़ून उबल आया और ख़ूब घमासान युद्ध होने लगा। हमारे चरितनायक की फुर्ती और निपुणता उस समय देखने लायक़ थी। वे जिधर शत्रुओं का बल बढ़ता देखते उधर ही अपने शूर सहचरों के साथ तीर की तरह पहुँच जाते और मारे तलवारों के शत्रुओं को पस्त कर देते थे। अस्तु, इतनाहीं कहना काफ़ी होगा कि हमारे चरितनायक ने युद्ध करने में अपने भर सक कुछ बाक़ी नहीं रक्खा। परन्तु बाहर मैदान में कुल आठ हज़ार आदमी भला पचास हज़ार सेना से कैसे जीत सकते थे? अस्तु, गुरु साहब ने देखा कि बाहर मैदान में लड़कर जयलाभ करना कठिन है। इससे क़िले की ओर पीठ कर लड़ते लड़ते क़िले में घुस गये और क़िले का फाटक बन्द कर बुर्जों पर से तोपों के गोलों की वर्षा करने लगे, जिससे शत्रुओं को बड़ी हानि सहनी पड़ी। जब शत्रुओं ने इनके हराने का दूसरा रास्ता न देखा तब क़िले को चारों ओर से इस ढँग से घेर लिया कि तोपों के गोलों से भी बचाव हो और क़िले के भीतर रसद और बारूद वग़ैरह भी न जाने पावे। पन्द्रह दिन तक तो हमारे धीरचित्त चरितनायक क़िले के भीतर से लड़ते रहे; पर जब रसद चुक गई तब उन्हें विवश होकर अपने सिक्खों के साथ बाहर निकलना पड़ा और बाहर आकर लड़ते भिड़ते उन्होंने सतलज पार वसूली की ओर अपनी राह ली।

वसूली का राजा इनका बड़ा मित्र था। इस कारण उसने बड़ी ख़ातिरदारी से इन्हें अपने पास रक्खा। कुछ दिन बाद एक दूसरा राजा, जो गुरु साहब के दर्शन की अभिलाषा रखता था, यहाँ आया और उन्हें अपने साथ लिवा ले गया। अपनी रियासत रबाल सर में लेजाकर उसने गोविन्दसिंहजी की बड़ी ख़ातिरदारी की और वीरोचित उपहार स्वरूप उन्हें एक दो नली बन्दूक़ भेंट दी। इसके बाद वहीं एक दरबार लगाकर उन्होंने वही बन्दूक़ भर कर कहा कि, "कोई सिक्ख ऐसा है जो आप इस बन्दूक़ की गोली का निशाना बन कर इसकी परीक्षा करे।" यह सुनते ही बहुत से सिक्ख खड़े हो गये और बन्दूक़ का निशाना बनना चाहा। जो सब पहाड़ी राजे इस दरबार में आये थे, सिक्खों की अटल स्वामिभक्ति देखकर चकित हो गये और गुरु साहब का रोब उन पर छा गया। फिर वहाँ से लौट कर गुरु साहब अपने घर आनन्दपुर लौट आये और वहाँ के क़िले को, जिसे लूट पाट कर शत्रु लोग चले गये थे, मरम्मत करवाकर, फिर से सब साज सामान से दुरुस्त कर लिया और एक दरबार लगाकर अपने पाँचों पुत्रों को अमृत चखाया और मौक़े मौक़े पर अपने शत्रु राजाओं पर छापा मार कर लूट पाट करने लगे। उनमें से कई एक राजाओं को पकड़ कर सूली भी दे दी। गुरु गोविन्दसिंह का चलाया तीर डेढ़ मील तक जाता था! बस इसीसे इनकी अस्त्र-निपुणता समझ लीजिए। थोड़े ही दिनों बाद काबुल का एक खत्री इनके दर्शन को आया और अति युद्धनिपुण पचास पठान योधाओं के साथ इन्हें बहुत कुछ धन रत्नादि भेंट दिया। राजा भीमचन्द खलवरिआ, जो इनका पूरा शत्रु था, सदा इन्हें नीचा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाने की घात में लगा रहता था। उसने मौक़ा पाकर शाहंशाह औरंगज़ेब के पास यह शिकायत की कि गोविन्दसिंह नाम का एक सिक्ख-गुरु, जिसका बाप हुज़ूर की आज्ञा से संवत् १७३२ में क़त्ल किया गया था, अपने सिक्खों में ख़ूब मज़हबी जोश फैला रहा है और नित्य फ़ौज भरती करके अपनी ताक़त बढ़ाता जाता है। हुज़ूर को इसे शीघ्र ही दमन करना उचित है, नहीं तो तअ़ज्जुब नहीं कि समय पाकर यह हुज़ूर की बादशाहत में कोई भारी फ़साद मचावे।

राजा भीमचन्द ने इतने ही पर सन्तोष नहीं किया, वरन कई पहाड़ी राजाओं के साथ वह ख़ुद शाही दरबार में जा पुकारा कि गोविन्दसिंह ने हम लोगों को लूट कर तबाह कर डाला और कई भाइयों को धोखे से पकड़ कर बड़ी निर्दयता से मरवा डाला। यद्यपि हम लोगों ने उस पर कई बार चढ़ाई की, पर उसकी चालाकी और धोखेबाज़ी से सदा हारते ही रहे। भीमचन्द वग़ैरह की यह शिकायत सुनकर औरंगज़ेब बहुत ख़फ़ा हुआ और फ़ौरन गुरु साहब को गिरफ़्तार करने के लिए सरहिन्द के हाकिम वाजिदख़ाँ के नाम एक हुक्मनामा लिख भेजा और साथ ही अपनी बहुत सी फ़ौज देकर अपने कई सेनापतियों को भी भीमचन्द के साथ कर दिया। सरहिन्द के हाकिम ने राजा भीमचन्द और बादशाही फ़ौज के साथ आनन्दपुर पर चढ़ाई कर दी। हमारे शूर-वीर चरितनायक भी अपने निर्भीक सिक्खों के साथ, संवत् १७५९ में, शत्रुओं के सामने मैदान में आ डटे और शीघ्र ही लड़ाई छिड़ गई। घमासान युद्ध होने लगा। गोविन्दसिंह जी घूम घूमकर सिक्खों को मज़हबी जोश दिलाते जाते थे और ऐसे वीर सरदार को पाकर हमारे रण-वीर सिक्ख जवान भी रणरंग में उन्मत्त होकर महात्मा भीष्म की सी वीरता दिखाते थे। सच तो यह है कि इस दिन की ऐसी वीरता सिक्खों ने कभी नहीं दिखाई। हमारे पराक्रमी चरितनायक, मय अपने सिक्खों के, मानो युद्ध के रूप बन गये। फिर बेचारे वेतन-भोगी सिपाही धार्मिक उत्साह से उत्साहित सिक्खों के सामने कब टिक सकते थे? अस्तु, उन्हें विवश होकर पीठ दिखानी पड़ी और सिक्ख-वीरों ने भी रुपड़ तक बादशाही सेना का पीछा किया। इस युद्ध में राजा भीमचन्द बहुत घायल हुआ और उसका दीवान अपनी तमाम पहाड़ी सेना के साथ मारा गया।

जब औरंगज़ेब ने इस हार का संवाद सुना तब कुचले हुए विषधर की तरह महाक्रोधित होकर उसने लाहोर और काश्मीर दोनों जगहों के सूबों के नाम यह हुक्मनामा लिख भेजा कि, "तुम लोग अपनी सब सेना के साथ आनन्दपुर पर हमला कर, गोविन्दसिंह का सिर काट लाओ"। इसके साथ ही उसने दिल्ली से भी दस हज़ार फ़ौज भेजी। जब गोविन्दसिंह ने इस धूम धाम की चढ़ाई का हाल सुना तब उन्होंने सब जगह अपने शिष्यों को मदद के लिए लिख भेजा। थोड़े ही दिनों में दस हज़ार सिक्ख लोग धर्म के नाम पर बलिदान होने के लिए इकट्ठे हो गये और आठ हज़ार अपनी फ़ौज लेकर कुल अट्ठारह हज़ार वीर-सिक्खों की सेना गुरु साहब ने तैयार कर ली; और मोरचे के ख़ास ख़ास मौक़ों पर अपने शूर-वीर पुत्रों को तैनात कर दिया। थोड़े ही दिनों में सामने तोपख़ानों से गोले दागते हुए मुग़ल लोग सिक्खों पर आ टूटे। सिक्खों का तोपख़ाना पीछे था, इस कारण थोड़ी देर तक सामना करके वे लोग पीछे मुड़ने लगे। पर इसी बीच में गोविन्दसिंह का बड़ा लड़का तोपख़ानों के साथ बहुत सी फ़ौज लेकर व्याकुल सिक्खों की सहायता को आ पहुँचा और साथ ही प्रधान प्रधान वीरों के साथ हमारे शूर-वीर गोविन्दसिंह भी नंगी तलवार घुमाते हुए आ पहुँचे। फिर तो लड़ाई का बाज़ार ख़ूब ही गरम हो गया। तोपों के धुएं से आवृत योद्धा झूम झूम कर तलवार चला रहे थे और गोविन्दसिंह की तरह गरज कर अपने सिक्खों को उत्साह दिलाने के साथ कहते जाते थे, "वीरो, आज बहुत दिनों के बाद अत्याचारी मुसलमानों का सामना हुआ है। बढ़े चलो। इन्हें यमालय भेज कर जयलाभ की यशःपताका उड़ाओ। अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर-क्षेत्र में शयन कर अनन्त स्वर्ग का आनन्द लूटो। देखो, अपनी माता का दूध कलंकित मत करना।"

इन जोशीले वचनों द्वारा उत्साह दिलाते हुए हमारे वीर-बली चरितनायक युद्ध कर रहे थे। इस बार युद्ध में उन्मत्त होकर गोविन्दसिंह ने दोनों हाथों से दुर्गा-दत्त तलवार थाम ली और साक्षात् कालमूर्ति बन कर शत्रु की सेना में सर्वसंहार करना आरम्भ किया। जिधर घोड़ा दौड़ाते हुए हमारे वीरवर गुरु निकल जाते थे। उधर की सेनाओं में मानों प्रलयकाल उपस्थित हो जाता था। अन्त को सिक्ख लोग जोश में आकर उन्मत्त हो एक बार ही मोग़ल-वाहिनी पर टूट पड़े। इस बार मोग़ल-सेना वीर-सिक्खों की बाढ़ को न रोक सकी और बड़ी कड़ी मार खाकर उसने पीठ दिखाई। सिक्खों ने चार कोस तक शत्रुओं का पीछा किया। इस दिन सन्ध्या हो जाने के कारण सिक्ख लोग लौट आये और मुसल्मानों ने जहाँ थे वहीं मोरचाबन्दी करली। दूसरे दिन सवेरे फिर से नवीन सेना की सहायता से आनन्दपुर की ओर कूच कर दी। इस दिन भी खूब घमासान युद्ध हुआ; पर विजयलक्ष्मी गुरु साहब ही की अंकशायिनी हुई। जब शत्रुओं ने देखा कि इस तरह की लड़ाई से शत्रुओं का हराना कठिन है तब क़िला घेर कर भीतर रसद पानी जाना बन्द कर दिया। पर रात के समय दो हज़ार सिक्ख लोग सोते हुए मोग़लों पर एकाएकी टूट पड़े और उन्हें अपनी तलवारों का शिकार बनाना प्रारम्भ कर दिया। इस लड़ाई झगड़े में मोग़लों के बड़े बड़े सरदार मारे गये। जो फ़ौज क़िले के चारों ओर घेरा डाले हुए थी वह सरदारों के मारे जाने से घबराकर भाग निकली।

[असमाप्त

वेणीप्रसाद।

भारत-माता।

१—भारतभाता यही हमारी
है यह हमको अतिशय प्यारी।
इसकी बार बार बलिहारी
तन मन धन सब इस पर वारी।

२—शोभा-पुञ्ज हिमालय इसमें
विन्ध्याचल उदयाचल इसमें।
इसमें मलयाचल भाता है
जग में सौरभ फैलाता है।

३—गङ्गा-यमुना बहतीं इसमें
सरस्वती लहराती इसमें।
इसमें सिन्धु सोनभद्रा है
और चन्द्रभागा सिप्रा है।

४—"सुजल सुफल" है मही यहाँ की
"सस्य-श्यामल" मही यहाँ की।
"मलयज-शीतल" मही यहाँ की
विबुध-मनोहर मही यहाँ की।

५—लता, पत्र, फल, पुष्प यहाँ हैं
हरे भरे सब वृक्ष यहाँ हैं।
जड़ी बूटियाँ बहुत यहाँ हैं
सुखदायक सब वस्तु यहाँ हैं।

६—दिव्य अन्न है, निर्मल जल है,
सभी भाँति शोभित भूतल है।
वायु यहाँ का अति हितकर है
सकल-पदार्थ-जाति सुखकर है।

७—लोहा, ताँबा, चाँदी, सोना,
मानिक, नीलम, हीरा, पन्ना।
स्थान स्थान पर धरा हुआ है
खानों भीतर भरा हुआ है।

८—राम, कृष्ण की है यह माता
द्रोण, भीष्म की है यह माता।
अर्जुन, विक्रम की यह माता
शिव, प्रताप की है यह माता।

९—वाल्मीकि मुनि की यह माता
व्यास, पतञ्जलि की यह माता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैमिनि, गौतम की यह माता
यही हमारी सब की माता।

१०—राम, कृष्ण के भाई हैं हम
द्रोण, भीष्म के भाई हैं हम।
अर्जुन, विक्रम के भाई हम
इस नाते सब के भाई हम।

११—इसमें जन्म लिये से पाया
ऐसा पद हमने मनभाया।
करें सकल सुत ध्वनि सुखदाता—
जय जय जय जय भारतमाता।

१२—इकतन इकमन हो सब भाई
आओ मिललें भाई भाई।
माता इससे सुख पावेगी
लोकमान्य यह हो जावेगी।

गिरिधर शर्मा।

सङ्गीत के स्वर।

जैसे और अनेक शास्त्रों में भारतवर्ष ने किसी समय अद्भुत उन्नति की थी वैसेही सङ्गीतशास्त्र में भी। "किसी समय"—हम इसलिए कहते हैं, क्योंकि आज कल इस देश की कितनी ही प्राचीन विद्यायें और कलायें ह्रास को प्राप्त हो रही हैं, यहाँ तक कि किसी किसी का लोप तक होगया है। कोई कोई कलायें ऐसी भी हैं, जिनमें मनोनिवेश करके, पाश्चात्य देश इस देश से बढ़ गये हैं; परन्तु कितनी ही कलायें इस समय म्रियमाण अवस्था में हैं। सङ्गीत को हम इसी प्रकार की कलाओं में समझते हैं। इस कला में यद्यपि और देशों ने बहुत उन्नति की है तथापि उसका सूक्ष्म और शास्त्रीय ज्ञान जैसा किसी समय इस देश के लोगों को था वैसा पाश्चात्य देशों में अब तक नहीं देखा जाता। योरपवालों को मूर्छना और गमक आदि का अब तक ज्ञान नहीं है।

काव्य-शास्त्र की तरह सङ्गीत-शास्त्र में भी यह देश बहुत बढ़ा चढ़ा था। इस समय जो दस पाँच पुराने सङ्गीत-ग्रन्थ देख पड़ते हैं वे इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। नारदपञ्चमसारसंहिता, नारद-संवाद, सङ्गीतदर्पण, सङ्गीतनारायण, सङ्गीतसार, सङ्गीतदामोदर, सङ्गीतरत्नाकर, ताण्डवतरङ्गेश्वर, रागार्णव और ध्वनिमञ्जरी आदि ग्रन्थ एक से एक बढ़कर हैं। इनको अच्छी तरह समझने और समझानेवाले आजकल प्रायः दुर्लभ हैं। इनमें वर्णन किये गये सङ्गीत-विषयों का अभ्यास करके उनमें पारङ्गत होना तो बहुत दूर की बात है।

पुराने ज़माने में ऋषि लोग वेद-मन्त्रों का सस्वर गान करते थे। उन्होंने वैदिक स्वरों को उदात्त, अनुदात्त और स्वरित, इन तीन भेदों में विभक्त किया था। वैदिक स्वरों का निरूपण और वैदिक सूक्तों के गाने की विधि का वर्णन नारद मुनि ने किया है। उनके ग्रन्थ का नाम है नारदीय शिक्षा। सामवेद की रचना गाने ही के लिए की गई थी। उसके उपवेद का नाम है गान्धर्ववेद। उसके आचार्य्य भरत मुनि हैं। उसमें सङ्गीतशास्त्र का सविस्तर वर्णन है। और ग्रन्थ सब उसके बाद बने हैं। गान्धर्ववेद आजकल प्रायः अप्राप्य हो रहा है।

नाचने, गाने और बजाने का नाम सङ्गीत है। हनुमन्त भी इस शास्त्र के आचार्य्य होगये हैं। उनका नाम कई ग्रन्थों में आया है। परन्तु उनका ग्रन्थ भी दुष्प्राप्य है। किसी किसी ने रम्भा, रावण, वायु और नन्दी ही को नहीं, किन्तु ब्रह्मा को भी सङ्गीत-शास्त्र का आचार्य्य माना है। पुराने पुस्तकों से मालूम होता है कि पहले इस देश में नाचना निंद्य न समझा जाता था। प्रतिष्ठित आदमी भी नाचते थे। गाने और बजाने की तो कोई बात ही नहीं। कविता का मुख्य उद्देश्य मनोरञ्जन, किंवा अनुरक्ति, उत्पन्न करना है। सङ्गीत का भी वही उद्देश्य है। गाना और बजाना सुनने से जैसे मनोरञ्जन होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसेही नाचना देखने से भी। इससे नृत्य भी सङ्गीत-शास्त्र के अन्तर्गत माना गया है—

गीतवादित्रनृत्यानां रक्तिः साधारणो गुणः।

अतएव अनुरञ्जन करना—अनुराग उत्पन्न करना—ही सङ्गीत का मुख्य गुण है। जिस सङ्गीत से अनुरञ्जन न हो उसे अपने उद्देश्य से च्युत समझना चाहिए। सङ्गीत में सात बातों के होने से अनुरक्ति उत्पन्न होती है। वे बातें ये हैं—

शारीरं नादसम्भूतिः स्थानानि श्रुतयस्तथा।
ततः शुद्धाः स्वराः सप्त विकृता द्वादशाप्यमी॥
वाद्यादिभेदाश्चत्वारो रागोत्पादनहेतवः।

सङ्गीतदर्पण।

अर्थात् शरीर-सञ्चालना, नाद की उत्पत्ति, ताल आदि के स्थान, श्रुति, सात शुद्ध स्वर, बारह अशुद्ध किंवा विकृत स्वर, और चार प्रकार के वाद्यादि भेद।

इन सात हेतुओं में से जितनी बातें स्वरों से सम्बन्ध रखती हैं उनका उल्लेख थोड़े में किया जाता है। स्थूलरूप से वे आठ भागों में विभक्त की जा सकती हैं। यथा—स्वर, श्रुति, विकृत स्वर, मूर्छना, ग्राम, तान, वर्ण और अलङ्कार। यदि राग और रागिनियों की भी गिनती कर ली जाय तो ये भेद ९ हो जाते हैं।

शुरू शुरू में स्वर तीन ही प्रकार के माने गये थे। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। इन्हीं तीन स्वरों में सामगायन होता था। इनके चिन्ह पृथक् पृथक् हैं। उदात्त का चिन्ह (।) है; वह वेदों में ऊपर लगाया जाता है। अनुदात्त का चिन्ह (–) नीचे रहता है। यही अनुदात्त का चिन्ह (–) यदि ऊपर रहता है तो वह स्वरित स्वर का बोधक होता है। नारदीय शिक्षा में इन स्वरों के उच्चारण के विषय में लिखा है कि वेदपाठी को अपने हाथ के अग्रभाग पर दृष्टि रखकर, वेदार्थ का चिन्तन करते हुए, हाथ और मुँह दोनों से वेद का उच्चारण करना चाहिए। जिस क्रम से वर्णों का उच्चारण किया जाय उसी क्रम से हस्त द्वारा उनकी समाप्ति की जाय। परन्तु इस प्रकार यथानियम सस्वर वेदपाठ करनेवाले पण्डित आजकल बहुत कम पाये जाते हैं। यदि कंठ, तालु आदि निर्दिष्ट स्थानों से स्वरों को यथानियम उच्चारण करके हाथ से भी उच्चारण का भाव बतलाया जाय तो सुननेवाले को वेदपाठ से भी गाना सुनने का थोड़ा बहुत आनन्द ज़रूर मिल सकता है।

किसी किसी का मत है कि वैदिक स्वर, नाद-विशेष के परिमाण-ज्ञापक भेद हैं, जिन्हें अँगरेज़ी में मेजर, माइनर और सेमी टोन कहते हैं। उन्हीं को वैदिक गाने में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित कहते हैं। परन्तु यह कल्पना युक्त नहीं जान पड़ती। पाणिनि ने अपने व्याकरण में इन स्वरों का यह लक्षण किया है—

(१) जो स्वर ऊँचे से उपलब्ध हो वह उदात्त।

(२) जो स्वर नीचे से उपलब्ध हो वह अनुदात्त।

(३) जो उदात्त और अनुदात्त दोनों के संग्रह से उपलब्ध हो, अर्थात् जिसमें दोनों का संयोग हो, वह स्वरित।

परन्तु इससे यह मतलब नहीं है कि जो स्वर सुनने में ऊँचा मालूम हो वह उदात्त, और जो सुनने में नीचा मालूम हो वह अनुदात्त। बड़ाई-छुटाई के कारण उदात्तता या अनुदात्तता नहीं होती, किन्तु उच्च-नीच "प्रयत्न" के कारण होती है। अर्थात् कंठ और तालु आदि उच्चारण-स्थानों के ऊपरी हिस्से से उच्च प्रयत्न द्वारा जो स्वर निकलता है वह उदात्त, और उनके नीचे के हिस्से से अनुच्च प्रयत्न द्वारा जो निकलता है वह अनुदात्त कहलाता है। इसी तरह प्रकार-द्वय के योग से जिसका उच्चारण होता है उसे स्वरित कहते हैं। उसके आदि में अर्द्धमात्रात्मक अंश उदात्त होता है और शेष अनुदात्त।

वैदिक स्वरों का उल्लेख सङ्गीत-शास्त्र के लौकिक ग्रन्थों में नहीं पाया जाता। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि लौकिक स्वरों की उत्पत्ति पूर्वोक्त वैदिक स्वरों से ही हुई है। लौकिक स्वर सात हैं। यथा—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत् और निषाद। किस वैदिक स्वर से किन लौकिक स्वरों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की उत्पत्ति हुई है, इसका विवरण वैदिक "शिक्षा" में पाया जाता है। उसमें लिखा है—

१ उदात्त से निषाद और गान्धार की
२ अनुदात्त से ऋषभ और धैवत की
३ स्वरित से षड्ज, मध्यम और पञ्चम की

इन सात लौकिक स्वरों के प्रत्येक स्वर का पहला अक्षर उसका ज्ञापक माना गया है। अर्थात् 'स' षड्ज, का, 'रि' ऋषभ का इत्यादि। स्वरालाप में इन्हीं सप्त स्वरों के प्रथमाक्षर, अर्थात् स, रि, ग, म, प, ध, नि, का उच्चारण होता है। ये सातों स्वर पशु-पक्षियों के अनुकरण से निर्म्मित हुए हैं। षड्ज में मोर के स्वर का अनुकरण किया गया है, ऋषभ में बैल के, गान्धार में अज के, मध्यम में क्रौञ्च के, पञ्चम में कोकिल के, धैवत में हाथी के और निषाद में घोड़े के स्वर का। ये सात स्वर शुद्ध हैं। इनसे १२ प्रकार के विकृत स्वर बनते हैं। अतएव विकृत और अविकृत मिलकर सब १९ प्रकार के स्वर होते हैं। इन्हीं स्वरों को भिन्न भिन्न अनेक रूप देकर सङ्गीत-शास्त्र के आचार्य्यों ने कितने ही राग और रागिनियों की कल्पना की है। केवल कल्पना के बल से उन्होंने रागों के नामकरण करके उनके अनुकूल उनके रूप का भी निरूपण किया है। यही नहीं, किन्तु जिसका जैसा रूप है उसके अनुरूप उसके गाये जाने का समय भी निर्दिष्ट कर दिया है। अर्थात् भिन्न भिन्न प्रकार के रागों और रागिनियों की रचना ऐसी है कि उस रचना और रूप के ख़याल से जो समय उनके लिए निश्चित किया गया है उसी में उनके आलाप से विशेष आनन्द होता है। जिन ऋषियों और आचार्य्यों ने सङ्गीत-स्वरों की मूर्ति-कल्पना करके इस शास्त्र में इतनी सूक्ष्म पारदर्शिता दिखलाई है उनकी योग्यता का विचार करके आश्चर्य्य होता है।

नाद से श्रुति और श्रुति से स्वरों की उत्पत्ति होती है। अतएव अब इसका विचार करना है कि श्रुति क्या चीज़ है और नाद उत्पन्न कैसे होता है।

नाद करने, गाने या स्वर उच्चारण करने की इच्छा होने पर आत्मा की प्रेरणा से शरीर की उष्णता या विद्युच्छक्ति का एक प्रकार का वेग प्राप्त होता है। वह वेग शरीर के भीतरी वायु को ताडित करता है। इससे नाभि के पास सूक्ष्म ध्वनि उत्पन्न होती है। वही ध्वनि कंठ, तालु, जिह्वा आदि के योग से पुष्ट होकर मुँह से निकलती है। इन स्थानों को प्राप्त हुई ध्वनि, भिन्न भिन्न प्रयत्नों के द्वारा, भिन्न भिन्न प्रकार की हो जाती है। ये स्थान एक प्रकार के स्वर-भेदक यंत्र हैं। इनसे वही काम निकलता है जो सितार के पर्दों से निकलता है। हृदय से निकलने वाली ध्वनि को मन्द्र, कंठ से निकलनेवाली को मध्य, और तालू से निकलनेवाली को तार कहते हैं। इन्हीं का नाम उदारा, मुदारा और तारा है—

हृदि मन्द्रो, गले मध्यो, मूर्ध्नि तार इति क्रमात्।

इन ध्वनियों में दूसरी का वज़न पहली से दूना और तीसरी का दूसरी से दूना होता है। परन्तु सितार और वीणा आदि में इसका उलटा क्रम होता है। अर्थात् मनुष्य-शरीर से जो ध्वनि निकलती है वह नीचे से ऊपर को ऊँची होती जाती है, पर वाद्य-यंत्रों में वह ऊपर से नीचे की तरफ क्रम क्रम से ऊँची होती है। शरीर-यंत्र से पूर्वोक्त तीनों प्रकार की ध्वनियों में से जो ध्वनि निकाली जाती है उसका स्थान विस्तृत करके अवशिष्ट स्थानों को सङ्कुचित करना पड़ता है। षड्जादि स्वर इन्हीं तीन प्रकार की ध्वनियों के भेद-विशेष हैं। ये भेद स्थूल हैं। इन्हीं के सूक्ष्म अंशों का नाम श्रुति है। श्रुति को एक प्रकार का वज़न या मात्रा कहना चाहिए। इन्हीं श्रुति नाम-धारी दो, तीन या चार वज़नों या मात्राओं के योग से एक एक स्वर की उत्पत्ति कल्पित की गई है। मतलब यह कि श्रुति, स्वर का एक बहुत ही सूक्ष्म अंश है। वह सुनी जा सकती है, इससे उसका नाम श्रुति हुआ। इस श्रुति के २२ भेद हैं। अर्थात् वह २२ भागों में बाँटी गई है। और एक एक स्वर, दो से चार भागों तक के बने हैं। ध्वनि को यदि हम २२ बिन्दुओं की एक रेखा कल्पना करें, और उन बिन्दुओं को सात भागों में बाँट दें, तो वे सातों भाग सात-स्वरों के बोधक होंगे। परन्तु सब स्वरों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वज़न बराबर नहीं है; कोई उच्च है, कोई नीच। इससे सात-भाग बराबर बराबर न करके प्रत्येक स्वर के वज़न के हिसाब से भाग करने पड़ेंगे। सङ्गीत-विद्या के आचार्य्यों ने, इसी कारण से, नीचे लिखे अनुसार श्रुतियों के विभाग किये हैं—

१ – स – षड्ज = ४ श्रुतियाँ
२ – रि – ऋषभ = ३ ,,
३ – ग – गान्धार = २ ,,
४ – म – मध्यम = ४ ,,
५ – प – पञ्चम = ४ ,,
६ – ध – धैवत् = ३ ,,
७ – नि – निषाद = २ ,,

कुल २२

इसका प्रमाण—

चतुर्भ्यो जायते षड्जो मध्यमः पञ्चमस्तथा।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां गनी ज्ञेयौ रिधौ च त्र्यात्मकौ तथा॥

श्रुतियों और स्वरों में वही सम्बन्ध है जो दूध और दही में है। अर्थात् दूध से जैसे दही बनता है वैसेही श्रुतयों से स्वर बनते हैं। स्वरों में श्रुतियाँ इतनी संलग्न होकर सञ्चरण करती हैं कि उनका ठीक ठीक पता लगाना मुश्किल काम है। स्वरों को जलसमूह समझिए, और श्रुतियों को मछलियाँ। जिस तरह अगाध जल में मछलियाँ दौड़ा करती हैं और उनका गमन-मार्ग ठीक ठीक देखने को नहीं मिलता, उसी तरह श्रुतियों के सञ्चार का ज्ञान भी अच्छी तरह नहीं होता।

किसी किसी का मत है कि शुद्ध स्वर ७ नहीं किन्तु २१ हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि स्थान-विशेष से उच्चारण किये जाने के कारण स्वरों के मन्द्र, मध्य, और तार ये तीन भेद होते हैं। अतएव सात स्वरों में से प्रत्येक स्वर के तीन प्रकार, अर्थात् मन्द्र, मध्य, और तार स्थान से उच्चारण होने के कारण, उनके २१ भेद होजाते हैं और ये सब विशुद्ध स्वर कहलाते हैं।

विकृत स्वरों के १२ भेद हैं। जिस स्वर में यथाक्रम जितनी श्रुतियाँ होनी चाहिएँ उतनी न होने से स्वर विकृत हो जाते हैं। अर्थात् किसी स्वर की एक या एक से अधिक श्रुतियाँ यदि अन्य स्वर में प्रविष्ट करदी जाती हैं तो उस स्वर को विकृतत्व प्राप्त हो जाता है। और जिस स्वर की श्रुतियाँ अन्य स्वर में जाती हैं वह भी उसी के साथ विकृत हो जाता है। इस प्रकार श्रुतियों का भङ्ग करने, अर्थात् एक स्वर से निकाल कर दूसरे में डालने और दूसरे से निकाल कर आगे पीछे के किसी और स्वर में संलग्न करने, से स्वरों के अनेक भेद होने चाहिएँ। पर ऐसा नहीं होता। सङ्गीत-रत्नाकर में श्रुतियों के इस प्रवेश और बहिष्कार के नियम विस्तारपूर्वक दिये गये हैं। उसके अनुसार कुछ ही निर्दिष्ट श्रुतियाँ ऐसी हैं जिनका प्रवेश और बहिष्कार होता है, सब का नहीं। इसीसे विकृत स्वर केवल १२ माने गये हैं। इस हिसाब से ऋषभ और धैवत् का एकही एक विकृत रूप होता है। बाक़ी के पांच स्वरों के दो दो विकृत रूप होते हैं। किस स्वर की किस श्रुति का भङ्ग करके किस स्वर में संलग्न करने से स्वर विकृत होते हैं, इसके नियम संकृत के सङ्गीत-ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक दिये गये हैं। परन्तु विकृत-स्वर-सम्बन्धी नियम बहुत पेचीदा हैं। इससे इस लेख में उनका उल्लेख करना हम अनावश्यक समझते हैं।

शुद्ध और विकृत स्वरों को अनेक प्रकार के रूप देने ही का नाम राग और रागिनी है। पद्यरचना में जैसे अनेक छन्दों का प्रयोग होता है वैसे ही सङ्गीतशास्त्र में रागों का प्रयोग होता है। राग और रागिनियाँ एक प्रकार के छन्द हैं। स्वरों के रूप-विशेषों को छन्द और अलङ्कारों से सजाने ही का नाम राग है। ताल-लय-युक्त राग सुनने से अलौकिक आनन्द होता है और मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी तक उसे सुनकर तन्मय हो जाते हैं। इसी से नाना प्रकार के राग और रागिनियों की सृष्टि हुई है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्य श्रवणमात्रेण रज्यन्ते सकलाः प्रजाः।
सर्वासां रञ्जनाद्धेतोस्तेन राग इति स्मृतः॥

रागों के श्रवणमात्र से सुननेवालों का अनुरञ्जन होता है। सब लोगों के हृदय में अनुराग उत्पन्न करने के वे हेतु हैं। इसीसे उनका नाम राग है।

स्वरों के और भी चार भेद हैं—वादी, संवादी, विवादी और अनुवादी। जटिलता के कारण हम इनके लक्षण नहीं देते।

पाठकों ने सङ्गीत-सम्बन्धी ग्रामों और मूर्च्छनाओं का नाम सुना होगा—

स्वराणां सुव्यवस्थानां समूहो ग्राम उच्यते।

सुव्यवस्थित स्वर-समूहों का नाम ग्राम है। अथवा यों कहिए कि स्वरों की सुव्यवस्था ही ग्राम कहलाती है। संगीतशास्त्र के आचार्य्यों की राय है कि इस लोक में केवल दो ही ग्राम गाये जासकते हैं। एक का नाम है आदिम षड्ज-ग्राम। दूसरे का मध्य ग्राम। ऊपर लिखा जा चुका है कि पञ्चम स्वर में चार श्रुतियाँ होती हैं। उनमें से जब यह स्वर चौथी श्रुति में स्थित रहता है तब तत्संयुक्त स्वर-समूह आदिम षड्ज-ग्राम कहलाता है। वह यदि तीसरी श्रुति का आश्रित होता है तो तत्संयुक्त स्वर-समूह मध्य-ग्राम कहलाता है। मुश्किल यह है कि सङ्गीत में थोड़ा बहुत ज्ञान हुए बिना ये बातें अच्छी तरह समझ में नहीं आ सकतीं। अतएव इस विषय को बढ़ाना व्यर्थ है।

स्वरों के यथानियम चढ़ाव उतार का नाम मूर्च्छना है। अथवा यों कहिए कि यथाक्रम उतार चढ़ाव की क्रिया से नियमित किये गये स्वरों के समूह को मूर्च्छना कहते हैं। प्रमाण—

क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्।
मूर्च्छनेत्युच्यते ग्रामत्रये ताः सप्त सप्त च॥ सङ्गीत-रत्नाकर।

मूर्च्छनाओं की उत्पत्ति ग्रामों से है। हर ग्राम में सात मूर्च्छनायें होती हैं। अर्थात् षड्ज-ग्राम में सात और मध्यम ग्राम में भी सात। इस तरह दोनों में मिलाकर १४ मूर्च्छनायें प्रधान हैं। इनके सिवा सङ्गीत-विशारदों ने गान्धार ग्राम की भी सात मूर्च्छनायें मानी हैं। पर उनके उल्लेख की ज़रूरत नहीं। क्योंकि वे लौकिक सङ्गीत में नहीं आतीं। षड्ज-ग्राम की पहली मूर्च्छना षड्ज से निषाद तक होती है; दूसरी निषाद से धैवत तक, तीसरी धैवत से पञ्चम तक। इसी तरह बाक़ी की भी आगे के स्वर से शुरू होकर पीछे के स्वर तक आती हैं। मध्यम-ग्राम की मूर्च्छनाओं में से पहली मध्यम से शुरू होकर गान्धार तक जाती है; शेष पूर्वोक्त क्रम से चढ़ती उतरती हैं। यदि गान्धार-ग्राम की मूर्च्छनायें भी गिन लीजायँ तो सब की संख्या २१ हो जाती है।

यत्र स्वरो मूर्च्छित एव रागतां प्राप्तश्च तामाहुरतश्च मूर्च्छनाम्।
ग्रामोद्भवास्तत्स्वरसम्प्रयुक्ता-स्ताना भवेयुः पुनरेकविंशतिः॥

स्वर मूर्च्छित होकर रागता, अर्थात् रागभाव, को प्राप्त होते हैं। इसीलिए इनका नाम मूर्च्छना है। इस प्रकार संयुक्त हुए स्वरों के ग्रामों से ही तानों की उत्पत्ति है। अर्थात् तानों की सृष्टि मूर्च्छनाओं से ही है। और मूर्च्छनायें २१ हैं। इस लिए तानें भी २१ हैं। इनके दो भेद हैं शुद्ध और कूट। इन दो भेदों में हज़ारों उपभेद हैं जिन सब का जानना और एक का दूसरे से पृथक्करण करना दुस्तर काम है।

गान-क्रिया का नाम वर्ण भी है। उसके चार भेद हैं-स्थायी, आरोही, अवरोही और सञ्चारी। प्रमाण—

गानक्रियोच्यते वर्णः स चतुर्द्धा निरूपितः।
स्थाय्यारोह्यवरोही च सञ्चारीत्यथ लक्षणम्॥

अतएव गान-विद्या को भी एक प्रकार का काव्य कहना चाहिए; क्योंकि इसमें भी स्थायी और सञ्चारी आदि भेद हैं। सङ्गीत में स्वरों के प्रस्तार-विशेषों से अलङ्कारों की भी कल्पना की गई है। इससे स्पष्ट है कि सङ्गीत-शास्त्र ने इस देश में किसी समय कितनी उन्नति की थी। परन्तु इन सब बातों का ज्ञान रखने और शास्त्रोक्त नियमों के अनुसार गानेवाले, इस समय, शायद ही दो एक निकलें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परीक्षा।

रावर्ट क्लाइव। हिन्दुस्तान में अँगरेज़ी राज्य की जड़ जमानेवाले, पलासी युद्धक्षेत्र के नायक, लार्ड क्लाइव का यह संक्षिप्त चरित है। "श्रीराघवेन्द्र" के सम्पादक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा ने इसे कई अँगरेज़ी पुस्तकों के आधार पर लिखा है। उन्हींके पास से एक रुपये में यह १०७ पृष्ठ की पुस्तक मिलती है। इसके पढ़ने से क्लाइव के जीवन का भी हाल मालूम हो सकता है और उसके साथ ही बंगाल, बिहार और उड़ीसा की नौवाबी राज्य-व्यवस्था का भी। यह पुस्तक पहले श्रीराघवेन्द्र में थोड़ी थोड़ी छपी थी। अब वही अलग पुस्तकाकार निकली है। ऐसी पुस्तकों की हिन्दी में बड़ी ज़रूरत है। क्लाइव के प्रतिद्वन्द्वी डुपले का भी चरित यदि चतुर्वेदीजी लिख डालें तो बहुत अच्छा हो।

❋

Speeches By The Eminent Indians. इसमें मुख्य मुख्य हिन्दुस्तानी वक्ताओं की वक्तृतायें अँगरेज़ी में हैं। बनारस के हिन्दू-कालेज के विषय की वक्तृतायें कुछ अधिक हैं। तिलक, सुरेन्द्रनाथ और मालवी महाशयों की एक भी वक्तृता नहीं। पर जितनी वक्तृतायें हैं प्रायः सब अच्छी और सुपाठ्य हैं। वक्तृताओं की तारीख़ इत्यादि और सूची भी यदि दे दी जाती तो अच्छा होता। लखनऊ के रीड-क्रिश्चियन-कालेज के पण्डित कन्हैयालाल मिश्र ने इसका सम्पादन किया है। वही इस ८७ पृष्ठ की पुस्तक को एक रुपये में बेचते हैं। बिक्री से जो मुनाफ़ा होगा उसे हिन्दू-कालेज को देने का आपने प्रण किया है।

❋

सदुपकारी। यह बरेली की सदुपकारी सभा का मासिक पत्र है। वार्षिक मूल्य सवा रुपया। इसकी आमदनी से विधवा स्त्रियों को सहायता दी जाती है। इसका एप्रिल और मई ०७ का सम्मिलित अङ्क हमारे पास समालोचना के लिए आया है। इसमें अनाथ विधवाओं की पद्यात्मक प्रार्थना बड़ी ही हृदयग्राहिणी है। कविता की भाषा उर्दू है।

❋

ज्वराङ्कुश। यह स्वामी झामदास कृत ज्वराङ्कुश नामक हनुमत्स्तोत्र है। २१ "कवित्त" हिन्दी में हैं। कोई कोई पद्य बहुत अच्छा है। लाला बद्रीप्रसाद अग्रवाल, माँडा, प्रयाग, से यह स्तोत्र मिल सकता है। इसी के साथ "कवित्त रत्नाकर" नाम की एक २५ पद्यों की पुस्तक भी आई है। इसके सभी पद्य शृङ्गार रस के हैं। इसे मांडा-निवासी पं० देवीप्रसाद द्विवेदी बेचते हैं। मूल्य दोनों पुस्तकों का एक एक आना है।

❋

विद्युत्प्रकाश, प्रथम भाग। इसमें बिजली और बैटरी का बयान है। इसे पं० बांकेलाल ने बनाया है और बाबू सरयूप्रसाद, लंगाह टोला, अलीगढ़, चार आने में बेचते हैं।

❋

वेदतत्त्वप्रकाश। ओङ्कारनिर्णय। पंजाब की आर्य्य-प्रतिनिधि सभा ने वेद-प्रचार-विषयक एक पुस्तक-मालिका निकालनी शूरू की है। यह ओङ्कार-निर्णय उसी का पहला पुष्प है। मूल्य ५ आने। पृष्ठ-संख्या ८८। कर्त्ता पण्डित शिवशङ्कर जी काव्यतीर्थ। पुस्तक मिलने का पता, "मैनेजर आर्य्यमुसाफ़िर मैगज़ीन, जालन्धर शहर"। ओङ्कार का इसमें चूड़ान्त विचार किया गया है। विचार में प्रायः कोई बात नहीं छूटी। बड़ी योग्यता से पुस्तक लिखी गई है। पढ़ने लायक़ है।

❋

रामविजय। इसमें सहस्रमुख रावण का वध वर्णित है। इसकी कथा अद्भुत-रामायण से ली गई है। पुस्तक पद्य में है। लाला भृगुनाथ वर्म्मा, सुरतानपुर, डाकघर गौसपुर, ज़िला ग़ाज़ीपुर ने इसे लिखा है। मूल्य ४ आने।

❋

जनकबागदर्शन। छपरा, लाहबाज़ार, निवासी पं० रामनारायण मिश्र काव्यतीर्थ कृत। खड्गविलास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेस, बाँकीपुर में मुद्रित। मूल्य २ आने। पुस्तक नाटक के ढँगपर लिखी गई है। रामचन्द्र का जनक के बाग़ में जाना और वहाँ जानकी को देखना, इसका विषय है।

❋

श्रीबदरीनाथ-यात्रा माहात्म्य। पण्डित-जयनारायण-उप्रेती-कृत। कर्ता के पुत्र पं० गङ्गादत्त उप्रेती, स्थान कपीना (अलमोड़ा) द्वारा प्रकाशित। इसमें बदरीनाथ-यात्रा का माहात्म्य संस्कृत-पद्य में है। कोई कोई श्लोक बहुत सरस हैं।

❋

भगवद्गीता भाषा। यह गीता के तेरहवें अध्याय का हिन्दी अनुवाद है। सिमगा-निवासी बाबू बिसाहू-राम (रसिक-शिरोमणिदास) ने इसकी रचना की है। मूल्य आध आना।

❋

ज्योतिषसञ्जीवनी-प्रश्नसार, प्रथम भाग। स्वामी नित्यानन्दकृत। रोज़ प्रेस, अलीगढ़, से प्रकाशित। मूल्य ४ आने। इसमें ज़न्मपत्र और वर्षपत्र बनाने की सरल रीति, थोड़े में, बतलाई गई है। प्रश्नों का उत्तर देने की विधि भी इसमें है। पुस्तक हिन्दी में है।

मनोरञ्जक श्लोक।

किसी हिन्दी के कवि ने कहा है—

"गये कनागत फूले काँस-बाह्मन रोवें चूल्हे पास"।

इसी तरह की एक उक्ति संस्कृत में भी है। एक ब्राह्मणदेवता कहते हैं—

भोः श्राद्धपक्ष ! सकलद्विजकल्पवृक्ष ! क्वाऽस्मान्विहाय गतवानसि यच्छ वाचम्।
डिण्डीरपिण्डपरिपाण्डुरपायसानि को दास्यति त्वयि गते घृतलड्डुकानि ?

हे पितृपक्ष ! (कनागत) हे ब्राह्मणों के कल्पवृक्ष ! बतलाइए, हमें छोड़ आप कहाँ चले ? हाय हाय ! आपके चले जाने से कौन हमें घी से तर स्वच्छ सफ़ेद लड्डू खिलावेगा ?

किशोरीदत्त।

आवश्यक निवेदन।

बड़े हर्ष की बात है कि, "सरस्वती" का यह आठवाँ वर्ष भी समाप्त होने पर आगया। यह आठवें भाग की ११ वीं संख्या जाती है। बारहवीं संख्या के साथ, ग्राहकों का, इस वर्ष का वार्षिक मूल्य भी चुक जायगा। आशा है, ग्राहक महाशय आगामी वर्ष के लिए मूल्य भेजना जल्द शुरू करदेंगे।

हम, समस्त ग्राहक महाशयों की सेवा में सविनय निवेदन करते हैं कि, आप, रुपया भेजते समय इन दो बातों का ज़रूर ख़याल रक्खेंगे—

१—रुपया २० दिसंबर ०७ तक आजाना चाहिए।

२—रुपया भेजते समय 'ग्राहक नंबर' ज़रूर लिखना चाहिए। ऐसा न करने से हिसाब में बड़ी गड़बड़ हो जाती है।

रुपया भेजने का पता—

मैनेजर, इंडियन प्रेस,

इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

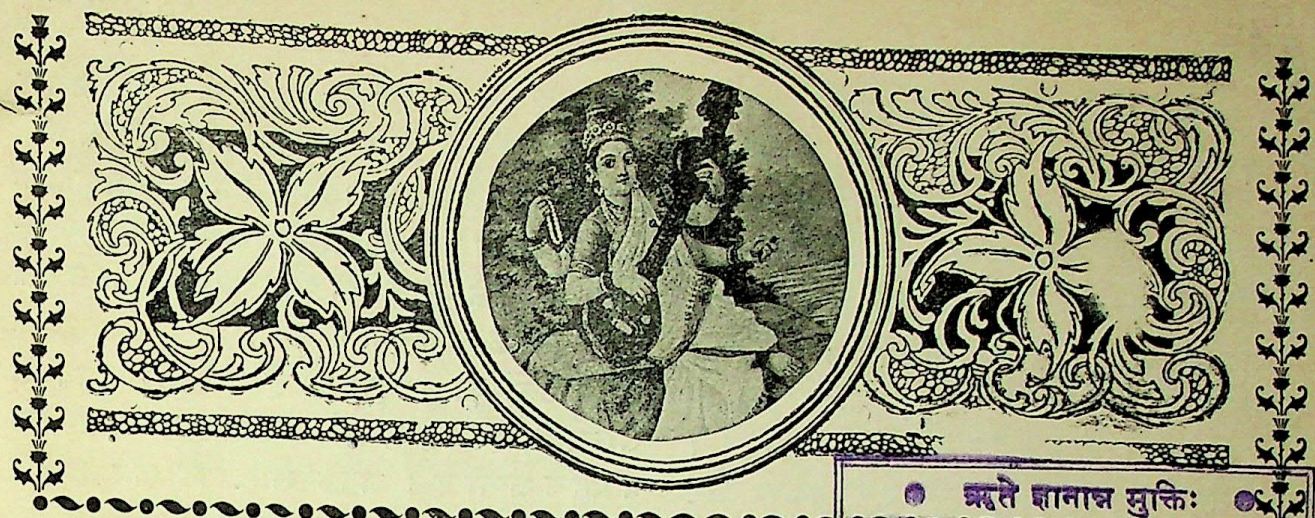

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं० ... सर०
आगत सं० ८ (१२)
तिथि० ...
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगड़ी

सरस्वती।

भाग ८] दिसम्बर, १९०७ [संख्या १२

वार्षिक विज्ञप्ति।

सरस्वती को निकलते आज ८ वर्ष हुए। अगले महीने से उसका नवाँ वर्ष आरम्भ होगा। इस वर्ष सरस्वती ने हिन्दी की कितनी सेवा की और अपने पाठकों का कहाँ तक मनोरञ्जन किया, इस पर कुछ कहने का हमें अधिकार नहीं। सरस्वती के प्रेमी पाठक ही इसका निर्णय कर सकते हैं। प्रचार-वृद्धि यदि सफलता का चिन्ह माना जाय तो हम कह सकते हैं कि यद्यपि यथेष्ट नहीं, तथापि आज पाँच वर्ष से उसकी प्रचार-वृद्धि उत्तरोत्तर होती ही आती है—किसी साल थोड़ी हुई, किसी साल अधिक। इस साल एक बात स्मरण-योग्य यह हुई कि सरस्वती ही के रंग-ढंग के दो एक मासिक पत्र हिन्दी में और निकले। इससे सूचित होता है कि सरस्वती का रूप-रंग, आकार और लेख-निर्वाचन लोगों को अधिक पसन्द है। सरस्वती के लिए यह बड़े गौरव की बात है।

गत वर्ष ३२ पूरे पृष्ठ के बड़े चित्र निकले थे और ५० छोटे। इस साल चित्रों का नम्बर बढ़कर ११८ हो गया! सब मिलाकर कोई ८० चित्र बड़े निकले। औसत लगाने से प्रति मास कोई १० चित्र पड़े। चित्र प्राप्त करने अथवा बनवाने और उनके "ब्लाक" तैयार कराने में जो झंझट करना और जो ख़र्च उठाना पड़ता है वह वही जान सकते हैं जिन्होंने कभी यह काम किया है। यदि फ़ी चित्र की क़ीमत आध आने रक्खी जाय तो भी सिर्फ़ चित्रों की क़ीमत पौने चार रुपये हुई। और चीज़ों की क़ीमत का कुछ ज़िक्रही नहीं। सरस्वती के सदृश पुस्तक क्या इससे भी सस्ते दामों में कोई दे सकेगा? पृष्ठ-संख्या भी इस साल गत वर्ष की अपेक्षा अधिक रही। गत वर्ष कुल ५०० पृष्ठ निकले थे; इस वर्ष ५२० निकले। प्रति महीने ३२ पृष्ठ के हिसाब से एक वर्ष में सिर्फ़ ३८४ पृष्ठ देने के लिए सरस्वती बद्ध-वचन है। परन्तु पृष्ठ-संख्या और चित्र-संख्या की इतनी वृद्धि करके भी उसने अपना वार्षिक मूल्य फिर भी वही ३ रुपये रहने दिया है। इन सब बातों के विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सरस्वती के ग्राहकों और पाठकों ने जिस परिमाण में उस पर कृपा की है वह पर्य्याप्त नहीं। यदि सरस्वती के मालिक, श्रीयुक्त बाबू चिन्तामणि घोष, इतने उत्साहशील और इतने उदाराशय न होते तो सरस्वती के चित्रों आदि की संख्या में इतनी वृद्धि कभी न होता।

जब हम इस देश के हिन्दी बोलनेवालों की संख्या का मुक़ाबला हिन्दी की मासिक पुस्तकों की ग्राहक-संख्या से करते हैं तब चित्त में अचिन्त्य परिताप पैदा होता है। कुछ दिनों से सुधार, देशोद्धार और स्वदेश-हितैषणा का गंभीर नाद सब तरफ़ से सुनाई पड़ने लगा है। परन्तु स्वभाषा-प्रेम की तरफ़ अभी तक देश-हितैषियों का बहुतही कम ध्यान गया है। देशोद्धार क्या देश-भाषा को उन्नत किये बिना भी हो सकेगा? तिलक ऐसे विद्वान् और देश-हितैषी सज्जन अपनी मातृभाषा मराठी में अख़बार निकालें; परन्तु हमारे प्रान्त के पण्डितंमन्य एम० ए०, बी० ए०, हिन्दी लिखना अपमान-जनक समझें! औरों की कौन कहे, ख़ास हमारे मित्रों में से कितने ही अँगरेज़ी के ऐसे आचार्य्य हैं जो व्यर्थ आलाप-प्रलाप करने और इधर उधर घूमने में रोज़ पाँच पाँच छः छः घंटे खो देते हैं; परन्तु सरस्वती या किसी और हिन्दी-पत्र या पत्रिका में लिखने के लिए उन्हें एक घंटे की भी फ़ुरसत नहीं मिलती। और, यदि कभी फ़ुरसत मिलती भी है तो पायनियर, ऐडवोकेट, या डेली टेलिग्राफ़ में लिखने के लिए! एक एम० ए० महाशय इस समय हमारे पास बैठे हैं। आपसे हमने सरस्वती के लिए एक छोटा सा लेख लिखने की प्रार्थना की, सो तो आप से न हुआ; घंटों से आप थैकर की डाइरेक्टरी की सैर में निमग्न हैं। परन्तु, याद रहे, कभी वह समय भी आवेगा जब इन उदारहृदय महात्माओं को यदि किसी और प्रेरणा से नहीं, तो लज्जाविवश होकर तो ज़रूर ही हिन्दी लिखनी पड़ेगी।

जहाँ हिन्दी के हितैषियों का यह हाल है वहाँ किसी पत्र या पत्रिका के विशेष प्रचार की बहुत कम आशा की जा सकती है। तथापि सरस्वती अपने कर्त्तव्य में यथासम्भव त्रुटि न होने देगी। जैसे आज तक वह हर साल बराबर कुछ न कुछ उन्नति करती गई है वैसे ही अगले साल भी करने का वह दृढ़ इरादा रखती है। यदि हमारे अनुग्रहशील ग्राहकों ने उस पर कुछ भी अधिक अनुग्रह किया—कुछ भी उसके प्रचार को और बढ़ाया—तो उनकी कृपा निष्फल न जायगी।

पाठकों को मालूम ही है कि कुछ समय से सरस्वती, हर महीने, पहले ही सप्ताह में उनकी सेवा में पहुँच जाती है। अगले साल यह क्रम बराबर जारी रखने का विचार है। अर्थात् जिस महीने की सरस्वती होगी उसी महीने की पहली तारीख़ को वह इलाहाबाद से रवाने हो जाया करेगी। आशा है इसे ग्राहक महाशय पसन्द करेंगे।

अगले साल सरस्वती में कुछ रंगीन चित्र देने का भी विचार है। यह बात आज तक हिन्दी के किसी सामयिक पत्र या पत्रिका ने नहीं की। हिन्दी के लिए यह बिलकुल ही नई बात होगी। परन्तु तीन तीन चार चार रंग के चित्र देना बहुतही असाधारण बात है। विलायती मासिक पत्रों में भी यह बात कम देखी जाती है। सिर्फ़ कभी कभी रंगीन चित्र उनमें निकलते हैं। इस तरह के चित्र देने में बहुत ख़र्च पड़ता है। इस संख्या में जो रंगीन चित्र प्रकाशित किया जाता है उसमें चार रंग हैं। उसके ब्लाक विलायत से बनवाकर मँगाये गये हैं। उनके बनवाने में इतना ख़र्च पड़ा है जितना शायद एक छोटी मोटी हिन्दी की मासिक पुस्तक की साल भर की छपाई में भी न पड़ता होगा! पाठक इसी से इस काम के ख़र्च का अनुमान करलें। इस तरह के चित्र तभी दिये जा सकेंगे जब सरस्वती के प्रचार की यथेष्ट वृद्धि होगी। बिना काफ़ी आमदनी के यह काम न हो सकेगा। आशा है, हिन्दी के हितचिन्तक इस विषय में हमें निराश न करेंगे। यदि वे सरस्वती पर पहले की अपेक्षा अधिक कृपा करने की उदारता दिखावेंगे तो रंगीन चित्र देने का क्रम बराबर जारी रक्खा जायगा। सरस्वती की जितनीही अधिक ग्राहक-संख्या बढ़ेगी उतनेही अधिक रंगीन चित्र उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में निकलेंगे। सरस्वती के मालिकों की इच्छा उसकी आमदनी से लाभ उठाने की स्वप्न में भी नहीं। जो कुछ प्राप्ति उससे होगी वह उसी में लगादी जायगी। रंगीन चित्रों का पहला नमूना पाठकों को इसी महीने उपहार में दिया जाता है। यदि सरस्वती के कृपालु ग्राहक और पाठक अपने कर्तव्य से च्युत न होंगे तो सरस्वती भी अपने कर्तव्य पर दृढ़ रह कर अगले साल और भी रंगीन चित्र प्रकाशित करेगी। इस बार का रंगीन चित्र विदेशी है; अगले चित्र स्वदेशी होंगे।

१९०८ में प्रकाशित होने के लिए विलायत से कितनेहीं उत्तमोत्तम चित्र मँगाये गये हैं। उनमें से चित्रकार-शिरोमणि रैफल के भी कई चित्र हैं। इसके सिवा एक मशहूर चित्रकार को हमेशा के लिए रखने का भी विचार है। यदि ग्राहकों की कृपा कुछ विशेष हो गई तो एक अच्छा चित्रकार रख लिया जायगा। उससे प्रसिद्ध प्रसिद्ध पौराणिक और अन्यान्य विषयों के चित्र सरस्वती में प्रकाशित करने के लिए बनवाये जायँगे।

जिन्होंने कीलाक्षरलिपि और यवनानीलिपि पर "बार्हस्पत्य" जी के लेख पढ़े हैं उनसे यह बतलाने की ज़रूरत नहीं कि "बार्हस्पत्य" जी कैसे विद्वान् हैं। आपने अगले साल कई प्राचीन लिपियों पर बड़े ही गवेषणापूर्ण लेख लिखने का वादा किया है। श्रीयुत सत्यदेव और बाबू काशीप्रसाद जायसवाल के भी लेख अगले साल बराबर प्रकाशित होंगे। आशा है, ये लेख पहले की भी अपेक्षा अधिक उपयोगी और मनोरञ्जक होंगे। यदि सरस्वती के प्रेमियों की कृपा वृद्धिंगत हुई तो कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक लेख भी देने का विचार है।

कुछ सज्जनों के लेख बहुत दिन से हमारे पास प्रकाशनार्थ रक्खे हैं। परन्तु स्थान की कमी के कारण हम उन्हें नहीं प्रकाशित कर सके। आशा है, अगले साल वे सब प्रकाशित हो जायँ। लेखक महोदय विलम्ब के लिए क्षमा करें। यदि सरस्वती का यथेष्ट प्रचार हो जाय तो हमारा इरादा उसकी पृष्ठ-संख्या बढ़ाकर और भी अधिक कर देने का है। ऐसा होने से स्थान की कमी की शिकायत जाती रहेगी। पर यह तभी हो सकता है जब सरस्वती के प्रचार में विशेष वृद्धि हो।

अँगरेज़ी में जितनी अच्छी अच्छी सामयिक पुस्तकें निकलती हैं उनके प्रायः प्रत्येक अंक की समालोचना अँगरेज़ी-अख़बारों में होती है। परन्तु खेद की बात है, हिन्दी के समाचारपत्र इस बात पर ध्यान नहीं देते। इससे मासिक पुस्तकों के सम्पादक जान सकते कि उनकी कौन कौन बातें लोगों को पसन्द हैं और कौन कौन नापसन्द। समाचारपत्र प्रजा के प्रतिनिधि हैं, अतएव पत्र-सम्पादकों को अपनी रुचि और अरुचि का कम, पर जिसके वे प्रतिनिधि हैं उसकी रुचि और अरुचि का अधिक ख़याल करके मासिक पुस्तकों की कभी कभी समालोचना करनी चाहिए। इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं। यदि वे सच्चे दिल से किसी के दोष दिखायेंगे तो कौन ऐसा अधम होगा जो बुरा माने। और क्या किसी के काम में सब दोषही दोष थोड़ेही होते हैं? जहाँ दोष होते हैं वहाँ कुछ गुण भी होते हैं। अतएव दोषों के साथ गुणों का भी उल्लेख हो जायगा। गुणों के गान और दोषों के धिक्कार में कर्तव्यनिष्ठ न्यायप्रिय लोग कभी सङ्कोच नहीं करते। आशा है हमारी यह सरल सूचना किसी के क्षोभ का कारण न होगी।

विविध विषय।

हाल में दो कायस्थ सज्जनों ने बड़ा नाम पैदा किया है। एक बाबू अम्बिकाचरण ने, दूसरे बाबू परमेश्वरलाल ने।

* * *

बाबू परमेश्वरलाल गया के रहनेवाले हैं। आप इँगलैंड में बैरिस्टरी का अभ्यास करने गये थे। वहाँ से कुछ समय हुआ आप बैरिस्टर होकर आ-गये। इँगलैंड में आपने अनेक वक्तृतायें दीं। आपकी वक्तृताओं की वहाँ बड़ी धूम रही। वहाँ वालों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने आपका बड़ा आदर किया। यहाँ तक कि महाराज एडवर्ड तक से हाथ मिलाने का सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ। प्रसिद्ध मासिक पुस्तक "रिव्यू आव रिव्यूज़" के सम्पादक ने आपका चित्र अपनी पुस्तक में प्रकाशित किया और आपसे वार्तालाप करके अपने प्रश्नों और आपके उत्तरों को भी अपनी पुस्तक में छापा। आपके कथन को "रिव्यू आफ़ रिव्यूज़" में पढ़ने से विदित होता है कि हिन्दुस्तान के राजकीय विषयों का बहुत ही अच्छा ज्ञान आपको है। आप हालैंड के हेग-नगर भी हो आये हैं। वहाँ जो शान्ति-सभा हो रही है शायद उसके भी दर्शन आपने किये हैं। ईश्वर करे आपको अपने व्यवसाय में सफलता हो और बेचारे भारत को आपसे कुछ लाभ पहुँचे।

* * *

कैलीफ़ार्निया के विश्वविद्यालय में संस्कृत भी पढ़ाई जाती है। डाक्टर राइडर वहाँ संस्कृताध्यापक हैं। सुनते हैं आप अच्छी संस्कृत जानते हैं। आपने मृच्छकटिक-नाटक का अँगरेज़ी में अनुवाद किया है। कुछ दिन हुए वहाँ के विश्वविद्यालय के छात्रों ने इस नाटक का अभिनय किया था। दर्शक लोग खेल देखकर बहुत प्रसन्न हुए। सब ने एक स्वर से इस नाटक के रचयिता शूद्रक कवि की प्रशंसा की और साथही जिन विद्यार्थियों ने इसका अभिनय किया था उनके अभिनय-कौशल की भी प्रशंसा की। धन्य भारतवर्ष जिसके नाटक कैलीफार्निया में खेले जायँ! पर ख़ुद भारतवर्ष में "शीरीं और फरहाद", "अलीबाबा और चालीस चोर" आदि खेलों के सामने बेचारे शूद्रक को कौन पूछता है!

* * *

इस्पेराँटो (Esperanto) भाषा के विषय में दो एक नोट सरस्वती में प्रकाशित हो चुके हैं। यह भाषा दिनों दिन ज़ोर पकड़ती जाती है। आशा है कि बहुत जल्द दुनिया के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक प्रचलित हो जाय। यह है भी बड़ी सीधी। मदरास हाते के सलेम शहर में एक मदरासी महाशय इस भाषा में बड़े प्रवीण हैं। उनसे इसकी दो एक किताबें मँगाकर हमने देखी हैं। हम कह सकते हैं कि १५-२०ही दिन की मेहनत से इस भाषा में बहुत कुछ गति हो सकती है। इसके आविष्कर्त्ता पोलैंड के रहनेवाले डाक्टर ज़ेमेनहाफ़ हैं। हर साल इस भाषा के उन्नायक एक कांग्रेस करते हैं। इस साल की कांग्रेस केम्ब्रिज में हुई थी। सब मिलाकर कोई तीस पैंतीस देशों के प्रतिनिधि कांग्रेस में आये थे। इस्पेराँटोही में प्रार्थना, उसी में वार्तालाप, उसी में वक्तायें, उसी में वाद-विवाद हुए। नाटक-तमाशे भी उसी में हुए। पृथ्वी के एक छोर में ब्रेज़ील देश है, दूसरे छोर में नारवे। पर इतनी दूर रहनेवाले और इतनी भिन्न भाषायें बोलनेवालों ने एकही भाषा में बातचीत की! वेनीज़्यूला देश का रहनेवाला न्यस्टर बालकन नामक एक १४ वर्ष का बालक भी अपने देश की तरफ़ से प्रतिनिधि होकर इस कांग्रेस में आया था। उसी की वक्तृता सबसे पहले हुई। उसने इस्पेराँटो में धाराप्रवाह वक्तृता दी। उसकी वाग्मिता सुनकर सब लोग चकित हो गये। अगली बार जर्मनी में इस भाषावालों की कांग्रेस होगी। लन्दन में इस भाषा के पक्षपातियों ने एक सभा बनाई है; उसके उप-सभापति लार्ड राबर्टस हुए हैं। महाराज एडवर्ड भी इस भाषा की उन्नति के अभिलाषी हैं। जान पड़ता है, कुछ समय में, व्यापार-व्यवसाय और राजकीय मामलों में भिन्न भिन्न भाषा-भाषी लोग यही भाषा काम में लावेंगे।

* * *

अमेरिका के वाशिंग्टन नगर के अध्यापक एल्मर गेट्स ने अनेक वैज्ञानिक प्रक्रियाओं से यह साबित किया है कि क्रोध, ईर्ष्या, दुःख, शोक और चिन्ता से मनुष्य के शरीर में एक प्रकार का विष पैदा हो जाता है। इन मानसिक विकारों के कारण शारीरक रसादि धातुओं में विलक्षण फेर फार हो जाते हैं। रासायनिक रीति से उनका विश्लेषण करके अनेक प्रकार की परीक्षायें अध्यापक महाशय ने की हैं। उनसे सिद्ध हुआ है कि क्रोध के कारण शरीर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक विशेष प्रकार का भूरा रस उत्पन्न हो जाता है। उसे मनुष्यों अथवा पशुओं के शरीर में प्रविष्ट कर देने से पहले घबराहट के चिन्ह देख पड़ने लगते हैं। फिर मनुष्य उत्तेजित हो उठता है और क्रोध के वशीभूत हो जाता है। ईर्ष्या का विष बड़ाही भयङ्कर होता है। उसे यन्त्रद्वारा जीवधारियों के शरीर में प्रविष्ट करने से उन्हें मरणान्तक वेदनायें होने लगती हैं। उससे वे मर तक जाते हैं। ईर्ष्या कैसा भयानक विकार है!

***

पण्डित रामनाथ शर्म्मा, भिलसा, से लिखते हैं—सरस्वती में कीलाक्षर-लिपि पर जो विद्वत्तापूर्ण लेख छपे हैं उन्हें पढ़कर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। यह लिपि बहुत पुरानी है। ईस्ट इंडिया कम्पनी की तरफ़ से फ़ारस के किरमनशाह स्थान में जो लोग नियत थे उनमें रालिन्सन साहब एक अवैतनिक पदाभिलाषी थे। किरमनशाह के समीपही बहुत से स्मारक स्तम्भ थे, जिन्होंने विद्यानुरागी रालिन्सन का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। ये स्तम्भ इतने प्राचीन थे कि इनका इतिहास से पता लगाना सर्वथा असम्भव था। इन स्तम्भों पर जितने शिलालेख कीलाक्षर लिपि में थे उनकी नक़ल रालिन्सन ने कर ली। इन्हीं नक़लों में बेहिस्तून (Behistoon) की प्रसिद्ध शिला के लेख की भी नक़ल थी। बेहिस्तून की शिला १७०० फ़ीट ऊँची है। उसके नीचे के भाग में ३०० फ़ीट तक तीन भाषाओं—पर्शियन, सीदियन और आसीरियन (Persian, Scythian and Assyrian)—में लेख खुदे थे। प्रचलित भाषाओं के अक्षरों का पुरानी अप्रचलित भाषाओं के अक्षरों से, जिन्हें पृथ्वी से लुप्त हुए बहुत समय हो गया था, मिलाकर इस इतिहासरसिक विद्वान् ने कीलाक्षर-लिपि का कुछ कुछ बोध कर लिया। उसकी वर्ण-माला भी उसने तैयार कर ली। फिर उसने अपने अनुसन्धान किये गये कीलाक्षरलिपि के लेखों की प्रतिलिपि इंगलैंड भेजी। जब वे लेख वहाँ पहुँचे तब उनको देखकर सब को आश्चर्य्य हुआ। बड़े बड़े प्रोफ़ेसरों ने भी इस लिपि से अनभिज्ञता प्रकट की। परन्तु जब वे लेख नॉरिस (Norris) नामी पुरुष को, जो ईस्ट इंडिया हाउस में एक लेखक था, बतलाये गये तब उसने कहा कि शिलालेखों की ठीक ठीक नक़ल नहीं हुई। याद रहे उसने बेहिस्तून की शिला के कभी स्वप्न में भी दर्शन नहीं किये थे! रालिन्सन अब तक किरमनशाह में ही थे। जब उनके पास शिलालेखों की अशुद्धता का समाचार पहुँचा तब उन्होंने फिर बड़ी सावधानी से उनकी नक़ल की और अशुद्धियों को शुद्ध कर लिया। इस तरह कीलाक्षरलिपि का कुछ कुछ बोध हुआ। परन्तु अब तक इस मृतक लिपि का यथार्थ ज्ञान न हुआ था। और इन दो विद्वानों के परिश्रम को सार्थक करने के लिए अन्य उद्योगी पुरुषों की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता को ऑस्टिन लेयर्ड (Austen Layard) ने पूरा किया। इस अलौकिक मनुष्य की अवस्था केवल २२ वर्ष की थी। यह एक वकील का मुहर्रिर था। जब ऑस्टिन लेयर्ड एशिया खंड में भ्रमण करने आया तब उसने अपनी इतिहास-रसिकता से प्रेरित होकर यूफ़्रेटस (Euphrates) नदी के उस पार के देशों में भ्रमण करने का विचार किया। इस भ्रमण में उसे असंख्य कष्ट सहने पड़े। उसे अपनी और अपने एकमात्र साथी की रक्षा असभ्य और क्रूर जातियों से अपने ही बाहुबल से करनी पड़ी। इसी भ्रमण में उसे कीलाक्षरलिपि के अनेक शिलालेख मिले। उन की नक़ल उसने ब्रिटिश म्युज़ियम को दी, जिससे तीन हज़ार वर्ष के प्राचीन गुप्त इतिहास का पता लगाने में योरप के विद्वान् समर्थ हुए। इस विषय का पूरा वृत्तान्त जानने के लिए पाठकों को—"Monuments of Ninevah" नामी पुस्तक अवलोकन करना चाहिए।

***

योरप के कितनेही पण्डितों का मत है कि हमारे पुराण अभी कल की चीज़ हैं। विलसन साहब के मत से तो एक भी पुराण ईसा की आठवीं शताब्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पुराना नहीं। कितनेहीं पुराण तो आपने सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के बताये हैं। आपने विष्णु-पुराण का अनुवाद अँगरेज़ी में किया है; उसी की भूमिका में आपने ये सब बातें लिखी हैं। यह भूमिका विलायती और देशी पुरातत्वज्ञ पण्डितों का कण्ठहार हो रही है। अब यह दुष्प्राप्य है। पर जिसे विल्सन साहब का विष्णुपुराण मिल सके उसे चाहिए कि इसे ज़रूर पढ़े। इसमें पुराणों के समय के विषय में जो अन्दाज़ बाँधे गये हैं बिलकुल ही ग़लत हैं। महमूद ग़ज़नवी के समय में अलबेरूनी नाम का एक यात्री इस देश में आया था। उसने संस्कृत पढ़ी और "तहक़ीक़े-हिन्द" नाम की किताब १०३१ ईसवी में लिखी। इस किताब में इस देश के अठारहों पुराणों की सूची दी हुई है और यह लिखा हुआ है कि इनमें से ३ पुराण मैंने ख़ुद देखे हैं। अतएव ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी से तो सभी पुराण पुराने ठहरे। बाण कवि ने सातवें शतक के शुरू में हर्ष-चरित लिखा। उसमें वह कहता है कि अपने मकान लौट जाने पर मैं एक पण्डित से वायु-पुराण सुनता रहा। लीजिए सातवीं सदी में भी पुराणों का ऐतिहासिक पता चला। विलायत के विद्वान् कालिदास को चौथी या पाँचवीं सदी का बतलाते हैं। और कालिदास अपने मेघदूत में विष्णु के गोपवेश की उपमा इन्द्रधनुषयुक्त मेघ से देते हैं—"येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमालप्स्यते ते। बर्हेणेव स्फुरित-रुचिना गोपवेशस्य विष्णोः"। अतएव जिन पुराणों में विष्णु के गोपवेश (कृष्ण) का वर्णन है वे सब चौथी या पाँचवीं सदी से पुराने ठहरे। और जो कहीं कालिदास की स्थिति ईसा के ५७ वर्ष पहले मान ली जाय तो कितनेही पुराण और भी पुराने सिद्ध हो जायँ। बात यह है कि पुराण इतने नये नहीं जितने कि विल्सन साहब आदि उन्हें बतलाते हैं। वे बहुत पुराने हैं। हाँ उनका पुराना रूप चाहे इस समय भले ही न रहा हो। इस नोट से हमारा यह मतलब नहीं कि विलायती पण्डितों ने जानबूझ कर पुराणों को नया साबित करने की चेष्टा की है।

ट्रांसवाल की राजधानी प्रिटोरिया के पास हीरों की एक खानि है। प्रीमियर डायमण्ड कम्पनी ने इस खान से हीरे निकालने का ठेका लिया है। १९०५ के जनवरी महीने में इस कम्पनी के मैनेजर को एक बहुत बड़ा हीरा मिला। यह हीरा चार इंच लंबा और ढाई इंच चौड़ा है। इतना बड़ा हीरा आज तक और दूसरा नहीं पाया गया। इसकी क़ीमत कोई बीस लाख रुपये कूती गई है। परन्तु आज तीन वर्ष होते आये उसे ख़रीदने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ी। अब यह हीरा महाराज सप्तम एडवर्ड को नज़र किया जानेवाला है। अँगरेज़ों ने ट्रांसवाल को जीत कर फिर उसे स्वतन्त्रप्राय कर दिया। इससे ट्रांसवाल की प्रजा अपना पराजय भूल गई है। वह अब इस हीरे को देकर अपनी राजनिष्ठा दिखाने जाती है। जनरल बोथा ट्रांसवाल के प्रधान मन्त्री हैं। उन्होंने ट्रांसवाल की पारलियामेंट में प्रजा की तरफ़ से यह हीरा देने का प्रस्ताव किया। इसका कुछ लोगों ने विरोध भी किया। पर बहु-सम्मति से हीरे का दियाजानाही निश्चय हुआ। अब ट्रांसवाल की गवर्नमेंट इस हीरे को प्रीमियर कम्पनी से मोल लेगी और धीरे धीरे उसका मोल चुकाती रहेगी। हीरा शीघ्रही महाराज एडवर्ड के मुकुट की शोभा बढ़ावेगा। वह भारतवर्ष के कोहेनूर के बराबर आसन पावेगा। इस हीरे का नाम क्यूलियन हीरा है।

* * *

फ़्रांस ने फ़ौजी पवनयान बना लिये। उसके बाद जर्मनी ने भी बनाये। इँगलैंड रहा जाता था; पर सुनते हैं कि उसे इन दोनों देशों से भी बढ़कर आकाशी उड़ान में कामयाबी हुई है। इँगलैंड के आकाशयान कप्तान कैपर और मिस्टर कोडी के बनाये हुए हैं। इन यानों में से एक यान गत सितम्बर में २ मील उड़ा। उसके कुछ दिनों बाद फिर उसकी जाँच हुई। इस दफ़े उसने १७ मील की आकाशी दौड़ लगाई। तीसरी दफ़े जो उसकी परीक्षा हुई तो वह घंटे में २० मील के हिसाब से उड़ा, सो भी तेज़ हवा में। इन उड़ानों में किसी तरह की दुर्घटना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हुई। यदि इसी तरह इस पवनयान के उड्डान की उन्नति होती गई तो फ़्रांस और जर्मनी आदि पीछे रह जायँगे; इँगलैंड सब से बढ़ जायगा। अभी तक इँगलैंड चुपचाप देखता था कि और देश क्या करते हैं, कैसे पवनयान बनाते हैं, कितनी कामयाबी उन्हें होती है। फ़्रांस और जर्मनो के आकाशयानों का फल प्रकाशित होते ही उसने एकदम सब को चक़ित करने की ठानी है। साफल्यमस्तु। यह नोट यहाँ तक लिख चुकने पर हमने पढ़ा कि ५ आक्टोबर को अँगरेज़ी व्योमयान ऐलडर-शाट से उड़ कर आकाश-मार्ग से लंडन पहुँचा। वहाँ उसने सेंट-पाल के गिरजाघर और बकिंहम राजमहल की प्रदक्षिणा की। फिर युद्ध-विभाग के दफ़्तर के सामने उतर कर, वहाँ के अफ़सरों को चकित किया। इस प्रकार इस व्योमयान ने अपनी सफलता का परिचय देकर इस बात को सिद्ध कर दिया कि इस विषय में फ़्रांस और जर्मनी की अपेक्षा इँगलैंड एक हाथ आगे ही है, पीछे नहीं।

*
* *

Poet (कवि)। इस नाम का एक मासिकपत्र अँगरेज़ी में मिरज़ापुर से निकलने लगा है। बाबू भगवानदास जायसवाल, बी० ए०, इसके सम्पादक हैं। वार्षिक मूल्य इसका सिर्फ़ डेढ़ रुपया है। इसमें हिन्दी की भी कविता रहती है। दो अङ्क इसके आज तक निकले हैं। उनमें कविताविषयक अँगरेज़ी में मार्मिक लेख हैं। कवितायें भी कई एक अच्छी अच्छी हैं। अच्छी कविता लिखनेवालों को "Poet" (कविजी) इनाम भी देते हैं। अँगरेज़ी में गाय पर उत्कृष्ट कविता लिखने के कारण एक बंगाली और एक मुसल्मान विद्यार्थी को इनाम दिये जाने की घोषणा प्रकाशित हुई है। हम इस पत्र की हृदय से उन्नति चाहते हैं।

*
* *

कानपुर में पण्डित कालिकाप्रसाद एक मशहूर वैद्य हैं। आपके "आयुर्वेदीय औषधालय" की यों तो सभी दवाइयाँ गुणकारी होती हैं; पर उनमें आपकी "त्रिपुरभैरव बटी" बहुतही बढ़िया है। यदि नींद न आती हो, भोजन का ठीक परिपाक न होता हो, पेट में दर्द रहता हो, क़ब्ज़ की शिकायत हो तो यह बटी रामबाण का काम करती है। अजीर्ण और मन्दाग्नि के लिए तो यह बहुतही मुफ़ीद है। दाम, १०० गोलियों की एक शीशी का १ रुपया ५ आना।

*
* *

सरस्वती के पाठकों के पूर्व-परिचित, अध्यापक मुग्धानलाचार्य्य, आजकल भारतवर्ष में विराजमान हैं। आप यहाँ के प्रसिद्ध प्रसिद्ध संस्कृत-विद्वानों से वार्तालाप करेंगे; यहाँ के मुख्य मुख्य संस्कृत-पुस्तकालय और कालेज देखेंगे; यहाँ के प्रधान प्रधान ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा करेंगे; संस्कृत की हस्त-लिखित अलभ्य पुस्तकों का, यदि हो सका तो, संग्रह करेंगे; और आजकल के हिन्दू-धर्म्म का ज्ञान भी यथाशक्य प्राप्त करेंगे। आपकी स्थिति, सम्भव है, कई महीने इस देश में हो। आपके विषय में अभी और कुछ लिखने की हमारी इच्छा है।

*
* *

केर-हार्डी साहब के नाम और काम से पाठक अवश्यही परिचित होंगे। आज हम उन्हें आपके चित्र से भी परिचित कराते हैं। इस देश की राजकीय स्थिति प्रत्यक्ष देखने और समझने के लिए आज कल (नवम्बर ०७ में) आप हिन्दुस्तान में भ्रमण कर रहे हैं। गत आक्टोबर में आप कुछ घंटों के लिए कानपुर में भी उतरे थे और यहाँ के कुछ प्रतिष्ठित जनों से बात चीत की थी। हार्डी साहब का चरित बड़ाही शिक्षाप्रदायक और अनुकरणीय है। आपका जन्म स्काटलैंड के एक गाँव में १८५६ ईसवी में हुआ था। आठही वर्ष की उम्र से आप कोयले की एक खान में मज़दूरी करने लगे। १२ वर्ष की उम्र तक आपको अच्छी तरह अक्षर-ज्ञान भी नहीं हुआ था। पर छोटी छोटी सचित्र पुस्तकें और रास्तों में तथा दुकानों पर लगे हुए विज्ञापन पढ़ते पढ़ते आप थोड़ा बहुत लिखने पढ़ने लगे। इससे आपको विद्याध्ययन का चसका लग गया। वह यहाँ तक बढ़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि १९ वर्ष की उम्र होते होते आपने बड़े बड़े ग्रन्थकारों के प्रायः सभी ग्रन्थ पढ़ डाले। खान में पड़े हुए सफ़ेद पत्थरों पर लैम्प का काजल पोत कर उस पर आलपीन से निशान बना बना कर आपने लिखना सीखा। लघुलेखन-कला (शार्ट हैंड) भी आपने इसी तरह सीखी! २३ वर्ष की उम्र तक आपका यह व्यवसाय जारी रहा। इसके बाद आप मज़दूरों की एक सभा के मन्त्री हुए। कुछ दिन बाद 'कमनाक न्यूज़' नामक एक पत्र के आप सम्पादक बने। चार वर्ष तक यह काम करके मज़दूरों के दल के आप अगुवा हुए और उनकी स्थिति सुधारने के लिए गवर्नमेंट से आपने झगड़ना शुरू किया। आपके इस काम में सफलता भी बहुत कुछ हुई। कोई १२ वर्ष से आप पार्ल्यामेंट के मेम्बर हैं। वहाँ मज़दूरों के प्रतिनिधि बनकर काम करते हैं। मज़दूरों के 'स्वतंत्र-दल' नामक समूह के आप अध्यक्ष हैं और 'लेबर लीडर' नामक एक अख़बार भी आप अपने दल की तरफ़ से निकालते हैं। आपको पुस्तकावलोकन से बड़ा प्रेम है। वक्ता भी आप बहुत अच्छे हैं। अब आपको शुभ-दृष्टि हिन्दुस्तान पर पड़ी है। "मङ्गलं दिशतु नो महेश्वरः"।

रायबहादुर बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, बी० ए०, सी० आई० ई०।

रायबहादुर बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, सी० आई० ई०, का जन्म २७ जून सन् १८३८ ई० को, चौबीस परगना के अन्तर्गत "कांटालपाड़ा" नामक ग्राम में हुआ था। यह ग्राम नैहाटी स्टेशन के पास है। यह भागीरथी के किनारे है। इनके पूर्वज हुगली ज़िला के "देशमुखा" ग्राम में वास करते थे। ये लोग फुलिया श्रेणी के कुलीन ब्राह्मण थे। इनके प्रपितामह रामहरि चट्टोपाध्याय, अपने मातामह की सम्पत्ति के अधिकारी होकर, "कांटाल पाड़ा" चले आये। तब से इनके वंश के लोग इसी ग्राम में रहने लगे। बंकिम ने अपने इस पैत्रिक निवास को भी छोड़ दिया। आप कलकत्ते चले आये और नं० ५ प्रताप चैटर्जीज़लेन, पटलडङ्गा, में रहने लगे।

इनके पिता का नाम यादवचन्द्र चट्टोपाध्याय था। ये एक असाधारण शक्तिसम्पन्न पुरुष थे। ये बहुत दिनों तक डेप्युटी कलेक्टर रहे। अन्त में पेन्शन पाकर सुख से अपने समय को व्यतीत किया। लड़कपन में बंकिम अपने पिता के साथहा रहते थे। उस समय इनके पिता मेदिनीपुर में काम करते थे।

पांच वर्ष की उम्र में बंकिम का विद्याध्ययन आरम्भ हुआ। पहलेही दिन बालक बंकिम ने अपनी तीव्रबुद्धि और प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया। पहले ही दिन में इन्होंने समस्त वर्णमाला सीख डाली। इस घटना को देखकर इनके आदिगुरु इनकी तीक्ष्ण बुद्धि और विलक्षण स्मरणशक्ति की प्रशंसा आजन्म करते थे। सात वर्ष की उम्र में बंकिम स्कूल भेजे गये। अभी तक इनके पिता मेदिनीपुर ही में थे। अतएव मेदिनीपुर के अँगरेज़ी स्कूल में इनका नाम लिखाया गया। यहाँ भी बंकिम अपने असाधारण गुणों से अपने शिक्षकों को विस्मित और मुग्ध करने लगे। यहां इनको बराबर "डबल प्रमोशन" होता रहा। ये अपनी क्लास के सर्वोच्च स्थान के सदा अधिकारी बने रहे। पिता की बदली हो जाने के कारण, १२ वर्ष की उम्र में, ये हुगली-कॉलेज में भरती हुए।

अपने यश के साथ इन्होंने इस कालेज की भी यशोवृद्धि की। क्लास को निर्दिष्ट पुस्तकावली पढ़ने से ही बंकिम की विद्या-तृष्णा नहीं बुझी। अतएव पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन हो, चाहे न हो, ये शिक्षकों से लुका छिपाकर कालेज के पुस्तकालय के अनेक ग्रन्थों का पाठ करते थे। किन्तु परीक्षा के कुछ दिन पहले पाठ्य पुस्तकों को ऐसा मन लगाकर पढ़ते थे कि परीक्षा में सर्वोच्च स्थान अधिकार कर पुरस्कार अथवा छात्र-वृत्ति भी पाते थे। यथासमय बंकिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने "सीनियर स्कालर्शिप" परीक्षा पास की। स्वर्गीय जज द्वारकानाथ मित्र को छोड़कर इनके समान प्रतिभाशाली छात्र तब तक हुगली-कालेज में नहीं हुआ था। कालेज में पढ़ते समय बंकिम को संस्कृत सीखने की अभिलाषा हुई। कालेज से आकर ये नित्य पाठशाला में संस्कृत पढ़ने जाने लगे और तीन चार वर्ष के परिश्रम से इन्होंने संस्कृत में ख़ूब अभिज्ञता प्राप्त कर ली। हुगली-कालेज का अध्ययन समाप्त होने पर ये क़ानून पढ़ने कलकत्ते के प्रेसिडेन्सी कोलेज में गये। इसी समय, सन् १८५२ ई० में, कलकत्ता-विश्वविद्यालय में पहले पहल बी० ए० परीक्षा का आरम्भ हुआ। क़ानून पढ़ना छोड़कर बंकिम बी० ए० परीक्षा के लिए परिश्रम करने लगे। तब परीक्षा में केवल दो महीने शेष रह गये थे। इसी दो मास के परिश्रम से प्रतिभावान् बंकिम ने प्रशंसा-सहित बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। इस समय इनकी उम्र सिर्फ़ २० वर्ष की थी। भारतवर्ष में सब से पहले बी० ए० यही हुए।

हालिडे नाम के साहब इस समय बङ्गाल के छोटे लाट थे। इनके गुणों से मुग्ध होकर लाट साहब ने इनको डेपुटी मैजिस्ट्रेट बनाया। २० वर्ष की उम्र में बंकिम ने जसोर जा कर डेपुटी के पद को सुशोभित किया। यहीं सुप्रसिद्ध नाटककार दीनबन्धु मित्र के साथ इनका परिचय हुआ। यही दीनबन्धु, और पुलिस के एक उच्च कर्मचारी, जगदीशनाथ राय, इनके अन्तरङ्ग मित्र हुए। इन्हीं दीनबन्धु बाबू को बंकिम ने अपना "मृणालिनी" उपन्यास प्रणयोपहार-स्वरूप समर्पण किया है; और "विषवृक्ष" जगदीशनाथ को अर्पित कर अपने स्नेह का परिचय दिया है।

कई कारणों से यौवन के कुछ दोषों में बंकिम लिप्त हो गये थे। अर्थात् पानदोष और उसके अन्यान्य आनुषङ्गिक दोषों के पाले इस समय ये पड़ गये थे। किन्तु वयोवृद्ध होने पर ये अवश्य सुधर गये थे। क्योंकि आगे इनका आचार शुद्ध और भाव पवित्र हो गया था।

११ वर्ष की उम्र में बंकिम का विवाह हुआ। किन्तु विवाह के ५। ६ वर्ष बाद इनको पत्नी-वियोग हुआ। २० वर्ष की उम्र में, जब बंकिम जसोर में थे, इन्होंने दूसरा विवाह किया। इनकी यह साध्वी सहधर्मिणी इनकी चिरसङ्गिनी रह कर अन्त में पति-शोक से कातरा हुई। अपनी स्त्री के विषय में इन्होंने लिखा है—"हमारे जीवन पर सब से अधिक प्रभाव हमारी पत्नी का पड़ा है। हमारी जीवनी लिखने के लिए बैठने पर उसकी भी जीवनी लिखनी पड़ेगी। यदि हमारी पत्नी न रहतो तो आज हम क्या हो जाते, सो नहीं कहा जा सकता। वह हमारी नीति-गुरु, धर्म-गुरु, सभी कुछ है।" जिसके विषय में विज्ञ बंकिम ने स्वयं ऐसा कहा है, उसके गुणों की प्रशंसा और लोग क्यों न करेंगे? यही कारण है कि बंकिम के उपन्यासों का आधा भाग, नहीं सारमय भाग, उनकी स्त्री ही की कृपा का फल है। अर्थात् उन्हीं के प्रभाव से उसको सृष्टि हुई है। इनके उपन्यासों के देखने से विदित होता है कि स्त्रियों पर इनकी आन्तरिक श्रद्धा थी। स्त्रियों के विषय में, एक स्थान पर, बंकिम ने लिखा है कि—"रमणी क्षमामयी, दयामयी और स्नेहमयी होती हैं। वे ईश्वर की कीर्त्ति का सार भाग हैं; देवताओं की छाया हैं। रहे पुरुष सो वे तो देवताओं की सृष्टि हैं। स्त्रियाँ आलोक हैं; पुरुष छाया।"

हुगली-कालेज में पढ़ते समय बंकिम ने "संवाद-प्रभाकर" और "साधु-रञ्जन" नामक पत्रों में कविता लिखना आरम्भ किया था। कविता में इनके प्रथम गुरु ईश्वरचन्द्र गुप्त, बँगला के सुप्रसिद्ध कवि, थे।

जसोर में यथोचित विचार-क्षमता दिखाकर बंकिम कांथी गये; और वहाँ से खुलना। वहाँ नील के साहबों का इन्होंने यथेष्ट शासन किया। इनके डर से मरेलगंज वाले "मरेल" और "हिल" साहब खुलना से भागकर आसाम चले गये। किन्तु वहाँ भी बंकिम का वारंट पहुँचा। अन्त में उन लोगों को राजदण्ड भोगना पड़ा। तभी से उस प्रान्त में नील वाले साहबों का उपद्रव बहुत कम हो गया। जो लोग नील के साहबों को जानते हैं वे कह सकते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि इस काम के करने में बंकिम ने कितना साहस किया था। यही नहीं, यहाँ रहकर इन्होंने उन लुटेरों को भी राजदण्ड दिया जो खुलना से सुन्दरवन के जल-पथ पर लोगों को लूट लिया करते थे।

खुलना से इनकी बदली चौबीस परगना के अन्तर्गत बारुईपुर को हुई। इसी समय हाईकोर्ट के जज प्रिन्सेप साहब को एक कमीशन में जाना पड़ा। अतएव बंकिम बाबू कुछ दिनों के लिए इस पद पर अधिष्ठित हुए। किन्तु केवल दो चार ही मास इस पद को सुशोभित कर डेपुटी होकर बरहमपुर गये।

बीच में कुछ दिनों के लिए बंकिम बाबू लाट साहब के दफ़्तर में "असिस्टन्ट सेक्रेटरी" के पद पर नियुक्त हुए थे। किन्तु मेकाले साहब से इनकी न बनी। अतएव इनको फिर अलीपुर जाकर डेप्युटी की कुरसी सुशोभित करनी पड़ी। नौकरी के कारण इन्हें किन किन स्थानों को जाना और कौन कौन सा काम करना पड़ा, इसका विवरण इस छोटे से प्रबन्ध में नहीं हो सकता। यहाँ पर उल्लेख की गई दो एक घटनाओं से ही लोग समझ सकते हैं कि ये कैसे डेप्युटी थे।

साहब लोगों के बुरे बर्ताव से ये सर्वदा रुष्ट रहा करते थे, और प्रायः कहा करते थे कि खाने पीने का सुभीता हो जाने पर हम सेवावृत्ति छोड़ देंगे। किन्तु इन्होंने पेंशन पाने के पूरे समय तक काम किया। पेन्शन लेने के समय इनको अपार आनन्द हुआ। इन्होंने कहा "इतने दिनों बाद सेवावृत्ति से मैंने छुट्टी पाई।"

सन् १८९१ ई० में इन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ी। १५, १६ वर्ष से ये प्रमेह रोग से पीड़ित थे। यह रोग धीरे धीरे बढ़ गया और सन् १८९४ ई० में इन्हें परलोक को ले गया।

सरकार ने बंकिम का यथेष्ट सम्मान किया था। यथाक्रम इनको "राय बहादुर" और "सी० आई० ई०" की उपाधियाँ मिली थीं। दूसरों की दृष्टि में यह आदर चाहे बहुत कुछ हो, किन्तु साहित्यरसिकों की दृष्टि में यह कुछ न था। क्योंकि बंकिम साहित्यसमाज के राज-राजेश्वर थे। दुःख की बात है कि जो लेखनी "कपालकुण्डला" और "चन्द्रशेखर" लिखने में समर्थ थी, उसको तुच्छ जीविकार्जन के लिए वादी-प्रतिवादियों का इज़हार लिखना पड़ा।

बंकिम बाबू को पुत्र-मुख-दर्शन का सुख तो मिला नहीं, पर अपनी कन्या को वैधव्य-यंत्रणा देखने का दुःख उठाना पड़ा। इनके तीन कन्यायें थीं।

बंकिम के तीन भाई थे। श्यामाचरण, संजीवचन्द्र और पूर्णचन्द्र। श्यामाचरण और सजीवचन्द्र बंकिम के पहले ही मर गये थे। श्यामाचरण को छोड़कर इनके शेष दोनों भाई भी साहित्यानुरागी और साहित्यसेवी थे। श्यामाचरण का अनुराग साहित्य में न था। इससे "दुर्गेशनन्दिनी" को उन्हें अर्पण करके बंकिम ने उनके भी नाम का सम्बन्ध साहित्य से कर दिया।

संजीवचन्द्र अच्छे लेखक और कवि थे। इनके बनाये हुए "जालप्रतापचांद," "कंठमाला" आदि ग्रन्थ बहुत अच्छे हैं। पूर्णचन्द्र भी बंकिम की तरह डेप्युटी मैजिस्ट्रेट थे। इनके बनाये हुए "शैशव-सहचरी" और "मधुमती" उपन्यास प्रसिद्ध हैं। संजीवचन्द्र का जीवनचरित बंकिम ने स्वयं लिखा है। उसका नाम है "संजीवसुधा"। बंकिम ने अपना "कपालकुण्डला" ग्रन्थ सञ्जीव को और "चन्द्रशेखर" पूर्णचन्द्र को समर्पित किया है।

बंकिम बाबू पूर्ण धार्मिक थे। धर्म पर इनका पूर्ण विश्वास था। मन्त्र-यन्त्र में भी इनका विश्वास था। ज्योतिष-शास्त्र को भी मानते थे। इस शास्त्र में इनकी थोड़ी बहुत गति भी थी।

सुनते हैं वंगदेशीय कतिपय सज्जन इनके गाँव में इनकी यादगार के लिए एक मन्दिर बनाने और इनके नाम से मेला लगाने का विचार कर रहे हैं। बहुत अच्छी बात है।

जिस समय प्रतिभा के पूर्ण अधिकारी और प्रकृत साहित्य के गुरु बंकिम का जन्म बङ्गदेश में हुआ, उस समय वहाँ की भाषा बहुत हीनावस्था में थी। इनके जन्म ग्रहण करने से विशुष्क सहारा-रूपी वंग-भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सजला, सफला, मलयजशीतला" हो गई। इन्हीं की कृपा और परिश्रम से वङ्ग-भाषा आज नाना रत्नों से सुशोभित हो रही है। साहित्य-क्षेत्र के कर्मवीर बंकिम ने अपने प्रतिभाबल से वङ्गभाषा-भाषियों को मन्त्रमुग्ध सा कर दिया। वङ्गवासी नर-नारी के हृदय पर इन्होंने अपना प्रबल आधिपत्य स्थापन किया। बंगाल ही क्यों, आज अन्यान्य देश भी इनके गुणों का कीर्तन कर रहे हैं। भारतवर्ष की प्रायः सभी भाषाओं में इनकी पुस्तकों के अनुवाद हो रहे हैं। यहाँ तक कि अँगरेज़ी और फ़रासीसी आदि भाषाओं में भी इनकी कई पुस्तकें अनुवादित हो गई हैं। यह अत्युक्ति नहीं, कि जब तक वङ्गभाषा रहेगी तब तक बंकिम रहेंगे।

बंकिम के पूर्ववर्ती बँगला-लेखकों की अपेक्षा इनकी भाषा विशेष प्राणमयी और मर्म्मस्पर्शिनी होती थी। उसके पढ़ने से कभी कभी ऐसा ज्ञात होता है मानो गद्य में भी किसी सरस गीत का सुखद अलाप सुन रहे हैं। इन सब बातों से ये नवीन वङ्गभाषा के जन्मदाता कहे जा सकते हैं। किसी किसी ने इनको आदर्श-लेखक (Idealistic Writer) कहा है। सो ठीक भी है; क्योंकि इनके बाद के सभी लेखक इन्हीं की भाषा का अनुकरण करते हैं। इनकी भाषा सरस, मधुर और हास्यपूर्ण है। इनके उपन्यास भी आदर्श हैं। अर्थात् जिस प्रकार का समाज होना चाहिए उसी को इन्होंने अपने उपन्यासों में दिखाया है। वर्तमान समाज का इन्होंने चित्र नहीं खींचा। बंकिम बड़े सौन्दर्य्य-प्रेमी थे। इनके रचे हुए सभी ग्रन्थ सौन्दर्य्य की सृष्टि हैं। कपालकुण्डला में यह बात सब से अधिक पाई जाती है।

हम ऊपर कह आये हैं कि वङ्ग के वर्तमान गद्य-साहित्य के जन्मदाता बंकिम ही हैं। इनकी प्रौढ़ और सरस रचना देखने से मालूम होता है कि इनमें स्वाधीनता तथा जातीय-भाव कितना था। श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है कि-"जिस बंकिम ने वङ्ग-साहित्य के गम्भीर-रसोद्रेक से पाठकों के नेत्र-पटल से अश्रुधारा बरसाई है उसी बंकिम ने आनन्द के उदय-शिखर से नव-जागरित वङ्ग-साहित्य पर हास्य रस का आलोक विकीर्ण कर संसार को मन्त्र-मुग्ध कर दिया है।" उपमा, उपमेय और अन्यान्य अलङ्कारों का सौन्दर्य तो इनके ग्रन्थों में देखते ही बन आता है। यह नहीं जान पड़ता कि गद्य पढ़ रहे हैं, या महारसवती कविता। इस बात का यथार्थ अनुभव केवल उन्हीं लोगों को हो सकता है जिन्हें इनकी कोई पुस्तक पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

पुत्र का जो स्नेह जन्म-भूमि पर होना चाहिए उसका सजीव प्रमाण इनके "आनन्दमठ" में मिलता है। देश-प्रसिद्ध "वन्दे-मातरम्" इसी पुस्तक का एक गीत है। उससे स्पष्ट है कि कवि के हृदय में जन्म-भूमि का कैसा अकृत्रिम प्रेम था। इनको इस गीत पर बड़ी ममता थी। लोग कहते हैं कि जब कभी ये अकेले बिना काम बैठे रहते थे तब बड़े प्रेम से इस गीत को गाया करते थे। पूछने पर कहते थे कि यह गीत जादू से भरा हुआ है। सो बात आज सत्य निकली। इसी "वन्दे मातरम्" को लेकर आज सारे भारत में हलचल मच रही है। कौन प्रान्त ऐसा है जहाँ इस गीत का आदर नहीं? कौन ऐसा अभागा है जिसके हृदय में इस गीत को सुनकर एक अद्भुत तरङ्ग न उठने लगती हो?

निम्नलिखित पुस्तकों और निबन्धों को बंकिम बाबू ने लिखा है। पाठक, इस सूची को देखकर, विचार सकते हैं कि सरकारी काम की अधिकता रहने पर भी प्रतिभाशाली बंकिम ने कितना काम किया है। कवि ने इन सब प्रबन्धों को उस समय में लिखा है जिसे और लोग खेल तमाशे या गप शप में व्यर्थ नष्ट कर देते हैं—

उपन्यास।

१—दुर्गेशनन्दिनी *।
२—मृणालिनी *।
३—रजनी।
४—कृष्णकान्त का विल (दानपत्र) *।
५—युगलाङ्गुरीय *।
६—राधा रानी *।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७—राजसिंह * ।
८—इन्दिरा * ।
९—विषवृक्ष * ।
१०—कपालकुण्डला * ।
११—चन्द्रशेखर * ।
१२—देवी चौधरानी * ।
१३—कमलाकान्त ।
१४—आनन्दमठ * ।
१५—सीताराम ।

अन्य ग्रन्थ ।

१—कृष्णचरित ।
२—धर्म-तत्त्व ।
३—चम्पू (गद्य-पद्य) ।
४—मानस (काव्य)
५—ललिता (काव्य)
६—लोक-रहस्य ।
७—विविध-प्रबन्ध-अर्थात् भिन्न भिन्न विषयों पर निबन्ध जो "वङ्गदर्शन" आदि पत्रों में समय समय पर छपे थे ।

जिन उपन्यासों के आगे ऐसा (*) चिन्ह है उनके भाषानुवाद खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर, तथा और एक आध प्रेस से प्रकाशित हो चुके हैं। सुनते हैं शेष के अनुवाद भी तैयार हो रहे हैं। यदि इनकी सब पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी भाषा में छप जाय तो हिन्दी के साहित्य-भंडार का गौरव बढ़ जाय ।

"दुर्गेशनन्दिनी" बंकिम का पहला उपन्यास है। यह सन् १८६४ ई० में पहले पहल प्रकाशित हुआ था। इस ऐतिहासिक उपन्यास को देखते ही सारी वङ्ग-भूमि चकित हो गई । इसमें सन्देह नहीं कि सर वाल्टर स्काट (Sir Walter Scott) के उपन्यासों को पढ़कर बंकिम ने उपन्यास-रचना आरम्भ की थी और अँगरेज़ी उपन्यासों को ही आदर्श मान कर इन्होंने अपनी पुस्तकें लिखी हैं। किन्तु इन पुस्तकों में इनकी प्रतिभा का उच्च विकास देख पड़ता है। "दुर्गेशनन्दिनी" ऐसा उपन्यास उसके पहले पाठकों के दृष्टिगोचर नहीं हुआ था । उसके प्रकाशित होने से जान पड़ा मानों साहित्य-कानन में सिंह-शिशुका आविर्भाव हुआ। किन्तु संकीर्ण-हृदय समालोचकों और हताश लेखकों से इनका उत्कर्ष नहीं सहा गया। चारों ओर से निन्दा और कटूक्तियों की बौछार होने लगी। प्रतिभा का आलोक सब नहीं सह सकते। परन्तु यथार्थ गुण कब तक छिपा रह सकता है ? धूल फेंक कर सूर्य्य को कौन मलिन कर सकता है। "दुर्गेशनन्दिनी" का जन्म से ३० वर्ष बाद वङ्ग-समाज में आदर हुआ और सब को स्वीकार करना पड़ा कि इस से बढ़कर वंगभाषा में कोई उपन्यास इसके पहले प्रकाशित नहीं हुआ था । हिन्दी भाषा में सब से पहले इसी दुर्गेशनन्दिनी का अनुवाद छपा। पहले बाबू गदाधरसिंह ने इसका अनुवाद किया; फिर बाबू रामदीनसिंह के अनुरोध से बाबू राधाकृष्णदास ने इसका दूसरा अनुवाद किया ।

इसके पहले बंकिम ने "ललिता" और "मानस" नाम की दो पद्यमयी कहानियाँ, १५ वर्ष की अवस्था में, लिखी थीं। लिखने के तीन वर्ष बाद कवि ने इन को मुद्रित और प्रकाशित कराया था। पर उस समय इनका आदर नहीं हुआ। हम लोग अब इन्हें देखकर कह सकते हैं कि इन प्रबन्धों में भी भाव और रस की कमी नहीं है ।

"दुर्गेशनन्दिनी" के प्रकाशित होने के आठ वर्ष बाद बङ्गालियों के गौरव का धन "वङ्गदर्शन" नामक मासिक पत्र प्रकाशित होने लगा। इसका प्रथम अंक १८७२ ई० में निकला । इसके सम्पादन का भार बंकिम बाबू ही ने लिया। देखते देखते इसका नाम, मान और आदर सर्वत्र फैल गया । सब के हाथ में आकर "वङ्गदर्शन" दर्शन देने लगा । उस समय के सभी सुलेखकों ने इस पत्र का आदर किया और दर्शन, विज्ञान, इतिहास, काव्य और साहित्य के विविध प्रबन्ध इसमें छपने लगे। बंकिम की प्रायः सभी पुस्तकें पहले इसी पत्र में प्रकाशित हुई थीं। आज जो बङ्गाल के शिक्षित-समाज में वङ्ग भाषा का हम इतना आदर देखते हैं, इसका विशेष कारण वङ्ग-दर्शन ही है। "दर्शन" के द्वारा बंकिम का यशः-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौरभ चारों ओर फैल गया। इस पत्र के देखने से बोध होता है कि बंकिम, समालोचना के सच्चे पक्षपाती थे। एक जगह इन्होंने लिखा है कि यदि साहित्य का यथार्थ उपकार करना चाहो तो प्रकृत और सच्ची समालोचना करो और सच्चे समालोचकों की बातों पर ध्यान दो।

बंकिम बाबू के उपन्यासों को विशेष ध्यान देकर पढ़नेसे ज्ञात होता है कि वे तीन श्रेणीके हैं। पहलीश्रेणी में "दुर्गेशनन्दिनी" "कपालकुण्डला" "मृणालिनी" और "चन्द्रशेखर" हैं। नायक-नायिकाओं का प्रेम और सौन्दर्य्य ही इनका मूलाधार है। दूसरी श्रेणी वाले हिन्दू-समाज और सांसारिक व्यवहार के आधार पर बने हैं। "विषवृक्ष" "कृष्णकान्त की विल" (वसीयतनामा) और "देवी चौधरानी" इस श्रेणी के अन्तर्गत हैं। पीछे से कवि के हृदय में स्वजातीय प्रीति, स्वदेश-भक्ति और स्वधर्म-रक्षा के भाव उदित हुए, जिसके फल "आनन्दमठ", "सीताराम" और नूतन संस्करणवाला "राजसिंह" हैं। पर इन सब श्रेणियों का मुख्य और प्रधान उपादान प्रेम ही है। मानव-हृदय के अति कोमल, अति सूक्ष्म और अति स्वाभाविक भावों का अवलम्बन करके कवि ने अपने ग्रन्थों में अपनी एक नई ही सृष्टि (Own World) की रचना की है। परन्तु जिस क्रम से हमने इनकी पुस्तकों को श्रेणीबद्ध किया है उस क्रम से इन्होंने उनकी रचना नहीं की। २७ वर्ष की उम्र से आरम्भ करके ३२ वर्ष तक इन्होंने दुर्गेशनन्दिनी, कपालकुण्डला और मृणालिनी को रचना की। ३४ वर्ष की उम्र से लेकर ४३ वर्ष तक आपने रजनी, चन्द्रशेखर, विषवृक्ष और कृष्णकान्त के दानपत्र को बनाया। ४४ वर्ष से लेकर अन्तकाल तक कवि ने आनन्दमठ, देवी चौधरानी और सीताराम आदि शेष बड़े बड़े उपन्यासों को लिखा। श्रीहरानचन्द्र रक्षित से सहमत होकर हमने इन बातों को लिखा है।

इनके सिवा अनेक ऐतिहासिक और धर्मसम्बन्धी प्रबन्ध तथा इन्दिरा, राधारानी आदि छोटी छोटी पुस्तकें भी इन्होंने लिखी हैं, जिनकी आलोचना इस अल्प प्रबन्ध में नहीं हो सकती। किन्तु इतना कहना आवश्यक है कि बंकिम बाबू की प्रौढ़ावस्था की सरस, सरल और रोचक लेख-प्रणाली का "इन्दिरा" एक सुन्दर नमूना है। इनकी विशेष मनोयोग से पढ़ने पर विदित होता है कि कवि की प्रतिभा कब इनकी लेखनी को किस ओर ले जाती थी। प्रेम के सिवा सत्यवादिता, निर्भयता तथा तेजस्विता भी इनके लेख में ख़ूब पाई जाती है। और इन्हीं गुणों से पाठकों के हृदय पर इनका प्रबल अधिकार हो जाता है।

बंकिम बाबू की दूसरी श्रेणी की उपन्यासावली की मर्म्मस्पर्शिनी लेख-प्रणाली, रसमाधुर्य तथा चरित्र-चित्रण बड़े ही मनोहर हैं। यदि ये सब गुण इनकी तीसरी श्रेणी के उपन्यासों में भी समान भाव से रहते तो यथार्थ ही उत्कृष्ट काव्यदर्शन के देखने का सौभाग्य हम लोगों को प्राप्त होता। यदि कपालकुण्डला का काव्यादर्श, विषवृक्ष और चन्द्रशेखर का लिपि-चातुर्य्य तथा चरित्र-चित्रण और आनन्दमठ तथा सीताराम का उत्कृष्ट लक्ष्य एकत्र सन्निविष्ट होते तो बंकिम बाबू के उपन्यास आज सारी दुनिया के उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ गिने जाते।

बंकिम बाबू के उपन्यासों में एक और विशेषता यह है कि प्रायः उन सब में एक न एक महापुरुष का चरित अङ्कित है। दुर्गेशनन्दिनी से लेकर सीताराम तक प्रायः सभी उपन्यासों में कोई न कोई महात्मा ज़रूर ही देख पड़ते हैं।

इनके उपन्यासों को देखने से ज्ञात होता है कि पापी और दुष्टों को दण्ड देना ये ख़ूब जानते थे। दुर्गेशनन्दिनी में क़तलूख़ाँ की गति; कृष्णकान्त के दानपत्र में गोविन्द लाल तथा रोहणी की अन्तिम दुर्दशा; कपालकुण्डला में कापालिक का वालुका के शिखर से गिरकर अपाहिज होना; चन्द्रशेखर में शैवलिनी का जीते जी नरक-यंत्रणा भोग करना; और विषवृक्ष में कुन्दनन्दिनी का विषपान देखकर कौन नहीं कहेगा कि कवि बंकिम यथार्थ ही इन स्थानों में न्यायपरायण डेप्युटी के कर्तव्य का पालन कर रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं? किन्तु सीताराम के देखने से आश्चर्य होता है कि सीताराम जैसे महापापी को सहज ही में इन्होंने क्यों छोड़ दिया? हाय! जयन्ती ऐसी निष्कामा योगिनी को सीताराम ने खुले दरबार में कपड़ा खोल कर बेंत मारने की आज्ञा, चाण्डाल को देने में क्या कम निष्ठुरता और पाप का परिचय दिया है? भला कहिए तो, इसके पलटे कवि ने उसको क्या दण्ड दिया? जयन्ती की प्रार्थना सुनकर किस सहृदय का हृदय नहीं पिघल जाता? हाय! किस सरलता से जयन्ती ने सभासदों से कहा है, कि राजाज्ञा से इस मञ्च के ऊपर मैं अभी विवसना होऊंगी! आप लोगों में जो सतीपुत्र हों वे अपनी माता को स्मरण कर एक क्षण के लिए इस समय अपने नेत्रों को आवृत करलें.....।" सीताराम ऐसे महापापी को जो दण्ड दिया जाय सब थोड़ा है।

सब बातों पर ध्यान देने से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि बंकिम बाबू पूरे हिन्दू कवि थे। पूर्व जन्म और परलोक में इनका पूरा विश्वास था। आदर्श-चरित लिखने में, विशेषतः स्त्री-चरित चित्रित करने में, ये अद्वितीय थे। कथा-रचना इनकी विचित्र नहीं है, किन्तु पात्रों का परस्पर कथोपकथन अत्यन्त चमत्कार-पूर्ण और मनोहर है। पढ़ते समय कभी कभी पाठकों को ज्ञात होने लगता है कि वे कोई नाटक पढ़ रहे हैं, उपन्यास नहीं। वाक्य-चातुरी और रहस्य इनके पात्रों में कूट कूट कर भरे हुए हैं। किसी विशेष विषय, घटना अथवा शोभा के वर्णन में कदाचित् ही कोई इनकी समता कर सकता हो। हाँ इतना अवश्य कहना पड़ता है कि इनके स्त्री-पात्र प्रायः सब के सब हठी, ज़िद्दी और क्रोधी हैं। भला कहिए तो भ्रमरा को हम लोग क्या आदर्श हिन्दू-रमणी कह सकते हैं? क्या अपने हठ के कारण अपने सोने के संसार को उसने धूल में नहीं मिला दिया? क्या कपालकुण्डला की ज़िद से ही नायक नायिका दोनों का प्राण नहीं गया? देवी चौधरानी को देखने से भी यही बात प्रत्यक्ष होती है। इनको देखकर पाठक कह सकते हैं कि कवि के स्त्री-पात्र आदर्श हिन्दू-रमणी कदापि नहीं। किन्तु, जो हो, यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा, कि आदर्श-चरित के सृष्टि-कर्त्ता बंकिम अवश्य ही हैं। इस गुण में इनकी तुलना किसी अँगरेज़ी कवि से नहीं हो सकती। भला कहिए तो चन्द्रशेखर, प्रताप, सत्यानन्द, सूर्य्यमुखी, लवङ्गलता और प्रफुल्ल आदि का ऐसा आदर्श-चरित विलायत के किस उपन्यास (Novel) में पाया जाता है? इसी विशेष गुण के कारण बंकिम का आदर आज साहित्य-संसार में हो रहा है। इनका कथन था कि "मानव जीवन की विषम समस्या पर विचार करना, तथा उसकी पूर्ति करना ही उपन्यास का उद्देश्य है। और जिसमें इस समस्या की पूर्ति हुई हो वही आदर्श उपन्यास है।" बंकिम ने अपने उपन्यासों में इन समस्याओं पर खूब विचार किया है और उसमें वे कृतकार्य्य भी हुए हैं।

बंकिम के उपन्यासों का कथानक विशेष महत्त्व-पूर्ण नहीं है। पर इससे क्या? दूसरे की कही हुई बातों को अपने ढंग पर बनाकर कहना और उसमें एक नया सौन्दर्य्य लाना भी एक गुण ही है। दूसरे को अपना कर उसे अपने ढँग का कैसे बना लेना चाहिए, इसका उदाहरण हम लोग इनके कृष्णचरित में पाते हैं। कृष्णचरित को देखते ही बङ्गाल में खलबली मच गई। पुरानी शैली की पण्डित-मण्डली इनके विरोध में उठ खड़ी हुई। इस ग्रन्थ में कवि ने श्रीकृष्ण का चरित किसी देवता और अवतार के अनुरूप नहीं लिखा। इन्हें यादव-पति, यदुवंश-शिरोमणि मानकर इनका चरित चित्रित किया है। इन्होंने लिखा है कि वृन्दावन में गोपियों के संग प्रेम और शृंगार रस की कहानियाँ जो कवि लोगों ने वर्णन की हैं उनका आधार संस्कृत-साहित्य में नहीं है; ये नवीन कवियों की कपोल-कल्पनायें हैं।

उम्र ढलने पर बंकिम बाबू का ध्यान धर्म की ओर विशेष था। अन्त में ये वेद पढ़ने, और धर्म-पुस्तकों ही के पाठ तथा मनन, में अपना अधिक समय व्यतीत करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ़ उपन्यास ही लिखने में प्रतिभाशाली बंकिम कवि, दार्शनिक, नीतिवेत्ता, ऐतिहासिक, नाटककार और समालोचक सब का काम करते थे। स्थानाभाव से इस बात को हम, उदाहरण देकर, नहीं बतला सकते; किन्तु सुविज्ञ पाठक इनके उपन्यासों का ध्यान-पूर्वक पाठकर आपही जान सकेंगे कि हमारा कहना कहाँ तक ठीक है। देखिए "आयेसा" दुर्गेशनन्दिनी के अन्त में खड़ी कैसी सुन्दर दीख पड़ती है। प्रताप के संग भागीरथी में तैरती हुई शैवलिनी कैसी मनोहर ज्ञात होती है। वन में समुद्र तट पर खड़ी कपाल-कुण्डला की तो कोई बात ही नहीं। समालोचकों की धारणा है कि कपालकुण्डला से बढ़ कर सुन्दर चित्र आज तक किसी कवि या चित्रकार ने नहीं खींचा। कपालकुण्डला से बढ़कर कविता बंकिम ने और कहीं नहीं की और यही उनके उपन्यासों में सब से बढ़कर है। किन्तु हम इनके "चन्द्रशेखर*" को अधिक पसन्द करते हैं; क्योंकि इसका विषय गूढ़, भाव गम्भीर, लेख-प्रणाली प्रगल्भ और भाषा ओजस्विनी है।

"कपालकुण्डला" को देखने से मालूम होता है कि बंकिम अदृष्टवादी हिन्दू थे। कपालकुण्डला के प्रकाशित होते ही बंकिम की अखण्डकीर्त्ति की विमल छटा चारों ओर फैल गई और समालोचकों ने इनको साहित्य-सेवकों के राज-राजेश्वर के आसन पर स्थापित कर दिया।

बंकिम का अन्तिम उपन्यास "सीताराम" है। इस में स्वदेश-भक्त कवि ने नाटक का अच्छा क्रम-विकाश दिखाया है। किन्तु इसमें कवि की वह सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा नहीं झलकती जो कलापकुण्डला और चन्द्र-शेखर में विद्यमान है। हमारे एक मित्र कहते हैं कि चन्द्रशेखर जैसा सुन्दर ग्रन्थ संस्कृत में भी नहीं है।

व्याकरण और भाषा की ओर बंकिम अधिक ध्यान नहीं देते थे। वे केवल भाव पर ध्यान रखकर अपने वाक्यों की ऐसी रचना करते थे, जिसमें इनके कथन का प्रभाव पाठकों के हृदय पर पड़े। कमला-कान्त से हम पाठकों को इनकी लेखनशैली का एक नमूना दिखाते हैं। एक जगह पर आप कहते हैं ".....प्राण गया, तब फिर निःश्वास क्यों? सुख गया, तब फिर रोना क्यों? तब भी रोता हूँ। जन्म लेते रोदन किया था; वही आज भी रो रहा हूँ! रोते ही रोते मरना भी पड़ेगा। बस अब केवल रोऊँगा; लिखूँगा नहीं।"

बंकिम बाबू निष्काम तथा निष्कपट भाव से तन मन लगा कर साहित्य-सेवा करते थे। जो कुछ सुन्दर, नूतन, सत्य और सारगर्भित पाते थे उसी का सरल भाव से ये चित्र उतारते थे। बीच बीच में ये पाठकों की रुचि का ध्यान अवश्य रखते थे। किन्तु इस अवस्था में भी प्रायः ये अपने स्वाभाविक उच्च व्रत से विचलित नहीं होते थे।

वङ्गभाषा का एक इतिहास लिखने की प्रबल कांक्षा इनको थी। इसलिए कई एक ऐतिहासिक प्रबन्धों को आपने लिखा भी था। किन्तु कई कारणों से इनकी यह इच्छा फलीभूत नहीं हुई।

यद्यपि इतने बड़े कवि की यह छोटी सी जीवनी यथेष्ट नहीं है, तथापि हम इस प्रबन्ध को थोड़े ही में समाप्त करते हैं, और आशा रखते हैं कि पाठकों को इस प्रबन्ध के पढ़ने से बंकिम बाबू की पुस्तकों के पढ़ने की रुचि होगी। बङ्गाल में बाल, वृद्ध, वनिता, सभी इनकी पुस्तकों को पढ़ते हैं और इनके एक एक पात्र से परिचित हैं। स्कूल में लड़के, महलों में ललनागण, और अध्ययनागार में बाबू लोग, सब के सब, बंकिम का आदर करते हैं, और इनकी एक एक युक्ति और व्यङ्ग पर अपने प्राणों को निछावर करते हैं।

व्रजनन्दनसहाय।

---

* इसका हिन्दी अनुवाद तैयार है। वह खड्गविलास प्रेस, बाकीपुर, में, (जहां बंकिम के बहुतेरे उपन्यास छप चुके हैं) छप रहा है। उसके साथ चन्द्रशेखर की एक सुन्दर समा-लोचना भी रहेगी। इसी प्रबन्ध के लेखक ने चन्द्रशेखर का अनुवाद किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यवनानी लिपि।

(गत संख्या से आगे)

बर्बर देश में कीलाक्षरलिपि के साथ साथ एक दूसरी लिपि का प्रचार होना बड़े आश्चर्य की बात थी। पण्डित शङ्करनाथ आगा और पण्डित देवदत्त शास्त्री—दोनों को शौक़ था कि किसी तरह सय्यद नूरअली रामपुरी से इसका पूरा पूरा हाल मालूम करें। मगर कई कारणों से वे लोग पन्द्रह-बीस रोज़ तक एकही समय एकत्रित न हो सके। दिसम्बर के आदि में जब तीनों मित्र मिले तब इसी मज़मून पर बात चीत शुरू हुई। सय्यद साहिब ख़ुद ही कहने लगे—"उस रोज़ शाम हो जाने की वजह से बर्बर देश की वणिजलिपि का मज़मून नातमाम रह गया। अब बयान करता हूँ। यह सब जानते हैं कि किसी का राज हमेशा नहीं रहता। सौ दो सौ पान सौ वर्ष बाद राज्यपरिवर्तन ज़रूर होता है। बर्बर देश में भी कई सौ वर्ष तक ख़ास बर्बर लोगों का राज्य रहा। उन दिनों असुर लोग, जो 'निनवा' की तरफ़ रहते थे, बर्बर लोगों के अधीन थे और 'बाबिलन' उस राज्य की राजधानी थी। परन्तु समय के फेर से असुर लोग प्रबल हो गये। और बर्बर लोगों का अधिकार नष्ट करके सारे देश पर राज्य करने लगे। इन लोगों की राजधानी 'निनवा' नगर में थी। उस नगर में दूर दूर के बनिये महाजन आकर बसे और दूर दूर तक वणिज व्यापार का काम फैलाया। जैसा कि मुसल्मान बादशाहों के वक़्त में उर्दू और हिन्दी भाषायें प्रचलित थीं उसी तरह बर्बर देश और उसकी राजधानी 'निनवा' में भी दो भाषायें लिखी और बोली जाती थीं। और जिस तरह सर एण्टनी मेकडानल ने उर्दू और हिन्दीलिपि का रुत्बा बराबर कर दिया था, उसी तरह 'निनवा' के राजा ने भी अपने देश में इन्तिज़ाम कर रक्खा था। यही वजह है कि उस देश के राजाओं की जो मूर्तियाँ खोद कर निकाली गई हैं, उनमें राजा के साथ सदा दो लेखक विद्यमान मिलते हैं। इनमें से एक बर्बर देश की कीलाक्षरलिपि में राजा के हुक्म लिखता था, दूसरा वणिजलिपि में।"

शास्त्रीजी—"उस वणिजलिपि का कुछ नाम भी था?"

सय्यद साहिब—"देखिए, बतलाता हूँ। प्राचीन इतिहास से मालूम होता है कि ईसा से कोई हज़ार बारह सौ वर्ष पहले नाम्री नामी देशों का व्यापार 'फ़िनीशिया' वालों के हाथ में था। और उनके हुण्डी पर्चे उस लिपि में लिखे जाते थे जिसको आज कल के विद्वान् 'फ़िनीशियनलिपि' कहते हैं। ख़ैर, ईसा से सात सौ वर्ष पहले इन लोगों के हाथ से व्यापार निकल गया और बर्बर देश का काम 'आराम'-देश के निवासियों के हाथ में आगया। इन लोगों ने व्यापार के साथ साथ 'फ़िनीशियन' लिपि भी ग्रहण की थी, परन्तु कई सौ वर्ष बीत जाने के कारण 'आरामियों' ने 'फ़िनीशियन' अक्षरों का आकार कुछ कुछ बदल दिया था। बर्बर देश की वणिजलिपि यही 'आरामी लिपि' थी और ईसा से सात सौ वर्ष पहले इसका प्रचार 'निनवा' राजधानी में आरम्भ हुआ था। इसके कुछ ही दिन बाद राज्यपरिवर्तन हो गया। बर्बर लोगों ने असुर लोगों से अपना खोया हुआ राज फिर छीन लिया और 'बाबिलन' को राजधानी बनाकर फिर राज करने लगे। धीरे धीरे 'निनवा' उजड़ने लगा और 'बाबिलन' की उन्नति होने लगी। यहाँ तक कि सौ दो सौ वर्ष बाद 'बाबिलन' में भी 'आरामी' लिपि का प्रचार हो गया। यह 'आरामी' लिपि 'कीलाक्षर' लिपि से बिलकुल अलग थी, और बनियों की बदौलत 'बाबिलन' में पहुँचने से पहलेही फ़ारिस में पहुँच गई थी।"

आगाजी—"क्यों साहब, 'मिस्मारी' और 'आरामी' रस्मुल्ख़त में क्या फ़र्क़ है?"

सय्यद साहिब—"अव्वल तो यह फ़र्क़ है कि दोनों की वर्णमाला अलग अलग है। अक्षरों की शक्लें नहीं मिलतीं। दोयम, 'मिस्मारी' रस्मुल्ख़त की रविश बाईं तरफ़ से दाहिनी तरफ़ है, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आरामी' की इसके बर अक्स। सोयम, 'आरामी' लिपि में केवल व्यंजन अक्षर हैं; स्वर केवल पढ़ने के वक्त अनुमान से लगाये जाते हैं। कीलाक्षरलिपि का हाल आपको मालूम ही है।"

शास्त्रीजी—"मीर साहब आपने उस दिन कहा था कि कालाक्षरलिपि में पहले चिह्नों का प्रयोग हुआ, फिर व्यंजकाक्षरादिक का, फिर सस्वर अक्षरों का और अन्त में फ़ारिसवालों की बदौलत व्यंजनों का। अब यह बतलाइये कि 'आरामी' लिपि की उत्पत्ति भी इसी प्रकार हुई अथवा उसकी मूल प्रतिमा, 'फ़िनीशियन' लिपि, केवल अक्षररूप में ही बना ली गई थी।"

सय्यद साहिब—"शास्त्रीजी, आपका प्रश्न बहुत ही उत्तम है, और उसका सम्पूर्ण उत्तर देना भी मेरे लिए बहुत ज़रूरी है। मगर इस वक्त उस विषय की चर्चा की जायगी तो असली मज़मून, जिस पर इस समय बात चीत हो रही है, अधूरा रह जायगा। इसलिए यदि आप क्षमा करें तो मैं आज के मज़मून को ख़तम करके फिर किसी दिन उस गहन विषय पर कुछ निवेदन करूंगा।"

शास्त्रीजी—"मीर साहब, आपकी बात बहुत यथार्थ है; परन्तु उस विषय पर भी व्याख्यान अवश्य दीजिएगा; भूल न जाइएगा।"

सय्यद साहिब—"क्या मजाल! हाँ, मैं 'कीलाक्षर' और 'आरामी' लिपियों का फ़र्क़ बतला रहा था। ख़ैर, अब देखना चाहिए कि दोनों लिपियाँ फ़ारिसवालों को ईसा से कम-अज़कम पान छः सौ वर्ष पहले मालूम थीं, और उनके यहाँ भी बर्बर देश की तरह दोनों का प्रचार था। यह हर शख़्स जानता है कि लिखने पढ़ने की ज़रूरत तीन कामों में ज़ियादा होती है, यानी धर्म, राजपाट और व्यापार के कामों में—"

शास्त्रीजी—"जबही तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य को पढ़ने लिखने की आवश्यकता है, शूद्र को नहीं।"

सय्यद साहिब—"दुरुस्त! और यही तीन काम ऐसे हैं जो एक ही देश के अन्दर घिर कर नहीं रह सकते। इनकी प्रवृत्ति नित्य देश देशान्तरों में फैलने की रहती है। इसलिए, यदि एकही सूरत के अक्षर दूर दूर के देशों में एकही समय पाये जायँ, तो ज़रूर उन देशों में तीनों में से कम-अज़-कम एक प्रकार का परस्पर सम्बन्ध ज़रूर रहा होगा। यह कुछ ज़रूर नहीं है कि बनी इसराईल की तरह एक देश की प्रजा उठकर दूसरे देश में जा बसी हो।"

आग़ाजी—"आपका यह फ़रमाना बिलकुल बजा है, और मैं उम्मेद करता हूँ कि इस बात के क़बूल करने से जो जो नतीजे निकलते हैं उनसे आपको इनकार नहीं है। मसलन्, अगर यूरुप की अकसर ज़बानें संस्किरत से मिलती जुलती हैं तो यह नतीजा नहीं निकलता कि आर्य लोग यूरुप में जा बसे थे, बल्कि यही कहा जायगा कि किसी वक्त में आर्य लोगों का राज यूरुप में रहा होगा। या, अगर बर्बर देश की ज़बान हबश की ज़बान से मिलती जुलती है तो यह नतीजा हरगिज़ नहीं निकलेगा कि बर्बर देश में हबशी आबाद थे, वग़ैरा वग़ैरा।"

सय्यद साहिब—"आपकी दलायल और नतायज क़ाबिले तहसीन हैं। मुझे अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि ऐसे मामलात में यूरुप के उलमा ने अकसर धोका खाया है। लेकिन, क़ुसूर मुआफ़, इस वक्त बहस मुशाबहत रस्मुलख़त से है, न कि मुशाहबत ज़बान से।"

आग़ाजी—"ओहो, मुझे इस बात का ख़याल नहीं रहा। ख़ैर, अब आप यह बतलाइए कि फ़ारिस वालों ने इस 'आरामी' लिपि का क्या किया?"

सय्यद साहिब—'किया क्या? अपने सरकारी कारोबार में उसको इस्तेमाल किया, जिसका नतीजा यह हुआ कि जहाँ जहाँ शाहानि-फ़ारिस का राज था वहाँ वहाँ इस लिपि के निशानात पाये जाते हैं।"

आग़ाजी—"हाँ? अच्छा तो अगर शाहनामे के वाक़यात सच्चे हैं तो हिन्दोस्तान में भी इसका पता मिलना चाहिए, क्योंकि फ़ारिस के बादशाह दारा वग़ैरा की सल्तनत हिन्दोस्तान तक फैली हुई थी और यहाँ से उसके पास ख़िराज जाता था। देखिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहे बर्बर-स्तानॅ शाहानॅ हिन्द।
गुज़ीनिश् बिदादन्द शाहानॅ सिन्द॥

* * * *

शहे रूमॉ हिन्दोस्तानो यमन।
हमा नामा कर्दन्द————"

सय्यद साहिब—"आपको शाहनामा तो ख़ूब याद है! लेकिन, महरबान, दारा और इस्फ़न्दियार के ज़माने में लफ़्ज़ हिन्दुस्तान के वह मानी नहीं थे जो मुसलमान या अँग्रेज़ बादशाहों के वक़्त में हुए। उस वक़्त हिन्दुस्तान महज़ पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान के कुछ हिस्से का नाम था, और उसी सरज़मीन में शाहानॅ फ़ारिस का इक़्तिदार था। इसलिए अगर हिन्दुस्तान में 'आरामी' लिपि का कुछ नामोनिशान हो तो वह पंजाब व अफ़ग़ानिस्तान में ही होना चाहिए।"

शास्त्रीजी—"होना चाहिए को हम नहीं जानते। यदि है तो बतलाइए कि कहाँ है? शाहनामा आदि कुछ ऐतिहासिक ग्रन्थ थोड़े ही हैं जो हम मान लें कि फ़ारिस वालों का राज्य भारतवर्ष में भी था। कोई ऐतिहासिक प्रमाण दीजिए जिसको हम मान सकें। आपकी उर्दू, फ़ारसी, अर्बी भलेही 'आरामी' लिपि से निकली हों, हमारे देश की तो कोई भी भाषा नहीं निकली है। गुरुमुखी और सिन्धी तो स्पष्ट ही देवनागरी की बहनें हैं।"

सय्यद साहिब—"शास्त्रीजी, हाथ कंगन को आरसी क्या? आप स्वयं इन तीन चार लिपियों को देखिए, और बतलाइए कि अनुमान से यह बहन भानजियाँ मालूम होती हैं या नहीं।"

शास्त्रीजी—"देखकर क्या करें, भारतवर्ष में तो इनमें से एक भी प्रचलित नहीं है।"

सय्यद साहिब—"शास्त्रीजी, जो मेरा प्रश्न है उसका उत्तर देने की कृपा कीजिए। प्रचलित होने न होने का हाल पीछे से खुलेगा।" * * * *

शास्त्रीजी—"मीर साहब, यदि आप यथार्थ बात पूछते हैं तो हम कहे देते हैं, कि इन लेखों के कुछ अक्षर तो मिलते जुलते हैं और कुछ नहीं मिलते। जो अक्षर मिलते हैं उनसे अनुमान होता है कि इन लिपियों का कुछ परस्पर सम्बन्ध तो अवश्य है। परन्तु, जब तक इन सब की वर्णमाला न मालूम हो, तब तक हम कोई निश्चय नहीं कर सकते; क्योंकि सम्भव है कि एक लिपि का 'क' दूसरी लिपि का 'क' न हो, बल्कि 'फ' हो।"

आग़ाजी—"महेबा! आपने ख़ूब एतराज़ किया। इसका जवाब देना मीर साहब के लिए आसान न होगा।"

सय्यद साहिब—"जनाब मैं किस लायक़ हूँ जो इन दक़ीक़ एतराज़ात का जवाब दे सकूँ। लेकिन जिन लोगों ने इन बातों की तहक़ीक़ात की है उन्होंने हत्तुलिम्कान सब एतराज़ों का जवाब भी दिया है। ख़ैर, शास्त्रीजी यह तो मानते हैं कि इन तहरीरात के कुछ अक्षर आपस में मुशाबहत रखते हैं। अब सुनते जाइए। पहले दो लेख जो आप देखते हैं ईसा से साढ़े छः सौ वर्ष पहले के हैं और 'निनवा' में मिले हैं। इनमें से पहला लेख है—

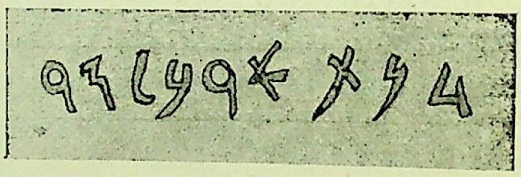

और इसका अक्षरान्तर है-'दनत अरबल सर'-और दूसरा यह है—

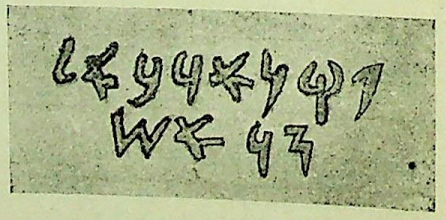

जिसका अक्षरान्तर है—'फ़क़न अरबअल सर अश'।"

शास्त्रीजी—"पढ़ने से मालूम होता है कि ये अर्बी भाषा के कोई लेख हैं और अक्षर मिलाने से ज्ञात होता है कि ये लेख दाहिनी ओर से बाईं ओर को लिखे जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सय्यद साहिब—"अब एक लेख यह देखिए। यह लेख शहर 'निनवा' के एक बाट पर खुदा हुआ मिला है। उस नगर के इतिहास से मालूम होता है कि यह बाट—जिसका प्रमाण २८½ सेर है—ईसा से पान सौ वर्ष पहले बनाया गया था। उस पर ये अक्षर खुदे हुए हैं—

जिसका देवनागरी अक्षरान्तर है—'असफ़रज़ लक़बल सतरयअ ज़य कसफ़अ'। और अर्थ है—'रूप्याध्यक्षों के समक्ष जाँचा गया'।"

शास्त्रीजी—"यह अक्षर प्रायः पहले अक्षरों से कुछ कुछ मिलते हैं। कहीं कहीं भेद है। परन्तु इस लेख के अक्षरों का आकार सूक्ष्म होने के कारण कुछ गड़बड़ सी मालूम होती है। जो हो, कहीं कहीं भेद होने पर भी, इसी लिपि के 'अ' 'स' 'ल' कहीं और मिलें तो आशा है कि हम पहचान लेंगे।"

सय्यद साहिब—"शास्त्रीजी, यह जो थोड़ा बहुत भेद आपने देखा वही इस शास्त्र के आचार्यों को बहुत कुछ हाल बतला देता है।"

शास्त्रीजी—"अच्छा, अब चौथा लेख देखें।"

सय्यद साहिब—"लीजिए, देखिए। लेख यह है—जनरल कनिङहम् ने जिस तरह दिया है उसी तरह मैंने लिख दिया है; कुछ बहुत ठीक नहीं है।"

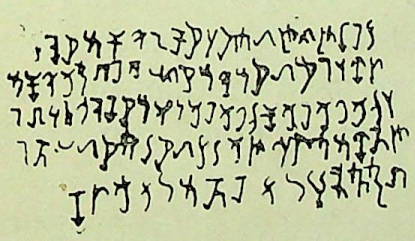

शास्त्रीजी—"हूँ। इस लेख के कुछ अक्षर किंचिन्मात्र उन पूर्वोक्त अक्षरों से मिलते अवश्य हैं, परन्तु इन अक्षरों में प्रायः कान, पूँछ, टोपी इत्यादि सी विशेष लगी हुई हैं; और कुछ अक्षर भिन्न भी हैं। भला इस लेख का अक्षरान्तर तो बतलाइए।"

सय्यद साहिब—"लीजिए, मैं लिखे देता हूँ, आप स्वयं पढ़ लेवें। लेख अनिश्चित होने के कारण अक्षरान्तर भी कुछ ऐसा ही सा है।"

शास्त्रीजी—"देवानं प्रियो प्रियसि राज सव्वत्र इछति सव्वं पाषन् वसेयु सवे—"

"अरे! यह तो कुछ प्राकृत सी दीख पड़तीं है! क्या 'निनवा' नगर में प्राकृत भी बोली जाती थी? यदि यह बात थी तो मालूम होता है कि यह लेख बहुत ही पुराना है, क्योंकि महाभारत के पीछे और तो कोई ऐसा चक्रवर्त्ती राजा हुआ नहीं जिसका शासन बर्बर देश तक रहा हो।"

आग़ाजी—"शास्त्रीजी, ज़रा सारा लेख तो पढ़िए। देखिए मैं बतलाऊँ यह किस वक़्त का है।"

शास्त्रीजी—"सुनिए—

'देवानं प्रियो प्रियसि राज सव्वत्र इछति सव्वं पाषन् वसेयु सवे इते सयमन् भवशुधि च इछन्ति जनो च उचवच छन्दो उचवच रगो ते सवं वा एक देशअं वपिकाषन्ति विपुले पि च दाने यस नास्ति सयमन् भवशुधि किटन्यत द्रिढाभतित निचे पाधं'।"

आग़ाजी—"अल्ख़ा! यह तो राजा अशोक का ईडिक्ट (Edict) है। क्यों, मीर साहब, यह कत्बा कहाँ दस्तयाब हुआ? क्या उसकी कोई लाट बर्बर देश में भी बरामद हुई है?"

शास्त्रीजी—"बड़ी ही विचित्र बात है!"

सय्यद साहिब—"महाराज इसमें कोई विचित्रता की बात नहीं है। यह ईसा से कोई २५० वर्ष पहले राजा अशोक का लेख है जो तक्षशिला से कुछ आगे शहबाज़गढी नगरी के पास एक बड़े भारी चटान पर खुदा हुआ है। उस चटान पर राजा अशोक के जो चौदह हुक्म खुदे हुए हैं, उनमें सातवें नम्बर का यह लेख है। बाक़ी लेखों में उसका सहीह नाम 'प्रियदर्शि' खुदा हुआ है; ख़ास इस लेख में लिपिकार की भूल से 'प्रियसि' खोदा गया।"

शास्त्रीजी—"तो क्या इस लिपि का भारतवर्ष में भी उस समय प्रचार था? यदि था तो हमारे संस्कृत ग्रन्थों में इसकी कुछ चर्चा क्यों नहीं है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सय्यद साहिब—"इस वास्ते नहीं है कि उन दिनों में ब्राह्मणों का अधिकार कम था और बौद्ध-धर्मानुयायियों का ज़ियादा।"

शास्त्रीजी—"अच्छा, यदि आस्तिक ग्रन्थों में नहीं तो बौद्ध-धर्मग्रन्थों में तो ज़रूर ही इस लिपि का कुछ नाम होगा।"

सय्यद साहिब—"बौद्धग्रन्थों में इसका नाम 'खरोष्ठी', 'खरोष्ट्री', 'खरोस्ती' और 'खरोस्त्री' लिखा है, जैनग्रन्थों में 'खरोट्टी', और चीनी ग्रन्थों में 'कुल्यु', 'क्यूल्यू', 'क्यालु' और 'क्यालुशेत'। इन सब चीनी शब्दों के अर्थ 'गधे के होंठ' हैं।"

शास्त्रीजी—"वाह, एक शब्द के इतने रूप और सब अशुद्ध! क्यों साहब, आजकल के विद्वान् इस शब्द का क्या अर्थ करते हैं?"

सय्यद साहिब—"यह न पूछिए। जितने विद्वान् उतनी ही परिभाषायें। विलायती विद्वानों में वेबर साहिब को इस बात का बड़ा शौक़ था। वे अक्सर बे पर की उड़ाते रहते थे। संस्कृत-साहित्य में कोई विषय ऐसा नहीं है जिसमें उन्होंने अपनी सम्मति प्रकट न की हो, और संस्कृतज्ञ विलायती पण्डित विरला ही होगा जो उनके मत को जानता भी हो और मानता भी हो। ख़ैर, उन्होंने तो इस शब्द की दो तरह से व्युत्पत्ति बतलाई है*। रह गये वे पण्डित जिन्होंने ख़ास प्राचीनलिपि के विषय पर अच्छी तरह विचार किया है, और जिनकी सम्मति विशेष आदर के योग्य है। डा० बूहर (Bühler), जो बम्बई प्रान्त में स्कूल इन्स्पेक्टर थे, संस्कृत के बड़े प्रतिष्ठित पण्डित थे और भारतवर्ष के प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र, इत्यादि के खोजने और समझकर उनका अर्थ करने में निपुण थे। उन्होंने भारतवर्ष की प्राचीन लिपियों के परस्पर सम्बन्ध और विभेद पर बहुत कुछ विचार किया है, और उनके सिद्धान्त बहुत ही माननीय हैं। इस 'खरोष्ठी' शब्द के बारे में उनकी यह सम्मति है—'बौद्ध लोग कहते हैं कि इस लिपि के चलाने वाले का नाम 'खरोष्ठ' (गधे के होंठवाला) था। मैं इसको ठीक और ऐतिहासिक समझता हूँ, क्योंकि प्राचीन हिन्दू बहुत ही विलक्षण नाम धरते थे। वेदों में तीन मनुष्यों के नाम हैं 'शुनःशेप', 'शुनः-पुच्छ' और 'शुनोलांगूल'। और 'शुनक' जी के नाम को तो सबही जानते हैं। इसी तरह पाणिनि के गणपाठ में 'खरीजंघ' किसी कुल के मूलपुरुष का नाम आया है'।"

शास्त्रीजी—"यह व्युत्पत्ति हम नहीं मान सकते। यदि इस नाम की कोई जाति होती तो उसका नाम स्मृति अथवा वाराही संहिता में अवश्य होता। यदि यह किसी व्यक्ति का नाम है तो उसका ऐतिहासिक होना सिद्ध कीजिए। बौद्धग्रन्थ में अनुमान से ही किसी ने लिख दिया होगा; उसका कोई प्रमाण नहीं है।"

आग़ाजी—"शास्त्रीजी की दलील को इस बात से और भी तक़वियत होगी कि ये सब बौद्ध धर्म की किताबें जो हिन्दोस्तान में या चीन में छपी हैं, उस ज़माने से सैकड़ों बरस बाद की हैं।"

सय्यद साहिब—"आप दोनों साहिबों का फ़रमाना बहुत बजा है। मेरी राय में यह लफ़्ज़ ही बहुत पीछे का बना हुआ है। जिस वक़्त इस लिपि का रिवाज पंजाब में शुरू हुआ है उस वक़्त मेरे ख़याल में इस लफ़्ज़ का नामोनिशान भी न था। मेरी राय में यह वही लिपि है जिसको पाणिनि मुनि 'यवनानी' कहते हैं। क्योंकि ज़माने-ए-क़दीम के किसी हिन्दुस्तानी कत्बे या तहरीर में सिवा इस 'खरोष्ठी' के और किसी विदेशी लिपि का पता नहीं मिलता। अगर ग्रीस का कोई पुराना सिक्का हिन्दुस्तान में मिला है तो यही अनुमान हो सकता है कि सिकन्दर के वक़्त में या उसके बाद कोई शख़्स ले आया होगा। पाणिनि के वक़्त में ग्रीकलिपि का

* "Es handelt sich dabei zunächst umeinen alten Astronomen Kharoshṭha (Eselslippe), welchen Wassiljew mit dem in armenischen Quellen als Zeitgenosse Zoroaster's genannten chaldaischen Astronomen Xarustr identificirt. Sollte nicht anch, oder vielmehr, an den Kraushṭuki zu denken sein, der in den Atharva-Paricishṭa als Astrolog häufig erwähnt wird?"

Indische Streifen, Vol. III, page 8-9 (1869).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचार भारतवर्ष में होना बहुत ही असम्भव सा है। और न ग्रीकलिपि में कोई ऐसी विशेषता है जिसके लिए पाणिनि ख़ास सूत्र बनाता। हाँ, खरोष्ठीलिपि के अक्षर भी विचित्र हैं, उसके लिखने का ढंग भी विलक्षण है, और वह यवन देश की तरफ़ से आई भी था। और ऐसा भी मालूम होता है कि पाणिनि के समय उसका रिवाज पंजाब वग़ैरा में शुरू ही हुआ था; जब ही तो पाणिनि को उसका ज़िक्र करने की ज़रूरत हुई।"

आग़ाजी—"तो आपकी राय में यूरुपियन स्कॉलर्स (European Scholars) की यह राय ग़लत है कि लफ़्ज़ 'यवन' से पाणिनि की मुराद 'ग्रीक' लोगों से थी?"

सय्यद साहिब—"जी हाँ, मेरे ख़याल में यूरुपियन लोगों का यह ख़याल महज़ ग़लत, बेबुन्याद और ज़बरदस्ती की बात है। मुझे पूरा यक़ीन है कि पाणिनि ने यह नाम 'फ़िनिशिया', 'सिरिया' वग़ैरा प्रान्तों के रहनेवालों के लिए इस्तेमाल किया है। ग्रीक लोगों के वास्ते यह नाम बहुत मुद्दत बाद तक इस्तेमाल में नहीं आया।"

आग़ाजी—"अपनी राय की ताईद में आप कोई सबूत भी पेश कर सकते हैं?"

सय्यद साहिब—"एक सीधा सा सबूत तो यही है कि राजा अशोक ने अपने एक हुक्म में पाँच पश्चिमी राजाओं का नाम लिया है। उनमें से सिर्फ़ 'सिरिया' के राजा 'अन्तियोक' (Antiochus) को वह 'योन' (यवन) कहता है, बाक़ी 'मक़दूनिया' वग़ैरा के राजाओं को वह यवन नहीं कहता।"

आग़ाजी—"ख़ैर, कुछ अच्छा सबूत तो है नहीं।'

शास्त्रीजी—"मीरसाहब, आपका मत बहुत ही यथार्थ और समंजस है। अब हमें इस लिपि की वर्णमाला दिखला दीजिए और यह बतलाइए कि यह लिपि भारतवर्ष में कब प्रचलित हुई।"

सय्यदसाहिब—"लीजिए इस काग़ज़ पर 'खरोष्ठी' और उसकी पूर्वज लिपियों की वर्णमाला लिखी है। भिन्न भिन्न समय की लिपि में आपको अन्तर स्पष्ट दिखाई देगा, और आपको मालूम होगा कि अक्षरों का रूप समय, और देश के भेद से क़हाँ तक बदल सकता है। आप यह भी देखेंगे कि 'फ़िनीशियन' और 'आरामी' लिपियों में 'ऋष्' और इनके मेल के अक्षर नहीं हैं, मगर 'खरोष्ठी' में हैं, और उनके रूप से स्पष्ट मालूम होता है कि यह 'ऋष्' और अक्षरों की तरह असंसक्त नहीं हैं किन्तु अपने ही 'जश्', 'चव्', 'कय्' से बनालिये गये हैं। और, शास्त्रीजी, आपने जो अशोकलेख में 'कान' और 'पूंछें' देखी थीं, वे केवल 'मात्रायें' हैं, जो आर्य लोगों ने संस्कृत या प्राकृत लिखने के लिए स्वयं रच ली थीं। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी वर्णमाला में अक्षरों का अधिक होना उसकी प्राचीनता का प्रमाण नहीं है। मगर हाँ यह कह सकते हैं कि जिस भाषा में वर्णमाला बड़ी होती है उसका व्याकरण भी उत्तम होता है। और व्याकरण का उत्तम होना बिना विद्या के अधिक प्रचार के नहीं हो सकता। इससे जो नतीजे आप चाहें निकाल सकते हैं।"

आग़ाजी—"ख़ैर। क्यों साहब यह हुरूफ़ जो आपने अलहदा अलहदा कालमों में दिखलाये हैं, और जिनकी शक्लों में थोड़ा बहुत फ़र्क़ मालूम होता है, इससे आप यह नतीजा क्योंकर निकालते हैं कि 'आरामी' रस्मुलख़त 'फ़िनीशियन' से और 'खरोष्ठी' 'आरामी' से निकले हैं? क्या यह मुम्किन नहीं है कि इन सब का इजरा एक ही वक्त में हुआ हो और यह इख़्तिलाफ़ात महज़ हर फ़र्दबशर की रविश पर मुनहसिर हों?"

सय्यद साहिब—"आपका सवाल बहुत अच्छा है। और इसका जवाब भी सुनने के लायक़ है। फ़र्ज़ कीजिए कि एक ही वक्त और एक ही जगह के रहने वाले दस आदमी देवनागरी लिखें, तो ग़ालिबन उनकी रविशों में इतना फ़र्क़ तो ज़रूर होगा जिससे आप उन सब में तमीज़ कर सकें। लेकिन यह मुम्किन नहीं कि एक तो 'व' का हल्क़ा बन्द रखे और दूसरा खोलदे। इन वर्णमालाओं में इस क़िस्म के कई नमूने मौजूद हैं, और अगरचे यह इख़्तिलाफ़ात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी हक़ीक़त में तब्दीलियर्रविश की वजह से पैदा हुए हैं, लेकिन यह तब्दीली इस क़िस्म की नहीं है जैसी मैंने अभी बतलाई; बल्कि ये वे तब्दीलियाँ हैं जो किसी रस्मुल ख़त के एक क़ौम से दूसरी क़ौम में जाने के वक़्त पैदा हो जाती हैं, और अर्से तक उस क़ौम में क़ायम रहती हैं। प्राचीन 'फ़िनीशियन' लिपि के दो चार कत्बों का पता लगा है; उन सब में 'ब' का मुँह बन्द है, मगर 'आरामी' लिपि के सब (सैंकड़ों) लेखों में उसी अक्षर का मुँह खुला हुआ है। बस इसी तरह और अक्षरों को भी समझ लीजिए। अब रही यह बात कि कौन लिपि किस से निकली है, सो यह आप हर एक अक्षर की शक्ल देखकर क़यास कर सकते हैं। मगर इस मामले में ऐतिहासिक प्रमाण से बहुत कुछ सहायता मिलती है। और यही प्रमाण अच्छा समझा जाता है। क्योंकि जब दो कत्बों की तारीख़ मालूम है, और यह भी मालूम है कि इनमें से एक की लिपि अस्ली है और दूसरी नक़्ली, तो यही नतीजा निकलेगा कि जो पुरानी वही अस्ली। इसमें कभी कभी धोखा ज़रूर होता है, लेकिन अक्सर सहीह् नतीजे निकलते हैं।

शास्त्रीजी—"हम आपकी कृपा के लिए आपके बहुत कृतज्ञ हैं। बस एक बात और बतला दीजिए। हमारी देवनागरी में स्वर और व्यंजन पृथक् पृथक् होने के कारण उन अक्षरों के नाम नहीं हैं, केवल उनकी ध्वनि से ही उनका ज्ञान होता है। बात करने में 'ककार' 'चकारादि' कह देते हैं; परन्तु उर्दू में 'अलिफ़, बे, ते' इत्यादि उनके नाम हैं, और क्रम भी कुछ बेढंगा ही सा है। अब आप यह बतलाइए कि इस 'फ़िनीशियन' आदि यवनानी लिपि में अक्षरों का क्रम क्या है और उनके नाम क्या हैं?"

सय्यद साहिब—"फ़िनीशियन लिपि के अक्षरों के नाम और क्रम ये हैं—अलॅफ़, बेथ, जिमॅल, दालॅथ, हे, वाव, ज़ैन, ह़ेथ, तेथ, योद, कॅफ़, लामॅद, मॅम, नून, समॅख़, ऐन, फ़े, साद, क़ाफ़, रेश, शीन, तॉ। कुल बाईस अक्षर हैं।"

शास्त्रीजी—"ये तो शब्द से मालूम होते हैं; इनके अर्थ अवश्य होंगे।"

सय्यद साहिब—"आपका ख़याल दुरुस्त है। इन शब्दों के अर्थ ये हैं—बैल, घर, ऊँट, किवाड़, खिड़की, आँकड़ा, हथियार, बाड़, साँप, हाथ, हथेली, पैनी, पानी, मछली, स्तम्भ, आँख, मुँह, गोफिया, गाँठ, सिर, दाँत, और चिह्न। यह याद रखना चाहिए कि इन 'शेमिटिक' अक्षरों के नामों में जो देवनागरी के 'थ', 'त', 'ह' इत्यादि अक्षर लिखे गये हैं वे ठीक नहीं हैं; क्योंकि इन अक्षरों का उच्चारण शेमिटिक भाषा में ठीक ठीक नहीं हो सकता, केवल थोड़ा बहुत इनसे मिलता जुलता होता है—आप दोनों साहिब क्या सोच रहे हैं?"

आग़ाजी—"साहब मैं यह सोच रहा था कि अगर इन हुरूफ़ के नामों का ख़याल न करके ख़ाली आवाज़ का ख़याल किया जाय तो यह फ़िक़्रा बनता है—अबजद हवज़ हुतय कलमन सअ़फ़स क़रशत। और यह वही चीज़ है जिसको 'तर्तीबे अब्जद' कहते हैं। अरबी में जो 'अबजद् हवज़् हुत्ती कलमन् सअ़-फ़स क़रशत सख़ज़् ज़ज़ग़्' हुरूफ़ तहज्जी हैं। वह ज़रूर इन्हीं 'फ़िनीशियन' हुरूफ़ से 'खरोष्ठी' की तरह कमी बेशी करके बनाये गये हैं। और मालूम होता है कि यह सिलसिला हुरूफ़ का बहुत पुराना है; अरब लोगों की ईजाद नहीं है।"

सय्यद साहिब—"मुझे आपकी राय से पूरा इत्तिफ़ाक़ है।"

शास्त्रीजी—"क्यों साहब, इन अक्षरों के ये नाम इस कारण से तो नहीं रक्खे गये हैं कि इनकी मूल-प्रतिमा उन पदार्थों के आकार थे।"

सय्यद साहिब—"इस इल्म के बड़े उलमा टेलर (Taylor) वग़ैरा की यही राय है—आग़ाजी, आप फिर कुछ सोच रहे हैं।"

आग़ाजी—"साहब, मेरे ख़याल में यह राय दुरुस्त नहीं हैं। मैं समझता हूँ कि 'अबजद हवज़' फ़िक़्रा 'फ़िनीशियन' लोगों का ईजाद किया हुआ है, क्योंकि इस फ़िक़्रे में इन हुरूफ़ की तर्तीब बिल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल फ़र्ज़ी नहीं है, बल्कि मुक़ाम तलफ़्फ़ुज़ के लिहाज़ से रक्खी गई है।".

शास्त्रीजी—"जबगडदश्', 'हयवरट्'——"

सय्यद साहिब—"लेकिन आप इससे नतीजा क्या निकालते हैं?"

आग़ाजी—"मैं यह नतीजा निकालता हूँ कि आवाज़ के लिहाज़ से हुरूफ़ की तादाद और तर्तीब पहले मुक़र्रर की गई और उनके नाम पीछे रक्खे गये।"

शास्त्रीजी—"मीर साहब, सरकार का मतलब यह है कि जैसे पाणिनि के प्रत्याहार सूत्र, 'अ इ उ ण्। ऋ ऌ क्।' इत्यादि हैं वैसे ही 'फ़िनीशियन' भाषा के 'अबजद। हवज़।' इत्यादि प्रत्याहार सूत्र हैं। और जिस तरह संस्कृत में, लिखने से पहले, अक्षरों की स्थिति थी उसी तरह फ़िनीशियन भाषा में भी होगी।"

सय्यद साहिब—"अख़्ख़ा! अब मैं समझा। मगर यह तो फ़रमाइए कि अगर आपका ख़याल दुरुस्त है तो 'फ़िनीशियन' हुरूफ़ के नाम 'अलॅफ़', 'बेथ' वग़ैरा किस तरह पड़े।"

आग़ाजी—"यह तो कुछ मुश्किल बात नहीं है। देखिए, यूरुप की दर्सी किताबों में हमेशा से हुरूफ़-शिनासी तसवीरों के ज़रिये से कराई जाती है। 'D' के पास कुत्ते की, 'Z' के पास ज़ीब्रे की, 'A' के पास गधे की तसवीरें अक्सर किताबों में मिलती हैं। अब अगर बच्चे को 'A' का नाम 'ए', 'Z' का नाम 'ज़ॅड', और 'D' का नाम 'डी' न बताया जावे तो वह ज़रूर इन हर्फ़ों का नाम 'आस्', 'ज़ीब्रा' और 'डॉग' रक्खेगा, इसमें तअज्जुब ही क्या है? मुमकिन है यही मामला 'फ़िनीशियन' लोगों के साथ हुआ हो। उन्होंने अपने हुरूफ़ लिखने के लिए ये शक्लें ईजाद की हों। और बिगड़ते बिगड़ते उन तसवीरों की बजाय ये 'फ़िनीशियन' हुरूफ़ रह गये हों। अगर यह मुमकिन है, तो यह ज़ुरूरी नहीं है कि रस्मुल्ख़त की तरक़्क़ी हमेशा तसवीरों और व्यंजकाक्षरों से शुरू होकर अक्षरों पर ख़तम हो; बल्कि यह भी हो सकता है कि कोई क़ौम—दूसरी क़ौम में लिखने का रिवाज देखकर ही सही—अपने वास्ते हुरूफ़तहज्जी ख़ुद बना ले। यह कुछ ज़रूरी नहीं है कि दूसरी क़ौम के हुरूफ़ तहज्जी की ही नक़ल करे।"

सय्यद साहिब—"आपकी फ़रमाई हुई बातें बेशक बहुत ग़ौर-तलब हैं। मैं इन पर ग़ौर करूँगा, और कुछ रोज़ बाद अपनी राय भी दूँगा।—महम्मदअ़ली!"

आग़ाजी—"हँय्! मग़्रिब का वक़्त हो गया? शास्त्रीजी, चलिए।"

शास्त्रीजी—"जो आज्ञा, परन्तु हमें एक बात का ध्यान आगया। यदि आपकी मर्ज़ी हो तो वह भी कह लें। कुछ विलम्ब नहीं होगा।"

सय्यद साहिब—"हाँ शास्त्रीजी, ज़ुरूर कहिए।"

शास्त्रीजी—"बात कुछ भद्दी सी है, आप लोग हँसेंगे।"

सय्यद साहिब—"आप कहें तो सहीह; अगर हम थोड़ा सा हँस भी लेंगे तो आपका क्या हर्ज है?"

शास्त्रीजी—"अच्छा सुनिए। आपकी 'फ़िनीशियन' भाषा में जो अक्षरों के नाम हैं वे बड़े ऊटपटाँग तो हैं ही, कोई 'गधा' कोई 'ऊँट'। कहीं 'खरोष्ठी' शब्द 'खरोष्ट्री' का अपभ्रंश तो नहीं है; अर्थात् वह लिपि जिसके अक्षर 'खर' और 'उष्ट्र' रूपी हैं'?"

सय्यद साहिब और आग़ाजी—"वाह, शास्त्रीजी, वाह! ख़ूब अर्थ लगाये! वेबर साहिब को भी मात किया! बूह्लर साहब के अनुमान से तो आपका अनुमान ही अच्छा है! ख़ूब! बहुत ही ख़ूब!"

शास्त्रीजी—"देखिए हमने कहा न था कि आप हँसेंगे? अच्छा मीर साहब, यदि आपकी मर्ज़ी हो तो हम यह सारिणी लेते जायँ। 'फ़िनीशियन' से आरामी लिपि का निकलना तो स्पष्ट ही है; परन्तु 'खरोष्ठी' के अक्षरों का क्रम भिन्न होने के कारण हम इस वखत इन अक्षरों के परस्पर सम्बन्ध का निर्णय नहीं कर सकते। घर जाकर विचार करेंगे।"

सय्यद साहिब—"ज़ुरूर! लीजिए, सारिणी यह है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आग़ाजी—"अरे मियां ज़रा मुझे यह सानों दिखाना! अहा, मेरा ख़याल ठीक निकला। देखिए 'फ़िनीशियन' में जो हर्फ़ 'क़' है वह 'खरोष्ठी' में 'ख' हो गया है। जनाब, जो लफ़्ज़ 'फ़िनीशियन' में 'क़रशत' था वह संस्किरत में 'खरशत' हो गया, और चूँकि लफ़्ज़ 'खरशत' के कुछ मानी नहीं, इसलिए हिन्दुओं ने 'खरशत' की इस्लाह करके 'खरोष्ठ' कर लिया। और 'खरोष्ठी' के मानी 'खरोष्ठ से निस्बत रखने वाला'।"

शास्त्रीजी—"दिव्य है! दिव्य है!—"

सय्यद साहिब—"वाक़ई, यह बात तो मेरे ख़याल में भी नहीं आई थी, और तअ़ज्जुब है कि बूहर वग़ैरा को भी इसका ख़याल न आया। दुनिया भर की बातें बक गये, मगर यह सीधी सी बात न सूझी!"

आग़ाजी—"हज़रत, आप नहीं जानते? मशलची अन्धा होता है! लो, अब ख़ुदाहाफ़िज़! ज़िन्दगी है तो फिर मिलेंगे!"

"बार्हस्पत्यः"।

इँगलैंड की जातीय चित्रशाला।

जीव जाति की उन्नति के साथ काव्य, चित्रण, तक्षण, संगीत आदि कलाओं का भी विकाश होता है। जब हमारी हिन्दू जाति पूर्ण रूप से सजीव थी, तब हमें चित्रण पर बहुत प्रेम था; हमारे राजकुलों में बड़ी बड़ी चित्रशालायें थीं जिसका साक्ष्य हमारे संस्कृत के नाटक दे रहे हैं। थोड़े दिन हुए, मैं यहाँ एक गाँव में गया। देखा, लेफ़्टेनेंट * * * की गौर-पत्नी बैठी वहाँ के स्वाभाविक दृश्य का चित्र खींच रही हैं। चट रत्नावली नाटिका के समय की अपनी सभ्यता का मुझे स्मरण हो आया। सागरिका ने देखते देखते वत्सराज का चित्र उरेह दिया; उसकी सखी, महिषी की पार्श्ववर्तिनी, ने भी उसी चित्र के पास सागरिका का चित्र खींच दिया अर्थात् प्रत्येक युवती चित्रण-कला जानती थी! पर अब कितने हम में हैं जो चित्रशाला के नाम से भी परिचित हैं—कितनी हमारी स्त्रियाँ हैं जिन्होंने चित्रकारी की लेखनी देखी है! हमारी सजीवता के ह्रास के साथ—परतंत्रता के स्पर्श के साथ—हमारा चित्र-प्रेम मिट सा गया!

चीन और जापान के साहित्य से सूचित होता है कि वहाँ भारत वर्ष से सम्बन्ध रखने वाले बौद्ध-काल के धार्म्मिक चित्र अब तक विद्यमान हैं।

क़लम की कारीगरी में—काव्यकरण और चित्रण में—चित्रण का स्थान नीचा नहीं है। कालिदास और अश्वघोष जैसे कवियों को भी अपने काव्य के स्पष्टीकरण के लिए चित्र का हवाला देना पड़ा है। यद्यपि हमारे कवियों की कृति और उनकी कीर्त्ति, अब तक, पुराने मन्दिरों के खँडहरों की मूर्त्तियों और स्तम्भों की तरह, हमारी जाति में बच रही है; पर अपने चित्र-कोविदों के नाम और काम की रक्षा हमने नहीं की। योरप के इटली देश में बड़े बड़े चित्रकार हो गये हैं, जिनके नाम वहाँ के कवियों की तरह प्रसिद्ध हैं। उनके बहुतेरे चित्र अब तक पाये जाते हैं। जब आधुनिक यूरोपियन जातियों का अभ्युदय हुआ, उन्होंने इटली के बहुत से चित्र ख़रीद लिये। इन चित्रकारों की रचना से दूसरे देशों के चित्रकारों को उत्तेजना हुई। उन्होंने चित्र बनाये; पर इटली के चित्र अब तक भी सर्वश्रेष्ठ हैं*।

इस समय योरप के प्रत्येक राज्य में जातीय चित्रशालायें हैं। यहाँ, इंगलिस्तान, में भी हैं। यहाँ की चित्रशालाओं में "नैशनल-गैलरी प्रमुख"† है। लंदन में सब से 'दमाग़दार' स्थान ट्रफ़ालगर स्क्वेअर (चौमुहाना) है। यह एक बहुत बड़ी खुली हुई जगह है। बीच में बड़े बड़े फ़ौवारे हैं जिनसे

* स्वतंत्र होने के बाद इटली ने क़ानून बनाया है कि कोई चित्र विदेशी के हाथ तब तक न बेचा जाय, जब तक गवर्नमेंट स्वयं लेने को तैयार हो।

† यहाँ एक चित्रशाला रायल एकाडमी नाम की भी है जिसमें साल साल के अंकित चित्र रखे जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खरोष्ठी-यवनानी संबंधि लिपियों की सारिणी

फिनीशियन अक्षरों के नाम	फिनीशियन				आरामी				खरोष्ठी					
	सूर	मोआब	सिल्वम	सैदा	निनवा	प्रान्त	सक्कारः	पत्र	अक्षर	अशोक ई० से पू० २५०	कुषन ई० से पी० २००	अक्षर	अशोक ई० से पू० २५०	कुषन ई० से पी० २००
ईसा से पहले	१००० व०	९००	७००	५००	७००	५००	४८०	५००						
अलॅफ़									अ			द		
बेथ									इ			ध		
जिमॅल									उ			न		
दालॅथ									ए			प		
हे									ओ			फ		
वाव									क			ब		
ज़ैन									ख			भ		
हेथ									ग			म		
तेथ									घ			य		
योद									ङ			र		
कफ़									च			ल		
लामॅद									छ			व		
मॅम									ज			श		
नून									झ			ष		
समॅख									ञ			स		
ऐन									ट			ह		
फ़े									ठ			ति		
साद									ड			य		
काफ़									ढ			के		
रेश									ण			रो		
शीन									त			दं		
ताँ									थ			चं		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच सौ गैलन पानी बाहर आता है। यहाँ पर १४५ फ़ीट ऊँचे एक मीनार पर ट्रफ़ालगरविजेता नेलसन की १७ फ़ीट ऊँची एक मूर्त्ति है। लाट के चारों ओर चार सिंहों की मूर्त्तियाँ हैं। इस चौमुहाने की एक ओर चेयरिंक्रास स्टेशन है; दूसरी तरफ़ नैशनल गैलरी है; सामने पार्लिमेंट-भवन को सड़क गई है।

योरप की दूसरी राजधानियों की चित्रशालाओं में, दामों में इसके चित्रों से बढ़कर भी चित्र हैं। पर इस चित्रशाला में यह विशेषता है कि प्रत्येक स्थान के गुणियों की कला के नमूने यहाँ मौजूद हैं। रास्किन चित्र के बड़े प्रेमी थे। उनकी राय है कि चित्राध्यायी को एक जगह ऐसा संग्रह योरप भर में कहीं नहीं मिल सकता। इसकी स्थापना १८२४ में हुई। वर्तमान इमारत १८३२—१८३८ में बनी। इमारत ४६० फ़ीट लंबी है और जातीय रुपये से बनी है। ३८ चित्र इसके लिए पहले पार्लिमेंट ने १८२४ में, ख़रीदे थे। अब २००० चित्र इसमें हैं।

इसकी उन्नति के लिए ख़ास ख़ास लोगों ने समय समय पर इस तरह दान दिये हैं:—लिविस ने १० सहस्र पौंड; ह्वीलर ने २६ सौ; क्लार्क ने २३ सहस्र; वाकर ने १० सहस्र; राथ चाइल्ड कम्पनी और कोटस् ने १० सहस्र; दो आदमियों ने मिलकर एक सहस्र; ६ ने मिलकर २१ सहस्र। प्रसिद्ध अँगरेज़ चित्रकार टर्नर ने अपने अंकित १५७ चित्र इस चित्र-शाला को दे डाले।

इसमें २२ विभाग हैं। ये देश और कलासम्प्रदाय के अनुसार विभक्त हैं। इन्हें "स्कूल" कहते हैं। मुख्य विभाग इटालियन और डच स्कूल के हैं।

उत्तम चित्रों का मूल्य निर्धारित नहीं किया जा सकता। जब इटली पराधीन था; वहाँ वालों में जातीयता नहीं थी; तब वहाँ के चित्र लोगों ने सस्ते उड़ा लिये। सब से अधिक मूल्यवान् चित्र रैफ़ल के हैं। रैफ़ेल से सरस्वती के पाठक परिचित हैं। इसी रैफ़ेल के एक चित्रका मूल्य गैलरी ने ७० सहस्र पौंड (रु० १०,५०,०००) दिया है! एक दूसरे चित्र का १७॥ सहस्र; तीसरे का ११॥ सहस्र; तीन के ५५ सहस्र; दो के १५ सहस्र और एक जो हाल में लिया गया है उसके ३० सहस्र दिये गये हैं! रैफ़ेल का संक्षिप्त चरित सरस्वती के तीसरे भाग के ३२६ वें पृष्ठ पर प्रकाशित हो चुका है। उसे पाठक वहाँ देख सकते हैं।

इसके अंदर जाने के लिए सप्ताह में ५ दिन कुछ नहीं देना पड़ता। इतवार को भी ६ महीने यह खुली रहती है। बृहस्पति और शुक्र चित्रछात्रों के दिन हैं। इन दिनों ६ पेंस (६ आने) फ़ीस देनी पड़ती है। दो तीन सौ चित्रकार (प्रायः स्त्रियाँ) बृहस्पति और शुक्र को चित्रों की नक़ल लेते हुए यहाँ देख पड़ते हैं।

टेट नाम के एक साहब ने अपने रुपये से एक शाला बनाई है और अपनी जाति को भेंट कर दी है। इसे टेट गैलरी कहते हैं। इसमें सिर्फ़ यहाँ के चित्रकारों के चित्र हैं।

यहाँ की नैशनल गैलरी में पुराने चित्रकारों के चित्रों में आधे से भी अधिक चित्र धार्मिक हैं। अथवा यों कहिए कि जितने प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुराने चित्र हैं सभी धार्मिक हैं। विशेष करके माँ बेटे—मेरी और ईसा—पर ही चित्रकारों ने अपनी अपनी क़लम चलाई है।

पुराने काव्यों और पुराने चित्रों की बराबरी अब नहीं होती। इसका कारण यह है कि पुरानी कृतियाँ दिल से और भक्तिभावपूर्वक होती थीं। पर भक्ति-भाव का अब, इस समय, हर जगह, ह्रास है। अब जो कुछ किया जाता है बहुधा नाम और पैसे के लिए ही किया जाता है।

पुराने ईसाइयों में भक्ति थी। इसी से वे हमारी तरह मूर्त्तिपूजक थे। भक्ति से प्रेरित होकर उन्होंने चित्र बनाये। इसीसे उनकी कृतियाँ चिरस्थायिनी हुईं। यहाँ की गैलरी में धार्मिक चित्रों के बाद शृङ्गारिक चित्र हैं। वे अधिकतर पुष्पधन्वा और वीनस (रति) के हैं। ये चित्र प्रायः दिगम्बर रूपों के दर्शक हैं।

योरप के चित्रकारों की कला-कुशलता का नमूना सरस्वती के पढ़ने वालों—अपने देश भाइयों—को दिखाने के लिए चित्र चुनने में मुझे बड़ा असमंजस हुआ। अन्त को मैंने धार्मिक चित्र ही चुने। शृंगारिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रों से वही अच्छे समझे। ईसाई धर्म्म का यदि चित्र है तो हानि हीं क्या। दिखाना है ललित-कला के कौशल का नमूना। धर्म्मोपदेश नहीं करना। इस संख्या के साथ जो रंगीन चित्र दिया जाता है उसका परिचय सुनिए। इसका नाम है—"Angels watching over the body of Christ"। अर्थात् क्राइस्ट के शव की रक्षा में देवदूत।

ईसाई धर्मवाले मानते हैं कि १९०७ वर्ष हुए (अर्थात् हमारे विक्रमीय संवत् के ५७ वें वर्ष में) यहूदी कुल में एक बढ़इन के पेट से, बिना मनुष्य-कर्तृत्व के, पैदा हुए क्राइस्ट नामक ईश्वर के बेटे को, एक नया धर्म्मोपदेश करने के कारण, यहूदियों ने "क्रॉस" (शूली) पर टाँग कर मार डाला। उस समय यहूदिया में रोमन लोगों का दौरदौरा था। पर इस घटना का रोमन या और किसी इतिहास में ज़रा भी ज़िक्र नहीं है। जर्मनी तथा और देशों के इतिहासकारों का मत है कि क्राइस्ट ऐसा मनुष्य कोई कभी पैदा ही नहीं हुआ। उन्होंने बड़ी योग्यता से यह सिद्ध किया है कि जिस जगह ईसा का होना बताया जाता है उसके क़रीब ही बौद्धों की एक बस्ती थी जिसके ऐतिहासिक प्रमाण मौजूद हैं। वे कहते हैं कि बौद्धों के ग्रन्थों की कहानियों के आधार पर ही कल्पित क्राइस्ट का जन्म माना गया है और भगवान् बुद्ध के उपदेशों की छाया पर ही उसके उपदेश लिखे गये हैं। यह भी उन विद्वानों ने दिखलाया है कि प्राचीन ईसाई धर्म का कर्मकांड बिलकुल बौद्ध-धर्म से लिया गया है—माला, सोंटा, चिह्नपूजन, व्रत आदि सभी यहूदिया में बौद्धों ने फैलाया था। अब तक इन विद्वानों की बातों का उत्तर किसी से नहीं दिया गया। इन युक्तियों को मानना न मानना प्रत्येक आदमी के विचार पर अवलंबित है। मेरा निज का विश्वास है कि इन विद्वानों की खोज दुरुस्त है।*

* पुराने ईसाई (रोमन कैथलिक) जोज़ेफ़थ को एक बड़ा औलिया (पीर) मानते हैं और उसकी पूजा करते हैं। पर नये ईसाई विद्वानों ने साफ़ साबित कर दिया है कि जोज़ेफ़थ पंचतंत्र की एक कहानी के पात्र का ईसाई रूप है!

ईसाई कहते हैं कि मनुष्य जाति के परित्राण के लिए क्राइस्ट ने प्राण दिये। उनका ख़याल है कि ईसा के पहले सब मनुष्य नरक में जाते थे। इसी भावना के अनुसार, ईसाई लोग बड़ी भक्ति और कृतज्ञता से क्राइस्ट के प्राणनाश की कल्पना करते हैं।

चित्रकार अपनी कल्पना को, अपने विश्वास के अनुसार, उस समय को ले जाता है जब क्राइस्ट का प्राणपखेरू प्यास, घबराहट, पीड़ा, दुःख को सहकर घंटों हुए उड़ गया था; चौखूंटी शूली पर से उनका शरीर नीचे उतार दिया गया था। क्राइस्ट की माता—मरियम—ने जिस बेटे के शिशु-शरीर को गोद में लेकर अलौकिक सुख का अनुभव २०।३० बरस पहले किया था, जिसका उपदेश उसने स्वयं सुना है, आज उसी "दैवी पुत्र" की मृतक देह भी अपनी गोद में उसने ली है। उस समय, माता के हृदय का भाव चित्रकार ने, उसके चेहरे से बड़ी सफलतापूर्वक प्रकट किया है। आँसू गिरने की दशा तो न मालूम कब व्यतीत हो गई। दुःख में स्त्री-जाति के स्वाभाविक धीरज और मातृस्नेह के साथ भक्ति से उत्पन्न हुए स्नेह के मेल को चित्रकार ने बड़ी ही ख़ूबी से दिखाया है। स्नेहाधिक्य के कारण मरियम के असाधारण शोक को देख भिन्न धर्मावलंबी का भी चित्त अपना चंचल स्वभाव छोड़ देता है—वह सहानुभूति का दान अवश, विना चाहे, देने लगता है। आँखें उससे हटती नहीं। और हटीं भी तो नीचे के दूसरे मुखड़े पर आगिरती हैं। वह दूसरा मुखड़ा मारे गये क्राइस्ट का है। लंबे बाल, प्यारी यहूदी नासिका, बड़ी बड़ी बन्द आँखें, निष्कलंक, निष्पाप, शांत मुख-छवि देख, दृष्टि शीघ्रता से पैर की उँगलियों तक दौड़ जाती है; पर दौड़ने में उसे एक जगह ज़रा ठहरना पड़ता है। कहाँ? कोटर गत, उदर के ऊपर, वक्षस्थल के नीचे, धँसे हुए एक रक्त-रंजित तीर का फल है। माता की दृष्टि बेटे, अथवा बेटे-गुरु, के मुख पर नहीं है; वह भी उसी तीर पर है। दोनों हाथ लोथ के सँभालने में फँसे हुए हैं—एक पीठ के नीचे है, दूसरा कमर पर है। अग़ल बग़ल दो दैवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायिकायें हैं। एक ने शव के सिर को सहारा दे रक्खा है जिसमें वह पीछे को लटक न जाय, दूसरी भक्तिपूर्वक हाथ बाँध पैरों पर दृष्टि जमाये हुए है।

युवती माता मरियम और शिशु युशू पर अपनी अपनी लेखनी तो बहुतेरे चित्र-कवियों ने आज़माई है, पर अधेड़ माता मरियम और युवा युशू के शव का अंकन इसी चितेरे ने किया है। गैलरी के चित्र-समुदाय में सब से उत्तम चित्रों में यह एक है। पर मुझे कल्पना और कृति के विचार से यही चित्र सर्वोत्तम जँचा। कृति वही है जो भिन्न विश्वासी का भी मन मुहूर्त्त मात्र को हर ले* जैसे तुलसीदास की रामायण में भक्ति का अतिरेक धर्मकट्टर ईसाइयों के भी हृदय में भक्ति उत्पन्न करता है। यह चित्र इतना अच्छा है कि दिन में कई बार इसके पास भीड़ लग जाती है। दर्शक कितनीहीं जल्दी में हो उसकी आँखें इस चित्र पर बिना बिलमे नहीं रहतीं।

इस चित्र का रंगीन प्रतिबिम्ब दिया जाता है। उसमें ४ रंग हैं, पर जो रंग असल में है उन्हें नक़ल में लाना असंभव है। मृत शरीर का रंग चित्रकार ने अद्भुत दिया है। जिस तरह अनुवाद में मूल काव्य का शब्द-सौन्दर्य कभी नहीं आ सकता, उसी तरह चित्र की नक़ल में भी उसके रंगों का और क़लम के सूक्ष्म कामों का प्रतिबिंब नहीं आसकता।

कोई ४०० वर्ष इस चित्र को बने हुए; किन्तु जान पड़ता है तसवीर कल की बनी है। चित्रकार का प्रसिद्ध नाम फ्रेंसिया (Francia) है। पर उसका ठीक नाम रैबोलिनी (Raibolini) है। वह इटली के बोलोना नगर में, १४५० ई० में, पैदा हुआ था। उसके चित्रणगुरु का नाम फ्रेंसिया था। उसी के नाम पर शिष्य प्रसिद्ध हुआ। किन्तु स्वयं वह अपने चित्रों पर अपना हस्ताक्षर Aurifex (जौहरी) करता था। बोलोना में ही, ५ जनवरी १५१७ ई० को, वह मरा। प्रसिद्ध चित्रकार रैफ़ेल से उतर कर इसी का नंबर है।

नैशनल गैलरी के जिस विभाग में यह चित्र, नं० १८०७, है उसे "बलोनीज़ स्कूल" कहते हैं। इसके सहित तीन चित्र इस विभाग में हैं और तीनों रैबोलिनी के ही अंकित हैं। दूसरे चित्र मरियम और शिशु क्राइस्ट के हैं। यह चित्र काठ पर चित्रित है। ३ फ़ुट, २ इंच ऊँचा और ६ फ़ुट चौड़ा है। वह शीशे में मढ़ा हुआ है।

काशीप्रसाद जायसवाल।

* अभी हाल में एक मुसलमान मित्र ने मुझ से कहा कि जब उन्होंने रैफ़ेल-कृत प्रसिद्ध मैडोना और क्राइस्ट का चित्र देखा तब वे भूल गये कि यह भिन्न धर्म का है। लखक।

कवि गङ्ग का समय।

कवि गङ्ग की कविता जितनी प्रसिद्ध है उतना उनका सच्चा वृत्तान्त प्रसिद्ध नहीं है। और जो कुछ है भी वह व्यर्थ गप्पाष्टकों से भरा हुआ है, जिसके निर्णय करने में इतिहासप्रेमियों को बहुत कष्ट उठाना पड़ता है।

गङ्गविषयक गप्पाष्टक में सच्चा अंश इतना ही है कि वे अकबर बादशाह के समय में थे। सो यह बात उनकी कविता से भी जानी जाती है। बाक़ी गङ्ग का हाथी से चिरवा डाला जाना आदि बिलकुल ही निराधार मालूम होता है। पहले तो ख़ुद अकबर ही पर यह कलंक लगाया जाता था कि उसी ने गङ्ग को हाथी के पाँव से बाँधकर मरवा डाला था। और इसके प्रमाण में "गङ्ग ऐसे गुनी को गयन्द से चिराइए"—आदि कुछ कपोलकल्पित कवित्त और दोहे पढ़े जाते थे।

परन्तु जब गङ्ग की कविता जहाँगीर बादशाह की प्रशंसा में मिली तब इस गप्पाष्टक के पक्षपातियों ने यह कहना शुरू किया कि अकबर ने नहीं, नूर-जहाँ बेगम के भाई ज़ैनख़ाँ ने गङ्ग को हाथी से मरवा डाला था। इसका भी प्रमाण ढूँढ़ निकाला गया। उसे भी सुन लीजिए—"ज़ैनख़ाँ ज़ुनारदार मारे ए कनोर के"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डुमराँवनिवासी मित्रवर नकछेदी तिवारी जैसे विद्वान् ने भी यही बात गंग के चरित में छपवा दी थी। उसे देख मैंने उनको लिखा था कि ज़ैन ख़ाँ न तो नूरजहां बेगम का भाई था, और न नूरजहां के समय में जीता ही था। वह तो अकबर का धाय-भाई था और अकबर से ४ वर्ष पहले ही, संवत् १६५८ में, मर गया था। तब जहांगीर के राज में गङ्ग को मारने कहाँ से आया?

अब गोबिन्द गिल्ला भाई, जो काठियावाड़ के प्रसिद्ध कवि हैं, पूछते हैं कि जो गङ्ग को किसी ने हाथी से नहीं मरवाया तो यह बात कैसे प्रसिद्ध हुई? मैं कहता हूँ क्या झूठ बात प्रसिद्ध नहीं हो जाती है? बड़े बड़े लोग जिसका प्रतिपादन करने लगें उस बात का प्रसिद्ध हो जाना कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। पृथ्वीराजरासा और हम्मीररासा जैसे ग्रन्थों की कथायें इतिहास के विरुद्ध हैं। पर क्या ये ग्रन्थ विख्यात नहीं हुए? जब ऐसे ग्रन्थों की यह दशा है तब गङ्ग की इस छोटी सी कहानी का प्रसिद्ध हो जाना कौन बड़ी बात थी? बात वही सच्ची होती है जो ऐतिहासिक शोध से सही निकले। सो अकबर, अथवा ज़ैनख़ाँ, के द्वारा गङ्ग का मारा जाना इतिहास से साबित नहीं होता। अब रहा यह प्रश्न कि गङ्ग कैसे मरा और कब मरा सो गङ्ग के वंशज और सजातिवर्ग ही नहीं बता सकते। फिर और लोग कैसे बता सकते हैं? हमारे देश के कवियों ने काव्यरचना में तो ज़मीन आसमान के कुलाबे मिला दिये हैं; पर एक भी ग्रन्थ ऐसा नहीं बनाया जिससे उनके, उनके सजातियों के, या और लोगों के कुछ सही सही हाल मालूम हो सकें।

गप्पाष्टकी लोग तो गङ्ग को अकबर के समय में ही मारे देते हैं। पर हम औरंगज़ेब के समय तक गङ्ग के जीते रहने का पता बताते हैं।

हमारे मित्रों ने जब से गङ्ग की मृत्यु का प्रश्न उठाया हम उसके झूठ सच होने का निर्णय करने की खोज में हैं। पर उसका अभी तक कोई ऐतिहासिक प्रमाण हमें नहीं मिला। हाँ एक छप्पय, जो गङ्ग का बनाया हुआ कहा जाता है और जिसकी रचना-शैली हमारी समझ में गङ्ग की कविता से मिलती हुई है, कविराजा मुरारिदानजी के पास से प्राप्त हुआ है जिससे गङ्ग का औरंगज़ेब के समय तक विद्यमान रहना विदित होता है। यह छन्द एक हथिनी की हजो में है जो औरंगज़ेब ने गङ्ग को दी थी। यथा—

तिमरलंग लई मोल, चली बब्बर के हलके।
साह हमाऊँ साथ, गई फिर सहर बलके।
अकबर करी अजाच, भात जहांगीर खवाये।
साहजहां सुलतान पीठ के भार छुड़ाये।
अवरंगजेब बखसीस किय, अब आई कवि गङ्ग घर।
उन छोड़ दई उद्यान बन, भ्रमी फिरत है स्यार डर॥

इसे पढ़कर विचारशील लोग अवश्य चौंकेंगे और कहेंगे कि जो गङ्ग अकबर के समय में था वह औरंगज़ेब के समय तक कैसे जीता रह सकता है? औरंगज़ेब तो अकबर की चौथी पीढ़ी में था। परन्तु हिसाब ऐसी चीज़ है जिससे ऐसी सन्दिग्ध बातों के निश्चय में बहुत सहायता मिलती है। अब देखिए कि अकबर बादशाह का देहान्त संवत् १६६२ में हुआ। उसके पीछे २२ वर्ष जहांगीर ने, और ३० वर्ष शाहजहां ने, बादशाही की, जिसको क़ैद करके औरंगज़ेब, अकबर की मृत्यु से ५१ वर्ष पीछे, बादशाह हुआ। सो ५१ वर्ष का समय कुछ बहुत नहीं है। मामूली उम्र का आदमी भी ६०-७० वर्ष जी सकता है। गङ्ग की उम्र अकबर के मरने पर कम से कम २५-३० वर्ष की भी रही होगी तो वे औरंगज़ेब के सिंहासनासीन होने तक ८० वर्ष के बूढ़े होकर जीते रह सकते हैं। और क्या आश्चर्य है कि जो औरंगज़ेब ने मज़ाक़ से उनको हथिनी भी वैसी ही पुरानी पाकेट दी हो कि जिसमें दोनों का जोड़ा मिल जाय। औरंगज़ेब रूखा सा बादशाह था; तो भी उसके मिज़ाज में कुछ मज़ाक़ भी था जैसा कि उसकी तवारीख़ से ज़ाहिर होता है।

आशा है कि हमारे इस लेख से इतिहासप्रेमियों का चित्त कुछ प्रसन्न होगा। साथ ही सम्भव है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गप्पाष्टकों के पक्षपाती भी कदाचित् अब यह कहने लगें कि हाँ हाँ इसी हथिनी की हजो से ख़फ़ा हो कर औरंगज़ेब ने गङ्ग को हाथी से चिरवा डाला था! हम नाम भूल गये थे!! बहुत दिनों में अब याद आया है!!!

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि जो पूर्वोक्त लोकोक्ति सही भी हो तो भी बिना प्रमाण ही के पुलिस की तरह क्यों किसी पर कलङ्क लगावें? सीधी तरह योंही क्यों न कह दें कि कविगङ्ग हाथी की फेट में आकर मरे थे। जहाँ पूर्वोक्त दोहे और कवित्तों का कमज़ोर प्रमाण दिया जाता है क्या वहाँ यह नीचे लिखा हुआ युक्तिपूर्ण कवित्त कवि गङ्ग की अचानक मौत का साक्षी न होगा?

देवन को दरबार जुर्‌यो तहां
पिंगल छंद बनाय के गायो।
काहू तें अर्थ कह्यो न गयो तब
नारद एक प्रसंग बतायो।
मृतलोक में है इक गंग गुनी अरु
गंग को नाम सभा में सुनायो।
चाह भई परमेश्वर की तब
गंग को लेन गणेश पठायो॥ १॥

देवीप्रसाद।

प्रशस्त-पाठ।

बिन वास बसे वसुधा भर में
द्रवता रसहीन बहै वन में।
चमके बिन रूप हुताशन में
बिचरे बिन छूत प्रभञ्जन में॥
गरजे बिन शब्द खमण्डल में
बिन भेद रहै जड़-चेतन में।
कवि शङ्कर ब्रह्म विलास करे
इस भाँति विवेक भरे मन में॥ १॥

शुभ सत्य सनातन धर्म वही
जिसमें मत पन्थ अनेक नहीं।
बलवर्द्धक वेद वही जिसमें
उपदेश अनर्थक एक नहीं॥
सुखमूल समाधि वही जिसमें
व्रत-बन्धन की कुछ टेक नहीं।
कवि शङ्कर बुद्धि विशुद्ध वही
जिसके मन में अविवेक नहीं॥ २॥

मिल वैदिक-मन्त्र-पयोद घने
मनमेरु महाचल पै बरसें।
विधि और निषेध प्रवाह बहैं
उपदेश तड़ाग भरे दरसें॥
व्रतसाधन वृक्ष बढ़ें विकसें
लटकें फल चार पके सरसें।
कवि शङ्कर मूढ़ विवेक बिना
इस रूपक के रस को तरसें॥ ३॥

परिवार विलास बिसार दिये
क्षणभङ्गुर भोग भरे घर में।
समता उपजी ममता न रही
अपवित्र अनित्य कलेवर में॥
जड़ चेतन का मत-भेद मिटा
अनुराग रहा न चराचर में।
कवि शङ्कर पाय विवेक मिले
इस भाँति महामुनि शङ्कर में॥ ४॥

पढ़ पाठ प्रचण्ड प्रमाद भरे
कपटी जन जन्म गमाय गये।
रण रोप महाभट आपस में
लड़ केवल पाप कमाय गये॥
धन धाम बिसार धरातल में
धनवान असंख्य समाय गये।
कवि शङ्कर पै सुख जीवन को
जड़ संवितशील जमाय गये॥ ५॥

उपदेश अनेक सुने मन को
रुचि के अनुसार सुधार चुके।
धर ध्यान यथाविधि मन्त्र जपे
पढ़ वेद पुराण विचार चुके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु-गौरवधार महन्त बने
धन धाम कुटुम्ब बिसार चुके।
कवि शङ्कर ज्ञान बिना न तरे
चहुँ ओर फिरे झखमार चुके॥ ६॥

गुरु-गौरवहीन कुचाल चलें
मतभेद प्रसार प्रपञ्च रचें।
दिन रात मनो मुख मूढ़ लड़ें
चहुँ ओर घने घमसान मचें॥
व्रतसाधन के मिस पाप करें
हठ छोड़ न हाय लबार लचें।
कवि शङ्कर मोह-महासुर से
विरले जन पाय विवेक बचें॥ ७॥

घरबार बिसार विरक्त बने
वर-वेष बनाय निशङ्क रहैं।
उपदेश अबोध गृहस्थ गहैं
सब स्वामि महामुनिराज कहैं॥
घुस घोर घमण्ड-महोदधि में
रच दम्भ समाधि लगाय रहैं।
कवि शङ्कर ब्रह्म विवेक बिना
इतने पर भी उपताप सहैं॥ ८॥

तन सुन्दर रोग-विहीन रहै
मन त्याग उमंग उदास न हो।
रसना पर धर्म-प्रसङ्ग बसें
नरमण्डल में उपहास न हो।
धन की महिमा भरपूर मिले
रस-रङ्ग-वियुक्त विलास न हो॥
कवि शङ्कर ये सब संकट हैं
सुखदा प्रतिभा यदि पास न हो॥ ९॥

निशिवासर भोग विलास किये
रस रंग भरे सब साज बने।
सिर धार किरीट कृपाण गही
अवनी भर के अधिराज बने॥
अनुकूल अखण्ड प्रताप रहा
अविरुद्ध अनेक समाज बने।
कवि शङ्कर वैभवज्ञान बिना
भवसागर के न जहाज़ बने॥ १०॥

जिस पै करतूत चली न किसी
नर किन्नर नाग सुरासुर की।
बल साहस के फल से न मिली
मतिभीरु भगोड़ भयातुर की॥
गति उन्नति के मग में न रुकी
अति ओज उमंग भरे उर को।
कवि शङ्कर ज्ञान बिना उसको
प्रभुता न मिली प्रभु के पुर की॥ ११॥

निगमागम तंत्र पुराण पढ़े
पुनि पण्डितराज कहाय खरे।
कर दम्भ प्रचार प्रपञ्च रचै
बन वञ्चक वेष अनेक धरे॥
बिचरे कर पान प्रमाद-सुरा
हठ-बाद-हलाहल खाय मरे।
कवि शङ्कर संसृति-सागर से
शठ संवित बोध बिना न तरे॥ १२॥

नर नीच अनीति प्रचार करें
अपवित्र प्रथा पर प्यार करें।
खल-मण्डल का उपकार करें
बिगड़ें न समाज-सुधार करें॥
अपकार अनेक प्रकार करें
व्यभिचार सुकर्म बिसार करें।
कवि शङ्कर मन्द विचार करें
बिन ज्ञान बुरे व्यवहार करें॥ १३॥

कुल-बोर कठोर महाकपटी
कब कोमल कर्म-कलाप करें।
पशु पोच प्रचण्ड प्रमाद भरे
भर पेट भयानक पाप करें॥
बिन बात लड़ें लघु आपस में
तज बैर न मेल मिलाप करें।
कवि शङ्कर प्रातिभ ज्ञान बिना
अपना गलबन्धन आप करें॥ १४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जड़ चेतन भूत अधीन रहैं
गुण साधन दान करें जिसको ।
सबको अपनाय सुधार करै
शुभचिन्तक रोक रहै रिस को ॥
बन जीवन-मुक्त सुखी बिचरे
तज मौखिक दन्त-घिसाघिस को ।
कवि शङ्कर शुद्ध विवेक बिना
इतने अधिकार मिलें किसको ॥ १५ ॥

गिन खेटभकूट खमण्डल में
फल ज्योतिष के पहँचान लिये ।
कर शिल्प रसायन की रचना
रच भौतिक तत्त्व विधान लिये ॥
जड़ चेतन के गुण जाँच लिये
नव द्रव्य अमिश्रित मान लिये ।
कवि शङ्कर सिद्ध सुधी गुरु ने
सबके सब लक्षण जान लिये ॥ १६ ॥

भ्रमकुम्भ असत्य-सनेह भरे
गिर सत्यशिला पर फूट गये ।
तन में मन में ममता न रही
छलछिद्र कुलक्षण छूट गये ॥
समझा अज एक अनेक मिटे
दृढ़ मायिक बन्धन टूट गये ।
कवि शङ्कर यों सब साधु सुधी
सुख जीवन का रस लूट गये ॥ १७ ॥

कब कौन अगाध पयोनिधि के
उस पार गया जलयान बिना ।
मिल प्राण अपान उदान रहैं
न समान विमिश्रित व्यान बिना ॥
कहिये ध्रुवधेय मिला किसको
अविकल्प अचञ्चल ध्यान बिना ।
कवि शङ्कर मुक्ति मिली न कहीं
सुखमूल विवेकज ज्ञान बिना ॥ १८ ॥

पहले सुरपादप-न्याय बने
पुनि श्यामघटा बन जाय दया ।
फिर सर्व-सुधार-सुधा बरसे
बन ब्यार बहै करनी अभया ॥
अति सुन्दर कामद फूल खिलें
ललचें फलदृश्य निहार नया ।
कवि शङ्कर स्वाद मिले उसको
जिसमें गुरुज्ञान समाय गया ॥ १९ ॥

बिन पावक देव न पाय सकें
अभिमंत्रित आहुतियाँ हवि की ।
रसराज न सुन्दर साज सजे
छिटके मिल जो न छटा छवि की ॥
नभ में न भकूट प्रकाश करें
यदि प्यार करे न प्रभा रवि की ।
कवि शङ्कर तो बिन ज्ञान किसे
पदवी मिल जाय महाकवि की ॥ २० ॥

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ।

महाराजा ट्रावनकोर ।

मदरास हाते में ट्रावनकोर एक बहुत बड़ी रियासत है । उसकी उत्तर-दक्षिण लंबाई कोई २०० मील और पूर्व-पश्चिम चौड़ाई ७५ मील है । उसके दक्षिण और पश्चिम में समुद्र है । उत्तर में कोचीन की रियासत है, और पूर्व में अँगरेज़ी राज्य के मदूरा और तिनवल्ली ज़िले हैं । ट्रावनकोर राज्य का क्षेत्रफल ६७३० वर्ग मील और आबादी २९,५१,०३८ मनुष्य है । मलयाली और तामील यहाँ की प्रधान बोलियाँ हैं ।

ट्रावनकोर की राजधानी त्रिवेन्द्रम नगर है । उसके वर्तमान नरेश का नाम सर बालराम वर्म्मा है । पूरा नाम आप का बहुत लंबा है । उसे भी सुन लीजिए—श्रीपद्मनाभ-दास वञ्जी सर बालराम वर्म्मा, कुलशेखर, कीर्तिपति-मणि, सुलतान, महाराज, राज-राम, राजा बहादुर, शमशेरजंग, जी० सी० एस० आई० । आप का जन्म १८५७ ईसवी में हुआ था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और राज्याधिकार आगस्ट १८८५ को मिला था। आप क्षत्रिय-वंशज हैं। ३५२ ईसवी से ट्रावनकोर में क्षत्रियों ही का राज्य चला आता है।

ट्रावनकोर में पैत्रिक सम्पत्ति का अधिकार पुरुष-सन्तति को नहीं, स्त्री-सन्तति को प्राप्त होता है। मलाबार प्रान्त भर में यही नियम है। इस का नाम है मरुमक्कायम। इस के अनुसार ट्रावनकोर के महाराज का पुत्र गद्दी का अधिकारी नहीं होता। किन्तु उनकी बड़ी बहन का लड़का अधिकारी होता है। गवर्नमेन्ट ने ट्रावनकोर के महाराज को १८६२ ईसवी में एक सनद दी है, जिस में वहाँ के नरेशों को यह अख़तियार दिया गया है कि यदि उन के कोई बहन या भानजी न हो तो वे राजवंश में से किसी को गोद ले लें जिस में वंश-विच्छेद न होने पावे। इसी अधिकार के बल पर १९०० ईसवी में मवेलीकराई स्थान की दो बहनें राज-वंश में दत्तक ले ली गईं। इनमें से एक की उम्र इस समय १३ और दूसरी की ११ वर्ष की है। ये यथाक्रम बड़ी और छोटी रानी कहलाती हैं। बड़ी रानी के ही पुत्र को वर्तमान महाराजा के बाद ट्रावनकोर की गद्दी मिलेगी। यदि अभाग्यवश उनके कोई पुरुष-सन्तान न हुई तो छोटी रानी के पुत्र को राजत्व प्राप्त होगा।

महाराजा सर बालराम वर्म्मा की धर्म्म-पत्नी का नाम करचियानी अम्मा है। वे नायर-वंशज हैं। ख़ूब पढ़ी लिखी हैं। परदा नहीं करतीं; दक्षिण में परदा है भी नहीं। १९०५ ईसवी में इन्होंने सङ्गीत-विद्या के लंडन-कालेज से "पियानो" बजाने की पारदर्शितासम्बन्धी परीक्षा पास की। "पियानो" एक प्रसिद्ध अँगरेज़ी बाजा है। उस में ख़ूब सिद्ध-हस्त होना सहज बात नहीं है। परन्तु अम्मा महाशया ने नामवरी के साथ यह परीक्षा पास की। यद्यपि आप पियानो बजाने में बड़ी प्रवीण हैं, तथापि वीणा से आप को सर्वाधिक प्रेम है। वीणा-वादन में शायद ही कोई स्त्री आप की बराबरी कर सकती हो। आप गाती भी हैं और बहुत अच्छा गाती हैं। आप की कण्ठ-ध्वनि बड़ी ही मधुर है। चित्र-विद्या में भी ये निपुण हैं। ट्रावनकोर के राज-प्रासाद आप के अंकित कितने ही चित्रों और बेलबूटों से सुसज्जित हैं।

महाराजा ट्रावनकोर ऊँचे दरजे के विद्वान् हैं। आप को अँगरेज़ी की बहुत ही उत्तम शिक्षा मिली है। पर जो लोग आप की मातृभाषा तामील बोल सकते हैं उनसे आप उसी में वार्तालाप करना पसन्द करते हैं। अन्य अँगरेज़ी विद्या-विशारदों की तरह अँगरेज़ी ही में स्वप्न तक देखना आपको पसन्द नहीं।

ट्रावनकोर का अर्थ है "दानभूमि"। जितना दान-धर्म्म यहाँ होता है और कहीं नहीं होता। सत्पात्र ब्राह्मणों को लोग बड़े भक्तिभाव से दान देते हैं। उच्च हिन्दू-धर्म्म का आदर्श जिसे देखना हो वह ट्रावनकोर में जाकर देखे। यहाँ के ब्राह्मण बड़े ही कर्म्मठ और धर्म्मभीरु हैं। संस्कृत का भी यहाँ ख़ूब प्रचार है।

ट्रावनकोर का ऐसा मनोमुग्धकारी प्राकृतिक दृश्य इस देश में अत्यन्त दुर्लभ है। यहाँ की भूमि सदा सर्वदा हरित रहती है। सैकड़ों नदी नाले बहा करते हैं। पहाड़ों की उपत्यकाओं से लेकर समुद्र पर्य्यन्त शायद ही कोई जगह ऐसी हो जहाँ कोस दो कोस तक कोई जलाशय न हो। ताड़ और सुपारी आदि के कुञ्जों से यह देश सर्वत्र परिपूर्ण है। विशेष करके समुद्र के किनारे किनारे इनकी बड़ी अधिकता है। चावल यहाँ बहुत पैदा होता है। वही यहाँ का प्रधान खाद्य है।

महाराजा ट्रावनकोर की प्रजा, सुनते हैं, बहुत सुखी है। ट्रावनकोर ही का नाम "रामराज्य" है। फिर भला वहाँ की प्रजा क्यों न सुखी हो? महाराजा उच्च शिक्षा प्राप्त और राज-कार्य्य-कुशल हैं। उन्होंने प्रजा के सुख के लिए सभी साधन सुलभ कर दिये हैं। बड़े बड़े विद्वानों को कर्म्मचारी रक्खा है। अनुभव-शील और योग्य दीवान नियत करते आये हैं। विद्या और शिक्षा के विस्तार में कोई त्रुटि नहीं होने दी। फिर आपकी प्रजा आनन्दित न होगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो किस की होगी ? आप की राजधानी त्रिवेन्द्रम का अर्थ ही "आनन्दालय" है।

महाराजा ट्रावनकोर ने अब पी० राजगोपालाचारियर, एम० ए०, बी० एल० को, जो मदरास हाते में पहले दरजे के कलेक्टर हैं, अपना दीवान नियत किया है। ये बड़े ही योग्य पुरुष हैं। कोचीन में कई वर्ष दीवान रह चुके हैं। लार्ड रिपन की कृपा से १८८५ ई० में जो दो चार एतद्देशीय सिविलियन हो गये थे ये भी उन्हीं में से हैं।

त्रिवेन्द्रम में कितने ही हाईस्कूलों के सिवा एक पहले दरजे का कालेज भी है। यह कालेज लड़कों के लिए है। लड़कियों का कालेज अलग है। ट्रावनकोर में स्त्री-शिक्षा का ख़ूब प्रचार है। अँगरेज़ी राज्य में जो बात नहीं, वह ट्रावनकोर में पाई जाती है। सुशिक्षित और प्रजारंजक राजा का धर्म्म हो यह है कि वह प्रजा को शिक्षा देकर उसे सज्ञान बनावे। कालेज के सिवा लड़कियों के लिए दो हाईस्कूल भी हैं। महाराज ने क़ानून की शिक्षा देने के लिए एक कालेज अलग ही खोल रक्खा है। जरा-जीर्ण और विस्मृतप्राय संस्कृत को भी आप नहीं भूले। संस्कृत-शिक्षा के लिए भी एक कालेज है। राजधानी में, इस प्रकार, चार पाँच कालेज हैं। स्कूलों की तो गिनती ही नहीं; अनेक हैं। शिल्प-कलायें सिखलाने के लिए भी कई स्कूल हैं।

महाराजा ने अपनी राजधानी में एक विशाल पुस्तकालय खोल रक्खा है। उस में कोई तीस चालीस हज़ार ग्रन्थ हैं। त्रिवेन्द्रम में बेधशाला और अजायब घर भी हैं। यहाँ का हाईकोर्ट, दरबार हाल, टाउन हाल आदि इमारतें लाखों रुपये ख़र्च करके बनवाई गई हैं। महाराज के महल और पद्मनाभ विष्णु का मन्दिर यहाँ देखने लायक़ हैं।

त्रिवेन्द्रम बहुत ही स्वच्छ शहर है। सब तरफ़ साफ़ सुथरी और चौड़ी सड़कें हैं। उनके किनारे निर्म्मल सलिल-राशि-पूर्ण जलाशय हैं। जगह जगह बाग़ हैं। ब्राह्मणों की बस्ती अधिक है। उनके महल्ले ही अलग हैं। किरिस्तान और मुसल्मान भी हैं, पर थोड़े हैं। देखने वाले कहते हैं कि ऐसे मनोहर और रम्य नगर की शोभा देखकर अमरावती के पौराणिक वर्णन का बार बार स्मरण हो आता है। ऐसा होना अचम्भे की बात नहीं।

अन्योक्ति-पुष्पावली ।

कनेर ।

१—शोभा सही है तुम में अपार ;
सुगन्ध है किन्तु न कर्णिकार !
अहो ! तभी है यह बात ख्यात*–
"नैकत्र सर्वो गुणसन्निपातः †" ॥

केतकी ।

२—न कण्टकों से इनको सताना ;
हैं भृङ्ग ये, शीश इन्हें झुकाना ।
न भूलना केतकि ! सत् स्वभाव–
"भक्त्या हि तुष्यन्ति महानुभावाः ‡" ॥

काक ।

३—रे काक पापी ! खर और तार
कटूक्ति तेरी सुन वार बार ।
है याद आती यह किंवदन्ती
"गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति §" ॥

सिंह ।

४—मिला तुम्हें जो "वनराज" का पद,
है योग्यही हे हरि‖ ! सो महास्पद ।
विद्वान तो हैं कहते यही सदा–
"नये च शौर्ये च वसन्ति सम्पदः ¶" ॥

---

* ख्यात = प्रसिद्ध ।

† सब गुण एक ही जगह इकट्ठे नहीं मिलते ।

‡ श्रेष्ठ जन भक्ति से ही सन्तुष्ट होते हैं ।

§ गुणहीन लोग बहुत बकवाद करते हैं ।

‖ हरि = सिंह ।

¶ नीति और वीरता ही में सम्पत्ति निवास करती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बक।

५—विलोक तेरी गति मन्द रे बक!
तुझे कहेगा, कह, कौन हिंसक?
अहो नहीं है इसमें मृषा-लव
"निसर्गतोऽन्तर्मलिना ह्यसाधवः*" ॥

पथिक।

६—है पास तेरे गुण† ही नहीं जब,
कैसे तुझे जीवन‡ कूप दे तब?
है ज्ञात क्या पान्थ! तुझे न दुर्मते!
"पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते §" ॥

कोकिल।

७—सदैव ही पञ्चम में सुराग को
सुना भलेही पिक! क्यों न काग को।
परन्तु होगी फिर भी वही दशा—
"कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः ‖" ॥

❋

८—जो क्रूर काक-कुल में पलता नहीं तू,
पाता अवश्य पिक! मान सभी कहीं तू।
है बात सत्य यह निश्चय जान ले तू—
"नीचाश्रयो हि महतामपमानहेतुः¶" ॥

कर्म्मनाशा।

९—भागीरथी-सलिल-सङ्गम की कृपा से,
होवें विलोक तुझको शुचि कर्म्मनाशे!
तत्काल बात यह याद किसे न होती—
"सङ्गः सतां किमु न मङ्गलमातनोति/"? ॥

* दुजनों का अन्तःकरण स्वभाव से ही मलिन होता है।
† रस्सी। ‡ जल।
§ सब स्थानों में गुण ही पदवी पाते हैं।
‖ कुशिष्य के पढ़ाने में यश कहाँ?।
¶ नीचों का आश्रय बड़ों के लिए अपमान का कारण होता है।
/ सज्जनों की सङ्गति या कल्याणकारिणी नहीं होती?

खजूर।

१०—हुए ऊँचे तो क्या, यदि सुमन छायादिक नहीं,
कहो कैसे फैले, फिर यश तुम्हारा सब कहीं?
सुनो हे खर्जूर! स्फुट मत नहीं है यह नया—
"गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः*" ॥

मेघ।

११—ऊष्मा† से हैं सकल जन ये पा रहे तीक्ष्ण ताप;
होते तो भी द्रवित न ज़रा, हे घनश्याम! आप।
होगा हा! क्या अब यह हमें आपको भी बताना—
"आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ‡" ॥

❋

१२—फैला भू में समझ अति ही ग्रीष्म-ताप-प्रताप,
क्या आश्चर्य्य द्रवित यदि हों हे घनश्याम! आप।
ग्रन्थों में हैं यह लिख गये झूठ थोड़े महात्मा—
"प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा §" ॥

मैथिलीशरण गुप्त।

शान्ति-सभा के शान्ति प्रेम का एक उदाहरण।

रूस-राज के प्रयत्न से १८९९ में एक आन्तर्जातिक राजकीय सभा हालैंड के हेग नगर में हुई थी। उसमें और और बातों के सिवा संसार में शान्ति-स्थापन करने के अभिप्राय से नये नये क़ायदे-क़ानून बनाये गये थे। उनके होते भी रूस और जपान का भीषण युद्ध हो गया। अगस्त ०७ से फिर हेग में ऐसी ही एक सभा हो रही है। सब स्वतंत्र देशों के

* गुणियों में गुण ही पूजे जाते हैं। स्त्री, पुरुष और अवस्था आदि का विचार नहीं किया जाता।
† ऊष्मा = गरमी।
‡ विपत्तिग्रस्तों का दुःख दूर करनाही उत्तम जनों की सम्पत्ति का फल है।
§ प्रायः सब सरस हृदय जन करुणा-वृत्तिवाले होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिनिधि वहाँ इकट्ठे हैं। युद्ध के समय अन्याय और निर्दयता न होने के लिए इस बार पुराने नियम फिर से नये किये गये हैं और इस बात पर ख़ूब ज़ोर दिया गया है कि पहले तो युद्ध ही न हो और यदि हो तो ज़रा भी निष्ठुरता न की जाय। पर जब युद्ध होता है तब ये सब नियम तिनके से भी अधिक तुच्छ समझे जाते हैं। कोई इनकी कुछ भी परवा नहीं करता। इसका एक उदाहरण "रिव्यू आफ़ रिव्यूज़" के सम्पादक स्टीड साहब ने अपनी मासिक पुस्तक में दिया है। आप भी इस दफ़े की हेग-सभा में दर्शक के तौर पर हाज़िर हैं।

जिन राज्यों के प्रतिनिधियों ने हेग में बैठकर सभा की, और दस्तावेज़ों पर दस्तख़त करके इस बात की घोषणा दी, कि युद्ध में अन्याय न हो, लूट न हो, व्यर्थ प्रजापीड़न न किया जाय, किसी के साथ निर्दयता का व्यवहार न किया जाय, उन्हीं में से पाँच सात राज्यों की सेना ने जब उस साल चीन पर चढ़ाई की तब उन प्रतिज्ञाओं को उन्होंने बालाय-ताक़ रख दिया। इस विषय में स्टीड साहब से एक ऐसे चीन-वासी से बातचीत करने का मौक़ा हेग में आया जो उस साल लड़ाई के दिनों में पेकिन में हाज़िर था। उससे साहब ने पूछा कि कहिए इन युद्ध सम्बन्धी नियमों का परिपालन पेकिन में हुआ था?

"ज़रा भी नहीं। सब ने लूट-खसोट की। पर सब ने सब चीज़ें नहीं लूटीं। जपानियों ने सिर्फ़ अमीरों को लूटा। पेकिन के राजकीय ख़ज़ाने में छापा मारकर सारी चाँदी लूट ली और टोकियो को भेज दी। बेचारे जर्मन लोग देर से पहुँचे। उनको और कुछ नहीं मिला। मिला सिर्फ़ काठ का सामान—मेज़, कुरसी, बकस आदि"।

"परन्तु, क्या सब देशों की सेना ने लूट मार की?"।

"अमेरिकावालों ने सब से अच्छा व्यवहार किया। उन्होंने लूट पाट नहीं की। उनके जनरल ने हुक्म दे दिया था कि जो लूट मचावेगा वह गोली मार दिया जायगा। हिन्दुस्तानी सिपाहियों और रूस के क़ज़्ज़ाक़ लोगों ने सब से ज़ियादह लूटा। तथापि सब ने थोड़ा बहुत माल मारा। कोई कोरा नहीं रहा"।

"तो युद्ध के नियम नहीं पालन किये गये"?

"नहीं, बिलकुल नहीं। जब सब देशों की फ़ौजों ने पेकिन में प्रवेश किया तब मुझे गलियों में पड़े हुए मुर्दे गाड़ने में मदद देनी पड़ी। हम सब ने मिलकर ५००० लाशें गाड़ीं; उनमें ३५०० लाशें स्त्रियों की थीं"।

"स्त्रियाँ लड़ाई में मारी गई थीं, या शहर के बाहर से फेंके गये गोलों से मरी थीं"?

"नहीं; लड़ाई हो चुकने पर जिन स्त्रियों को 'सोलजर' लागों ने बेइज़्ज़त किया था ये लाशें उन्हीं की थीं। बेइज़्ज़त करने के बाद या तो 'सोलजर' लोगों ने हीं इन्हें मार डाला था, या इन्होंनेहीं आत्म-हत्या कर ली थी। मेरी समझ में आधे से अधिक स्त्रियों ने मारे लज्जा के ख़ुद ही प्राण दे दिये थे। उन्होंने मुँह दिखाने के बदले मर जानाहीं अच्छा समझा"।

"क्या ये स्त्रियाँ ग़रीब और नीच जाति की थीं"

"इनमें से कितनी हीं भले घरों की थीं। 'सोल-जर' लोगों ने अमीर-ग़रीब और उच्च-नीच का ख़याल नहीं किया। सब पर एक सा अत्याचार किया"।

"सुनिए, हेग की शान्ति-सभा ने जो युद्ध-नियम बनाये हैं उनमें से एक नियम है—कोई कुटुम्ब बेइज़्ज़त न किया जायगा। किसी का हक़ न मारा जायगा। किसी का माल असबाब न लूटा जायगा। किसी की प्राण-हत्या न की जायगी। किसी आदमी की निज की सम्पत्ति ज़ब्त न की जायगी। इन अत्याचारों के लिए क्या किसी को सज़ा नहीं दी गई"?

इसके उत्तर में चीना सज्जन ने कहा—"जब सभी लोगों ने इस तरह के अत्याचार और अन्याय किये तब सज़ा किसको दी जाती? जब हम लोगों ने अफ़सरों से शिकायत की तब उन्होंने सबूत माँगा। उन्होंने फ़रमाया कि यदि हम इस बात के गवाह पेश करें कि किस 'सोलजर' ने किस स्त्री को बेइज़्ज़त किया तो उसे सज़ा दी जाय। परन्तु ऐसी स्त्रियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः सभी मर चुकी थीं; सबूत कैसे दिया जाता? और यदि जीती भी होतीं तो एकही तरह के कपड़े पहने हुए हज़ारों 'सोलजरों' में से वे अपने अत्याचारी को कैसे पहचान सकतीं"?

"अच्छा यह तो 'सोलजर' लोगों की बात हुई। सम्मिलित राज्यों के विषय में आपको क्या कहना है। उन्होंने कुछ अच्छा व्यवहार किया"?

"नहीं किया। वे भी प्रजापीड़न, अत्याचार और अन्याय से बाज़ नहीं आईं। जिसने जो चीज़ पसन्द की, लूटी। इटली ने ऐतिहासिक सामान लूटा। जर्मनी ने ज्योतिष-विद्या-सम्बन्धी यंत्र लूटे। ये यंत्र अब जर्मनी की हवा खा रहे हैं"।

"आपने ठीक कहा। जब मैं अँगरेज़-सम्पादकों के साथ जर्मनी गया था तब जर्मन-नरेश ने हम लोगों से भेंट की थी। हम उनका अभिवादन करने गये थे। उस समय हमने ब्राँज़ नामक धातु का एक गोला देखा था। वह चीन से ही वहाँ गया था। जर्मन-नरेश घोड़े पर थे। वह पृथ्वी का गोला उनके घोड़े के एक तरफ़ था और हम लोग दूसरी तरफ़। क्या आप लोग अब उसे लौटा देने के लिए जर्मनी से प्रार्थना नहीं करेंगे"?

"नहीं, हम और बनवालेंगे। उन्हें उसे रखने दीजिए। वह उन्हें उनकी बेशरमी की याद दिलाता रहेगा"।

"अच्छा यह जो नियम किया गया है कि जिस देश पर चढ़ाई की जाय उसके निवासियों को, चढ़ाई करनेवालों की सहायता करने के लिए, लाचार नहीं करना चाहिए, उसकी कहाँ तक पाबन्दी हुई थी। क्या आपके देशवासियों से ज़बरदस्ती काम लिया गया था"?

"शाही घराने के एक राजकुमार से इटलीवालों ने अस्तबल में काम कराया और इतना सख़्त काम लिया कि वह मरही गया। सब से काम लिया गया; कोई नहीं छोड़ा गया"।

"आशा है, ये जो नये नियम बनाये जारहे हैं उनकी पाबन्दी अब पहले से अधिक होगी"। तथास्तु।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त इस संसार से उठ गये; किन्तु वह अपनी ओजस्विनी लेखनी से साहित्य-संसार में अमर हैं। जब तक हिन्दी की दुनिया रहेगी, जब तक हिन्दी-साहित्य-सेवियों में शुद्ध, सरल और पक्षपातशून्य लेखों की भक्ति का लेशमात्र भी रहेगा, बाबू बालमुकुन्द का नाम भाषा-साहित्य के इतिहास में सदा उज्ज्वल और अमिट अक्षरों से लिखा रहेगा।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त का जन्म रोहतक ज़िले के गुरियानो गाँव में हुआ था। पंजाब में उर्दू का ही प्रचार अधिक है। हिन्दी पर जितना स्नेह अब दीखता है, आर्य्य-समाज के प्रभाव से पंजाब-प्रान्त में हिन्दी की रुचि जो आज दिखलाई देती है, उन दिनों उसका अल्पांश भी न था। गुप्त जी ने उर्दू ही फ़ारसी की शिक्षा पाई, किन्तु आप को मज़मूननवीसी का बाल-पन ही से शौक़ था। लखनऊ के उर्दू-अख़बार अवधपंच, लाहौर के कोहेनूर, मुरादाबाद के रहबर और सियालकोट के विक्टोरिया-पेपर में वे समयानुसार उत्तमोत्तम लेख लिखते थे।

जब चुनार के प्रसिद्ध रईस बाबू हनुमानप्रसाद ने अख़बारे-चुनार जारी किया तब गुप्त जी उसके सम्पादक हुए और अख़बारे-चुनार युक्त-प्रदेश के अच्छे अख़बारों में गिना जाने लगा।

उन दिनों राजा रामपालसिंह ने हिन्दोस्थान का प्रकाशन इँगलैंड में बन्द करके अपनी राजधानी कालेकांकर से आरम्भ किया। प्रयाग के प्रसिद्ध और सुलेखक पण्डित मदनमोहन मालवीय उसके सम्पादक थे। तब तक गुप्त जी से मालवीय-जी का परिचय न था।

इस बीच में गुप्तजी चौथी कांग्रेस का अधिवेशन प्रयाग में देखने के बाद लाहौर से सप्ताह में तीन बार निकलने-वाले अख़बार कोहेनूर के सम्पादक हुए और उसे रोज़ाना निकालना शुरू किया। जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वन्दावन में भारतधर्म-महामण्डल का अधिवेशन हुआ और पण्डित मदनमोहन मालवीय उस अधिवेशन में पधारे तब पण्डित दीनदयालु शर्मा ने गुप्त जो का मालवीय जी से परिचय कराया।

जब मालवीयजी वकालत का अभ्यास करने के लिए हिन्दोस्थान का सम्पादन-कार्य्य छोड़ने लगे तब राजा रामपालसिंह ने उनका अलग होना बड़े दुःख से स्वीकार किया। परन्तु मालवीयजी को उस कार्य्य में अग्रसर होने के लिए सब तरह से उत्साहित किया और मदद भी दी। साथ ही हिन्दोस्थान के लिए एक सुयोग्य हिन्दी-लेखक चुनने के लिए भी कहा।

मालवीय जी के परामर्श से गुप्त जी कालेकांकर बुलाये गये। उस समय कालेकांकर में हिन्दी-लेखकों की नवरत्न कमेटी सी बन गई थी। बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, पण्डित राधारमण चौबे, चौबे गुलाबचन्द, पण्डित रामलाल मिश्र, बाबू शशिभूषण चैटर्जी, पण्डित गुरुदत्त शुक्ल और बाबू गोपालराम की मदद से राजा रामपालसिंह स्वयं हिन्दोस्थान का सम्पादन करते थे। जिन दिनों हम कालेकांकर गये उन दिनों चैटर्जी बाबू प्रयाग लौट गये थे, किन्तु शेष सज्जनों की मण्डली बड़ी योग्यता से हिन्दोस्थान को हिन्दी-साहित्य में प्रिय बना रही थी। बाबू बालमुकुन्द गुप्त ही मानों उस कमेटी के प्रेज़िडेंट थे। श्रीमान् राजासाहिब ने उन्हीं पर सब भार दे दिया था। उन दिनों हिन्दोस्थान में बड़े बड़े योग्य और अनुभवी सुलेखकों के लेख छपते थे। गुप्तजी के समय में पण्डित शिवनाथ शर्मा, पण्डित श्रीधर पाठक, पण्डित राधाचरण गोस्वामी, पण्डित चंद्रिकाप्रसाद तिवारी, चौबे राधारमण बी० ए०, पण्डित जानी बिहारालाल, पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी, बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री आदि के गद्य पद्य लेख छपते थे। उन्हीं दिनों खड़ी बोली की कविता के विषय में कवि और लेखकों में दो तड़ हो गये थे। एक की राय में खड़ी बोली कविता के गुणों से शून्य कही गई थी। दूसरी मण्डली कहती थी कि नहीं, कवि चाहें तो उसे सर्व-गुण-आगरी कर सकते हैं; और व्रजभाषा से खड़ी बोली ही में कविता होना हिन्दी की उन्नति का कारण है। गुप्तजी ने इस विषय में हास्य और व्यङ्ग्य भरे कई गद्य लेख हिन्दोस्थान में लिखे थे जो मिस्टर हिन्दी के नाम से प्रकाशित हुए थे।

अवधपंच में गुप्तजी ने अपना नाम मिस्टर हिन्दी रक्खा था। इसी कारण वे सब काव्य मिस्टर हिन्दी के नाम से प्रकाशित हुए। उनमें सैयद अहमद का बुढ़ापा, वसन्त-वर्णन और भैंस का स्वर्ग बड़े ही समय पर निकले थे। हा! अब मिस्टर हिन्दी की कविता इस संसार में कहाँ मिलेगी!

हिन्दोस्थान का सम्पादन-कार्य्य छोड़ने पर गुप्त जी अपने जन्म-ग्राम गुरियानी को गये। उसके थोड़े ही दिनों बाद कलकत्ते से हिन्दी-बङ्गवासी का जन्म हुआ। पण्डित अमृतलाल चक्रवर्त्ती उसके सम्पादक बने। हिन्दी में बड़े आकार का यही पहले पहल साप्ताहिक समाचार पत्र, दो रुपये सालाना मूल्य पर, मिलने वाला निकला। उस के हज़ारों ग्राहक हुए।

जब भारतधर्म-महामण्डल का बनारस में अधिवेशन हुआ, ताहिरपुर के राजा शशिशेखरेश्वरराय उस के सभापति थे। बङ्गवासी के मालिक और एडिटर भी उस जलसे में काशी पधारे थे। बाबू बालमुकुन्द गुप्त भी महामण्डल में आये थे। तब पण्डित दीनदयालु जी ने गुप्त जो से बङ्गवासी के अध्यक्षों का परिचय कराया। अधिवेशन के बाद गुप्त जी लौटते हुए कालेकांकर गये थे। उन दिनों हम भी वहीं थे। किन्तु वह नवरत्न कमेटी तितर बितर हो गई थी। पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, चौबे गुलाबचन्द, और पण्डित राधारमण आदि कोई नहीं थे। उस हेरफेर को देखकर गुप्त जी ने दुःख प्रकाश किया था और कहा था कि अब हिन्दोस्थान की दशा और हो गई है।

घर जाने पर गुप्त जी ने भारत-प्रताप नामक उर्दू के सर्वाङ्ग-सुन्दर मासिक-पत्र का सम्पादन-कार्य आरम्भ किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
112815

उन दिनों हिन्दी-बङ्गवासी में "शिक्षिता हिन्दू-बाला" नाम का एक उपन्यास बङ्गभाषा से अनुवादित हो कर छपता था। गुप्तजी ने चिट्ठी में उस की स्वतन्त्र आलोचना लिख भेजी। उस पर हिन्दी-बङ्गवासी के सम्पादक ने अनखाने के बदले प्रसन्नता प्रकट की और उस पुस्तक को गुप्त जी के पास अनुवाद करने को भेज दिया। उसी समय का किया हुआ अनुवाद बाबू शरच्चन्द्र सोम ने मडेल-भगिनी नाम से हिन्दी में प्रकाशित किया और उसी के द्वारा गुप्त जी हिन्दी-बङ्गवासी के सहायक सम्पादक हुए। यह सन् १८९३ की बातें हैं। उन दिनों बम्बई से पुस्तकाकार प्रकाशित होने वाले भाषा-भूषण साप्ताहिक पत्र में गुप्त जी के अनेक गद्य पद्य लेख निकले थे।

कोई चार वर्ष तक गुप्त जी ने हिन्दी-बङ्गवासी के सम्पादकीय विभाग में काम करके उसको हिन्दी-प्रेमी हिन्दू और हिन्दुस्तान का बहुत प्रिय बना दिया। किन्तु हिन्दी-बङ्गवासा के मालिकों से मत-भेद होने के कारण इस्तेफ़ा देना पड़ा।

इसकी ख़बर लगते ही भारत-मित्र के मालिकों ने उनको भारतमित्र हाथ में लेने का अनुरोध किया। किन्तु गुप्तजी ने उत्तर दिया—"अभी मैं यहाँ से हट कर आपका काम नहीं कर सकता। * * * मैं घर जाता हूँ। आपकी इच्छा होगी तो वहाँ से आसकूँगा।" वही बात हुई। गुप्त जी घर गये और वहाँ से फिर भारतमित्र की एडिटरी के लिए सम्मान-पूर्वक बुलाने पर सन् १८९८ में कलकत्ते आये। तब से आज तक आप ने भारतमित्र को बड़ी योग्यता से चलाया। गुप्त जी के हाथ में लेते समय जिस ने सौ ग्राहकों की नामावली देखी थी मरते समय उसके दूने हज़ार ग्राहक हो गये। भारतमित्र में आपने जितने उपन्यास और गद्य पद्य लेख देखे हैं उन में कितने ही प्रसिद्ध प्रसिद्ध हिन्दी और उर्दू समाचार-पत्रों में छपे हैं। आप की रत्नावली नाटिका, हरिदास, शिवशम्भु का चिट्ठा, स्फुट कविता, खिलौना पुस्तकाकार छप चुके हैं। एक उत्तम पुस्तक, हिन्दी-साहित्य का इतिहास, उन्होंने लिखना आरम्भ किया था। इसके लिए गुप्त जी पाँच वर्ष से तैयारी कर रहे थे। पारसाल से उसका आरम्भ कर दिया था। क़िन्तु, हाय, काल ने उन्हें असमय में ही उठा लिया और वह पुस्तक आरंभ की हुई अधूरी ही पड़ी रही!

गुप्त जी बड़े तीव्र किन्तु सरल और शुद्ध हृदय के समालोचक थे। उनकी समालोचना से साहित्य में अनेक गन्दगी भरनेवाले अहम्मन्य लेखक सुधरते थे और अनेक अनभिज्ञ लेखक उनके उपदेश गुरु-तुल्य समझ माथे चढ़ाते थे। जगत् में सब प्रकार के मनुष्य हैं। उनकी मृत्यु से हिन्दू और हिन्दी साहित्य को बड़ा धक्का लगा है।

गुप्तजी की मृत्यु भाद्र शुक्ला ११ बुधवार को देहली में हुई। मरते समय उम्र आपकी कुछ ऊपर ४२ वर्ष की थी। आप ने तीन पुत्र और विधवा स्त्री छोड़ी है। भगवान् उनकी आत्मा को परलोक में सद्गति और उनके परिवार को प्रबोध दे। यही हमारी मङ्गलमय जगदीश से प्रार्थना है।

विहार-बन्धु।

वीर-वचनावली।

१—निज बल से बलि के बन्धन को
तोड़ न सका पैठि पाताल;
शशिकलङ्क मैंने नहिँ मेटा;
मेरे हाथों मरा न काल।
शेषशीस से धरा छीन कर,
ले न सका सिर उसका भार;
शत्रु-शमन कर सका न अपना,
लाख बार मुझको धिक्कार!

२—भीम-भुजङ्ग-ओष्ठ चुम्बन कर,
नश्वर देह दीजिए मेट;
चाहे कालकूट को पी कर
शीघ्र कीजिए यम से भेंट।
या गिरिवर से गिर कर करिए
लाखों टुकड़े अपना माथ;

पुस्तकालय 112815 हरिद्वार
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर न कभी जीते जी खल के
सम्मुख चल पसारिए हाथ ॥

३—अपने प्रण से वीर न टलते
चाहे उन्हें डालिए पीस ;
नेम निबाहेंगे वे अपना
जब तक उनके धड़ पर शीस ।
शिरच्छेद हो जाने पर भी
धन्य राहु तू अद्भुत वीर ;
सूर्य चन्द्रमा दोनों का जो
ग्रसता तू तेजसी शरीर ॥

४—खाकर जिसे उगल देते हैं ,
फिर उसको ही खाते श्वान ;
छोड़ दिया है जिसे उसे फिर ,
छूते नहीं कभी मतिमान ।
प्राणों ही के साथ सर्वदा
प्रण भी उनका जाता है ;
शीतल कभी न होता पावक ,
बुझ ज़रूर वह जाता है ॥

५—ज़रा उछलने से मछली के
वारिधि चाहे कँप जावे ;
मृग-शिशु के चलने से फटकर
धरणी चाहे धँस जावे ।
लघुतम लवा देख खगपति भी
अति भयार्त भग सकता है ;
वज्रपात से भी न वीर का
हृदय कभी हिल सकता है ॥

६—खाकर लात शान्त जो रहते ,
साधु नहीं वे पूरे मूढ़ ;
मारो लात धूलि पर देखो ,
हो जावेगी सिर-आरूढ़ ।
रिपु से बदला लिये बिना ही
कायर नर रह जाते हैं ;
तेजस्वी जन उसके सिर पर
पद रख यश फैलाते हैं ॥

७—शान्त चित्त सीधे लोगों का
करते हैं जो जन अपमान ,
दारुण फल उसका मिलता है
उनको, मानों वचन प्रमाण ।
किसे नहीं है विदित विश्व में
चन्दन का शीतत्व स्वभाव ?
पर घर्षण से प्रकटाता है
वह भी अपना दाहक-भाव ॥

८—त्रिभुवन हो जाता है आँगन
जिन्हें प्रतिज्ञा की है लाज ;
अपने ही बल का बल रखते
नहीं चाहते साज समाज ।
पहिया एक, विषम घोड़े हैं,
बिना पैर का गाड़ीवान ,
नित ही नभ में तो भी रथ को
दौड़ाते हैं रवि भगवान ॥

९—सच्चा तेजस्वी जो होगा
कभी न छोड़ेगा निज बान ;
वज्रहृदय होकर सह लेगा
सुख-दुख मान और अपमान ।
बलती हुई आग का नीचे
मुँह लटकाओ, पर, तब भी ,
ऊपर ही को लपट जायगी ,
नीचे को वह नहीं कभी ॥

१०—धीर-धुरीण लोग जो चाहें
कर लेंगे वह काम ज़रूर ;
ज़रा नहीं वे कभी करेंगे
हानि-लाभ से ग्लानि ग़रूर ।
श्री पाकर के हँसे न सुर सब ,
विष पाकर नहिँ शोक किया ;
चले गये वारिधि को मथते
जब तक नहिँ पीयूष पिया ॥

११—न्यायपरायण जो नर होगा
उसकी कभी न होगी हार ;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टी कुटिल कोटि रिपु उसके
हो जावेंगे क्षण में छार।
पाँच रहे, कौरव सौ,
प एक थे, निशिचर लक्ष।
हो हुए, देख लो,
क्त था जिनका पक्ष॥

रामचरित उपाध्याय।

किरण-विकिरण।

(Spectrum Analysis)

जिस जगदीश्वर की अचिन्तनीय लीलाओं का आप प्रतिक्षण अनुभव करते है; जिस दयामय की चातुरी का परिचय आप को सदा ही मिलता है; आज उसी के रचित एक विचित्र और सुन्दर विषय की आलोचन सरस्वती के पाठकों के सामने रखना इस लेख का अभीष्ट है। इस विचित्र-विभूति-शालिनी प्रकृति की महिमा किसे विदित नहीं है? ऊपर अगणित-तारागण-मण्डित श्यामल आकाश; फिर उसी में कहीं मेघमाला की हृदयहारिणी छटा; कहीं विविध-वर्ण-सम्पन्न इन्द्रधनुष की मनोज्ञ शोभा; कहीं मेघ-ज्योति की सहसा चमक दमक देखते देखते वज्रनिर्घोष। अन्तरिक्ष में ही नहीं, धरा धाम में भी प्रकृति की शोभा विलक्षण-भाव-सहित आपके सम्मुख है। देखिए किस प्रकार सस्य-श्यामल क्षेत्र, कुसुम-मण्डित तरुराजी, पल्लव-विभूषत लतावली, विशुद्ध-नीलिम-परिपूर्ण तरङ्गाकुल रत्नाकर, एवं पवित्र-जलयुक्त नदी आदि अपनी अपनी शोभा दिखाती हैं। ऐसी ही अनेकानेक वस्तुओं की आलोचना कर कवि अपनी कविता में अनुरक्त और वैज्ञानिक अपनी तत्त्व-गवेषणा में मग्न हैं। इन से जगत् का जो उपकार हुआ है और होगा उसकी सीमा नहीं।

पाठकवृन्द, लेख का विषय किरण-विकिरण अर्थात् Spectrum Analysis है। अतः यह देखना है कि स्पेक्ट्रम (Spectrum) किसे कहते हैं। पर इसका ठीक पर्य्याय-वाचक शब्द हिन्दी अथवा संस्कृत में शायद नहीं। अतः उसे हम वर्णपट्टिका कह कर उल्लेख करेंगे। इस वर्णपट्टिका के मूलतत्त्व के अनुसन्धान के पहले आलोक-तत्त्व (Principle of Visual Perception) की कुछ बातें कह देना अच्छा होगा।

हमारे यहाँ के नैयायिकों ने "जलतरङ्गन्याय" से शब्द की उत्पत्ति कही है। अर्थात् जैसे किसी जलाशय में किसी गरुई वस्तु को फेंकने से जल आन्दोलित हो कर गोलाकार फैल जाता है, जिस तरह सितार के तार को मिज़राब से छेड़ने से तार के ऊपर नीचे "कम्पन" होता है, उसी प्रकार ध्वनि के स्पर्श द्वारा जब वायुराशि में धक्का पहुँचता है तब वह धक्का वायु के परमाणुओं को स्पन्दित कर उसमें पूर्वोक्त रीति के तरङ्ग उत्पन्न करता है। और जब ये तरङ्ग हम लोगों के कान की झिल्ली (Drumskin) पर आ लगते हैं तब कान के सूक्ष्म सूक्ष्म स्नायुओं के सहारे मस्तिष्क में एक विशेष प्रकार का अनुभव उत्पन्न करते हैं, जिससे हम लोगों को शब्दज्ञान होता है। यह स्पन्दन भी घड़ी के पेन्डुलम की तरह किसी निर्दिष्ट नियम के अनुसार होता है। यह स्पन्दन एक पल में सौ या दो सौ बार जितना होता है उसकी अल्पता या अधिकता के अनुसार स्वर का क्रम भी बदलता जाता है, अर्थात् स्वर कड़ा या धीमा होता जाता है।

आलोक-ज्ञान भी हम लोगों को इसी प्रकार होता है। हमारे भारतवर्ष के नैयायिकों की तरह पाश्चात्य वैज्ञानिक ईथर (Ether) अथवा आकाश* नामक एक विश्वव्यापी पदार्थ की सत्ता मानते हैं। उनके गूढ़ गूढ़ सिद्धान्त इसी ईथर-सिद्धान्त से सिद्ध होते हैं। यह ईथर पदार्थ सभी स्थलों में विद्यमान है।

ऊपर शब्द की उत्पत्ति वायुद्वारा कही गई है; परन्तु आलोक की उत्पत्ति इस ईथर नामक अद्भुत पदार्थ द्वारा होती है। जिस प्रकार वागिन्द्रय से शब्द

* जैसा कि न्यायशास्त्र में कहा है। परन्तु यथार्थ में ईथर दूसरी चीज़ है।

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Cancelled
1939-2896

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar